GL H 320.54092
LAJ

121915
LBSNAA

...राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
...ademy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. 121915 ~~JD 1134~~

वर्ग संख्या
Class No. GLH 320.54092

पुस्तक संख्या
Book No. ~~लाजप~~ LAJ

लाला लाजपतराय

संकलनकर्त्ता

अलगूराय शास्त्री

प्रकाशक

लोक सेवक मण्डल

१९५७

सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

एक निवेदन

स्वर्गीय लाला लाजपतराय का जीवन-चरित अंग्रेजी में तैयार कराने के लिए लोक सेवक मण्डल के आजीवन सदस्य श्री फ़ीरोज़चन्द जी को नियुक्त किया गया था। उन्होंने अथक परिश्रम कर जीवन-चरित की सामग्री एकत्र की और उसे लिखा। हम प्रयत्न करेंगे कि लालाजी का अंग्रेजी में जीवन-चरित शीघ्र प्रकाशित किया जाय। जो सामग्री लाला फ़ीरोज़चन्द जी ने तैयार की उसका प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद लाला छबीलदास ने किया था। पिछले वर्ष यह अनुभव किया गया कि लालाजी का अंग्रेजी तथा हिन्दी, दोनों भाषाओं में जीवन-चरित लिखा जा चुका है, किन्तु उसके प्रकाशित होने में अनावश्यक विलम्ब हो रहा है। मण्डल की कार्यकारिणी ने अपने आजीवन सदस्य श्री अलगूराय शास्त्री, संसद सदस्य को यह भार सौंपा कि वह शीघ्रातिशीघ्र हिन्दी में लालाजी का जीवन-चरित जनता के हाथ में पहुँचा देने का प्रयत्न करें। उन्होंने उपलब्ध सामग्री के आधार पर हिन्दी में लालाजी की जीवनी तैयार की। उसे जनता के हाथों में लोक सेवक मण्डल श्रद्धा के साथ अर्पित कर रहा है। यदि शीघ्रता के कारण इस प्रकाशन में मुद्रण की अशुद्धियाँ अथवा अन्य त्रुटियाँ रह गई हों तो आश्चर्य नहीं किन्तु हम और अधिक विलम्ब नहीं करना चाहते। इस उद्देश्य से कि हम लालाजी की अगली निधन तिथि पर उनके जीवन का एक सजीव चित्र अर्पित कर सकें, जो कुछ लिखा जा सका है प्रकाशित किया जा रहा है। हम आश्वासन देते हैं कि सभी प्रकार की त्रुटियाँ दूसरे संस्करण में सुधारी जायँगी।

ता० २०-१०-१९५७
नयी दिल्ली

प्रकाशक

प्रारम्भिक वक्तव्य

संकलनकर्त्ता की ओर से

स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी का एक प्रामाणिक जीवन चरित जनता के हाथ में आज से २९ वर्ष पूर्व हमारी ओर से पहुंच जाना चाहिये था। खेद है कि ऐसा नहीं हो पाया।

प्रस्तुत पुस्तक उस सामग्री के आधार पर संकलित की गयी है जो हमारे मण्डल के आधारभूत भूतपूर्व आजीवन सदस्य श्री फ़ीरोज़चन्द जी ने अंग्रेजी में एकत्रित की थी और उसका हिन्दी में श्री छबीलदास जी ने अनुवाद किया था। मूल अंग्रेजी पुस्तक तथा हिन्दी अनुवाद अप्रकाशित ही पड़े रहे। गतवर्ष लोक सेवक मण्डल की कार्यकारिणी ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा मुझे यह कार्य सौंपा कि शीघ्र से शीघ्र लालाजी का जीवन-चरित हिन्दी में प्रकाशित किया जाय। हिन्दी अनुवाद का उपयोग करके शीघ्रता में यह पुस्तक छपायी गयी है।

लालाजी स्वयं उच्चकोटि के जीवनीलेखक थे। गैरीवाल्डी, मेज़िनी, शिवाजी, दयानन्द, श्रीकृष्ण आदि नामक उनकी लिखी हुई पुस्तकें उच्चकोटि के जीवनचरित्र हैं। उन्होंने अपने जीवन का वृत्तान्त भी स्वयं लिखा था—प्रस्तुत पुस्तक में उस आत्मचरित्र से बहुत बड़ा अंश स्थल-स्थल उद्धृत किया गया है। उसका उपयोग करने से इस जीवन की झांकी को चार चाँद लग गये हैं।

जहाँ जहाँ जिस जिस स्थल पर "मैं वहां गया—वहां रहा—मैंने लालाजी से यह बातें कीं, इत्यादि वाक्य प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ वहाँ वह "मैं" श्री लाला फ़ीरोज़चन्द जी के लिये ही प्रयुक्त है—क्योंकि वही वास्तव में इस पुस्तक के लेखक हैं। "मैं" से तात्पर्य न हिन्दी अनुवादक से है न संकलनकर्त्ता से।

१७ नवम्बर १९२८ को लालाजी को अमरत्व प्राप्त हुआ। हम सब फूट फूट कर रोये—"क़ौम दा गुजर गया सरदार" के स्वर में लाहौर ने जो शोकसंगीत सुनाया था और जनसमूह के चलते सागर में वह ध्वनि गरगरायी थी, वह लालाजी की लोकप्रियता की द्योतक थी। लालाजी के निधन पर महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू आदि ने जो उद्‌गार प्रकट किये थे वह उस पवित्र महान आत्मा की महानता का परिचायक था। गांधीजी को लालाजी लगते थे "भोले बालक"। "पांडित्यम् निर्विद्योऽपिबालो भूयात्" का उपनिषत् वचन स्मरण हो आता था। पाण्डित्य भी बालक के भोलेपन के सामने फीकी पड़ जाती है।

मोतीलाल जी को लालाजी लगे थे "महान् और अच्छे"—"अद्धा नाक्षि द्युमत्मारयिंदा" का वेद वचन स्मरण हो आता था—कभी क्षय होने वाला नहीं—ऐसी अच्छाई, प्रकाशपुंजता तथा धनदायी ज्ञानदायी सत्ता !

न्यूयार्क में लालाजी के निधन पर हुई एक शोक सभा में लालाजी के एक पुराने परिचित अमेरिकन ने कहा था—

"कौन अमेरिका निवासी बालक ऐसा होगा जिसकी भावना यह न रही हो कि उसने थामसपेन अथवा टी बुकर वाशिंगटन के साथ एक मेज पर खाना खाया होता तो उसका जीवन सफल होता। सभी अमेरिका वासियों के हृदय की यह स्वाभाविक गर्वपूर्ण कामना हो सकती है। परन्तु मुझे यह कामना नहीं रही ! कारण यह कि मैंने लाला लाजपतराय के साथ एक ही मेज़ पर खाना खाया था।"

लालाजी की महत्ता का कुछ अन्दाज इन वाक्यों से लगता है।

लालाजी की बातचीत की शैली अपूर्व थी—"गोखले दि मैन आफ़ दि क्लासेज तिलक दि मैन आफ़ दि मासेज़" आदि के नन्हें २ वाक्यों से वह व्यक्तियों तथा घटनाओं का मनोहारी चित्रण किया करते थे। जब हम सब लोक सेवक मंडल के सदस्य वार्षिक अधिवेशन में एकत्रित होते, तब ज्ञानगोष्ठी में वह बड़े तकिये के सहारे मध्य में एक ओर लेट जाते। लालाजी हम सबसे भिन्न २ कार्यों तथा नीतियों पर परामर्श, विचार विनिमय करते। ऐसी विवेक वर्धिनी एवं सहृदयता तथा सम्पर्क स्थापित करने वाली गोष्ठियां मैंने अन्यत्र नहीं देखीं।

दक्षिण भारत की यात्रा में मदुरा का मन्दिर आदि देखकर 'दक्षिण के आचार्य तथा वैदिक धर्म' शीर्षक से एक लेख लालाजी ने बिना किसी पुस्तक के सहारे मुझे बोलकर लिखवाया। मैं चकित रह गया कि किस गंभीरतापूर्ण पांडित्य का परिचय उनके लेख में मिला जिसमें कैवल्य, द्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत एवं त्रिवाद के सिद्धान्तों पर गहरा प्रकाश मिला—साथ ही लालाजी ने स्पष्ट कहा कि मध्यकालीन आचार्यों ने वैदिक धर्म की मान्यताओं से अपने को दूर रखा है।

मद्रास के समुद्रतट की सभा में आपने कहा—"मैं भाई सत्यमूर्ति की तरह अंग्रेज़ी नहीं बोल पाता इसका खेद है—मैं तो वर्नाक्यूलर का बोलने वाला हूँ, अब जब जीवन की संध्या होते देखता हूँ और सिंहावलोकन करता हूँ तब खेद होता है कि जिस माता की कोख से जनमा, जिसकी गोद को मलमूत्र से अपवित्र किया, जिसका स्तन पिया वह माता बंधन में ही है और मेरे जीवन के सूर्य का

अस्ताचल की ओर प्रयाण तीव्र गति से हो चला है ! माता के बन्धन तोड़ने के लिये मैंने कुछ नहीं किया, इसकी तीव्र वेदना मुझे व्यथित करती रहती है।" लालाजी की वाग्धारा समुद्र की गरगराहट को अनुप्राणित करती जाती थी, मेरी आंखों से अश्रुधार बहती जाती थी। कौन जानता था कि आज की रात में अपने इस भाषण में लालाजी निकट भविष्य में होने वाले अपने निधन की भविष्यवाणी कर रहे हैं जो साइमन कमीशन के आगमन पर उसके बहिष्कार के प्रदर्शन में उनकी छाती पर भारतीय पुलिस की लाठी की मार से उत्पन्न हुई पीड़ा एवं विषाद तथा ग्लानि के फलस्वरूप १७ नवम्बर १९२८ को होकर रहा। लालाजी का ऐहिक जीवन इतनी शीघ्रता से समाप्त होने जा रहा है, उस भाषण के समय यह अनुमान में नहीं आ सकता था। वह पूर्ण स्वस्थ थे, मन से तथा शरीर से। उनमें ऊष्मा थी, राजनीतिक विद्रोह भावना थी, उनके मस्तिष्क पर पवित्रता तथा शारीरिक ओज तेज की आभा फूटी पड़ती थी। बोलते समय ललाट का सौन्दर्य, तेज एवं स्निग्धता का स्रोत बन रहा था। उठे हुए हाथों की तर्जनी श्रोताओं के हृदय में चुभ कर गहरी प्रेरणात्मक भावना से उन्हें तिलमिला देती थी। जीवन में मैंने ऐसा तेजस्वी भाषण, हृदय की पुनीतता का द्योतक हृदयोद्गार कभी नहीं सुना है।

उसी यात्रा में मद्रास की महिला सभा के अन्तर्गत श्रीमती स्वर्गीया एनीबेसेण्ट की अध्यक्षता में की गयी अपनी सम्मान सभा में जो ऐतिहासिक भाषण दिया, तथा एरनाकुलम की एक सार्वजनिक सभा में लालाजी ने जो उद्गार प्रकट किये उनकी गहरी छाप और उनकी नूतनता आज भी मेरे हृदय पर अमिट बनी हुई है। उसका सार यह था—"मैं आपको एकेश्वरवाद का सन्देश देने आया हूँ, वह एकेश्वरवाद जो आर्यसमाज की देन है। आर्यसमाज मेरी माता और वैदिकधर्म मेरा पिता है।"

लालाजी भावुकता की मूर्ति थे, लोकसेवा के अवतार थे। रचनात्मक कार्यों के प्रतीक थे। शिक्षा-दीक्षा की सजीवता उनके जीवन में व्याप्त थी।

संयुक्त निर्वाचन प्रणाली और पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली के विवाद स्वरूप लालाजी ने संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को लेकर नया दल संगठित किया। वह इस संयुक्त प्रणाली के लिये न लड़ते तो यहां हिन्दू मुसलमान के पृथक् निर्वाचन की प्रणाली ही प्रचलित होती।

शिक्षा कार्य के लिये लाहौर का दयानन्द कालेज तथा असहयोग आन्दोलन के उपरान्त क़ौमी कालेज लालाजी के ज्वलन्त मूर्तिमान स्तम्भ थे। लालाजी

निपुण शिक्षक थे। क़ौमी कालेज में स्वयं पढ़ाते थे। अमेरिका में विश्वविद्यालय में शिक्षक का कार्य करते थे।

लालाजी में सम्पादन कला चरमसीमा की थी और वह निष्णात् लेखक थे। पंजाबी, पीपिल, वन्देमातरम् नामक अंग्रेजी तथा उर्दू के समाचार पत्रों में उनके लेख पाठक के हृदय को चीर कर रख देते थे। वास्तव में लालाजी की लेखनी में प्राण था। वह हृदय में लेखनी को डुबोकर उसके रक्त से लिखते थे न स्याही से, न सुर्खी से। जो हृदय में आवेग उठता उसी को लिखते थे—सुनी-सुनायी, पढ़ी-पढ़ायी बातें नहीं दुहराते थे। तत्कालीन, समकालीन प्रश्नों पर ओजस्विता के साथ विचार प्रकट करते थे।

"माता के चरणों में" शीर्षक के नीचे लिखा है—"विश्व में विधाता ने जो कुछ रचा है वह सब सुन्दर एवं विचित्र है—मनसा अचिन्त्य है। उस सब में सर्वोत्तम वस्तु है नारी और जब उसकी कल्पना माता के रूप में की जाती है तब चिन्तन शक्ति पंगु हो उठती है।" कैसे मार्मिक शब्द हैं—माता गुलाबदेवी की स्मृति में जो सर्वस्व लगाया वह मूर्तिमान भौतिक माता के प्रति अगाध श्रद्धा का द्योतक है। "अनुव्रत: पितु: पुत्रो माता भवतु संमना" को चरितार्थ करने वाले लालाजी माता पिता के अनन्य भक्त थे। यही भक्ति भारतमाता के चरणों में अपना मस्तक चढ़ाने के लिये उन्हें अनुप्राणित करती रही। लालाजी जैसे देशभक्त, संस्कृति भक्त एवं धर्मभक्त बिरले होते हैं। हिन्दुओं का पक्ष लेने पर जब नासमझ अदूरदर्शी उन पर आक्षेप करते तो वह कहते थे—"यदि स्वराज लेने के लिये हमारी आतुरता हमें धर्म बदलने की प्रेरणा दे और हम ईसाई बन जायँ तो एक प्रकार की स्वतंत्रता अंग्रेज हमें दे देंगे परन्तु स्वराज्य तो सच्चे अर्थों में तभी होगा जब हम अपने स्वरूप में स्थिर रह कर राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करें। हमारा स्वरूप है हमारा धर्म, हमारी संस्कृति और हमारी अपनी देशगत, जातिगत भावनायें। उन्हें त्यागकर मिलने वाला स्वराज्य स्वराज्य नहीं है। वह कहते थे और कहते २ व्यथित हो उठते थे कि यदि किसी देश का बहुसंख्यक समाज दलित हो जाय तो वह देश ही दलित हो जायगा। प्रजातंत्र की यह सीधी मांग है कि किसी देश या क्षेत्र का बहुसंख्यक समाज सिर उठाकर चलने की स्वतंत्रता रखे। अल्पसंख्यकों की सहायता से विदेशी शासन इस देश के बहुसंख्यकों को दबाकर अपना प्रभुत्व रखना चाहता है। यही इस देश के लिये भारी अभिशाप है। जो कोई भी इस नीति का समर्थक या पोषक है वह प्रजातंत्र का शत्रु है।" इटावा के हिन्दू सम्मेलन के अवसर पर अपने भाषण में उन्होंने यह कहा था और मुझसे बातों में इसप्रकार के उद्‌गार सदा प्रकट करते थे। महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का उनके

जीवन पर भारी और गहरा प्रभाव था। इस देश की प्राचीन संस्कृति के लालाजी उपासक थे और उसे तनिक भी क्षति नहीं पहुँचने देना चाहते थे। पानइस्लाम की नीति से वह विचलित होते थे। मुस्लमानों को अनुचित महत्व और अधिकार देने के वह सर्वथा विरुद्ध थे परन्तु मुस्लमानों के वह वैसे ही हितचिन्तक थे जैसे हिन्दुओं के। वह कहते थे—अनावश्यक चाटुकारिता उसी प्रकार मुस्लमानों को बिगाड़ती है जैसे अनावश्यक लाड़-प्यार लड़कों या बच्चों को। नागरिकता में समानाधिकार के वह समर्थक थे परन्तु किसी प्रकार का विशेषाधिकार उन्हें अखरता था। वह छूतछात भेदभाव के कट्टर विरोधी थे। मुस्लमानों के साथ समान भाई का बर्त्ताव उन्हें अभिप्रेत था परन्तु राजनीतिक प्रलोभनों से उन्हें भड़काना और उनका सहयोग प्राप्त करना उन्हें घातक लगता था। बात बात में इसकी चर्चा वह किया करते थे।

लालाजी वहुत अच्छे लेखक थे, इसके लिये उनकी 'अनहैपी-इण्डिया' 'इंगलैण्ड्स डेट टु इण्डिया' 'यंग इण्डिया' आदि पुस्तकें अंग्रेजी में लालाजी कृत उपस्थित हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के वह निपुण ज्ञाता थे। बार २ विदेशों की यात्रा से उन्होंने, भारत का जो सामञ्जस्यपूर्ण स्थान विश्व की राजनीति में था और है, उसे गवेषणापूर्ण ढंग से कहा है, और लिखा है। वह सब बातों पर विचार कर इसी परिणाम पर पहुँचे थे कि भारत को ब्रिटिश साम्राज्यशाही के अन्तर्गत एक स्वतंत्र उपनिवेश की तरह रहना चाहिये। तत्कालीन राजनीतिज्ञ जो पूर्ण स्वतंत्रता का नारा लगाते थे उनके विचारों में त्रुटि देखते थे। पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव के अधीन भारत की स्वाधीनता की लड़ाई का जो अन्तिम परिणाम हमारे सामने है वह है भारत का विभाजन तथा भारत का कामनवेल्थ में अस्तित्व। इतिहास बतावेगा कि दूरदर्शिता लालाजी के विचारों में थी अथवा उनके विचारों में जो उस समय एक पूर्ण स्वतंत्रता का उद्घोष करके संस्थित हो गये कामनवेल्थ में और मूल्य दे दिया भारत के विभाजन का तथा करोड़ों को विस्थापित करने का—और हाय! यह मूल्य लालाजी की प्रस्तर मूर्ति, उनकी जन्मभूमि तथा उनकी संस्थाओं को ही सबसे अधिक चुकाना पड़ा। सारी परिस्थितियों को देखते हुए उस समय की परिस्थिति में लालाजी के विचार माने जाते तो चाहे जो होता, भारत का विभाजन न होता और एक ठोस ईकाई के रूप में भारत अपनी दासता के काल में जो क्षीणता प्राप्त कर चुका था, उससे मुक्ति पाता और आगे पूर्णतः स्वतंत्र होता। लोकमान तिलक के रिसपांसिव कोआपरेशन की नीति को ही लालाजी श्रेयस्कर मानते थे। जो मिले ले लो, आगे के लिये लड़ते जाओ। असहयोग न करो। दि प्रिंसिपुल आफ नान कोआपरेशन नामक पुस्तिका में

लालाजी ने अपने इस हृदयग्राही सिद्धान्त का सुन्दर विवेचन किया है। जो राजनीति सीखना चाहें उन्हें यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिये।

१९२४ में अछूतोद्धार कमेटी की स्थापना करके लालाजी ने भारत भर में अछूतों के उद्धार का भारी रचनात्मक कार्य किया। उसके १० वर्ष बाद महात्मा गांधी ने १९३४ में हरिजन सेवक संघ की स्थापना करके हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक् होने की दूषित नीति का प्रतिवाद किया था।

राजपूताने के भीषण अकाल के समय लालाजी ने अनाथों की रक्षा का महान उपकारी कार्य किया था। मेरठ का वैश्य-अनाथालय उनकी अनाथ सेवा का मूर्तिमान रूप है। उसी प्रकार जैसे मेरठ का कुमार आश्रम अछूतों की सेवा का मूर्तरूप है।

समय के आवेश में विवेकहीनता लोगों को विवश करती है कि वे अपने पथ प्रदर्शक को न मानें। प्रत्येक देश में वहां का पैग़म्बर, पथप्रदर्शक अपने समय में अपमानित हुआ है। उसे स्वयं मार कर बाद में जनता उसकी मूर्ति बनाती है और उस पर फूल चढ़ाती है। गांधीजी के साथ यही हुआ, मसीह के साथ यही, सुकरात के साथ यही, अमेरिकन प्रेसीडेण्ट अब्राहिम लिंकन के साथ यही। लालाजी के विरोध में युवक विद्यार्थी पञ्जाब में नारे लगाते थे। साइमन कमीशन की दुर्घटना के पश्चात् साण्डर को उन्हीं लोगों ने जान से मार डाला। यह वह जीवन है जिसके हीरे का कण कण चमचम चमकता है। जिस प्रस्थान कोण तथा दृष्टि से देखें उसी स्थान से इसकी जाज्वल्यमान रश्मियें आंखों को चकाचौंध करती हैं।

"जनम भर हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल" मैंने जन्म भर इनके रूप को ध्यान से देखा, नेत्रों को तृप्ति नहीं मिली, निहारते रहूँ, यही कामना बनी रहती है।—बाप वरणें चार मुख बेटा बरणें पांच मुख नाती वरणें छ मुख तदपि नयी नयी, की बात चरितार्थ होती है। ब्रह्मा ने चार मुख से महेश ने पांच मुख से तथा षड़ानन ने छ मुख से भगवान् का गुण गाया परन्तु भगवान् के नये २ गुण अजस्र आते रहे, उनका अन्त नहीं हो पाया। इसी प्रकार हम जैसे लालाजी के गुणगान करने वाले उनका यश गागाकर थक जायंगे, उनकी विभूतियों और उनके गुणों का अन्त न होगा।

लालाजी के जीवन की झांकी जो अगले पृष्ठों में अंकित है, वह गंगा का पावन प्रवाह है। उसमें हमने अपनी वाणी को स्नान कराके उसे पवित्र बनाया है। पाठक उस जीवन का पाठ कर उससे लाभ उठावें।

इस संस्करण में हम पर्याप्त सामग्री नहीं दे पाये हैं। इसे दूसरे संस्करण में सम्पूर्ण बनाने का यत्न होगा। इस संस्करण के द्वारा हम पाठकों के हाथ में लालाजी का एक सरल सुगम चरित्र हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस पुस्तक के प्रूफ आदि देखने में मुझे सबसे अधिक सहायता श्री सरयूप्रसाद पाण्डेय से मिली है।

१५ कैनिंगलेन, नई दिल्ली
२०-१०-५७

अलगूराय
संसद सदस्य (राज्यसभा)

विषय सूची

पहला भाग

दूसरा भाग



अध्याय एक

प्रारंभिक झांकी

वाह्य परिस्थिति का सिंहावलोकन

ईसाइयों के बड़े त्यौहार, बड़े दिन (क्रिसमस) में दस ही दिन शेष थे। अंग्रेजों के लिए आमोद-प्रमोद का पर्वोत्सव आरम्भ होने वाला था। अचानक ही ब्रिटिश सेनापति सर ह्यू गफ ने ११ दिसम्बर को होनेवाले शानदार नृत्य का कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

१८४५ के शीतकाल में परिस्थिति अत्यन्त भीषण दिखलाई पड़ने लगी। शानदार नृत्य को स्थगित करना पड़ा, क्योंकि अम्बाला में स्थित अंग्रेजों को समाचार मिला कि सिख सेना सतलज को पार कर चुकी है। अम्बाला के पश्चिम में अभी राणा रणजीत सिंह जी के उत्तराधिकारियों का राज्य था, यद्यपि अंग्रेजों ने लुधियाना और फिरोजपुर में अपनी चौकियां स्थापित कर ली थीं।

दोनों पक्षों के लिए गम्भीर परिस्थिति थी। हैनरी हार्डिंग, गवर्नर जनरल स्वयं सेनापति के कार्य में हाथ बंटाने के लिए आ पहुँचे। पीछे होनेवाले युद्ध में प्रायः देखा गया कि वह पेड़ की छाया के नीचे से निर्देशपत्र जारी कर रहे हैं, क्योंकि उनके तम्बू आदि सामग्री के पहुँचने के पूर्व ही आवश्यक पत्रों का जारी करना और भेजना आवश्यक था।

१८ दिसम्बर को मुदकी में संग्राम का श्रीगणेश हुआ। हैनरी हार्डिंग ने स्वयं एक अनुभवी सैनिक के तौर पर ब्रिटिश सेना के एक भाग का संचालन किया, और वह भी दूरस्थ और सुरक्षित केन्द्र से नहीं, वरन, भारी तोपों की गर्जना, सुनते ही स्वयं घोड़े पर सवार हो युद्ध क्षेत्र में उतर कर।

उन्हें इस प्रकार अपने प्राण संकट में डालने से रोकने का प्रयत्न किया गया, परन्तु उसका कुछ फल न निकला। कदाचित् उनके मन में यूनानी वीर सिकन्दर का ध्यान आ रहा था जिसने उसी प्रदेश के अन्तर्गत ऐसे ही अवसर पर अपने प्राणों की बाजी लगाने से रोकने वालों की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया था। हैनरी हार्डिंग एक दक्ष और अनुभवी योद्धा था और वह जानता था कि स्थिति कितनी विकट और महत्वपूर्ण है।

सिखों की ओर भी, जैसा कि एक इतिहासकार ने लिखा है, उत्साही हृदयों और कार्यशील हाथों की कमी न थी, परन्तु समस्त सेना का नेतृत्व करने और उनमें जीवन संचार करनेवाली आत्मा वहां न थी। अक्षर-ज्ञान-रहित किन्तु अत्यन्त व्यवहारकुशल पंजाब केसरी महाराणा रणजीतसिंह जी महाराज १८३९ ई० में स्वर्गारोहित हो चुके थे।

पिता-माता वंश एवं पूर्वज

युद्ध क्षेत्र से ३० मील की दूरी पर ही, जगरांव में दिसम्बर १८४५ के उसी घटनापूर्ण दिन राधाकृष्ण का जन्म हुआ। कौन जानता था कि यही लाला राधा-कृष्ण एक दिन उस बालक के पिता होंगे जो बड़ा होकर "पंजाबकेसरी" की प्राचीन उपाधि को पुनर्जीवित करेगा ?

मुदकी के युद्ध में सिख हार गए। अंग्रेजों के लिए युद्ध का प्रारंभ ही शुभ हुआ। आसपास के मैदानों में कुछ और लड़ाइयों के पश्चात् सारा खेल ही समाप्त हो गया। एक ही मास में जगरांव में ही फिरोजपुरवाली सेनाएँ लुधियाना की सेना में जा मिलीं। दो माह में युद्ध समाप्त हो गया। जिस सन्धिपत्र को रणजीत सिंह से स्वीकृत कराने के लिए अंग्रेज इतने उत्सुक थे, उसे उहोंने स्वयं ही भंग कर डाला। सतलज के उस पार का प्रदेश तो उन्होंने अन्तिम रूप से प्राप्त कर लिया था। आगामी चार वर्षों में सतलज से इस पार का प्रदेश भी उनके अधिकार में आ गया।

जिस समय पंजाब में अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ, उस समय अग्रवालों की एक विशेष शाखा जिसके साथ हमारे चरित्र-नायक का सम्बन्ध है, पीढ़ियों से मालेर-कोटला अथवा उसके सन्निकट प्रदेश में निवास करती थी। अन्य स्थानों के अग्रवालों की तरह यह भी व्यापार और साहूकारी करनेवाली जाति थी, परन्तु यहां अपने उक्त कार्य के अतिरिक्त शासन के महत्वपूर्ण पदों पर आरूढ़ होकर उसने अपनी प्रतिष्ठा और भी बढ़ा ली थी। विशेषत: मालेर कोटला के मुसलमान शासकों को खंजाची अथवा कोषाध्यक्ष तो पीढ़ियों से इन अग्रवालों में से ही प्राप्त होते थे।

मालेर कोटला पंजाब के दक्षिण-पूर्व भाग में एक छोटी सी रियासत है। मुख्यनगर-मालेरकोटला दक्षिण में लुधियाना से रेल द्वारा २८ मील दूर है और इसकी जनसंख्या २०,०००से कुछ अधिक है।

प्रारम्भ में मालेर और कोटला दो भिन्न-भिन्न नगर थे। दोनों को जोड़ने-वाला सुन्दर मोतीबाजार तो बीसवीं शताब्दी की देन है। हमारी कथा के मालेरी

अग्रवालों का महत्व मालेर में ही था। सिखों के अशान्तिपूर्ण राज्य के दिनों में एक ऐसे उपद्रव का वर्णन हमें इतिहास में मिलता है कि जिसके कारण अग्रवालों को मालेर छोड़ना पड़ा। परन्तु वे वहाँ से अधिक दूर नहीं गये। उनमें से कुछ ने तो समीपस्थ कोटला में, जो केवल ३ फर्लांग की ही दूरी पर था, और जैसा कि उसके "कोटला" नाम से ही प्रगट है कि उसके चारों ओर दीवाल (प्राचीर) थी, शरण ली। और कुछ अग्रवालों के वंशज लुधियाना और फिरोजपुर में फैल गए। वह अभी तक मालेरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इससे प्रगट होता है कि मालेर कोटला के दिनों के महत्व की स्मृति उनके हृदयों में आज भी बनी हुई है।

स्थान त्याग देने के पश्चात् हमारे चरित्र-नायक लाला लाजपतराय के पूर्वज जगरांव पहुँचे। जगराँव लुधियाना जिले का एक नगर है। उनके पूर्वजों का घर अभी तक वहाँ मौजूद है और वहाँ लालाजी के छोटे भाई रहते हैं। लाजपतराय और उनके भाइयों का स्थापित किया हुआ स्कूल भी है जिसका नाम उनके पिता के नाम पर राधाकृष्ण स्कूल है। यह नगर फिरोजपुर तथा लुधियाना के मध्य में स्थित है।

राधाकृष्ण जी की बाल्यावस्था में उनके पिता, जगरांव के पास ही एक गांव में, पंजाब के नवीन शासक-अंग्रेजों के अधीन पटवारी थे। वह नाटे कद के थे। और जैसा कि स्वयं उनके पोते (लाजपतराय) जी ने लिखा है-वह बड़े उद्यमी, साहसी, ... समझदार, बुद्धिमान् और मिलनसार व्यक्ति थे। उनमें व्यापारी पूर्वजों के समस्त गुण और दोष दोनों विद्यमान थे। वंश परम्परा के अनुरूप उनको भी समस्त सम्भव उपायों द्वारा धन कमाने की धुन थी। पटवारी को बहुत ही न्यून वेतन मिलता है और वह गांव का एक महत्वपूर्ण कर्मचारी होता है, इसलिए उसे येन केन प्रकारेण धन प्राप्ति में कोई संकोच नहीं होता। उसके न्यून वेतन का यही अर्थ लगाया जाता है कि वह "अतिरिक्त" धन संग्रह करने का अधिकारी है। आजकल जब कि उच्च अधिकारी वर्ग की ओर से भ्रष्टाचार के विरुद्ध इतना प्रबल प्रचार किया जा रहा है, "अतिरिक्त" आय की ओर ध्यान न देने वाले ईमानदार पटवारियों की संख्या श्वेत काकों की भाँति अत्यल्प ही दिखलायी पड़ती है। लाहौर के एक कालेज के प्रोफेसर को भी, जिन्होंने भ्रष्टाचार के मूलोच्छेदन के विषय में बहुत कुछ पढ़ा था उक्त बात स्वीकार करनी पड़ी। प्रोफेसर महोदय के पास एक छोटी सी जमींदारी है। उसी के सम्बन्ध में उनको पटवारी महोदय से कुछ काम लेना पड़ा। पटवारी ने काम तो कर दिया, परन्तु साथ ही उसने स्पष्ट शब्दों में यह भी सुना दिया कि उसने धन प्राप्ति की आशा से वह काम किया है, इस पर प्रोफेसर साहब बिगड़े। "परन्तु महाशय जी" पटवारी बोला, "मैं तो आपके पड़ोस की जमीदारी के प्रसिद्ध

मालिक पंजाब के ऐक्टिंग गर्वनर से भी पैसे वसूल करता हूँ।" इसपर प्रोफ़ेसर महोदय को चुपके से झुकना पड़ा। शायद एक पटवारी के इस प्रकार अर्जित धन के अधिकांश को घूस अथवा रिश्वत का सीधा नाम देने के स्थान में उसे कारगुजारी का उपहार अथवा बखशिश कहना अधिक उपयुक्त होगा। सभी पटवारी यह बखशिश लेते हैं। बनिया पटवारी को शायद ऐसे धनोपार्जन में अधिक आनन्द आता होगा अर्थात् उसे चाँदी के सिक्कों की झनकार में विशेष सुख प्राप्ति होती होगी! राजनीतिक उथल-पुथल के दिनों में एक व्यापारिक जाति अधिक चिरजीवी होने की आशा नहीं कर सकती, यदि उसमें परिस्थिति परिवर्तन के अनुकूल परिवर्तनशीलता का गुण विद्यमान न हो। मालेरकोटला का मुस्लिम शासन, उसके साथ सिख संघर्ष, नये प्रदेश के लिए प्रस्थान, जगरांव में रायकोट के मुसलमान रईस का राज्य, इसके पीछे रणजीत सिंह के कृपापात्र कपूर्थला के अहलूवालियों का राज्य, तथा समरांगण में सिखों को पराजित करते ही अंग्रेजों का आगमन इन सभी को परिस्थिति का सामना करनेवाली इस जाति ने बिना किसी आपत्ति के सहर्ष स्वीकार कर लिया।

नाटे कद के मालेरी बनिया पटवारी की शिक्षा नाममात्र की ही थी। बनियों के बहीखातों की टेढ़ी-मेढ़ी लिपि "महाजनी" का उन्हें पूरा ज्ञान था, परन्तु फारसी अथवा उर्दू लिपि से जिसमें जमीनों के कागज पत्र लिखे जाते थे वह नितान्त अनभिज्ञ थे। उनको केवल एक ही सुविधा थी। वह यह कि उनका जन्म ऐसे कुल तथा जाति में हुआ था जो सदा अपने आप को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल ढाल सकती थी। सम्भवत: फारसी तथा उर्दू जानने वाले लोग भी अभी अपने आपको उन युगपरिवर्तक परिवर्तनों के अनुकूल पाने में असमर्थ थे जिन्हें घटना-चक्र ऐसी तीव्र गति से वहाँ लाया था। इन व्यवहारकुशल लोगों ने व्यर्थ चिन्तन अथवा फिज़ूल सोच-विचार में अपना समय नष्ट करना उचित न समझा। वह इस बात में दक्ष थे कि अपनी आर्थिक नौकाओं के पतवार को राजनैतिक वायु के अनुसार ठीक रख सकें। उनका एक सदस्य पटवारी बन गया-इस कारण नहीं कि उसका शिक्षण इस कार्य के लिए हुआ अथवा उसे यह कार्य पसन्द था, वरन् इसलिए कि उसकी व्यवहार कुशल जाति को अन्य लोगों की अपेक्षा इस बात की समझ शीघ्र आ गयी। वह अपने जाति भाइयों की तरह अपने धर्म कर्म में दृढ़ था। वह दिन में दो बार नियम पूर्वक भक्ति तथा पूजा पाठ किया करता था। और जैन साधुओं का सत्संग भी किया करता था। यह साधु श्वेताम्बर जैन धर्म के अनुयायी थे। वह जैनी था, क्योंकि उसके पूर्वज शताब्दियों से जैन धर्म को मानते चले आए थे और श्वेताम्बर जैन साधुओं की सेवा करना अपना धार्मिक कर्तव्य मानते थे।

जैन बनियों की यह विशेषता है कि यद्यपि उनके धर्म में त्याग और संन्यास पर बल दिया गया है परन्तु वह इसे धन संग्रह के काम में बाधक नहीं मानते। उनकी यह वंशानुगत जातीय विशेषता उन्हें धनोपार्जन का व्यसनी बनाती है और त्यागमय तथा मितव्ययी जीवन बिताने के कारण उनका खर्च बहुत ही कम होता है। हमारे पटवारी जी भी जैन साधुओं का हर्ष से आतिथ्य तथा सत्कार किया करते थे।

उनकी धर्मपत्नी उनसे भिन्न स्वभाव की थीं। भिन्नता निरक्षर वा अपढ़ होने में नहीं---अपनी समकालीन एवं समकक्ष अधिकांश महिलाओं की नाई वह भी "बीस" से अधिक गिनती करना नहीं जानती थीं; यह तो ठीक ही था—किन्तु भिन्नता का आधार था धन से मोह का अभाव। मैंने उन जैसी धर्मात्मा, शुद्ध-हृदया, आतिथ्यपूर्णा, उदार तथा सीधी सादी स्त्री और नहीं देखी। धनसंग्रह उनके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल था। उनके पति उनको देते भी बहुत कम धन थे। जीवन भर में उन्होंने कभी ताले का प्रयोग नहीं किया और अपने पास कभी चाबी नहीं रखी। सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों की उन्हें कोई चाह न थी। वह ऐसी उदार थीं कि जो कुछ भी उनको अपने पति से प्राप्त होता था, लगभग सभी अपने पड़ोसियों को दे डालती थीं।" (यह लाजपतराय की आत्मकथा से हमें ज्ञात होता है)

क्या वह अदृश्य हाथ जो परमाणुओं के सम्मिश्रण से एक वंशानुगत गठड़ी (मानव व्यक्ति) तैयार करते हैं एक ही मानव वर्ग में इस स्त्री के धन त्याग की भावना और प्रवृत्ति तथा उसके पति की व्यवहार कुशलता और धनोपार्जन बुद्धि (वृत्ति) का सम्मिलन कराने की योग्यता रखते हैं?

हमें बतलाया गया है कि यह विचित्र देवी—अपने पति के स्वभाव से भिन्न स्वभाववाली अपूर्व महिला असाधारण मनोविज्ञान के अध्ययन का एक अपूर्व विषय थीं। कभी कभी उनके पति की मृतभगिनी की आत्मा का उनपर अवतरण प्रतीत होने लगता था। परिवार भर उनके आसपास एकत्र हो जाता था। भविष्य-वक्ता की नाई उनसे सम्मति माँगी जाती थी। "वह होनेवाली घटनाओं के विषय में भविष्यवाणी करती थीं, वे उन बातों का रहस्योद्घाटन करती थीं जिसे कोई जानता न था। समय पाकर घटनाएं ही उनकी भविष्यवाणी का अनुमोदन करती थीं।" कुछ भी हो, परिवार भर को उनमें असीम श्रद्धा थी।" बचपन में, उनके पोते (लाजपतराय) ने भी उनको बहुधा ऐसे "समाधि की अवस्था" में देखा और उन्होंने वह शब्द लिखे जो हमने अभी उद्धृत किए हैं। वह इस चमत्कार की कोई व्याख्या नहीं दे सके। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा कि मेरी मातामही किसी प्रकार के छल, कपट, धोखे अथवा पाखण्ड से सर्वथा अनभिज्ञ थीं और उनका स्वास्थ्य श्रेष्ठ था। वह कभी बीमार नहीं पड़ीं।

उनके पति भ्रमणशील स्वभाव के थे। यद्यपि हमें निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि उन्होंने रेलवे से पूर्व के दिनों में कोई लम्बी यात्रा की हो। उनकी अन्तिम बीमारी भी केवल एक ही दिन रही। और वह काम करते करते ही परलोक सिधार गए।

ऐसे माता पिता की सन्तान होने के कारण राधाकृष्ण की धर्म में असाधारण रुचि तथा उनका प्रतिभावान् होना स्वाभाविक था। जब राधाकृष्ण स्कूल जाने के योग्य हुए, तब लार्ड मैकाले का भारत में शिक्षा नीति पर प्रसिद्ध नोट प्रकाशित हो चुका था। मैकाले के देशवासियों ने राधाकृष्ण के गांव में जो मदरसा खोला वह एक मौलवी के अधीन था और वहाँ फारसी की शिक्षा दी जाती थी। राधाकृष्ण बड़े मेधावी थे और सदा अपनी श्रेणी में प्रथम रहा करते थे। नार्मल स्कूल की अन्तिम परीक्षा में वह पंजाब भर में प्रथम निकले—उन्होंने गणित तथा भौतिक विज्ञान में पूर्णांक प्राप्त किए। वह केवल पुरस्कार जीतनेवाले परीक्षाओं में उत्तम-स्थान प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी ही न थे। उनमें बौद्धिक दृढ़ता थी। वह केवल धन के पीछे दौड़ने की अपेक्षा बौद्धिक कार्यों को सदा ही प्रधानता देते थे। वह अपनी माता की तरह धन से पूर्णतः उदासीन न थे और न अपने पिता की तरह प्रत्येक सम्भव उपाय से धनोपार्जन का उन्हें व्यसन ही था। उनकी धर्म में अधिक रुचि थी, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह उसे अपने पूर्वजों के शताब्दियों से स्वीकृत कर्मकाण्ड का समानार्थ समझते हों। वह अध्ययन और गूढ़ चिन्तन के पश्चात् ही किसी वस्तु को स्वीकार करना चाहते थे। स्कूल में उन्हें जिस धर्म के अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ वह उनके अध्यापक एक सुन्नी मुसलमान का धर्म था। वह अध्यापक अपने धर्म में दृढ़ था; वह ईमानदार और शुद्धात्मा था। हमें बतलाया गया है कि उसके पवित्र आचरण ने इस्लाम धर्म को छूत की तरह फैलने में सहायता की, और उसके कितने ही शिष्यों ने अपने जीवन काल में इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया; और जिन्होंने रस्मी तौर पर इस्लाम ग्रहण नहीं किया, उनमें से अधिकांश अपने वास्तविक विश्वासों में मुसलमान रहे। राधाकृष्ण ने भी ऐसा ही किया। वह नमाज पढ़ते थे, सच्चे मुसलमान की तरह रमजान में रोजा रखते थे और मुसलमान उलमाओं की मैत्री की तलाश में रहते थे। वर्षों इस प्रकार व्यतीत कर दिए औ : ऐसा प्रतीत होने लगा कि किसी क्षण भी वह विधिवत् इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेंगे। परन्तु उन्हें ऐसा करने का साहस नहीं होता था क्योंकि उन्हें इस बात का निश्चय था कि ऐसा होते ही घरेलू कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। आपने एक सच्चे जिज्ञासु की तरह इस्लाम धर्म का अध्ययन किया। आपका मन यद्यपि काफी आलोचनात्मक था, परन्तु उसमें मौलिकता की कमी थी। नवीन

प्रभावों की उनपर छाप पड़ जाती थी और वे नवीन विचारों का स्वागत करते थे। जब सर सैयद अहमद ने इस्लाम की उदार व्याख्या करना प्रारंभ किया (जिसे साधारण भाषा में "प्राकृतिक धर्म" के नाम से पुकारा जाने लगा) तब राधाकृष्ण जी ने उन नवीन सिद्धान्तों का बड़ी उत्सुकता से अध्ययन आरंभ कर दिया। आपने सर सैयद के लेखों को असाधारण उत्साह से पढ़ा और वर्षों तक उनसे पत्र व्यवहार करते रहे। एक बार एक पत्र में उन्होंने सर सैयद से प्रश्न किया कि क्या मुसलमान बनने के लिए यह आवश्यक होगा कि उनका नाम (तक) राधाकृष्ण न रहे। और क्या उन्हें इस्लामी नाम रखना पड़ेगा। सर सैयद का उत्तर राधाकृष्ण को पसन्द आया, क्योंकि उन्होंने कहा कि किसी व्यक्ति का नाम परिवर्तन सर्वथा अनावश्यक है, आवश्यक बात एक ईश्वर तथा उसके पैगम्बर मुहम्मद में दृढ़ विश्वास है। इस उत्तर से राधाकृष्ण की अन्तरात्मा को गहरी शान्ति मिली होगी।

दुलीचन्द वकील भी राधाकृष्ण के ही विचार के थे। विधिवत् मुसलमान बन जाने में उनके मार्ग में भी राधाकृष्ण की सी कठिनाइयां थीं। एक दिन, ऐसा प्रतीत होता है कि, दोनों मित्रों ने खुले रूप से मुसलमान बन जाने का निश्चय कर लिया। इस इरादे से दोनों मस्जिद की ओर चल पड़े। किसी प्रकार, राधाकृष्ण की धर्मपत्नी को उनकी यह योजना ज्ञात हो गयी और उसने सफलतापूर्वक इसको भंग कर दिया। अपने पति के विधर्मी बनने पर उसको भी वैसा ही दुख था जैसा किसी धर्म पारायण हिन्दू पत्नी को हो सकता है, परन्तु वह चिरकाल तक उसे धैर्य तथा बुद्धिमत्ता से सहन करती रही। उसके माता पिता सिख गुरुओं के माननेवाले थे। बाल्यावस्था से ही उसे गुरुओं की "वाणी" की शिक्षा दी गयी थी और राधाकृष्ण के घर में भी वह नियमपूर्वक जपजी का पाठ किया करती थी। राधाकृष्ण अपने मुसलमान मित्रों को अपने घर खाने के लिये बुलाया करते थे। धार्मिक बन्धनों की दृढ़ता के उस युग में (अभी राजनैतिक संकुचित विचारों का नाम तक न था) एक हिन्दू घर में इस प्रकार की बात भी निन्दनीय और गर्हित समझी जाती थी। परन्तु राधाकृष्ण की स्त्री ने इस पर कभी किसी प्रकार का झगड़ा बखेड़ा खड़ा नहीं किया। पति के मित्रों को अपने बर्तनों में खाना खिलाकर वह पतिदेव को सन्तुष्ट रखती थीं और (जैसा कि हिन्दू घरों में प्रायः होता है) धातु के बर्तनों को अग्नि से शुद्ध करके अपनी धर्मनिष्ठा को सन्तुष्ट कर लेती थीं। उन दिनों एक मांसाहारी अग्रवाल को उसकी जाति के लोग राक्षस से कम नहीं समझते थे। परन्तु राधाकृष्ण जो अपने विचार में न जैनी रह गये थे और न अग्रवाल, कभी कभी अपने मुसलमान मित्रों के यहां का पका हुआ मांस अपने घर ले आते थे। उनकी स्त्री यह सभी गर्हित कार्य

देखती हुई भी सहन कर रही थीं, परन्तु वह जानते थे कि इसकी भी कोई सीमा होगी। जिस दिन उन्होंने अपने मुसलमान बन जाने की घोषणा की उसी दिन वह अपने बच्चों को लेकर उनके घर को त्याग देगी और अपने पिता वा उनके पिता के यहाँ रहने लगेगी। "मेरे पिताजी ने इस्लाम स्वीकार नहीं किया यह—एक बड़ा भारी चमत्कार है, और इस चमत्कार की जयमाला मेरी माता जी के गले में है" राधाकृष्ण के पुत्र ने ही यह शब्द लिखे हैं। परन्तु परिवार के एक हास्य प्रिय मित्र ने कहा था कि 'चमत्कार' शिशु लाजपत के हाथों शुद्धि का सर्वप्रथम कार्य समझा जाना चाहिए। जिस समय गुलाब देवी ने अपने पति को मस्जिद की सीढ़ियों पर रोक रखा था और उनसे अपनी गोद में लिये हुए बालक के नाम पर अनुनय विनय की थी, जिस समय राधाकृष्ण का 'पैतृक' भाव यह सुन रहा था और अपने निश्चय में ढीला पड़ रहा था, छोटे बालक लाजपत ने इस असाधारण दृश्य से घबरा कर रोना चीखना प्रारंभ कर दिया। ऐसे नाजुक क्षण में बालक के रुदन ने माता के अनुरोध का सफलतापूर्वक अनुमोदन कर दिया कि पारिवारिक भावुकता के ऐसे दृश्य के सामने हार मानते हुए अर्द्ध-मुस्लिम महाशय ने अपना विचार बदल लिया और अपरिवर्तित रूप में घर लौट आए। लाजपत द्वारा अपने धर्म की लाज रख ली गयी। माता की पत उन्होंने अपने पहले रुदन और पहली चीख पुकार में ही बचा ली। शिशु लाजपत को बड़े होकर जो करना था उसका यह श्री गणेश था। अस्तु।

राधाकृष्ण की धर्मपत्नी अपने ढंग की निराली महिला थीं। इस प्रकार के पति से निपटने के लिए उनको अपनी असाधारण बुद्धिमत्ता का प्रयोग करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त गृहणी के तौर पर इतनी न्यून आय पर घर का प्रबन्ध चलाने में भी विशेष दक्षता दिखलानी पड़ती थी। अध्यापकी से राधाकृष्ण को २५) मासिक मिलते थे। वह अपने धर्मग्रन्थों के पठन तथा स्वाध्याय आदि में इतने मस्त रहते थे कि अपने विभाग के अफसरों की प्रसन्नता प्राप्ति के लिए उनके पास समय ही न बचता था, अतः किसी ने भी उनकी वेतन वृद्धि का विचार न किया। अपने समस्त अध्यापक-जीवन में उनको पांच पांच रुपए की दो तरक्कियां मिलीं और जब वह नौकरी से पृथक हुए तो उनको केवल ३५) मासिक वेतन मिलता था। उनकी स्त्री को इसी मामूली आय पर एक बड़े परिवार का निर्वाह करना पड़ता था। उनके कुल दस बच्चे हुए और उनकी मृत्यु के समय छः बच्चे-चार पुत्र और दो पुत्रियां-जीवित थे। इस आय से इतने बड़े कुटुम्ब के भोजन, वस्त्र आदि का व्यय तथा धार्मिक त्यौहार, संस्कार आदि मनाने का कार्य किस प्रकार चलता था, यह एक आश्चर्य ही है। परन्तु इससे बड़ा भी आश्चर्य वह असीम धैर्य था जिसकी

परीक्षा सदैव उनके विपथगामी पति द्वारा होती रहती थी। अपने समस्त दुख को वह शान्तिपूर्वक सहन कर रही थीं। वह एक प्रकार से धैर्य की सजीव प्रतिमा बन चुकीं थीं। किसी प्रकार का झगड़ा उन्होंने नहीं किया और न कोई धमकी दी। इससे उनके दुख की मात्रा बढ़ना स्वाभाविक ही था। वह मन ही मन दुखी होतीं और कुढ़ती रहतीं। छोटे-छोटे बच्चे भी माता के पास ही रहते थे। दस वर्ष का बाल लाजपत उनको पतिदेव के न सुधरनेवाले रंग-ढंग पर प्रायः दुख के आँसू बहाती देखा करता। "कई कई दिनों तक वह भोजन को छूती तक न थीं और अपने बच्चों को गोद में लिए लम्बे-लम्बे श्वास लिया करती थीं। परन्तु पतिदेव को त्यागने का विचार उनके मन में कभी नहीं आया। सच तो यह है कि वह सदा ही अपने पति के साथ ही रहीं और कभी भी अधिक दिन तक उनसे पृथक नहीं हुई। ऐसा लगता है कि वह इस प्रकार अपने दुख सहन तथा सेवा भाव के द्वारा अपने पति को मुसलमान बनने से बचाना चाहती थीं।

अपने ढंग की भली और उच्च महिला होते हुए भी वह नितान्त अपढ़ थीं। कई बार उनके पति ने और पीछे उनके पुत्र ने भी उनको पढ़ाने की कोशिश की, परन्तु उनका दुर्बल स्वास्थ्य पति के विषय में असीम चिन्ता, न्यून आय तथा बड़े कुटुम्ब के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व और यह बात कि उनकी पीढ़ी की अधिकांश धनी घरों की स्त्रियां भी अपढ़ थीं—इत्यादि बातों ने उन्हें अपनी स्थिति में सन्तुष्ट कर रखा था।

राधाकृष्ण अपनी आयु के चालीसवें वर्ष तक उसी प्रकार के मुसलमान बने रहे। वह न केवल जोश से तथा सच्चे हृदय से इस्लाम की प्रशंसा करते ही थे, वरन् "नया मुसलमान अलाह ही अलाह पुकारता है" के अनुसार हिन्दू धर्म तथा रीति रिवाजों की बलपूर्वक निन्दा करते थे। यह उनके स्वभाव और प्रकृति के ही विरुद्ध था कि वह यह काम चुपके से वा एकान्त में करें। वह अखबारों में लेख लिखकर हिन्दू धर्म को गालियां दिया करते थे और यह लेख उस समय के ब्रह्म समाज के समाचार पत्रों में मजे से छप जाते थे। हिन्दू धर्म, हिन्दू दर्शन तथा हिन्दू संस्कृति के प्रति उनके विचारों में उस समय परिवर्तन आया जब उनका पुत्र उस नवीन हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का उत्साही अनुयायी बना जिसकी व्याख्या आर्यसमाज की ओर से की गयी। लाजपतराय ने सफलतापूर्वक अपने पिताजी को विश्वास करा दिया कि हिन्दू धर्म का वाह्य शरीर कितना ही मैला और घृणास्पद क्यों न हो, परन्तु उसके आन्तरिक सुरभित सौन्दर्य में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। राधाकृष्ण भी जानबूझ कर कभी अन्धे नहीं बने, परन्तु आपका संस्कृत भाषा का ज्ञान शून्य के बराबर था और आपका पथ प्रदर्शन आपके सच्चे हृदय और स्कूल

के वातावरण द्वारा होता रहा। जब उन्हें इस बात की समझ आ गयी कि इस प्रश्न का एक अन्य पहलू भी है जिसकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया था, तब उन्होंने शीघ्र ही अपने सुधार का प्रयत्न शुरू कर दिया। हिन्दू धर्म के विषय में जो कुछ साहित्य भी चाहे उर्दू में ही क्यों न हो, उन्हें प्राप्त हो सकता था, वह उन्होंने पढ़ डाला, परन्तु वह उस समाज में कभी सम्मिलित न हुए, जिसके लिए उनका पुत्र इतने उत्साह से कार्य करता था। स्वाध्याय ने उनका झुकाव आर्यसमाज की ओर नहीं, वरन् वेदान्त की ओर कर दिया। उनकी बौद्धिक दृढ़ता जीवन के अन्त तक कायम रही। वेदान्त के गूढ़ सिद्धान्त आपको बहुत ही पसन्द आए और बृद्धावस्था में आपको उपनिषदों की शिक्षा से शान्ति प्राप्त होती थी।

जीवन भर राधाकृष्ण धर्म के उत्साही जिज्ञासु बने रहे। आपको न तो संस्कृत का ज्ञान था और न किसी योरुपीय भाषा का। हिन्दू धर्म के मूल ग्रन्थों का अध्ययन उनके लिए असंभव था। इस्लाम के तो उन्होंने मूल ग्रन्थ ही पढ़े थे। जो कुछ धार्मिक साहित्य उनको उर्दू में प्राप्त हुआ वह उन्होंने बड़ी रुचि और परिश्रम से पढ़ा।

जब राधाकृष्ण ७० वर्ष के हुए तो उनके पुत्र ने लिखा "जीवन भर उनको विद्या प्राप्ति की असीम धुन थी। आजकल भी वह दिनरात पढ़ते रहते हैं और उर्दू, हिन्दी तथा गुरुमुखी में जो भी पुस्तक पैम्फलेट वा पत्र मिलता है उसे पढ़ डालते हैं। यदि उन्हें कोई नयी पुस्तक नहीं मिलती तो वह अपने प्रिय पुराने ग्रन्थों की ही पुनरावृत्ति करते रहते हैं। उनका स्वाध्याय क्षेत्र बड़ा विशाल है परन्तु विशेषत: उन्हें इतिहास तथा धर्मग्रन्थों का चाव है। उनके धार्मिक विषयों का अध्ययन बहुत विशाल और प्रगाढ़ है। उनको इस्लाम, हिन्दूमत, ईसाई धर्म, जैन मत तथा बौद्ध धर्म के विषय में गहरा ज्ञान है। कुरान तथा उपनिषदों का तो आपने बीसियों बार पाठ किया होगा। इंजील तथा जैन और बौद्ध साहित्य से भी आपका घनिष्ठ परिचय है। धार्मिक साहित्य के वह विशेषत: जिज्ञासु हैं।"

पत्रों में लेख लिखने के अतिरिक्त वह कभी कभी छोटी छोटी पुस्तिकाएं भी लिखते थे और एक सफल लेखक भी थे। अपने धर्म ग्रन्थों के अध्ययन के फल-स्वरूप आपने उर्दू में एक पुस्तक "तहक़ीक़े मज़ाहिब" अर्थात् धर्म का अन्वेषण लिखी जिसमें संसार के प्रमुख धर्मों के मूल सिद्धान्त का सापेक्ष तथा संक्षिप्त वर्णन किया गया है और जिसे लेखक ने भिन्न भिन्न धर्मों के अध्ययन के २२ वर्षों के अनुभव के आधार पर विज्ञापित किया था। उन्होंने "रिसाला तनासुख" के नाम से पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर एक पुस्तिका भी लिखी जिसमें अपने किसी समय के

गए, सर सैयद अहमद की शिक्षाओं का हिन्दू दार्शनिकों की शिक्षा से तुलना करते हुए हिन्दू दर्शन को उच्चतर बतलाया है। परन्तु वह स्वयं किसी एक विशेष मत के अनुयायी नहीं बने। उन्होंने स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त का खण्डन किया कि मुक्त आत्माएं भी अनन्तकाल के लिए नहीं, वरन् सीमित अवधि के लिए मोक्षानन्द का उपभोग करती हैं। इस सिद्धान्त को आपने प्राचीन भारतीय दार्शनिकों की शिक्षा तथा अपनी बुद्धि के निर्णय के विरुद्ध पाया। राधाकृष्ण ने अपने तीव्र तर्क तथा प्रबल युक्तियों के आधार पर ही अपना पक्ष सिद्ध किया है और समस्त वाद-विवाद में दार्शनिकों के उद्धरणों द्वारा अपना मत दिखलाया है। आपकी लेखन शैली सीधी सादी तथा अकृत्रिम है।

उन्होंने अपने इतिहास के अध्ययन के फलस्वरूप १५० पृष्ठों की एक उर्दू पुस्तिका "वीर चरित्र" लिखी, जो कि मुख्यतः टाड साहब के राजस्थान के इतिहास के चुने हुए भाग थे। पुस्तक की भूमिका में राधाकृष्ण ने इतिहास के अध्ययन का महत्व तथा उपयोगिता वर्णन किया है और साथ ही बतलाया है कि उन्हें इतिहास पढ़ने का कितना शौक सदा रहा है। कुछ काल तक पुस्तक का अच्छा प्रचार रहा और इसका दूसरा संस्करण भी उसकी लोकप्रियता के कारण प्रकाशित कराना पड़ा।

पढ़ने का यह शौक उनको जीवन के अन्त तक बना रहा। लाला फीरोजचंद जी का कहना है—"जब मैं लोक सेवक मण्डल में सम्मिलित हुआ, तो २ कोर्ट स्ट्रीट वाली मेरी कोठी में मेरा कमरा उनके कमरे के समीप ही था। लाला लाजपत राय ने वह कोठी लोक सेवक मण्डल को प्रदान कर दी और अपने निवासार्थ उसी आंगन में दक्षिण में एक छोटा दो मंजिला मकान बनवा लिया था। उनके पिता जी नये मकान में नहीं गए। उन्होंने दक्षिणी कोने के बरांडे के अन्त में एक छोटे से निचली छतवाले कमरे में जो १० फुट लम्बा और १० फुट चौड़ा था अपना निवास जारी रक्खा। इस कमरे में एक चारपाई और एक कुर्सी ही पड़ी रहती थी। इसके अतिरिक्त कुछ ऊँचाई पर बिना पालिश के भद्दे लकड़ी के तख्तों की एक लाइनिंग तीन दीवालों के साथ लगी हुई थी। यह पुस्तकें, कागज तथा अन्य सामान धरने के काम आती थीं।

कदाचित कोठी भर में केवल यही एक कमरा था जिसके किसी द्वार, खिड़की वा झरोखे में कोई शीशा नहीं लगा था। गर्मी में वह बरामदे में अथवा खुले में बाहर सोया करते थे। प्रातः उठते ही वह अपनी पसन्द की पुस्तकें अथवा बीती रात का समाचारपत्र पढ़ते दिखलाई पड़ते थे। उन दिनों लाहौर में प्रातःकाल के पत्र प्रकाशित नहीं होते थे। जलपान (नाश्ता) के पश्चात् वह अपने दूसरे पुत्र

रणपतराय की दूकान पर चले जाते थे। रणपतराय, गणपत रोड, अनारकली में कागज के व्यापारी थे। आप वहां अपना दिन पढ़ने में व्यतीत करते थे। दोपहर का खाना वह रणपतराय के यहां खाते थे जिसके पश्चात् वह मध्यान्हांतर का "वन्दे मातरम्" पत्र हाथ में लेकर २ कोर्ट स्ट्रीटवाले अपने छोटे से कमरे में पहुँच जाते थे। रात को सोने से पूर्व वह अवश्य कुछ न कुछ पढ़ा करते थे।

पुस्तकों में विशेषतः जिसके पढ़ने का उनको शौक था, वह ड्रेपर का प्रसिद्ध ग्रन्थ "धर्म तथा विज्ञान का संघर्ष" का उर्दू अनुवाद था। सोने से पूर्व वा प्रातः-काल प्रायः इसे ही पढ़ा करते थे। उनकी अन्य प्रिय पुस्तकें भी धर्म अथवा इतिहास से सम्बन्ध रखती थीं।

मैंने उनको कभी विशेषतः बातचीत करते नहीं देखा। वृद्धावस्था में भी उनमें गप्पस्टक करने की प्रवृत्ति नहीं थी। दूसरों को कभी भी उन्होंने किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया। और न अपने सुख तथा सुभीते की कभी विशेष चिन्ता की। कई कई दिनों तक मेरी उनसे कोई बातचीत नहीं हुई। उन्होंने शायद कभी मेरी ओर ध्यान देने अथवा मेरा नाम तक जानने की परवाह नहीं की। कभी-कभी जब उनको किसी पुस्तक वा पत्र की आवश्यकता होती थी, वह मुझसे मांग लेते थे। सुबह वा शाम को अपना बिस्तर ठीक कराने के अतिरिक्त उनको नौकरों की सेवा की भी कम ही आवश्यकता रहती थी। इस समय जब कि मैं जानता हूँ कि उन पर इस्लाम का कितना गहरा प्रभाव था, मैं हैरान हूँ कि वह हमारे "नीच जाति" के पूर्विया नौकर रखने का क्यों विरोध करते थे जब कि वह स्वयं घर के किसी नौकर से न्यूनतम काम लेते थे। धर्म के संस्कार कठिनता से ही छूटते हैं।

मुझे याद पड़ता है कि केवल एक बार ही उन्होंने मुझसे लगातार कई दिनों तक सवेरे थोड़ी सी बातचीत की। आंगन में एक सर्प निकला था। वह वहां पर पड़ी हुई रेत की ढेरी पर अपना चिह्न (लकीर) छोड़ गया था। उन्होंने केवल वह लकीर ही देखी थी। परन्तु कई दिनों तक चिन्तातुर भाव से मुझसे पूछताछ करते रहे कि क्या सर्प की हत्या कर दी गयी है अथवा नहीं। मैं उस समय बहुत छोटा था। मैं चकित था कि एक व्यक्ति ८० वर्ष के लगभग पहुंच कर भी एक सर्प के विषय में इतना चिन्तातुर हो सकता है! और उस समय मुझे प्रथम बार इस सत्य का पूर्ण ज्ञान हुआ कि मनुष्य की जितनी अधिक आयु होती है वह मृत्यु का आलिंगन करने को उतना ही कम इच्छुक होता है।

उन दिनों के मुंशी राधाकृष्ण की सजीव स्मृतियां मेरे मन में हैं। उस आयु में इतने गम्भीर तथा आत्मनिर्भर व्यक्ति बहुत ही कम मिल सकते हैं। उनकी

मुख्य आवश्यकताएँ उन दिनों भी दिमाग़ी (बौद्धिक) ढंग की थीं---अपने प्रिय ग्रन्थ तथा दैनिक पत्र। उन्होंने अपने जीवन की दरिद्रता तथा अपने पुत्रों के अभ्युदय---दोनों को दार्शनिक दृष्टि से ग्रहण किया। आपका जीवन नितान्त सादा तथा अकृत्रिम था। अपने मन में उनको एक ऐसे व्यक्ति के पिता होने का अभिमान अवश्य हुआ होगा जिसने इतनी ख्याति तथा यश प्राप्त किए। उनके मन में यह विचार तक कभी नहीं आया कि अपने देश के लिए इतना त्याग करने तथा कष्ट सहन करनेवाले पुरुष का पिता होने के कारण वह भी किसी विशेष मान अथवा प्रतिष्ठा प्राप्ति के अधिकारी हैं। यद्यपि उनके पुत्र उनसे प्रेम करते थे और उनकी प्रतिष्ठा करते थे, परन्तु उन्होंने अपने बेटों पर कभी पैतृक अधिकार नहीं चलाया। ज्यों ही पीछे की ओर देखता हूँ, मेरे मानसिक चित्रपट पर एक भव्य आकार के मध्यम कायाधारी व्यक्ति की तस्वीर आ जाती है जो अपनी सत्तर वर्ष से अधिक अवस्था में भी स्वास्थ्य का उपभोग करते रहे। उनकी दृष्टि गम्भीर थी जिसमें मन की स्थिरता तथा अनुपम सादगी टपकती थी। प्रातःकाल प्रतिदिन कोर्ट स्ट्रीट से गणपत रोड को ऐसी गति से चलती हुई (जो दूर से ही पहिचानी जा सके) वह दुर्बल सीधी मूर्ति भारत की देशी शान की प्रतिमा थी जो काल के क्रूर आक्रमण के सामने भी किसी प्रकार झुकने से इन्कार करती थी।

जिस समय उनका देहान्त हुआ, वह ८२ वर्ष के थे। लाजपतराय को उनकी मृत्यु का भारी दुख हुआ---विशेषतः इस कारण कि आप उस समय कारावास में थे और अन्तिम समय में एक कर्तव्यशील पुत्र की नाईं उनकी किसी प्रकार की सेवा करने से वंचित रहे। उन्होंने जेल से विशेष निर्देश भेजे कि उनके अन्त्येष्टि-संस्कार आदि के सभी खर्च लालाजी की पुस्तकों की रायल्टी से दिया जाय, क्योंकि लालाजी उसे अपनी आय का पवित्रतम भाग समझते थे।

अध्याय दो

बालकाल

अपने अध्यापक जीवन में मुंशी राधाकिशन ने ८ वर्ष के लगभग अम्बाला जिले के गवर्नमेण्ट मिडिल स्कूल रोपड़ में अध्यापकी की। यहीं १८६४ ई० के अन्त में उन्हें अपने प्रथम पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम उन्होंने लाजपतराय रखा। यह बालक, जैसा कि आजतक प्रायः यह रीति चली आती है कि गर्भवती माताएं अपने सर्वप्रथम बच्चे के जन्म के लिए अपने पिता के घर चली जाती हैं, ढुडेके जिला फिरोजपुर की मोगा तहसील में पैदा हुआ। ढुडेके जगरांव से केवल ५ मील की ही दूरी पर है जो जिला लुधियाना में है। पिता का घर जगरांव लुधियाने में और नाना का घर ढुडेके जिला फिरोजपुर में केवल ५ मील की दूरी पर हैं।

रोपड़ एक मलेरियाग्रस्त स्थान है अतः लाजपतराय की बाल्यावस्था के प्रारंभिक दिन अच्छे स्वास्थ्य के न थे। जब वह बड़े होकर स्कूल में प्रविष्ट हुए, तब उनको खिलौना की अपेक्षा पुस्तकों का अधिक शौक था। वह बार बार मलेरिया के आक्रमण से पीड़ित होते रहते थे और प्रारंभ से ही उनकी तिल्ली बढ़ी हुई थी।

लड़के को प्रारम्भिक शिक्षा अधिकांश राधाकृष्ण अपने घर में ही दिया करते थे जिससे उनकी स्कूल की पढ़ाई को सहायता मिलती थी। लड़का मेधावी तथा परिश्रमी था और अपने पिता की भाँति पुरस्कार-विजेता होने की क्षमता रखता था। पिता ने उसे न केवल लिखना-पढ़ना तथा गणित ही सिखलाया किन्तु इन सब से अधिक महत्वपूर्ण विषय-धर्म में भी उनकी रुचि उत्पन्न करना प्रारम्भ कर दिया। विद्यार्थी लाजपत ने कुरान के कुछ भाग अपने पिता से पढ़ डाले और वह पिता की तरह नमाज भी पढ़ा करते थे। और कभी कभी रमजान में उपवास (रोजा) भी रखा करते थे।

अपने घर में धार्मिक अनुष्ठान को देखकर धर्म के विषय में बालक लाजपत के मन में विचित्र भाव पैदा होते रहे होंगे। उनके पितामह एक पक्के जैनी, उनके पिता आचार-विचार में पक्के मुसलमान, माता अपने पिता के इस्लाम के विषय में सदैव चिन्तातुर और स्वयं नियमपूर्वक सिख धर्म की उपासना करनेवाली! जब कभी वह अपने ननिहाल जाते, तो वहां उन्हें घर में सिख धर्म का राज्य दिखायी पड़ता था। बच्चा होते हुए भी इस प्रकार की स्थिति पर विचार करने से उनका परेशान

होना स्वाभाविक था। कुछ भी हो, मुंशी राधाकृष्ण ने सफलतापूर्वक धार्मिक उत्सुकता तथा जिज्ञासा की छूत अपने बेटे लाजपत को लगा दी। धर्म की यह भूख चिरकाल तक कायम रही, यद्यपि बालक लाजपत ने शीघ्र ही इस्लामी रस्मों (नमाज, रोज़ा) को तिलांजलि दे दी।

राधाकृष्ण ने अपनी दूसरी छूत भी लड़के को लगा दी। यह छूत थी इतिहास के अध्ययन की, अर्थात् वीर रस के महाकाव्यों के अध्ययन की प्यास। उन्होंने छोटी आयु में ही फिरदौसी का अमर काव्य शाहनामा-जिसे फारसी साहित्य में वही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जो होमर के ईलियड अथवा व्यास के महाभारत को है, पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने फिरदौसी के काव्य के कई भाग अपने पिता जी के साथ कई बार पढ़े और जब वह बड़े हो गये तो उसे स्वयं पढ़ा करते थे। इस अध्ययन से उनकी ज्ञान पिपासा तृप्त होती थी और अधिक ज्ञानप्राप्ति की इच्छा तीव्र होती थी। "दिन प्रति लाभ लोभ अधिकाई" ज्ञान बढ़ता जाता था, अधिक ज्ञान के लिये लोभ भी उसी अनुपात से बढ़ता था। यह बचपन में शाहनामा पढ़ने का ही परिणाम है कि लाजपत में इतिहास के ग्रन्थों के पढ़ने की इतनी अधिक रुचि थी। और हम यह भी कह सकते हैं कि उनके वक्तृत्व शक्ति का आदि-स्रोत भी वही था। होमर तथा व्यास की तरह फिरदौसी केवल समरांगण में होनेवाली घटना क्रम के वर्णन से ही सन्तुष्ट नहीं है। इन अर्थों में प्राचीन काल के प्रमाणित इतिहासकारों से यह सर्वथा भिन्न है। उसके काव्य में अपने युग के जीवन तथा संस्कृति का पूर्ण चित्र खींचा गया है। इस प्रकार के ग्रन्थों से बालक लाजपत का बौद्धिक पोषण हुआ था। फलतः वह सदा ही इतिहास के ग्रन्थों में उसी प्रकार की व्यापकता तथा विशाल ज्ञान की खोज में रहते थे। इतिहास पुराणाभ्यां वेदं उपसंबृहयेत्। इतिहास पुराणों के पठन से मनुष्य व्यापक ज्ञान प्राप्त करता है। लाला लाजपतराय जी का जीवन इसका जीता जागता प्रमाण है।

कुरान और शाहनामा के पठन में इतना संलग्न रहते हुए, तथा समय-समय पर मलेरिया के प्रकोप से पीड़ित होते हुए भी, लाजपतराय अपने स्कूल की पाठ्यपुस्तकों की ओर से अन्यमनस्क न थे। प्रायः सदैव वह अपनी कक्षा में सर्वप्रथम रहा करते थे। स्कूल भर में लाजपतराय सबसे छोटी आयु के थे। वह वहाँ अपनी योग्यता के कारण एक आश्चर्य की वस्तु समझे जाते थे। यह आयु और यह योग्यता! जैसे अमेरिका का प्रथम जैम्स—ए—गारफील्ड अपने शिशुकाल में अपनी पाठशाला का आश्चर्य था, वैसे यहाँ लाला लाजपत अपनी पाठशाला के आश्चर्य और अचम्भा थे। रोपड़ स्कूल में केवल ६ कक्षायें थीं। यहाँ की संपूर्ण पढ़ाई उन्होंने समाप्त कर ली। शीघ्र ही वह विद्यालय बन्द भी हो गया और

मुंशी राधाकृष्ण शिमला बदल दिए गए, उनके लिए अपनी पत्नी और बच्चों को शिमला ले जाना सम्भव न था, क्योंकि उस स्थान के खर्च की दृष्टि से उनका न्यून वेतन सर्वथा अपर्याप्त था। आगे की पढ़ाई के लिए लाजपत को लाहौर भेज दिया गया। शिक्षाविभाग की ओर से उनको सात रुपए मासिक छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। अब लाजपत राय लाहौर से दिल्ली चले आए। दिल्ली में वह लगभग ३ मास रहे, परन्तु दिल्ली का जलवायु प्रायः बीमार से रहनेवाले बालक लाजपत के अनुकूल न पड़ा। उस समय तक पिता जी शिमला जा चुके थे, इसलिए पुत्र अपनी माता के साथ अपने घर जगरांव आ गया।

मिडिल की परीक्षा पास करने से पहले ही १३ वर्ष की आयु पूरी भी न हो पायी थी कि लाजपतराय का विवाह हो गया। यह पुराने ढंग का विवाह था। लड़की, राधादेवी जिसका विवाह लाजपतराय से हुआ, हिसार के एक अग्रवाल परिवार की थी। लड़की के पिता, उसके पति के परिवार की अपेक्षा अधिक सम्पन्न और धनी थे। लड़की राधादेवी की कहानी तथा उनके विवाहित जीवन का वर्णन हम आगे चलकर करेंगे। इस समय हम उनके पतिदेव के शिक्षण का वर्णन कर रहे हैं। दिल्ली को छोड़ने तथा अपने घर जगरांव में कुछ मास व्यतीत करने के पश्चात्, वह मिशन हाई स्कूल लुधियाना में प्रविष्ट हुए। यहाँ भी उनको होनहार विद्यार्थी होने के कारण एक छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। परन्तु यहां भी बीमारी ने उनका पीछा न छोड़ा। फलस्वरूप कुछ मास वहाँ रहने के पश्चात् विवश फिर स्कूल छोड़ देना पड़ा। इसी समय मुंशी राधाकृष्ण अम्बाला में स्थानान्तरित होकर आ गये और अब उनकी स्त्री बच्चे भी उनके पास वहीं पहुँच गये। रोपड़ में मुंशी राधाकृष्णजी के लाजपतराय के अतिरिक्त दो और बच्चे थे—मेलाराम, जिसका अल्पायु में ही देहान्त हो गया था तथा एक कन्या। अम्बाला में उनके तीन और पुत्र उत्पन्न हुए–सर्वश्री रणपतराय, धनपतराय तथा नन्दलाल जी। पीछे यही नन्दलाल जी दलपतराय के नाम से पुकारे गये जिससे कि सभी भाइयों के नाम एक ही नमूने के हों। दलपतराय जी अपने समय में लाहौर के सफल वकीलों में से थे।

अम्बाला में रुग्णप्राय लाजपत फिर अपने माता पिता के लिए चिन्ता तथा कष्ट के कारण बन गये। वहाँ आए पूरे दो साल भी नहीं बीते थे कि वह सख्त बीमार पड़ गए और चार मास तक बिस्तर पर पड़े रहे। उन्हें एक फोड़ा हो गया था जिसकी चीरफाड़ दो तीन बार करनी पड़ी। उन दिनों को याद करते हुए उन्होंने लिखा था—"अपने माता पिता के लिए यों तो मैं जीवन भर चिन्ता तथा कष्ट का कारण बना रहा हूँ, परन्तु उस वर्ष मेरे कारण उनको इतना कष्ट और

परेशानी हुई कि मैं उसे संभवतः भूल नहीं सकता।" फिर भी उसी वर्ष मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा उन्होंने पास कर ली। वास्तव में, उनको दुगुनी परीक्षा पास करनी पड़ी। उन दिनों, पंजाब विश्वविद्यालय अभी शैशवकाल में था। और डाक्टर लाइटनर अन्य विश्वविद्यालयों की अपेक्षा उसे सर्वथा भिन्न रूप देने के लिए कई प्रकार के प्रयोग कर रहे थे। अभी तक, पंजाब में भी इस यूनीवर्सिटी की प्रतिष्ठा तथा पद स्थापित नहीं हुए थे, और कलकत्ता विश्वविद्यालय, के प्रमाण-पत्रों तथा डिप्लोमा को उच्चतर समझा जाता था। लाजपतराय ने कलकत्ता तथा पंजाब दोनों की परीक्षाएं पास करते हुए समस्या को हल कर दिया। चिरकाल बीमार रहते हुए भी, उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। कलकत्ता वाली परीक्षा के लिए दूसरी भाषा उन्होंने फारसी ली, परन्त पंजाब में कलकत्ता वाले समस्त विषयों के अतिरिक्त उनको अरबी, उर्दू तथा भौतिक विज्ञान के विषय भी लेने पड़े। उनके पिताजी की प्रबल इच्छा थी कि वह अरबी अवश्य सीखें। प्रारंभिक बाल्यकाल में उन्होंने अरबी व्याकरण पर काफी समय लगाया था, परन्तु वास्तव में उसमें अधिक दिलचस्पी नहीं थी। उस वर्ष डाक्टर लाइटनर के विश्वविद्यालय से केवल १०६ विद्यार्थियों ने मैट्रिक पास किया—शिक्षा के कारखाने अभी मन्द गति से चल रहे थे। और लाजपतराय का स्थान कहीं मध्य में था-अर्थात् वह ५० वें वा ६० वें निकले।

अध्याय तीन

उच्चशिक्षा की विकट समस्या

लाजपत की उच्च शिक्षा एक गम्भीर समस्या बन गयी। नवयुवक निस्सन्देह ही होनहार तथा मेधावी था और उसे पढ़ने की लगन भी थी। शिक्षा में इतनी ऊँची दिलचस्पी लेनेवाले पिता को बड़ा ही मानसिक कष्ट होता यदि वह लड़के की पढ़ाई बन्द करा देते, परन्तु लड़के की कालिज में शिक्षा प्राप्ति के लिए वह धन कहाँ से लावें ? उन जैसे स्वाभिमानी तथा स्वतंत्र आचरण के व्यक्ति के लिए मित्रों से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता माँगना सम्भव न था। अन्त में उन्होंने निश्चय कर लिया कि घर में परिवार को चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सहन करना पड़े, लड़के को कालिज की शिक्षा अवश्य दी जायगी। इसके लिए जिस मित्र से सहायता मांगी गयी थी वह थे श्री सजावल बलोच। यह मोगा के रहने वाले एक मुसलमान सज्जन थे। मुंशी राधाकृष्ण के यह एक सहपाठी थे और इन के साथ राधाकृष्ण जी की घनिष्ट मैत्री थी। श्री सजावल ने लाजपतराय की लाहौर में हाईस्कूल की पढ़ाई में सहायता देने का वचन दिया था। परन्तु उन्हें वह वचन निभाने का अवसर नहीं मिला, क्योंकि जैसा हम देख चुके हैं हाईस्कूल की शिक्षा के लिए लाजपतराय जी लाहौर बहुत ही कम रह पाये। कालिज की शिक्षा में वह अपना काम छात्रवृत्तियों से ही चला लेते थे, हां, उन्हें प्रति मास आठ दस रुपए घर से मंगवाने पड़ते थे। यह आठ दस रुपए भी उनके पिता के वेतन का एक भारी भाग था।

फरवरी १८८१ ई० में १६ वर्ष और २ मास की आयु में लाजपतराय को लाहौर भेजा गया। वह कालिज में भरती हो गये। उस समय लाहौर में केवल एक ही (कालिज-यूनिवर्सिटी-गवर्नमेण्ट) कालिज था।

कालिज में नवयुवक को भीषण संघर्ष का सामना करना पड़ा होगा। उनके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। अत्यन्त न्यून आय के भीतर ही मितव्ययता तथा सादगी से अच्छी तरह गुजारा चल जाता था। जब कभी वह बीमार पड़ते, उन के माता-पिता उनकी सेवा शुश्रूषा प्राण लगाकर करते थे। लाहौर रहते हुए उन्हें प्रतिमास अपनी दरिद्रता की याद दिलायी जाती थी।"शुरू शुरू में दो-तीन मास मुझे बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा। मेरी आँखों ने मुझे कष्ट दिया।

इसके अतिरिक्त, मुझे कभी-कभी भोजन के बिना रहना पड़ता था। काफी संघर्ष के पश्चात् मैं यूनिवर्सिटी से ३ रु० मासिक की छात्रवृत्ति प्राप्त करने में सफल हुआ। मैं लाहौर आया तो था केवल आर्ट्‌स डिगरी की पढ़ाई के विचार से, परन्तु छात्रावास में कुछ विद्यार्थियों के मशवरे से में वकालत स्कूल में भी भरती हो गया। अपनी मासिक छात्रवृत्ति में से मैं २ रुपया तो गवर्नमण्ट कालिज की फीस, ३ रुपया वकालत स्कूल का शुल्क और १ रुपया छात्रावास शुल्क देता था। मेरे पिता जी कठिनता से केवल आठ दस रुपए मासिक का प्रबन्ध कर सकते थे और मुझे उसी धन की मात्रा की सीमा में रहकर गुजारा करना पड़ता था। वकालत की पुस्तकें काफी महंगी थीं, परन्तु मैंने उनमें से आवश्यक पुस्तकें कुछ सस्ते दामों में प्राप्त कर लीं क्योंकि वह पुरानी थीं। या मैं मित्रों से पुश्तकें मांग लेता था। आर्टस् की पुस्तकें खरीदने में भी मैंने वैसी ही मितव्ययता से काम लिया और मांग कर ही गुजारा चला लेता था। मेरे लिये मेरे माता-पिता असीम कष्ट सहन कर रहे थे और वह ऋण के नीचे दबने को भी तैयार थे, परन्तु मैं उनको यह कष्ट नहीं देना चाहता था, इसलिए बड़ी मितव्ययता से गुजारा करता था।" यह स्वयं लाला लाजपतराय के शब्द हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष ने उन्हें विश्वास दिला दिया कि उन्हें पहला कार्य वकालत की पढ़ाई समाप्त कर लेने का ही करना चाहिए ताकि उन्हें डिप्लोमा प्राप्त हो जाए और वह आजीविका कमा सकें। उसकी आयोजना में आर्ट्‌स शिक्षा को गौण स्थान मिल गया। वकालत की परीक्षा के लिए उन्होंने इतनी कठोर मेहनत की कि वर्ष के अन्त तक जहाँ वे मुखतारी के योग्य बन गए वहाँ पीलिया रोग के आक्रमण के शिकार भी हो गए। गवर्नमेण्ट कालिज के रजिस्टरों में उनका नाम दो वर्ष तक दर्ज रहा, परन्तु आपने वहाँ से कोई भी परीक्षा पास नहीं की। उनके प्रायः बीमार रहने, वकालत स्कूल की पढ़ाई, सार्वजनिक जीवन, कुछ जीवित कार्यों में लगन तथा उनकी यूनिवर्सिटी की पढ़ाई से सर्वथा भिन्न प्रकार की शिक्षा में दिलचस्पी—सबका यह परिणाम निकला कि उनका नाम १८८३ ई० में होनेवाली पंजाब यूनिवर्सिटी की इण्टरमीडिएट परीक्षा के सफल विद्यार्थियों की सूची में कहीं भी न था।

परन्तु अन्य पहलुओं में उनके गवर्नमेण्ट कालिज के दिन उनके जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यहाँ उनके सहपाठियों में वह व्यक्ति थे जो पीछे जाकर विख्यात हुए—यथा महात्मा हंसराज, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, राजा नरेन्द्रनाथ तथा प्रोफेसर रुचिराम साहनी। उन दिनों कालिज की श्रेणियाँ बहुत छोटी छोटी होती थीं। यद्यपि आजकल यूनिवर्सिटी की इण्टरमीडिएट (एफ० ए०) परीक्षा में सम्मिलित होनेवाले विद्यार्थियों की वार्षिक संख्या १५००० तक जा पहुँचती है,

परन्तु इसमें सन्देह है कि उससे कभी पूर्व वा पीछे कभी भी किसी लाहौर की कालिज श्रेणी में ऐसे योग्य छात्रों का समूह पाया गया हो जैसा कि १८८२-८३ में पाया गया। लाजपतराय, हंसराज, नरेन्द्रनाथ, गुरुदत्त तथा रुचिराम (जो १८८३ की एफ० ए० परीक्षा में इकट्ठे बैठे) जैसे पांच व्यक्ति जिनका आधुनिक पंजाब के निर्माण में लगभग ५० प्रतिशत भाग है, किसी भी वर्ष की किसी अन्य श्रेणी में नहीं पाए गए। उनमें से कुछ तो लाजपतराय के लिए केवल सहपाठी छात्र ही न थे वास्तव में गुरुदत्त, हंसराज, लाजपतराय, चेतनानन्द तथा राय शिवनाथ एक ऐसी मित्र मण्डली थी, जिनका कालिज छोड़ने के पश्चात् भी पारस्परिक जीवन पर विशेष तथा महत्वपूर्ण प्रभाव था। सादा ऋषियों जैसे जीवन सूत्र में ये सभी बँधे हुए थे। राय शिवनाथ जो पीछे यू० पी० में इंजीनियर बने उन सबमें से सादा जीवन व्यतीत करते थे। वह नंगे पाँव भ्रमण करते हुए, प्राचीन भारतीय ग्रन्थों तथा विचित्र वस्तुओं का संग्रह करते फिरते थे और बड़ी मेहनत से प्राचीन ग्रन्थों में से खोजकर गृह-निर्माण कला में पुराने आर्य यज्ञ शालाओं के नमूने उतारा करते थे।

अध्याय चार

लाला लाजपतराय का कालेज जीवन

शायद उन दिनों के गवर्नमेण्ट कालिज के बहुत से अध्यापकों को भी वह महत्व प्राप्त नहीं हुआ, जो गौरव इस योग्य विद्यार्थी मण्डली को प्राप्त हुआ। प्रोफेसरों में से विख्यात नाम डाक्टर लाइटनर तथा मुहम्मद हुसैन आजाद के थे। डाक्टर लाइटनर एक महान् शिक्षा शास्त्री थे। वह शिक्षा नीति के निर्माण की महत्वाकांक्षा रखते थे। पंजाब विश्वविद्यालय के अधीन, एक प्रकार प्राच्य शिक्षणालय बनाने की योजना उनकी दृष्टि में थी किन्तु उनको सफलता न मिल सकी। पंजाब में देशी शिक्षा प्रणाली पर जिस परिश्रम, तत्परता एवं विचारशीलता के साथ उन्होंने रिपोर्ट लिखी, उसके लिए उनका नाम अमर रहेगा। इस रिपोर्ट में इस बात पर प्रकाश डाला गया था कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व हम साक्षरता से न केवल अनभिज्ञ ही न थे, वरन् अंग्रेजी राज्य की एक शताब्दी बीतने पर भी विद्या का जो प्रचार यहाँ हुआ है उससे भी कहीं अधिक प्रचार यहाँ विद्या का था। वह एक योग्य अध्यापक थे और ला कालिज, ओरियंटल कालिज तथा आर्टस कालिज सभी में पाठन का कार्य करते थे। आपने भाषाओं—मुख्यतः प्राच्य भाषाओं का गहरा अध्ययन किया था। परन्तु विश्वविद्यालय के प्रबन्ध और व्यवस्था के विषय में वह सर्वथा असफल रहे। विश्वविद्यालय के सरकारी इतिहास से ज्ञात होता है कि डाक्टर लाइटनर को इसलिए निकाल दिया गया कि उनके दिनों में विश्वविद्यालय के फण्ड तथा हिसाब किताब में बड़ी अव्यवस्था थी। वह सफल व्यवस्थापक न थे।

मुहम्मद हुसैन आजाद गवर्नमेण्ट कालिज में इतिहास बना रहे थे। आपका स्थान उर्दू साहित्य के महारथियों में है। आपकी गणना उर्दू गद्य के चार सर्वश्रेष्ठ लेखकों में होती है। आप फारसी तथा अरबी के उच्च विद्वान् थे। आपने उर्दू साहित्य का एक विस्तृत तथा आनुक्रमिक इतिहास रचा। आपकी लेखनशैली ऐसी प्रबल तथा सजीव थी कि जहाँ पीछे के अन्वेषण के अनुसार, आपके इतिहास की घटना तथा बातें सर्वथा निराधार पायी गयीं वहाँ आपकी सम्मतियां सर्वसाधारण के मनों से हटाए नहीं हटतीं, क्योंकि आपकी बातें तथा कथाएँ सत्य न होती हुई भी पाठक की स्मृति में चिपक जाती हैं। इतिहासकार मेकाले की इस बात की सत्यता से इनकार कर सकते हैं जब वह कहता है कि एक अपराधी को जहाजों पर

चप्पू चलाने अथवा गुकाद्यानी के इतिहास ग्रन्थ का अध्ययन करने के दोनों दण्डों में से एक दण्ड चुन लेने को कहा गया तो उस अपराधी ने दोनों दण्डों की कठोरता पर विचार करने के पश्चात् जहाजों के श्रम को अपेक्षाकृत हलका कष्ट समझ कर उसे ही चुना था, परन्तु इस कथा का गुकाद्यानी के नाम के साथ अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। मुहम्मद हुसैन आजाद में भी वही भयानक गुण था। जब उसने उर्दू के किसी कवि को विशेष रंग में रंगने की अपने मन में ठान ली, तो उसके समर्थन में उसने कई कथाएँ बना डालीं। गुणशील तथा दया के पात्र कवि मीर के स्वभाव के विषय में जो मनोरंजक कथाएँ आपने फैलायीं, उसे पीछे के विद्वानों ने कपोलकल्पित ही पाया, परन्तु पीढ़ियों तक लोग मीर को वैसा ही समझते रहेंगे, जैसा कि आजाद ने उसे चित्रित किया है। वह काल्पनिक इतिहास बनाने में महा सिद्धहस्त थे।

उन दिनों मुहम्मद हुसेन आज़ाद गवर्नमेण्ट कालिज में अध्यापक थे। लाजपतराय ने उनसे थोड़े ही दिन अरबी पढ़ी, परन्तु वही थोड़े दिन उनकी स्मृति पटल पर चिरस्थायी रहेंगे। आजाद महाशय क्लास में भी खुलेतौर पर हँसी टट्ठा करते रहते थे और लाजपतराय को प्रथम दिन ही उसका कटु अनुभव हुआ, परन्तु उन्होंने हँसी के कारण प्रोफेसर आजाद की क्लास को नहीं छोड़ा। इसके कई अन्य कारण थे। भाषा सम्बन्धी विवाद का अभी आरम्भ हो रहा था। संयुक्त प्रान्त में एक आन्दोलन चल रहा था जिसके परिणामस्वरूप, कुछ वर्ष पीछे हिन्दी को अदालती भाषा स्वीकार किया गया। पंजाब में हिन्दुओं के लिए हिन्दी तथा संस्कृत के महत्व पर आर्यसमाज बहुत बल दे रहा था। कालिज में लाजपतराय के कुछ मित्रों ने उनसे हिन्दी तथा संस्कृत का पक्ष लेने और अरबी तथा फारसी के प्रभाव से सम्बन्ध विच्छेद करने को कहा। इन मित्रों ने लाजपतराय से अनुनय किया कि वह संस्कृत को अपनावें (जिसका वह एक शब्द भी नहीं जानते थे) और अरबी पढ़ना त्याग दें। प्रोफेसर आजाद के अपने व्यवहार ने लाजपतराय को इस परिणाम पर पहुँचने में सहायता दी कि उन्हें अपने घनिष्ट मित्रों के दबाव के सामने झुक जाना चाहिए। आजाद बड़े गर्वपूर्ण उल्लास से कहा करते थे कि शिया तथा फारसी भाषा के विद्वान् होने के नाते वह भारत को नहीं, किन्तु ईरान को अपना देश मानते हैं। इससे नवयुवक लाजपतराय के देशप्रेम के भाव को जिसका उनके हृदय में तीव्रगति से विकास हो रहा था, ठेस पहुँची और उन्हें भान होने लगा कि अरबी तथा फारसी के अध्ययन में अराष्ट्रीयता के भाव निहित हैं। शत्रु घात लगाए बैठा है और उन्हें सावधान रहना चाहिए। उन्होंने अपनी अरबी की क्लास को छोड़ने तथा संस्कृत सीखने का निश्चय कर लिया। यदि अरबी में उनका ज्ञान साधारण था, तो संस्कृत में भी

विशेष ज्ञान प्राप्ति उनके भाग्य में नहीं थी। जिन दिनों वह दृढ़ आर्यसमाजी थे, उन दिनों भी उन्हें संस्कृत ग्रन्थों का ज्ञान अनुवादों के द्वारा ही हुआ था।

किसी को यह न समझ लेना चाहिए कि मुहम्मद हुसैन आजाद हिन्दी के धर्मान्ध विरोधी थ। वास्तव में वह न तो हिन्दी-विरोधी थे और न भारत से ही घृणा कर थे। उनका भारत-प्रेम अपने ढंग का निराला था। यदि परिस्थिति भिन्न प्रकार की होती तो भिन्न परिस्थितियों में उन्हें हिन्दी-विरोधियों की टोली में न समझा जाता। यह सत्य है कि उन्होंने उर्दू की उन्नति के लिए कार्य किया, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह हिन्दी की अवनति चाहते थे। उनके उर्दू भाषा तथा साहित्य के लिए प्रयत्न के कारण इतिहास में उनको गौरवमय स्थान प्राप्त हुआ है। उन्हें प्रतीत हुआ कि उर्दू साहित्य न केवल कंगाल और संकुचित है वरन् निश्चय रूप से प्रगति-हीन भी हो रहा है। उर्दू गद्य की ओर तो किसी प्रतिभाशाली विद्वान् का ध्यान ही आकर्षित नहीं हुआ। हाँ, पद्य को आवश्यकता से कहीं अधिक प्रोत्साहन एवं पोषण मिल रहा है परन्तु वह समस्त श्रम व्यर्थ नष्ट हो रहा है। यदि उर्दू साहित्य इसी दिशा में बढ़ता रहा तो इस बात की कदापि आशा नहीं की जा सकती कि कभी भी उसका वह समुचित प्रयोग हो सकेगा जो आधुनिक हृदय उससे लेना चाहेगा। उर्दू साहित्य को आधुनिक रूप देने का गर्व पंजाब को है। मुहम्मद हुसैन ने उसका श्रीगणेश किया था। उर्दू साहित्य का महान् तथा आश्चर्यजनक चमत्कार यह है कि इसका आधुनिक रूप (जिसे अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क का परिणाम समझा जाता है) उन व्यक्तियों के प्रयत्नों का परिणाम है जिन्हें अंग्रेजी भाषा का बहुत ही न्यून अथवा शून्य के बराबर ज्ञान था। वह महानुभाव आजाद तथा हाली, और उनसे उतरकर सर सैयद अहमद तथा शिबली थे। इन चारों में से, इस नवीन आंदोलन में सर्वप्रथम स्थान मुहम्मद हुसैन आजाद का है। आन्दोलन का प्रारम्भ उन्हीं के हाथों से हुआ और उन्हीं के प्रभाव से इस प्रान्त में उसने जोर पकड़ा। उनके कहने से हाली भी लाहौर आ गए और उन दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से थोड़ी सी साहित्यिक क्रान्ति उत्पन्न हो गयी। प्रान्त पर इसका अभी खासा प्रभाव पड़ रहा था कि हिन्दी के पक्ष का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। हिन्दी-उर्दू समस्या समय के मुख्य विवाद का रूप धारण कर गयी। लाजपतराय हिन्दी के पक्षपातियों के दल में सम्मिलित हो गए। लाला लाजपतराय के जीवन का जो सांस्कृतिक रूप है उसकी आधार-शिला की यह पहली ईंटें थीं।

परन्तु मुहम्मद हुसैन का जो प्रभाव लालाजी पर पड़ा था उसका हटना इतना सरल न था। लालाजी ने उनकी क्लास तो छोड़ दी, क्योंकि उन्हें भय था कि उन पर ईरानी शिक्षा का कुप्रभाव पड़ेगा, परन्तु जैसा हम आगे चलकर देखेंगे कि

लाजपतराय के राष्ट्रीय अभिमान का पोषण उसी मुहम्मद हुसैन की रचनाओं से हुआ और उन्होंने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन पर उनके इस प्रभाव की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। लालाजी के पिता उनके प्रथम अध्यापक थे जिन्होंने फिरदौसी का शाहनामा पढ़ाकर बच्चे के मानसिक जीवन का निर्माण किया था। मुहम्मद हुसैन आज़ाद उनके दूसरे महान् गुरु थे क्योंकि उनकी ही छोटी सी, परन्तु सुन्दर ढंग से लिखित पुस्तक थी जिसके पाठ से लाजपतराय को भारत के गौरवमय प्राचीन युग का ज्ञान हुआ था। वह उर्दू की पुस्तक "कससे-हिन्द" अर्थात् भारत की गाथाएँ थीं।

गाथाओं तथा दन्तकथाओं के रूप में वर्णित भारतीय इतिहास के ये अध्याय देश के स्वर्णमय भूतकाल को ऐसी भाषा में पेश करते हैं जिससे उनके लेखक का गर्व भारत की इस पैतृक सम्पत्ति में प्रगट होता है और वही संक्रामक रोग उसके पाठकों को भी लगता जाता है। अकस्मात् लाला लाजपत पर यह भी प्रकट हो गया कि उनके पिताजी का यह कहना कि मुसलमानों के आगमन के पूर्व भारतवर्ष के पास गर्व करने की कोई वस्तु नहीं थी, सर्वथा ठीक न था। स्कूल तथा कालिज की पढ़ाई के वर्षों पश्चात् भी वह कभी कभी शाहनामा तथा कससे हिन्द दोनों पढ़ा करते थे। पीछे उनको टाड साहब की विख्यात पुस्तक "राजस्थान का प्राचीन गौरव" का परिचय हुआ। आर्यसमाज द्वारा संचालित अन्वेषणों से उन्हें भारतवर्ष के अतीत गौरव का ज्ञान हुआ, परन्तु उसका श्रीगणेश कससे-हिन्द द्वारा ही हुआ था!!!

मुहम्मद हुसैन आजाद के सुन्दर तथा परिमार्जित गद्य की प्रशंसा के भाव भी उनके मन में उन्हीं दिनों पैदा हुए और वह उनके जीवन के अन्त तक अक्षुण्ण बने रहे। जीवनभर आज़ाद, सर सैयद अहमद तथा शिबली उनके प्रिय लेखक रहे।

अध्याय पांच

शिक्षाकालीन सार्वजनिक जीवन

हिन्दी-आन्दोलन

शीघ्र ही लाजपतराय हिन्दी आन्दोलन के प्रचारक बन गए। वास्तव में यही उनके सार्वजनिक जीवन का आरम्भ था। गुरुदत्त, हंसराज तथा लाजपतराय तीनों के सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश उनके विद्यार्थी जीवन में हिन्दी के आन्दोलन द्वारा ही हुआ था। गुरुदत्त तथा लाजपतराय हिन्दी के पक्ष में एक मेमोरियल के लिए सहस्रों हस्ताक्षर जमा करने में संलग्न थे।

अभी वह पूरे अठारह वर्ष के भी नहीं हुए थे कि १८८२ ई० में अम्बाला में हिन्दी के पक्ष में उनका सर्वप्रथम सार्वजनिक भाषण हुआ। वह इसी प्रचार के लिए विशेषत: वहाँ गए थे। श्रोताओं में एक मैजिस्ट्रेट भी उपस्थित थे, जिन्होंने गवर्नमेण्ट कालिज के प्रिंसिपल को उसकी रिपोर्ट लिख भेजी। प्रिंसिपल ने नवयुवक प्रचारक को चेतावनी देते हुए कहा—"विद्यार्थियों से इस प्रकार के आन्दोलनों से दूर रहने की आशा की जाती है।"

गुरुदत्त तो कालिज प्रवेश के समय भी आर्यसमाजी बन चुके थे। लाजपतराय शीघ्र ही उनके मित्र बन गए, परन्तु आर्यसमाज की ओर उनका आकर्षण नहीं था। कुछ काल तक तो आर्यसमाज और ब्रह्म समाजों में से किसमें सम्मिलित हों, वह इस द्विविधा में पड़े। श्री अग्निहोत्री, जो पीछे अनीश्वरवादी देवसमाज के प्रवर्तक बने, उन दिनों इस प्रान्त में ब्रह्म समाज के स्तम्भ समझे जाते थे। लाजपतराय जी के पिता ने उन्हें अग्निहोत्री के नाम एक परिचय पत्र दिया।

अग्निहोत्री अभी गवर्नमेण्ट स्कूल में ड्राइंग के अध्यापक थे तथा एक उर्दू पत्र "ब्रादरे-हिन्दी" के सम्पादक भी थ। मुंशी राधाकृष्ण उसी पत्र में लेख लिखकर आर्यसमाज तथा सनातन (हिन्दू) धर्म पर आक्षेप किया करते थे। लाहौर में लाजपतराय पर अग्निहोत्री ही का विशेष प्रभाव था। शायद वह कभी-कभी अग्निहोत्री के साथ व्याख्यानों के लिए दौरे पर भी जाते थे। ब्रह्मसमाज की एक सभा में लालालाजपत राय ने राममोहनराय के जीवन पर एक निबन्ध भी पढ़ा।

ब्रह्मसमाज में प्रवेश

१८८२ ई० में लालाजी के पिता के मित्र ने विधिवत् उनका ब्रह्मसमाज में प्रवेश कराया। अग्निहोत्री एक अत्यन्त प्रभावशाली सार्वजनिक वक्ता थे और सम्भव है कि उन्हीं के सम्पर्क से लाजपत को इस बात की अनुभूति हुई हो कि प्रभावशाली भाषण भी एक बड़ी भारी शक्ति है।

उन दिनों पंजाब ब्रह्म समाज पर नवीनचन्द्र राय का अत्यन्त प्रभाव था। अधिकांश बंगालियों से सर्वथा ही भिन्न, नवीन बाबू हिन्दी आन्दोलन के बड़े पक्षपाती थे। वह समझते थे किसी दिन हिन्दी ही समस्त भारतीय राष्ट्रीयता की नींव होगी। अत: लाजपतराय के हिन्दी आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने का यह अर्थ न था कि उन्होंने आर्यसमाज को स्वीकार कर लिया है।

परन्तु वह अधिक काल तक ब्रह्मी न रह सके। जैसा हम इससे पूर्व देख चुके हैं, कालिज में उनके मुख्य मित्र गुरुदत्त तथा हंसराज थे उनके साथ प्राय: आर्यसमाज के विषय में बातचीत किया करते थे। गुरुदत्त की विशाल विद्वत्ता, अनन्य प्रतिभा तथा असीम योग्यता पर लाजपतराय मुग्ध हो चुके थे। फिर भी लाजपतराय का आर्यसमाज में प्रवेश उनके द्वारा नहीं हो पाया। वह हुआ एक ऐसे व्यक्ति द्वारा जो प्रतिभा का दावा तो नहीं करता था, परन्तु जिसमें आकर्षक व्यक्तित्व तथा मनुष्यों को समझने का विवेक अद्वितीय था। यह महान् आत्मा उस समय के लाहौर आर्यसमाज के प्रधान साईंदास थे। वह बहुधा लड़कों को आर्यसमाजी बनाने के लिए कालिज के छात्रावास में जाया करते थे और उन्हें प्रतिभाशाली नवयुवकों को आकर्षित करने का ढंग आता था।

आर्यसमाज-साईंदास

वह ब्रह्म समाज की उस सभा में उपस्थित थे जहां अग्निहोत्री के हाथों लाजपतराय का ब्रह्मसमाज में प्रवेश हुआ था। सभा से बाहर आते ही साईंदास ने लाजपत को पास बुलाया और करुणाजनक शब्दों में बोले कि तुम जैसे होनहार और प्रतिभाशील नवयुवक को फंसाकर उलटे मार्ग पर डाल दिया गया है।

पंजाब में ब्रह्मसमाज के आन्तरिक झगड़े बढ़ रहे थे। तीन दल परस्पर लड़ झगड़ रहे थे। रोपड़ और जगरांव से आया हुआ नवयुवक इन झगड़ों में बहुत परेशान हो गया।

वर्ष के अन्त में लाहौर आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा था। लाजपतराय अपने मित्रों—गुरुदत्त तथा हंसराज से इस समाज के बारे में बहुत कुछ सुन चुके थे। वार्षिकोत्सव के समय की जिज्ञासा (उत्सुकता) उन्हें

आर्यसमाज की ओर ले गयी। उन्होंने आर्यसमाजियों का सम्मेलन इससे पूर्व कभी न देखा था। उस दिन उत्सव के पण्डाल में जाकर, वह दूसरे दिन भी वहां गये। उस दिन के मुख्य वक्ता वह महाशय थे जो उन्हें भलीभांति जानते थे और जिनका उनके साथ बहुत स्नेह था। वह लाला लाजपतराय को समाज मन्दिर की ऊपरवाली छत पर एक ओर ले गए और उस भाषण की प्रतिलिपि दिखलायी जो उन्हें उस उत्सव में करना था। उन्होंने भाषण के विषय में लाजपतराय की सम्मति मांगी।

"और सचमुच मुझे वह भाषण बहुत पसन्द आया। जब मैं छत से नीचे उतरा तो लाला साईदास ने मुझे पकड़ लिया और एक ओर ले जाकर बोले, "हमने तुम्हारी बहुत प्रतीक्षा की है. अब तुम अवश्यमेव हममें सम्मिलित हो जाओ।" वह क्षण अविस्मरणीय थे। लाला साईदास मुझसे कुछ शब्द बोलते और उनकी आंखें मेरे चेहरे पर ध्यान से गड़ जातीं और अपने हाथों से स्नेहपूर्वक मेरी पीठ को थपथपाते जाते।

"मेरा उत्तर था कि मैं तो उन्हीं में से हूँ। ज्यों ही यह शब्द मेरे मुख से निकले, लाला साईदास ने मेम्बरी (सदस्यता) का कोरा फार्म मंगवाया और मेरे सम्मुख रख दिया।

"तीन चार मिनटों तक मैं झिझका। परन्तु उनका दृढ़ निश्चय था कि जब तक मैं हस्ताक्षर न करूंगा, वह मुझे नहीं छोड़ेंगे। अन्त में मैं सहमत हो गया। उस समय लाला साईदास के मुख पर अवर्णनीय हर्ष था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि भारतवर्ष का राजमुकुट उनके शिर पर धर दिया गया हो।"

"तत्काल ही उन्होंने गुरुदत्त को बुलवा भेजा और उन्हें जो कुछ हुआ था सुनाया और मुझे गुरुदत्त की देखरेख में सौंप दिया। गुरुदत्त को भी हर्ष हुआ।"

"जब उस दिन के कार्यक्रम के मुख्य वक्ता लाला मदन सिंह का भाषण समाप्त हो चुका तो लाला साईदास मुझे तथा गुरुदत्त को प्लेटफार्म पर ले गए और हमारा भी भाषण कराया गया। जनता ने करतल ध्वनि से हर्ष प्रकट किया। इस प्रशंसा से मैं तो फूला नहीं समाता था।"

लाला लाजपतराय जी के अपने ही शब्दों में उनका आर्य समाज में इस प्रकार प्रवेश हुआ और जनता की तालियों तथा प्रशंसा की मादकता का अनुभव भी उनको प्रथम बार हुआ। अब उन्हें अपने अनुभव से पता लग गया कि सार्वजनिक भाषण भी महत्वपूर्ण वस्तु है। गुरुदत्त तथा हंसराज की संगति में वह लोकसेवा के जीवन की योजनाएँ एवं कार्यक्रम बनाते रहते थे। कालिज की पढ़ाई की ओर उदासीन रहकर अपना सारा समय हिन्दी आन्दोलन आदि कार्यों में सक्रिय भाग लेने में लगा देते थे।

उनका समय कालिज की पाठ्यपुस्तकों से सर्वथा पृथक् दूसरे साहित्य के अध्ययन में व्यतीत होने लगा। धीरे धीरे सार्वजनिक भाषण तथा उनके द्वारा प्राप्त प्रशंसा उनके जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ बन गयीं और वह पंजाब के सार्वजनिक सक्रिय जीवन की ओर धीरे-धीरे झुकते गए।

अध्याय छः

आर्यसमाज के कार्यों में नेतृत्व

आर्यसमाज में प्रविष्ट होते ही तुरन्त उनकी गणना चोटी के नेताओं में होने लगी। लाहौर आर्यसमाज के प्रधान, लाला साईंदास ने कुछ दिन पश्चात् राजपूताना तथा संयुक्तप्रान्त में भेजे जानेवाले शिष्टमण्डलों में जाने के लिए उनको चुना। उस शिष्टमण्डल के महत्वपूर्ण सदस्य के तौर पर आप मेरठ, अजमेर, फर्रुखाबाद तथा अन्य स्थानों में गए। सार्वजनिक भाषण किए, धन-संग्रह किया। सभी जगह आर्यसमाजियों से मुलाकातें कीं, उनके साथ विचार-विनिमय किया और अनुभव किया कि किसप्रकार यह छोटी सी परन्तु उत्साहपूर्ण तथा प्रगतिशील संस्था का विकास हो रहा है। उनका मन इसी प्रकार के वातावरण की खोज में था। अन्त में वह अपने अभिप्रेत स्थान में पहुँच गए। सत्य के ग्रहण और असत्य के त्यागने की भावना उनके काम आयी—जिज्ञासा का परिणाम हुआ कि वह जो ठीक लगा उसमें उतर पड़े—उसका दोष दिखायी पड़ा, उसे छोड़ा, जो सत्य लगा उसकी ओर तीव्र गति से दौड़ पड़े। यही है सच्ची जिज्ञासा!!

इस समाज में, लाजपतराय के मन को जो वस्तु सबसे अधिक आकर्षित करती थी वह यह थी कि इस समाज के प्रत्येक सदस्य से यह आशा की जाती थी कि वह व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा समष्टि के कल्याण को श्रेष्ठ समझे। निस्सन्देह, उनको धार्मिक विषयों में दिलचस्पी तो अपने पिता से ही प्राप्त हो चुकी थी, किन्तु उन्हें आर्यसमाज के धर्म के सिद्धान्तों की श्रेष्ठता और उच्चता ने आकर्षित नहीं किया था। यह तो समाज के सदस्यों का देश के, विशेषतः हिन्दुओं के, कल्याण के लिए उत्साह तथा आर्यावर्त के अतीत गौरव के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्न ही थे और देशभक्ति के भाव जो आर्यसमाज के प्रत्येक कार्य में ओतप्रोत थे कि, जिनके कारण लाजपतराय के मन में आर्यसमाज ने विशेष स्थान प्राप्त कर लिया।

उनको बचपन से ही धार्मिक सिद्धान्तों से प्रेम तथा इतिहास के लिए उत्साह अपने पिता से प्राप्त हुआ था। राधाकृष्ण के लिए तो इनके अर्थ इस्लाम तथा शाहनामा थे। पुत्र के लिए उनके वही अर्थ आवश्यक न थे। वह अपने चारों ओर की परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए स्वतंत्र था। वह अपनी पसन्द के

धार्मिक आन्दोलन में सम्मिलित हुआ परन्तु इस धार्मिक आन्दोलन में भी उसका उद्देश्य मुख्यतः वही था जिसका आदिस्रोत उसका वही इतिहास-प्रेम ही कहा जा सकता है।

गुरुदत्त-हंसराज

उस पर अपने कालिज के घनिष्ठ मित्रों—गुरुदत्त तथा हंसराज की संगति का प्रभाव पड़ा था। यह दोनों किस प्रकार समाज की ओर आकर्षित हुए थे। गुरुदत्त तो अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण प्रकाण्ड विद्वान् माना जाता था। अति अल्पायु में ही उसने विज्ञान तथा दर्शन में असाधारण दिलचस्पी दिखलानी शुरू कर दी। आध्यात्मवाद में उसकी अपार जिज्ञासा थी। भाषाओं का ज्ञान भी उनको बहुत शीघ्र हो जाता था। स्कूल के विद्यार्थी के तौर पर एक परिपक्व आयु के प्रकाण्ड विद्वान की तरह संस्कृत ज्ञान की उनको रुचि थी। पाश्चात्य दर्शन के ज्ञान से उनका झुकाव नास्तिकवाद की ओर हो गया। १८८०-९० ई० में योरपीय विद्वानों में नास्तिकवाद का बहुत प्रचार था। परन्तु गुरुदत्त कई प्रकार के विपरीत भावों के विचित्र सम्मिश्रण थे। उनके नास्तिकवाद में भी श्रद्धा का पर्याप्त अंश था। उनके लिए जिस प्रकार आध्यात्मवादी रहस्यों का आकर्षण था, उसी प्रकार विश्वास को बौद्धिक चैलेंज देनेवाली नास्तिकता थी। योग में भी उनको आनन्द आने लगा। बैन्थम, मिल तथा हर्बर्ट स्पेंसर से भी कहीं अधिक स्वाद उनको संस्कृत व्याकरण तथा दर्शन की पेचीदा गुत्थियों में आता था। वह किताबी कीड़े थे और पुस्तकों के पठन तथा उनपर गम्भीरता से विचार करने में ही सन्तुष्ट रहते थे। वह अपने जीवन को भी उन पुस्तकों के विचारों के अनुकूल ढालने की इच्छा रखते थे। दैनन्दिनी (डायरी) रखा करते थे जिनमें उनके जीवन को विचारों के अनुरूप बनाने के स्थायी संघर्ष का वर्णन रहता था। परन्तु इसमें वह बहुधा असफल रहते थे। प्रत्येक असफलता पर वह अपने को दोषी मानते थे और पुनः प्रयत्न से ऊँचा उठना चाहते थे। जिन दिनों वह नास्तिकवाद तथा श्रद्धा के बीचोबीच कुछ त्रिशंकु बने हुए थे, उन्हें एक योगी के दर्शन हुए। इस योगी का उनके जीवन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा और गुरुदत्त उसके चेला बनकर उसके साथ ही चले जाना चाहते थे। परन्तु मित्रों ने न माना और घर तथा मित्रता के बन्धन योग के प्रेम की अपेक्षा अधिक बलशाली निकले। कहा जाता है कि उनकी नास्तिकता का अन्त उस समय हुआ, जब उन्होंने मृत्युशय्या पर पड़े स्वामी दयानन्द के दर्शन किए। अन्त समय में, आर्य समाज के प्रवर्तक को एक ऐसा चेला मिला जो उनके अनुयाइयों में योग्यतम था। गुरुदत्त एक विचित्र प्रकार के व्यक्ति थे।

उनकी विचित्रता उनकी वेशभूषा से भी प्रकट होती थी। वह शीतकाल में ग्रीष्म ऋतु के वस्त्र तथा गरमी में शीतकाल के कपड़े पहनते थे। वह आत्म दमन के विचार से यह सब किया करते थे। इस प्रकार के अभ्यास तथा तपस्या से वह अपने शरीर तथा मन को पूर्णतया अपने वश में करना चाहते थे। यदि वह अपनी विधि में थोड़ा सा परिवर्तन कर देते तो वह अपने समय के गांधी बन जाते। इस संशोधित गुरुदत्त में से गाँधी तो अवश्य ही निकल सकता था, उसके अवशेष में भी दो अन्य विद्वानों की रचना की पर्याप्त सामग्री थी। योग्यता की दृष्टि से पंजाब विश्वविद्यालय के स्नातकों में से यदि कोई गुरुदत्त से टक्कर ले सकता था तो वह थे लाला हरदयाल

गुरुदत्त-हरदयाल

वास्तव में यह दोनों बहुत सी बातों में एक दूसरे से मिलते जुलते थे। दोनों के विचारों में तथा व्यक्तिगत स्वभाव में असाधारण विलक्षणता थी। दोनों ही जीवन की गम्भीरता के बोझ के नीचे दबे हुए थे। दोनों की स्मरणशक्ति, जिज्ञासा, ज्ञान प्राप्ति की शक्ति, प्रबल मानसिक प्रतिभा, भाषाएं सीखने की योग्यता, वर्णन शैली तथा दूसरों को अपने विचारों के अनुकूल बनाने की क्षमता अद्वितीय थी। दोनों ही अपनी विचार प्रणाली को खींचकर बहुत दूर तक ले जाते थे जो कि पूर्व से पश्चिम, विशाल अन्तर्राष्ट्रीयता से संकुचित राष्ट्रीयता नास्तिकता से पूर्ण श्रद्धा तथा अध्यात्मवाद तक फैली हुई थी। दोनों में अपने चारों ओर मित्रों तथा प्रशंसकों की मण्डली को आकर्षित करने की योग्यता थी और वह उनकी प्रशंसा करते कभी न थकते थे।

दोनों में सन्यासियों के से प्रबल भाव मौजूद थे। अमरीका के प्रबल भौतिकवाद तथा पैरिस के भोगवाद में भी हरदयाल निश्चल तथा अटल रहे। यदि गुरुदत्त की तरह हरदयाल भी अपनी दैनन्दिनी रखते और उसे पढ़ा जा सकता तो कौन कह सकता है कि उसमें भी आत्मनिन्दा तथा इन्द्रियों के वशीभूत करने की बातें न मौजूद होतीं।

अपने विचार-परिवर्तन के मार्ग में, दोनों ने आत्मसंयमी यात्रियों की भावना तथा पवित्रता को कभी नहीं छोड़ा। उनके लिए समस्त जीवन एक पुण्य क्षेत्र से अन्य तीर्थ की यात्रा थी। तीर्थयात्रियों के मार्ग का आरम्भ कितना ही विभिन्न क्यों न हुआ हो, परन्तु उनके दीर्घ यात्रा काल में उनके परस्पर मिलन तथा दर्शन की कितनी ही सम्भावनाएं हैं। दुर्भाग्य से गुरुदत्त की जीवन-यात्रा शीघ्र समाप्त हो गयी। हरदयाल की यात्रा का श्रीगणेश तो भीषण अस्त्रों द्वारा शुद्ध राजनैतिक प्रयत्न की ओर हुआ था, परन्तु उसकी इतिश्री बौद्ध अध्यात्मवाद

की पेचीदगियों से हुई। कौन कह सकता है यदि गुरुदत्त की आयु भी उतनी ही दीर्घ होती तो उनकी इतिश्री भी (पूर्व के दार्शनिक तथा आध्यात्मिक संयम के कारण) राजनैतिक आन्दोलन की नींव रखने में न होती? इस प्रकार की दीर्घयात्रा में भय यह रहता है कि प्रशंसक दल अधिकांश घबराकर तथा अपने गुरु के साथ साथ चलने की क्षमता न रखने के कारण उसे छोड़ देता है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में हरदयाल एक दयनीय एकाकिनी मूर्ति रह गए थे। गुरुदत्त की मृत्यु बड़ी शान तथा प्रतिष्ठा से अपने शिष्य मण्डल के सन्मुख हुई।

गुरुदत्त पर बाल्यकाल वाले योगी तथा ऋषि दयानन्द का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। उसने बैन्थम तथा मिल को तिलांजलि दे दी और हिन्दू योगशास्त्र के एक अमरीकन प्रशंसक–ऐण्ड्रयू जकसन डैविस के लेखों की प्रशंसा करने लगे। गुरुदत्त उसे आधुनिक ऋषि समझते थे। हरदयाल भी अपने सोशलिस्ट मत के होते हुए भी कार्लमार्क्स को "आधुनिक ऋषि" से कम पदवी नहीं देते। योग-दर्शन तथा योगाभ्यास में दिलचस्पी रखनेवालों का उद्देश्य प्रायः व्यक्तिगत मुक्ति प्राप्ति होती है। परन्तु गुरुदत्त ने इस व्यक्तिगत पूर्णता के प्रयत्न में भी सामूहिक तथा सामाजिक कल्याण का विचार कभी नहीं छोड़ा। यद्यपि उनका दृष्टिकोण राजनैतिक न था, तो भी निश्चय देशप्रेम का अवश्य था। विद्यार्थी जीवन में अपने मित्र लाजपतराय की तरह उनको भी परीक्षा पास करने की बहुत कम चिन्ता थी। वह संस्कृत भाषा, वेद, पाश्चात्य दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान में समान रूप से रुचि रखते थे। आपने १८८६ में भौतिक विज्ञान में एम० एस० सी० पास किया और अपने प्रतिभाशाली विद्यार्थी-जीवन के कारण गवर्नमेण्ट कालिज लाहौर में ही भौतिक विज्ञान के सहायक अध्यापक नियुक्त हुए। जैसा कि उनकी दैनन्दिनी से प्रकट है कि वह सदा ही इस द्विविधा में रहे कि क्या वह उस नौकरी से चिपके रहें अथवा पूर्णता प्राप्ति के लिए योगाभ्यास का मार्ग ग्रहण करें।

सम्पूर्ण समय, वह (व्याख्यानों द्वारा, लेखों द्वारा, संगठन द्वारा एवं अपने अनेक मित्रों तथा प्रशंसकों तथा अपने व्यक्तिगत प्रभाव द्वारा) आर्यसमाज की सेवा करते रहे। उनकी योग्यता तथा अद्वितीय प्रतिभा से भी बढ़कर उनकी गम्भीरता सत्य प्रेम तथा उसके लिए अनन्य त्याग की भावना ने उनके मित्र लाजपतराय पर अत्यन्त गहरा प्रभाव डाला। अपने जीवन-निर्माण में लाजपत राय पग पग पर उनसे परामर्श लेते रहे। यह मित्र सीधे रूप से राजनीति में कभी भाग नहीं लेता था और जैसा हम देख चुके हैं उसने सरकारी नौकरी स्वीकार कर ली थी। किसी प्रकार का सीधा राजनैतिक आन्दोलन पंजाब

में नहीं था। यदि होता भी तो सम्भव है कि गुरुदत्त उधर कोई ध्यान न देते, क्योंकि वह तो पूर्णता प्राप्ति के प्रयत्न में व्यस्त थे। परन्तु वह निश्चय रूप से विशाल अर्थों में देश प्रेमी थे और लाजपतराय को अपने मित्र के आदर्शवाद के इसी पहलू ने अपनी ओर खींचा। उसकी उच्च योग्यता अथवा योगाभ्यास आदि ने नहीं। कुछ दूरी से शायद, लाजपतराय उनके इस गुण की भी प्रशंसा करते होंगे, परन्तु यह गुण उनके अपने जीवन निर्माण में किसी प्रकार सहायक नहीं होते थे। आर्यसमाज के प्रचारार्थ गुरुदत्त एक अंग्रेजी पत्रिका का सम्पादन किया करते थे जिसका नाम (रीजनरेटर आफ आर्यावर्त) "अर्थात् आर्यावर्त का पुनरोद्धारक" था। आर्यसमाज के देशप्रेम का अंश लाजपतराय के मन से कभी अलग नहीं हुआ। लाजपतराय के आर्यसमाज में प्रविष्ट होने में तथा उन दिनों के समाज के सब प्रकार के कार्यों में तन-मन से जुट जाने में गुरुदत्त के देशप्रेम का काफी हाथ था। अपना जीवन कार्य चुनने में उन्होंने गुरुदत्त से परामर्श लिया। एक ऐसा अवसर भी आया जब वह सोच रहे थे कि उन्हें वकालत छोड़कर आर्यसमाज के शिक्षा कार्य में पूर्णरूपेण दत्तचित्त होकर लग जाना चाहिए। उस समय तक केवल हाईस्कूल ही शुरू किया गया था, कालिज तो पीछे जाकर बना। योजना यह थी कि हंसराज तो स्कूल के मुख्याध्यापक बनें तथा लाजपतराय उसके अधीन सेकण्ड मास्टर। उनको आत्मविश्वास न था। हंसराज ने तो बी० ए० की डिग्री (प्रमाण पत्र) प्राप्त कर ली थी। (उन दिनों बी० ए० पास करना बड़ी भारी बात समझी जाती थी) परन्तु लाजपतराय के पास ऐसी कोई वस्तु नहीं थी। तीनों मित्रों ने इस पर विचार किया और अन्त में फैसला किया गया कि वकालत को जारी रखने से ही लाजपतराय कालिज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।

समस्त सांसारिक कार्यों को त्याग देने के अतिरिक्त गुरुदत्त के सन्मुख भी कई प्रकार के कार्य चुनने को थे। वह एक्स्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर बन सकते थे अर्थात् सिविल सर्विस में जा सकते थे। उधर का निमंत्रण उन्हें दिया भी गया था। वह अत्यन्त आकांक्षीय शासन विभाग में भी जा सकते थे और उन्नति करते करते वहाँ तक जा सकते थे जहाँ तक कोई भारतीय पहुँच सकता था। काफी विचार के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि गवर्नमेण्ट कालिज की नौकरी ही उन्हें सबसे अधिक अनुकूल बैठेगी, यद्यपि वह डी० ए० वी० कालिज सोसाइटी के बहुत विख्यात तथा प्रतिष्ठित सदस्य थे।

गुरुदत्त स्वेच्छापूर्वक निर्धनता का जीवन व्यतीत करते थे। आपकी व्यक्तिगत आवश्यकताएं बहुत ही न्यून तथा सीमित थीं। आपको आय का अधिकांश

तो सुपात्रों की सहायता में चला जाता था। यह उनके लिए एक व्यसन था। धन संग्रह को वह अपने लिए—दूसरों के लिए नहीं— पाप समझते थे। यह केवल विश्वास की ही बात न थी, वह उस पर गम्भीरतापूर्वक चलते भी थे। मृत्यु के समय अपनी पत्नी तथा बच्चों के लिए कुछ भी आपने नहीं बचाया।

गुरुदत्त के जीवनकाल में ही आर्यसमाज में दो पृथक्-पृथक् विचार प्रगट होने आरम्भ हो गए थे। एक विचार प्रणाली में उन लोगों की प्रधानता थी जिनका दृष्टिकोण आधुनिक ढंग का था। वह शास्त्रों की व्यवस्था तथा धर्म-ग्रंथों की आज्ञाओं और सिद्धान्तों की अपेक्षा जो कुछ वर्तमान काल में व्यवहरित तथा उचित है उसपर अधिक बल देते थे। दूसर दलवाले इन आधुनिक प्रवृत्तियों का घोर विरोध करते थे और धर्मग्रंथों की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करने के पक्ष में थे। साधारणतया यह माना जाता था कि प्रथम दल वालों का दृष्टिकोण अधिक राजनैतिक तथा देशप्रेम मे सम्बद्ध है तथा दूसरे पक्ष के विचारों में धार्मिकता तथा सिद्धान्तवाद की प्रधानता अधिक है। दोनों ही पक्ष गुरुदत्त का आदर करते थे। उनकी अन्तिम बीमारी के दिनों में वह फूट बहुत बढ़ चुकी थी। उनके देहान्त पर दोनों दलों वाले उनको अपनी-अपनी ओर समझते थे तथा अपने पक्ष में उनकी सम्मतियाँ उद्धृत करते थे। लाजपतराय ने अपने प्रिय मित्र की स्मृति में अंग्रेजी तथा उर्दू में उनका जीवनचरित्र प्रकाशित किया। लेखक के रूप में लाजपतराय की यह प्रथम रचना थी। यह उनके महत्वपूर्ण ग्रन्थों में से नहीं। अभी तक उनको लेखन कला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। करुणा के प्रबल भावों से विवश होकर ही उन्होंने लेखनी उठायी थी। यह बात याद रखनी चाहिए कि लाजपतराय ने अपने लेखन कार्य का श्रीगणेश एक जीवनी लिखकर ही किया था। जीवनपर्यन्त उनमें यही लगन रही। उन्होंने बहुत से महापुरुषों की जीवनियों पर लेखनी उठायी। उनमें से कई तो बहुत ही प्रसिद्ध हुईं। उनकी सभी पुस्तकों में से जिसने राष्ट्रीय जागृति में विशेषतः पंजाब में, सबसे अधिक सहायता की वह उर्दू में लिखित इटली के देशभक्त मेजिनी की जीवनी थी।

लाजपतराय के दूसरे घनिष्ट मित्र, हंसराज का स्वभाव गुरुदत्त से सर्वथा भिन्न था। गुरुदत वाली प्रतिभा का उनमें सर्वथा अभाव था, परन्तु उनमें कुछ अन्य गुण ऐसे थे जिनसे उनकी स्थिरता प्रकट होती है। वह भी कालेज में प्रवेश से भी पूर्व आर्यसमाज में सम्मिलित हो चुके थे। परन्तु उसका कारण उनकी संस्कृत की विद्वत्ता नहीं थी। जीवनपर्यन्त कभी भी उन्हें संस्कृत की योग्यता प्राप्त नहीं हुई। योगाभ्यास का भी उनको कोई शौक न था। वह तो सेवाभाव की

सात्विक लगन से प्रेरित होकर उधर आए। वह पूर्णता के अभिलाषी आदर्शवादी की तरह नहीं प्रत्युत एक व्यवहार कुशल व्यक्ति की तरह कार्य करना पसन्द करते थे। उनमें उत्साही नवयुवक मण्डली को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण तो न था, परन्तु प्रबन्ध कार्य की उनमें विलक्षण शक्ति थी। उन्होंने सरलता, निर्धनता तथा सेवाभाव के जीवन का व्रत लेने का निश्चय कर लिया। जब डी०ए० वी० कालेज खोलने की आयोजना बनी, उन्होंने उस समय अपना जीवन अर्पण कर दिया। जैसुइस्टों (ईसाई मिशनरी) की स्थिरता से उन्होंने अपने जीवन को इस संस्था का अंग बना लिया। उनके आलोचकों ने कटाक्ष किया है कि संस्था स्वयं ध्येय नहीं थी, प्रत्युत एक लक्ष्य के लिए साधन मात्र थी तथा हंसराज ने साधन को लक्ष्य ही समझ लिया था। परन्तु, खेद में लिखना पड़ता है कि यह त्रुटि तो उन सभी लोगों में पायी जाती है जो संस्थाओं को (पूज्य) देवता की पदवी दे देते हैं। उनका विशेष गुण संगठन-शक्ति थी। उनको सौंपी गयी संस्था का धीरे-धीरे लग्न से निर्माण ही उनका कार्य था जिसका परिणाम यह हुआ कि वह संस्था बड़े बड़े महान् तथा शक्तिशाली आन्दोलनों के आक्रमण का भी सफलता-पूर्वक मुकाबला कर पायी।

हंसराज को धर्म की पेचीदगियों (गूढ़ रहस्यों) वैदिक व्याकरण तथा अध्यात्मवाद में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह आर्यसमाज को हिन्दूसमाज के पुर्ननिर्माण करने वाला एक उन्नतिशील आन्दोलन समझते थे और उनके लिए यही काफी था। संक्षेप में उनका आर्यसमाज में सम्मिलित होना उसके दार्शनिक वा सैद्धान्तिक पहलू के कारण नहीं, वरन् उसके देशप्रेम के कार्यों से ही था।

लाजपतराय का स्थान अपने दोनों मित्रों-गुरुदत्त तथा हंसराज के मध्य में था-अर्थात् पूर्णतावादी आदर्शवाद तथा व्यवहारिकतावाद के बीचों बीच। परन्तु लाजपतराय के लिए आर्यसमाज का मुख्य आकर्षण वह था जिसने हंसराज को प्रभावित किया था, न कि गुरुदत्त वाली बातें। दोनों के लिए मुख्य वस्तु सामाजिक उत्थान तथा शिक्षा की उन्नति थी जिससे देशप्रेम की भावना समाज में पैदा की जा सके।

त्रिमूर्ति की यह मित्र-मंडली

इस त्रिमूर्ति की मित्रता के लिये तथा डी० ए० वी० कालेज के लिए यह बात अच्छी सिद्ध हुई कि उन तीनों मित्रों के कार्य-क्षेत्र पृथक् पृथक् थे। हंसराज की तरह, लाजपतराय ने भी डी० ए० वी० कालेज को अपना जीवन अर्पण करना चाहा, परन्तु उनके पास कोई यूनिवर्सिटी की डिगरी न थी अतः वह सदा

ही हंसराज के अधीन ही रहते। इसी प्रकार यह आयोजना भी बनायी गयी थी कि गुरुदत्त को डी० ए० वी० कालेज का प्रिंसिपल बनाया जावे। इस समय इस बात की कल्पना करना आवश्यक नहीं है कि दोनों दशाओं में परिणाम दुखजनक ही रहता। तीनों मित्रों की प्रकृति इतनी भिन्न थी कि वह इकट्ठे मिल कर कभी भी सफल सिद्ध न हो सकते थे। किसी किसी समय, उनमें मतभेद होना अनिवार्य था जिसका परिणाम उनकी मैत्री तथा उनकी प्यारी संस्था दोनों के लिए अनिष्ट सिद्ध होता।

अध्याय सात

आर्य समाज के कार्यों में संलग्न

लाला साईंदास

आर्यसमाज की बागडोर थामने वाले प्रौढ़ व्यक्तियों में से जिसके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है वह आर्यसमाज के प्रधान, साईंदास हैं। लाजपतराय को आर्यसमाज में प्रविष्ट कराने वाले वही थे। उनके विचार में आर्यसमाज का क्या उद्देश्य था ? क्या उन्हें भी धार्मिक तथा आध्यात्मिक रहस्यों, योगाभ्यास, व्यक्तिगत पूर्णता प्राप्ति के लिए तपश्चर्या अथवा आत्मा की मुक्ति में दिलचस्पी थी ? अथवा इन सब की अपेक्षा वह समाज द्वारा जनसेवा (जिसमें उनकी सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी उन्नति, कष्ट निवारण आदि सम्मिलित हों तथा उनमें देशप्रेम और आत्मविश्वास के भाव पैदा हों) के भावों को अधिक महत्वपूर्ण समझते थे। वह स्वयं एक सरकारी कार्यालय में क्लर्क थे। वह किसी भी राजनैतिक आन्दोलन से सीधा सम्बन्ध नहीं रख सकते थे। वह आत्मा के मोक्ष के लिए किसी योगी की खोज में कभी नहीं भटके। संस्कृत व्याकरण तथा धार्मिक सिद्धान्तों ने भी उनके मस्तिष्क को कभी परेशान नहीं किया। परन्तु वह आर्यसमाज भर में मनुष्यों तथा घटनाओं की गहरी परख करने वाला व्यक्ति था। उनसे बढ़कर प्राकृतिक सहज ज्ञान रखने वाला अन्य पुरुष दुर्लभ होगा। वह अधिक प्रतिभाशाली न थे। परन्तु विचित्र बात यह है कि इन्होंने भी पुस्तक रचना का कार्य सफलतापूर्वक किया। केवल एक ही पुस्तक जो आपने रची वह वेद भाष्य अथवा आर्य सिद्धान्तों के विषय में नहीं थी, वरन् (पाठकों को अचम्भा होगा) फ्रांसेस बेकन की निबन्धावलि का अनुवाद था। वह पुस्तक आर्यसमाज के नेता के अपने जीवन सिद्धान्तों का सुन्दर दिग्दर्शन है।

कुछ काल पश्चात्, जैसा हम देखेंगे, इस विषय पर बड़ा वादविवाद उठ खड़ा हुआ कि क्या आर्यसमाज राजनैतिक आन्दोलन है अथवा धार्मिक। सच्ची बात तो यह है कि आर्यसमाज का प्रवर्तक धार्मिक व्यक्ति था न कि राजनीतिज्ञ, परन्तु उनके सभी कार्यों तथा लेखों में देशप्रेम की भावना स्पष्ट झलकती है। उनके प्रशंसकों की भारी संख्या पर उनके देशप्रेम का उसी प्रकार

प्रभाव पड़ा था जिस प्रकार उनकी विद्वत्ता अथवा आध्यात्मिक निपुणता का। उनके लिए देशप्रेम ही एक प्रकार का धर्म था और जो देशभक्ति के बिना धर्म को कुछ भी नहीं समझते थे। उनमें से कुछ ने अपनी पैतृक प्रवृत्ति के कारण, आगामी वर्षों में, जब अवसर आया, तो राजनैतिक आन्दोलनों में महत्वपूर्ण तथा सक्रिय भाग लिया। परन्तु आर्यसमाज को गुप्त राजनैतिक संस्था समझना अथवा शासकों की आँख में धूल डालनेवाली धार्मिक वेषधारी अर्द्धगुप्त राजनैतिक संस्था मानना नितान्त अनर्गल है।

यह याद रखना चाहिए कि यद्यपि स्वामी दयानन्द को ही आर्यसमाज का प्रवर्तक माना जाता है (और यही ठीक भी है) परन्तु एक आन्दोलन तथा एक संस्था के रूप में आर्यसमाज, स्वामी दयानन्द तथा उनके कुछ शिष्यों और मित्रों (जो अपने विचार में समाज सुधार तथा देश के पुनरुत्थान को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते थे) के सम्मिलित आयोजना का परिणाम ही था।

रायबहादुर मूलराज

आर्यसमाज के मौलिक सिद्धान्त-दस उद्देश्य तथा समाज का विधान रायबहादुर मूलराज ने तैयार किये थे।

नवयुवक तथा जिज्ञासु लाजपतराय का रोम रोम आर्यसमाज के विचारों में रंगा जा रहा था। उनके दृष्टिकोण के निर्माण को पूरी तरह समझने के लिए यह जरूरी है कि १८८०-१८९० के आर्यसमाज की विचार-तरंगों को समझ लिया जावे, अतः हमें मूलराज के विषय में कुछ लिखना पड़ेगा। आर्यसमाज के अधिकांश अन्य नेताओं की अपेक्षा मूलराज के विचार स्पष्ट रूपग्रहण कर चुके थे और यद्यपि वह प्रायः सदा ही पर्दे के पीछे रहकर काम करते थे, फिर भी समाज के निर्माण में उनका अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है। वह आन्दोलन के मुख्य पात्रों को प्रभावित करने का ढंग जानते थे। वह राजनीतिज्ञ के रूप में कभी विख्यात नहीं हुए, परन्तु प्रत्येक आन्दोलन पर उनका गुप्त प्रभाव विशेष रहा है। वह देश की राजनैतिक स्वाधीनता के विषय में बहुत विचार किया करते थे। कई वर्ष पश्चात् लाजपतराय कहा करते थे कि गाँधी के असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम तथा सिद्धान्त मूलराज के मस्तिष्क की ही उपज थे, गाँधी जिन दिनों अभी पाठशाला के एक विद्यार्थी ही रहे होंगे, जब मूलराज ने उन सिद्धान्तों तथा कार्यक्रमों की झांकी प्राप्त कर ली थी। परन्तु उनकी क्रिया-शीलता कभी प्रगट नहीं हुई। वह स्वयं तो सरकारी नौकर थे, परन्तु अपने सम्पर्क में आनेवाले नवयुवकों को सदा यही उपदेश दिया करते थे कि वह सरकारी

नौकरी की अभिलाषा कभी न रक्खें। नवयुवकों के लिए वह "स्वदेशी" के भी सन्देशवाहक थे—अभी उन दिनों बंग-विच्छेद से सम्बद्ध स्वदेशी आन्दोलन का प्रचार देश में कहीं भी न था। उनके विचार में स्वदेशी की सफलता के लिए देश के औद्योगिक तथा साम्पत्तिक पुर्ननिर्माण के साथ ही साथ सरकार से राजनैतिक असहयोग भी आवश्यक है। लाजपतराय ने अपनी आत्मकथा में मूलराज के विषय में लिखा है "जिन दिनों मैं अभी हिसार में ही था, मुझे एक बार एक राय साहिब के साथ रहने का अवसर मिला जिन्हें प्रान्त के विख्यात व्यक्तियों में से समझा जाता था। उन्होंने विद्यार्थी जीवन में भी ख्याति प्राप्त कर ली थी। वह अपनी देश-भक्ति के लिए प्रसिद्ध थे, परन्तु सरकारी नौकरी में होने के कारण विवश थे। यह राय मूलराज थे जिनका वर्णन मैं कर रहा हूँ। इनके पास योरुप की गुप्त राजनैतिक सभाओं के इतिहास की दो जिल्दें थीं जिन्हें वह किसी पुस्तकालय से माँग लाए थे। उन्होंने सारी पुस्तक पढ़ी थी। मैंने भी वहाँ कुछ पृष्ठ पढ़े, परन्तु राय मूलराज ने मुझे वह पुस्तक घर ले जाने की आज्ञा न दी————"। कुछ समय पश्चात् लाजपतराय ने वह पुस्तक इंगलैण्ड से मँगवा कर पढ़ डाली।

स्वदेशीवाद का यह प्रथम अनुयायी, यद्यपि भारतवर्ष को विदेशी शासन से मुक्त देखना चाहता था, परन्तु उसका हिन्दू-मुस्लिम एकता में रत्ती भर भी विश्वास नहीं था। आत्मकथा के एक उद्धरण में (मूलराज का नाम लिए बिना ही) लाजपतराय की उस काल की मनोवृत्ति पर उसके प्रभाव को माना गया है।

"१८८९ के पश्चात् मेरी कांग्रेस की ओर से उदासीनता का कारण मेरे आर्यसमाजी मित्रों के विचार हैं। १८८९ के पश्चात एक प्रतिष्ठित मित्र की संगति में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो कांग्रेस के कट्टर विरोधी थे। उनके विरोध के संक्षिप्त कारण यह थे :—

"(१) कांग्रेस की नीव कुछ अंग्रेजों ने डाली है और क्योंकि अपने देश से प्रेम रखते हैं, अतः यह सम्भव नहीं कि कांग्रेस भारतवर्ष के लिए राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त कर सके। अंग्रेजों को भारत के शासन से महान् लाभ प्राप्त है अतः यह असम्भव है कि वह सहर्ष भारत को मुक्त कर दें। इस बात से भयभीत होकर कि भारत का शिक्षित वर्ग इंगलैण्ड के प्रभुत्व के विरुद्ध एक गहरा राजनैतिक आन्दोलन संगठित कर ले, उन्होंने शिक्षित वर्ग के लिए यह एक अनिष्टता रहित काम मुहैया कर दिया है जिससे वह व्याख्यानबाजी (गला फाड़ने से) द्वारा वर्ष में दो तीन दिन अपने आपको सन्तुष्ट कर सकें और समाचार पत्रों में उनकी प्रशंसा छप जाए। उन दिनों, यह सज्जन, प्रत्येक अंग्रेज को भारत का शत्रु समझते थे। कांग्रेस को वह केवल निरर्थक ही नहीं मानते थे, वरन् भातर

के कल्याण के सर्वथा विपरीत समझते थे। उन दिनों वह जिसे आवश्यक समझते थे वह यह था कि भारतवासी शिक्षा द्वारा, स्वदेशी के प्रचार द्वारा तथा अस्त्र-शस्त्र देशसे मंगवाकर (अनुचित रूप से छिपे छिपे लाकर) अपने को बलवान् बनाएं और उस समय की प्रतीक्षा करें जब वह बलवान् तथा समर्थ होकर अंग्रेजों को खदेड़ सकें।

"(२) इस महाशय को हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य में कोई विश्वास न था। उनका विश्वास था कि एकता के लिए प्रयत्न हिन्दुओं के लिए हानिकर सिद्ध होंगे। हिन्दुओं में आन्तरिक दृढ़ता, धार्मिक जोश तथा साम्प्रदायिक आत्मविश्वास का सर्वथा अभाव है और मुसलमानों में यह गुण अत्यधिक है, अतः एकता के प्रयत्नों से मुसलमानों को ही लाभ पहुँचेगा। इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान, टर्की आदि में मुस्लिम प्रभुत्व जारी है अतः एकता के प्रयत्नों द्वारा मुसलमान राजनैतिक रूप से अधिक बलवान तथा प्रभावशाली बन जायँगे। उनके विचार में मुख्य आवश्यकता हिन्दुओं को बलशाली, तथा संगठित करने की है जिससे कि राष्ट्रीयता के भाव उनमें संचित किए जा सकें। उनकी युक्ति थी कि कांग्रेस आन्दोलन का परिणाम यह होगा कि हिन्दू संगठन तथा हिन्दू सुधार के कार्य में लगनेवाली शक्ति एक निरर्थक कार्य में व्यय होने लगेगी।

"(३) एक अन्य युक्ति यह थी कि राजनैतिक आन्दोलन के कारण अंग्रेज हिन्दुओं पर सन्देह करने लग जाएंगे और वह न केवल हिन्दुओं की उन्नति में रोड़े अटकाएंगे, प्रत्युत, प्रत्येक उपाय से उन्हें हानि पहुँचायेंगे।"

आर्यसमाजी नेताओं के साधारणतया यही विचार थे। मूलराज, साईदास तथा लालचन्द (जो पीछे पंजाब में चीफ कोर्ट के जज बने) सब के यही विश्वास थे। तीनों ही सरकारी नौकर थे। साईदास केवल स्वदेशी कपड़े ही पहनते थ और १८८१ में भी स्वदेशी का प्रचार करते थे। मूलराज भी स्वदेशी में विश्वास रखते थे, परन्तु साईदास की तरह उसे दृढ़ता से व्यवहार में न लाते थे। उनके नवयुवक सहकारी हंसराज ने तो आरंभिक जीवन से ही स्वदेशी का व्रत ले लिया था। आर्यसमाज के अधिकांश प्रमुख व्यक्तियों ने बंगाल तथा महाराष्ट्र के स्वदेशी आन्दोलन के जन्म से बहुत दिन पहले स्वदेशी का प्रचार प्रारंभ कर दिया था। आर्यसमाज ने सभी में स्वदेशी का प्रेम पैदा नहीं किया था। सम्भवतः समाज में प्रवेश से पूर्व ही कुछ लोगों में स्वदेशी तथा देशप्रेम के भाव मौजूद थे। इसमें संदेह नहीं कि इन लोगों को समाज के उपदेशों, कार्यक्रम तथा समस्त वातावरण में तथा उनके स्वदेशी दृष्टिकोण में समानता तथा अनुरूपता दिखायी पड़ी। कइयों को कांग्रेस से भी ५० वर्ष पूर्व विदेशी शासन

के साथ असहयोग का विचार आ गया था। हम लाजपतराय की आत्मकथा में पढ़ते हैं :—

"लाला साईदास तथा लाला मूलराज प्रायः इस बात पर खेद प्रकट करते थे कि सर्वश्रेष्ठ शिक्षित भारतवासी विदेशी शासन को बलशाली बनाने का साधन बनते हैं। वह योग्यतम हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को सरकारी नौकरी में प्रवेश करने से रोका करते थे।——लाला साईदास को इस बात का बड़ा दुख था कि लार्ड रिपन की गाड़ी खींचकर काशी के पंडितों ने हिन्दू धर्म को कलंकित किया है। उनके विचार में हिन्दुओं का सर्वोच्च कर्तव्य यह है कि अपने धार्मिक, समाजसुधार तथा शिक्षा सम्बन्धी मामलों में उन्हें सरकार अथवा अंग्रजों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए तथा उनसे धन, परामर्श वा आदेश किसी रूप में भी उनकी सहायता ग्रहण नहीं करनी चाहिए। हिन्दू जो कुछ भी करना चाहें, उन्हें अपने प्रयत्नों से करना चाहिए। तथा अपने में आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न करनी चाहिए।"

इन महानुभावों की राष्ट्रीयता मुख्यतः हिन्दू राष्ट्रीयता थी। मुसलमानों के शासक होने तथा हिन्दुओं को शासित होने के काल की स्मृतियां अभी काफी ताजी थीं। इन आर्यसमाजी नेताओं के हृदय में देशानुराग की ज्वाला हिन्दू जाति की वर्तमान अधोगति की भावना से प्रज्वलित होती रहती थी। साईदास के विषय में हम आत्मकथा में पढ़ते हैं :—

"यद्यपि वह ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, परन्तु साईदास में भक्तों की सी भावना का अभाव था। अपनी मातृभूमि तथा अपने देशवासियों में उनकी भक्ति के भाव निस्सन्देह बहुत महान् थे। हिन्दू जनता के प्रति जिसकी अधोगति ने उनके हृदय को घायल कर रखा था और जिसके लिए वह दिनरात व्याकुल रहते थे, उनमें अगाध प्रेम था जब वह बोलते थे तो स्पष्ट प्रतीत होता था कि उनके अन्दर ज्वाला धधक रही है जो उनके शरीर तथा आत्मा को भस्म किए डालती है। जब वह हिन्दू जाति की वर्तमान अधोगति का उसके गौरवमय अतीत से मुकाबला करते थे तो उनके मुंह से सदा ठण्डी आह निकलती थी। हिन्दू जाति के लिये शुद्धानुराग, हिन्दू जनता के कल्याण की प्रबल भावना रखने वाले लाला साईदास जैसे व्यक्ति मैंने बहुत ही कम देखे हैं। लाला साईदास का यही विशेष गुण था कि उनके संपर्क में आनेवाला व्यक्ति उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। उनकी देशानुराग की यह भावना एक संक्रामक रोग जैसी थी, उनके समीप आनेवाले को वह संक्रामक रोग लग ही जाता था।"

ऐसे थे वह साईंदास, और १८८०-१८९० में आर्यसमाज के निर्माण में सबसे बड़ा भाग उन्हीं का था। यह कहा जा सकता था कि उनके धर्म का तीन-चौथाई अंश राजनीति है साथ ही यह भी कहना पड़ेगा कि उनकी राजनीति का तीन चौथाई हिन्दू जाति का प्रेम था और यदि उसे ही धर्म कहा जाए तो उसकी राजनीति का तीन चौथाई धर्म था।

ऐसे थे कुछ व्यक्ति, जिनके सम्पर्क तथा सामीप्य में लाजपतराय को आर्यसमाज में आना पड़ा। उनमें कैसी ही त्रुटियां क्यों न हों, वह आत्माएं प्रगतिशील तथा क्रियाशील थीं और घटनाओं तथा भविष्य के निर्माण में दृढ़ता से हाथ डालने वाली थीं। लाजपतराय की आत्मा भी इसी प्रकार की संगति के लिए तड़प रही थी और समाज को भी लाजपतराय जैसे नवयुवक, दृढ़-निश्चयी गम्भीर तथा क्रियाशील कार्यकर्त्ता की आवश्यकता थी। वह उनके साथ सम्मिलित हो गए। उनके साथ तथा उनके लिए लाजपतराय को वर्षों कार्य करना पड़ा और जब उन्हें समाज से पृथक भी होना पड़ा, तो समाज ने उनकी कार्यशैली तथा उनके दृष्टिकोण पर जो स्थायी प्रभाव छोड़ा था, उससे वह सर्वथा मुक्त न हो सके। आपने सार्वजनिक जीवन के जिस किसी भाग में काम किया, वह इस बात को कभी नहीं भूल सके कि उनका शिक्षण आर्यसमाज के वातावरण में हुआ है। यहाँ ही आपने सार्वजनिक भाषण तथा वक्तृत्वकला का अभ्यास किया उर्दू में तथा अंग्रेजी में लेखन, तथा सम्पादन का कार्य, आन्दोलनों के नेतृत्व का कार्य, महान् संस्थाओं के संचालन का कार्य, दुर्भिक्ष तथा भूकम्प पीड़ित लोगों की सहायता का कार्य, तथा अभागे अनाथों की रक्षा तथा पालन-पोषण के लिए स्थायी अनाथालयादि स्थापित करने का कार्य—सभी आर्यसमाज की कृपा के फल थे। अपने श्रोताओं के हृदयों को मंथित एवं गहराई तक प्रभावित करने तथा महान् कार्यों तथा संस्थाओं के लिए उनकी गांठ से हजारों लाखों रुपए निकलवा लेने की कला भी आपने आर्यसमाज में रहकर सीखी थी।

अध्याय आठ

आजीविका की समस्या

यह शिक्षण तथा ट्रेनिंग यद्यपि काफी बहुमूल्य थी, परन्तु इसमे आजीविका की समस्या हल होने में कोई सहायता नहीं मिल सकती थी। यह उनके पिता का भारी त्याग था कि उनकी उच्च शिक्षा के लिए समस्त परिवार को भारी कठिनाई में डाल दिया गया। १८८१ में उन्होंने मुखतारी पासकर ली। अन्यान्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वह आर्ट्स की पढ़ाई की कोई यूनिवर्सिटी परीक्षा पास न कर सके। इस काल में वह विवाहित भी हो गए थे। उन्हें अपनी रोटी भी कमानी चाहिए और अपने उस पिता का भार भी कुछ हल्का करना चाहिए जिसे न्यून आय में एक भारी कुटुम्ब का पालन-पोषण करना पड़ता था। पिता जी बड़ी अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा में थे। उनके पुत्र के व्याकुल मन में अपने करोड़ों देशवासियों के दुख का विचार आता था और फिर अपने परिवार की आर्थिक कठिनाइयों का चित्र भी आता था। वह अपने करोड़ों भाइयों की सेवा करने के इच्छुक थे, परन्तु अपने पिताजी के कृतघ्न बनकर वह उस काम को आरम्भ नहीं करना चाहते थे। उनके लिए यह द्विविधा के दिन बड़े ही दुखमय तथा कठोर थे, क्योंकि वह किसी एक मार्ग पर चलने का निश्चय नहीं कर पाते थे।

उनका मन पुस्तकों से उचाट हो गया। "मेरी आत्मा तो उच्च उड़ान लगाना चाहती थी, परन्तु दरिद्रता तथा मेरे माता पिता की हीन आर्थिक अवस्था ने मुझे हताश कर दिया। बार बार भारतीय दण्ड विधान अथवा कानून की कोई अन्य पुस्तक मेरे सम्मुख खुली पड़ी रहती, जब कि मेरा मन भावी जनता के सम्मुख भाषण की तैयारी में व्यग्र होता।" वह अपने देशवासियों की सेवार्थ अपना समस्त जीवन अर्पित करने का विचार करते और यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं की अपेक्षा इसी परीक्षा की तैयारी में लगे रहते, परन्तु परिस्थितियां उनके सर्वथा प्रतिकूल थीं और यही परिस्थितियां ही ऊँची उड़ान की महत्वाकांक्षी आत्माओं को भी धरती के साथ बँधे रहने को विवश करती हैं। लाला लाजपतराय के जीवन में भी परिस्थितियां प्रबल सिद्ध हुई और उन्हें मुखतार बनकर अपनी रोटी कमाना शुरू करना पड़ा।

अदालतों में मुखतार के तौर पर काम करने के लिए वह अपने जन्म-स्थान

जगरांव चले गए। उस कस्बे तथा उस पेशे—दोनों में उनका जी न लगा। वह कस्बा उनके (कार्यक्षेत्र) लिए बहुत छोटा था। वह उस संकीर्ण स्थान में जहाँ न तो देश तथा जाति के महान् प्रश्नों की ओर किसी का ध्यान जाता था और न उनकी आत्मा को पोषण प्राप्त होता था—उनका दम घुटने लगा। जगरांव की अपेक्षा, मुखतारी के काम से उन्हें घृणा होने लगी क्योंकि वह अपमानजनक कार्य था। उनकी आत्मा का पालन पोषण तो राजपूतों तथा क्षत्रियों की वीर-गाथाओं से हुआ था। क्या एक राजपूत क्षुद्र अहंकारी राजकर्मचारियों के सामने घुटने टेक सकता था? यदि उसके लिए इस कार्य में सफल होना आवश्यक था तो उन्हें राजपूतों की यह "मूर्खताएं" अपने मन से खदेड़कर दूर भगानी होंगी।

जगरांव से उनका जी भर चुका था। परिस्थिति में कुछ थोड़ा सुधार करने के लिए वह रोहतक चले गए जहाँ उनके पिता जी काम करते थे। जगरांव की अपेक्षा रोहतक बड़ी जगह थी और जिले के मुख्य स्थान होने के कारण वहाँ जगरांव की तरह सरकारी अफसरों की चापलूसी नहीं करनी पड़ती थी।

मुखतारी उन्हें अत्यन्त अपमानजनक प्रतीत होती थी, और यदि वकालत का काम करना जरूरी था तो उन्हें कानून की उच्चतर परीक्षा पास कर लेनी चाहिए—ऐसा उन्हें लगता था। १८८३ में उन्होंने यह परीक्षा पास करने का प्रयत्न किया, परन्तु अन्य कई कार्यों में व्यस्त रहने के कारण असफल रहे। उनके पिताजी ने दूसरी बार परीक्षा में सम्मिलित होने की प्रेरणा दी। वह मुखतारी भी करते थे, आर्य-समाज रोहतक का कार्य भी करते थे और वकालत की परीक्षा की तैयारी भी करते थे। परिणाम यह हुआ कि आपका नाम भी ५५ अन्य असफल उम्मीदवारों की सूची में था। उस वर्ष १० ही उम्मीदवार सफल हुए थे। यदि तीन अंक अधिक प्राप्त कर लेते, तो वह भी पास हो जाते। असफलता से हताश तथा दुखी हुए, परन्तु पिताजी ने एक बार फिर प्रयत्न करने का अनुरोध किया।

वह समाज के कार्य से उदासीन नहीं रह सकते थे। रोहतक आर्यसमाज के कार्य की शोचनीय अवस्था थी, उसमें नवीन स्फूर्ति देने के लिए उनको कठोर परिश्रम करना पड़ा। इसके अतिरिक्त कमेटी की सभाओं तथा हैडक्वार्टर में मंत्रणा तथा परामर्श के लिए, उनको बार बार लाहौर जाना पड़ता था। १८८३ में डी० ए० वी० कालेज का जन्म हुआ था, उसके प्रारंभिक कार्य तथा योजनाओं में वह सक्रिय दिलचस्पी लेते थे। रोहतक में भी आयोजित कालेज के लिए वह धन-संग्रह का कार्य करते थे। वकालत की अपेक्षा उनको उस काम में कहीं अधिक रुचि थी। वह गम्भीरतापूर्वक इस बात पर भी विचार कर रहे थे कि अपने मित्र हंसराज की तरह वह भी कालेज को अपना जीवन समर्पण कर दें, परन्तु यूनिवर्सिटी की उच्च डिगरी

के अभाव से वह ऐसा करने में अपने को असमर्थ पाते थे। इसके अतिरिक्त हंसराज के एक बड़े भाई भी थे जिन्होंने हंसराज के निर्वाह का भार अपने ऊपर ले रखा था। लाजपतराय का ऐसा कोई सहायक न था, उलटे उन्हें एक परिवार की आजीविका का प्रबन्ध करना था। मुखतार के तौर पर वह २००) रु० मासिक कमा रहे थे। यह बहुत बड़ी आय तो न थी, परन्तु निश्चित रूप से उनके पिता की आय से कई गुना अधिक थी। अतः उन्हें मुखतारी के अपमानजनक कार्य ही में सन्तुष्ट रहना पड़ा।

एक दफा आपने लाहौर जाकर निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो, वह मुखतारी को कभी हाथ न लगाएंगे। परन्तु उन्हें कुछ सूझता न था कि आगे क्या करेंगे। उनके घनिष्ट मित्र तथा पथप्रदर्शक, गुरुदत्त ने उनको अत्यन्त व्याकुल देखकर उसका कारण पूछा। लाजपतराय ने अपना दिल खोलकर उनके सामने रख दिया। गुरुदत्त ने उन्हें निश्चित परामर्श देने से पूर्व उनसे पूछा कि इस बार उनके वकालत की परीक्षा में पास होने की क्या सम्भावना है। दोनों ने, जैसा कि उन दिनों ऐसे अवसरों पर रिवाज था, परीक्षा फल प्रकाशित होने से पूर्व ही एक क्लर्क को कुछ भेंट देकर लाजपतराय के परिणाम का पता लगा लिया। उन्हें यह जानकर हर्ष हुआ कि वकालत की परीक्षा के फल पर उनका तीसरा निशाना अचूक लगा था। जब परीक्षा फल प्रकाशित हुआ तो मालूम हुआ कि लाजपतराय का नम्बर सफल व्यक्तियों में द्वितीय था। गुरुदत्त ने उन्हें स्पष्ट शब्दों में यह कहते हुए कि स्कूल में सैकिण्डमास्टर होने की अपेक्षा उनका वकील बनना आन्दोलन के लिए अधिक लाभदायक है, उन्हें वकालत करने के लिए रोहतक वापस भेज दिया।

रोहतक रहकर आप आर्यसमाज का कार्य भी करते थे तथा डी० ए० वी० कालेज की सभाओं के कार्य के लिए प्रायः लाहौर भी आते रहते थे। कभी-कभी पत्रों में लेख भी लिखा करते थे। वह लेख अंग्रेजी में भी लिखते थे, परन्तु अधिकतर अपने नवयुवक मित्र, मौलवी मुहर्रम अली चिश्ती के संचालित पत्र "रफीके-हिन्द" के लिए उर्दू में लिखा करते थे।

उनमें देशानुराग की भावनाएँ थीं और अपने देशवासियों की सेवा की उनमें प्रबल इच्छा थी, परन्तु एक अनुभवहीन नवयुवक देश की राजनैतिक समस्याओं के गहन अध्ययन के रूप में भला क्या पेश कर सकता था? वह सरकार के विरोध के लिए विरोध करनेवाले उग्र विचारोंवाले न थे। उस युग के फैशन (परम्परा) के अनुसार वह भी आर्यसमाज में दिए गए अपने भाषणों में सरकार की प्रशंसा किया करते थे। बाल्यकाल में उनके पिताजी ने जो इस्लाम प्रेम की भावना उनमें उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था, उससे वह पूर्णतया मुक्ति प्राप्त कर चुके थे। और अब

इस सीमा तक उससे दूर जा चुके थे कि वह अंग्रेजों के कुछ न कुछ इस बात के लिए कृतज्ञ मालूम होते थे कि उन्होंने इस देश से अत्याचारी मुस्लिम शासन का अन्त किया है। उनके राजनैतिक विचार अभी निर्माणकाल में थे। उन्होंने प्रकाशनार्थ लेख लिखना भी शुरू कर दिया था। उनके मित्र तथा वह अनुभव करने लगे थे कि उनका अपना पत्र होना चाहिए। उन्होंने आर्यसमाज के लिए एक उर्दू पत्र "भारत देश-सुधारक" नाम का तथा एक अंग्रेजी पत्र "रीजेनेरेटर आफ आर्यावर्त" (आर्यावर्त का पुनरुद्धारक) (जिसे गुरुदत्त और हंसराज को सौंपा गया था) चलाने का फैसला किया। उर्दू पत्र लाजपतराय की देखरेख में चलाया जाता था। परन्तु वह लाहौर से बहुत दूर रहते थे, अतः उनके लिए यह कार्य चलाना सम्भव न था। लाजपतराय को रफीके हिन्द अथवा अन्य किसी पत्र में (जो प्रकाशित करने को तैयार हो) अपने लेख प्रकाशित कराकर ही संतुष्ट रहना पड़ा।

वकालत के काम में उन्नति से उनके असन्तुष्ट रहने का कोई कारण न था, परन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि रोहतक में पांव नहीं जमा पाए। रोहतक के दिन अधिक महत्वपूर्ण न थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि मेरी आत्मा १८८३-८५ के दिनों में अतृप्त रही। वह १८८४ में रोहतक पहुँचे थे। १८८५ में उन्होंने वकालत की परीक्षा पास की। १८८६ में पड़ोस के जिला हिसार में एक अभियोग के सिल-सिले में गए, और उस स्थान को रुचि के अनुकूल पाकर वहीं पांव जमाने का निश्चय कर लिया। वास्तव में प्रथम बार यहाँ आकर ही जड़ जम गयी। वह वहाँ लगभग छः वर्ष रहे। इन वर्षों ने, उनको मानसिक परिपक्वता प्रदान करने, विचार निर्माण-आर्य समाज के कार्य तथा राजनीति में प्रवेश में बहुत सहायता दी।

रोहतक में उनके आगमन से पूर्व ही आर्यसमाज पहुँच चुका था, परन्तु उसमें विशेष वृद्धि नहीं हो पायी थी। हिसार में उनको अपने मित्रों की सहायता से धरती स्वयं तैयार करनी पड़ी तथा बीज बोना पड़ा। वहाँ की धरती अनुकूल थी, अतः उसका विकास भी खूब हुआ। वास्तव में शीघ्र ही, हिसार की गणना प्रान्त के सर्वोत्तम आर्य-समाज के केन्द्रों में होने लगी थी।

अपनी आत्मकथा में लाजपतराय ने इस सफलता का रहस्य हिसार आर्यसमाज के नेता मण्डल के विशेष गुणों को ही बतलाया है और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उन नेताओं के चरित्र का चित्रण किया है। उनमें से कुछ के साथ तो उनके जीवन की स्थायी मैत्री के सम्बन्ध स्थापित हो गए। उदाहरण के तौर पर उनके एक मित्र लाला चन्दूलाल थे जिन्हें उन दिनों हरियाना का सरदार समझा जाता था। उनका किसी भी उग्रगामी राजनैतिक आन्दोलन के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न था, परन्तु उनसे बढ़कर मित्र वत्सल व्यक्ति शायद ही कोई हो। जब लाजपतराय को

अवांछित उग्रगामी समझकर निर्वासित किया गया चन्दूलाल उन गिनती के थोड़े से मित्रों में से थे जो लाजपतराय के पक्ष में इस प्रकार दृढ़ रहे जैसे कुछ हुआ ही न हो। उनके राजनैतिक विचारों तथा आदर्शों की समता रखनेवाले उनके घनिष्ट मित्रों ने उन्हें त्याग दिया था, परन्तु चन्दूलाल ने खुले तौर पर उनका साथ दिया। उनको सरकारी अफसरों से मिलने के कई अवसर आते थे, परन्तु उन्होंने लाजपतराय से सम्बन्ध विच्छेद करके (अथवा उनके साथ अपनी मैत्री के सम्बन्ध को छिपाते हुए) उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न कभी नहीं किया। वह स्पष्ट शब्दों में कहा करते थे कि वह लाजपतराय के सुहृद् हैं। और उनका दृढ़ विश्वास है कि लाजपतराय सर्वथा निर्दोषी हैं। जब लाजपतराय माण्डले में थे तो वह उनको पत्र लिखा करते थे और लाजपतराय अपने व्यक्तिगत तथा परिवार के मामलों के विषय में उनको निर्देश भेजा करते थे। लाजपतराय ने अपनी आत्मकथा में हिसार के जिन-जिन मित्रों का चरित्र-चित्रण किया है, निश्चय रूप से अपने इस प्रेमपात्र का वर्णन बहुत ही करुणापूर्ण शब्दों में किया है। कुछ अधिक विख्यात व्यक्तियों के विषय में कुछ बड़े विशेषणों का प्रयोग उन्होंने भले ही क्यों न किया हो, परन्तु उनके हृदय के कोमलतम भावों का दिग्दर्शन उन पंक्तियों में होता है जहाँ वह चन्दूलाल को चित्रित करते हैं।

परन्तु अधिकांश अन्य स्थानों की अपेक्षा हिसार के नेतागण क्यों अधिक सफल रहे? संक्षेप में इसका उत्तर यह है कि यहाँ उन्होंने आर्यसमाज को जन-साधारण का आन्दोलन बनाया, न कि बकवादी शिक्षित वर्ग का। यहां आर्य समाज की जड़ें धरती में काफी गहराई तक चली गयीं। अन्यत्र तो आर्य समाज बाबू वर्ग का था, परन्तु यहाँ वह कृषक वर्ग की संस्था थी। हिसार में, चन्दूलाल, लाजपतराय तथा लखपतराय ने समाज को जीवित संस्था बना लिया। आर्यसमाज के इतिहास में उनके इस प्रयोग को अद्वितीय समझा जाना चाहिए।

अध्याय नौ

कांग्रेस : सर सैयद अहमद

लाजपतराय जिन दिनों हिसार में रहते थे, वह भारत की राष्ट्रीय सभा अर्थात् इण्डियन नेशनल कांग्रेस का शैशव काल था। कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन दिसम्बर १८८५ में बम्बई में उमेशचन्द्र सी० बानरजी के सभापतित्व में हुआ। लाजपत राय ने इस नवीन आन्दोलन को उत्सुकता से देखना आरम्भ कर दिया। उनके मित्र-आर्यसमाजी नेता, मूलराज जो बड़े कुशाग्रबुद्धि तथा दूरदर्शी व्यक्ति थे—इस आन्दोलन को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। क्या एक अंग्रेज मिस्टर ह्यूम उसके संचालक न थे? फिर उससे भारत का क्या कल्याण हो सकता था? लाज-पतराय का वह अविश्वास चिरकाल तक न रहा। १८८८ ई० में अली मुहम्मद भीमजी को कांग्रेस की ओर से पंजाब के दौरे पर भेजा गया। हिसार के नवयुवक वकील ने अपने नगर में उसको निमंत्रित किया, तथा उसके लिए एक सार्वजनिक सभा का प्रबन्ध कर दिया। यह कांग्रेस के साथ उनका प्रथम सम्पर्क था—जिन दिनों कांग्रेस की आयु केवल ३ वर्ष थी। तब कौन जानता था कि यही युवक वकील एक दिन कलकत्ते के उस विशेष अधिवेशन में कांग्रेस की अध्यक्षता करेगा जिसके निर्णयों के अधीन चलाये गये आन्दोलनों के फलस्वरूप महात्मा गान्धी के नेतृत्व में भारत स्वतंत्र होगा?

जब ह्यूम ने कांग्रेस चलायी, तो सर सैयद अहमद खां ने मुस्लिम सम्प्रदाय की ओर से उसका विरोध शुरू कर दिया। अलीगढ़ के नेता ने अपने सहधर्मियों को इस नवीन आन्दोलन से पृथक रहने का परामर्श दिया, क्योंकि इससे मुस्लिम स्वार्थों को हानि पहुँचेगी। उनका मत यह था कि मुसलमानों को अपने हित के लिए देश के शासकों का साथ देना चाहिए।

लाजपतराय अपने पिताजी की सैयदवाली शिक्षाओं से कहीं आगे बढ़ चुके थे। जब उन्होंने सर सैयद को इस नए देश के विरोधी के रूप में देखा, तो उनके हृदय में सैयद के प्रति श्रद्धा और भी घट गयी। उन्होंने पत्रों में सर सैयद के नाम कतिपय खुले पत्र लिखे जिनमें उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार सर सैयद महोदय ने अपने पिछले दिनों के उपदेशों से सर्वथा उलटी दिशा में जा रहे हैं। इन पत्रों का अधिकांश सर सैयद के पूर्व प्रकाशित उर्दू लेखों का अंग्रेजी अनुवाद था और उनमें

यह दिखलाया गया था कि कल के सर सैयद आज के सर सैयद से सर्वथा भिन्न हैं। एक "प्रशंसक" की इन खुली चिट्ठियों पर हिसार की मुहर लगी रहती थी। उन दिनों हिसार में इस प्रकार के रचनात्मक वा आलोचनात्मक प्रयत्न की योग्यता रखनेवाले व्यक्तियों की संख्या अत्यल्प थी। इस कारण जो लोग लाजपतराय को जानते थे, उन्हें यह कल्पना करने में कोई कठिनाई न हुई कि उन खुली चिट्ठियों का वास्तविक लेखक कौन है? उनके पास अपने नाम को गुप्त रखने का कोई विशेष कारण न था, परन्तु अभी वह "नेता" नहीं बने थे और लज्जाशीलता ने उनको अपना नाम छिपाने को विवश किया।

इन खुले पत्रों ने काफी सनसनी पैदा कर दी। ह्यूम साहिब कुछ घबरा से रहे थे, इन पत्रों से उनको खासी सहायता मिल गयी। लेखक से प्रार्थना की गयी कि इन पत्रों को एकत्र करके एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करा दें। उन्होंने तत्काल ही वैसा कर दिया। ह्यूम ने उनकी पुनरावृत्ति करके यत्रतत्र उनकी भाषा में कुछ सुधार कर दिया।

महान् मुस्लिम नेता को उसके अपने ही मुख से झुठलानेवाली यह पुस्तिका कांग्रेस के आगामी अधिवेशन से कुछ ही दिन पूर्व प्रकाशित हुई और एक ही रात में लाजपतराय को राजनैतिक मामलों में देशव्यापी ख्याति प्राप्त हो गयी।

जब लगभग हिसार का बीस बाईस वर्ष का यह नवयुवक वकील, प्रथम बार, कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए गया, तो रेलवे स्टेशन पर अयोध्यानाथ तथा मदनमोहन मालवीय आदि ने करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया। चारों ओर उनके नाम की चर्चा थी।

वह पत्र उर्दू में "कोहे-नूर" नाम के एक साप्ताहिक पत्र में मुंशी राधाकिशन के नाम से प्रकाशित हुए। अंग्रेजी में प्रथम पत्र के नीचे "आपके एक पुराने अनुयायी के पुत्र" के हस्ताक्षर थे और उसकी तिथि अक्टूबर २७, १८८८ ई० थी। जब सर सैयद ने इंडियन नैशनल कांग्रेस के विरुद्ध जिहाद शुरू किया, उसे स्वप्न में भी यह विचार नहीं आ सकता था कि उसके पुराने लेख उसके विरुद्ध पेश किए जायंगे और पेश करनेवाला वह होगा जिसने उसके पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रत्येक शब्द को बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ा था। जनसाधारण की स्मरण-शक्ति अत्यल्प होती है। सर सैयद को यह एक अन्य लाभ था कि उनके अधिकांश लेख उर्दू में छपे थे, अतः वैडरबर्न, यूल तथा ह्यूम एवं बंगाल, बम्बई तथा मद्रास के कांग्रेसी नेताओं को—जो कांग्रेस में सर्वमान्य थे, उन लेखों के अस्तित्व का ज्ञान तक नहीं हो सकता था। खुली चिट्ठियों के लेखक ने आरम्भ में ही सर सैयद को चेतावनी दे दी थी कि मैं उनके लेखों का निरन्तर ही पाठक तथा प्रशंसक रहा हूं। "बाल्यावस्था से

ही मुझे अलीगढ़ के सफेद दाढ़ी वाले सैयद की सम्मतियों का मान करना सिखलाया गया है। मेरे प्रिय पिता जी, जो आपको उन्नीसवीं शताब्दी के पथप्रदर्शक तथा गुरु से कम नहीं समझते, सदैव ही मुझे आपका पत्र "सोशल रिफार्मर" पढ़कर सुनाया करते हैं। अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट में आपके लेखों, कौंसिल तथा अन्य सार्वजनिक सभाओं में दिए हुए आपके भाषणों का मैंने ध्यान से अध्ययन किया है और मेरे पूज्य पिताजी ने उनको पवित्र थाती समझकर संभालकर रक्खा है।" लेखक ने सर सैयद को उन दिनों की याद दिलायी जब उसने जान स्टुआर्ट मिल के निबन्ध "स्वाधीनता" की प्रशंसा की थी और जब उसकी आज्ञा से "रिफार्मर" के लिए बैन्थम की "यूटिलिटी" (उपयोगिता) का अनुवाद किया गया। सबसे अधिक प्रभावशाली सर सैयद के "भारतीय विद्रोह के कारण" में से उद्धरण थे जो उसने १८५७ के "विद्रोह" के एक वर्ष के अन्दर ही लिखे थे। १८७३ में पुस्तक का अंग्रेजी उल्था भी प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सर सैयद ने प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन के सिद्धान्तों का समर्थन किया था। उन्होंने लिखा था—"मेरा विश्वास है कि अधिकांश लोग इस विचार से सहमत हैं कि शासन के कल्याण तथा अभ्युदय के लिए यह नितान्त आवश्यक है और उसकी स्थिरता के लिए जरूरी है कि उसकी मंत्रणा में जनसाधारण का भी भाग हो। यह जनमत ही तो है जहाँ से शासकों को इस बात का ज्ञान होता रहता है कि उनकी योजनाओं का किस प्रकार स्वागत किया जाता है। जनमत द्वारा ही दोषों का मूलोच्छेद किया जा सकता है और विनाशकारी आपत्तियों की समय से पूर्व सूचना प्राप्त होती रहती है। यदि जनसाधारण का शासन में कोई भाग न हो तो जनमत का कोई ज्ञान नहीं हो सकता। सर सैयद ने अपनी रचना में विस्तृत रूप से बतलाया कि यदि प्रतिनिधि सत्तात्मक सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया होता तो सन् ५७ के विद्रोह की आपत्ति से भी सरकार बच जाती। यदि हिन्दुस्तानी धारा सभाओं में होते, तो वह सब कुछ अपने देशवासियों को खोलकर बतला देते और हम उन मुसीबतों से, जो हम पर टूटी हैं, बच जाते।"

सर सैयद की इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद सर आक्लैण्ड कालविन (जो खुली चिट्ठियों के समय में पश्चिमोत्तर प्रान्त के लेफटिनेण्ट गवर्नर थे) तथा सर सैयद के जीवनी लेखक लेफटिनेण्ट कर्नल ग्राहम ने किया था। इन महाशयों को सर सैयद के प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन के किसी रूप पर अनुरोध करने में किसी प्रकार का राजद्रोह दिखलायी नहीं पड़ा, परन्तु उसी अपराध के कारण (प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासन की मांग) सर सैयद इंडियन नेशनल कांग्रेस को राजद्रोही कहकर उसकी निन्दा कर रहे थे। अभी तक होमरूल, सेल्फ गवर्नमेण्ट तथा स्वराज्य आदि कांग्रेस के ध्येय घोषित नहीं हुए थे। (कांग्रेस का ध्येय अभी बहुत छोटा तथा हेय

सा था) अधिक से अधिक कांग्रेस की मांग प्रतिनिधि शासन का सिद्धान्त था अर्थात् प्रान्तीय गवर्नरों की धारासभाओं की सदस्यता का चुनाव जनता के मत द्वारा हुआ करे।

यह सच है कि शासकों की कृपा तथा अनुग्रह से कुछ "देशी" सदस्य भी धारा सभाओं में नियोजित किए गए थे। परन्तु "क्या राजा शिवप्रसाद अथवा आपको यथार्थ में जनता का प्रतिनिधि समझा जा सकता है और जिस प्रकार कौंसिल चैम्बर में आपकी नियुक्ति हुई है उसका कुछ भी महत्व है ? इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि यदि राजा शिवप्रसाद भारतीय जनता के चुने हुए प्रतिनिधि होते तो उनके लिए समस्त भारतीय राष्ट्र की मानहानि करना असम्भव होता जैसा कि उन्होंने इलबर्ट बिल पर अपनी बदनाम वक्तृता में किया है। क्या राजा प्यारे मोहन मुकर्जी तथा अन्य देशी सदस्यों के लिए नमक-कर की वृद्धि को स्वीकार करना सम्भव होता यदि वह समझते कि उनकी मेम्बरी का आधार जनमत है ? उस अमानुषिक तथा गर्हित कानून द्वारा, यथार्थ में उसी जनता का गला काटा जा रहा था।

सर सैयद का यह नवयुवक आलोचक उनके ३० वर्ष पुराने लेखों में से उद्धरण देकर ही सन्तुष्ट न था, उसने उनके नये लेखों में से भी खासी सामग्री पेश करते हुए दिखलाया कि आज से ७ वर्ष पूर्व तक सर सैयद नितान्त भिन्न स्वर अलापते रहे हैं। १८८१ में जब लाहौर के यूनिवर्सिटी कालिज को यूनिवर्सिटी का पद देने का प्रश्न विचाराधीन था, सर सैयद ने लिखा था, "चापलूसी के तौर पर कुछ ही क्यों न कहा जाए, सच्ची बात यह है कि अपने शासकों के साथ भारतीयों के सम्बन्ध, दासों के साथ उनके प्रभुओं के सम्बन्ध से बढ़कर नहीं हैं।"

प्रतिनिधि शासन के प्रश्न पर, एक अत्यन्त उपयुक्त उद्धरण, आपने सर सैयद के उस भाषण में से खोज निकाला जो उन्होंने न्यू गाजीपुर कालेज (पीछे विक्टोरिया कालेज) की आधार शिला रखते हुए दिया था "देशियों, (भारतीयों) की सुप्रीम कौंसिल में नियुक्ति भारत के इतिहास में एक स्मरणीय घटना है। मेरा विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं है (जब वह दिन आएगा तो तुम्हें मेरे शब्द याद आयेंगे) जब उस कौंसिल के सभी सदस्य प्रत्येक डिवीजन वा जिले के प्रतिनिधि होंगे। इस प्रकार, जो कानून वह पास करेंगे, वह समस्त देश की भावनाओं से निर्मित कानून होंगे।"

इस उद्धरण के पीछे काफी प्रबल आलोचना थी "सर सैयद, तुमने १८६४ में कहा था कि वह दिन दूर नहीं, तुम्हें यह जानकर हर्ष होगा कि वही दिन समीप से समीप आ रहा है और तुम्हें अपने देशवासियों के (समयानुकूल न चलने के कारण)

व्यवहार पर लज्जा नहीं होगी। तुम्हारी भविष्यवाणी अभी ठीक नहीं उतरी, परन्तु हमें निश्चय है कि कभी न कभी वह अवश्य पूरी होगी। उस समय तुमको सन्तोष होगा कि तुमने भविष्यवाणी व्यर्थ न की थी। सर सैयद, क्या तुम भविष्य-वाणी को वापस लेना चाहते हो ?"

सर सैयद ने प्रयाग के माननीय पंडित अयोध्यानाथ के भाषण की आलोचना करते हुए कांग्रेसवादियों से प्रश्न किया था कि जब सरकार ने हमें वह अधिकार प्रदान किये जिनका हम उपभोग कर रहे हैं, उस समय उनका ऐजीटेशन (आन्दोलन) कहाँ था ? तत्काल ही उसका उत्तर दिया गया, "मैंने आपके ही लेखों से उद्धरण देकर सिद्ध किया है कि आन्दोलन का अस्तित्व था और आप स्वयं ही प्रमुख आन्दो-लनकारियों में से थे।" फिर सर सैयद ने लिखा था, "आप लोगों की यह शंका निराधार है कि सरकार या जिला के अधिकारी वर्ग आप लोगों को झगड़ालू वा असन्तुष्ट समझ लेंगे, यदि आपने इस तरह का कोई पग उठाया। इसी कारण आप देश की भलाई के कार्यों में भी आगे बढ़ने से हिचकिचाते हैं। विश्वास करो कि यह नैतिक कायरता अनुचित है। और यह शंका निराधार। भारत में उदारचित्त अंग्रेजों में एक भी ऐसा नहीं है जिसे इससे हर्ष न हो।" भारत के लिए यह अत्यन्त लाभकर होगा यदि उसकी जनता सरकार के कार्यों के न्याय अथवा अन्याय के विषय में खुले तौर पर और ईमानदारी से अपनी सम्मति प्रगट करे।" इस समय कांग्रेस के विरोधी के रूप में सर सैयद अपनी गत समस्त विचारमाला से पराङ्मुख हो रहे थे।

अभी अधिक समय नहीं बीता था कि अलीगढ़ के यह महारथी एकता तथा उदारता के प्रचारक के रूप में विख्यात थे, परन्तु अब वह यह गुल मचा रहे थे कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के हित परस्पर टक्कर खाते हैं, अतः मुसलमानों को कांग्रेस से पृथक् रहना चाहिए। यह सर सैयद ही थे जिन्होंने हिन्दुओं और मुसल-मानों को भारतमाता की दो आँखों की उपमा देते हुए राष्ट्रीय एकता की सुन्दर मूर्ति के विचार की कल्पना की थी। क्या कभी दायीं आंख की भी बाईं आंख से टक्कर वा द्वेष हो सकता है ? नवयुवक समालोचक को जो किसी समय उनका प्रशंसक तथा भक्त था,—उनके भाषणों में से ऐसे वाक्य निकालकर पेश करने में कोई कठिनाई न थी जिनमें हिन्दू तथा मुस्लिम हितों की एकता का प्रचार किया गया था। उनका नया प्रचार सर्वथा विपरीत दिशा को जा रहा था। उनके वह भाषण कोई अतीत की बात नहीं थे। पंजाब का दौरा करते हुए, सर सैयद ने इस बात पर ही बल दिया था कि हिन्दुओं, मुसलमानों तथा ईसाइयों—सभी से निर्मित एक ही भारतीय राष्ट्र है। गुरुदासपुर में भाषण करते हुए सर सैयद ने

कहा था "प्राचीनकाल से ही एकदेश के निवासियों को राष्ट्र कहते हैं, चाहे उनमें कई प्रकार की विभिन्नता तथा विशेषता क्यों न हो........उन सभी को देश के कल्याण के लिए मिलकर काम करना चाहिए। स्मरण रक्खो कि हिन्दू और मुसलमान शब्द केवल धार्मिक विभिन्नता के लिए प्रयुक्त होते हैं, नहीं तो इस देश के सभी निवासी—हिन्दू और मुसलमान बल्कि ईसाई भी एक ही राष्ट्र से सम्बन्ध रखते हैं।" जब एक राष्ट्रीय प्लेटफार्म पैदा किया जाने लगा, तब उन्होंने हिन्दू तथा मुस्लिम हितों की टक्कर तथा संघर्ष का प्रचार शुरू कर दिया। गुरु-दासपुर का भाषण जनवरी १८८४ में हुआ था, केवल एक ही वर्ष पश्चात् सर सैयद में यह दूषित परिवर्तन हो गया।

३ फरवरी १८८४ को लाहौर में दिया गया भाषण, उनकी गुरुदासपुरवाली वक्तृता से भी स्पष्टतर था। लाहौर की इंडियन एसोसियेशन के मानपत्र के उत्तर में बोलते हुए सर सैयद ने कहा था, "यह मानते हुए भी कि इस एसोसिएशन के अधिकांश सदस्य हिन्दू हैं, फिर भी मैं कहता हूँ कि इस प्रकाश को फैलानवाले बंगाली ही हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारे देश में केवल बंगाली लोग ही ऐसे हैं जिन पर हम सभी गो गर्व है और यह उन्हीं के प्रयत्नों का फल है कि हमारे देश में विद्या, स्वाधीनता तथा देशानुराग ने उन्नति की है। इसलिए मैं यह कह सकता हूँ कि वे ही देश के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के शिरोमणि हैं। मैं स्वयं उन कठिनाइयों को अनुभव करता हूं जो मेरे मार्ग को रोकती थीं, परन्तु उनके होते हुए भी मैं अपने देश तथा जाति की श्रद्धापूर्वक सेवा करना चाहता हूँ। जाति शब्द में, मैं हिन्दू और मुसलमान दोनों को सम्मिलित करता हूँ क्योंकि कौम शब्द के केवल यही अर्थ निकल सकते हैं।" उसी भाषण में एक अन्य स्थान पर बोले, "हम एक ही भूमि के निवासी हैं, एक ही शासकों की प्रजा हैं, सभी को एक ही प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं तथा दुर्भिक्ष आदि के कष्ट से एक ही प्रकार हम दुख उठाते हैं। इन विभिन्न कारणों से भारत में बसनेवाले इन दोनों वंशों को "हिन्दू" के नाम से पुकारता हूँ जिसका अर्थ है हिन्दुस्तान के निवासी। धारा सभा में मैं सदैव ही इसी "जाति" के कल्याण तथा अभ्युदय के लिए ही चिन्तित रहा हूँ।"

उस समय की कांग्रेस की कोई ऐसी मांग, ऐसा सिद्धान्त अथवा ऐसी नीति न थी जिसका समर्थन स्वयं सर सैयद ने न किया हो, परन्तु जब नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ, तो सैयद महोदय के सिद्धान्त तथा नीति सर्वथा परिवर्तित हो गए। संकुचित हृदय आलोचक कांग्रेस की निन्दा इसलिए कर रहे थे कि उन्होंने भारतीय स्वयं-सेवक दल की स्थापना के आयोजन का साहस किया था। मार्च १८८३ में (कांग्रेस के जन्म से कुछ काल पूर्व) जब ह्यूम ने "देसी स्वयंसेवक" दल के पक्ष में लिखा,

और (सर सैयद के जीवनी-लेखक) लैफ्टिनेण्ट कर्नल ग्राहम ने "पायोनियर" के कालमों में उनकी युक्तियों का खण्डन किया, तो सर सैयद ने ग्राहम साहिब के पक्ष में नहीं, प्रत्युत् ह्यूम महोदय के पक्ष में अपनी लेखनी उठायी। उन्होंने ग्राहम को लिखा भारतवासियों के स्वयंसेवक दल के पक्ष में लिखित मि० ह्यूम के पत्र का आपकी ओर से जो उत्तर प्रकाशित हुआ है उसे मैंने पढ़ा है। भारतवासियों को स्वयंसेवक बनने की आज्ञा न देने का तो यह अर्थ है कि सरकार भारतवासियों में विश्वास नहीं रखती। इस नीति का परिणाम इस लोकोक्ति से निकालना चाहिए "कि यदि तुम चाहते हो कि हम तुम्हारा विश्वास करें, तो तुम्हें भी हम पर विश्वास करना चाहिए, "योरुपियनों तथा भारतवासियों के बीच एक लम्बी चौड़ी खाई मौजूद है और जब तक उसे पाटा नहीं जाता, देश के सुधार तथा कल्याण की कोई सम्भावना नहीं।"

उपरोक्त पत्र के इस अन्तिम शब्दों पर विशेष बल देते हुए सर सैयद के आलोचक (किसी समय प्रशंसक) ने उन्हें स्मरण दिलाया कि उपरोक्त पत्र को लिखे हुए अभी लगभग चार वर्ष ही बीते हैं। ग्राहम महाशय ने सर सैयद के जीवन चरित्र में उसके इस पत्र का उद्धरण देते हुए अपनी स्थिति बिलकुल बदल ली। "मैं इस बात के पक्ष में हूँ कि भारत के बड़े-बड़े नगरों में स्थानीय अधिकारी भले तथा राजभक्त परिवारों में कुछ व्यक्तियों का चुनाव करके योरुपियन वालंटियरों की कमान करनेवाले अफसरों के अधीन रखा जाए। वह अपने कम्पनी अफसर स्वयं चुन सकते हैं। रिक्त स्थानों की पूर्ति करने का अधिकार भी मैं उन्हीं को देने के पक्ष में हूँ।" लाजपतराय ने कहा था, "हमें इतना तो प्रदान कर दो, फिर हम चिरकाल तक सन्तुष्ट रहेंगे।"

लाजपतराय, सर सैयद में यह विलक्षण परिवर्तन देखकर आश्चर्य-चकित रह गए। उन्होंने लिखा कि सर सैयद को प्रफुल्लित होना चाहिए कि उनके देश वासियों में जागृति उत्पन्न हो रही है, उनके स्वप्न तथा भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होने को हैं और जनसाधारण ने दृढ़ धारणा कर ली है कि किसी प्रकार के विरोध (चाहे वह स्वयं सर सैयद की ओर से ही क्यों न हो) से भयभीत न होंगे।

यह खुली चिट्ठियां सर सैयद के लेखों तथा संभाषणों के उद्धरण का केवल संग्रहमात्र ही न थीं, इनके साथ भीषण और कड़ाकेदार कटाक्ष भी थे। वह कटाक्षों, व्यंग्यों, कटूक्तियों, फबतियों तथा कहीं-कहीं सीधी झाड़ का सम्मिश्रण थीं। उनकी शैली भी यत्र तत्र असंस्कृत तथा दोषपूर्ण थी और उन में युवक ने कड़ी चोटें की थीं। क्योंकि इस देश में (वयोवृद्ध) श्वेत केशों का विशेष सन्मान किया जाता है, अतः

कहीं-कहीं पाठकों को नवयुवक लाजपतराय की ओर से वृद्ध सर सैयद के प्रति अभद्र शब्दों के प्रयोग पर कुपित होना स्वाभाविक है।

अलीगढ़ के महारथी में यह महान् परिवर्तन क्यों ? प्रथम चिट्ठी की समाप्ति पर लेखक ने "कुछ लोगों" की ओर से उड़ाई हुई अफवाह की ओर इशारा किया जो कहते थे कि यह लेख सर सैयद ने उस समय लिखे थे जिस समय उन्हें सरकार के अनुग्रह से धारा सभा के सदस्य बनने का विचार तक न था। परन्तु लाजपतराय ने उस पर कोई विश्वास न किया। दूसरे पत्र में उन्होंने सर सैयद से अनुरोध किया था कि वह खुले शब्दों में घोषणा कर दें कि उन्होंने अपना मन्तव्य बदल लिया है। सर सैयद के इस पतन को आदम के पतन के साथ उपमा दी गयी। जिस प्रकार हमारी मानव जाति के सर्वप्रथम पूर्वज का पतन शैतान द्वारा हुआ था, तुम्हारे इस अधःपतन का कारण भी सांसारिक मान-प्रतिष्ठा की प्रबल आकांक्षा हो सकती है। तुम्हें इस बात की कोई परवाह न होगी, क्योंकि तुम तो थोड़े दिनों में इस संसार को त्याग जाओगे, परन्तु हमारे लिए जिनको अभी चिरकाल तक जीवित रहना है और स्वतंत्रता की कई रक्तपातरहित (अहिंसात्मक) लड़ाइयां लड़नी हैं—यह स्थायी कलंक बन जाएगा।" अन्तिम पत्र के फुटनोट में एक और चोट की गयी है; "क्या इस परिवर्तन का यह कारण तो नहीं है कि तुम्हारी विशाल वीरोचित मेधा-शक्ति तुम्हारे संकुचित खोपड़ी वाले नौकर (अंग्रेज) की निर्बल तथा कन्याओं जैसी चापलूसियों के सामने झुक गयी है ? और आधुनिक जादूगर के छलमय कौतुक ने एक बलशाली पहलवान को निर्जीव बना डाला है ?"

उनके जीवन का यह प्रथम विवाद था जिसका श्रीगणेश भली प्रकार से हुआ। राजनैतिक जीवन में सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य को विवाद में विरोधियों पर प्रहार करने का ज्ञान हो। शत्रु के निर्बल तथा दोषपूर्ण स्थानों पर उसकी दृष्टि रहनी चाहिए और उसे प्रबलता पूर्वक दबोचने के लिए अपने पास तीक्ष्ण दाँत तथा पंजे होने चाहिएं।

पत्रों में यत्रतत्र अपरिपक्वता के चिन्ह थे। उनकी समाप्ति एक लम्बी सी कविता के साथ होती थी।

मैं एक दर्शनीय कन्या को जानता हूँ, खबरदार रहना
वह मित्र तथा शत्रु दोनों बन सकती है, खबरदार रहना
उसका विश्वास मत करना, वह तुम्हें मूर्ख बना रही है।
उसकी दो मोहक तथा भूरी आँखें हैं, खबरदार
जिससे वह कटाक्ष करती है तथा घृणा भी करती है, खबरदार
उसका विश्वास मत करना, वह तुम्हें मूर्ख बना रही है।

और उसके सुनहले वर्ण के केश हैं, सावधान, सावधान,
जो कुछ वह कहती है, वह सत्य नहीं है, सावधान, सावधान,
उसका विश्वास मत करना, वह तुम्हें उल्लू बना रही है।
उसकी छाती हिम जैसी श्वेत है, सावधान, सावधान,
वह जानती है कि वह किस मात्रा में दर्शन कराए, सावधान, सावधान,
उसका विश्वास मत करना, वह तुम्हें उल्लू बना रही है।

यह छली, सुन्दर कन्या, इन पत्रों के लिए, अलीगढ़ के हिम जैसी सफेद दाढ़ी-वाले ८० वर्षीय महारथी थे अथवा नवयुवक बूढ़े महारथी को कपटमूर्ति इंगलैण्ड के विरुद्ध चेतावनी दे रहा था।

अन्तिम पत्र पर २० दिसम्बर १८८८ की तिथि है और उसमें प्रण किया गया था कि नया पत्र-व्यवहार १८८९ में शुरू किया जाएगा। चार चिट्ठियाँ ही पर्याप्त थीं और पाठकों को खेद न होगा यदि वह विवाद पुनः नहीं छिड़ पाया।

अध्याय दस

लालाजी कांग्रेस में : उनकी प्रेरणाएँ

सर सैयद के नाम अन्तिम चिट्ठी कांग्रेस के प्रयागवाले वार्षिक अधिवेशन से कुछ ही दिन पूर्व प्रकाशित हुई थी। उन चिट्ठियों की स्याही सूखने भी न पायी थी कि उनका नवयुवक वकील लेखक विख्यात हो गया। प्रयाग रेलवे स्टेशन पर पं० मालवीय तथा अयोध्यानाथ ने उसका स्वागत किया, तो उसे मालूम हुआ कि वह भारत की राष्ट्रीय राजनीति में प्रसिद्ध व्यक्ति बन गया है। उसका नाम अलीगढ़ के महान् सर सैयद अहमद खां जैसे विरोधी की पोल खोलनेवाले विवादी के तौर पर प्रसिद्ध हो गया। कांग्रेस के अधिवेशन पर उसके दो भाषण हुए; एक भाषण का विषय वही खुली चिट्ठियों वाला ही था। यह भाषण उसने कांग्रेस के मुख्य प्रस्ताव के अनुमोदन के तौर पर किया और उसमें धारा सभाओं में चुनाव को जारी करने की मांग की गयी थी। इसमें उसने दिखलाया कि वह सर सैयद जो कांग्रेस की इस मांग का आज इतना विरोध कर रहा है, इससे पहले भिन्न विचार रखता था और तीस वर्ष पूर्व अपनी पुस्तक "विद्रोह" में स्वयं वही मांग पेश कर चुका था।

कांग्रेस के इतिहासकार, डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया १८८८ के कांग्रेस अधिवेशन की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि निस्संदेह लाजपतराय दूरदर्शी पुरुष थे, क्योंकि १८८८ की कांग्रेस में आपने उर्दू में भाषण दिया और यह प्रस्ताव पेश किया कि आधा दिन देश की शिक्षा सम्बन्धी तथा औद्योगिक मामलों पर विचार करने के लिए पृथक किया जावे। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और उसी समय से कांग्रेस के अधिवेशन के साथ ही साथ औद्योगिक प्रदर्शिनी भी प्रतिवर्ष होती है। दोनों भाषणों में से यद्यपि अधिक प्रशंसा तो प्रथम भाषण की हुई, क्योंकि उसका सम्बन्ध एक सामयिक मामले से था, परन्तु दूसरा भाषण पीछे ठोस कार्य छोड़ गया। जिन दिनों कांग्रेस की समस्त कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में होती थी, लाजपतराय ने हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने यह जतला दिया कि यदि हमें कांग्रेस के मामलों में महत्वपूर्ण भाग लेना है, तो मुझे कांग्रेस को वास्तव में जनसाधारण का प्रतिनिधि बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। उनका औद्योगिक प्रदर्शिनियों पर बल देना प्रगट करता है

कि वह केवल राजनीतिज्ञ ही न थे, वरन् रचनात्मक कार्य को भी काफी महत्व देते थे।

१८८८ की कांग्रेस ने लाजपतराय को सीधे राजनैतिक कार्य में डाल दिया। समय समय पर अस्थायी उदासीनता की अवधि को छोड़कर उन्होंने अपना शेष जीवन अगले ४० वर्ष कांग्रेस की सेवा को अर्पित कर दिए। वह कांग्रेस के प्रथम तीन अधिवेशनों में सम्मिलित न हो सके, थे, परन्तु वह उससे उदासीन न थे (यद्यपि मुख्यतः मूलराज के प्रभाव के कारण उनके मन में कांग्रेस के बारे में कतिपय शंकाएं थीं। परन्तु उस पर मि० ह्यूम के लेखों को पढ़कर काफी प्रभाव पड़ा था। मूलराज इस नवीन संस्था को चतुर अंग्रेजों का एक फन्दा समझते थे। यह अंग्रेज भारत के भयानक मित्रों का भेष धारण किए हुए थे। कांग्रेस का तृतीय अधिवेशन मदरास में बदरुद्दीन तैय्यब जी के सभापतित्व में हुआ। उस समय तक लाजपतराय कांग्रेस के भक्त बन चुके थे। वह अपनी आत्मकथा में लिखते हैं "इस अधिवेशन का मुझ पर भारी प्रभाव हुआ। इसी समय में मि० ह्यूम लिखित दो ट्रैक्ट-"पूर्व का तारा" तथा "एक वृद्ध की आशा" प्रकाशित हुए। कांग्रेस साहित्य में इनके जोड़ की रचना मैंने नहीं देखी। इनके प्रत्येक पृष्ठ से स्वतंत्रता की तरंगें झलकती थीं। मुझ पर इनका बहुत प्रभाव पड़ा।" खुली चिट्ठियों तथा प्रयाग के कांग्रेस अधिवेशन पर उनके दो भाषणों ने निश्चित रूप से उन्हें कांग्रेस का पक्षपाती तथा साथी बना दिया। कांग्रेस के संगठन तथा उसकी तत्कालिक नीति से उन्हें समय समय पर उदासीनता होती रही। परन्तु कांग्रेस के उद्देश्य से उनका कभी मतभेद नहीं हुआ। प्रयाग में पंजाब के प्रतिनिधियों ने उन्हें आगामी वर्ष के लिये कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर बुलाने के लिए कहा, परन्तु इस कार्य के लिए बम्बई को पसन्द किया गया। वह वहां भी गए, परन्तु उनका उत्साह कम होना शुरू हो गया। "प्रयाग अधिवेशन में भाग लेना ही मेरे राजनैतिक जीवन का श्रीगणेश था। इस अधिवेशन के पश्चात् मि० ह्यूम ने कई पत्र मुझे लिखे और मेरी आज्ञा से अपने व्यय पर सैयद के नाम खुली चिट्ठियों को (उनकी भाषा को सुधार कर) छपवा दिया। इस पुस्तिका की कुछ काल तक जनता में काफी मांग रही। १८८९ को बम्बई अधिवेशन के अध्यक्ष चार्ल्स ब्रैडला थे। वहां मुझे मि० ब्रैडला तथा मि० ह्यूम से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे मन पर कुछ प्रतिकूल सा प्रभाव पड़ा। मैं यह अनुभव करने लगा कि कांग्रेस नेताओं को देशहित की अपेक्षा अपने नाम तथा शान की अधिक चिन्ता रहती है। परन्तु यह एक अस्पष्ट सी अनुभूति थी। ब्रैडला को जनसाधारण का नेता कहा जा सकता है और उसकी अपेक्षा कतिपय भारतीय नेताओं को नाम तथा यश की

चिन्ता अधिक थी। इसके पश्चात् वह १८९३ तक कांग्रेस के किसी अधिवेशन में सम्मिलित नहीं हुए। कांग्रेस की ओर उनकी उदासीनता का यह प्रथम दौर था।

मेज़िनी-गेरीबाल्डी

कांग्रेस से भी कहीं बढ़कर, इटली के देशभक्त मैज़िनी उन्हें स्वाधीनता की ओर धकेल रहे थे। शायद, यदि वह मेज़िनी को अपना गुरु न मान लेते, तो कांग्रेस में उनकी इतनी दिलचस्पी तथा रुचि न होती। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के लेख संग्रह में जोसफ मेज़िनी के भाषण भी थे। लाजपतराय को १८८१ के लगभग वह प्राप्त हुए। "उसके पढ़ने पर मेरे नेत्रों से कई बार अश्रुपात हुआ। उस भाषण ने मेरे कोमल हृदय पर गहरा प्रभाव डाला और मैंने निश्चय कर लिया कि मैं भी जीवन भर मेज़िनी की शिक्षा पर चलते हुए अपनी मातृभूमि की सेवा करूँगा। मैंने मेज़िनी को अपना गुरु धारण कर लिया और वह आज तक मेरे गुरु हैं।" यह उनके आर्यसमाज में प्रवेश से पूर्व की बात है। उनकी अपनी साक्षी के अनुसार उनके प्रथम "गुरु" मेज़िनी थे न कि दयानन्द। आर्यसमाज में सम्मिलित होने से पूर्व ही वह देश प्रेम में पूर्ण रूप से रंगे जा चुके थे। वह समाज की ओर आकर्षित हुए क्योंकि उन्हें उसमें देशभक्ति का उद्देश्य दृष्टिगोचर हुआ। अभी तक देश में कोई सीधा राजनैतिक आन्दोलन नहीं चला था जिसे वह अपना जीवन समर्पित करते अथवा जिसके द्वारा वह मातृभूमि की वेदी पर अपनी भेंट चढ़ाते। कुछ काल के लिए उनकी आत्मा को धैर्य से प्रतीक्षा करनी पड़ी।

मेज़िनी की "जीवनी तथा उपदेश" पुस्तक को उन्होंने कई पुस्तक-विक्रेताओं की दुकानों पर खोजा और अन्त में अपने एक पंजाबी मित्र के द्वारा एक प्रति इंगलैण्ड से प्राप्त की। बड़ी उत्सुकता से उन्होंने उसे आदि से अन्त तक पढ़ डाला। "मुझ पर मेज़िनी के बारे में बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के भाषण से भी अधिक प्रभाव पड़ा। उस महान् इटालियन की गहरी राष्ट्रीयता उनके दुख तथा संकट, उनकी उच्च नैतिकता तथा उनकी विशाल मानव सहानुभूति ने मुझे मुग्ध कर दिया।' वह "मनुष्य के कर्तव्य" का उर्दू अनुवाद करने में जुट गए। जब उसकी पाण्डुलिपि तैयार हो गयी तो उन्होंने उसे अपने एक सम्पादक मित्र के पास भेजा जिसने उसे अपने नाम से प्रकाशित करा दिया।

कुछ समय पश्चात् आपके द्वारा उर्दू में मेज़िनी तथा गैरीबाल्डी के जीवन चरित्रों की रचना होनी थी। इन पुस्तकों को विशेषतया मेज़िनी को उस समय के पंजाबियों के हृदय पर मुख्य प्रभाव डालने वाली वस्तु बनाना था। उसके वर्णन

का अवसर फिर आवेगा। इस समय इतना ही स्मरण रखना चाहिए कि उनके अधीर हृदय को सन्तुष्ट करने वाला प्रथम गुरु मेज़िनी ही था। आर्यसमाज अथवा कांग्रेस में सम्मिलित होने से पूर्व ही उनकी मनोदशा निर्मित हो चुकी थी। समाज तथा कांग्रेस दोनों को तो केवल उस उद्देश्य पूर्ति के साधन मात्र ही बनना था जिसका स्पष्ट निर्माण उसके लिए महान् इटालियन गुरु के लेखों में हो चुका था।

१८८३ में स्वामी दयानन्द का देहान्त हो गया। दीपमाला के दिन आर्य-समाज शोकान्धकार में डूब गया। आर्यसमाजी अपने महान् आचार्य के वियोग में शोक सभाओं के लिए एकत्र हुए। गुरुदत्त स्वामी जी की अन्तिम बीमारी के समय उनके पास ही अजमेर में थे और मृत्यु के समय की स्वामीजी की शान्ति तथा गम्भीरता से विशेष रूप से प्रभावित हुए थे। वह लाहौर की सभा में भाषण के लिए खड़े हुए, परन्तु उनके मुख से शब्द न निकल सके। एक के पश्चात् दूसरा सभी वक्ता असफल रहे। अन्त में नवयुवक आर्यसमाजी लाजपतराय बोला जिनका भाषण बड़ा ओजस्वी तथा करुणोत्पादक था। जनता दो घण्टे तक मंत्रमुग्ध बैठी रही। इस भाषण से उनकी ख्याति एक सार्वजनिक वक्ता के रूप में भी हो गयी।

स्वामी दयानन्द के परलोकगमन के पश्चात उनके अनुयायी तथा प्रशंसक उनके उपयुक्त स्मारक स्थापित करने की समस्या पर विचार करने लगे। दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज की योजना इस सोच विचार का अन्तिम फल था। जब उसे व्यवहारिक रूप देने का समय आया लाजपतराय ने अपने भाग से कहीं अधिक कार्य किया।

१८९० तक वह हिसार रहे। वहाँ आर्यसमाज के उत्साही नेता, सर्वश्रेष्ठ सार्वजनिक वक्ता तथा राजनैतिक क्षेत्र में एक चमकती मूर्ति के रूप में उनकी ख्याति हो चुकी थी। अब वह सार्वजनिक कार्य को काफी समय दे रहे थे; साथ ही साथ वकालत के क्षेत्र में भी पर्याप्त सफलता प्राप्त कर रहे थे। उनकी मासिक आय एक सहस्र से कम न थी और कभी कभी दो हजार तक भी जा पहुँचती थी। यदि वह इस कार्य को अधिक समय देते, तो निश्चित रूप से उनकी आय कहीं अधिक हो सकती थी। अब उन्होंने अपने पिता जी से अनुरोध किया कि वह अपनी नौकरी छोड़ दें। उन्होंने पिता जी के गुजारे तथा अपने भाइयों और बहिनों की शिक्षा तथा विवाहादि कार्यों के लिए काफी धन पृथक कर दिया। इस समय भी वह अपने पिता जी तथा उनके परिवार का सारा खर्च अपने पास से दे रहे थे। वकालत में सफलता, काफी आय तथा धनी बन जाने से प्रायः कई लोगों

में बुराई पैदा हो जाती है, परन्तु लाजपतराय अन्य धातु के बने हुए थे। हिसार में उनको सम्पत्ति खरीदने के कई अवसर प्राप्त हुए, जिनसे वह आगे चलकर काफी धनी बन सकते थे। परन्तु उनकी तो महत्वाकांक्षा थी ही दूसरे प्रकार की। सम्भव है कि वह उन दिनों हिसार को छोड़कर पंजाब की राजधानी-लाहौर चले जाने का विचार कर रहे थे, इस कारण वह सम्पत्ति के बन्धन में नहीं पड़ना चाहते थे। कभी कभी उनमें अपना सारा धन त्याग देने की प्रबल भावना उठती थी।

उस समय के चीफ कोर्ट के नियमानुसार उन्होंने छोटी (मातहत) अदालत में एपेरैण्टिसशिप (ट्रैनिंग) समाप्त कर ली थी। प्रान्त के सार्वजनिक कार्य तथा वकालत के काम में भी लाहौर का प्रबल आकर्षण था। अतः उन्होंन हिसार को छोड़ने का निश्चय कर लिया।

अध्याय ग्यारह

लाहौर में

जिस लाहौर में लाजपतराय अब कार्य करने के लिये पहुँचे, वह उनके विद्यार्थी जीवन के लाहौर से काफी भिन्न था। जब वह प्रथम बार मैट्रिक परीक्षा के लिए लाहौर आये थे, तब उन्हें पुलिस कान्स्टेबलों का भारी समूह दिखलायी पड़ा जो यात्रियों को जेब कटों तथा ठगों के बारे में चेतावनी दे रहे थे। वह सामान उठानेवाले कुली के साथ-साथ धीरे-धीरे पैदल चल रहे थे। पग-पग पर उन्हें यही चिन्ता थी कि कहीं वह भी किसी के फन्दे में न फँस जाएँ और अपने असबाब आदि से हाथ न धो बैठें। अब लाहौर नवागन्तुकों के लिए वैसा अरक्षित न था। इस समय वह न तो अल्पायु विद्यार्थी थे और न नवागंतुक। अब उन्हें कुली के साथ साथ पैदल चलने की जरूरत न थी। वह सवारी के पैसे अदा करने की क्षमता रखते थे। शीघ्र ही वह सार्वजनिक कार्य तथा वकालत के काम के लिए निजी घोड़ा-गाड़ी खरीदनेवाले थे।

अंग्रेजी राज्य को (पंजाब में) स्थापित हुए अर्द्ध शताब्दी बीत चुकी थी। शासन को दृढ़ बनाने का काफी समय मिल गया था और त्वरित गति से उसका विकास हो रहा था। उसके कार्यालयों तथा दफ्तरों की संख्या तेजी से बढ़ रही थी और लाहौर में बाबू लोग धड़ाधड़ आ रहे थे। बाबू उत्पादन के कारखाने अर्थात् स्कूल और कालेज भी तेजी से काम कर रहे थे।

लाहौर भी तेजी से बढ़ रहा था। कोई कारखाना अथवा मिल खुलता दिखलायी नहीं पड़ता था। किसी भारतवासी का ध्यान बैंक अथवा बीमा कम्पनी खोलने की ओर न था। हां, योरोपियन व्यापारियों के दफ्तर काफी खुल रहे थे जिनमें से अधिकांश कलकत्ता, बम्बई अथवा लण्डन की कम्पनियों की शाखाएं थीं। इनमें भी कुछ बाबुओं की खपत हो गयी, परन्तु अधिक संख्या को सरकारी तथा रेलवे दफ्तरों में स्थान मिला। शिक्षण संस्थाओं की संख्या बढ़ने से विद्यार्थी-गण भी खूब बढ़ रहे थे-यही बाबू तथा सम्भावित बाबू थे। वकीलों की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ रही थी। इन सभी लोगों की कृपा से अनारकली एक समृद्ध बाजार बनता जा रहा था। साहब लोग तथा मेम साहिब ठण्डी सड़क की दूकानों से अपना सौदा सामान खरीदते थे। यह दुकानें उन कोठियों तथा बंगलों में थीं जिनकी



स्थापत्यकला पी० डब्ल्यू० डी० के किसी अज्ञात दिमाग का परिणाम थी। ऐसे विचित्र मकानों के नमूने न तो पूर्वीय देशों में और न पाश्चात्य देशों में ही मिल सकते थे।

बाबुओं, वकीलों तथा विद्यार्थियों के इस विशाल समूह के लिए मकानों की आवश्यकता थी। लाहौर में चारों ओर ईंट तथा चूने के मकान ही मकान खड़े किए जा रहे थे। उजाड़ में खड़े किए गए मकानों से भी अच्छी आय होने लगी।

लाहौर में केवल यह भौतिक परिवर्तन ही नहीं हो रहे थे, प्रत्युत उसमें मानसिक तबदीलियां भी हो रही थीं। परिवर्तन के चाहे जो भी कारण हों, एक विशेष प्रकार का उत्साह तथा क्रियाशीलता दृष्टिगोचर होती थी। स्पष्टतया शिक्षा तथा धर्म और कुछ अंशों में राजनीति इस उत्साह के कारण थे। इसका सबसे अधिक प्रभाव बाबुओं तथा वकीलों पर पड़ा।

लाजपतराय के विद्यार्थी-जीवन के दिनों में शिक्षा-क्षेत्र में गैर-सरकारी शुद्ध भारतीय संस्था का तो किसी को विचार भी नहीं आया था, परन्तु उनके वकील बनने से पूर्व, ईसाई मिशनरियों ने डाक्टर फार्मन की अध्यक्षता में इस क्षेत्र में क्रियाशीलता दिखलायी और फार्मन क्रिश्चियन कालेज की नींव रखी गयी। मिशनरियों के इस प्रयत्न के पीछे अतुल धन सम्पत्ति थी और शासकों पर भी उनका असीम प्रभाव था। उनकी कतिपय संस्थाओं के लिए सरकार ने उनको विशाल भूमि भेंट कर दी। लाहौर के नवीन जोश तथा क्रियाशीलता में इन मिशनरियों का भारी हाथ था।

एक प्रकार से उन्होंने देशी लोगों को शिक्षा-प्रचार के लिए संस्थाएं स्थापित करने को प्रोत्साहित किया। बाबुओं के लिए अन्धाधुन्ध मकानों, कोठियों तथा सरकारी इमारतों के साथ ही साथ दयानन्द स्कूल की इमारत भी खड़ी हो गयी। जहाँ डी० ए० वी० स्कूल बना था, वह इलाका बिलकुल उजाड़ तथा अरक्षित था।

अपने विद्यार्थी जीवन में उन्होंने कुछ न कुछ पंजाब विश्वविद्यालय का जन्म देखा। इस शिशु संस्था के बारे में डा० लाइटनर के कुछ अपने विचार थे। इस समय तक उन विचारों को निश्चय रूप से त्याग दिया गया था और उसके प्रयोग की लगभग इतिश्री कर दी गयी। पंजाब विश्वविद्यालय को भी कलकत्ता और मदरास यूनिवर्सिटी के नमूने पर ढाल दिया गया। जिसे यूनिवर्सिटी कालेज के नाम से पुकारा जाता था वह तो पंजाब यूनिवर्सिटी में विकसित हो गया और विश्वविद्यालय की स्थापना से कालेज गवर्नमेण्ट कालेज के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इस विश्वविद्यालय से ला (वकालत) मैडिकल (डाक्टरी) तथा ओरियण्टल (प्राच्य भाषा) कालेज सम्बद्ध किए गए।(ओरियंटल कालेज एक प्रकार से डा० लाइटनर की कृति था) मिशनरियों ने अपनी संस्था का सम्बन्ध इसी विश्वविद्यालय से जोड़ लिया। भारतीय नेताओं को भी उसका अनुकरण करना था।

१८८०-१८९० में पंजाब में ब्रह्मसमाज तथा आर्यसमाज की दो लहरें चल रही थीं। उस समय से अब स्थिति बदल चुकी थी।

पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री ने जो लाजपतराय के पिताजी के मित्र थे तथा लाजपतराय के एक प्रकार के संरक्षक थे-अध्यापक का काम छोड़ दिया। उन्होंने ब्रह्मसमाज को भी त्याग दिया और अपने पृथक समाज देवसमाज की नींव रखी। अब वह पंडित अग्निहोत्री के स्थान में अपने आपको "देवगुरु भगवान" कहने लगे। उन्होंने कई लगनशील आत्माओं से ब्रह्मसमाज का परित्याग करवा दिया। इससे पंजाब में ब्रह्मसमाज काफी शिथिल हो गया। अतः उसके प्रतिद्वंद्वी आर्यसमाज को उसे मैदान से खदेड़ना सहज हो गया। उन दिनों मुख्य कार्य शिक्षा ही था, आर्यसमाज ने भी अपने प्रवर्तक के नाम पर एक विद्यालय स्थापित कर दिया। इससे ब्रह्मसमाज की अपेक्षा आर्यसमाज का पलड़ा निश्चय रूप से भारी हो गया। स्कूल के साथ कालेज विभाग भी जोड़ दिया गया। इस संस्था का प्रधानाध्यापक एक ऐसा नवयुवक था जिसने बी० ए० पास करने के पश्चात् अन्य ग्रेजुएटों की तरह नौकरी वा सांसारिक उन्नति की कोई चाह न की थी। उसने संस्था को अपना जीवन अर्पित कर दिया। वह उसके अवैतिनिक आचार्य थे। लाजपतराय के विद्यार्थी-जीवन के दिनों में इस प्रकार की बात को समझना वा उसकी कद्र करना सरल न था।

निश्चय रूप से इस भूमि में आर्यसमाज जड़ पकड़ता गया। उसका कार्य लाहौर में तथा समस्त पंजाब में प्रतिवर्ष फैलता जा रहा था। पुनरुद्धार के समस्त आन्दोलनों की तरह इसका नारा "अथवा घोषणा", पीछे को लौटो" अर्थात् प्राचीन वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करना था। वह भारत के अतीत गौरव का उसकी वर्तमान अधोगति से मुकाबिला करता था। इससे देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता कम से कम हिन्दू राष्ट्रीयता के भाव प्रबल होते थे। यह उसका एक पहलू था। अन्य पहलू हिन्दूसमाज का आधुनिककरण था जिसका अर्थ था कि उसे इस योग्य बनाया जाय कि वह आधुनिक युग की समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना कर सके। यह सम्भव है कि हिन्दू समाज की समस्त बुराइयां तथा दूषण अवैदिक हों, परन्तु यह बात भी सत्य थी कि आर्यसमाज के जोशीले अनुयायी (जो वेदों का इतना अधिक सम्मान करते थे) वेदों तथा ऋषियों की अपेक्षा योरूपीय

आधुनिक लेखकों, विचारकों, इतिहासकारों तथा राजनीतिज्ञों के विषय में कहीं अधिक ज्ञान रखते थे। वह हिन्दूसमाज को वर्तमान संसार के संघर्ष के लिए समर्थ तथा तैयार करना चाहते थे। वह बाल विवाह तथा वंशानुगत पुरोहित वर्ग को समाप्त करना चाहते थे। विधवाओं का पुनर्विवाह जारी करना, समुद्र यात्रा के निषेध को तोड़ना, तथा कट्टर एकेश्वरवाद का प्रचार करना चाहते थे। उनकी अधिकांश ऐसी बातें तो ब्रह्मसमाज के कार्यक्रम से समानता रखती थीं। परन्तु आर्यसमाजी अधिक कट्टर थे। सभी धर्मों में से उत्तम बातें ग्रहण करने के पक्ष में वह न थे। वह तो हिन्दू धर्म पर आक्रमण करनेवाले मिशनरियों की ईंट का उत्तर पत्थर से देना चाहते थे। वह चाहते थे कि हिन्दुओं में भी आक्रमणशीलता की प्रवृत्ति उत्पन्न हो तथा वह भी अन्य मतावलंबियों को हिन्दू धर्म में ग्रहण करने अर्थात् हिन्दू बनाने को उद्यत हों। वह छूतछात को समाप्त करने पर बल देते थे और उन्होंने "शुद्धि" का कार्य भी शुरू कर दिया। देवनागरी तथा हिन्दी के महत्व पर भी वह बल देते थे। इस बात में उनका उत्साह ब्रह्मसमाजियों से कहीं बढ़चढ़ कर था। १८९०-१९०० में पंजाब के सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में आर्यसमाज ही सर्वव्यापक बनता दिखलायी पड़ता था। हिन्दुओं का प्रगतिशील तथा क्रियाशील अंश आर्यसमाज के झण्डे के नीचे एकत्र हो रहा था। ज्यों-ज्यों लाहौर में शिक्षित समुदाय की संख्या-वृद्धि होती गयी त्यों-त्यों आर्यसमाज के कार्य क्षेत्र का भी विकास होता गया। पुरातन अन्ध विश्वास के विशाल परन्तु क्रियाशील गढ़ पर पुनरुत्थान, सुधारवाद तथा आधुनिकता का आक्रमण जोर शोर से हो रहा था।

राजनीति की भी अधिकाधिक चर्चा चल पड़ी थी। कांग्रेस की शाखा तो अभी नहीं खुली थी परन्तु इंडियन एसोसिएशन मौजूद था। मुख्यतः वकीलों को ही राजनीति में रुचि थी। वकालत के पेशे से ही काफी धन कमाया जा सकता था। इस काम में धन तथा प्रतिष्ठा दोनों की प्राप्ति थी। यहाँ बिना पूंजी लगाए एक योग्य व्यक्ति बड़ी उन्नति कर सकता था। यह सत्य है कि पंजाब में भारी जमीदारों तथा राजाओं की संख्या बहुत अधिक नहीं थी जिनकी कृपा से वकील लाखों रुपया कमा लेते हैं, परन्तु मध्यम श्रेणी द्वारा भी खासा धन वसूल हो सकता था। विशेष कष्ट तथा सिरदर्द के बिना भी वकील सुख तथा प्रतिष्ठा का जीवन व्यतीत कर सकते थे। राजनैतिक क्षेत्र में वकीलों को प्रधानता प्राप्त थी, क्योंकि शिक्षित तथा शिष्ट समाज में यही लोग स्वाधीन समझे जाते थे। सरकारी नौकरों के तो हाथ पांव बंध जाते थे। लाहौर में ज्यों-ज्यों बाबुओं की संख्या बढ़ती गयी त्यों-त्यों आर्यसमाजी तत्व में भी वृद्धि होती गयी। इसी

प्रकार वकीलों की वृद्धि के साथ राजनीति में रुचि रखनेवालों की वृद्धि भी स्वाभाविक थी।

जिस प्रकार आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज ने हिन्दूसमाज में हलचल तथा गतिशीलता पैदा कर दी, उसी प्रकार मुसलमानों में भी नवीन सन्देश पहुंच रहा था। सर सैयदअहमद खां ने १८८३-८४ में पंजाब का दौरा किया। अहमदियों का नवीन सम्प्रदाय भी काम कर रहा था। सर सैयद की आधुनिक उदार वृत्तियां अधिकतर ब्रह्मसमाज से समानता रखती थीं। (कम से कम उनके कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार से पूर्व तक तो यही दशा थी) अहमदी मत अपने उत्साह तथा कार्य शैली के कारण आर्यसमाज के सदृश्य था। इसी काल में सिक्खों में हिन्दुओं से पृथकता की भावना उत्पन्न होने लगी थी। (अभी तक लोग सिक्खों को हिन्दू धर्म की असंख्य स्वतंत्र शाखाओं की तरह, हिन्दुओं का एक अंग समझते थे)। लाजपतराय के कालेज जीवन में ही यह प्रथा जारी की गयी कि विद्यार्थी गण को अपने परीक्षा के प्रवेश-पत्र में लिखना पड़ता था कि वह सिक्ख, हिन्दू, ईसाई वा मुसलमान हैं। इससे पहले हिन्दुओं तथा सिक्खों में कोई भेदभाव नहीं था। १८९३ में मैकालिफ से न्याय-विभाग का कार्य छुड़वा कर सिक्खों के धर्म ग्रन्थ का अनुवाद करने को कहा गया। सिक्ख धर्म पर वह अनुवाद छः जिल्दों में प्रकाशित हुआ। भारत मंत्री के लिए "आदिग्रन्थ" का अनुवाद करने वाले डा० ट्रम्प की इससे आठ वर्ष पूर्व मृत्यु हो गयी थी। अंग्रेजों ने सिक्खों में दिलचस्पी लेना आरम्भ कर दिया। १८५७ के विद्रोह में सिक्ख उनके लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए थे। साम्राज्यवाद ने बुद्धिमत्ता से निश्चय किया कि उनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

एक विशेष स्फूर्ति तथा उत्साह सभी सम्प्रदायों में एक जैसा फैलता दिखलायी पड़ता था और लाहौर से वह प्रान्त के सभी भागों में जा पहुँचा। इसी उत्साह की कृपा से लाहौर यथार्थ रूपमें पंजाब की राजधानी तथा राजनैतिक शरीर के स्नायु मण्डल का केन्द्र बन रहा था।

स्फूर्ति, सार्वजनिक जीवन, राजनीति इन सब का दूसरे शब्दों में अर्थ प्रेस तथा प्लेटफार्म था। पंजाब के स्नायु केन्द्र के रूप में, अपने विकास के साथ ही साथ लाहौर प्रेस को विशेष महत्व दे रहा था। इसमें शिक्षित वर्ग की ही प्रधानता थी। मूक जनता अभीतक कुम्भकर्णी निद्रा में थी। स्वभावतः प्रतिष्टा तथा शक्ति अंग्रेजी में चलनेवाले पत्रों में थी। पंजाब के अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित होने के कुछ ही दिन बाद "सिविल एण्ड मिलिटरी गजट" पत्र का जन्म हुआ। भारतीयों

को भी पत्र की आवश्यकता हुई। १८८१ में सरदार दयाल सिंह की उदारता से साप्ताहिक ट्रिब्यून का जन्म हुआ।

पीछे ट्रिब्यून सप्ताह में दो बार निकलने लगा। उस समय लाहौर में हिन्दुस्तानियों का यही मुख्य पत्र था। १८९०-१९०० में उसके सम्पादक एक बंगाली सज्जन श्री नरेन्द्रनाथ गुप्त थे।

लाहौर की इस प्रकार कायापलट हो रही थी, जिस समय लाजपतराय वहां सदा के लिये निवास करने, वकालत करने तथा पंजाब के सार्वजनिक जीवन के स्नायु-केन्द्र के संचालनार्थ पधारे थे। उनकी आत्मा जिस प्रकार के वातावरण की खोज में तड़प रही थी, उस नवीन स्फूर्ति के कारण वह उनको प्राप्त हो गया।

अध्याय बारहवाँ

लालाजी का मुख्य कार्य-क्षेत्र—आर्य समाज

अब आर्यसमाज ही उनका मुख्य कार्यक्षेत्र बन चुका था। निस्सन्देह, समाज वृद्धि तथा उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था, परन्तु वह एक भीषण संकट में से भी गुजर रहा था। मांसाहार तथा निरामिष भोजन के प्रश्न पर उसमें दो दल बन गए जिनके पारस्परिक सम्बन्धों ने उग्र विवाद का रूप धारण कर लिया। आर्यसमाज के दोनों पक्षों के समर्थक-साईदास तथा गुरुदत्त दोनों का देहान्त हो गया। गुरुदत्त के कुछ मास पीछे ही साईदास भी चल बसे। गुरुदत्त अभी जीवित ही थे कि डी० ए० वी० प्रबन्धक समिति ने कालिज विभाग खोलने का प्रस्ताव पास कर दिया। उनकी मृत्यु पर यह भी झगड़े का कारण बन गया। लाजपतराय ने आर्यसमाज की इस फूट तथा झगड़े का संक्षिप्त परन्तु आलोचनात्मक वर्णन अपनी आत्मकथा में इस प्रकार किया है :—

"प्रथम तो लाला हंसराज की व्यक्तिगत सर्वप्रियता का अभाव। लोगों का विचार था कि वह बड़े अभिमानी, गर्वीले तथा अधिकार के भूखे हैं। वह अपने मौन स्वभाव, अलग-अलग रहने की प्रवृत्ति तथा शासन में कड़ाई के कारण सर्वप्रिय नहीं बन सके।

दूसरा निरामिष भोजन का प्रश्न था, जिसका आधार स्वामी दयानंद सरस्वती के प्रमाण का प्रश्न था। अपने अन्तिम दिनों में पंडित गुरुदत्त स्वामी जी के इतने कट्टर भक्त बन गए थे कि वह उनके सिद्धान्तों से इंच भर भी इधर उधर होना सहन नहीं कर सकते थे। अत्यल्प मतभेद से भी वह भड़क उठते थे, और कभी कभी वह चिड़चिड़े होकर स्वामीजी को निर्भ्रान्त बतलाना शुरू कर देते। अत्यधिक जोश के क्षणों में वह प्रायः कहा करते कि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश का प्रत्येक अक्षर वा मात्रा सत्य है। पंडितजी के शिष्यों तथा अनुयाइयों की भी वही भावना थी। जब उन्होंने मांस भक्षण का प्रश्न खड़ा कर दिया, तो स्वभावतः विपक्षी दल भी कहने लग पड़ा कि किसी भी आर्यसमाजी के लिए स्वामी दयानन्द की शिक्षा को पूर्णतः स्वीकार करना अनिवार्य नहीं तथा स्वामी जी निर्भ्रान्त नहीं थे। (गुरुदत्त की मृत्यु के शीघ्र ही पश्चात् १८९० में) कालेज

की प्रबन्धक-कमेटी में पठनपाठन विधि में संस्कृत के स्थान के प्रश्न पर मत-भेद पैदा हो गया। संस्कृत की पाठविधि पर तो विवाद और भी अधिक उग्र था। स्वामी दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश में शिक्षा पद्धति के विषय में एक सम्मुल्लास है जिसमें प्रारंभिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक की विस्तृत पाठविधि दी हुई है। इस "आर्य" शिक्षा पद्धति में कालिदास वा भवभूति के लिए कोई स्थान नहीं है। संस्कृत नाटक का पूर्णतः वहिष्कार किया गया है। कविता भाग में केवल वाल्मीकि तथा व्यास की रचनाओं को स्थान दिया गया है और वह भी कविता के तौर पर नहीं, प्रत्युत् इतिहास के तौर पर। संस्कृत पाठ्यविधि का आधार पाणिनि (पातंजलि की व्याख्या सहित) को बनाया गया, क्योंकि स्वामीजी ने पीछे के सभी वैयाकरणों की निन्दा की है। स्वामीजी का यह प्रबल विश्वास था कि ऋषिकृत ग्रन्थों तथा साधारण मनुष्यों की रचित पुस्तकों में आकाश और पाताल का अन्तर है और वेदों का सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करनेवाले विद्वान् जिज्ञासुओं को केवल ऋषिकृत ग्रंथों का ही अध्ययन करना उचित है। एक पक्ष सत्यार्थप्रकाश को निर्भ्रान्त मानता था और उसे किसी अन्य धार्मिक सिद्धान्त की तरह अपने गुरु की शिक्षा का आवश्यक अंग स्वीकार करता था। कम से कम उनका दावा यही था। व्यावहारिक रूप में शिक्षा-पद्धति के निर्माण करते समय उन्होंने भी समझौते वा आवश्यक संशोधन से काम लिया था। अधिक व्यवहार-कुशल लोग तो कहते थे कि सत्यार्थप्रकाश में वर्णित पद्धति वर्तमान काल की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं। उस पद्धति का आधार संस्कृत भाषा भाषी आर्यवर्त था। स्वामी दयानन्द की स्मृति में उनके अनुयाइयों द्वारा संचालित संस्था-एंग्लो वैदिक कालिज की पद्धति स्वामीजी की आदर्श पद्धति से भिन्न होनी ही थी। उसके नाम से ही समझौते की भावना प्रगट हो रही थी। यह नाम गुरुदत्त की सम्मति से ही रक्खा गया था। संस्था की स्थापना की घोषणा तथा उद्देश्यों में भी यही समझौते की भावना काम कर रही थी। जब दो वर्ष तक (एक लाख रुपए से भी कम धन संग्रह के अतिरिक्त) उस घोषणा को व्यावहारिक रूप देने के बारे में कुछ भी न हो पाया तो आयोजित संस्था के लिए उसके मित्र हंसराज के अवैतनिक सेवाएं अर्पित करते ही, गुरुदत्त ने तत्काल ही स्कूल विभाग खोल देने का अनुरोध किया। तीन वर्ष पश्चात्, प्रबन्धक कमेटी ने केवल एक वोट के वहुमत से कालिज विभाग खोलने का निश्चय किया। लाजपतराय तथा गुरुदत्त दोनों ने इसके पक्ष में मत दिये थे। उस निर्णय को क्रियात्मक रूप दिलाने वाली उपसमिति में भी वह थे। उसके मंत्री के तौर पर उन्होंने ही रिपोर्ट तैयार की थी जिसमें पाठ्य पद्धति सम्मिलित थी। गुरुदत्त समझौते की भावना से काम करते थे, परन्तु निस्सन्देह

उनकी विचारधारा साईदास की विचारधारा से सर्वथा भिन्न थी। जब दोनों नेता चल बसे, तो साईदास के मित्रों तथा गुरुदत्त के शिष्यों में इन विचार-धाराओं ने भीषण संघर्ष पैदा कर दिया। सिद्धान्तवादी दलवाले दिन-प्रतिदिन अधिक कट्टर बनते जा रहे थे और जिस ढंग से कालिज खोला जा रहा था, उसकी उन्होंने खुले रूप से बलपूर्वक निन्दा करना आरम्भ कर दिया। आखिरकार यह दल कालिज से पृथक हो गया और स्वामीजी के विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्होंने गुरुकुल विश्वविद्यालय की नींव रख दी। दूसरे पक्ष वालों ने कालेज की सफलता के लिए धनसंग्रह, भवन निर्माण तथा कतिपय विद्वानों को एकत्र करना आरम्भ कर दिया। उनकी आत्मा इसी बात से पूर्ण-तया सन्तुष्ट हो गयी कि उन्होंने साधारण रूप से शिक्षा-प्रचार के अतिरिक्त पंजाब में हिन्दी भाषा को सर्वप्रिय बनाने तथा अपने पास आनेवाले कुछ विद्या-र्थियों के मन में संस्कृत का प्रेम उत्पन्न कर दिया। (यद्यपि संस्कृत को अनिवार्य बनाने का आदर्श पूरा न कर सके अथवा स्वामीजी की पद्धति के अनुसार उसे नहीं पढ़ा सके) यदि उनके विद्यार्थी ऋषि दयानन्द के बतलाए पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने में असमर्थ थे, तो कालिज आर्यसमाज के लिये रंगरूट भर्ती करने का उत्तम क्षेत्र सिद्ध होगा और उनकी संस्थाएं उन विद्यार्थियों के हृदय में देशानुराग के पवित्र भाव संचारित करेंगी। यदि उनके कालिज यह कार्य पूर्ण करने में सफल हो गए तो उनको समस्त विद्यार्थियों को पाणिनि के व्याकरण के सूत्र न पढ़ा सकने पर कोई खेद न था, चाहे ऋषि दयानन्द ने पाणिनि तथा पतंजलि की कितनी ही प्रशंसा क्यों न की हो।

वह एक अव्यवहार्य पाठ्य-पद्धति के साथ अक्षरशः चिपटकर सभी विद्यार्थियों को भयभीत करने को उद्यत न थे।

लाजपतराय के कार्यक्षेत्र में प्रवेश करते ही यह फूट दिनप्रतिदिन बढ़ रही थी। कुछ काल तक उन्होंने तटस्थ रहने का प्रयत्न किया, परन्तु शीघ्र ही उनकी प्रवृत्तियां प्रबल होती गयीं। वह कालेज की संस्कृत भाषा अथवा आहार के विषय में स्वामीजी की पद्धति के अनुसार संस्था बनाना अव्यवहार्य समझते थे। उनका बुद्धिवाद तथा मानसिक स्वतंत्रता उन्हें स्वामीजी अथवा अन्य किसी को भी निर्भ्रान्त स्वीकार नहीं करा सकती था। उन्हें अपने मांस-भक्षण में कोई पाप वा दोष दिखलायी नहीं पड़ता था। उन्होंने मैजिनी को अपना गुरु धारण किया था। तथा उन्हें कालेज के "कलचर्ड" दल के साथी निरामिष वादी खत्रियों की अपेक्षा अपने देश सेवा के आदर्श के अधिक समीप दिखलायी पड़ते थे। उनकी दृष्टि में वह अत्यन्त सिद्धान्त-दलित, व्यवहारकुशलता से अनभिज्ञ

तथा अत्यन्त पारलौकिक दृष्टिकोण वाले थे। वह यह भी अनुभव करते थे कि उनके मित्र हंसराज को ठीक ठीक नहीं समझा गया और उनको यथार्थ रूप में पेश नहीं किया जा रहा है। वह हंसराज के दल में सम्मिलित हो गए। एक दल में प्रवेश कर लेने पर उनके लिए उन्हें प्रचार करने को कहा गया। जब संस्कृत पद्धति के बारे में विवाद छिड़ा, तो उन्होंने उर्दू में एक पैम्फलेट लिखकर बतलाया कि डी० ए० वी० कालेज ने संस्कृत की उपेक्षा नहीं की है, जैसा कि हमारे विपक्षी महात्मा निरामिष आलोचक कह रहे हैं। अपने पक्ष के समर्थन अथवा विपक्ष के विरोध में उन्हे प्रायः लेख लिखने पड़ते थे। उपसमिति के विचार विमर्श में भी वह भाग लेते थे। दूसरों की तरह कभी-कभी वह औचित्य की सीमा का उल्लंघन भी कर जाते थे। यह बातें उनकी रुचि के विरुद्ध थीं, परन्तु फिर भी वह ऐसा करते थे। अपनी आत्मकथा में उन्होंने अपने भावों को इस प्रकार चित्रित किया है :—

"जब मैं, एकान्त में बैठकर आर्यसमाज के इतिहास के इस काण्ड पर विचार करता हूँ, तो मैं लज्जित होता हूँ। जिन दिनों यह बातें हो रही थीं, उन दिनों भी लज्जा से सिर उठाना कठिन था। क्योंकि समस्त जनता उन्हें निन्दनीय समझती थी। यदि सुधार तथा पवित्रता लाने के दावेदार-शिक्षित लोग इतनी नीचता दिखला सकते थे, तो साधारण लोगों के आचरण के बारे में फिर क्या शिकायत हो सकती है? अपने सहधर्मियों के अनुचित झगड़ों से वह किस प्रकार प्रभावित हुए उसका अनुमान आर्यसमाज के १८९१ के चुनाव के अवसर पर उनकी आलोचना से लगता है। "यह बात हिसार के दिनों की है।" यह दृश्य मैंने अपनी आँखों से देखे। मुझे रात भर नींद नहीं आयी और मैं कहता था कि क्या हमारी इस फूट की राष्ट्रीय बीमारी का इलाज स्वयं ईश्वर भी करने की सामर्थ्य रखता है? कलह के अन्त करने तथा जनता को एकसूत्र में लाने के लिए हम प्रभु की शरण आए हैं, परन्तु यहां भी हम पापों से मुक्त न हो सके और हमारे पापों का यह परिणाम हुआ है कि एक सूत्र में बद्ध हो जाने के स्थान में हमने परस्पर झगड़ना शुरू कर दिया है और वह भी ऐसे गन्दे तथा अनुचित ढंग से जिसकी कोई सीमा नहीं है। १८८१ के वार्षिकोत्सव के पीछे जब मैं हिसार लौटा तो मेरा हृदय अत्यन्त दुखित था और मेरी व्याकुलता ने मुझे हिसार को छोड़कर लाहौर चले जाने को विवश कर दिया।"

इस लड़ाई के "अन्धकारमय काण्ड" की आलोचना करते हुए वह इस परिणाम पर पहुँचे कि दोनों दल समान रूप से दोषी हैं। मेरी सम्मति में लाला हंसराज का उत्तरदायित्व उतना ही बड़ा है जितना लाला मुंशीराम का।"

वास्तविक फूट लाहौर आर्यसमाज के वार्षिक चुनाव के अवसर पर १८९२ के अन्त में हुई। चुनाव से एक दिन पूर्व लाजपतराय के साथियों की एक सभा लालचन्द (जो पीछे जस्टिस बने) के मकान पर हुई। विपक्षी दल की कोशिश थी कि चुनाव के अवसर पर अधिकाधिक उपस्थिति हो अतः उन्होंने कई अनियमित तथा दूषित बातें की थीं। अब इस बात पर विचार करना था कि अगले दिन क्या करना चाहिए। लाजपतराय लिखते हैं "कुछ तो पुलिस की सहायता से समाज मन्दिर पर अधिकार कर लेना चाहते थे। कुछ न्यायालय के निर्णय द्वारा दोनों पक्षों के सभा करने का समय नियत करवाने के पक्ष में थे। कुछ अन्य लोग, पुलिस के हस्तक्षेप के बिना ही रात्रि के समय मन्दिर पर लाठियों के जोर से बलात् अधिकार जमाने के पक्ष में थे। यदि किसी प्रकार का विरोध हुआ तो वह लड़ने को तैयार थे। चौथा दल-जिसमें मैं भी सम्मिलित था, इस बात के पक्ष में था कि महात्मा "दल के साथ सहयोग असम्भव था, उनसे पृथक होना ही उचित है तब समाज के सप्ताहिक सत्संग के लिए एक मकान किराये पर ले लेना चाहिए।" लाजपतराय ने आर्यसमाज के इतिहास में स्मरणीय उदारतापूर्ण भाषण दिया—"समाज सिद्धान्तों का नाम है, न कि ईंट तथा पत्थर का। हम जनता की सेवा तथा अपने जीवन सुधार के लिए समाज में सम्मिलित हुए हैं, न कि मकानों पर अधिकार जमाने अथवा उनपर लड़ने झगड़ने के लिए। निस्सन्देह आप लोगों ने काफी धन तथा समय के व्यय से मन्दिर निर्माण किया है, परन्तु आप में धर्म की भावना प्रबल है तो आप इससे अधिक शानदार भवन बनवा सकते हैं। मैं तो लड़ाई झगड़े, पुलिस बुलाने अथवा न्यायालय की सहायता लेने के सर्वथा विरुद्ध हूँ"।

यह बुद्धिमत्तापूर्ण तथा उदार अपील सफल हुई। दल ने पृथक होने का प्रस्ताव पास कर दिया और अगले दिन आर्यसमाज अनारकली की नींव रख दी गयी। समाज मन्दिर वच्छोवाली को त्यागने के विचार से लाला हंसराज को दुख तो बहुत हुआ, परन्तु फिर भी वह सहमत हो गए।

नया मन्दिर एक हाता सा था। एक छोटा सा कमरा और बरामदा तथा उसके आगे खाली धरती पड़ी थी। जहाँ आजकल पुस्तकालय है, वहाँ एक और कमरा भी था। उसके सामने किराए के लिए एक-दो मंजिला मकान था। निचली मंजिल में अरोड़वंश प्रेस था जहाँ "भारत सुधार" छपता था। वह पत्र हमारे दल का समझा जाता था। अन्दरवाला मकान तथा आँगन समाज के साप्ताहिक सत्संग के लिए किराए पर लिए गए।" लाजपतराय इस समाज के प्रधान चुने गए।

आगे चलकर लाजपतराय को विपक्षी दल के नेता-महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के बारे में दलबन्दी की प्रबलता के कारण संकीर्ण सम्मति रखने पर काफी पश्चात्ताप हुआ। वह आत्मकथा में लिखते हैं "१८९२-९३ में तथा उसके कई वर्ष पश्चात् तक मेरी सम्मति उनके विषय में यह थी कि वह शरारत की जड़ तथा ख्याति प्राप्त करने के अत्यन्त उत्सुक थे और उनमें नेता बनने की प्रबल आकांक्षा थी, परन्तु अब मैंने अपने विचार सर्वथा बदल लिए हैं। अब मेरा विश्वास है कि उन्होंने जो कुछ किया, दलबन्दी की भावना से अपने दल के लिए किया; मेरे लिये उनके आचरण पर लांछन लगाना नितान्त अनुचित था। सभी महापुरुषों की तरह उनमें भी त्रुटियां थीं, और उनके निकटवर्ती तथा अनुयायी उनसे अनुचित लाभ उठाते थे। वह कुछ निर्बल हृदय व्यक्ति थे तथा शीघ्र ही अपना विचार बदल लेते थे। मैं नहीं कह सकता कि वह ख्याति तथा प्रतिष्ठा की आकांक्षा से सर्वथा मुक्त थे। पंडित लखपतराय तथा लाला द्वारकादास को छोड़कर मुझे आर्यसमाजी नेताओं में ऐसा एक भी व्यक्ति दिखायी नहीं पड़ा जो इस मानव निर्बलता से ऊँचा उठ पाया हो। लाला मुंशीराम के स्वभाव में कुछ-कुछ छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति पायी जाती थी। विरोधी लोगों की त्रुटियों की समालोचना उनकी प्रकृति में थी। मेरे कथन का यह प्रयोजन नहीं है कि वह शरारती अथवा प्रतिहिंसात्मक थे। मुझे खेद है कि मैंने भावुकता वश उनके बारे में अनुदार सम्मति बनायी जिसे मैं अब बदल रहा हूँ। मैंने उनके प्रति अन्याय किया था।

लाला मुंशीराम भावुकता प्रधान प्रकृति के मनुष्य थे और उच्च तथा सात्विक भावनाएँ उनके मन में उठा करती थीं। वह उदार चेता तथा आतिथ्य प्रिय थे तथा सार्वजनिक सेवा के उच्च भावों से प्रेरित होते थे। वह जानते थे कि कष्ट सहन तथा त्याग क्या होता है। मित्र के रूप में वह अत्यन्त स्नेहशील थे, व्यक्ति के रूप में वह बड़े स्पष्टवादी, उदार तथा धर्मात्मा थे। "यह १९१५ की बात है। इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी श्रद्धानन्द १९१९ के काल के आरंभ से (पंजाब में मार्शल ला के दिनों से लेकर १९२६ तक अर्थात् स्वामी श्रद्धानन्द के आत्म बलिदान दिवस तक) लाजपतराय की दृष्टि में उच्च से उच्चतर उठते गए प्राय: वह इच्छा प्रगट किया करते थे कि उन्हें भी स्वामी श्रद्धानन्द जैसे बलिदान (अन्तिम शानदार निधन) का सौभाग्य प्राप्त हो।

उन दिनों लाजपतराय जैसे परिश्रमी तथा शक्तिशाली व्यक्ति को भी कठोर काम करना पड़ता था। वकालत में सफल होने के लिए उन्हें जितनी मेहनत करनी पड़ती थी, उससे भी कहीं अधिक सार्वजनिक जीवन में काम करना पड़ता

था। कचहरी से छुट्टी पाते ही वह कालेज के लिए धन संग्रह के निमित्त दौरा करने चले जाते थे, वह केवल कालेज के मुख्य सार्वजनिक वक्ता ही न थे, प्रत्युत उसके प्रधान भिक्षुक भी थे। कार्याधिक्य तथा भारी उत्तरदायित्व का एक उदाहरण यह है कि उन्हें शिमला से सीधे पेशावर जाना पड़ा। "यदि मैं पेशावर में कुछ घण्टे भी देर से पहुँचता तो मुझे कुछ भी प्राप्त न होता। मैंने दो दिनों में तीन हजार रुपए संग्रह किए। उसी समय महात्मा दल का डेपुटेशन पहुँच गया और कालेज का धन संग्रह बन्द हो गया।" आत्मकथा में वह अपने १८९३ के उत्तरदायित्व का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

१. मैं डी० ए० वी० कालेज कमेटी का जनरल सेक्रेटरी था।

२. मैं लाहौर आर्यसमाज का प्रधान था।

३. मैं दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालेज समाचार" का सम्पादक था। (कालेज के समर्थन में संचालित एक मासिक पत्रिका का।)

४. मैं "भारत सुधार" तथा आर्य मैसेंजर के लिए लेख लिखा करता था। कभी कभी तो भारत सुधार का पूरा पूरा भार मुझ पर होता था।

५. मुझे कालेज के लिए धन संग्रह के निमित्त दौरा करना पड़ता था।

६. इन सब के अतिरिक्त मुझे वकालत द्वारा रोटी भी कमानी पड़ती थी।

मेरे अन्य कार्यों में १८९३ में पंजाब में होनेवाले प्रथम कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति का कार्य तथा सार्वजनिक सभाओं में उपस्थिति शामिल थी। स्वागत समिति में विभिन्न विचारवालों के झगड़ों का निपटारा, निरन्तर बकवाद तथा नीरमन्थन में मेरा काफी समय चला जाता था।"

यद्यपि दोनों दल १८९२ में ही पृथक हो गए परन्तु फिर भी कलह का अन्त न हुआ।

अब समाज मन्दिर पृथक पृथक थे। महात्मा पार्टीवालों ने कालेज की प्रबन्ध कमेटी में ध्वंसात्मक चालें चलना शुरू कर दिया। १८९३ के आरंभ से १८९७ तक भीषण संघर्ष का काल रहा। एक दिन झगड़ा यहां तक बढ़ा कि लाठियां चलने तक नौबत पहुंच गयी। श्री स्वर्गीय साईंदास के ज्येष्ठ पुत्र सुन्दर दास की खोपड़ी फट गयी और उसने अपने दल के लिए प्राण त्याग दिए। दूसरे दल की ओर से भी किसी को प्राणों से हाथ धोने पड़े।

इस प्रकार उन्हें कठिन परिश्रम तथा परेशानी का सामना करना पड़ता था। उनका स्वास्थ्य गिर जाना स्वाभाविक था। इन्हीं दिनों वह एक बार तो मृत्यु के मुख में जा पड़े। उनको निमोनिया हो गया और दोनों फेफड़ों पर उग्र आक्रमण हुआ। कई बार जीवन की आशा जाती रही। वह लगभग दो मास चारपाई पर

पड़े रहे। "डाक्टर बेलीराम बड़े स्नेह से मेरी चिकित्सा तथा देखभाल करते रहे। उन्होंने मेरी प्राणरक्षा का भरसक प्रयत्न किया जीवनभर उनका आभारी रहूंगा।' लाजपतराय ने लिखा है।

अध्याय तेरहवां

१८९३ में लाहौर का कांग्रेस अधिवेशन

१८८९ में बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होने के पश्चात् कांग्रेस के प्रति लाला लाजपतराय जी का उत्साह ढीला पड़ गया, जब उन्हें क्रिसमस सप्ताह में होनेवाले किसी कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने की इच्छा अथवा उत्सुकता न रही। परन्तु १८९३ में "कुआं स्वयं चलकर प्यासे के पास" आया। डी० ए० वी० कालेज के एक नेता—बख्शी जेशीराम (जस्टिस बखशी टेकचन्द के पिता) के कहने पर पंजाब में कांग्रेस का अधिवेशन निमंत्रित किया गया। लाला लाजपतराय जी भी स्वागत समिति में थे, परन्तु वह उसके सक्रिय सदस्य न थे। कांग्रेस को, यद्यपि, आर्य समाजी नेताओं में से एक ने निमंत्रण दिया था, परन्तु आर्य समाजी अधिवेशन के प्रति उदासीन रहे। कुछ अन्य व्यक्ति थे जो प्रसन्नतापूर्वक कांग्रेस को सफल बनाने को उद्यत थे। विशेषतः दानवीर सरदार दयाल सिंह मजीठिया तथा नवयुवक हरकिशन लाल। यह हरकिशन लाल बखशी जैशीराम तथा आर्य समाजियों को बहुत पसन्द नहीं करते थे। कांग्रेस अधिवेशन की चिंता आर्यसमाजियों की अपेक्षा ब्रह्मसमाजी नेताओं को कहीं अधिक थी। नवीन चन्द्र राय—प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी-स्वागत समिति के प्रधान बनाए गए।

लाजपतराय ने इस अधिवेशन में दो तीन भाषण दिए। लाहौर अधिवेशन के विषय में वह लिखते हैं "सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि राय मूलराज ने इसमें काफी भाग लिया। हम देख चुके हैं कि यह महाशय सरकारी नौकर थे और न्याय विभाग के उच्च कर्मचारी थे। उनके लिए तो राजनीति में भाग लेना दुगुना हराम (वर्जित) था। परन्तु सच्ची बात यह है कि गुप्त रूप से समस्त नाटक के सूत्रधार वही थे। स्वामी दयानन्द के लिए आर्य समाज का विधान उनके हाथों से ही तैयार किया गया था। उनकी इच्छा थी कि उसी प्रकार का विधान कांग्रेस भी स्वीकार कर ले। मि० ह्यूम के बारे में उनके सन्देह वैसे ही प्रबल थे। विधान की मांग द्वारा वह सन्देह की पुष्टि करना चाहते थे क्योंकि उनका विचार था कि ह्यूम के लिए यह मन्तव्य स्वीकार करना

कठिन होगा। घटनाओं ने इसको सत्य सिद्ध कर दिखलाया। ह्यूम को विधान की कोई जरूरत दिखलायी नहीं पड़ी। विधान बनाने की बात व्यावहारिक रूप धारण न कर पायी।

आज तो कोई इस बात पर विश्वास भी न करेगा कि कांग्रेस इतने दिनों तक बिना किसी विधान के ही काम चलाती रही। १८९९ के लखनऊ अधिवेशन तक तो कांग्रेस में किसी विधान का नाम तक न था। वहां जो विधान स्वीकृत हुआ वह मूलराज के मन्तव्य से कोसों दूर था। मूलराज चाहते थे कि कांग्रेस के प्रतिनिधि जनता के द्वारा चुन कर आया करें तथा वर्ष भर काम चलाने के लिए एक स्थायी संगठन प्रादेशिक शाखाओं सहित स्थापित किया जावे। इस कार्य के लिए प्रान्तीय कमेटियों का विचार तो कांग्रेस नेताओं को १९०८ तक भी नहीं आया। उस विधानहीन काल में, पंजाब प्रतिनिधियों की ओर से ही विधान निर्माण के बारे में कांग्रेस पर दबाव डाला जा रहा था। इस प्रकार के विचार का जन्मदाता परदे के पीछे रहकर छिपे छिपे मंत्रणा देनेवाला वही व्यक्ति मूलराज था जो गुप्त रूप से सदा अपने विचारों को आगे लाता रहता था।

१९०४ में भी लाजपतराय तथा द्वारकादास प्रभृति पंजाब प्रतिनिधियों ने कांग्रेस से विधान के लिए बलपूर्वक अनुरोध किया। इस समय फिरोजशाह जी मेहता कांग्रेस के सर्वेसर्वा थे। इस अधिवेशन में अम्बाला के लाला दुनीचन्द भी उपस्थित थे। वह लिखते हैं कि "इस अवसर पर कांग्रेस के विधान स्वीकार कराने के विषय में भी कुछ साधारण सी बातचीत हुई, परन्तु सर फिरोजशाह मेहता उसके नितान्त विरुद्ध थे क्योंकि वह जनमत का निर्माण कांग्रेस के वार्षिक प्रदर्शनों द्वारा करने के पक्ष में थे। लाला लाजपतराय तथा लाला द्वारकादास ने विधान को स्वीकार करने पर बल दिया परन्तु पारसी महारथी के सामने उनकी कुछ न चल पायी। उसने सहज ही उनको चुप कर दिया। उस समय तक लाला लाजपतराय के उस व्यक्तित्व का वह विकास नहीं हो पाया था जो दो वर्ष आगे चलकर हुआ।" यह स्मरणीय बनारस अधिवेशन की घटनाओं की ओर संकेत है जिनका वर्णन किसी अगले अध्याय में किया जायगा। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि १८९३ में ही लाजपतराय तथा उनके मित्रों को कांग्रेस के लिए एक उपयुक्त विधान की आवश्यकता की अनुभूति हो रही थी। इस विरोध से उनको यह बात स्पष्ट प्रतीत होती होगी कि जब अपने देशवासी एकाधिपत्य को त्याग कर अपनी राष्ट्रीय संस्था के वैधानिक संचालक बनने में इतनी उत्कट अनिच्छा प्रगट कर रहे हैं तो भारत के विदेशी शासकों के अनिच्छुक हाथों से देश का विधान छीनना कितनी कठिन समस्या होगी!

तिलक, गोखले से भेंट

लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर ही लाला लाजपतराय जी का पूना के दो नेताओं––(गोपाल कृष्ण गोखले तथा बाल गंगाधर तिलक) से मिलन हुआ। यही परिचय आगे चलकर उनके जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण मैत्री के रूप में परिवर्तित हो गया।

अध्याय चौदहवाँ

महापुरुषों के जीवन पर प्रकाश

मेज़िनी गेरीबाल्डी के जीवन

लाजपतराय की यह प्रबल आकांक्षा थी कि जो लोग अंग्रेजी भाषा नहीं जानते, वह भी अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ सकें—इस कारण उनको १८६६ में उर्दू में एक पुस्तक-माला—"संसार के महापुरुष" के नाम से प्रारंभ करने पर विवश होना पड़ा। उनको यह विचार विशेषतः मेजिनी के चरित्र के अध्ययन से आया था। प्रथम महापुरुष जो इस कार्य के लिए उन्होंने चुना, वह उनके इटालियन गुरू जोसफ मेजिनी थे जिन्होंने बाल्यावस्था में ही लाजपतराय को अत्यन्त प्रभावित किया था और उनको देशानुराग के रंग में रंग दिया था। उन्होंने एक बार मेजिनी के ग्रन्थ "मनुष्य के कर्तव्य" का उर्दू में अनुवाद किया था। यह उन दिनों की बात है जब आप अभी रोहतक, हिसार आदि में वकालत करने लगे थे। अब आपने रोचक ढंग से मेजिनी का एक सर्वप्रिय जीवन चरित्र लिख डाला। उसके पश्चात् गेरीबाल्डी का जीवन चरित्र लिखा। आधुनिक कलाकारों के हाथ यह चरित्र सम्भव है और उत्तम चित्रित किये जा सकते। परन्तु उस समय उनके पाठक तो मेजिनी तथा गैरीबाल्डी के नामों से भी परिचित न थे। इन रचनाओं में लाला जी का राजनैतिक उद्देश्य था। इटली के संगठन तथा स्वाधीनता के आन्दोलन ने उनको मुग्ध कर दिया। लाला लाजपतराय जी ने भारतीय समस्या तथा इटालियन स्वाधीनता संग्राम में सानुरूपता पायी। इसके अतिरिक्त, मेजिनी का आह्वान सार्वभौमिक था। उसने केवल अपने देशवासियों को सम्बोधित नहीं किया था। उसकी शिक्षा संसार भर के लिए थी। लाजपतराय भी उसके असंख्य प्रशंसकों तथा श्रद्धालु भक्तों में से थे। पूर्णता के लिए गैरीबाल्डी का चरित्र-चित्रण भी आवश्यक था। उसके विना इटली के एकीकरण की कथा पाठकों की समझ में नहीं आ सकती थी। जिन विचारों का जन्म मेजिनी के मस्तिष्क से हुआ, उनकी पूर्ति गैरीबाल्डी के हाथों से हुई। मेजिनी की तरह वह भी स्वाधीनता का पुजारी था। जैसा कि उसकी दक्षिण अमरीका की अनेक वीरतापूर्ण लड़ाइयों से प्रगट होता है, उसकी यह भावना केवल इटली तक ही सीमित न थी। वह लड़ता था, विजय प्राप्त करता था और अलौकिक उदारता से राज्य औरों को अर्पित कर देता था। स्वयं बार-बार निर्धनता का

जीवन व्यतीत करने के लिए अपने रोमांचकारी टापू वाले घर को लौट जाता था। मेजिनी तथा गैरीबाल्डी को लाजपत राय ने पंजाब के तरुण वृन्द में देशानुराग की भावना संचारित करने के विशेष उद्देश्य से ही चुना था।

इन पुस्तकों की सामग्री उनको अंग्रेजी के विख्यात ग्रन्थों से प्राप्त हुई, विशेषतः "मेजिनी का जीवन तथा लेख" की छः जिल्दों से तथा काऊंटेस सीजरेस्का की रचना से। वोल्टन किंग का "मेजिनी का जीवन चरित्र" तथा अन्य अंग्रेजी पुस्तकें अभी प्रकाशित नहीं हुई थीं। उनका काम नयी घटनाएं गढ़ना अथवा उनकी मौलिक व्याख्या करना नहीं था। वह तो अपने देशवासियों का परिचय उस महान् इटालियन देशभक्त से कराना चाहते थे जिसने उनके मन पर इतना गहरा प्रभाव डाला था। उनका विश्वास था कि इससे नवीन जागृति पैदा होगी। निस्सन्देह इन दशाब्दियों के पश्चात् भी लाजपतराय की यह उर्दू पुस्तकें पंजाब के तरुण हृदयों को देशभक्ति का पथप्रदर्शन करती रहीं। किसी भी अन्य लेखक की किसी भी रचना से अधिक जागृति का साधन मैजिनी की जीवनी सिद्ध हुई जो लाला जी ने इस श्रद्धा से लिखी। उस जागृति का प्रदर्शन १९०६-७ की महान् घटनाओं में हुआ।

कुछ शासकों को उनकी इस पुस्तिका—मेजिनी से आपत्ति की गन्ध आने लगी और लाजपतराय को प्रायः समाचार मिलते थे कि उन पर मुकद्दमा चलनेवाला है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सरकारी वकीलों को उनके विरुद्ध अभियोग चलाना कठिन लगता था। उन्हें खबर मिली कि उनकी पुस्तक का दो तीन बार अंग्रेजी अनुवाद कराया गया है जिससे कोई कानूनी कार्यवाही की जा सके, परन्तु कानूनी विशेषज्ञ परस्पर सहमत न हो पाए। शिक्षा विभाग ने विशेषकर इस पुस्तक से उत्पन्न होनेवाले नवीन भय की ओर ध्यान दिया। हेडमास्टरों के नाम सरक्यूलर भेजे गए और शिक्षा विभाग के डायरेक्टर ने डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल से अनेक बार प्रश्न किया कि लाजपतराय की रचित पुस्तकें उनके कालेज अथवा स्कूल में पढ़ायी जा रही हैं अथवा नहीं। लाहौर से बाहर एक स्कूलों के निरीक्षक ने एक विद्यार्थी के पास पुस्तक की एक प्रति देख ली और स्कूल के मुख्याध्यापक से उसका उत्तर मांगा गया।

शिवाजी, दयानंद एवं श्रीकृष्ण

आगामी जीवनचरित्र अपने देश के तीन महापुरुष—शिवाजी, दयानन्द तथा श्रीकृष्ण के थे। "शिवाजी" का प्रकाशन तो मेजिनी तथा गैरीबाल्डी के शीघ्र

ही पीछे हो गया। यह तीनों पुस्तकें १८९६ की हैं। यह मुसलमान इतिहासकारों के शिवाजी के विरुद्ध रचित ग्रन्थों का प्रतिक्रिया काल था। जिन शासकों से शिवाजी आजीवन लोहा लेते रहे, मुसलमान इतिहासकारों के रचित ग्रन्थों का आधार उन शासकों से सम्बन्धित फारसी कृतियां थीं। अभी तक शिवाजी को राष्ट्रीय वीर का रूप प्राप्त नहीं हुआ था। उन्हीं दिनों महाराष्ट्र में राजनीतिक जागृति के लिए तिलक गणपति त्यौहार को प्रचलित करने का प्रयत्न कर रहे थे। सम्भव है कि लाजपतराय को भी उसी गणपति त्यौहार से स्फूर्ति प्राप्त हुई हो। मराठा इतिहास पर रानाडे महोदय ने जो ग्रन्थ रचा, उसकी सामग्री उनको मुसलमान इतिहासकारों की लिखित पुस्तकों से नहीं, वरन् महाराष्ट्र से ही प्राप्त हुई थी। उसके बाद ही परिस्थिति ने पलटा खाया और संसार की दृष्टि में शिवाजी एक लुटेरा, डाकू तथा "पहाड़ी चूहा" आदि न रह गया। जब लाजपतराय की पुस्तक छपी, उस समय तक रानाडे की रचना प्रकाशित नहीं हुई थी, हां अब उन्होंने उसकी पाण्डुलिपि अवश्य देखी थी जिससे उनको पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई। अब उलटी गंगा बह चली थी—लोग अब शिवाजी की हंसी उड़ाने वा उनकी निन्दा करने के स्थान में उनकी प्रशंसा तथा पूजा करने लग गए। लेखक ने प्रबल रूप में शिवाजी के पक्ष में लेखनी का उपयोग किया।

भारतीय इतिहास के अध्ययन पर उन्होंने शिवाजी में एक चालीस पृष्ठों की सुन्दर भूमिका लिखी जिसमें उन्होंने हिन्दुओं से प्रबल अनुरोध किया कि वे न केवल अपने अतीत गौरव का ही ज्ञान प्राप्त करें, वरन् उनको अपनी अधोगति का इतिहास भी पढ़ना चाहिए। हिन्दुओं की अपने उत्थान-पतन के इतिहास को पढ़ने की ओर से उदासीनता का यह परिणाम निकला है कि स्वार्थी लोगों ने हिन्दू आचरण तथा भावना को संसार के सन्मुख अत्यन्त ही विकृत तथा घृणित रूप में उपस्थित किया है। हिन्दुओं ने इन बातों को चुपके से स्वीकार कर लिया है। इससे उनके स्वाभाविक विकास तथा प्रगति में बाधा पड़ रही है। इस भूमिका में उन्होंने इच्छा प्रगट की है कि पाठक गण इस मराठा वीर की जीवन गाथा के साथ ही साथ पंजाब के एक महावीर का चरित्र भी पढ़ें जिसने आपत्तिकाल में मृतप्राय पंजाब को पुनर्जन्म दिया। सम्भवतः उनका आशय सिक्ख गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन से था। अपने महापुरुषों की चरित्रावली में श्रीकृष्ण का चरित्र प्रकाशित करने का भी उन्होंने निश्चित वचन दिया।

पंजाब के वीर के चरित्र चित्रण की उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। हां, महाभारत के वीर श्रीकृष्ण का चरित्र प्रकाशित हो गया। इस पुष्पमाला का चतुर्थ पुष्प दयानन्द का जीवन चरित्र था। उनके भाई दलपतराय विद्यार्थी ने उर्दू में स्वामी दयानन्द की आत्म कथा का एक अंश प्रकाशित किया। दलपतराय की

मृत्यु के पश्चात् लाजपतराय दो मास तक आर्य समाज के प्रवर्तक की जीवनी की सामग्री की खोज में रहे। यह पुस्तक सितम्बर १८९८ ई० में प्रकाशित हुई। विलम्ब का कारण यह था कि १८९७ में लाजपतराय जी दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता में लगे रहे और उसके बाद ही वह रोग-शैय्या पर पड़ गये। वह अप्रैल १८९८ में जाकर स्वस्थ हुए किसी भी धर्म के अनुयायी से अपने धर्मप्रवर्तक की आलोचनात्मक जीवनी का लिखा जाना कठिन कार्य है। इस पुस्तक की उपयोगिता इतनी ही थी कि स्वामी जी के जीवन की मुख्य घटनाएं तथा उनकी बाल्यावस्था की बातें रोचक शब्दों में संगृहीत हो पायीं। चिरकाल तक स्वामी जी के जीवन चरित्र पर यही पुस्तक सर्वमान्य तथा प्रामाणित समझी जाती रही, यद्यपि आर्य समाज ने स्वामी दयानन्द के जीवन पर प्रकाश डालने के लिए एक कमेटी नियुक्त की थी। लाजपतराय की पुस्तक सम्प्रदायगत रचनाओं की नीरसता तथा श्लाघात्मक भाषा के दोष से सर्वथा मुक्त है और बड़ी रोचक शैली में लिखी गयी है। यह स्वामी जी के व्यक्तित्व, स्वभाव तथा आचरण आदि पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है।

इस चरित्रावली का अन्तिम पुष्प श्रीकृष्ण है। यदि आलंकारिक भाषा के दस बीस पृष्ठों को छोड़ दिया जाए, तो शेष पुस्तक बड़ी सुन्दर तथा रुचिकर है। श्रीकृष्ण की जीवनी पर यह पुस्तक श्रेष्ठ मानी जाती है। लाजपतराय का श्रीकृष्ण मुख्यतः महाभारत का श्रीकृष्ण है। भागवत् कुछ अन्य पुराणों तथा ब्रजभाषा की कविता के उस कृष्ण की उसमें गन्ध तक नहीं जिनके वैसे पौराणिक वर्णन का वह समझते थे कि जन साधारण के हृदय पर अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा है। श्रीकृष्ण के चरित्र चित्रण में उन्होंने अक्षरशः महाभारत का अनुसरण किया है। ऐसा करने से उनका किसी के साथ कोई विरोध नहीं पड़ता था। वह अनुभव करते थे कि महाभारत के श्रीकृष्ण को पुनर्जीवित करने के लिए पुराणों के कृष्ण को असत्य सिद्ध करना अनिवार्य है। यदि श्रीकृष्ण का ऐतिहासिक अस्तित्व स्वीकार कर लिया जाय तो फिर कोई कठिनाई नहीं रह जाती, क्योंकि महाभारत का प्रमाण पीछे लिखे गये समस्त काव्यों से कहीं अधिक मान्य है। इसके अतिरिक्त यदि एक बार इतिहासकार की वैज्ञानिक खोज से आरम्भ कर दिया जाय तो अधिकांश काव्यमय दन्तकथाएं परस्पर टकराकर निराधार सिद्ध होती हैं। काव्यमय अलंकारों के कारण ही तो आलोचक यह कहने का साहस करते थे कि कृष्ण विलासी थे और वह सदैव गोकुल की ग्वालिनों के पीछे पड़े रहते थे किन्तु यह भी उन्हीं पुराणों और काव्यों के अनुसार निर्विवाद सिद्ध और सत्य प्रमाणित है कि कृष्ण चौदह पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में ही गोकुल तथा ग्वालों को अन्तिम नमस्कार करके

एक राजकुमार के पद के उचित कर्तव्य निभाने के लिए मथुरा चले गए थे। लाजपतराय के लिए यही एक घटना पर्याप्त थी जिसकी सहायता से श्रीकृष्ण को कलंकित करनेवाली सभी गाथाएं रद्दी की टोकरी में फेंक दी गयीं, क्योंकि उनका ऐतिहासिक महत्व शून्य के बराबर था।

अध्याय पन्द्रहवाँ

दुर्भिक्षादि देशव्यापी संकट

लाजपतराय के हृदय के बारे में संस्कृत कवि की यह उक्ति सर्वथा सत्य है कि "वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि" वह पत्थर से भी कठोर तथा पुष्प से भी कोमल थे। उग्र से उग्र विरोधियों का डटकर सामना करना, उनकी अथक शक्ति तथा उनके कष्ट सहन की क्षमता उनके कठोर भाग में था, परन्तु वह दूसरों को विशेषत: अपने देश के निर्धनों को देखकर उनके दुखों से तत्काल ही द्रवीभूत हो जाते थे। उनके स्वभाव की कोमलता और मृदुता इससे स्पष्ट झलकती थी।" विद्योष्वस्यमातरम् पृथिवीं"—माता पृथिवी की मृत्तिका के मृदुल कोमल भाव—मृद्वीमृत्तिका मानों कोमलता को लेकर साक्षात् उनके जीवन में उतरी थी और साथ ही "अश्मानं तन्वंकृधी" का वरदान भी सिद्ध था—जैसे पृथिवी के भीतर लोहा पत्थर आदि की कठोरता एक ओर छिपी है वैसे इस पुनीत जीवन में भी कोमलता के साथ सुन्दर कठोरता का सम्मिश्रण था!!

जीवनभर संघर्ष तथा युद्धों में व्यस्त रहने के कारण उनके स्वभाव तथा उनकी जीवन गाथा में कठोरता ही अधिकांश दृष्टिगोचर होती है, परन्तु यथार्थ यह है कि उनकी महानता में "कोमलता" का भारी भाग पाया जाता है।

आर्य समाज ने ही उनके मस्तिष्क तथा हृदय दोनों का पूरा पूरा लाभ प्राप्त किया। आर्य गजट का सम्पादन करना, दौरे करना, व्याख्यान देना तथा धन संग्रह करना आर्य समाज के लिए किये जानेवाले उनके मुख्य काम थे। इनके अतिरिक्त वह कई वर्ष तक ०डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के मंत्री रहे। कुछ वर्षों तक इसके उपप्रधान का भी कार्य सम्पादन उन्होंने किया। उक्त कालेज की कतिपय शाखाओं के साथ भी वह भिन्न भिन्न रूपों में सम्बद्ध रहे। इनमें उल्लेखनीय है जालन्धर का एंग्लो संस्कृत स्कूल जो आगे चलकर कालेज हो गया। डी० ए० वी० कालेज के लिए प्रिंसिपल हंसराज के बाद सबसे अधिक काम उन्हीं को करना पड़ता था। परन्तु आर्य समाज के अधीन उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य जिन क्षेत्रों में था, वह लाहौर के डी० ए० वी० कालेज से कहीं बहुत दूर थे। इन्हीं क्षेत्रों से उनके कोमल हृदय को सहायता के लिए पुकारा गया। मानों ग्राहग्रसत गजराज

उबारे "अथवा" आरत ह्वै हरिनाम पुकारे, आये आधे नाम"—की कहावत चरितार्थ हुई !!

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में भारत वर्ष पर प्रकृति देवी का असाधारण प्रकोप हुआ—अर्थात् एक साथ ही अनावृष्टि, दुर्भिक्ष तथा महामारी के संकट टूट पड़े। १८९७ में बम्बई के शासकों की प्लेग व्यवस्था की कड़ी आलोचना करने के कारण तिलक को १८ मास का कारावास हुआ। उसी वर्ष अनावृष्टि (सूखा) तथा अकाल ने अपना भीषणतम रूप दिखलाया। अन्य स्थानों के अतिरिक्त राजपूताने से भीषण समाचार आने लगे। कष्ट के समाचार कहींसे भी क्यों न आते, उस कोमल हृदय का पिघलना स्वाभाविक था। उनके लिए राजपूताने की यह परिस्थिति असह्य थी—जिस रजापूताने की वीरगाथाओं ने शिशु लाजपत के हृदय को जात्यभिमान के भाव से भर दिया था और जो उसकी युवावस्था तथा परिपक्व आयु में उसे स्फूर्ति दे रहा था उसी राजपूताने के वीर तथा अभिमानी राजपूतों के वंशज कीड़े मकोड़ों की तरह मृत्यु का ग्रास बन रहे थे।

लाजपतराय की अन्तरात्मा पर इसका अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा, जिसके कारण उनकी लेखनी तथा जिह्वा में पाठकों तथा श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने की शक्ति उत्पन्न हो गयी

समाचारों में केवल भीषण कष्ट का ही वर्णन न होता था, प्रत्युत उस संकट के दुरुपयोग की बातें भी थीं जो इस संकट से भी बढ़कर कष्टकर थीं। बहुत से ईसाई प्रचारकों ने धर्म प्रसार की दूषित भावना के वशीभूत होकर प्रकृति के इस प्रकोप को ईश्वर का आशीर्वाद समझा क्योंकि अब उनके लिए क्षुधापीड़ित अभागों को भगवान ईसा की भेड़ बनाना सहज हो गया था। प्रकट में तो वह परोपकार का कार्य कर रहे थे—क्योंकि वह अकाल पीड़ितों में भोजन आदि बांटने का काम करते थे, परन्तु ध्यान से देखने पर उनके कार्य का एक दूसरा ही रूप था। मिशन के कार्यकर्ता धोती पहनकर, जनेऊ धारण करके तथा माथे पर तिलक लगाकर ब्राह्मण का वेष धारण किए फिरते थे। पूना की पंडिता रमाबाई के ईसाई अनाथालय के एजण्ट अल्पायु लड़कों तथा लड़कियों को इन "पंडितों" के पास ले जाते थे। कभी कभी यह धर्मान्ध प्रचारक इनसे भी नीच काम करते हुए कोई संकोच न करते थे। उदाहरण के रूप में एक क्षुधापीड़ित पति की भूखी स्त्री को भगा ले जाना और वापस न भेजना, चाहे उसका पति जीवित ही क्यों न हो। इन बातों को सुनकर लाजपतराय का नवनीत सा कोमल हृदय क्रोध तथा लज्जा से भर गया।

१८९७ के अकाल में तथा १९०० के दुर्भिक्ष में लाजपतराय ने अकाल पीड़ित देशवासियों की सेवा में अथक प्रयत्न किया। वह अपनी वक्तृत्व कला, तर्क शक्ति,

अपनी संचालन, संगठन तथा नियंत्रण की प्रतिभा को पूर्ण रूप से काम में लाए। उस समय तक किसी के मन में यह विचार नहीं आया था कि ईसाई मिशनरियों की तरह हिन्दू भी अनाथालयों तथा शरणगृहों को सफलतापूर्वक चला सकते हैं। ईसाई घृणित उपायों से काम ले रहे थे, परन्तु उनको चैलेंज देने अथवा उनका विरोध करने का साहस किसी में न था।

इस क्षेत्र में लाजपतराय हिन्दुओं के अगुआ थे। यद्यपि उन्होंने अपना कार्य आर्यसमाज के अधीन शुरू किया था, परन्तु वह हिन्दू मात्र को सम्बोधित करते थे। शीघ्र ही उनको न केवल आर्यसमाजियों का वरन् सनातनधर्मियों का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया। उन्होंने पीड़ितों के सहायतार्थ कमेटियां संगठित कीं और उनके लिए धन संग्रह किया। डी० ए० वी० कालेज के विद्यार्थी वर्ग के साथ सम्पर्क होने के कारण उन्हें शीघ्र ही एक स्वयंसेवक दल की सेवाएं प्राप्त हो गयीं। उनका कहना था कि केवल अस्थायी सहायता पर्याप्त नहीं है। स्थायी अनाथाश्रमों की स्थापना अत्यावश्यक है जो भविष्य में भी संकट के समय काम आ सकें और जहां शरणागत बच्चों को उपयोगी नागरिक बनाने के लिए कुछ दस्तकारियों की शिक्षा दी जा सके। उनका कार्यकर्ताओं को निर्देश था कि सहायता के कार्य में शिशुओं, विधवाओं तथा अल्पवयस्क कन्याओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए जो सरकारी सहायता केन्द्रों से बहुत ही न्यून लाभ उठाने की क्षमता रखते हों अथवा जिनके "धूर्त" ईसाई मिशनरियों के हथकण्डों का सुगमता से शिकार होने की संभावना हो। साथ ही यह भी कहा गया कि जहां तक सम्भव हो सहायता "दान" के रूप में न दी जाय। प्रत्येक व्यक्ति को काम करने तथा रोटी कमाने का अवसर देकर ही सहायता की जानी चाहिए। इस कार्य के लिए हाथ की कताई पर विशेष रूप से बल दिया गया था, यद्यपि अन्य कार्य भी करवाए जा सकते थे। यह उनकी दूरदर्शिता तथा प्रेरणा का ही फल है कि फिरोजपुर के प्रसिद्ध आर्य अनाथालय की स्थापना हुई जिसके वह कई वर्ष तक मंत्री रहे। इसी प्रकार हिन्दू अनाथाश्रम लाहौर तथा मेरठ के अनाथालय की स्थापना हुई। अस्थायी अनाथाश्रम तो कई अन्य स्थानों पर भी खोले गए थे। लाजपतराय की प्रेरणा से कई नगरों में स्थायी अनाथालय भी खुल गए। शीघ्र ही उनके पंजाब तथा मेरठ के कार्य का अनुकरण समस्त देश में होने लगा।

जब अकालपीड़ित अनाथों का प्रथम दल लाहौर पहुंचा, तो लाजपतराय ने, रेलवे स्टेशन पर एकत्रित जनसमूह के उमड़ते तूफान से ही अनुमान कर लिया कि वह जनता में नवजीवन संचार करने में सफल हुए हैं। प्रथम दल तथा उसके पीछे

आनेवाले अनाथों को लाजपतराय के स्वकीय भवन में ठहराया गया। उन्होंने कोर्ट स्ट्रीट में अपना मकान खरीद लिया था।

उनके कार्यकर्ताओं को अपने कार्य में सफल होने के लिए ईसाई मिशनरियों से टक्कर लेना आवश्यक था। उनकी ऐसी-ऐसी काली करतूतें सुनने में आयीं जिनकी किसी को कल्पना भी न हो सकती थी। लाजपतराय जी के शक्तिशाली हाथों ने उनका खुलकर सामना किया। उन्होंने अनरोध किया कि सरकार को किसी का पक्ष नहीं लेना चाहिए। जहां कहीं भी गैर सरकारी संस्थाओं तथा स्वयं सेवकों द्वारा सहायता का कार्य करवाने का निश्चय हुआ, लाजपतराय के कार्यकर्ताओं को कार्य का अधिकांश भार सौंपा गया। कई केस न्यायालयों तक पहुंचाए गए, जहां कि मिशनरियों का भण्डाफोड़ हुआ। यह बात अन्तिम रूप से तय पायी कि हिन्दू अनाथों को कोई मिशनरी न ले सकें। हिन्दू संस्थाओं के मना करने पर ही ईसाइयों को ऐसे अनाथों के दिये जाने की आज्ञा मिल सकती है।

यह एक बड़ी नैतिक विजय थी। लाजपतराय इसे संख्या की दृष्टि से नहीं, किंतु नैतिक दृष्टि से बड़ा भारी लाभ समझते थे। संख्या की दृष्टि से भी यह कार्य कम महत्व का न था। १८९७ में, जब शून्य से ही स्वयंसेवक दल का जन्म तथा संगठन हुआ था, लाजपतराय के स्वयंसेवकोंने विशाल संख्या को सहायता पहुंचाई। इसके अतिरिक्त २५०–३०० अनाथों को शरण दी थी। दूसरे अकाल में लगभग दो सहस्र अनाथों की प्राणरक्षा हुई। सैकड़ों कार्यकर्ताओं को, विशेषतः विद्यार्थियों को, देशानुराग के कार्य तथा नागरिकता की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त हो गयी।

समस्त आन्दोलन उस जाति के लिए आत्म निर्भरता का पाठ पढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ जो अपनी उदासीनता तथा आलस्य के कारण यह समझने लग गई थीं कि केवल सरकार तथा विदेशी मिशनरी ही घोर संकट के समय सहायता करने की एजेंसियां हैं। क्या डी० ए० वी० कालेज का प्रयोग ही आत्म निर्भरता प्रदान का निचोड़ न था?

इन कार्यों पर सम्मति प्रगट करते हुए लाजपतराय ने कहा था:—

अनाथों की रक्षा करना स्वयं भी कोई क्षुद्र तथा मामूली कार्य न था, परन्तु इससे जो बड़ा लाभ हुआ वह यह था कि भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के हिन्दुओं को मिलकर कार्य करते हुए प्रबल भ्रातृत्व के भाव की अनुभूति हुई। एक और महान् लाभ यह हुआ कि कार्यकर्ताओं को धन संग्रह करने, धन सहायतार्थ वितरण करने, अनाथों तथा विधवाओं को विकराल मृत्यु अथवा विदेशी प्रचारकों (विधर्मियों) से बचाने, रोगियों की चिकित्सा करने तथा अन्य सैकड़ों प्रकार के कार्यों की ट्रेनिंग मिल गयी। पंजाब को इस बात का

उचित गर्व है कि उसने अपने को इस कार्य में भारत के अन्य प्रान्तों का पथ प्रदर्शक सिद्ध कर दिखलाया। यही ट्रेनिंग स्वयं लाजपतराय के लिए भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई, क्योंकि उसी की सहायता से उन्होंने आगे चलकर ऐसे ही कार्यों में सफलता प्राप्त की। लाजपतराय के व्यक्तित्व के विकास में इन कार्यों का बड़ा भारी हाथ था। इससे उनके मन में प्रान्तीय संकीर्णता के भाव किसी प्रकार भी न जम पाए। अब उनका नाम देश के कोने कोने में विख्यात हो गया। विशेषत: उन करोड़ों जन साधारण में जो राजनैतिक तौर पर अभी कुम्भ-कर्णी निद्रा में विभोर थे। उस समय तक कांग्रेस की वक्तृताओं का प्रभाव केवल गिनती के शिक्षित वर्ग पर ही पड़ सकता था, परन्तु अकाल पीड़ितों की सहायता का प्रभाव उदासीन तथा अबोध जन-साधारण पर भी बहुत हुआ।

इस कार्य का दूसरा पक्ष भी था। ईसाई मिशनरियों को भला यह हस्तक्षेप कैसे पसन्द आ सकता था ? वह तो अपने आपको ही इस कार्य का सर्वेसर्वा तथा ठेकेदार समझे हुए थे। न्यायालयों तथा पत्रों में अपनी करतूतों का भण्डाफोड़ उन्हें बुरी तरह अखरने लगा। इन नामधारी ईसाइयों का समीप से अध्ययन करने पर लाजपतराय के मन में इनके परोपकार तथा नैतिक आदर्शों के प्रति अश्रद्धा पैदा हो गयी। कई वर्ष पश्चात् जब उनको अमेरिका में भी ईसाई प्रचारकों के वैसे ही हथकण्डे देखने का अवसर मिला। यह लोग अमेरिका में धनी लोगों से भारत में काम करने के लिए धन प्राप्त करने के लिए भारत के बारे में कई प्रकार के अत्यन्त घृणित तथा हास्यस्पद भ्रम फैलाते थे। लाला जी के मन में इन लोगों के प्रति इस कारण वह संस्कार और भी दृढ़ हो गए। लाजपतराय ने इन मिशनरी संस्थाओं को अपना शत्रु बना लिया। निस्सन्देह यह बहुत बलशाली थे और प्रतिहिंसा के लिए उचित अवसर की घात में थे।

१८९७ तथा १८९८ के वर्ष लाजपतराय के लिए भी उसी प्रकार अनिष्ट सिद्ध हुए जैसे देश के लिए। अकाल के दिनों में आपको निरन्तर अगस्त के महीने तक अत्यन्त परिश्रम के साथ कार्य करना पड़ा। विश्रामार्थ आप कुछ दिनों के लिए ऐबटाबाद चले गए। वहां आप एक दिन वर्षा में बुरी तरह भीग गए जिससे आपको ज्वर आने लगा। लम्बे ज्वर से आपके जिगर पर सूजन आ गयी। आप सितम्बर से एप्रिल तक रोगग्रस्त होकर चारपाई पर पड़े रहे। यह जिगर का कष्ट आजीवन बना रहा। सम्भवत: इसका श्रीगणेश उस समय हुआ था जब आप रोपड़ में थे। इस बार रोग ने ऐसा भयंकर तथा चिंताजनक रूप धारण किया कि उनके मित्रों को उनके बचने तथा स्वस्थ होने की कोई आशा न रही।

उनकी बीमारी के दिनों में, उनके छोटे भाई दलपतराय पर राजयक्ष्मा का

आक्रमण हुआ। बड़े भाई के स्वस्थ होते होते छोटे भाई का रोग बहुत बढ़ गया। जून में लाजपतराय को उनकी मृत्यु तथा शाश्वत वियोग का दुख सहना पड़ा। लाजपतराय का दलपतराय से विशेष स्नेह था, क्योंकि उनके सारे परिवार में सार्वजनिक कार्य के लिए केवल वही होनहार दिखलायी पड़ते थे। "दलपतराय एक दृढ़ आर्य समाजी थे। उनको संस्कृत से बहुत प्रेम था। सम्भवतः इसी कारण वह अपना नाम दलपतराय विद्यार्थी लिखा करते थे। मुझे आशा थी कि वह मुझसे भी बढ़कर सार्वजनिक कार्य करेंगे। "यह उनके सम्बन्ध में लाला जी के शब्द हैं। दलपतराय कभी कभी लालाजी के लेखन कार्य में उनकी सहायता किया करते थे। हरकिशनलाल से मतभेद हो जाने पर उन्होंने पंजाब नेशनल बैंक के मंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया था। फिर आपने काश्मीर सरकार की नौकरी स्वीकार कर ली। आप बड़े होनहार व्यक्ति थे, मृत्यु के समय आप की आयु थोड़ी ही थी।

अध्याय सोलहवाँ

वकालत से विरक्ति-सार्वजनिक एवं शिक्षा का कार्य

एक कार्यव्यस्त वकील इतने अधिक विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए इस प्रकार समय निकाल सकता था यह आश्चर्य की बात है। वकालत का कार्य ऐसा है कि उसमें सफलता प्राप्ति के लिए सारा समय लगाना अनिवार्य है। उस व्यवसाय में पूर्ण सफलता प्राप्त करते हुए भी जो बिना पर्याप्त समय लगाये सम्भव नहीं, लाजपतराय की साहित्य रचनाएं इस प्रकार की थीं मानों वह अपना सारा समय लेखन तथा सम्पादन में ही लगाते हों। उनका भ्रमण प्रान्त भर में, उनके भाषण, धनसंग्रह, कतिपय संस्थाओं के कार्यालयों की देखभाल, आर्यसमाज का संगठन कार्य, डी० ए० वी० कालेज एवं अकाल पीड़ितों की सहायता अनाथालयों की स्थापना तथा देख-रेख—ऐसे कार्य थे जिनको दो चार सुयोग्य व्यक्ति सम्मिलित होकर भी नहीं कर सकते थे। परन्तु, लाजपतराय अकेले ही इनको पूरा करने की क्षमता रखते थे। स्वभावतः वह बाहर के काम तभी हो सकते थे यदि लाजपतराय अपने मुवक्किलों को कोरा उत्तर देकर उन्हें लौटा देते। कभी-कभी वह ऐसा किया भी करते थे। सत्य तो यह है कि उनका मन इस काम में नहीं लगता था, वह तो किसी अन्य कार्य में उड़ानें लेता फिरता था। फिर भी उनकी गणना चीफ कोर्ट के सफल वकीलों में होने लगी। "मेरे व्यवसाय से मेरे सार्वजनिक कार्य में बाधा पड़ती थी।" वह लिखते हैं। उनको एक साथ ही दो कठोर व्रत निभाने पड़ते थे।

कभी कभी तो वह सार्वजनिक कार्य के लिए अपने व्यवसाय को सदा के लिए त्यागने को उद्यत होजाते थे। सार्वजनिक कार्य का चुनाव तो उन्होंने स्वयं किया था, परन्तु व्यवसाय से तो वह परिस्थितिवश बँधे हुए थे। उनके निश्चय का प्रभाव उनके परिवार पर पड़ना भी स्वाभाविक था। इस समय तक वह तीन बच्चों के पिता बन चुके थे—दो पुत्र तथा एक पुत्री। इन सभी बच्चों का जन्म १८९०-१९०० में हुआ था। सबसे छोटा पुत्र पैदा होनेवाला था। उनके निश्चय में इतने अल्पायु बच्चों की सम्मति तो नहीं ली जा सकती थी, परन्तु उनका पालन पोषण भी एक भारी उत्तरदायित्व था। इस समय तक उनके भाइयों की शिक्षा समाप्त हो चुकी थी और वह अपने काम काज में लग गए थे। उनकी धर्मपत्नी तो क्या

सम्मति देतीं ? उनका उनसे प्रगाढ़ प्रेम कभी नहीं था। उनकी आत्मकथा में अपने माता पिता के लिए स्नेहपूर्ण वाक्य काफी पाए जाते हैं, कहीं कहीं अपने भाइयों अथवा बच्चों का वर्णन भी मृदुभावों से किया गया है, परन्तु अपनी जीवन-संगिनी के विषय में उनकी लेखनी सर्वथा मौन है। उनको गान्धी के वह रंगढंग जरा भी पसन्द नहीं थे जिनसे उन्होंने अपनी आत्मकथा अथवा "मेरे सत्य के प्रयोग" में कस्तूरबा का चित्र खींचा है, उन्होंने अपनी आत्मकथा में अपनी धर्मपत्नी के विषय में बहुत ही कम लिखा है।

उन दिनों की प्रथा के अनुसार, उनका विवाह छोटी आयु में हो गया था। वह अभी स्कूल के ही विद्यार्थी थे कि उनके माता पिता ने उनका विवाह कर दिया। माता पिता की आर्थिक दशा भी कुछ अच्छी न थी। पत्नी के पिता की स्थिति कहीं अधिक अच्छी थी। विवाह के कई वर्ष पश्चात् तक पति तथा पत्नी को साथ रहने का अवसर न मिला। उसके पश्चात् घरेलू जीवन आरंभ हुआ। इसमें तो सन्देह नहीं कि उनका दाम्पत्य जीवन कलह तथा कोलाहल से मुक्त था, परन्तु इसे उच्च प्रकार का गृहस्थ जीवन नहीं कहा जा सकता।

अपने विवाहित जीवन में वह कभी भी प्रेमी नहीं बन सके। हां, कर्तव्यशील पति बनने का प्रयत्न अवश्य करते रहे। मनोविज्ञान के विशेषज्ञों के सामने यह गंभीर प्रश्न है कि क्या उनका समाज सुधार, रचनात्मक कार्य तथा भ्रमणशीलता का अदम्य उत्साह इससे कहीं कम न होता यदि उनका अपने गृह तथा पत्नी से विशेष स्नेह होता। जैसी परिस्थिति थी, उसमें तो उनकी उचित शिकायत हो सकती है कि उनका विवाह एक ऐसी कन्या से कर दिया गया है जिसे उनकी जीवन समस्याओं से कोई दिलचस्पी नहीं। बेचारी स्त्री को भी इस न्यूनता का पूर्ण ज्ञान था, वह भी यथाशक्ति अपने पतिदेव के जीवन को सुखमय बनाने का प्रयत्न करने में ही सन्तुष्ट थीं। उनकी यह अनुभूति थी कि मेरा पति अपने गृह तथा बच्चों के प्रति यथोचित कर्तव्यपालन नहीं कर रहा है। वह यह भी समझती थीं कि उनको सुधारना भी सहज नहीं, अतः वह अपने भावों को मन ही मन दबा लेती थी। लाजपत राय के जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं के निर्णय में उनका कोई मतदान न था अतः उनके वकालत को छोड़ने के प्रश्न पर उनके माता पिता की सम्मति ही पर्याप्त थी।

मुंशी राधाकृष्ण प्रसन्न थे कि उनके वकील पुत्र की फीसों से उनके घर में लक्ष्मी का प्रवेश हो गया। पुत्र की इच्छा के अनुसार, उन्होंने अपनी नौकरी तो कभी की छोड़ दी थी। वह इस बात के सर्वथा विरुद्ध थे कि लाजपतराय युवावस्था ही में वकालत का व्यवसाय बन्द कर दे। पिता और पुत्र में मतभेद हो गया।

उन्होंने लिखा था "वकालत का काम मेरी रुचि के अनुकूल नहीं था। मैं इसे त्याग कर देश सेवा के कार्य में ही दत्तचित्त होकर लगना चाहता था, परन्तु मेरे पिता जी इसमें बाधक थे। उनकी इच्छा थी कि मैं काफी धनराशि जोड़ लूं तथा अपने भाइयों और बच्चों के लिए पर्याप्त प्रबन्ध करूं। मैं उत्तर दिया करता था कि मैं अपने भाइयों को शिक्षित करने का कर्तव्य पालन कर चुका हूं, और बच्चों के निर्वाह के लिए मेरे पास काफी धन है। इस शुभ विचार में मेरी माता जी कोई बाधा नहीं डालती थीं। उनकी सहानुभूति मेरे साथ थी।"

मतभेद तथा संघर्ष कुछ काल तक चलते रहे। १८९८ में आर्य समाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर उन्होंने अपने इस निश्चय की घोषणा कर डाली कि भविष्य में मैं अपनी वकालतल का काम घटाता जाऊंगा और कालेज, आर्य समाज तथा देशसेवा में अधिकाधिक समय दिया करूंगा।" अब उन्होंने स्कूल भवन के एक कमरे में अपना कार्यालय खोल दिया और वहां प्रतिदिन (जब दौरे पर बाहर नहीं होते थे) कालेज तथा स्कूल के कार्य के लिए जाया करते। अब तो लाहौर से बाहर के समाजों में भी अधिकाधिक जाने लगे। उनकी घोषणा के उपरान्त कालेज दल से सम्बद्ध प्रत्येक समाज ने उनको अपने वार्षिकोत्सव पर निमंत्रित करना अपना अधिकार तथा कर्तव्य समझ लिया। कालेज में उन्होंने भारतीय इतिहास पर व्याख्यान देना भी शुरू कर दिया। अब उनका आत्म विश्वास भी बढ़ गया। इतनी ख्याति प्राप्त कर लेने पर भला यूनिवर्सिटी की उपाधियों का अभाव किसे खटक सकता है? उन्होंने उर्दू में एक छोटी सी पुस्तक स्कूल के विद्यार्थियों के लिए लिखी जिसमें भारत की प्राचीन सभ्यता का वर्णन था। (यह बड़ी आयुवालों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुई।) यह भारतीय इतिहास के हिन्दूकाल पर उनकी विस्तृत तथा बृहत्तर पुस्तक की भूमिका मात्र थी जिसकी रचना उन्होंने कई वर्ष पश्चात् असहयोग आन्दोलन के दिनों में कारावास में की थी। आपने पाठशालाओं के लिए एक अंग्रेजी की पाठ्य पुस्तक भी संकलित की। कुछ समय तक तो ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उन्होंने पूर्ण रूप से अध्यापक तथा शिक्षक बनने का ही निश्चय कर लिया है, परन्तु कालेज में आपने तीन मास से अधिक अध्यापन कार्य नहीं किया।

अब वह अपनी वकालत का काम प्रति दिन घटाते जा रहे थे। इसके दो वर्ष पश्चात् आपने यह निश्चय कर लिया कि जो कुछ वकालत से कमाएंगे, वह सब दान कर देंगे। आपने एक पत्र द्वारा इस बात की सूचना अपने मित्र आचार्य हंसराज को दे दी। कई वर्ष तक वह डी० ए० वी० कालेज तथा समाज को अपनी समस्त आय अर्पित करते रहे। यह पग उठाने में उनका वास्तविक उद्देश्य यह था कि

वह अपना समय तथा शक्ति केवल धनोपार्जन के कार्य में ही न लगा सकें। वह अपने सेवा के कार्य में किसी प्रकार की बाधा पसन्द नहीं करते थे। यद्यपि वह अपनी सारी कमाई कालेज तथा समाज को अर्पित कर देते थे, परन्तु वह उस धन को अन्य कार्यों में व्यय करने में भी स्वतंत्र थे। इस प्रकार का त्याग अद्वितीय तथा अनोखा था, जिसका भारी प्रभाव जनता पर पड़ा। धन से निर्मोहपन के इसी गुण तथा असाधारण प्रबल वक्तृत्व कला ने उन्हें सफल भिक्षुक बनाया था। आर्यसमाज के वार्षिकोत्सवों पर धन संग्रह की अपील सदा ही उनके द्वारा हुआ करती थी। आपके भाषण से प्रभावित होकर बड़े बड़े कंजूस भी अपनी थैलियों के मुख खोले देते थे। कालेज तथा समाज की आर्थिक दशा इससे काफी सुधरने लगी।

अध्याय सत्रहवाँ

हरकिशनलाल के साथ मैत्री का उतार चढ़ाव

१८९०-१९०० ई० में लाहौर में एक प्रभावशाली तरुण बैरिस्टर हरकिशन लाल रहते थे। चीफ कोर्ट में लाजपतराय का उनसे सम्पर्क हुआ। हरकिशनलाल सदा आर्य समाज की खिल्ली (हंसी) उड़ाया करते थे और आर्यसमाजियों को ढकोसलेबाज तथा पाखण्डी इत्यादि नाम से पुकारा करते थे। फिर भी इनमें तथा लालाजी में कई बातों की समानता थी जिसके कारण उनमें सहकारिता तथा मित्रता हो गयी।

यद्यपि शिक्षा समाप्त करके श्री हरकिशनलाल अभी नये ही इंग्लैण्ड से लौटे थे, परन्तु उन्हें अपने व्यक्तित्व के महत्व का पूर्ण ज्ञान होने लगा। उनका विद्यार्थी जीवन प्रतिभापूर्ण था। कैम्ब्रिज में उनकी गणना गणित के प्रवीण छात्रों में होती थी। अधिकांश अन्य भारतीय छात्रों की नाई उन्होंने भी बैरिस्टरी पास की, परन्तु ध्यान उनका स्टाक एक्स्चेंज के उतार-चढ़ाव तथा जगत सेठों के रंग ढंग की ओर लगा रहता था। जब वह लाहौर आये तो उनका मस्तिष्क विचारों से परिपूर्ण था, अर्थशास्त्र तथा अर्थशास्त्री सेठों के हथकण्डों से उनका पूर्ण परिचय था। तरुण होते हुए भी उन्हें समाज की साधारण रीति नीति तथा परम्पराओं की अवहेलना करने में कोई संकोच नहीं था। उन्हें विश्वास था कि किसी दिन वह एक बड़े आदमी अवश्य बनेंगे, चाहे वकालत में हो, चाहे राजनीति, उद्योग धन्धे तथवा व्यापार क्षेत्र में। उन दिनों वकालत में प्रतिभाशील लोगों को सफल होने के काफी अवसर प्राप्त थे। पंजाब में राजनैतिक क्षेत्र का बीजारोपण हो चुका था। वहां भी मेधावी तथा साहसी नेताओं के सफलीभूत होने की खासी सम्भावना थी। व्यापार तथा उद्योग धन्धे में अभी पंजाबी बहुत पीछे थे। हरकिशनलाल ने बैरिस्टरी शुरू कर दी, परन्तु उन्हें यह निश्चय न था कि इसी व्यवसाय में दृढ़ रह सकूंगा। वह इस बात की ताक में रहने लगे कि उद्योग धन्धे अथवा राज-नीति में कहां तक सफलता की सम्भावना है। धर्म में अविश्वासी होने के कारण वह आर्य समाज में सम्मिलित न हुए। वह आर्यसमाजियों की अत्यधिक गंभीरता तथा अध्यवसाय-शीलता पर खूब खिलखिलाकर हंसा करते थे। वह उनको सदा घृणा की दृष्टि से

देखते थे। तथा उनको अपनी उग्र आलोचनाओं का निशाना बनाने से कभी नहीं चूकते थे। अपनी मित्र-मण्डली के साथ सायंकाल घूमते हुए वह काफी अनर्गल प्रलाप करते थे। उन दिनों कोई बैरिस्टर कालर टाई के बिना घर से बाहर पग नहीं निकालता था। परन्तु हरकिशनलाल आधी बांह की कमीज तथा निकर पहन-कर निश्चिन्त घूमा करते थे। दूसरों को तो अपनी बदनामी की चिन्ता रहती थी, परन्तु यह महाशय इसकी रत्ती भर भी परवा न करते हुए स्वच्छन्द घूमते थे। उन दिनों हरकिशनलाल समाज की परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह की मूर्ति बने हुए थे। और अपनी वेषभूषा, चाल ढाल तथा विचारों द्वारा समाज में सनसनी पैदा करने पर कटिबद्ध थे।

हरकिशनलाल के साथ उन दिनों की खुली तथा स्वच्छन्द बातचीत का वर्णन करते हुए, लाजपतराय लिखते हैं: "हमारा मिलन प्रायः होता रहता था और बहुधा वह उन लोगों की जीवन कथाएं सुनाया करते थे जो बैंकों तथा सम्मिलित पूंजी की कम्पनियों द्वारा धन कुबेर बन गए थे। वह विस्तृत रूप से बतलाया करते थे कि कम्पनियों के शेयरों के मूल्य में स्वेच्छा से उतार चढ़ाव करने पर वह किस प्रकार लाखों करोड़ों के वारे न्यारे कर लेते थे। इन बातों को सुनकर हमारे हृदय में हरकिशनलाल की प्रतिभा तथा व्यापारिक जगत के विषय में उनके विशाल ज्ञान पर जहां हम चकित रह जाते थे, वहां अस्पष्ट रूप से यह प्रश्न भी हमारे मन में स्वभावतः उत्पन्न होता था कि उच्च अर्थवाद के जिन जादूगरों का आदर्श हरकिशन लाल अपने सन्मुख रखते थे, क्या यह अनुकरणीय है?"

कई पहलुओं में समता तथा सादृश्य रखते हुए भी लाजपतराय तथा हरकिशन लाल कई अन्य बातों में सर्वथा एक दूसरे से भिन्न थे। कभी वह मिलकर काम करते, कभी उनके मार्ग पृथक पृथक हो जाते। दोनों सर्वथा भिन्न कार्यक्षेत्र में काम करने लग जाते। तीस वर्षों में कई बार एक दूसरे के समीप आए, फिर पृथक हो गए और परस्पर सहयोगी के स्थान पर प्रतिद्वन्द्वी बन गए। स्थायी मैत्री, जिसमें एक दूसरे के अधीन होकर काम करता, उनमें संभव न थी। परन्तु एक को दूसरे की योग्यता तथा क्षमता के प्रति पूरा आदर था। हरकिशनलाल में एकछत्राधिपति की-सी अहम्मन्यता का विकास होता गया, और उनको समाज के उच्च पदाधिकारी लोगों को अपमानित करने में विशेष आनन्द आने लगा, परन्तु लाजपतराय के प्रति वह सदा सन्मान प्रदर्शन करते थे।

१९०० ई० से पूर्व उन्होंने राजनीति तथा व्यापार दोनों में मिलकर काम करने का प्रयत्न किया, परन्तु दोनों प्रयत्न असफल रहे, प्रत्युत खासा बिगाड़ और कटुता पैदा हो गयी। आगामी वर्षों में दोनों ने अपने अपने क्षेत्र में वह नाम तथा ख्याति

प्राप्त की कि पंजाब भर में उनके व्यक्तित्व का जोड़ मिलना असम्भव था। १९२० के लगभग, गत प्रतिद्वंद्विता को भूलकर, वह फिर मिलकर काम करने लग गए। जब हरकिशनलाल के बैंक फेल हो जाने पर उसके अंग्रेज शत्रुओं को आनन्दोत्सव मनाने का अवसर मिला, उस समय भी लाजपतराय ने किसी प्रकार से उनकी निन्दा नहीं की। १९१९ ई० में मार्शल ला (सैनिक शासन) की अग्निपरीक्षा के दिनों में उनके शानदार आचरण को देखकर प्रत्येक पंजाबी का सिर गर्व से ऊँचा हो जाता है। जब वर्षों के निर्वासन के पश्चात्, लाजपतराय पंजाब लौटे तो दोनों का पुर्नमिलन बड़े सन्मान से हुआ, और दोनों माइकल ओडवायर की ओर से किए गये पंजाब के प्रति अन्याय के निवारण के लिए चिन्तित थे। ओडवायर, लाजपतराय तथा हरकिशनलाल, दोनों को समान रूप से घृणा की दृष्टि से देखता था; यही घृणा उनकी पारस्परिक मैत्री का कारण हुई। अमेरिका में वर्षों की अनुपस्थिति के पश्चात् जब लाजपतराय पंजाब में कार्य करने के लिए डट गए तो उन्होंने उर्दू दैनिक "वन्दे मातरम्" का संचालन आरम्भ किया तथा तिलक राजनीति विद्यालय की नींव रखी। हरकिशनलाल ने सहायतार्थ उदारता का हाथ बढ़ाया।

वह पत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सेदार तथा डायरेक्टर बन गया तथा उसने तिलक राजनीति विद्यालय को दस हजार रुपया दान देने का वचन दिया। यह सहकारिता थोड़े ही दिन चल पायी। असहयोग आन्दोलन के कारण वह फिर भिन्न-भिन्न पक्षों में विभाजित हो गए—हरकिशनलाल तो सरकार की मशीन का पुर्जा बन गया और लाजपतराय सरकार के कारागार का वासी। हरकिशनलाल वाले वन्देमातरम् के हिस्से भी लाजपतराय को खरीदने पड़े, और दस हजार रुपए का वचन भी पूरा न हुआ। जब लाजपतराय ने उसे याद दिलायी, तो हरकिशनलाल ने बम्बई से (वह योरुप जा रहा था) लिखा कि मुझे न तो तिलक और न किसी अन्य राजनीतिक विद्यालय में विश्वास है। मुझसे धन मांगना व्यर्थ है। पहले आपके मित्र मुझे अपने विचारों मे सहमत तो बना लें। इस प्रकार उनकी इस विचित्र तथा संदिग्ध मित्रता का ज्वार भाटा जीवनपर्यन्त चलता रहा।

हमें अपने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग के कथासूत्रों को हाथ से छोड़ नहीं देना चाहिए। चिरकाल से मूलराज का अनुरोध था कि रचनात्मक स्वदेशी आन्दोलन की सफलता के लिए प्रथम पग एक भारतीय सहकारी बैंक की स्थापना है। उनकी आयोजना से ही लाजपतराय ने अपने कुछ चुने हुए मित्रों को एक पत्र लिखा। इसका उन्हें संतोषजनक उत्तर प्राप्त हुआ। लाजपतराय का निश्चय था कि बैंक का काम कोई अन्य व्यक्ति संभाले। वह स्वयं तो अत्यन्त कार्य-व्यस्त थे और वह नहीं चाहते थे कि कालेज तथा समाज के काम को किसी प्रकार की

हानि पहुंचे। इसी काल में हरकिशनलाल की प्रतिभा वेग से अपने चमत्कार दिखलाने लगी और चारों ओर उसकी प्रसिद्धि होने लगी। यद्यपि वह आर्य-समाजियों की सदैव हंसी उड़ाया करता था, परन्तु शीघ्र ही यह बात उसकी समझ में आ गयी कि पंजाब में किसी भी काम अथवा व्यवसाय की सफलता और कृत-कार्यता के लिए आर्यसमाजियों का सहयोग आवश्यक होगा। उसने मूलराज से प्रायः विचार विनिमय किया। वह दयालसिंह मजीठिया का विश्वासपात्र बन गया और दयालसिंह के पत्र—ट्रिब्यून के सम्पादक, नगेन्द्रनाथ गुप्त को भी उसने अपने पक्ष में कर लिया। पंजाब नेशनल बैंक चालू कर दिया गया। लाज-पतराय उसके डायरेक्टरों के बोर्ड में न थे, परन्तु मूलराज और हरकिशनलाल ने उनके भाई, दलपतराय को बैंक का मैनेजर नियुक्त कर दिया। इस प्रयोग से हरकिशनलाल के साथ लाजपतराय की मैत्री को प्रथम चोट पहुंची।

"सेक्रेटरी के तौर पर, हरकिशनलाल के आदेश से मेरे भाई ने एक ऐसा काम किया जिसमें एक अन्य डायरेक्टर भी सम्बद्ध थे। इस सौदे से बैंक को हानि हुई, बोर्ड ने मैनेजर को आज्ञा दी कि इसका समस्त ब्यौरा हरकिशनलाल के सामने रखे मेरे भाई ने हरकिशनलाल को वह पत्र ही दिखला दिया जिसपर उसके निजी निर्देशों के नीचे उसके अपने हस्ताक्षर थे। हरकिशनलाल चाहता था कि दलपत-राय उस पत्र को ही विनष्ट कर दे, परन्तु उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस पर हरकिशनलाल बहुत बिगड़े और उसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।"

"दलपतराय की दस सहस्र रुपये की जमानत वापस करने में काफी देर लगाकर हरकिशनलाल ने कड़वाहट में वृद्धि कर दी।" बोर्ड ने यह धन मेरे भाई को उनकी मृत्यु के पश्चात् ही वापस दिया, बैंक की नौकरी से त्यागपत्र देने के एक वर्ष पीछे उनका स्वर्गवास हो गया। मेरे भाई ने यह धन मुझसे उधार लिया था और वह बेचारा अन्तिम क्षण तक इसके बारे में दुखी रहा।"

मित्रता पर दूसरी चोट भी शीघ्र ही पड़ी। हरकिशनलाल को अनुभव होने लगा कि पंजाब नेशनल बैंक के बोर्ड में उसकी दाल नहीं गलती। उसने पीपुल्ज़ बैंक चालू कर दिया। जब उसकी पंजाब नेशनल बैंक की डायरेक्टरी की अवधि समाप्त हुई, तो पुनः चुनाव के लिए वह खड़ा हो गया। उसके मुकाबले आर्यसमाज दल ने लाजपतराय को खड़ा कर दिया। दोनों में यह प्रथम सीधी प्रतिद्वन्द्विता थी, जिसमें लाजपतराय की विजय हुई। लाजपतराय अपनी आतमकथा में लिखते हैं—"उसके स्थान पर मैं चुना गया। इसका परिणाम स्थायी कलह तथा कटुता थी। कांग्रेस के फण्ड के प्रश्न पर तो यह झगड़े बहुत ही उग्र रूप धारण कर गए। भारत बीमा कम्पनी में भी मूलराज तथा हरकिशनलाल में बुरी तरह का मतभेद हो गया।

सत्य यह है कि मूलराज इतने बिगड़े मानों हरकिशनलाल का विनाश ही उनके जीवन का मिशन (लक्ष्य) बन गया हो।"

हरकिशनलाल तथा आर्य समाजियों में नहीं पट सकी, जिससे आर्यसमाजी कांग्रेस आन्दोलन से दूर होते गये। दयालसिंह मजीठिया, जिन्होंने अनेक लोकोपकारी ट्रस्टों की स्थापना की तथा "ट्रिब्यून" का संचालन किया, पंजाब कांग्रेस के मामले में विशेष उत्साह तथा दिलचस्पी रखते थे। १८९३ के कांग्रेस अधिवेशन को पंजाब में निमंत्रित करने वाले बख्शी जैशीराम थे जो लाहौर बार एसोसिएशन तथा आर्य समाज के प्रमुख सदस्य तथा डी० ए० वी० कालेज दल के महत्वपूर्ण अगुआ थे। परन्तु आर्यसमाजियों को तो कांग्रेस के काम में कोई दिलचस्पी नहीं थी। "महात्मा" दल तो सिद्धान्ततः राजनीति (राजद्रोही संस्थाओं के अधीन) में पड़ने के विरुद्ध था। विशेषकर मूलराज भी कांग्रेस के प्रति अपना विरोध प्रकट कर चुके थे (यद्यपि वह पर्दे के पीछे रह कर नेता का पार्ट करने को चिन्तित रहते थे)। दयालसिंह को स्वागत कारिणी समिति का सभापति बना दिया गया। वह तथा उनका सहकारी, ब्रह्मसमाजी योगेन्द्रचन्द्र बोस ही पंजाब कांग्रेस में विख्यात मूर्तियां थीं। हरकिशनलाल दयाल सिंह का प्रियपात्र बन गया और उसने पूर्ण रूप से सरदार दयालसिंह की राजनीति को अपना लिया। १८९३ का अधिवेशन तथा उसके कई वर्ष पीछे तक पंजाब कांग्रेस मुख्यतः दयालसिंह तथा हरकिशनलाल के हाथ में रही।

१९०० में लाहौर के सौभाग्य से कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन भी वहां हुआ। १८९८ में दयालसिंह का परलोकगमन हो चुका था। बख्शी जैशीराम निरन्तर राजनीति में दिलचस्पी दिखलाते रहे और १९०० तक अपने क्षेत्र में उनका काफी प्रभाव स्थापित हो चुका था। अतः इस अधिवेशन में आर्यसमाजियों की ओर से, गत अधिवेशन की अपेक्षा कहीं अधिक,उत्साह दिखलाया गया। वह काफी अनुभवी तथा विधिपूर्वक काम करनेवाले थे और यह उन्हीं की आयोजना थी कि अस्थायी पण्डाल के निर्माण पर धन नष्ट करने के स्थान पर एक महान् हाल बने जहां कांग्रेस का अधिवेशन भी हो जाय और जो स्थायी भवन का काम भी दे। ब्राडला हाल का निर्माण इस प्रकार हुआ, यद्यपि कुछ आर्यसमाजियों को एक विदेशी के नाम पर हाल का नाम रखना पसन्द नहीं था।

अन्य बातों के अतिरिक्त, आर्यसमाजियों तथा हरकिशनलाल में कांग्रेस अधिवेशन के हिसाब किताब के बारे में भी मतभेद हो गए। अधिवेशन से कुछ ही मास पूर्व बख्शी जैशीराम की मृत्यु हो गयी जिसका कि डी० ए० वी० कालिज तथा उनके मित्रों को भारी शोक हुआ। उनकी मृत्यु से पंजाब के राजनीतिक जीवन

को बहुत धक्का लगा। स्वागतकारिणी समिति के प्रधान काशीप्रसन्नराय ने उन्हें "इस प्रान्त में कांग्रेस आन्दोलन के प्राण तथा प्रकाशस्तम्भ" के शब्दों से यादकिया। इन दिनों के विषय में लिखते हुए लाजपतराय कहते हैं—"१९०० के कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात् पंजाब से राजनीतिक जीवन का सर्वथा लोप हो गया। उससे पूर्व भी उसका अस्तित्व नाममात्र ही था। परन्तु जब तक बाबू योगेन्द्रचन्द्र वसु लाहौर रहे तथा जब तक बख्शी जैशीराम जीवित रहे, इंडियन एसोसिएशन तथा पंजाब कांग्रेस कमेटी किसी न किसी प्रकार काम करती थीं। यह कार्य भी कोई अधिक महत्वपूर्ण न था, परन्तु भारत के अन्य प्रान्तों में जो कुछ होता था, उसी की प्रतिमूर्ति यहां भी दिखलायी पड़ती थी। जब कभी नया लेफ्टेनेण्ट गवर्नर जाता था, इंडियन एसोसिएशन उसके स्वागतार्थ उसे मानपत्र पेश करने को उद्यत रहता। परन्तु बख्शी जैशीराम की मृत्यु के पश्चात् इंडियन एसोसिएशन तथा पंजाब कांग्रेस कमेटी दोनों सो गयीं। कांग्रेस नीति से मतभेद के कारण तथा हरकिशनलाल से न पटने के कारण आर्यसमाजी उदासीन हो गए। मजे की बात यह है कि लाला हरकिशनलाल का राजनैतिक दृष्टिकोण ठीक वही था, जो आर्यसमाजियों का था, फिर भी वह प्रकट रूप से कांग्रेसी बने हुए थे।" क्या आर्यसमाजियों की तरह हरकिशनलाल के मन में कांग्रेस के बारे में कोई सन्देह थे? आगे चलकर, १९०७ के विपत्तिकाल में, कुछ आर्यसमाजी नेताओं ने "हिन्दू स्वार्थों" के नाम पर प्रोटेस्ट करते हुए, समस्त "राजद्रोही" कार्यों से सम्बन्ध विच्छेद करने की घोषणा की थी, हरकिशनलाल भी उन्हीं के साथ था—न कि संदिग्ध व्यक्तियों के साथ। जिस समय लाजपतराय ने यह शब्द लिखे थे, उनके सन्मुख १९०७ के राजभक्ति के शिष्ट मण्डलों के चित्र अवश्य थे।

१९०० में, लाहौर कांग्रेस के अवसर पर भी, पंजाब का सार्वजनिक जीवन दो विरोधी दलों में विभक्त हो चुका था। एक दल हरकिशनलाल का था तथा दूसरा आर्य समाज का। ट्रिब्यून ट्रस्ट के प्रवर्तक, दयालसिंह ने अपने मृत्यु पत्र में हरकिशनलाल को ट्रस्टी नियोजित किया था। दयालसिंह के जीवनकाल में आर्य समाजियों को पत्र के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी। परन्तु हरकिशनलाल के प्रबन्ध के आरम्भ होते ही परिस्थिति बदल गयी। लाहौर कांग्रेस के दिनों में भी ट्रिब्यून हरकिशनलाल का पत्र बन चुका था। "सरदार दयालसिंह के जीवनकाल में आर्य समाजियों को उसके पत्र के विरुद्ध किसी प्रकार की शिकायत न थी। वास्तव में सरकारी क्षेत्रों में ट्रिब्यून को आर्यसमाज का पत्र समझा जाता था। प्रान्त भर में आर्य समाज ही एक जीवित तथा क्रियाशील संस्था थी और प्रमुख वकीलों का अधिकांश आर्यसमाजी था। स्वभावतः सरकार समझती थी कि शासन की विरोधी

आलोचना का उत्तरदायित्व आर्यसमाजियों पर है। जब पत्र हरकिशनलाल के हाथ आया, तो उसकी नीति में परिवर्तन हो गया और आर्यसमाजी असन्तुष्ट हो गये।"

आर्यसमाजी नेताओं ने एक अपना पत्र चलाने पर विचार करना शुरू किया। १९०० के ब्राडला हाल वाले कांग्रेस अधिवेशन के पीछे पंजाब में राजनीतिक जीवन पूर्ण रूप से समाप्त हो गया था। वैसे तो पंजाब में कांग्रेस का कार्य कभी भी सन्तोष-जनक नहीं था, परन्तु जो थोड़ा बहुत कार्य होता था, उसकी भी इतिश्री हो गयी। १९०० के कांग्रेस अधिवेशन के हिसाब किताब के झगड़ों का फैसला होने में नहीं आता था। जब कभी सभा होती, वही वादविवाद छिड़ जाता। अन्त में लाला हरकिशनलाल ने सभा बुलाना ही बन्द कर दिया।. . .इंडियन एसोसिएशन पहले ही कुम्भकर्ण की नींद में था। पंजाब में राजनीतिक जीवन का दीपक बुझ-सा गया। लार्ड कर्ज़न के शासन काल के आरम्भ में जिस प्रकार का आन्दोलन अन्य प्रान्तों में उठ खड़ा हुआ, पंजाब में उसका कोई चिह्न दिखलायी नहीं पड़ता था।" शासक गण जनमत की ओर से सर्वथा उदासीन हो गए। शीघ्र ही पंजाब के नेताओं को होश आया और वह समझने लगे कि हमें भी प्रान्त के राजनीतिक जीवन में जागृति पैदा करना उचित है, नहीं तो हम घृणा पूर्वक पांव तले रौंदे जाएंगे। १९०३ तथा १९०४ में आर्यसमाजी नेताओं ने राजनीतिक आन्दोलन में स्फूर्ति लाने का बारबार प्रयत्न किया। परन्तु प्रश्न यह था कि उसे किस प्रकार किया जाए? कांग्रेस कमेटी मृत्यु शैय्या पर थी और उस पर हरकिशनलाल का एकाधिकार था। इंडियन एसोसिएशन मृतप्राय थी। "ट्रिब्यून" सर्वथा हरकिशनलाल की अंगुली के इशारे पर नाच रहा था। उसकी नीति बड़ी घृणास्पद थी। आर्य समाजियों के लिए अपने पत्र चलाने के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं था। पंजाब के लिए एक प्रबल तथा प्रभाव-शाली पत्र ही हरकिशनलाल की समस्या का हल था।

अध्याय अठारहवाँ

साप्ताहिक पंजाबी का प्रकाशन

नवीन (बीसवीं) शताब्दी में लाजपतराय ने अत्यन्त विशाल तथा विकसित दृष्टिकोण के साथ प्रवेश किया। जिस नवीन शक्ति का संचार उनके शरीर तथा आत्मा में हो रहा था, उसके उचित प्रकाशन के लिए आर्य समाज तथा पंजाब का क्षेत्र प्रति दिन सीमित तथा संकुचित हो रहा था। पंजाब में उनकी ख्याति मेज़िनी तथा गैरीबाल्डी के जीवनी लेखक के रूप में तो हो चुकी थी, परन्तु उन्हें सामाजिक अथवा धार्मिक आन्दोलन के नेता के रूप में बहुत कम लोग जानते थे। अपने स्थान पर तो यह छोटी बातें भी ठीक थीं, परन्तु उनकी आत्मा की आकांक्षा उच्च तथा व्यापक उड़ान की थी।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कांग्रेस भी अभी अक्षम थी, हां निस्संदेह उसमें प्रसार तथा प्रगति की सम्भावना काफी थी। उसकी नसों में अभी उष्ण रक्त का अभाव था, परन्तु उचित उत्तेजना द्वारा यथार्थ क्षेत्र तैयार हो सकता था।

जैसा हम ऊपर वर्णन कर आए हैं, लाहौर के १९०० वाले अधिवेशन के पीछे, पंजाब में उदासीनता की लहर छा गयी। कांग्रेस का संचालक, हरकिशनलाल भी खाली बैठे बैठे तंग आ गया। यह सब लाजपतराय की रुचि के प्रतिकूल था। उन्होंने अपना समय तथा शक्ति सीधे राजनैनिक कार्यों पर लगाना आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही उनकी समझ में यह बात आ गयी कि प्रान्त की प्रथम बड़ी आवश्यकता एक पत्र है। उनका तथा उनके साथियों का विश्वास था कि पंजाब के वर्तमान पत्र जनमत की दृढ़ नींव रखने के लिए वह भाग लेने को तैयार नहीं जिसके बिना किसी राजनैनिक भवन का निर्माण असम्भव है। वह इस न्यूनता पर गंभीरता से विचार कर ही रहे थे कि एक दिन परिस्थिति असह्य हो उठी। गवर्नमेण्ट कालेज लाहौर के कुछ विद्यार्थियों ने बिना हस्ताक्षरों के एक लेख भेजा जिसकी मूल पाण्डुलिपि लाहौर के प्रमुख भारतीय पत्र के सम्पादक महोदय ने कालेज के प्रिंसिपल के हवाले कर दी। सम्पादक महोदय का यह कार्य सम्पादन-कला के मूल सिद्धान्तों के विपरीत था और इससे वह जनता के विश्वासपात्र बनने के सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुए। बेचारे विद्यार्थियों को दण्ड मिला। इससे लाजपतराय तथा उनके मित्रों ने तत्काल ही

अपना पत्र जारी करने का निश्चय कर लिया। दस व्यक्तियों ने एक एक सहस्र रुपये डालकर काम आरम्भ कर दिया। वह हानि उठाने को भी उद्यत थे। एक व्यवसाय कुशल नवयुवक जसवन्तराय को जिसने एम० ए० पास करते ही डी० ए० वी० कालेज में पढ़ाना शुरू कर दिया था, पत्र का मैनेजर बनाया गया। पत्र का नाम "पंजाबी" था। प्रथम दिन से ही जनता पर यह प्रभाव पड़ा कि पत्र निर्भीकता के साथ जनता का पक्ष लेगा। सभी को विदित था कि पत्र की नीति लाजपतराय द्वारा ही निर्धारित होगी। तिलक के सुझाव पर के० के० अथावले पत्र के सम्पादक नियुक्त हुए। लाजपतराय स्वयं अपने नाम से भी प्रायः लेख लिखा करते थे। "पंजाबी" से प्रान्त के पत्रों की केवल संख्या वृद्धि ही न हुई। निश्चय रूप से, उसका उद्देश्य भिन्न भिन्न प्रकार से पंजाब में एक नवीन जागृति उत्पन्न करना भी था। दूसरे लोग चाहे इस पत्र को जो समझते रहे हों, लाजपतराय के लिए तो जो काम उन्होंने मेजिनी के प्रकाशन से आरम्भ किया था, यह उसी समारंभ की एक कड़ी थी। दोनों दशाओं में कार्य एक ही था। पत्र भी उन्हीं विचारों के प्रचार का एक अन्य साधन था। यह साधन प्रबलतर था क्योंकि यह उन्हीं सिद्धान्तों को दैनिक घटनाओं पर लागू करता था। सुषुप्त जनमत में स्फूर्ति लाने के लिए यह पत्र जारी किया गया। गत तीन वर्षों से यह जनमत निष्क्रिय हो रहा था।

आजकल के पत्रों की तुलना में तो "पंजाबी" कोई बड़ा पत्र नहीं था। आगामी युग के अखबारों के मुकाबले में तो वह और भी साधारण सिद्ध होगा। यह आठ पृष्ठों का एक साप्ताहिक पत्र था जो एक अविख्यात छापाखाने (मुद्रणालय) से निकलता था। उन दिनों, समाचारों के शीर्षक, चित्र, ब्लाक आदि का किसी सम्पादक को ध्यान ही न आ सकता था, ब्लाकों के लिए तो बम्बई, पूना अथवा कलकत्ता दौड़ना पड़ता था। अधिकांश समाचारपत्रों के सम्पादकों को पत्रों के बाह्य सजधज के ढंग का कोई ज्ञान न था और न पाठकों की ही इस ओर रुचि थी। जो कुछ कहना होता, सीधे सादे, सरल तथा स्पष्ट शब्दों में कह दिया जाता। उसका मुख्य उद्देश्य पंजाब को आनेवाले संघर्ष के लिये तैयार करना था। यह आगामी संघर्ष वयोवृद्ध कांग्रेसी नेताओं को तो दिखलायी नहीं पड़ता था, परन्तु कुछ तरुण दल वालों तथा लाजपतराय को रहस्यमय ढंग से गन्ध सी आने लगी थी। प्रति सप्ताह स्थानीय शिकायतों तथा दुखड़ों, पुलिस के अत्याचारों तथा अंग्रेजों के वंशाभिमान आदि के समाचार पंजाबी के स्तम्भों में प्रकाशित होते थे। इनके अतिरिक्त लार्ड कर्जन के विश्वविद्यालय बिल जैसे सार्वदेशिक प्रश्न, विदेशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएं होती थीं जिनका उपयोग जनमत को जगाने के उद्देश्य से होता था। आरम्भ से ही "पंजाबी" इस बात पर विशेष ध्यान दिला रहा था कि जारशाही रूस पर जापानी

विजय से क्या क्या शिक्षाएं ग्रहण की जा सकती हैं। इन जापानी जीतों का प्रभाव समस्त पूर्वीय देशों की चेतना पर पड़ रहा था और "पंजाबी" की कोशिश थी कि उसके पाठक उस उत्साहप्रद अभाव से वंचित न रह जावें।

जिस महान संघर्ष की तैयारी लाजपतराय तथा "पंजाबी" कर रहे थे, वह आशातीत शीघ्रता से आ उपस्थित हुआ। बंगाल में तो उसका आगमन गवर्नर-जनरल-कर्जनके बंगविच्छेद की आज्ञा द्वारा हुआ, पर पंजाब में लेफ्टेनेण्ट-गवर्नर इब्टसन के भूमि सम्बन्धी कानूनों तथा नहरी आबादी के कानूनों द्वारा प्रकट हुआ। "पंजाबी" ने इन प्रश्नों पर जनमत के निर्माण में तथा स्पष्ट और साहसपूर्ण ढंग से उसे उपस्थित करने में बढ़ चढ़ कर उस समय भाग लिया जिन दिनों आन्दोलन की आंधी प्रति दिन वेग से बढ़ रही थी।

अध्याय उन्नीसवाँ

बहन निवेदिता

"पंजाबी" दल ने कांग्रेस के साथ पुनः सम्पर्क पैदा करने का निश्चय किया और इसीलिए बम्बई की १९०४ वाली कांग्रेस को अपने प्रतिनिधि भेजे। लाजपतराय तथा उनके मित्र द्वारकादास, जिनके नाम पर उन्होंने लोकसेवक मण्डल को प्रदान किए गए पुस्तकालय का नाम रक्खा, कांग्रेस अधिवेशन में इस दल की ओर से प्रमुख नेता थे। कांग्रेस अभी पुराने ढर्रे पर ही चली जा रही थी। अभी तक उसमें अधिकारों की प्राप्ति के लिये संग्राम की वृत्ति पैदा नहीं हुई थी और वह किसी प्रकार का रचनात्मक कार्य भी नहीं करती थी। वह एक भारी वार्षिक मेला अवश्य लगा देती थी और उसके वक्ता शानदार भाषण झाड़ दिया करते थे। उसका मुख्य उद्देश्य वर्ष भर के दुखड़ों तथा शिकायतों को प्रकट करना होता था। अपने सार्वजनिक कार्यों में सुव्यवस्था तथा सुसंगठन के आदी होने के कारण आर्यसमाजियों को कांग्रेस के यह रंग ढंग जरा भी पसन्द नहीं थे। अपने प्रतिनिधियों—लाजपतराय तथा द्वारकादास—द्वारा उन्होंने कांग्रेस से विधान बनाने के लिए अनुरोध किया। वह वर्ष भर निरन्तर कार्य के लिए संस्था की स्थापना चाहते थे। इस दूसरे प्रयत्न में भी वह विफल रहे, क्योंकि कांग्रेस के सर्वेसर्वा फिरोजशाह मेहता ने उनको झिड़की दे कर विठला दिया।

फिर भी, वह अधिवेशन लाजपतराय के लिए अन्य प्रकार से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, जैसा कि हम अभी देखेंगे।

कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति पर आप जहाज से लंका को चल पड़े। मालाबार तट के दृश्यों का आनन्द उठाते हुए आपने रामेश्वरम् तथा मदुरा के प्रसिद्ध मन्दिरों के दर्शन किए। दक्षिण भारत में यह आपका प्रथम दौरा था। मदरास में आप तीन दिन जी० सुब्रह्मण्या के अतिथि रहे, फिर आप कलकत्ता चले गए।

इसी भ्रमण के दिनों ही आपका गोखले से प्रथम महत्वपूर्ण मिलन हुआ। उन दिनों गोखले सुप्रीम कौंसिल के अधिवेशन पर कलकत्ता में थे। गोखले आपको दर्शक के तौर पर कौंसिल हाल में ले गए, जहां कर्जन के विश्वविद्यालय ऐक्ट की अनियमितताओं को स्वीकृत करने के विषय में विवाद हो रहा था। आपने गोखले

का भाषण गैर सरकारी पक्ष की ओर से सुना और अन्य वक्तृताएँ भी सुनीं, आपने लिखा—"समस्त तमाशे ने मेरे मन को खूब प्रभावित किया।"

बम्बई अधिवेशन में पास हुआ था कि इंग्लैण्ड में, पार्लिमेण्ट आगामी चुनाव के के अवसर पर प्रचारार्थ एक डेपुटेशन (शिष्ट मण्डल) भेजा जावे। पहली मुलाकात में ही गोखले ने इच्छा प्रकट की कि इंग्लैण्ड को जाने वाले प्रस्तावित मण्डल में लाजपतराय भी सम्मिलित हों। लाजपतराय तत्काल ही समहत हो गए। उन्होंने अनुभव किया कि वह मण्डल के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे, तथा उनको विदेश यात्रा का अमूल्य अनुभव प्राप्त हो जाएगा। संसार भ्रमण तथा नवीनता के अध्ययन का भी ध्यान था। गोखले के साथ यह उनका सम्पर्क शीघ्र ही स्थायी मैत्री में परिवर्तित हो गया। इस मित्रता के लिए उनको भारी त्याग करने पड़े। परन्तु उसके लिए उनको कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। लाजपतराय तथा गोखले के राजनैनिक दृष्टि-कोण में आकाश-पाताल का अन्तर था। आगामी वर्षों में वह मतभेद बढ़ता ही गया, परन्तु उनकी परस्पर मुठभेड़ कभी न हुई।

कलकत्ता में गोखले द्वारा कुछ अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों का सम्पर्क भी हो गया —बहिन निवेदिता तो उनके लिए विशेष रूप से आदर पात्र थीं। सम्भवतः आप उनके उग्र हिन्दू धर्म तथा और ऐसे ही विषयों पर उनके लेखों से परिचित थे। आर्य समाज भी उग्र हिन्दू धर्म ही था, परन्तु इस समय तक आर्य समाज में काफी उदारता आ गयी थी। हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हुए लाला जी भी किसी विशेष सिद्धान्त के स्थान पर हिन्दू धर्म की अन्तर्निहित आत्मा पर ही बल देते थे। व्यवहार में उनका बल जनसाधारण की पूर्ण स्वाधीनता-विशेषतः राजनैतिक स्वाधीनता पर था। अपने पिता जी की भांति उन्होंने वेदान्त को स्वीकार नहीं किया परन्तु अब उनके पास इतनी बुद्धि तथा सांस्कृतिक चेतना अवश्य थी जिससे वह उस दर्शन के सौन्दर्य की अनुभूति कर सकते थे। निवेदिता सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक दिशा में कार्य कर रही थी। परन्तु वास्तव में उनका कार्य सक्रिय राजनैतिक क्षेत्र में था। इस प्रकार सिस्टर निवेदिता तथा लाला जी दोनों एक दूसरे के कार्य को समझ सकते थे। दोनों का सम्पर्क समान आत्माओं का मिलन था। राजनीति पर भी खुल कर उनकी बातें हुईं। स्टेट्समैन के सम्पादक मि० एस० के० रैटक्लिफ़ के कार्यालय को जाते हुए उनमें विचारों का खुला आदान प्रदान हुआ। उन्होंने आगे चल कर लिखा "मार्ग में, उनके मुख से मैंने जो बातें सुनीं, उन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता। वह ब्रिटिश राज्य से अत्यन्त घृणा करती थीं और उन्हें भारतवासियों से बड़ा प्रेम था। राजनीति में उनके भी वही सिद्धान्त थे जिनकी व्याख्या मेजिनी ने की थी। संक्षेप में, इस मुलाकात से मेरे विचारों तथा विश्वासों को पुष्टि प्राप्त हुई और मुझे अपार हर्ष हुआ" यह मिलन अपने पीछे मधुर स्मृतियां छोड़ गया।

अध्याय बीसवाँ

इंग्लैण्ड में कांग्रेस का शिष्ट मंडल

गोखले ने इंग्लैण्ड जानेवाले जिस शिष्टमण्डल के लिए लाजपतराय का चुनाव किया था, उसका इंडियन एसोसिएशन की पंजाब शाखा ने शीघ्र ही समर्थन कर दिया। एसोसिएशन ने प्रतिनिधि के व्यय के लिए धन की अपील भी निकाल दी। जो तीन हजार रुपये के लगभग धन प्राप्त हुआ, वह अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए उसी तरह पड़ा रहा। लाजपतराय ने अपना धन व्यय करना पसन्द किया। उस वर्ष की वकालत की कमाई डी० ए० वी० कालेज पर खर्च होने के स्थान में विदेश में राजनैतिक कार्य में लग गयी।

इंग्लैण्ड में चुनाव स्थगित हो गए। ब्रिटिश मतदाता (जिन्हें अंग्रेज़ी पार्लियामेंट का अन्तिम स्वामी समझा जाता है) कुछ मास तक भारतीय प्रतिनिधि वर्ग का स्वागत करने में अक्षम थे। गोखले ने अपना कार्यक्रम बदल दिया। जिस दिन लाजपतराय लाहौर से चलने को थे उन्हें एक तार मिला कि सर विलियम वैडरबर्न ने गोखले को निर्देश दिया है कि वह इंग्लैण्ड आना जुलाई तक स्थगित कर दें। लाजपतराय ने इंग्लैण्ड जाने की अपनी पूर्ण तैयारी कर ली थी और उनके मित्रों की ओर से उनकी शानदार विदाई भी हो चुकी थी। अब यदि यात्रा स्थगित हुई तो वह सब कुछ एक व्यर्थ तमाशा ही समझा जायगा। इसलिए इंग्लैण्ड में चुनाव हों वा न हों, उनके कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

वह स्वयं लिखते हैं : "मैं योरुप जाने को अत्यन्त उत्सुक था। मुझे भय था कि यदि मैं अब न जा सका तो शायद कभी भी जाने का अवसर न आवे। इसके अतिरिक्त जुलाई के मास में यात्रा करना मुझे सर्वथा नापसन्द था।" अत: वह पूना हो कर योरुप यात्रा पर चल पड़े। पूने में वह कुछ दिन गोखले तथा तिलक के अतिथि बन कर ठहरे। लाहौर के एक मित्र, लाला दीवानचन्द कपूर जो उन दिनों कपड़े के प्रसिद्ध व्यापारी थे, उनके साथ थे। लाला दीवानचन्द अपने व्यापार के लिए योरुप गए।

"पंजाबी" के लिए सम्पादकीय लेख लिखना उनके लिए कठिन था। परन्तु शीघ्र ही अपनी यात्रा तथा कार्य का विवरण पत्रों के रूप में आपने भेजना आरंभ

कर दिया। इन पत्रों में मार्ग के दर्शनीय नगरों—पोर्ट सईद, नेपल्स रोम तथा मिलान आदि का वर्णन था। १० जून को आप लन्दन पहुंचे और वहां एक होटल में ठहरे। इंडियन नेशनल कांग्रेस का (जिसको बने हुए अब २० वर्ष हो चुके थे) कुछ न कुछ प्रचार लन्दन में इंडिया कमेटी की ओर से होता रहता था। सर विलियम वैडरबर्न उस कमेटी के अध्यक्ष थे। इस कमेटी की ओर से भारतीय मामलों पर एक छोटी सी मासिक पत्रिका "इण्डिया" प्रकाशित होती थी। कांग्रेस की ओर से भी प्रति वर्ष इस पत्रिका की काफी आर्थिक सहायता होती थी। दादा भाई नौरोजी भी अधिकतर इंग्लैण्ड ही रहते थे। वह साऊथ कैनासिंगटन में रहते थे और कांग्रेस के प्रचार में काफी समय दिया करते थे।१८८६ में उनको कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष बनने को कहा गया तथा १८९३ में पुनः उनके हाउस आफ कामन्स के सदस्य चुने जाने के उपलक्ष्य में उनसे अध्यक्ष बनने की प्रार्थना की गयी। दादा भाई का ब्रिटिश न्यायप्रियता तथा निष्पक्षता में प्रगाढ़ विश्वास था। और उनका अधिकांश समय भारत की ओर से इंग्लैण्ड की उसी न्यायप्रियता के नाम अपील करने में व्यतीत होता था। दादा भाई तथा वैडरबर्न इंग्लैण्ड में इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रतिनिधि थे।

तरुण तथा उग्र दल के लोग कांग्रेस तथा उसके इंग्लैण्ड वाले प्रतिनिधियों की नरम तथा ढीली ढाली नीति से असन्तुष्ट थे। उन दिनों लन्दन में उनका नेता श्याम जी कृष्ण वर्मा था। आरम्भ में श्याम जी स्वामी दयानन्द के शिष्य थे और स्वामी जी की सिफारिश से ही प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् प्रोफेसर मोनियर विलियम्ज़ उनको विलायत ले गए, ताकि वह अपने अन्वेषण कार्य में श्यामजी से कुछ सहायता ले सकें। वहां उन्होंने बैरिस्टरी पास की और भारत लौट आये। वहां कुछ वर्ष इधर उधर के फुटकर कामों में व्यतीत करने के पश्चात् भारत को छोड़ कर चल दिये क्योंकि उन्होंने एक स्वाधीनता के पुजारी के लिए इस देश में वातावरण अनुकूल न पाया। उस पर हरबर्ट स्पैन्सर के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था और जब उन्होंने इंग्लैण्ड में पत्रिका निकाली तो उसका नाम इंडियन सोशियालोजिस्ट रक्खा। सोशियालोजी (समाज शास्त्र) का जन्मदाता हरबर्ट स्पैन्सर ही था और पत्रिका के नाम से ही सम्पादक का मानसिक झुकाव स्पैन्सर की विचार प्रणाली की ओर स्पष्ट झलकता था। यह पत्रिका, कांग्रेस नेताओं, गोखले, नौरोजी तथा कांग्रेस की ब्रिटिश मित्रों पर प्रबल आक्षेप करती थी। इसके लेख "इंडिया" के लेखों को मुंह-तोड़ उत्तर होते थे। श्याम जी के साथ मिल कर काम करना बड़ा ही कठिन था और यद्यपि उसने विदेशों में अपने आपको क्रान्तिकारी आन्दोलन का मुखिया तथा प्रेरक बना रखा था, परन्तु वह न तो कोई स्थायी मित्र बना पाये, न कोई दृढ़ शिष्य। उनकी कृपणता बड़ी भारी रुकावट थी। वह सदैव धन कमाना तो जानते

थे, परन्तु उसे व्यय करने में अत्यन्त मक्खीचूस थे। फिर भी कांग्रेस की नरम तथा ढीली ढाली नीति के प्रति असन्तोष पैदा करने में वह प्रबल साधन सिद्ध हुए। "यह कहना कि हरदयाल तथा सावरकर, श्याम जी के शिष्य थे, उन दो महापुरुषों की महानता को घटाना है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्याम जी के विचारों ने उन्हें निश्चय रूप से प्रभावित किया था" लाजपतराय ने लिखा था।

१९०५ में श्यामजी अपनी पत्रिका "इंडियन सोशियालोजिस्ट" तथा "इंडिया हाउस" के द्वारा खूब उत्साहपूर्वक काम कर रहे थे (इंडिया हाउस, विलायत में भारतीय विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिए एक भवन था) वह लाजपतराय के पास—जहां यह होटल में ठहरे हुए थे, पहुंचे और उनसे विचार विनिमय किया। उन्होंने लाजपतराय को इंडिया हाउस में ठहरने का निमंत्रण भी दिया। कुछ मास पश्चात् वह वहां जाकर ठहरे भी थे। लाजपतराय लिखते हैं—"मैं बहुधा श्यामजी से मुलाकातें करता रहता था। हमारे राजनीतिक विचार लगभग समान ही थे, यद्यपि मैं उनकी तरह कांग्रेस तथा उसके नेताओं के प्रति इतना कटु न था। वह गोखले के प्रति बहुत ही कटु थे और मुझे उनके यह भाव सर्वथा नापसन्द थे।" लाजपतराय इंग्लैण्ड ही में थे, जब इंडिया हाउस का उद्घाटन हुआ।

लगभग एक मास, लाजपतराय ने स्काटलैण्ड तथा अंग्रेजी देहात का दौरा किया और वहां भारतवर्ष के विषय में कई भाषण दिए। अगस्त में जब लंदन वापस आए तो आप श्यामजी के इंडिया हाउस में ठहरे। यहां होटल की अपेक्षा कोई बढ़िया प्रबन्ध न था। वह लिखते हैं "इंडिया हाउस का प्रबन्ध अत्यन्त असन्तोष-जनक था, क्योंकि श्यामजी उसके सामान तथा सजावट आदि पर कुछ भी पैसा खर्च करने से घबराते थे। भवन में तो उसने कुछ धन लगाया और कुछ मेज़, कुर्सियां आदि भी खरीदे गए परन्तु शेष बातों के लिए वह चाहते थे कि वह भवन के किराए की आय से पूरी हों। प्रारंभ में यह कोई सहज काम न था। कुछ समय तक तो अहमदाबाद के एक बैरिस्टर मिस्टर देसाई तथा मैं ही भवन के निवासी थे।"

श्यामजी के इंडिया हाउस में रहना लन्दन की कांग्रेस की इंडिया कमेटी के सदस्यों को बहुत पसन्द नहीं था। इंडिया कमेटी में काफी खलबली पैदा हो गयी थी, जब एक दिन हालबार्न हाल में मजदूरों अथवा सोशलिस्टों की एक सभा में श्यामजी तथा लाजपतराय के भाषण हुए। लाजपतराय अभी इंडिया हाउस में नहीं ठहरे हुए थे। वह दादा भाई नौरोजी के निमंत्रण पर ही उस सभा में गए थे। दादा भाई मजदूरों की उस संस्था के उपसभापति थे जिसकी ओर से वह सभा बुलायी गयी थी। "जब सर हैनरी काटन को पता लगा कि होमरूल के पक्ष में श्यामजी तथा मैंने एक ही सभा में भाषण दिए हैं, तो वह बहुत बिगड़े और उन्होंने ब्रिटिश कमेटी के सामने

प्रस्ताव रक्खा कि मैं इंग्लैण्ड में कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में आया था, अतः मेरा यह आचरण आपत्तिजनक है।" सर विलियम वैडरबर्न ने उनका पक्ष लिया और लाजपतराय ने स्वयं स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस के प्रतिनिधि होने का यह अर्थ नहीं कि मैंने अपनी स्वतंत्रता खोदी है। मेरे भाषण में कोई ऐसी बात नहीं थी जिस पर किसी कांग्रेसवादी को आपत्ति हो। यदि कोई यह कहे कि कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में मुझे इस देश में अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता नहीं है तो मैं प्रतिनिधित्व से त्याग पत्र देने को उद्यत हूं, परन्तु किसी दशा में भी अपनी स्वतंत्रता खोने को तैयार नहीं।" सर हैनरी काटन ने भाषण के अशुद्ध रिपोर्ट पर दोषारोपण करते हुए, बात को टाल दिया।

उनको पूर्ण स्वतंत्रता थी और उन्होंने उससे पूर्ण लाभ उठाया। मांचेस्टर,ऐडिनबर्ग, लिवरपूल तथा अन्य स्थानों में उनकी वक्तृताएं हुई। गोखले भी पहुंच चुके थे।

प्रायः एक ही सभा में उनके व्याख्यान हुआ करते थे। कभी कभी वह दौरे भी करते थे। जहां उनके भाषण पृथकपृथक होते थे। वह अपना सन्देश अंग्रेज़ जनता—मतदाताओं को सुनाते थे और सत्यासत्य का निर्णय उनकी न्यायप्रियता पर छोड़ देते थे।

"पंजाबी" के लिए आपने "भारत तथा ब्रिटिश दलों की नीति" पर एक लेख लिखा जिसमें यह बतलाया गया कि उदार दल तथा अनुदार दल की नीति में कोई भेद नहीं। केवल मजदूर दल से ही किसी मैत्री की आशा की जा सकती है। (उस समय तक मज़दूर दल भी उदार दल का एक अंश ही था) श्यामजी के द्वारा लाजपत राय ने उग्र दलों से भी कुछ मित्रता स्थापित की। वह विशेषतः समाजवादी लेखक, एच० एम० हिण्डमैन तथा कुछ आयरिश नेताओं का वर्णन करते हैं।

उन्हीं दिनों, बड़ौदा के गायकवाड़ भी लन्दन में ही थे! वह सीसल होटल में ठहरे हुए थे। वहां उन्होंने एक भोज दिया जिसमें लाजपतराय तथा श्यामजी भी अतिथि थे। वहां केवल तीन ही भारतीय निमंत्रित थे। वहां महारानी के साथ उनका परिचय कराया गया। गायकवाड़ ने चुपके से उनको कहा कि भोज की समाप्ति पर वह चले जाने की शीघ्रता न करें। अंग्रेज़ अतिथियों के चले जाने के पश्चात् भी वह वहां बैठे रहे और महाराजा से बातचीत करते रहे। महाराजा ने अपने जले दिल के फफोले उनके सामने खोल कर रख दिए।

भारत को लौटने से पूर्व, लाजपतराय कुछ दिनों के लिए पंजाबी सरदार, दीवान बदरीनाथ के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका के भ्रमण के लिये चले गए।

अक्तूबर में वह फिर लन्दन वापस आ गए और सर विलियम वैडरबर्न ने उनके दौरे तथा व्याख्यानों का एक और कार्यक्रम बना दिया। गोखले तथा उन्होंने Donated सभाओं में भाषण दिये जिनमें से अधिकांश का प्रबन्ध मजदूर दल ने ही किया।

अध्याय इक्कीसवाँ

बनारस की कांग्रेस में लाजपतराय : १९०५

राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य तो भारतवर्ष में लार्ड कर्जन द्वारा हो रहा था। अक्टूबर १९०५ में, एक नौकरशाही आज्ञा द्वारा उसने बंगाल के दो टुकड़े कर दिए जिसके द्वारा एक ऐसे आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसे इंडियन नेशनल कांग्रेस तथा भारतीय राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ३० नवम्बर को लाजपतराय उसी जहाज़ से इंग्लैण्ड से भारत को चल पड़े, जिस पर लार्ड मिण्टो, वायसराय के रूप में भारत के शासन का भार ग्रहण करने आ रहे थे।

लाहौर में लाजपतराय का अपूर्व स्वागत हुआ। रेलवे स्टेशन के अन्दर तथा बाहर जनता का विशाल समूह एकत्रित था और ज्यों ही वह गाड़ी से उतरे, बाबू जोगेन्द्रचन्द्र बोस जैसे प्रतिष्ठित नागरिक ने उनको अपने कन्धों पर उठा लिया। उत्सुक जनता ने आपके दर्शन भी खुली तरह कर लिए और वह धक्काधुक्की से भी बच गए। रेलवे स्टेशन से निकलते ही वह गाड़ी में बैठ गए, परन्तु विद्यार्थियों ने गाड़ी के घोड़े खोल दिए और अपने हाथों से गाड़ी को खींच कर दो मील से अधिक दूरी तक उनके निवास स्थान कोर्ट स्ट्रीट तक ले आए। यों तो सभी उनकी प्रशंसा करते थे तथा उनसे प्रेम करते थे, परन्तु विद्यार्थी जगत् तो उनकी पूजा करता था। जब उनके भोजों तथा मानपत्रों का सिलसिला शुरू हो गया तो विद्यार्थी भी किसी से पीछे न रहे और गवर्नमेण्ट कालेज के विद्यार्थियों ने भी अपना मानपत्र अर्पित किया।

आपने चारों ओर दृष्टि डाली और तत्काल ही आपको आगामी महान् घटनाओं की छाया दिखलायी पड़ गयी। आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर आपके भाषण की घोषणा की गयी और वहां जनता इतनी भारी संख्या में जमा हुई कि व्याख्यान के विशेष प्रबन्ध के लिए सभा को स्थगित करना पड़ा। पीछे डी० ए० वी० कालेज के छात्रावास में आपका व्याख्यान हुआ। यहां आपने कहा कि मुझमें जो भी गुण हैं वह आर्य समाज की कृपा से हैं। परन्तु वह भाषण कतिपय अन्य विचारों के लिए चिरस्मरणीय बन गया। इसी भाषण के कुछ शब्दों से आगे चल कर सरकारी पिट्ठुओं ने उनके निर्वासन को उचित तथा न्यायसंगत सिद्ध करने

की चेष्टा की। भाषण के अन्त में आपने कहा था—"मुझे भारत के राष्ट्रीय आकाश से रक्त की वर्षा होती दिखलायी पड़ती है। प्रकट में तो आकाश निर्मल दीखता है, लहू के छोटे छोटे टुकड़े तो दृष्टिगोचर हो रहे हैं।"

अपनी आत्मकथा में इसकी आलोचना करते हुए वह लिखते हैं—"१९०५ में किसी की कल्पना में भी वह बातें नहीं आ सकती थीं जो आगे चल कर देशभक्तों द्वारा हुईं, परन्तु एक इतिहास का विद्यार्थी बतला सकता था कि किधर की हवा चल रही है।"

"वह छोटे टुकड़े, बंगविच्छेद के विरुद्ध असन्तोष के रूप में बड़े हो रहे थे। कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व ही स्थिति काफी गम्भीर तथा नाजुक हो गयी। "बारी-साल से गरम समाचार आने लगे। सरकार ने कान्फरेन्स भंग कर दी थी और कई राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को पकड़ लिया गया था। देश में सर्वप्रथम विरोध सभा लाहौर में हुई जिसमें मैंने कहा था कि हमारी राजभक्ति कानून पर अवलम्बित है यद्यपि हमसे कानून तथा व्यवस्था पालन की आशा की जाती है, एक विशेष सीमा से परे, उसकी मांग करना बेहूदा है। मैंने यह भी कहा था कि यदि अत्याचार की नीति के कोई अशुभ परिणाम हुए, तो उसका उत्तरदायित्व हमारा नहीं होगा।"

(सी० आई० डी०) गुप्तचर विभाग के रजिस्टरों में लाजपतराय का आतंक प्रति दिन बढ़ रहा था। "रक्त मय वर्षा" वाले भाषण के कुछ ही दिन पीछे "अरुचि-कर परिणाम" वाली वक्तृता हुई जिसमें सकारण भक्ति के नये सिद्धान्त की व्याख्या की गयी थी। जिस लाहौर को शासक वर्ग बिलकुल शान्त समझे बैठे थे उसी में एकदम जागरूकता तथा सचेष्टता के चिह्न पैदा हो गए। बारीसाल में पुलिस की लाठी चलने के विरुद्ध सबसे प्रथम सभा लाहौर में ही हो, यह उनके लिए असह्य था।

यह असन्तोष किसी अन्य स्थान से नहीं आया था। नवीन जमीनों के कानूनों से स्वयं पंजाब को शिकायत थी। खेतों के स्वत्वार्पण को परिमित करने का कानून पास कर दिया गया। इस कानून का घोर विरोध हुआ, परन्तु इसकी विशाल सूची में जिन श्रेणियों के स्वत्वों की कृषक श्रेणी के रूप में रक्षा की गयी वह इसके पक्ष में थे। लाजपतराय तथा "पंजाबी" ने इस बिल का विरोध किया। कांग्रेस के अधिवेशन में इस बिल के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया गया, परन्तु आगे चल कर जब कांग्रेस ने देखा कि मुसलमानों की अधिकांश संख्या इसे अपने स्वत्वों का रक्षक समझ कर इसके पक्ष में है तो उसने भी विरोध करना छोड़ दिया। इससे भी कहीं अधिक तीव्र विरोध नये कालोनी बिलों का हुआ। यहां हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, शहरी-

देहाती, कृषक, अकृषक दल एक हो गए और पंजाब में एक प्रबल तूफान उठ खड़ा हुआ।

बारीसाल कान्फ्रेन्स के कुछ दिन पश्चात्, बनारस में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। प्रथम बार ही नरम दल तथा गरम दल कहलाने वालों में खुला संघर्ष हो गया।

बंगाल में अरविन्द घोष के पत्र "बन्देमातरम्" के लेखों में नवीन स्फूर्ति दिखलायी पड़ती थी। महाराष्ट्र में तिलक दल वाले गोखले तथा उनके अनुयाइयों के नरम ढंगों से घृणा करते थे। पंजाब में जनता, विशेषत: तरुण दल ने लाजपतराय को ही अपना इष्टदेव मान रक्खा था और अब किसी के मन में भी इस विषय में कोई सन्देह नहीं रहा था कि वह गोखले, नौरोजी तथा फिरोजशाह मेहता की अपेक्षा तिलक, अरविन्द तथा विपिनचन्द्रपाल के साथ सहमत हैं। इसके अतिरिक्त तरुण दल जिस कार्य के लिये उद्यत था उसके लिए तो गर्म कहलाने वाले लाजपतराय भी सम्भवत: ठण्डे तथा नरम सिद्ध हों।

बनारस में नवीन स्फूर्ति विशेष उत्साह के रूप में अभिव्यक्त हुई। जिस ज़ोर-शोर से प्रधान का स्वागत वहां हुआ, इससे पूर्व वह समारोह तथा उत्साह कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। प्रधान को भी यह स्वागत-समारोह रुचिकर प्रतीत हुआ। प्रधान स्वयं गोखले थे। प्रधान की गाड़ी में उसका इंग्लैण्ड का साथी—लाजपतराय भी बैठा था "बनारस के नागरिकों ने गोखले का बड़ा शानदार स्वागत किया। मैं भी गोखले के साथ उसी गाड़ी में बैठा था। गाड़ी के बाहर एक स्वयंसेवक खड़ा था जिसकी जयध्वनि के शब्द से कानों के पर्दे फटते थे। इस स्वागत समारोह को देख कर तो विचार आता था कि देश के बुरे दिन शीघ्र ही समाप्त होने वाले हैं। गोखले बहुत प्रसन्न थे। वह कहते थे कि यदि हमारे पास काफी कार्यकर्ता हों तो जनता में खासा उत्साह तथा जीवन पैदा किया जा सकता है। उनके नेत्र सजल हो रहे थे। सचमुच ही वह विचित्र दृश्य था।" लाला जी ने लिखा है।

परन्तु शीघ्र ही वह हर्ष के आंसू शोक के आंसुओं में परिवर्तित हो गए। निस्संदेह लोगों में काफी उत्साह था, परन्तु नेताओं की दशा विपरीत थी। हम कह सकते हैं कि नेताओं के दृष्टिकोण के अनुसार यह उत्साह "उचित से अधिक" था।

"विषय-निर्धारिणी समिति में प्रथम प्रस्ताव पर ही टक्कर हो गयी। इस प्रस्ताव द्वारा युवराज (प्रिंस आफ वेल्स जो पीछे सम्राट् जार्ज पंचम बने) का भारत के आगमन पर स्वागत किया गया था। मैंने इसका विरोध किया। "देश में भीषण दुर्भिक्ष है त्राहि-त्राहि मची हुई है और लोग भूख से मर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, लार्ड कर्ज़न के शासन ने भारी असन्तोष पैदा किया था। ऐसे अवसर पर

युवराज को आमंत्रित करना नौकरशाही की चालाकी थी। उनका वास्तविक उद्देश्य यह था कि जनता का ध्यान राजनैतिक असन्तोष से हट कर जलूसों की ओर तमाशों की ओर लग जाए। बाल गंगाधर तिलक ने मेरा समर्थन किया। वाद-विवाद में काफी समय लग गया। कांग्रेस के सभी पुराने नेता हमारे विरुद्ध थे। केवल कुछ बंगाली, पंजाबी तथा महाराष्ट्र वाले हमारे साथ थे।"

पुराने नेताओं ने विषय-निर्धारिणी समिति में हेरफेर से अपना प्रस्ताव पास करा लिया। शीघ्र ही घोषणा की गयी कि खुले अधिवेशन में नये सिरे से लड़ाई लड़ी जायगी। इस पर वयोवृद्ध तथा युक्त प्रान्त के नेता भयभीत हो गए। उसी रात कमिश्नर कमान अफसर तथा बनारस के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को सूचना भेज दी गयी। दूसरे दिन बनारस के मुंशी माधोलाल डिप्टी कमिश्नर को पंड़ाल में ले आए। उन्हें भय था कि कहीं दंगा न हो जाए, अतः वह उसी की तैयारियां करते रहे। हमें राजद्रोही तथा बदमाश के नाम से पुकारा गया। उस सारी रात को तथा अगली प्रातः को इसी स्थिति पर विवाद चलता रहा। प्रातः हमें धमकियां दी जाने लगीं। कुछ तो कहते थे कि हम संयुक्त प्रान्त को ही कलंकित कर रहे हैं। कुछ को यह डर था कि कांग्रेस ही मर जायगी। इत्यादि इत्यादि। परन्तु हमारा निश्चय अटल था। अब ११ बज चुके थे। कांग्रेस अधिवेशन का समय हो गया था, परन्तु गोखले नहीं पधारे। समाचार मिला कि वह सोच विचार में व्यस्त हैं। अन्त में गोखले आये और कांग्रेस पंडाल में जाने के स्थान में उन्होंने मुझे समझाना शुरू कर दिया। यह उनकी कार्य चातुरी थी। गोखले जानते थे कि चाहे हमारे कैसे ही मतभेद क्यों न हों, लाजपतराय मेरी व्यक्तिगत अपील को व्यर्थ न जाने देगा। "जब उन्होंने मुझे दृढ़ ही पाया तो मुझसे व्यक्तिगत प्रार्थना की और अनुरोध किया कि मेरे खातिर आप विरोध छोड़ दें। मैं इस पर सहमत हो गया और मैंने उन्हें वचन दिया कि जब तक यह प्रस्ताव चलेगा, हम सभा से अनुपस्थित रहेंगे जिससे हमें उनका विरोध न करना पड़े। समझौता यह हुआ कि कागजों में यह न लिखा जायगा कि प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।"

दूसरे शब्दों में परस्पर समझौते द्वारा "वाक आउट"—के नाटक से समस्या हल हुई। सभा छोड़ कर चले जाने की राजनीतिक विरोध प्रदर्शन की परिपाटी का कदाचित् यह प्रथम प्रदर्शन था। अस्तु।

फिर लाजपतराय ने अपनी तर्क शक्ति तथा व्यक्तिगत अपील द्वारा तिलक को समझाया। वह सहमत हो गए। परन्तु कुछ और थे जो नहीं मानते थे। जे० एन० राय तथा आर० राय, बंगाली तो किसी दशा में भी नहीं माने अतः उन्हें बलात् सभा से बाहर रक्खा गया। इस प्रकार "स्वागत" वाला प्रस्ताव पास हुआ। बनारस

कांग्रेस में गर्मदल में मुख्य भाषण लाजपतराय का था। इस भाषण को चिरकाल तक एक स्मरणीय वक्तृता समझा जाता रहा। कांग्रेस मंच से यह अपने ढंग का प्रथम ही भाषण था जिसमें एक नवीन संदेश सुनाया गया और इससे कांग्रेस के इतिहास तथा कांग्रेस वक्तृताओं में एक नवीन युग का श्रीगणेश हुआ। "मेरा भाषण कांग्रेस अधिवेशन के अन्तिम दिन हुआ। मुझे केवल पांच ही मिनट दिए गए, परन्तु मैं २० मिनट बोला जिससे अधिकांश जनता मेरे साथ हो गयी। कांग्रेस मंच से यह अपने ढंग का प्रथम व्याख्यान था। कहा जा सकता है कि इसके द्वारा ही उग्रदल की नींव पड़ी। भाषण में बार बार करतल ध्वनि होती थी और लोग कहते थे "बोलते जाओ, बोलते जाओ।" प्रधान के दोनों ओर बैठे हुए वयोवृद्ध नेता, विशेषत: बम्बई के प्रतिनिधियों ने कांपना शुरू कर दिया और डर से उनके मुख पीले पड़ गए। वह बार बार गोखले से अनुरोध कर रहे थे कि मेरा भाषण बन्द करा दें तथा मुझे बैठ जाने की आज्ञा दें, परन्तु गोखले ने कहा कि मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ। शाम को रोमेशचन्द्र दत्त ने मि० पालित द्वारा मुझे कहला भेजा कि मेरा भाषण ही कांग्रेस अधिवेशन में सर्वोत्तम रहा है और वह मुझे बहुत ही अच्छा लगा है।"

अध्याय बाइसवाँ

स्वराज्य, स्वदेशी एवं वहिष्कार के तीन मंत्र

१९०६ का वर्ष, जैसा कि बनारस अधिवेशन के अवसर पर देखा गया, परिवर्तित परिस्थिति के अनुकूल ही था। उग्र विचारों वाले केवल मधुर भाषणों तथा मधुर प्रस्तावों की वार्षिक पुनरावृत्ति से ही सन्तुष्ट नहीं रह सकते थे। वह तो जन साधारण द्वारा कोई ऐसा आन्दोलन चलाना चाहते थे जो कार्यसिद्ध के पूर्व कदापि बन्द न हो जाए। आन्दोलन को फलीभूत बनाने के लिये वह कुछ व्यावहारिक कदम भी उठाना चाहते थे। कर्ज़न के अधीन नोकरशाही भी उतनी ही तेज़ हो रही थी और उसके विश्वविद्यालयों के कानून तथा बंगभंग आदि छोटी मोटी बातों तथा कानूनों ने जलती आग पर तेल का काम किया। कर्ज़न तो १९०५ में चला गया, परन्तु शासक वर्ग में अकड़ की भावना वह अपने पीछे छोड़ गया। नया दल—जिसमें बंगाल के अग्रगामी राष्ट्रनेता, महाराष्ट्र के तिलक और उनका पत्र "केसरी" और लाजपत राय तथा उनका पत्र "पंजाबी" सम्मिलित थे—स्वदेशी तथा वहिष्कार के आन्दोलन को दृढ़ से दृढ़तर करते जाते थे। बंगाल में बंगभंग को रद्द कराने की प्रतिज्ञाएं जोर शोर से की जा रही थीं। अंग्रेज़ी माल का विशेषतः अंग्रेज़ी कपड़े का वहिष्कार प्रतिदिन तीव्र हो रहा था। कपड़े के व्यापारी—मारवाड़ी सेठों ने मांचेस्टर को दिए कपड़े के आर्डर रद्द कर दिए। आन्दोलन के आलोचकों की आशाओं के प्रतिकूल, वहिष्कार को आशातीत सफलता प्राप्त हो रही थी। सहस्रों मंचों से "वहिष्कार" का प्रबल प्रचार किया जा रहा था और हजारों स्वयंसेवक धरना दे रहे थे। राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन तरुण विद्यार्थी मण्डल के हृदयों को प्रभावित तथा आलोड़ित कर रहा था। कलकत्ता में उन्होंने ह्वाईटवे लेडला की दूकान पर धरना लगाया और फैशनेबल महिलाओं को अपने भाइयों की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी, नहीं तो उन्हें स्वयंसेवकों के शरीर को रौंद कर ही जाना मिलता।

कर्ज़न की आज्ञा से पूर्वीय बंगाल को एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया। जब इस प्रान्त के लेफ्टीनेण्ट को बारीसाल में मांचेस्टर के कारखाने में बने हुए कपड़े के थान की आवश्यकता हुई, तो स्टोर के स्वामियों ने उसके नौकरों को बतलाया कि कपड़ा

खरीदने के लिये उनको पूर्वीय बंगाल के नवीन दल के नेता अश्विनी कुमार दत्त की आज्ञा लेनी पड़ेगी।

नवीन दल के प्रमुख वक्ता विपिनचन्द्र पाल थे। वह बहिष्कार क्षेत्र को विशाल बना रहे थे जिसमें विदेशी शासकों अथवा सरकारी मशीन के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क न रखना भी सम्मिलित था। इसके दस वर्ष अनन्तर इसी प्रकार के भावों का प्रचार असहयोग आन्दोलन के दिनों में किया गया था।

परिस्थिति खासी गम्भीर रूप धारण कर रही थी और नौकरशाही घबरा उठी। घबराहट में उन्होंने कई पागलपन के काम भी कर दिए। कलकत्ता में विद्यार्थियों तथा स्वदेशी आन्दोलन के विषय में एक बदनाम सरक्यूलर निकला जिसके बारे में प्रमुख एंग्लो-इंडियन स्टेट्समैन ने लिखा था :—

"हम उस बुद्धिहीन कर्मचारी का नाम जानना चाहते हैं जिसके कहने पर लैफ्टीनेन्ट गवर्नर ने इस आज्ञा की स्वीकृति दी। सरकार ने ऐसा मूर्खतापूर्ण और बच्चों जैसा कार्य किया है जिसका केवल यही फल हो सकता है कि एक शहीदों की सेना का निर्माण हो जाए।"

सब से भद्दी और हास्यास्पद आज्ञा वह थी जिसमें पूर्वीय बंगाल में "बन्दे मातरम्" का नारा लगाना वर्जित कर दिया गया था। इस आज्ञा का सीधा परिणाम यह निकला कि एप्रिल में बंगालियों ने बारीसाल में एक विराट् सभा का आयोजन किया। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी गिरफ़्तार कर लिये गये और सभा को लाठी प्रहार द्वारा भंग कर दिया गया। बारीसाल में इस अत्याचार के विरुद्ध अन्यत्त भारी क्षोभ फैल गया। लाहौर में भी इसी प्रकार का प्रदर्शन एक सार्वजनिक सभा के रूप में हुआ। बंगाल, महाराष्ट्र तथा पंजाब "गरम दल" के गढ़ समझे जाते थे। निस्संदेह पंजाब में तो उत्साह का कोई ठिकाना न था।

बारीसाल में आन्दोलन मर नहीं सका। वह और भी चमक उठा। वर्ष के अन्त में कलकत्ते में कांग्रेस अधिवेशन होना था। कांग्रेस के नरम दल के नेता घबराए हुए थे। उन्हें भय था कि गरम दल वाले ही कांग्रेस पर पूर्णाधिकार जमा लेंगे, इसलिए उन्होंने दादा भाई नौरोजी को इंग्लैण्ड से बुलवाया ताकि वह आकर अध्यक्ष का आसन ग्रहण करें और देश का नेतृत्व करें। उन्हें ८२ वर्ष की वृद्धावस्था में इतनी लम्बी यात्रा कर के यहां आना पड़ा। गरम दल वाले भी नौरोजी का उसी प्रकार आदर करते थे जिस प्रकार नरम दल वाले। उनकी उपस्थिति ने कांग्रेस को फूट से बचा लिया। यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि रखने वालों से दोनों दलों के मतभेद छिपे न रह सके।

लाजपतराय लिखते हैं "१९०६ की अत्यन्त स्मरणीय घटना कांग्रेस का अधिवेशन ही था, जो उस वर्ष कलकत्ते में हुआ। बंगाल के गरम दल वाले तिलक को

प्रधान चुनना चाहते थे। मि० गोखले तथा बम्बई के अन्य नरम दल वाले इसके विरुद्ध थे। बंगाल का जनमत तिलक के पक्ष में था। बम्बई के नेताओं के साथ मंत्रणा के पश्चात् अन्त में दादा भाई नौरोजी को प्रधान पद प्रस्तुत किया गया। जब उन्होंने स्वीकृति दे दी तो स्वागतकारिणी समिति में विचार करने से पूर्व इस बात की घोषणा भी कर दी गयी। विचार यह था कि दादा भाई नौरोजी समस्त देश के आदरपात्र हैं, अतः उनके चुनाव का कोई भी विरोध नहीं करेगा। विशेषतः जब सभी को ज्ञात था कि उन्होंने इसकी स्वीकृति दे दी है। सम्भवतः उन्हें सूचित कर दिया गया था कि कांग्रेस को "गम्भीर" आपत्ति से बचाने के लिये उनकी स्वीकृति आवश्यक है। इस चाल से गरम दल खासा क्षुभित हुआ। अन्त में तरुण दल ने दादा भाई को स्वीकार कर लिया।

इस वर्ष पंजाब ने भी प्रतिनिधियों की एक भारी संख्या भेजी थी। मेरे विचार से यह संख्या ६० या ७० होगी। लाला शादीलाल बैरिस्टर, जो पीछे सर शादी लाल चीफ जस्टिस बने, प्रतिनिधि बन कर गए थे और मेरे ही तम्बू में ठहरे थे।

"बंगालियों को मुझमें बड़ी श्रद्धा थी और वह मेरा बड़ा सम्मान भी करते थे। लार्ड मिण्टो ने, हाल ही में एक सार्वजनिक भाषण में बहिष्कार की निन्दा की थी और "ईमानदाराना स्वदेशी" की प्रशंसा की थी। संभवतः उसने कांग्रेस प्रदर्शिनी के उद्घाटन के अवसर पर यह वक्तृता दी थी। नवयुवक दल नेताओं पर क्रुद्ध हुआ कि उन्होंने प्रदर्शिनी का उद्घाटन लार्ड मिण्टो के हाथों करवाया। जब मैं कलकत्ता पहुंचा तो मुझे ज्ञात हुआ कि उसी दिन लार्ड मिण्टो के भाषण का उत्तर देने के लिए मुझे वक्ताओं में घोषित कर दिया गया। मुझे यह बहुत बुरा लगा। मैं सी० आर० दास के मकान पर पहुंचा जहां पाल तथा तिलक भी ठहरे हुए थे। मैं उनसे मिला और अपना असन्तोष प्रकट किया। मुझे बतलाया गया कि इस घोषणा का उत्तरदायित्व विपिनचन्द्र पाल पर है। उन्होंने अनुरोध किया कि मैं ही सभापति बनूं। उनकी कठिनाई का विचार करते हुए मैं सहमत हो गया। सायंकाल एक विराट् सभा हुई जिसमें हजारों श्रोताओं की भीड़ थी। घण्टों तक भाषण होते रहे।

"कांग्रेस अधिवेशन में सनसनीपूर्ण घटनाएं घटित हुईं। सर फिरोज़शाह मेहता पर खुले शब्दों में कटाक्ष किए गए और थोड़ा बहुत मि० गोखले पर भी कीचड़ उछला। स्वदेशी के प्रस्ताव पर तो भारी वाद विवाद छिड़ गया। दोनों पक्षों की ओर से प्रबल भाषण हुए। श्रोताओं ने पंडित मदनमोहन मालवीय पर भी छींटे कसे। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि यह मतभेद अधिकतर ज़बानी है। मैंने एक संशोधन पेश कर दिया जो यद्यपि गरम दल के नेताओं को स्वीकार तो नहीं था, परन्तु जो बहुमत से पास हो गया। इस पर विपिनचन्द्र पाल तथा उनकी पार्टी

वाक-आउट कर गयी। नरम दल के नेता, गोखले मुझसे प्रसन्न थे और कहने लगे कि मैंने स्थिति को बचा लिया है।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि दादा भाई नौरोजी प्रधान न होते और मैं हस्तक्षेप न करता, तो जो कुछ आगामी वर्ष सूरत में हुआ, वही कलकत्ता कांग्रेस में हो जाता।"

कलकत्ता कांग्रेस उग्रवादियों की विजय की स्मारक सिद्ध हुई। इसके प्रस्तावों ने स्वदेशी बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा के त्रिगुणात्मक कार्यक्रम का समर्थन कर दिया। इससे भी बढ़कर जो बात हुई वह यह थी कि नौरोजी ने अपने सभापति के भाषण में एक ऐसे शक्तिशाली शब्द का प्रयोग किया जो स्वदेशी की अपेक्षा राष्ट्रीय जागरण तथा एकीकरण के लिये कहीं अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ। कांग्रेस मंच मे "स्वराज्य" के शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग उन्होंने ही किया। स्वराज्य, स्वदेशी तथा बहिष्कार अब राष्ट्रीयता के तीन पवित्र मंत्र बन गए।

१९०६ का अन्त तथा १९०७ का आरम्भ एक तूफानी युग था। पंजाब में भी बंगाल के बहिष्कार की खासी गूंज सुनायी पड़ती थी। लार्ड कर्ज़न के रंग-ढंग से शिक्षित समाज में क्षोभ की मात्रा खूब बढ़ गयी थी। इनसे भी बढ़कर पंजाब के लेफ्टीनेण्ट गवर्नर सर डैनज़िल इब्बटसन ने नहरी आबादियों के कानूनों तथा भूमिकर और पानी कर की वृद्धि द्वारा खासा असन्तोष पैदा कर दिया था। बंगाल में आन्दोलन को "भद्र लोक" वर्ग ने उठाया। पंजाब में भूमि सम्बन्धी समस्या गम्भीर रूप धारण कर रही थी।

बंगाल में "वन्देमातरम्" पत्र था जिसके सम्पादक अरविन्द थे। महाराष्ट्र में तिलक के हाथ में "केसरी" था। पंजाब में "पंजाबी" चलता था, जिसके संपादक तो मि० अथोले थे, परन्तु उसका नियंत्रण तथा संचालन सभी जानते थे कि लाला लाजपतराय द्वारा होता था। वह इस पत्र में नियमपूर्वक लेख लिखा करते थे। प्रातःकाल ही वह मुद्रणालय जाकर पत्र की अन्तिम प्रूफ स्वयं देखते। अब पंजाबी सप्ताह में एक बार के स्थान में तीन बार निकलने लग गया। इसका प्रभाव तथा ग्राहक संख्या दोनों बढ़ रहे थे। स्वभावतः सरकार की इसके साथ नाराज़गी भी बढ़ती गयी। आए दिन अफवाहें उड़ती रहती थीं कि "पंजाबी" पर कोई संकट आने वाला है। यद्यपि यह पत्र सदा ही साहस पूर्वक अपने मार्ग पर चलता था, फिर लाजपतराय जैसे योग्य वकील सदा ध्यान से इसके प्रूफों की जांच किया करते थे। अन्त में सरकार ने पंजाबी के सम्पादक मि० ए० के० अथोले तथा उसके मुद्रक जसवन्तराय के विरुद्ध केस चलाने का फैसला कर ही लिया। एक पुलिस कान्स्टेबल की रहस्यमय मृत्यु के बारे में एक लेख को आपत्तिजनक समझा

गया। लाजपतराय उस दिन पत्र के प्रूफ न देख सके, नहीं तो सम्भावना थी कि लेख में अवश्य ही कुछ परिवर्तन कर दिए जाते। परन्तु इसमें संदेह है कि फिर भी पत्र पर केस न चलता, क्योंकि सरकार तो "पंजाबी" के विरुद्ध किसी न किसी बहाने की खोज में थी। इस मुकदमे से "पंजाबी" और भी अधिक सर्वप्रिय तथा प्रभावशाली बन गया, क्योंकि जनता उन आपत्तिजनक बातों को सत्य समझती थी। मुसलमानों की सहानुभूति भी पत्र के पक्ष में हो गयी क्योंकि जिस कास्टेबल की मृत्यु का प्रश्न उपस्थित था वह मुसलमान था। जसवन्तराय तथा अथोले गिरफ़्तार हुए, जमानत पर छूटे। उन पर अभियोग चला और अन्त में उनको कारावास का दण्ड मिला।

"पंजाबी" के मुकदमे से पंजाब में उत्तेजना तथा उसके क्षेत्र बढ़ गए। जिस दिन उसके सम्पादक तथा मुद्रक को दण्ड सुनाया गया, लाहौर में उत्तेजना पराकाष्ठा को पहुंच गयी थी। लाजपतराय उस दृश्य का इस प्रकार वर्णन करते हैं—"पंजाबी केस में डिस्ट्रिक्ट मैजिस्टेट ने आज्ञा सुनायी। लाला जसवन्तराय को दो वर्ष कठोर कारावास तथा मि० अथोले को छः मास का दण्ड मिला। आर्डर १० बजे के लगभग सुनाया गया। न्यायालय के हाते में जनता का विशाल समूह एकत्रित था। लोग कैदियों की गाड़ी के पीछे दौड़ते थे और ज़ोर शोर से करतल ध्वनि द्वारा उन्हें उत्साहित करते थे। कई स्थानों पर उन पर पुष्प वर्षा भी हुई। मैं तत्कल ही सेशन कोर्ट में उनकी ज़मानत का प्रार्थना पत्र ले कर गया। उसकी स्वीकृति पर मैं स्वयं उनकी रिहाई के वारण्ट लेकर जेल गया"।

"इतने में जनता ने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के बंगले में कुछ तोड़-फोड़ कर दी और सारे सिविल स्टेशन में आतंक पैदा कर दिया। नवयुवकों ने कुछ गोरों को गालियां दीं, कुछ की गाड़ियों पर कीचड़ फेंका और कुछ को मारा-पीटा। अंग्रेज़ों की दृष्टि में "विद्रोह" की पुनरावृत्ति हो रही थी।

"जब जसवन्तराय तथा अथोले को बाहर निकाला गया तो एक भारी भीड़ बाहर प्रतीक्षा कर रही थी। डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट की कोठी के पास भीड़ बिगड़ खड़ी हुई, परन्तु हमने उसे शान्त किया। लारेंस गार्डन (उद्यान) में भीड़ ने फिटन में बैठे हुए एक अंग्रेज़ पर हमला कर दिया। वह सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट का रिपोर्टर था। उस पत्र के विरुद्ध जनता में काफी क्षोभ था। मैंने इस आक्रमण का विरोध किया और लोगों को समझाया कि इतने भारी जन समूह का अकेले व्यक्ति पर आक्रमण करना कायरता है। तरुण मण्डली ने मेरी भी अवहेलना की। यद्यपि उस अंग्रेज़ को तो छोड़ दिया गया। परन्तु जन समुदाय मेरे आचरण की निन्दा करता हुआ आगे बढ़ा" गर्म दल के अग्रणी नेता लाजपतराय की तरुणों द्वारा यह

अवहेलना आश्चर्यजनक थी। कौन जानता था कि पंजाब में आगे चल कर कुछ युवकों द्वारा लाला जी की उपेक्षा की जाती रहेगी परन्तु अन्त में युवक शिरोमणि भगतसिंह उनपर ही जान देगा। इतिहास के यही वैषम्य हैं!!

आगे चल कर सेशन कोर्ट ने जसवन्तराय का दण्ड घटा कर छः मास कर दिया। चीफ़ कोर्ट में अपील की गयी। "जिस दिन आज्ञा सुनायी गयी, न्यायाधीश भय से कांप रहा था। न्यायालय के हाल में पुलिस दल खड़ा कर दिया गया। न्यायालय से जेल तक सड़क पर भी पुलिस नियुक्त कर दी गयी। जस्टिस रीड ने दो बार अपने चपरासी को अपनी कोठी यह जानने के लिये भेजा कि क्या वहां सब कुशल है। जब चीफ जज ने आज्ञा सुनायी तो पुलिस ने जसवन्तराय तथा अथोले को गिरफ्तार कर लिया। मैंने आगे बढ़ कर उन दोनों से हाथ मिलाए। जसवन्तराय ने मेरे चरण छुए। जेल जाते हुए पुलिस तथा जनसाधारण में कई बार संघर्ष हुआ। लोगों ने पुलिस पर कीचड़ फेंका। नौबत यहां तक पहुंच गयी कि योरुपियन पुलिस कर्मचारियों को अपनी गाड़ी छोड़ कर जसवन्तराय की गाड़ी में शरण लेनी पड़ी। पुलिस ने भी जनता को अच्छी तरह पीटा।" इस झगड़े में दो एक गिरफ्तारियां भी हुई।

इन्हीं दिनों गोखले उत्तरी भारत का दौरा कर रहे थे। प्रायः लोग यही समझते थे कि लाजपतराय तथा गोखले भिन्न भिन्न राजनैतिक विचार रखते हैं। परन्तु इस बात का उनके पारस्परिक व्यक्तिगत सम्बन्ध पर कोई प्रभाव न था। लाजपत राय ने इंडियन एसोसिएशन की ओर से जिसके वह उन दिनों प्रधान थे, गोखले को लाहौर आने का निमंत्रण दिया और गोखले ने तत्काल ही उसे स्वीकार कर लिया। वह लाहौर उसी दिन पहुंचे जिस दिन उपरोक्त उत्तेजनापूर्ण घटनाएं हो रही थीं। जिस जन समूह ने "पंजाबी" पत्र के वीरों को प्रोत्साहित किया था और एंग्लो-इंडियन रिपोर्टर की खिल्ली उड़ायी थी, सायंकाल वही लोग गोखले के स्वागतार्थ रेलवे स्टेशन पर उपस्थित थे। गोखले का बड़ा शानदार स्वागत हुआ। जनता में उत्साह की लहर उठ रही थी। "पंजाबी" की दण्डाज्ञा तथा जनसमूह और पुलिस की मुठभेड़ से वातावरण उत्तेजनापूर्ण हो रहा था। ऐसे उत्साहपूर्ण स्वागत तथा गगनवेधी कण्ठ ध्वनि का हर्ष गोखले के लिये कुछ विषाद में परिणित हो गया। जब उनका जलूस अनारकली पहुँचा तो जनता ने जसवन्तराय तथा अथोले को भी उसी गाड़ी में बलात् धकेल कर बिठला दिया जिसमें गोखले तथा लाजपतराय बैठे थे। गोखले को यह बातें पसन्द तो न आयीं, परन्तु जनता के अगाध उत्साह के सामने वह विवश थे।

लाजपतराय के शब्दों में, गोखले की इस पंजाब यात्रा ने आग पर घी का काम

किया। उनके भाषण पंजाब के तत्कालीन वातावरण के सर्वथा अनुकूल थे। एक नगर में उन्होंने कहा था "मैं अपने देशवासियों की महत्वाकांक्षाओं को परिमित नहीं करना चाहता। हम अपने घर में वही होना चाहते हैं जो अन्य लोग अपने देशों में हैं।"

"पंजाबी" मुकदमे के दिनों में ही लाजपतराय की इकलौती पुत्री पार्वती देवी के पति, देहरादून के डाक्टर जयचन्द का स्वर्गवास हो गया। वह अपने पीछे विधवा तथा कुछ ही दिनों का शिशु—एक पुत्र छोड़ गए। "पंजाबी" केस पर विवाद ही कर रहे थे, जब उनको यह शोकप्रद समाचार मिला। चोट तो निस्सन्देह असह्य थी परन्तु उन्होंने एक "स्थितप्रज्ञ" की तरह अपना काम छोड़ने से इनकार कर दिया। अपने पुत्र को तो उचित निर्देश देकर देहरादून रवाना कर दिया, परन्तु स्वयं कोर्ट के काम में लगे रहे। उनकी यही विधवा पुत्री जीवन भर उनकी एकमात्र स्नेहपात्री बनी रही। लाजपतराय ने उसमें भी अपने सार्वजनिक कार्य के प्रति रुचि पैदा की। असहयोगान्दोलन के दिनों में वह भी जेल गयी, लाजपतराय के परलोक गमन के आठ वर्ष पश्चात् जब कांग्रेस की ओर से प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनाव लड़े गए, तो लाहौर की स्त्रियों के निर्वाचन क्षेत्र की ओर से पार्वती देवी एसेम्बली की सदस्या चुनी गयीं, परन्तु शीघ्र ही उनको व्याधि ने आ घेरा और जनवरी १९३८ में वह चल बसीं।

अध्याय तेइसवाँ

पंजाब का कृषक-आन्दोलन; रावलपिंडी की गिरफ़्तारियाँ

१९०७ में, पंजाब में आन्दोलन कृषक विद्रोह का रूप धारण कर रहा था, क्योंकि भूमि सम्बन्धी नये कानूनों के कारण कृषकों में काफी असन्तोष फैल रहा था। यह असन्तोष प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा था। इब्बटसन के नहरी आबादियों के कानून ने उस इलाके में खलबली पैदा कर दी। इस जोश का केन्द्र लायलपुर था। पश्चिमी पंजाब में रावलपिण्डी केन्द्र था; क्योंकि वहां सरकार ने नये बन्दोबस्त द्वारा अन्यायपूर्वक भूमिकर में वृद्धि कर दी। लाजपतराय न तो इस आन्दोलन में कूद ही पड़े और न वह उससे पृथक् ही रह सके; क्योंकि उन्हें ज़मींदार भला पृथक् कैसे रहने देते? "ज़मींदारों ने मेरे पास आना शुरू कर दिया। मैंने उनको राय बहादुर रामशरणदास तथा मियां मुहम्मद शफी के पास जाने को कहा। वह एक तार वायसराय के नाम भेजना चाहते थे, मैंने वह तार उनको लिख दिया। उनके लिए मेरा काम केवल लेखनी तक ही सीमित था। मैं पत्र में उस कानून के बारे में लिखता रहा, परन्तु मैंने उसके विरुद्ध कोई सक्रिय आन्दोलन प्रारंभ नहीं किया था। लोग जानते थे कि मेरी सहानुभूति उनके साथ है और मैं पत्रों द्वारा उनके लिए काम कर रहा हूँ। यद्यपि मैंने इस कानून के विरुद्ध कोई सक्रिय पग नहीं उठाया। उन्हीं दिनों मैंने स्वदेशी तथा देशभक्ति के प्रचार के लिये अमृतसर, अम्बाला, फिरोजपुर तथा अन्य स्थानों में भाषण दिए। मेरे ही परामर्श से अम्बाला तथा फिरोजपुर के कुछ वकीलों ने बेगार के विरुद्ध कुछ इश्तिहार बांटे थे। इस आन्दोलन के लिए ज़मींदारों ने अपना मंच भी पैदा कर लिया तथा ब्रिटिश विरोधी उग्रवादियों ने लाहौर में "भारतमाता" नाम की संस्था स्थापित कर दी। अजीत सिंह तथा सूफी अम्बाप्रसाद इस संस्था के मुख्य कर्णधार थे।

अजीत सिंह तथा उनके भाई किशन सिंह विख्यात क्रान्तिकारी भगत सिंह के पिता तथा आगे चल कर पंजाब के एम० एल० ए० दोनों एंग्लो वैदिक स्कूल जालन्धर के विद्यार्थी थे जिन दिनों आर्यसमाजी नेता सांईंदास का ज्येष्ठ पुत्र सुन्दरदास वहां मुख्याध्यापक था। अजीत सिंह उसका प्रिय विद्यार्थी था। लाजपतराय के

शब्दों में "निस्संदेह यह लाला सुन्दरदास ही थे जिन्होंने दोनों भाइयों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाया था।" लाजपतराय किशनसिंह को उस समय से जानते थे जब वह १८९७ में मध्य प्रान्त के दुर्भिक्ष में अकाल पीड़ितों की सेवा के लिए उनके अधीन काम करते थे। उसने वहां बहुत ही अच्छी तरह कार्य किया। जब वह एक अनाथ मण्डली को साथ ले कर पंजाब लौटा तो उसे लाहौर के नये अनाथालय का अध्यक्ष बना दिया गया। लाजपतराय कई वर्ष तक उस अनाथालय के मंत्री रहे और इस प्रकार उन्हें अनाथालय के अध्यक्ष किशनसिंह से मिलने का बहुधा अवसर मिलता रहता था। (किशनसिंह के भाई अजीतसिंह ने लाला जी को कुछ विशेष रूप से प्रभावित नहीं किया)। वह लिखते हैं—"अजीतसिंह उन दिनों डी०ए०वी० कालेज में पढ़ता था और उसे थोड़ी अपव्यय की आदत थी। मुझे तो किशनसिंह ही अपने भाई की अपेक्षा अच्छा लगा।" १९०६ की कांग्रेस में अजीतसिंह गरम दल की सभाओं में भाग लेते देखे गये। इसके अतिरिक्त उन्होंने सार्वजनिक विवादों में भी भाग लेना तथा पत्रों में लेख लिखना प्रारंभ कर दिया था। सूफी अम्बाप्रसाद के साथ "भारतमाता" संस्था की स्थापना कर के वह अन्य नवयुवकों के साथ खुले तोर पर उग्रवाद के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे और अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध भाषण दिया करते थे।"

लाजपतराय का "भारतमाता" के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। उसको चलाने वाली युवक मण्डली कई ऐसी कार्यवाहियां करती थी जिन्हें वह पसन्द नहीं करते थे। परन्तु वह नवयुवक लाजपतराय से सहायता की आशा रखते थे। क्योंकि उनका विश्वास था कि लाजपतराय उनको देशभक्त समझते हैं। उनके लिए देशभक्तों की सहायता न करना कठिन था। "इन्हीं दिनों अजीतसिंह कई बार मेरे पास आर्थिक सहायता मांगने आए, यद्यपि वह मेरी शर्तें पूरी करने में असमर्थ थे।" लालाजी लिखते हैं।

अजीतसिंह तथा उनकी "भारतमाता" ने ज़मींदारों के आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया। जन्म से जाट होने के कारण किसानों के नाम से बोलने तथा आन्दोलन चलाने की प्रवृत्ति उनमें स्वाभाविक थी। किन्तु जहां और जाट उन कानूनों को रद्द कराने के लिए आन्दोलन में भाग ले रहे थे, वहां इस आन्दोलन द्वारा अजीतसिंह का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असन्तोष पैदा करना था।

अजीतसिंह एक प्रभावशाली आन्दोलनकारी बनते जा रहे थे। वह प्रान्त भर में भ्रमण करने तथा सभाओं में भाषण करने में लगे रहते थे। प्रत्येक स्थान पर जनता उनके व्याख्यानों को चावसे सुनती थी। अन्य स्थानोंकी अपेक्षा लायलपुर को जिसका उन कानूनों से सीधा सम्बन्ध था क्योंकि वह लायलपुर के नहरी प्रदेशों पर

ही लागू होते थे, इन आन्दोलनकारियों ने शीघ्र ही अपना बना लिया। इसी प्रदेश पर समस्त शक्ति को केन्द्रीभूत करनेवालों में से चौधरी शहाबुद्दीन भी थे जो आगे चल कर पंजाब एसेम्बली के स्पीकर बने, उन दिनों वह वकालत करते थे और ज़मींदारों के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते थे।

मार्च १९०७ के अन्त में (अथवा अप्रैल के आरम्भ में) लायलपुर की ज़मींदार एसोसिएशन ने लाजपतराय को निमंत्रण भेजा और फिर कई बार स्मरण दिलाया शहाबुद्दीन स्वयं लाजपतराय के पास आए और अनुरोध किया कि लायलपुर में पशुओं की बिक्री के मेले के अवसर पर वह अवश्य वहां पधारें। निदान, वह २१ अप्रैल को रायबहादुर सुरदयाल (जो आगे चल कर जम्मू में हाई कोर्ट के जज बने) बख्शी टेकचन्द (भविष्य में लाहौर हाई कोर्ट के जज) रामभजदत्त चौधरी तथा जसवन्तराय के साथ वहां पहुंचे। "एक भारी जन समूह, रेलवे स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रहा था। लाला जसवन्तराय तथा मुझे एक ही गाड़ी में बिठलाया गया। और लोगों ने गाड़ी के घोड़े खोल कर हमारी गाड़ी को "वन्दे मातरम्" की गगनभेदी ध्वनियों के साथ खींचना शुरू कर दिया। हम कुछ ही कदम आगे बढ़े होंगे कि मैं तो गाड़ी से कूद कर बाहर आ गया। परन्तु जसवन्तराय को ऐसा न करने दिया गया।" लालाजी के शब्द हैं।

जब लाजपतराय और शहाबुद्दीन सभा में पहुंचे, अजीतसिंह का भाषण हो रहा था। एक अवकाश प्राप्त (रिटायार्ड) सिक्ख सैनिक अधिकारी सभापति थे। अजीतसिंह का भाषण बड़ा मनोहर था। लाला जी के भाषण का संक्षेप यह था कि भारतभूमि के स्वामी हमारे पूर्वज ही थे, और अब उसके स्वामी हम हैं। अंग्रेजों को हमें उससे वंचित करने का कोई अधिकार नहीं।

लाला जी लिखते हैं—"बांकेदयाल ने अपना प्रसिद्ध गीत "पगड़ी सम्भाल, ओ जट्टा", गाया और श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। स्यालकोट के मौलवी ने पंजाबी में एक कविता पढ़ी। शहाबुद्दीन तथा रामभजदत्त के भाषण हुए और अन्त में मैंने वह प्रार्थना पत्र (मेमोरियल) पढ़ा जिसे हम लाहौर से छपवा कर अपने साथ लाए थे। सभा में सरकार की ओर से नहरी आबादी के कानून के विरुद्ध (हमारी) आलोचनाओं के छपे उत्तर बांटे गए और वक्ताओं ने उनका खण्डन किया। रायबहादुर हरीचन्द अपने पुत्रों तथा भतीजों के साथ सभा में आए और काफी समय तक वहां रहे। मेरा विश्वास है कि सभा की कार्यवाही देखने के लिए वह सरकार की ओर से भेजे गए थे। कुछ समय के लिए डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट तथा सुपरिन्टेंडेंट पुलिस भी आए और बाहर ही खड़े रहे, परन्तु किसी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। अधिकारियों ने भी सभा में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं

किया। सिक्ख तथा मुसलमान ज़मींदार काफ़ी उत्तेजित हो गए थे। यदि पुलिस हस्तक्षेप करती तो एक गम्भीर दंगे की सम्भावना तथा भय था।

"अभी सभा विर्सजित नहीं हुई थी कि अजीतसिंह भाषण देने के लिए फिर उठ खड़ा हुआ। कुछ लोग तो अजीतसिंह की वक्तृता बन्द कराने के पक्ष में थे, परन्तु रामभजदत्त ने अनुरोध किया कि अजीतसिंह का व्याख्यान अवश्य हो। उसका भाषण विद्रोहात्मक था, अतः सभा के संचालकों ने कई बार उसे बन्द कराने का विचार किया परन्तु रामभजदत्त मना करने वालों को रोकते रहे। अन्त में सभा संचालकों ने फिर अजीतसिंह को भाषण बन्द करने को कहा। सभापति ने सभा विर्सजित कर दी, परन्तु जनता अजीतसिंह का भाषण सुनने के लिए डटी रही। हम सभा से चले आए और उसी रात को लाहोर वापस आ गए"।

लायलपुर में स्वीकृत आवेदन पत्र की मूल रचना चौधरी शहाबुद्दीन के हाथों से हुई थी। मूल रूप में यह अत्यन्त उग्र तथा प्रबल शब्दों में था। मियां मुहम्मद शफी द्वारा संशोधित होने के अनन्तर यह मेरे पास लाया गया। उस समय भी वह मुझे अनावश्यक तोर पर उग्र प्रतीत हुआ और मैंने इसे और भी नरम कर दिया।" लाला जी लिखते हैं।

लाला जी में इस प्रकार एक वकील की स्वभाव सुलभ गंभीरता और नरम विवेक का उदय हो रहा था।

लायलपुर तथा रावलपिण्डी तूफान के केन्द्र बन गए। लायलपुर की सभा के कुछ दिन पूर्व, अजीतसिंह रावलपिण्डी में भी भाषण कर चुका था। रावलपिण्डी के स्थानीय नेताओं में प्रमुख हंसराज साहनी और उनके भाई गुरदास राम साहनी थे। दोनों ही प्रतिष्ठित वकील तथा आर्य समाज के क्रियाशील नेता थे। देशानुराग की भावनाओं से प्रेरित होकर, यह साहनी बन्धु राजनीत में भी उत्साहपूर्ण भाग लेते थे और इंडियन नेशनल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित होते थे। वह "पंजाबी" के दस संचालकों में थे और उन्हीं के कारण पत्र रावलपिण्डी के मामलो में विशेष दिलचस्पी लेता था। कुछ महीनों से "पंजाबी" के समाचार तथा सम्पादकीय कालमों में रावलपिण्डी के डिप्टी कमिश्नर मि० एगनिऊज़ को खूब आड़े हाथों लिया जा रहा था। रावलपिण्डी में अजीतसिंह के भाषणों में एक सभा के सभापति गुरदासराम साहनी बने थे। उसके भाई हंसराज तथा श्री जानकीनाथ कोल और खजानसिंह नामक दो अन्य वकीलों ने भी उसी सभा में भाषण दिये थे। रावलपिण्डी बार (प्राड्वाक् संघ) के एक अन्य प्रमुख सदस्य अमोलकराम उस सभा के संयोजक थे।

इन पांचों सज्जनों को डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने बुलाया। उनसे प्रश्न किया कि

इस प्रकार की सभा में भाग लेने के कारण उनकी वकालत के लाइसंस क्यों न छीन लिए जाए ?

इस नोटिस से पंजाब भर में खलबली मच गयी, क्योंकि हंसराज तथा लाला अमोलकराम पंजाब के विख्यात तथा सर्वप्रिय नेताओं में से थे। जिस दिन उस नोटिस को सुनवाई होनी थी, उससे एक दिन पूर्व लाजपतराय रावलपिण्डी पहुंचे। वहां उनको ज्ञात हुआ कि केस की सुनवाई के दिनों में नगर हड़ताल करने का निश्चय कर चुका हूँ।

"अगले दिन १० बजे हम कचहरी गए और देखा कि समस्त हाते में भारी भीड़ जमा है। अनुमान किया जाता है उस दिन कचहरी में २० हजार से भी अधिक समूह होगा।

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट १२ बजे के भी बाद पहुंचा। आते ही उसने मि० अज़ीज़ अहमद बैरिस्टर तथा अभियुक्तों को बतलाया कि पंजाब सरकार के आदेश के अनुसार केस आगे नहीं चलेगा। जन समूह ने हर्ष प्रगट किया। यह समाचार बिजली की तरह फैल गया।

बहुत से लोग बार-रूम (वकीलों का कमरा) में मेरे पास आए और मुझे भाषण करने को कहा। मैंने इनकार कर दिया। फिर उन्होंने मुझे नगर में जलूस के रूप में ले जाना चाहा। मैंने यह भी न माना।

"कुछ क्षणों के अनन्तर खबर आयी कि भीड़ बलात् डिप्टी कमिश्नर तथा डिस्ट्रिक्ट जज की कोठी में घुस गयी है और वहां तोड़-फोड़ कर रही है। तत्काल ही उनको इस काम से रोकने के लिये आदमी भेजे गए ताकि दंगा फसाद न हो जाए। परन्तु प्रतीत होता है कि पुलिस ने अपने एजेण्ट छोड़ रक्खे थे जो जनता को हिंसा की उत्तेजना दे रहे थे। कुछ रास्ता चलने वाले गोरों को पीटा भी गया। सारांश यह है कि दंगे के सम्पूर्ण लक्षण प्रकट हो रहे थे।

"शीघ्र ही हमें ज्ञात हुआ कि भीड़ बूटासिंह के कारखाने में घुस गयी है। लोग बूटासिंह को देशद्रोही, कह कर पुकारते थे और उसी को सारे फसाद की जड़ समझते थे। जनता के भारी आग्रह और अनुरोध से मैंने शाम को मण्डी में भाषण देना स्वीकार कर लिया था। परन्तु उपद्रवों के अनन्तर मैंने भाषण देने का विचार छोड़ दिया।

"हम अभी कचहरी में ही थे कि हमें ज्ञात हुआ कि उपद्रव को शान्त करने तथा फसादियों को गिरफ्तार करने के लिये सेना बुलायी गयी है। हमें यह भी पता लगा कि एक पठान फौजी टुकड़ी ने इस कार्य के लिए तैयार होने में अनिच्छा प्रकट की है। एक पठान मेरे पास आया और कहने लगा कि अमुक टुकड़ी मेरे आदेश की

प्रतीक्षा कर रही है। मैं हंस पड़ा और उसे टाल दिया। मुझे सन्देह था कि वह सरकारी गुप्तचर है।

"सेना ने उपद्रव शान्त कर दिया और बहुत से लोगों को गिरफ्तार कर लिया जिनमें कुछ प्रमुख नागरिक तथा कुछ शिक्षित युवक भी थे। यह सभी समाचार हम सुन रहे थे, परन्तु हम कर ही क्या सकते थे।"

"लाला हंसराज कुछ बीमार से थे, इसलिए वह तो घर चले गए और शय्या पर लेट गए। जब सभा का समय निकट आने लगा तो हम लाला हंसराज के मकान पर एकत्र हुए। यद्यपि आरंभ में हमारा विचार सभा को जाने का नहीं था, परन्तु अब वह कहने लगे कि इस समय न जाना कायरता होगी। इसके अतिरिक्त यह एक उत्तम अवसर है कि हम जाकर उपद्रवों के लिये खेद प्रकट करें तथा जनता को शान्त रखने का प्रयत्न करें। वहां हमें ज्ञात हुआ कि डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मि० एगनेऊज़ तथा सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस सभा के स्थान पर पुलिस दल के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम सभी चल पड़े और मार्ग में ही पुलिस के दूत ने हमें सन्देश दिया कि डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट हमसे बातचीत करना चाहते हैं। हमने आज्ञा मान ली और उनके पास जा पहुंचे। वह कुर्सी पर बैठे थे और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस पास ही खड़ा था। बहुत से भारतीय पुलिस अधिकारी उनके चारों ओर खड़े थे। मैजिस्ट्रेट ने आज्ञा दी कि कोई सार्वजनिक सभा न की जाए और न कोई भाषण दिए जायं। यदि सभा की गयी तो हम उत्तरदायी होंगे। लाला हंसराज ने कहा कि हम आज्ञा का पालन करेंगे और हमें उपद्रवों के लिए खेद तथा दुख है। सुपरिन्टेन्डेंट पुलिस मेरी ओर मुड़ कर कहने लगा कि यदि सभा हुई, तो उसके लिए मेरा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व होगा। मैंने उत्तर दिया कि मुझे कुछ कुछ कानून का भी ज्ञान है और मैं अपना उत्तरदायित्व भली प्रकार समझता हूँ, इसलिए आपका "उपदेश" अनावश्यक है। मि० एगनेऊज़ क्रोध से लाल होकर बोला "चले जाओ, मैं इस प्रकार की बातें नहीं सुनना चाहता।" संक्षेप यह है कि हम वापस आ गए और हमने जनता को कहला भेजा कि अधिकारियों ने सभा वर्जित कर दी है। अतः ठीक होगा कि वह भी अपने अपने घरों को लौट जाएं।

"उस रात और कुछ न हुआ।" लाला जी के ही शब्द हैं।

दूसरे दिन ३ बजे मध्याह्नोत्तर जब लाजपतराय, लाला गुरदासराम साहनी के मकान पर सो रहे थे, एक नौकर ने आकर जगाया और सूचना दी कि गुरदास राम गिरफ्तार हो गए हैं। "मैंने कपड़े पहने और कचहरी को चला गया, जहां संवाद मिला कि लाला हंसराज, लाला अमोलकराम तथा लाला गुरदासराम सभी गिरफ्तार कर लिए गए हैं और पंडित जानकीनाथ तथा मलिक खजानसिंह के

मकानों की तलाशी ली जा रही है। गिरफ्तारी के लिए गोरे सैनिक बुलाए गए थे।"

"पकड़कर सभी को कचहरी लाया गया। उनकी ज़मानत के प्रार्थना पत्र अस्वीकृत कर दिए गए। मैं शीघ्र ही लाहौर के लिए रवाना हो पड़ा कि चीफ़ कोर्ट में प्रार्थना पत्र भेज सकूं। मार्ग में पता लगा कि गिरफ्तारियों के समाचार चारों ओर फैल चुके हैं।" लाला जी ने लिखा है।

अगले दिन प्रार्थना पत्र दिए गए। साधारणत: एक ही जज सुनवाई करता है और आज्ञा जारी करता है, परन्तु यहां तो उसका विरोध करने के लिए एक वकील भी उपस्थित था। जज ने फैसला किया कि प्रार्थना पत्र की सुनवाई डिविज़न बेंच करे और इतने में सरकारी वकील रावलपिंडी के ड्रिस्ट्रिकट मैजिस्ट्रेट से मालूम करे कि प्रार्थना पत्र क्यों स्वीकार न किया जावे।

प्रार्थना पत्र की सुनवाई से भी पूर्व डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट रावलपिण्डी कमान अफसर का पत्र चीफ कोर्ट के जजों के नाम लेकर स्वयं जा पहुंचा जिसमें सम्भवत: कहा गया था कि यदि उन बन्दियों को छोड़ दिया गया, तो भारतीय सेनाओं में विद्रोह हो जायगा। अभियुक्तों के वकील को वह पत्र देखने की आज्ञा नहीं दी गयी, यद्यपि उनकी प्रतिलिपि प्राप्त करने की प्रार्थना की गयी थी। साधारण रूप से सुनवाई के अनन्तर जजों ने ज़मानत की प्रार्थना अस्वीकार कर दी।

अध्याय चौबीसवाँ

१८१८ के रेग्युलेशन की धारा ३ के अधीन निर्वासन

समस्त रावलपिण्डी काण्ड में लाहौर तथा रावलपिण्डी के न्याय-विभाग तथा शासन विभाग के अधिकारियों का रंग ढंग अत्यन्त विचित्र तथा असाधारण रहा। सबसे विस्मय-जनक बात यह हुई कि उस समय के चीफ कोर्ट के रजिस्ट्रार ने एक वकील, मि० बोधराज को बतलाया कि "सारी शरारत की जड़ (उसका संकेत लाजपतराय की ओर था) तो अभी स्वतंत्र घूमता फिरता है, परन्तु चिरकाल तक स्वतंत्र न रह सकेगा।"

अन्य साधनों द्वारा भी इसी प्रकार के संवाद लाजपतराय तक पहुंचने लगे। एक मित्र ने (जो कुछ उच्च योरुपीय अधिकारियों से मिला था) लाला जी को बतलाया कि अधिकारीगण इन घटनाओं पर दांत पीस रहे हैं और उनका विश्वास है कि सारी शरारत की जड़ मैं ही हूं और वह चाहते थे कि मेरा शीघ्र ही कड़ा बंदोबस्त किया जाय। एक और स्थान से खबर मिली कि वह उनके लायलपुर वाले भाषण को बड़े ध्यान से जांच रहे हैं कि उससे राजद्रोह का अपराध सिद्ध कर सकें।

कुछ मित्रों ने सलाह दी कि लालाजी लाहौर से चले जावें और गड़बड़ी शान्त होने तक दूर ही रहें। सभी को लालाजी का एक ही सीधा उत्तर था "मैंने ऐसा कोई कानून के विरुद्ध कार्य नहीं किया है जिससे शासनाधिकारियों का मुझ पर किसी प्रकार भी हाथ उठाने की सम्भावना हो, इसलिए मुझे किसी प्रकार का भय अथवा आशंका की आवश्यकता नहीं है।

एक और भी अनोखी खबर (उच्चाधिकारियों के एक विश्वासपात्र मित्र द्वारा लाई गई)। उनके कानों में यह भनक पहुंची कि लाला लाजपतराय के साथ नामधारी सिक्खों वा कूकों के गुरु भाई रामसिंह के साथ जैसा व्यवहार हुआ उसी व्यवहार की आशंका है। १८७२ ई० में कूकों के गुरु भाई रामसिंह के पचास अनुयाइयों को तोप से उड़ा दिया था! उसके पश्चात् गुरु रामसिंह पर किसी प्रकार का मुकद्दमा चलाए बिना रेग्युलेशन १८१८ की धारा ३ के अधीन, उनको ब्रह्मा निर्वासित कर दिया गया था और फिर उनका कोई समाचार नहीं मिला।

इससे लाजपतराय को १८१८ रेग्युलेशन को देखने की जरूरत पड़ी। "रेग्युलेशन का अध्ययन करने पर तो मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि चूंकि मैंने कोई ऐसा कार्य नहीं किया है कि मुझ पर उक्त रेग्यूलेशन लागू हो सके, अतः पंजाब के सर्व-साधन संपन्न तथा सर्वशक्तिमान् शासक, मुझ जैसे व्यक्ति को निर्वासित करके संसार भर के सन्मुख अपनी निर्बलता का प्रकाशन इस प्रकार कदापि न करेंगे। लाहौर से भागकर निकल जाने का विचार तो एक क्षण भी मेरे मन में नहीं आया। जो कुछ मुझ पर आ पड़े, मैं वह सब सहने को तैयार था। मैं अपने रावलपिण्डी के मित्रों तथा देश के प्रति अपने कर्तव्य-पालन में जुटगया। मैंने अन्य प्रान्तों के कुछ भारतीय नेताओं को पंजाब की स्थिति के बारे में पत्र लिखे। एक पत्र मैंने इंडियन नेशनल कांग्रेस की बृटिश कमेटी के प्रधान, सर विलियम वैडरबर्न के नाम भी चिनाब नहरी आबादी के शासन प्रबन्ध के बारे में लिखा। विलायती डाक जाने से दो दिन पूर्व मैंने एक मित्र को इंग्लैण्ड पत्र डाला जिसमें मैंने लिखा कि पत्र शीघ्र लिख रहा हूँ। क्योंकि मैं कह नहीं सकता कि डाक के दिन तक मुझे पत्र लिखने की स्वतंत्रता भी होगी या नहीं।' लालाजी ने लिखा है।

उसी दिन लालाजी ने एक पत्र अपने पिताजी को अपनी सम्भावित गिरफ्तारी के विषय में लिखा। लालाजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री प्यारेलाल जी ही उन दिनों लाहौर में थे। परिवार के अन्य सभी लोग लाहौर में प्लेगफूट पड़ने के कारण लुधियाना चले गए थे। इस पत्र में उन्होंने पिता जी से यह सविनय अभ्यर्थना की थी कि "चाहे जो भी आपत्ति मुझ पर आ पड़े, आप कदापि न अधीर हों। जो आग से खेलता है, कभी कभी अपना मुख जलाने का अवसर भी उसे आ पड़ता है। शासकों की कार्यवाहियों की आलोचना करना आग से खेलना है। यदि मुझे कोई भी चिन्ता है तो इस विचार से कि इसमें आपको कष्ट होगा। अतः कृपया आप मुझे इस बात का विश्वास दिलावें कि मेरी गिरफ्तारी से आप बिलकुल नहीं घबरायेंगे। कुछ भी हो, यह समय कायरता दिखलाने का नहीं है। जो कुछ भी हो, उसे वीरों की तरह सहन करना चाहिए। जब हंसराज, गुरदासराम तथा अमोलकराम बन्दीगृह में हैं तो मेरी स्वतंत्रता निरर्थक है।"

एक प्रकार से उन्हें आगामी संकट की चेतावनी मिल चुकी थी। जो कुछ भी सिर पर आ टूटता, वह उसके स्वागत के लिए पहले से ही उद्यत थे। अपने पिता जी के नाम पत्र में अपनी जगरांव की सम्पत्ति को अपने पुत्रों के नाम करा देने का निर्देश भी था।

९ मई को विलायती डाक का दिन था। वह विलायती डाक के लिए प्रातः ही कुछ पत्र लिखने बैठ गए। एक पत्र पंजाब की राजनैतिक परिस्थिति के बारे में

संवाद पत्रों के नाम भी लिखा गया। वह अभी लिख ही रहे थे कि लाला हंसराज १० बजे के लगभग उनके पास आए और कहने लगे कि मित्र मण्डली के साथ बाहर भ्रमण तथा मनोरंजनार्थ चलें। लाजपतराय ने बलपूर्वक उत्तर दिया कि मेरे पास ऐसे कामों के लिए न तो समय है और न आज मेरा जी ही चाहता है। उनके मित्र चले गए। उन्होंने पत्र समाप्त किए, खाना खाया और फिर एक दो पत्र लिखने बैठ गए। प्रातः का कार्य समाप्त कर के वह चीफ कोर्ट जाने को तैयार हुए। दो दिन हुए एक मुवक्किल उनके पास ३५० रु० छोड़ गया था कि उसके लिए कोई बड़ा वकील कर लिया जावे। नोटों का बण्डल जेब में डाल कर, नौकर को गाड़ी लाने की आज्ञा दी। इतने में मुंशी ने सूचना दी कि दो मुलाकाती दर्शनार्थ आए हैं।

वह बाहर निकल आए और अनारकली पुलिस के इन्स्पेक्टर तथा सिटी पुलिस के मुंशी रहमतुल्लाह को मिले। यह दोनों सरकारी वर्दी में थे। वह यह सन्देश लाए थे कि कमिश्नर तथा डिप्टी कमिश्नर उन्हें एक आवश्यक कार्य के लिए मिलना चाहते हैं।

वर्तमान असन्तोष को शान्त कराने के लिए लाहौर के कमिश्नर कुछ प्रमुख व्यक्तियों को अपने पास बुला रहे थे। लाजपतराय के मन में प्रथम विचार यह आया कि मुझे भी उसी शान्ति कार्य के लिये बुलवाया गया होगा। उन्होंने इन्स्पेक्टर रहमतुल्लाह को बतलाया कि मेरा कोर्ट में कुछ काम है। इसलिए मैं कुछ देर में पीछे कमिश्नर से मिल सकूंगा। इस पर इन्स्पेक्टर बोला कि "कमिश्नर साहब डिस्ट्रिक्ट दफ्तर में हैं और आप को चन्द मिनटों के लिए बुलवाया है। आप पहले उनसे मुलाकात कर लें, पीछे कचहरी चले जाएं।"

इस अनुचित शीघ्रता से लाजपतराय का माथा ठनका। उन्होंने मुसकराते हुए कहा "बहुत अच्छा, आ जाओ, मेरी गाड़ी तैयार है, हम इकट्ठे चले चलेंगे।" गाड़ी अभी फाटक से निकली ही थी कि दो योरुपीयन अफसर उसके पायदानों पर चढ़ गए। उनमें से एक डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टन्डन्ट पुलिस मि० रण्डेल से लाजपतराय परिचित थे। उन्होंने उससे गाड़ी के अन्दर बैठने को कहा। लाजपतराय की कोठी से केवल २ मिनट चल कर डिस्ट्रिक्ट पुलिस दफ्तर था, जहां मि० यंगहसवैण्ड, कमिश्नर ने गवर्नर जनरल इन कौंसल के वारंटों द्वारा उनको निर्वासन की आज्ञा सुना दी। भाई रामसिंह के प्रति किए गए व्यवहार जैसा व्यवहार उनके साथ भी करने का निर्णय हो गया। उसी रेग्यूलेशन की सहायता ली गयी। अब केवल यही देखना शेष था कि क्या वह लाला जी को भी नामधारी गुरु की तरह कहीं ब्रह्मा में जा पटकेंगें अथवा उनके निर्वासन तथा कारावास के लिए कोई अन्य स्थान चुना जायगा। उस समय उनको सभ्य शब्दों में विश्वास दिलाया गया कि उनके साथ यथोचित व्यवहार किया जायगा।

अध्याय पच्चीसवाँ

मार्लेमिण्टो की मनोवृत्ति में

लाजपतराय को एक असाधारण तथा मृतप्राय रेग्यूलशन द्वारा निर्वासित करने के लिए जो निर्णय किया गया उसको समझने के लिए १९०७ के ऐंग्लोइंडियन समाज का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना आवश्यक है, क्योंकि पंजाब के उस समय के लेफ्टीनेंट गवर्नर तथा भारत के गवर्नर जनरल भी देशव्यापी ऐंग्लो इंडियन मनोवृत्ति के कुप्रभाव से बचे नहीं रह सकते थे।

एंग्लो-इंडियन शासक चिरकाल से मृदु तथा आराम पसन्द ढंग के जीवन में पले चले आते थे और प्रतिष्ठा तथा शान के साथ सारा प्रबन्ध चलाते थे। जब उन्हें प्रतीत हुआ कि विरोधी शक्तियां प्रति दिन प्रबल हो रही हैं तब वह भयभीत तथा सशंक हो गए। ऐसी परिस्थितियों में एंग्लो-इंडियन मनोवृत्ति पर १८५७ अथवा "विद्रोह" के दिनों का भूत सवार हो जाता था। मि० ऐडवर्ड जे० थामसन लिखते हैं:—"विद्रोह (१८५७) के कारण भारत में रहने वाले योरुपीयन समाज पर महान् आतंक छाया रहता है। उन्हें यह दुःस्वप्न कि उनकी विवश स्त्रियों तथा बच्चों की हत्या के लिये कई दानवी हाथ उठ रहे हैं, सदा उद्विग्न एवं चिन्तित बनाये रहता है ओर समय समय पर उनको इसी प्रकार का चक्कर आया करता है! इससे उनकी दशा दयनीय तथा सहानुभूति के योग्य हो जाती है। १८५७ की घटनाओं का चित्र अंग्रेज़ों के मस्तिष्क पर ऐसा जम गया है कि वह इसके कारण, ऐसे ऐसे कार्य करने को उद्यत हो जाते हैं जिन्हें कोई ठीक दिमाग वाला व्यक्ति कभी न करेगा।" इसी प्रकार १९०७ में भी एंग्लो-इंडियन मस्तिष्क में "५७" की घटनाओं की स्मृति जाग उठी। १८५७ से १९०७ तक पूरी अर्द्ध-शताब्दी हो जाती है। यह कितनी अमंगलकारी और अशुभ बात है कि अर्द्धशताब्दी को कहीं उसी रूप में मनाया न जाने लगे, इस संभावना से वे संत्रस्त थे। वह सोचते थे कि भारतीय सेनाओं में पुनः विद्रोह की ज्वाला भड़क उठेगी और सैनिकों तथा नागरिकों—स्त्रियों और बच्चों पर पुनः अकथनीय अत्याचार किए जाएंगे। सब की हत्या की जाएगी। ऐंग्लो-इंडियन पत्रों ने भी "विद्रोह" मनोवृत्ति के भीषण लक्षण दिखलाए। सभाओं तथा क्लबों में दिन रात इसी विषय की चर्चा रहती थी। छोटे तथा बड़े सभी साहब

लोगों को चारों दिशाओं में काले शैतान ही दृष्टिगोचर होते थे। यह शैतान् १८५७ के भूत थे। (अभी रक्त के प्याले रूसी बोलशेविकों का जन्म नहीं हुआ था)— विद्रोह को सबल बनाने वाले किसी भी गप्प पर वह विश्वास कर लेते थे। नीच गुप्तचरों के पौ बारह थे।

१९०७ से पूर्व ही एंग्लो-इंडियन पत्रों का झुकाव ऐसे ही भयातुरतापूर्ण मूर्छा रोग के रोगी की मनोवृत्तिवाली दिशा की ओर हो रहा था। ५७ के साथी १९०७ का जो अर्द्ध शताब्दीय सम्बन्ध आ जुटा उसने तो मामला और भी बिगाड़ दिया लाहौर के एंग्लो-इंडियन दैनिक पत्र के तो होश ही ठिकाने न रहे थे। उसमें तो ऐसी ऐसी अनर्गल चिट्ठियां प्रकाशित होती थीं जिनमें राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने वाले शिक्षित वर्ग को कोड़ों से पीटने के प्रस्ताव सुझाए जाते थे। सी० एफ० एड्र्यूज को जो दिल्ली के सेण्ट स्टीफन कालेज में प्रोफेसर होकर अभी नये ही भारत में पधारे थे, और जिन्हें एंग्लो इंडियन मनोवृत्ति का ठीक परिचय तक न था, इन बातों से अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने इसके विरोध में एक पत्र लिखा। कुछ दिनों के अनन्तर लाहौर के विशप (लाट पादरी) श्रद्धेय लीफ्राए ने एंग्लो-इंडियन पत्रों के इस कार्यवाही के प्रति अपना विरोध व्यक्त किया। लार्ड मिण्टो ने भी ह्वाइटहाल को भेजे जानेवाले गुप्त खरीते में स्वीकार किया कि इन लेखों की शैली अत्यन्त नीचता पूर्ण है। परन्तु पंजाब सरकार ने ऐसे लेखों और पत्रों के लेखकों वा उन्हें प्रकाशित करने वाले समाचार पत्रों पर कोई मुकद्दमा चलाने की स्वीकृति नहीं दी।

प्रति दिन इस प्रकार गन्दे लेखों से प्रभावित होकर साहब लोगों को विश्वास हो गया कि १८५७ के पुनरावृत्ति की पूर्ण योजना तैयार है और पूरे एक लाख सैनिक लाजपतराय के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सन् ५७ के नाटक का श्रीगणेश १० मई को हुआ था, अतः उनका विश्वास था कि उसकी पचासवीं वर्ष गांठ पर उसी तिथि को अब फिर कुछ न कुछ अवश्य होगा। ज्यों ज्यों १० मई निकट आने लगी यह लोग प्रबल अनुरोध करने लगे कि उस तिथि के लिये लाहौर के अंग्रेजों ने अपने परिवारों को लाहौर दुर्ग में भेज देने का प्रबन्ध कर लिया था। रेलवे अधिकारियों को भी आवश्यकता पड़ने पर कटिबद्ध रहने को कहा गया था।

केर हार्डी महोदय को जिसने १९०७ में भारत का भ्रमण किया था, इस मनोवृत्ति के काफी प्रमाण मिले। दिल्ली में म्युनिसपल कमेटी का कर दुगना कर दिया गया था। उसके विरुद्ध आन्दोलन हुआ और करवृद्धि की आज्ञा रद्द कर दी गयी। १० मई को केवल पांच मिनट के लिए कुछ देशी लोगों में दंगा हो गया योरुपियन क्लब में समाचार पहुंचा कि गुण्डे योरेशियन तथा देसी लोगों ने विद्रोह कर दिया है और गोरों की हत्या कर रहे हैं। नगर में कार बार तथा मनोरंजन

सर्वथा साधारण रूप में चल रहा था। कहीं कोई उपद्रव अथवा अशान्ति न थी।

केर हार्डी को सब से अधिक अचम्भा जिस बात से हुआ वह यह थी कि इटावा की एक घटना में लाजपतराय का नाम लिया जा रहा था। आगे चल कर यह इटावा गप्प के नाम से विख्यात हुई और इसमें १९०७ में एंग्लो इंडियन मनोवृत्ति का पता चलता है।

प्रतीत होता है कि संयुक्त प्रान्त के इटावा जिले के हिन्दू तथा मुस्लिम सरकारी कर्मचारियों में कुछ काल से अनबन सी चली आ रही थी। हिन्दुओं ने कोशिश कर के वहां के मुसलमान कोतवाल को वहां से बदलवा दिया और उसके स्थान पर एक ब्राह्मण डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को नियुक्त कराने में सफल हुए। जिन विभागों में मुसलमानों की प्रधानता थी वह तथा अन्य अधिकारी वर्ग का पुलिस से अनबन चली आती थी। "पंजाब में लाजपतराय के मामले से पूर्व इटावे में कोई भी घटना नहीं घटी। कुछ दिन पीछे, मि० रोज—मैजिस्ट्रेट को गुप्त रूप से मुसलमान तहसीलदार द्वारा सूचना मिली कि स्थानीय हिन्दू अधिकारीगण विशेषत: मि० श्यामबिहारी मिश्र (डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस) मि० पुत्री प्रसाद (डिप्टी कलेक्टर) और कुछ वकील जैसे मि० जसवन्तसिंह, इटावा में वकालत करने वाले लोग एक पंजाबी वकील लाला लाजपतराय के लिये चन्दा जमा कर रहें हैं। लोग आर्य समाज के भिन्न दलों के साथ विद्रोहात्मक पत्र व्यवहार करते रहतें हैं। यह भी कहा गया कि ऐसे पत्र व्यवहार को रोक लेना सम्भव है। इस कार्य के लिये शीघ्र ही उचित कार्यवाही की गयी। यथासमय, विशेष गुप्तचर—खलील द्वारा १९ ऐसे पत्र पकड़े गए अथवा पेश किए गए जिनका अधिकांश अत्यन्त उत्तेजना फैलाने वाला तथा विद्रोहात्मक था। इनमें कुछ पत्र निजी थे परन्तु उन पर किसी न किसी उक्त हिन्दू अधिकारियों के हस्ताक्षर अवश्य थे। मि० कोबल—डिविजनल कमिश्नर ने पूरी जांच की और उन सब कागजों की सत्यता का विश्वास दिलाया। प्रान्तीय सी० आई० डी० के डायरेक्टर मि० शार्प को बुलाया गया। वह भी सहमत थे कि मामला गम्भीर है। तीन अन्य केन्द्रों-उन्नाव, खेड़ी तथा अमृतसर में एक ही समय तलाशी तथा जांच की आज्ञा जारी कर दी गयी।

"इतने में एक अत्यन्त असाधारण घटना हो गयी। मि० रोज स्थानीय वालंटियरों के कमांडेंट, कप्तान आदमसन के साथ परिस्थिति पर विचार कर ही रहे थे। स्थानीय अधिकारी मामले को भीषण समझते थे और सब का यही विचार था कि नगर में विद्रोह होने वाला है। वह समझते थे कि पुलिस विश्वसनीय नहीं है।

"कुछ भी हो, वालंटियरों के कप्तान के साथ बात करने का यही उद्देश्य था कि

वह टूण्डला तथा कानपुर की सेनाओं को चेतावनी दे दे कि जब तार मिले वह चलने को प्रस्तुत रहें। उसने ऐसा ही किया। इतने में मि० कोबल, मि० शार्प तथा इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस सभी घटनास्थल पर पहुँच गए। किसी अज्ञात कारण से इन्स्पेक्टर जनरल का विचार सर्वथा भिन्न बन गया। उसने सरसरी जांच करते ही कह दिया कि यह सभी चिट्ठियां जाली हैं और जांच करनेवाले इन्स्पेक्टर से यह स्वीकार करा लिया कि ख़लील निश्चय रूप से एक बदमाश आदमी है। इलाके भर में वह धोखेबाज़ प्रसिद्ध है परन्तु अभी तक उसे कहीं दण्ड नहीं मिला। जालसाज़ी इतनी सफलता से की गयी थी कि जिन लोगों के हस्ताक्षर बनाए गए थे उनके लिये भी अस्वीकार करना कठिन था! वह यह नहीं कह सकते थे कि यह उनके हस्ताक्षर नहीं हैं!! जांच करने वाले अधिकारियों में घोर मतभेद पैदा हो गया। मि० रोज तो अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए न्यायालय तक जाने को इच्छुक थे। सरकार ने इन्स्पेक्टर जनरल का मत स्वीकार कर लिया और ख़लील की गिरफ्तारी का वारण्ट जारी कर दिया। वह भाग गया। सरकार ने मि० ब्राऊली को फटकार दी और मि० रोज़ को दण्ड दिया।"

लाजपतराय के नाम से सम्बद्ध किसी भी बात पर विश्वास करने के लिए एंग्लो इंडियन अधिकारी तत्पर थे। उनके विचार में सारा इटावा का नगर ही विद्रोह के लिए तैयार था। "पुलिस को बिगाड़ने का प्रयत्न किया जा रहा है।" सरकार को १८१८ के रेग्यूलेशन का उपयोग करने को कहा गया और वह उद्यत हो गयी। केर हार्डी कहता है कि निर्वासन की आज्ञा जारी कर दी गयी। पंजाब सरकार की यही मानसिक अवस्था थी जब उन्होंने लाजपतराय को निर्वासित कराया।

लाजपतराय की गिरफ्तारी का सर्वप्रथम उत्तरदायित्व तो पंजाब के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर, सर डवैंज़िल इब्बटसन को है। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि १८१८ के रेग्यूलेशन की धारा ३ के प्रयोग का विचार किस उर्वर मस्तिष्क की उपज है। १९०७ की तूफानी घटनाओं पर इब्बटसन के विचार एक खरीते में अंकित हैं। मिण्टो ने उसका सारांश मारले को भेजा था। भारतीय विद्रोह कमेटी (१९१७) ने जिसके सभापति जस्टिस सर एस० टी० रेलेट थे, उक्त कागजात की पड़ताल की और अपनी रिपोर्ट में उसका सारांश दिया। वह लिखते हैं—

"अप्रैल १९०७ के अन्त में पंजाब की स्थिति का स्पष्ट विवरण सर डैंज़िल इब्बटसन की एक रिपोर्ट से मिलता है जिसमें से हम कुछ उद्धरण देते हैं। उसने लिखा है कि प्रान्त के पूर्व तथा पश्चिम में नवीन विचार शिक्षित वर्ग-मुख्यतः वकीलों, बाबुओं तथा विद्यार्थियों तक परिमित हैं। ज्यों ज्यों हम प्रान्त के केन्द्र की ओर आते हैं, सचेष्टता तथा असन्तोष के अधिकाधिक लक्षण पाए जाते हैं। अमृतसर तथा

फिरोजपुर में लाहौर के आन्दोलनकारियों ने विद्रोहात्मक भावनायें फैलाने का प्रयत्न किया है। फिरोजपुर में तो उन्हें काफी हद तक सफलता प्राप्त हुई है यद्यपि अमृतसर में नहीं। रावलपिंडी, स्यालकोट तथा लायलपुर में अंग्रेज़ों के विरुद्ध खुला तथा सक्रिय प्रचार किया जा रहा है। प्रान्त की राजधानी—लाहौर में प्रचार उग्र रूप में जारी है और उसके परिणामस्वरूप वहां गम्भीर असन्तोष फैला हुआ है। हाल ही में लाहोर में योरुपीयनों को अपमानित किया गया है और एक पत्र के सम्पादक तथा संचालक को दण्ड मिलने पर वहां दंगे हुए हैं। गरम दल के शिक्षित ऐजीटेटर सार्वजनिक सभाओं द्वारा प्रबल प्रचार कर रहे हैं। चिनाब नहरी आबादी तथा बारी द्वाब के देहात में अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रचार जारी है। इन देहातों में नहरी आबादी में भूमि के स्वामित्व के परिवर्तन के प्रस्ताव तथा बारीद्वाबे में सिंचाई-कर की प्रस्तावित वृद्धि के विरुद्ध असन्तोष फैल रहा है। सिक्खों को उत्तेजित करने के लिए पूरा बल लगाया जा रहा है। पुलिस वालों को देशद्रोही के नाम से पुकारा जा रहा है, उन्हें सरकारी नौकरी छोड़ने का उपदेश दिया जा रहा है। ऐसा ही निमंत्रण भारतीय सैनिकों को भी भेजा जा रहा है। दो सप्ताह हुए नार्थ वेस्टर्न स्टेट रेलवे के अधीन कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। यह हड़ताल वहां हुई जहां कि उक्त रेलवे का भाग चिनाव नहरी आबादी में से गुज़रता है। हड़तालियों के साथ सहानुभूति प्रकट करने के लिये सार्वजनिक सभाएं की गयीं और उनके सहायतार्थ काफी धन संग्रह किया गया। कुछ नेता अंग्रेज़ों को देश से निकाल देना चाहते हैं अथवा उनसे बलपूर्वक वा निष्क्रिय प्रतिरोध द्वारा शक्ति छीनना चाहते हैं। वह सरकारी मशीन को प्रबल जातीय घृणा की भावना के साधन से बन्द करा देना चाहते हैं। परिस्थिति अत्यन्त गम्भीर तथा भयानक है और इसका शीघ्र ही प्रतिकार होना चाहिए।

"प्रतिकार यह किया गया कि १८१८ के रेग्यूलेशन द्वारा आन्दोलन के हिन्दू तथा सिक्ख नेताओं—लाजपतराय तथा अजीतसिह को गिरफ्तार तथा निर्वासित कर दिया गया है। नहरी आबादी के प्रस्तावित कानून को भी भारत सरकार ने अस्वीकृत कर दिया है, परन्तु भारत मंत्री लार्ड मार्ले ने जो उस समय केवल मि० मार्ले थे, इस मन्तव्य को स्वीकार नहीं किया कि आपत्ति की जड़ भूमि सम्बन्धी बातें ही थीं। ६ जून १९०७ को हाउस आफ कामन्स में भाषण करते हुए आपने कहा—"१ मार्च से १ मई तक पंजाब में प्रमुख ऐजीटेटरों द्वारा २८ सभाएं की गयीं, जिनमें से केवल पांच ही कृषकों की शिकायतों के सम्बन्ध में थीं, शेष २३ शुद्ध राजनैतिक सभाएं थीं।"

"भारत के राजनैतिक भविष्य" के पृष्ठ १६४ पर लाजपतराय लिखते हैं—

"१९०७में १ मार्च से १ मई तक होने वाली सभाओं का कम से कम अनुमान २८ का दुगना या शायद तिगुना होगा और उनका अधिकांश कृषकों की शिकायतों से सम्बद्ध था। शुद्ध राजनैतिक सभाओं की संख्या दस, बारह से अधिक नहीं हो सकती।"

वायसराय लार्ड मिण्टो ने तुरन्त ही लाजपतराय के निर्वासन की स्वीकृति दे दी। "उदार" भारतमंत्री—ईमानदार जान (लार्ड मार्ले) को वारण्ट जारी कर देने के अनन्तर सूचित कर दिया गया। उसने प्रजा सभा में दृढ़तापूर्वक उसका समर्थन किया। वायसराय तथा भारतमंत्री में जो पत्र व्यवहार हुआ, उसका कुछ अंश तो लार्ड भार्ले की स्मृतियों में से तथा कुछ अंश लार्ड मिण्टो के "भारत मिण्टो तथा मार्ले १९०५-१०" में पाया जाता है।

२ मई को मिण्टो ने मार्ले को लिखा था—"सर हेनरी काटन ने, कुछ दिन हुए, आपसे प्रजा सभा में सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट में प्रकाशित होने वाले पत्रों के विषय में प्रश्न किया था। वह अत्यन्त निकृष्ट ढंग के पत्र थे जिनसे जातीय घृणा के भावों को उत्तेजना प्राप्त होती थी। पंजाब सरकार ने मुकदमा न चलाने का निर्णय किया, और निजी मुकदमा चलाने की आज्ञा भी नहीं दी। वह कितने ही ठीक तथा उचित क्यों न हों, परन्तु यह जान कर मनुष्य का रक्त खौलने लगता है कि प्रमुख अंग्रेज़ी पत्र इस प्रकार की चीज़ प्रकाशित करें। हमने लेफ्टीनेन्ट गवर्नर को लिख दिया है कि यद्यपि कोई निश्चित कार्यवाही न की जाए, परन्तु आप सम्पादक को बुला कर समझा दें कि इससे कितना अनिष्ट हो रहा है।"

एक सप्ताह पश्चात् मिण्टो ने मार्ले को तार दिया—"तीन दिन हुए हमें पंजाब की राजनैतिक स्थिति पर इब्बटसन की एक अत्यन्त आवश्यक तथा महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्राप्त हुई है।...वह बड़ी भयंकर परिस्थिति बतलाते हैं। उग्रवादी प्रान्त भर में सर्वत्र खुले तौर पर और निरन्तर लेखों द्वारा तथा भारी सभाओं द्वारा राजद्रोह फैला रहे हैं। राजभक्त श्रेणी के लोग हमारी अकर्मण्यता पर स्तम्भित हो रहे हैं। इब्बटसन की सम्मति में यह लोग शीघ्र ही उस सरकार को घृणा की दृष्टि से देखना शुरू कर देंगे जो अवाध रूप से राजद्रोह के प्रचार की आज्ञा देती है और खुले तौर पर अपमानित हो रही है।

"राजद्रोह का कार्य दो मुख्य रीतियों से होता है। लाहौर, अमृतसर, रावलपिंडी, फिरोजपुर तथा मुलतानादि नगरों में तो उसका एक रूप उच्च अधिकारियों की हत्या करने का खुला प्रचार है। जनता को खड़े होने, अंग्रेज़ों पर आक्रमण करने तथा स्वतंत्र हो जाने को प्रोत्साहित किया जाता है। उसका दूसरा रूप यह है कि देहात में संगठित प्रयत्न द्वारा उन श्रेणियों को बिगाड़ा जा रहा है जिनमें से सेना भरती की जाती है। सिक्खों तथा पेंशन प्राप्त सैनिकों की ओर विशेष ध्यान

दिया जा रहा है। सिक्ख ग्रामों में द्रोहात्मक पर्चे बांटे जा रहे हैं। फिरोजपुर की एक सार्वजनिक सभा में जहां आपत्तिजनक विचारों का प्रचार निस्संकोच रूप से किया गया, स्थानीय सिक्ख पलटनों को सभा में सम्मिलित होने को निमंत्रण दिया गया और वे कई सौ की संख्या में वहां उपस्थित हुए। सिक्खों को बतलाया गया कि १८५७ के "विद्रोह" में तुम्हीं ने अंग्रेजों के लिए भारत को बचाया। अब वह तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं। स्वतंत्रता संग्राम में अपने देश के प्रति विश्वासघात करने का तुमको फल मिल रहा है।...कहा जाता है कि हम रुई तथा गन्ने के देसी उद्योग धन्धों को नष्ट करना चाहते हैं। यह भी प्रचार किया जाता है कि हमने जनता का धन अपहरण कर लिया है और उसके बदले में उन्हें कागज के नोट दे दिए हैं। देहातियों से प्रश्न किया जाता है कि जब अंग्रेज़ यहां से चले जायेंगे तो उन नोटों का रुपया हमें कौन देगा। जनता को सरकारी कर भूमिकर, सिंचाई कर तथा अन्य कर अदा न करने के लिए संगठित करने का प्रोत्साहन दिया जा रहा है। जनता से अनुरोध किया जा रहा है कि वह शासनाधिकारियों को दौरा करते समय किसी प्रकार की न तो सामग्री दें, न गाड़ियां दें तथा न अन्य किसी प्रकार से उनकी सहायता करें। देसी सैनिकों तथा पुलिस वालों को "देशद्रोही" तथा गद्दार के नाम से पुकारा जा रहा है और उन्हें सरकारी नौकरी त्यागने की प्रेरणा की जा रही है।

"इस समस्त प्रोपगण्डा का संचालन तथा संगठन आर्य समाज की एक गुप्त समिति द्वारा होता है। यह संस्था (आर्य समाज) आरम्भ में तो धार्मिक थी, परन्तु पंजाब में इसकी प्रबल राजनैतिक प्रवृत्ति है।

"समस्त आन्दोलन के केन्द्र तथा आदि स्रोत एक खत्री वकील लाला लाजपतराय हैं जो पंजाब के कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैण्ड भी हो आए हैं। वह क्रांतिकारी हैं और उनके हृदय में अंग्रेजी राज्य के प्रति घृणा कूट कूट कर भरी हुई है।" लाजपत राय के राजनैतिक सम्बन्धों का वर्णन करते हुए वायसराय ने यह बात गलत कही कि वह खत्री थे। लाला जी जैसा पहले हम लिख चुके हैं, अग्रवाल थे। अस्तु।

आगे चल कर तार में लिखा है—"वह (लाजपतराय) स्वयं तो चतुरता से पीछे पीछे रहता है, परन्तु सभी देसी सज्जनों ने लेफ्टिनेण्ट गवर्नर को विश्वास दिलाया है कि मुख्य संचालक वही है। राजद्रोह-प्रसार में उसका मुख्य सहायक अजीत सिंह है जो पहले अध्यापक था और जिसे गत वर्ष से कल्पित रूसी गुप्तचर, लस्सेफ़ द्वारा इस कार्य में लगाया गया है। राजनैतिक सभाओं में वही सब से उग्र वक्ता है। उसने बहुधा सरकार के सक्रिय विरोध का प्रचार किया है। वह अपने भाषणों द्वारा कृषक वर्गों तथा सैनिकों में असन्तोष उत्पन्न करता है। देश के साधारण

कानून के अधीन इन लोगों पर मुकदमा चलाने की कठिनाइयों तथा वर्तमान परिस्थिति में उनके विरुद्ध सन्तोषजनक साक्षी प्राप्त करने की सम्भावना को सामने रखते हुए, उनके विरुद्ध १८१८ के रेग्यूलेशन ३ के अधीन वारण्ट जारी करने की प्रार्थना की जाती है। यह कार्यवाही शीघ्रातिशीघ्र ही की जानी चाहिए क्योंकि परिस्थिति, सुधरने के स्थान में दिन प्रति दिन बिगड़ती जा रही है।

"कल कौंसिल में मामले पर विचार किया गया। आज लाजपतराय तथा अजीतसिंह को माण्डले निर्वासित किए जाने के आज्ञा पत्र जारी कर दिए गए हैं। मार्ग में सार्वजनिक प्रदर्शनों की रोकथाम के लिये विशेष कार्यवाही की जा रही है।

"मेरी सम्मति में तथा मेरी समस्त कौंसिल की सम्मति में यह पग उठाना नितांत आवश्यक था। परिस्थिति इतनी नाजुक है कि १८६१ के ऐक्ट की धारा २३ के अधीन सार्वजनिक सभाओं के नियंत्रण के लिए मुझे आर्डिनेंस (विशेष आज्ञा) जारी करने पड़े। इसके द्वारा वक्ताओं के भाषणों की पूर्ण तथा शुद्ध रिपोर्ट भी प्राप्त हो सकेगी और कहीं कहीं (आवश्यकता पड़ने पर) सभाओं को बन्द भी किया जा सकेगा। देशी भाषाओं में शार्ट हैण्ड रिपोर्ट के अभाव में भाषणों की शुद्ध रिपोर्ट प्राप्त करना असम्भव है। हमें गुप्तचरों की मौखिक रिपोर्टों पर विश्वास करना पड़ता है। असंख्य साक्षियों के होते हुए उन गुप्तचरों का खण्डन किया जा सकता है। अतः राजद्रोह के अभियोग में दण्ड देना काफी कठिन कार्य है।

आज के समाचारों से ज्ञात होता है कि रावलपिण्डी स्थित सेनाओं को बिगाड़ने के संगठित प्रयत्न हो रहे हैं, परन्तु सेनाओं की स्थिति सन्तोषजनक है।"

इतने लम्बे चोड़े तार के अतिरिक्त लार्ड मिण्टो ने ८ मई को भारत मंत्री को लिखा—

"मैंने लार्ड किचनर से भी काफी बातचीत की है। उनका कहना है कि इससे सेनाओं पर कोई कुप्रभाव पड़ने की सम्भावना नहीं है। पंजाब के देहात की स्थिति चिन्ताजनक है। क्योंकि देहातियों के अनुचित रंग ढंग को देखकर ११वीं बंगाल लांसरों ने अपनी जिन सर्वे पार्टियों को बाहर भेजा था, उनको वापस बुला लिया है।"

"यद्यपि हम पंजाब की चिन्ताजनक स्थिति के बारे में समय समय पर अफवाहें सुन रहे थे, परन्तु इब्बटसन के संवाद ने तो हमें स्तंभित कर दिया है। पंजाब के विषय में उससे अधिक ज्ञान कोई और नहीं रखता और उसे अत्युक्ति करने की आदत ही नहीं। जब तक सेना वफादार है, मुझे निहत्थी जनता के विद्रोह से किसी प्रकार का भय नहीं। अभी अधिक दंगों की सम्भावना है, परन्तु हमें समय पर चेतावनी मिल गयी है, अतः हम उनका यथोचित प्रबन्ध कर सकते हैं।"

सीमाप्रान्त से भी बुरे समाचार आ रहे थे जैसा कि आगामी पंक्तियों से ज्ञात होता है:—

"पेशावर ज़िले में चिन्ता का कारण विद्यमान है क्योंकि सीमाप्रदेश की जातियों की प्रान्त के मुसलमानों के साथ उग्र धार्मिक सहानुभूति है। . . .मेरी सम्मति में भय तो पंजाब तथा उत्तर तक ही सीमित है और लार्ड किचनर ने उसके लिए सैनिक प्रबन्ध कर लिया है. . ."

लार्ड मिण्टो के इस सन्देश से एंग्लो इंडियन घबराहट का पूरा पता चलता है। "मेरा विचार यह है कि अशान्ति का प्रधान कारण १८५७ के विद्रोह की वर्षगांठ है। ८ मई तथा ११ मई के बीच में ही हमें गड़बड़ी की प्रतीक्षा करने को कहा गया है। मेरा विचार है कि विद्रोह का सूत्रपात मेरठ में १० को तथा दिल्ली में ११ को हुआ था और मेरा प्रबल विश्वास है कि राजनैतिक दल के कारणों को छोड़ते हुए १८५७ की स्मृतियां ही वर्तमान वर्ष को असाधारण बना रही हैं।"

१८५७-१९०७ ! मई के मध्य को याद रखो !

"वैसी ही भयंकर स्थिति के अरुचिपूर्ण समाचार कलकत्ता से आ रहे हैं, जैसे कि विद्रोह के दिनों में लार्ड केनिंग के शासन काल में आया करते थे। उस समय की अपेक्षा हम कहीं अधिक बलशाली हैं। परन्तु १८९५ की अपेक्षा विचारों तथा देसी जनमत का परस्पर आदान प्रदान कहीं अधिक सहज है। शासकों की मूर्खता तथा अपने अधिकारों का जनता को उस समय से आज कहीं अधिक ज्ञान है। अब वह हमारी मूर्खताओं को सहन करने को तैयार नहीं। हमें इन दिनों काफी दृढ़ तथा न्यायप्रिय रहने दिया जाना चाहिए। यह असाधारण परिस्थिति चिरस्थायी नहीं होगी। जनता में यह विश्वास नहीं फैलने दिया जाना चाहिए कि हम निर्बल अथवा किंकर्तव्य विमूढ़ हैं। दिन प्रति दिन मेरा तो इस बात में दृढ़ विश्वास होता जाता है कि हम शिक्षित भारतवासियों को देश के शासन में अधिकाधिक सांझेदार बनाएँ, विना इसके यहाँ शांति पूर्वक राज्य नहीं चला सकते।"

मार्ले इस पर आलोचना करता है—

मार्ले की ओर से मिण्टो के नाम ९ मई। "तुम्हारे पंजाब के समाचारों से तो यह प्रतीत होता है कि हमारे लिए कठिन दिन आने वाले हैं। . . .

"हमें जो कुछ आवे उसके लिए तैयार रहना चाहिए। यदि दंगे फसाद जारी रहें, तो हमें भी कुछ न कुछ करना ही होगा। यदि दुर्भाग्य से कड़ाई की आवश्यकता पड़ जाए, तो मैं आपका समर्थन करूँगा। आपको केवल राजद्रोहियों के विरुद्ध ही मेरी सहायता की ज़रूरत न पड़ेगी, प्रत्युत शासनाधिकारियों के विरुद्ध भी, क्योंकि

इतिहास में जितना भाग क्रान्तिकारी वर्ग की मूर्खताओं का है, उतना ही इस अधिकारी वर्ग का भी है। किसी भी कड़े पग उठाने से पूर्व उसके हानि तथा लाभ पर पूरा विचार कर लो। यदि आपको किंचित मात्र भी ठोस साक्षी मिले कि विद्रोही लोग देसी सेना को बिगाड़ रहे हैं, तो उनका पूरी तरह दमन करो। केवल इस बात को कदापि न भूलना कि वर्तमान उत्तेजना के वशीभूत हो कर सन्देह तथा सम्भावना को ही निश्चय तथा वास्तविकता न समझ बैठना।"

"आपने हमें जो महत्वपूर्ण पत्र लिखे हैं उनमें से सनसनीपूर्ण शीर्षकों वाले पत्रों का कदाचित् ध्यान भी न हो। उनको पढ़कर तो यह ज्ञात होता है कि तीस वर्षीय युद्ध में मैगडीवर्ग के घेरे की तरह रावलपिण्डी में भी अग्नि, तलवार तथा रक्तपात के काण्ड हुए होंगे। यह कितना घृणित तथा निन्दनीय कार्य है।" मार्ले ने मिण्टो को दमन की खुली छुट्टी तो दे दी, परन्तु उसकी अतीत "उदार" आत्मा को भला चैन कहां; वह बार बार ज़ारों तथा अन्य अत्याचारियों के उदाहरण दे दे कर वायसराय को चेतावनी देते रहते थे तथा उसकी भर्त्सना करते रहते थे। "ज़ार तथा डूमा की तरह यहां भी प्रश्न तो भविष्य का है। क्या हम भी कह दें "तुम्हें सुधार मिलेंगे, जब तुम लोग शान्त हो जाओगे। उससे पहले हम तुम्हारी कोई बात नहीं सुनेंगे। हमारी सुधार योजनाएं विचाराधीन हैं, इत्यादि ?"

१९०७ में पंजाब में सरकार की कार्यवाहियों को समझने के लिए हमें मार्ले, मिण्टो तथा कुछ कुछ इब्बटसन की ओर ध्यान देना होगा। मार्ले उदार भावना के लिए विख्यात था, परन्तु उसने अपनी उस ख्याति को तिलांजलि दे दी थी—दमन नीति के बारे में विरोधियों का मुख बन्द करने में उसके नाम का लाभ उठाया जाता था। मिण्टो अनुदार तथा प्रतिक्रियावदी था, परन्तु साधारणतया उत्तेजित हो उठना आदि उसमें न था। जब भारत निवासी योरुपीयन समाज में सशंकित हो कर भड़क उठने की भावना फैल गयी तो उस पर भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उसे परिस्थिति का अत्युक्तिपूर्ण विवरण देने में, अपनी इच्छानुकूल कार्य करने के लिये अच्छा अवसर हाथ आ गया। इब्बटसन तो नितान्त प्रतिक्रियावादी था। बहुतों को यह सन्देह है कि वह जान बूझ कर शरारत करा रहा था जिससे उसको सब प्रकार के आन्दोलन को दबाने की खुली छुट्टी मिल जाए। मार्ले ने इब्बटसन के विषय में जो कहा है वह यह है—

"अपनी चतुरता तथा अनुभव के आधार पर इब्बटसन काफी दृढ़-निश्चयी व्यक्ति है। यदि कोई व्यक्ति—चाहे वह कितना ही सच्चा तथा ईमानदार क्यों न हो, वर्षों तक एक पुरानी परम्परा के ढर्रे में जीवन व्यतीत करता रहा हो, तो उसके लिए नवीन परम्पराओं तथा नवीन परिस्थितियों को समझना सहज नहीं होता।

पीछे की ओर मुख कर के चलने वाले सहकारियों के द्वारा कार्य करना दुर्भाग्य ही है। मुझसे उसने कठिनाइयों का वर्णन किया। उसने मुझसे खुल कर बातें कीं। वह मुझसे कहता था कि निर्वासन शीघ्र तथा बिना किसी शर्त के होना चाहिये। मैंने उत्तर दिया कि यदि हम केस चलाने में असफल हों तो निर्वासन का पग हम शुद्ध आत्मा के साथ उठा सकते हैं। सच्ची बात यह है कि यदि हमारे पास इस बात के विश्वास करने के लिए ठोस कारण विद्यमान हों कि भारत की परिस्थिति भयंकर होती जा रही है, तो जहां तक पार्लियामेण्ट तथा जनमत का प्रश्न है, हमें इच्छानुकूल पग उठाने में संकोच नहीं होगा।" मार्ले को ठोस कारणों के अस्तित्व में सन्देह था।

मार्ले से काम निकलवाने के लिए, मिण्टो को कई ढंग सूझने लगे थे। कुछ समय तक तो उसे सफलता मिली। प्रथम तो उसने राजद्रोह के अपराधियों को गोली से उड़ाने की सम्मति दी, परन्तु पीछे उदारता का भाव जाग्रत होने के कारण वह अन्य उपायों से सन्तुष्ट हो गया। मिण्टो को इस ढंग की सफलता का पूरा विश्वास था। उसने अपनी पत्नी को लिखा—

"६ जून, शिमला। "टाइम्ज़" का जो पर्चा गत सप्ताह पहुंचा है, उसमें बड़ी मनोरंजक बातें लिखी हुई थीं। उन लोगों का विचार है कि सब कुछ मार्ले ही करता है। उसने मेरा समर्थन अवश्य किया है, परन्तु सब कार्यों का उत्तरदायित्व मेरा ही है। लाजपतराय के निर्वासन के विषय में तो उसके पास अपनी सम्मति प्रकट करने का समय भी नहीं था। कुछ जिलों में आर्डिनेंस जारी करना एकमात्र मेरा ही कार्य था। यह अधिकार तो वायसराय को ही प्राप्त हैं . . .।"

मिण्टो का यह कथन ठीक ही है जो उसने अपने शासनकाल के अन्त में अपनी पत्नी को लिखा है—

"सत्य तो यह है कि मैं जब से यहां आया हूं, सदा मेरी ही बात मानी जाती रही है। प्रायः मैं ठण्डे दिमाग से काम करा लेता हूं और अत्यन्त सभ्य भाषा में अपनी बात पर जोर देता हूं। जिस व्यक्ति से काम लेना होता है, उस व्यक्ति के भावों के उतार चढ़ाव को देख कर कार्य करता हूँ।"

चालाक वायसराय मिण्टो ने प्रतिभाशाली मार्ले को अपनी नीति पर चलाने में सफलता प्राप्त की। सम्भवतः वह स्वयं भी ऐसा ही अनुभव करते थे। उनकी स्मृतियों के पृष्ठों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वायसराय तथा भारत मंत्री में मतभेद की खाई प्रति दिन चौड़ी हो रही थी। अगस्त १९०७ में उसकी कौंसिल को मिण्टो के साथियों से भरा गया था। "उन्होंने मुझे आपका कल वाला प्रेस तार भेजा है मुझे अचम्भा होता है कि आप इस बात को कैसे भूल सकते हैं कि आप लोग एक स्वतंत्र देश की पार्लियामेण्ट के नौकर तथा एजेण्ट हैं। पार्लियामेन्ट ही नये कानूनों

की स्वीकृति दे सकती है। आपका तार कहता है कि आन्दोलनकारी का मुख बन्द करने के लिये विशेषाधिकार की आवश्यकता है। मैं तो स्पष्टतया बतला चुका हूँ कि मैं किसी के निर्वासन की स्वीकृति उसी दशा में दे सकता हूँ जब इस बात के ठोस प्रमाण मौजूद हों कि उसके कार्य का सीधा फल भयंकर फसाद तथा गड़बड़ है। यही लोग तो आपके अरण्डेल सुधारों का विरोध करते रहे, जो समयानुकूल अत्यन्त प्रशंसनीय तथा नीतिपूर्ण सुधार थे। लाहौर तथा रावलपिण्डी की गड़बड़ी से लाभ उठा कर इन्होंने अरण्डेल सुधारों को ठुकराने का बहाना पेश कर दिया। यह सब उस समय किया गया जब अन्तरंग सभा भी विसर्जित हो चुकी थी, वकील भी घरों को जा चुके थे, मेरी आधी कौंसिल भी अनुपस्थित थी। राजनीति तथा कानून से सम्बद्ध नाजुक तथा पेचीदी समस्याओं से पूर्ण बातों के लिये मुझे केवल एक सप्ताह का स्वल्प समय दिया गया। यही शासनाधिकारी (जो सदा एक दूसरे की बुद्धिमत्ता, अनुभव तथा अन्य गुणों की प्रशंसा करने को तत्पर रहते हैं) इन समस्याओं को एक सप्ताह वा एक घण्टे में हल कर सकते हैं। उन्हें तो अपनी योजनाओं के समर्थन के लिए युक्तियां नहीं उपस्थित करनी पड़तीं। मैं तो आपको अपना विचार बतला चुका हूँ कि सत्रहवीं शताब्दी के आर्यलैण्ड के शासन के लिये स्ट्रेफर्ड ही आदर्श गवर्नर था। आयरलैण्ड वालों ने बेचारे स्ट्रेफर्ड का सिर काट लिया और तब से उस ढंग की शासन प्रणाली पसन्द नहीं की जाती। मेरा निर्णय आपको तार द्वारा पहुंच गया होगा। मेरा तो स्पष्ट नकार है कि मैं आपकी बात को स्वीकार करूं। यदि एक व्यक्ति के भाषणों से फसादों को उत्तेजना मिलती है तो उसे दंगे के अपराध में जेल क्यों नहीं भेज दिया जाता? क्या उनके पास काफी पुलिस नहीं है? यदि पुलिस नहीं तो "अनिवार्य सेना" को क्या हो गया है? यह कहना सहज है कि देश की शान्ति-रक्षा के लिए भारत सरकार इन प्रस्तावों को आवश्यक समझती है, परन्तु ऐसा कहने का क्या लाभ, जब पार्लियामेण्ट इसे स्वीकार ही नहीं करेगी? यदि मैं उनसे स्वीकार कराने का प्रयत्न करूँ तो मैं समझता हूँ कि पार्लियामेण्ट के विश्वास का दुरुपयोग कर रहा हूँगा।

"केवल सैनिक अधिकारियों के कहने से, प्रेस कानून जारी करना, मेरी सम्मति में बड़ी क्रूरता और कठोरता होगी। भला निजी सभा को सार्वजनिक सभा में परिणत करने की बात पर विचार तो करो! लेफ्टीनेण्ट गवर्नर अथवा अन्य अधिकारियों को यह अधिकार दे देना कि वह किसी भी वक्ता का जिसके विचार उनको पसन्द नहीं हों, किसी इलाके में मुख बन्द कर दें, कैसी बात है! इससे अच्छा तो यह होगा कि उनको सीधा फांसी पर लटका कर मामला समाप्त कर दो।"

"हम दोनों एक ही प्रकार से भारत को समझने का प्रयत्न करते हैं और एक

ही भावना से काम करना चाहते हैं, परन्तु स्थिति यह हो गयी है कि मानो एक ही गाड़ी के दोनों घोड़े उसे विपरीत दिशाओं की ओर घसीटते जा रहे हैं।"

दो वर्ष पश्चात् जब लाजपतराय माण्डले निर्वासन से लौट आए, मिण्टो ने फिर कुछ बंगाली नेताओं के निर्वासन की स्वीकृति मांगी, परन्तु मार्ले ने स्वीकृति नहीं दी।

"निर्वासन की नीति रूस में भी असफल रही है।" यह उसके हृदय के उद्गार थे।

प्रजा सभा में जब कभी भी मार्ले से लाजपतराय के निर्वासन का कारण पूछा गया तो उसने 'सार्वजनिक हित' के बहाने द्वारा ही अपनी जान छुड़ाने का प्रयत्न किया, परन्तु वास्तविकता यह है कि उसे भी कारणों का ठीक ठीक ज्ञान नहीं था। उन बातों का कोई भी विवरण न तो उनकी 'स्मृतियों' में और न किसी सरकारी प्रकाशन में से प्राप्त होता है, यद्यपि उन घटनाओं के अनन्तर बहुत समय बीत जाने पर उस रहस्य के उद्घाटन से किसी प्रकार के अनिष्ट की सम्भावना नहीं थी। यदि वह किसी प्रकार अपना मौन भंग करते, तो उसमें एंग्लो-इंडियन मनोवृति की हास्यपूर्ण कथाओं के अतिरिक्त और कुछ भी न होता। ऐंग्लो-इंडियन मनोवृत्ति ने तो यही समझ रखा था कि अब दूसरा नाना साहब आनेवाला है जिसके आदेश की प्रतीक्षा में एक लाख सैनिक तैयार बैठे हैं।

लाजपतराय के निर्वासन काल में एक योरुपियन अधिकारी उनसे जाकर मिला और उनको बतलाया कि साधारणतः लोगों का यही विश्वास है कि आपने सरकारी सेनाओं की राजभक्ति में हस्तक्षेप किया और आपको दूसरा नाना साहब समझा जाता है। १८५७-१९०७ नाना साहब-लाजपतराय। १८५७ में जो नाना साहब द्वारा हुआ वही १९०७ में लाजपतराय द्वारा होगा, यही विश्वास ऐंग्लो-इंडियन वर्ग में और उस भावना के लोगों में उस समय व्याप्त था। मेरी समझ में यह अत्यन्त स्वाभाविक था।

लाजपतराय ने भारत सरकार को लिखा था कि उन्हें तो सेनाओं के सम्पर्क का अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ। उनकी यह बात सोलह आने सत्य थी। यह बहाना उनके निर्वासन के अनन्तर ही उस समय गढ़ा गया था जब सरकार उनके विरुद्ध ठोस साक्षी की खोज में थी। उससे पूर्व उसका लेश भी कहीं न था। मिण्टो-मार्ले पत्र व्यवहार से यही ज्ञात होता है। देखिये मार्ले के नाम मिण्टो का एक पत्र :—

"मिण्टो की ओर से मार्ले के नाम : अगस्त २९ "मुझे भय है कि सेना के बारे में हम ने परिस्थिति स्पष्ट नहीं की। लाजपतराय की गिरफ्तारी के अनन्तर यह बात ज्ञात हुई है कि देशी सिपाहियों तथा अफसरों को बिगाड़ने के प्रयत्न भी हुए।

ज्यों-ज्यों हम इधर अधिक ध्यान देते जा रहे हैं, त्यों-त्यों बुरी-बुरी बातें प्रकाश में आ रही हैं।" "यह बातें देशी अफसरों तथा जासूसों द्वारा हमें ज्ञात हुई हैं। इनका अधिकांश सम्भवतः अविश्वसनीय हो। परन्तु जिस प्रकार की हवा यहां चल रही है, उससे तो यह नितान्त कठिन है कि सब बातों को निराधार ही मान लिया जाय। विद्रोह से पूर्व की चपातियों की रहस्यपूर्ण कथा चेतावनी तो हो सकती है, परन्तु वह साक्षी नहीं हो सकती। आजकल देशी पलटनों की छावनियों में राजद्रोहात्मक पर्चे तथा संवाद पत्र बांटे जा रहे हैं।

"हमें अभी हाल ही में ज्ञात हुआ है कि देशी सेनाओं को बिगाड़ने के लिए उनका अल्प वेतन, ताऊन का प्रकोप आदि अन्य बातों से आन्दोलनकारी काम ले रहे हैं। कोई भी ऐसा साधन नहीं जिसे प्रयोग में न लाया जा रहा हो। यद्यपि हमें विशाल अधिकार प्राप्त हैं, परन्तु राजद्रोह के अपराध में किसी को गोली से उड़ाए जाने का मुझे खेद होगा। जहां तक मुझे ज्ञात है (कोर्ट मार्शल) 'सैनिक मंत्रालय' द्वारा दो व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया है। जब वातावरण में इतनी उग्र उत्तेजना पायी जाती हो, तो किसी प्रकार की सख्त कार्यवाही से जनता के भड़क उठने की आशंका है। हमें बिलकुल ठण्डा, शान्त तथा जागरूक रहना चाहिए। हमें चेतावनी मिल चुकी है, और हमें अधिक बिगाड़ को रोकने के लिए आवश्यक पग उठाने में संकोच नहीं करना चाहिए। सेना में गड़बड़ का स्वाभाविक परिणाम विद्रोह है, जिसका मुकाबला हमें बलपूर्वक करना चाहिए।"

१८५७-१९०७। चपातिएं-पर्चे। नाना साहिब-लाजपतराय-अन्तिम मुगल सम्राट का ब्रह्मा को निर्वासन-अब पंजाब केसरी का निर्वासन।

सच्ची बात यह है कि १८५७ के विद्रोह की अर्द्ध शताब्दी ने ऐंग्लो-इंडियन मनोवृत्ति तथा वायसराय को बुरी तरह आतंकित और भयभीत कर रखा था। लाजपतराय के निर्वासन से जो देशव्यापी क्षोभ तथा अशान्ति भारतवासियों में उत्पन्न हुई, उसका कुछ अंश सैनिक छावनियों में भी जा पहुंचना स्वाभाविक था।

मार्ले के नाम मिण्टो के खरीते में लाजपतराय तथा हबीबुल्लाह की मनोरंजक कथा भी आती है।

"हमें लाजपतराय तथा दूसरे आन्दोलनकारियों का अमीर (अफगानिस्तान) के साथ पत्र-व्यवहार चलता रहता है, इसके बारे में भी विचित्र समाचार प्राप्त हुए हैं। जहां तक अमीर का सम्बन्ध है, मैं इसे रत्तीभर भी महत्व नहीं देता, सम्भवतः वह तो इस प्रकार के पत्रों को रद्दी की टोकरी में फेंक देता है, परन्तु इससे एक बात स्पष्ट होती है कि हमारे लिए उसकी मित्रता कितनी महत्वपूर्ण है।"

जब अमीर भारतवर्ष पधारा, तो उसके स्वागत-तथा आतिथ्य पर जितना धन खर्च किया गया, वह तो कर्जन को भी अपव्यय प्रतीत हुआ था।

अध्याय छब्बीस

लालाजी का माण्डले को प्रस्थान-मुस्लिम युवक सिपाही तथा देवधर

लाजपतराय को बतलाया गया कि निर्वासन आज्ञा के अनुसार तुम्हें कहीं ले जाया जा रहा है। साथ ही उनसे यह भी पूछा गया कि जाने से पूर्व किससे मिलना चाहते हो। लाजपतराय ने किसी से भी मिलने के लिए स्पष्ट इनकार कर दिया। उन्होंने 'आत्मकथा' में लिखा है कि मुझे इस बात से हर्ष हुआ क्योंकि परिवार तथा मित्रों से वियोग के समय जो-जो लोमहर्षण दृश्य हुआ करते हैं, मैं उनसे बच गया।

जाने से पूर्व उन्होंने कुछ पत्र लिखने की आज्ञा से अवश्य लाभ उठाया। एक पत्र तो उन्होंने अपने मित्र द्वारकादास के नाम लिखा कि जिन-जिन मुवक्किलों के काग़ज़ात मेरे पास रह गए हैं, उनके मुकदमों का उचित प्रबन्ध किया जाए। यदि वह चाहें तो अपनी फ़ीसें भी वापस ले सकते हैं। उन्होंने नोटों का एक बण्डल जेब से निकाला। उनको बतलाया गया कि आप रुपए अपने साथ ले जा सकते हैं। पत्र के अन्त में मित्र से प्रार्थना की गयी थी कि आप मेरी किसी प्रकार की चिन्ता न करें, क्योंकि मैं भगवान की शरण में हूँ और जो कुछ भगवान करता है, हमारे कल्याण के लिए करता है।'

दूसरा पत्र उन्होंने अपने पुत्र प्यारेलाल को लिखा जो उन दिनों लाहौर में थे। "मुझे गिरफ्तार कर लिया गया है। मेरी अनुपस्थिति में मेरे पिताजी की आज्ञा पालन करना, उनको सान्त्वना देना तथा उनकी सेवा शुश्रूषा करते रहना। मेरे कुछ वस्त्र तथा बिस्तरा पुलिस के द्वारा भिजवा देना।"

इस भूमिका के अनन्तर, लाजपतराय को मोटर में बिठला दिया गया। मि० मैण्ट, डिप्टी कमिश्नर स्वयं मोटर चला रहा था और मि० रण्डेल, सुपरिन्टेन्डेंट पुलिस पिस्तौल लिए उसके पास बैठा। पिछली सीट पर बन्दी तथा एक गोरा सब-इन्सपेक्टर पुलिस बैठे। सारा प्रबन्ध गोरों द्वारा ही किया गया था। ऐसे महत्व-पूर्ण कार्य को किसी भारतीय पुलिस अधिकारी अथवा ड्राइवर को नहीं सौंपा जा सकता था। मोटर गोलबाग में से गुजर कर ठण्डी सड़क के मार्ग से शहर को पार करती हुई छावनी जा पहुंची। इस अवसर पर भारी सैनिक प्रबन्ध किया गया था।

इधर-उधर तोपखाना भी घूम रहा था। "इस दृश्य को देखकर मुझे हँसी आ गयी, परन्तु मैंने उसे दबा दिया।" लाजपतराय ने अपनी आत्मकथा में लिखा है।

एक गोरे सन्तरी के सामने मोटर खड़ी कर दी गयी और बन्दी को उतार लिया गया। उनके लिए एक कोठरी खोल दी गयी जहां वह ६ बजे शाम तक रहे। बाहर एक सशस्त्र अंग्रेज सिपाही पहरे पर था। जब डिपटी कमिश्नर तथा सुपरिन्टेंडेंट पुलिस ने उनसे पूछा कि क्या आप भोजन करेंगे? उन्होंने उत्तर में कहा, 'नहीं, धन्यवाद।" वह लिखते हैं :

"द्वार को बन्द करके मैंने कोठरी का निरीक्षण किया, दीवाल पर लटकते हुए कारावास के नियमों को पढ़ा, अपना कोट उतारा, लकड़ी की चारपाई को झाड़ा। वहां फर्नीचर के रूप में केवल वही एक खाट थी। उस पर लेट गया क्योंकि मेरे कलेजे में कुछ पीड़ा होने लगी थी। साधारणतः लाहौर में मई मास में काफी गर्मी पड़ती है। १९०७ में वसन्त के अन्त में वर्षा हो गयी थी और मेरे कलेजे में कष्ट होने के कारण मैंने गर्म (ऊनी) वस्त्र पहन रक्खे थे। कोठरी के अन्दर काफी गर्मी थी, अतः मैंने वास्कट भी उतार दी।

अपनी गिरफ्तारी के आध घण्टे बाद एकान्त में बैठकर मुझे अपने भविष्य पर विचार करने का अवसर मिल गया। कारागार की लकड़ी की खटिया पर बैठकर मैंने आत्मपरीक्षा आरम्भ कर दी। सबसे प्रथम तो मैंने ईश्वर को अत्यन्त धन्यवाद दिया कि मेरी गिरफ्तारी तथा वियोग के समय मेरे पिताजी, मेरी पत्नी अथवा मेरे बच्चे आदि कोई उपस्थित नहीं थे, नहीं तो उनको अपार कष्ट होता। दूसरी बात जिसके लिए मैंने भगवान को धन्यवाद दिया वह यह थी कि मेरी माता जी का स्वर्गवास हो चुका था। मुझे पिता जी के लिए भी दुःख था, परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास था कि वह अपने दृढ़ आचरण की शक्ति तथा अपने स्वाभाविक प्रत्युत्पन्न-मति के कारण इस दुख को सहन कर लेंगे। मुझे अपनी पत्नी तथा बच्चों के विषय में भी कोई चिन्ता न थी क्योंकि मेरे पिता जी उनके संरक्षक थे। अपने मन को परिवार की चिन्ता से मुक्त करने के अनन्तर मैंने अपने निजी नैतिक तथा मानसिक शक्तियों का विश्लेषण आरम्भ कर दिया और मुझे प्रतीत हुआ कि निराशा का कोई कारण नहीं है। शैशवावस्था से ही प्रभु के वात्सल्य पर विश्वास रहा है, अतः मैंने समझ लिया कि अब भी बुरी से बुरी परिस्थिति में उसी विश्वास की कृपा से, मजबूत रह सकूंगा। इस आत्मपरीक्षा के अनन्तर मैंने अपने प्रभु से हार्दिक प्रार्थना की कि मुझे विपत्ति सहन के लिए शक्ति, बल तथा स्थिरता प्रदान करें और उन प्रलोभनों से मेरी रक्षा करें जिनके कारण किसी प्रकार की मातृभूमि के पवित्र उद्देश्य को किञ्चिन्मात्र भी हानि पहुंचने की संभावना हो। मैं अपने देशवासियों

को भली प्रकार जानता हूं। इसलिए इस बात पर हँसी आयी कि सरकार के जासूसों ने किस प्रकार उसे कुमार्ग पर डाल दिया है।"

छः बजे शाम को बन्दी ने कोठरी के ताला खुलने का शब्द सुना और फिर किसी ने उनका नाम लेकर उनको पुकारा। द्वार खुलते ही एक अन्य गोरे पुलिस अधिकारी तथा एक मुस्लिम इन्स्पेक्टर के साथ मि० रण्डेल, सुपरिंटेंडेंट पुलिस दिखलाई पड़े। मि० रण्डेल ने बन्दी को एक गाड़ी में बिठलाया और मियांमीर (लाहौर छावनी पश्चिमी का उन दिनों यह नाम था) रेलवे स्टेशन की सैनिक साइडिंग पर ले आया जहां एक स्पेशल ट्रेन उनकी प्रतीक्षा में थी। लाजपतराय को अन्य अधिकारियों को सौंपकर, मि० रण्डेल ने उनको बतलाया कि आपके पत्र पहुंचा दिए गए हैं। फिर उनसे बिदा लेकर चल दिया और गाड़ी ने सीटी दे दी।

"मैंने यह कभी न सोचा था कि यह मेरी लाहौर से अन्तिम बिदाई है" लाजपतराय ने अपनी "मेरी निर्वासन कथा" में लिखा था। किसी प्रकार उनको यह भी विश्वास हो गया कि मेरी गति नामधारी गुरु की गति से भिन्न होगी। ये करुण दृश्य "हर दरो दीवार पर हसरत से नजर करते हैं। खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं" का स्मरण दिलाते हैं।

"छोटे-छोटे कष्ट तथा परेशानियां जो राजनैतिक बन्दियों को मानसिक दुख पहुंचाती हैं, शुरू हो गयीं। गाड़ी चलते ही चीफ पुलिस अफसर (जिसके अधीन मैं यात्रा कर रहा था) मेरी गाड़ी में घुस आया और उसकी उपस्थिति में योरुपियन पुलिस इन्स्पेक्टर ने मेरी फिर तलाशी ली।" लाला जी ने लिखा है। उनके पास जो रुपया था, वह तथा उनकी सोने की घड़ी और जंजीर उनसे ले ली गयीं। अफसर ने इस पर खेद प्रकट किया और साथ ही कहने लगा कि हमने आपके विरुद्ध जो कुछ किया है वह आत्मरक्षा के लिए किया है। मैंने उत्तर दिया कि मैंने तो कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिसके कारण मुझ से यह व्यवहार किया जा रहा है। मेरी सम्मति में इस समस्त काण्ड का उत्तरदायित्व उन अनुभवहीन, विवेकशून्य तथा गर्वीले अंग्रेज युवकों पर है जिन्हें इतने विशाल तथा असीमित अधिकार दे दिए गए हैं। उसने उत्तर दिया कि आप का यह कथन कुछ लोगों के सम्बन्ध में भले ही ठीक हो, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि हम सब निरंकुश अथवा उच्छृंखल हैं। इसके अतिरिक्त उसने लाजपतराय को सरकार की ओर से विश्वास दिलाया कि वह आपसे भली प्रकार व्यवहार करेगी। उसके मुंह से कुछ अन्य शब्द भी निकले जिनसे लाजपतराय के इस स्वाभाविक विचार को पुष्टि मिली कि वह लाहौर को अंतिम नमस्कार नहीं कर रहे हैं। यद्यपि सरकार की उच्च नीति का कुछ भी भान उनको एक पुलिस अधिकारी द्वारा होना सम्भव नहीं था।

इसी पुलिस अधिकारी ने उनको यह भी सूचना दी कि आप अपनी रुचि के अनुकूल खाना खा सकते हैं और गार्ड में दो हिन्दू पुलिस मैन इस कार्य में आपकी सहायता करेंगे। इन्स्पेक्टरों को भी उनके सब प्रकार के सुभीते का ध्यान रखने की आज्ञा है। साधारणतया, यात्रा भर में उनके सब प्रकार के सुख तथा सुभीते का ध्यान रखा गया, यद्यपि उनके कलेजे की पीड़ा के लिए फलालेन का टुकड़ा पट्टी बांधने को नहीं दिया गया। अधिकारियों को घबराहट तथा आशंका थी कि गाड़ी ठहरते ही उनकी यात्रा का भेद कहीं खुल न जाए। इन्स्पेक्टरों में एक ने अपने बिस्तरे में से उनको एक चादर, एक तकिया तथा एक कम्बल दे दिया। "ऐंग्लो-इंडियन पत्रों में इन उपरोक्त वस्तुओं के बारे में भी कुछ प्रकाशित हुआ था जिसके द्वारा अपने देशवासियों की दृष्टि में गिराने का यत्न किया गया था—कि मैं केवल मुख से ही स्वदेशी का प्रचार करता हूँ और मैं अपने वचनों को कार्य-रूप में लाने की शक्ति नहीं रखता।" मुग़लसराय पर बन्दी को वस्त्र बदलने की आज्ञा दे दी गयी। इस बात का तो शुरू से निश्चय हो चुका था कि कैदी के निजी कपड़े तथा बिस्तरा उसको पीछे पहुंचा दिए जायेंगे। पर उसके साथ नहीं भेजे जायेंगे। एक इन्स्पेक्टर स्थानीय बाजार से सिली सिलाई कमीज़ तथा पायजामा ले आया। कोशिश यही थी कि गाड़ी बहुत ही कम स्थानों पर ठहरे। रेलवे कर्म-चारियों को यह बतलाया गया कि वह रेलवे बोर्ड की स्पेशल ट्रेन है। जहां जहां भी गाड़ी ठहरती थी, पुलिस गार्द के भारतीय कर्मचारियों का जिसमें एक मुसलमान सब-इन्स्पेक्टर, आधे दर्जन मुस्लिम कान्स्टेबल, एक हिन्दू सार्जेण्ट तथा एक हिन्दू कान्स्टेबल थे, विशेष ध्यान रखा जाता था मानों वह भी कैदी हों और वहां से निकल भागने का विचार रखते हों।

"जब तक गाड़ी पंजाब की सीमा में थी, उसके किवाड़ बन्द रहे परन्तु अवध-रुहेलखण्ड रेलवे में मुझे स्टेशनों के मध्य में उन्हें खोलने की आज्ञा मिलती थी। भीषण गर्मी होते हुए भी बन्दी को बहुत कष्ट नहीं हुआ। उनको एक पंखा तथा एक पंखा कुली दिया गया। इस समय तक वह चिन्तामुक्त से हो गए थे। कई वर्षों से मुझे अनिद्रा रोग था। मेरी मानसिक स्थिति का पता केवल इसी बात से लग सकता है कि उस रात को मुझे गाढ़ निद्रा का आनन्द आया। फिल्लौर में मेरे सन्तरियों को मुझे गर्म दूध देने के लिए मेरी निद्रा भंग करनी पड़ी।" लाला जी लिखते हैं।

"पौ फटते ही डायमण्ड हार्बर (बन्दरगाह) पर रेल यात्रा समाप्त हुई।

पुलिस अफसर मेरे पास आकर मुझ से पूछने लगा कि क्या आपको पता है कि आप कहां हैं और क्या आप कुछ अनुमान लगा सकते हैं कि आप कहां जा रहे हैं ?

मैंने उसे बतलाया कि मैं स्टेशन को जानता हूं, क्योंकि मैं एक बार पहले भी इधर जा चुका हूं और सम्भवतः मुझे रंगून अथवा माण्डले ले आया जा रहा है। इससे वह आश्चर्य चकित हुआ होगा, क्योंकि अब तक मेरे गन्तव्य स्थान को मुझ से यत्न-पूर्वक गुप्त रखा गया था।"

डायमण्ड हार्बर पर बन्दी को एक (स्टीम लांच) अग्निबोट पर संतरियों सहित बिठाया गया और सरकारी अग्निपोत 'गाईड' तक पहुंचाया गया। रेलवे गाड़ी से उतरने से पूर्व, पहचान के चिह्न के रूप में वारण्ट की पुश्त पर उनके अंगूठे का निशान करा लिया गया।

उन्होंने पूछा कि क्या मैं अपने परिजनों को तार दे सकता हूं। इसकी आज्ञा नहीं दी गयी। उनको पत्र लिखने की आज्ञा दे दी गयी। उन्होंने एक पत्र पिता जी के नाम लिखा (जो किसी कारण से उनको प्राप्त नहीं हुआ) और एक पत्र अपने पुत्र प्यारेलाल के नाम लिखा, "जो कुछ भी आए, मैं सहन करने को तैयार हूं। अपने पितामह तथा माता जी की सेवा करना। उनकी आज्ञा पालन करना, उनको धैर्य देना और अपनी विधवा बहन तथा उसके छोटे लड़केका विशेष ध्यान रखना। अपने चाचागण से प्रीतिपूर्वक रहना और अपने संकट को वीरों की तरह वहन करना।" पत्र में ये शब्द लिखे गये थे।

अब पंजाब के पुलिस अधिकारी ने बंगाल के एक उच्च पुलिस अधिकारी को अपना चार्ज सौंप दिया, बन्दी का एक फोटो (चित्र) उतार कर और उसे जहाज पर चढ़ाकर, उनसे पंजाब पुलिस ने विदाई ली। उसके अन्तिम शब्द पहेली जैसे रहस्यमय थे "अब तो आप भारत से जा रहे हैं, देखिए आप कब तक लौटते हैं?"

पंजाब के गोरे पुलिस इन्स्पेक्टर तथा पुलिस गार्द अब भी उनके साथ रहे। परन्तु उनका नया अफसर पहले अफसर की अपेक्षा अभद्र एवं असभ्य था। उसकी सारी भद्रता गोरे इन्स्पेक्टरों के लिए सुरक्षित थी!!

एक छोटी-सी कठिनाई जहाज में स्थान के बारे में उठ खड़ी हुई। कप्तान कहता था कि केवल निचला स्थान ही दिया जा सकता है। परन्तु गोरे पुलिस इन्स्पेक्टर ने उसे एक ओर ले जाकर समझाया और उससे दो केबिन (कोठड़ियां) प्राप्त करने में सफल हो गया—एक उसके अपने लिए तथा दूसरी योरुपियन सब इन्स्पेक्टर के लिए। कैदी, मुस्लिम सब इन्स्पेक्टर तथा कान्स्टेबलों को उस अन्धेरी गुफा में प्रवेश करने को कहा गया जहां से अशुद्ध वायु तथा दुर्गन्ध आ रही थी। इस पर लाजपतराय अपने अधिकार की रक्षा के लिए डट कर खड़े हो गए। विरोध प्रदर्शन करते हुए बोले कि 'कानून के अनुसार सरकार को मेरे मान एवं पद के अनुकूल स्थान देना होगा।' इससे इन्स्पेक्टर की आंखें खुल गयीं। उसने

मुझे कहा कि "आप थोड़ी देर नीचे चले जायें, मैं वचन देता हूं कि कप्तान से बात-चीत करके आपको अच्छा स्थान दिला दूंगा।" वास्तव में कप्तान के पास अन्य स्थान था ही नहीं और एक घण्टे के अनन्तर इन्स्पेक्टर यह कहने को लौट आया कि गोरे सब-इन्स्पेक्टर वाली कोठरी ही आपके लिए है।" कोठरी मेरे लिए किसी काम की न थी, क्योंकि मैं जब तक जहाज़ पर रहा सदा डेक पर ही रहता था।

'एस० एस० गाईड' डायमण्ड हार्बर से १२ वीं को मध्याह्न से पूर्व चला और १५ वीं की मध्याह्नोत्तर रंगून जा पहुंचा। मार्ग में मौसम काफी खराब रहा। जब जहाज़ ने लंगर डाला तो वर्षा हो रही थी। मौसम की तरह कप्तान भी खराब तथा क्षुब्ध था। जब उसे ज्ञात हुआ कि बन्दी कौन है तो एक दो बार उसने बन्दी से राजनीति पर वार्तालाप करने की कोशिश की। परन्तु जब उसने 'बन्देमातरम् वालों' तथा मि० सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी को घृणित गालियां सुनाना शुरू कर दीं, तब बन्दी ने वार्तालाप बन्द करते हुए कहा कि अधिक बोलने का कोई लाभ नहीं। कप्तान ने रसोइये पर मुक्के चला दिए थे अतः लाजपतराय को ऐसे लोगों से सम्पर्क रखने में कोई प्रलोभन नहीं था।

पुलिस इन्स्पेक्टर ने जहाज़ पर भी बन्दी पर पहरा लगा दिया। इससे लाजपतराय को हंसी आ गयी। हंसते हुए उन्होंने अपने 'संरक्षक' से कहा कि समुद्र में छलांग लगाकर डूब मरने का मेरा विचार नहीं है, क्योंकि सरकार तथा उसके अफसरों की अपेक्षा मैं अपने प्राणों को अपने तथा स्वदेश के लिए अधिक मूल्यवान समझता हूं।

जब जहाज़ बन्दरगाह पर पहुंचा तो मेरे निर्वासन को गुप्त रखने की समस्या फिर आ उपस्थित हुई। लाजपतराय को कहा गया कि पुलिस कमिश्नर की लांच (नाव) आने तक वह कोठरी में बन्द रहें, कहीं ऐसा न हो कि नावों के अन्य यात्री उनको देख लें। नाव उनको एक पृथक् घाट पर ले गयी जहां किसी का भी आना जाना न था। लाहौर वाले पुलिस इन्स्पेक्टर तथा लाजपतराय को पालकी गाड़ी में बिठला कर पाण्डुजिंग रेलवे स्टेशन ले जाया गया। यह रंगून के मुख्य स्टेशन से कुछ दूरी पर एक छोटा-सा स्थान है।

लाजपतराय इससे पूर्व ब्रह्मा कभी नहीं आए थे। लंका की एक यात्रा को छोड़कर उनका विदेश भ्रमण योरुप तथा अमेरिका में ही हुआ था। गाड़ी से दिखलायी पड़ने वाले ब्रह्मी मुखड़े उनको विचित्र प्रतीत होते थे और सहानुभूति से उनकी हृदयतंत्री बज उठती थी। क्योंकि अब उनके भ्रमण सूची के देशों में प्रथम एशियायी देश भी सम्मिलित हो रहा था "ब्रह्मा में मुझे यह कष्टमय अनुभूति कभी नहीं हुई कि मैं किसी अज्ञात देश में हूं। हिन्दुस्तानी का मुख देखकर ही वह चाहे हिन्दू

हो चाहे मुसलमान, पंजाबी, बंगाली अथवा मदरासी मेरे मन में स्नेह-भाव जागृत होता था, मेरे लिये सभी मेरे आत्मीय थे जो मुझसे देशानुराग के विशेष बन्धनों से जुड़े हुए (सम्बद्ध) थे।" लाला जी के ये शब्द हैं। उनके आगे ओर पीछे पुलिस के सिपाही थे। रेलवे स्टेशन के पुल की सीढ़ियों को पार करते हुए उन्होंने एक सुन्दर वस्त्रोंवाले पंजाबी सज्जन को देखा जिसने उनको तत्काल ही पहचान लिया। उसके मुख पर उदासी, दुख तथा चिन्ता के चिन्ह स्पष्ट थे और उन्होंने उसके अभिवादन का उत्तर नेत्रों के संकेत से दिया। उन्होंने अपने फस्ट क्लास के डिब्बे से देखा कि पिछली गाड़ियों में पुलिस की वर्दियों में पंजाबी सिक्ख उत्सुकता से उनकी ओर देख रहे हैं ओर उत्तेजित से होकर बोल रहे हैं। शीघ्र ही गाड़ी की खिड़कियां बन्द कर दी गयीं।

"यात्रा में कोई विशेष घटना नहीं हुई। मेरी गार्ड के मुसलमान कान्स्टेबल मेरा सन्मान करते थे तथा मेरी दशा पर दुख प्रकट करते थे। मैं यह कह देना चाहता हूँ कि लाहोर से लेकर माण्डले तक समस्त यात्रा में मेरी गार्द के हिन्दू तथा मुसलमान सिपाहियों का मेरे साथ प्रेम का व्यवहार ही रहा। जहाज पर भी वह मुझ से खुली बातें करते थे। एक दर्शनीय आकृतिवाले तरुण मुसलमान कान्स्टेबल के गहरे स्नेह भाव को तो मैं कभी नहीं भुला सकता। मेरे दुर्भाग्य पर अश्रुपात करते हुए तथा खेद प्रकट करते हुए उसने अपने देश की तथा अपनी विवशता को भी अति दुखभरे शब्दों में अभिव्यक्त किया। अन्य सिपाहियों ने भी उसी प्रकार के भाव प्रदर्शित किए। यथाशक्ति मेरी यात्रा को सुखमय बनाने की कोशिश की। रंगून से माण्डले की रेलवे यात्रा में, एक सिपाही कुछ केले खरीद लाया ओर मुझे अर्पित करने लगा। उसकी प्रसन्नता के लिए मैंने एक केला ले लिया, परन्तु उसका अनुरोध था कि मैं और भी ले लूं। बड़े स्नेह से कहने लगा कि शायद हम आपके अन्तिम दर्शन कर रहे हैं। उसको धन्यवाद देते हुए मैंने उसको धैर्य देकर कहा "दयालु प्रभु से कभी भी हताश नहीं होना चाहिए।" मैंने यह भी कहा कि मेरी अन्तरात्मा कहती है कि कुछ दिनों की अनुपस्थिति के अनन्तर मैं अपनी मातृभूमि को अवश्य लौटूंगा। मेरे शब्दों का पूरा प्रभाव पड़ा। अपने हर्ष प्रदर्शनार्थ उसने मेरे चरण पकड़ लिये। शायद अपने जीवन में प्रथम बार ही मेरा एक पवित्र तथा उच्च भारतीय आत्मा के साथ साक्षात्कार हुआ, जिस पर पाश्चात्य सभ्यता के छल-छप तथा बाह्याडम्बरों का किञ्चिन्मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा था। यह एक भारतीय था। यह एक भारतीय आत्मा थी जिसका धर्म तथा विश्वास मुझ से सर्वथा भिन्न था, वह एक कंगाल कृषक श्रेणी का व्यक्ति था, जिसकी आर्थिक परिस्थितियों ने उसे सात आठ रुपए मासिक के मामूली वेतन पर पुलिस की नौकरी करने पर विवश

किया था, जो अपनी आजीविका तथा आशाएं खतरे में डालने को उद्यत था केवल इसलिए कि वह मेरी कष्ट यातनाओं में मुझ से सहानुभूति प्रकट कर रहा था। यदि पुलिस के उच्च अधिकारियों ने इन मुसलमान सिपाहियों को इस कारण मेरी गार्द में नियत किया था कि उनका धर्म मेरे धर्म से पृथक है और इसलिए वह मुझसे समवेदना प्रकट न करेंगे, तो उनके अनुमान नितान्त गलत थे। मेरे लिये उनकी भावना किसी प्रकार बुरी न थी। उन्होंने अपने भावों को गुप्त न रखा और यथा-शक्ति मेरी सेवा करते रहे। माण्डले में उनके वियोग से मुझे हार्दिक दुख हुआ।

माण्डले में एक विचित्र परन्तु मनोवांछित बात हुई। रेलवे प्लेटफार्म से लोगों को हटा दिया गया, परन्तु अब यह बात जनता से छिपी नहीं थी कि प्रतिष्ठित पंजाबी नेता को ब्रह्मा में निर्वासित किया गया है। ज्यों ही उसने प्लेटफार्म पर कदम रखा, दफ्तरों की खिड़कियों तथा द्वारों के शीशों में से कुछ पंजाबी मुखड़े उनको ताक रहे थे। वह अभी प्लेटफार्म से निकले ही थे कि उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब सर्वेण्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी के मि०जी०के० देवधर ने उनके चरणों को स्पर्श किया। एक स्त्री के हाथ के स्नेहमय स्पर्श ने मुझे प्रेम विह्वल कर दिया। एक क्षण भर के लिए तो मैं कांप उठा क्योंकि मुझे भय था कि कहीं एक मित्र के अकस्मात् मिलाप तथा स्नेह प्रदर्शन से कुछ निर्बलता तथा भाव प्रदर्शन वा अश्रुपात ऐसी बात न हो जाय जो गिरफ्तारी तथा निर्वासन के दिन भी न हो पायी थी। ज्यों ही मि० देवधर ने मेरे पांव छुए, यह समझकर कि वह मुझे छुड़ाने वा भगा ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं, इन्स्पेक्टर ने मेरी भुजा को पकड़ा और एक गोरे सार्जेण्ट ने मि० देवधर को पकड़ कर झटके से मेरे पांव छुड़ा दिए। मेरे मित्र ने मुझे गले लगाने तथा सम्मान प्रदर्शन का प्रयत्न किया, परन्तु मैंने उसके स्नेह के उत्तर में चुपके से सिर हिला दिया। थोड़ी देर बाद देवधर की गाड़ी मेरे पास से गुजरी और उन्होंने मुझे हाथ जोड़कर अभिवादन किया। मुझे मि० देवधरके लिए दुख तथा खेद हुआ क्योंकि मुझे शंका हुई कि आज से पुलिस उनके पीछे हाथ धोकर पड़ जायगी और उनकी गतिविधि पर निगरानी कड़ी की जाएगी। मेरा विश्वास है कि मेरी आशंकाएं निराधार नहीं थीं।

अध्याय सत्ताईस

कारावास के भीतरी जीवन की झांकी

पूर्व हो चाहे पश्चिम, ब्रह्मा का नाम लेते ही रोमांचकता तथा चमक-दमक तथा विचित्र रंगों का चित्र सामने आ जाता है। हमारे स्मृति काल में ही अभागा माण्डले अपनी अल्पायु में विचित्र षड्यंत्रों तथा तीव्र भावुकता के दृश्यों का घटनास्थल बन रहा है! महारानी सुप्लियात तथा राजा थीना के विषय में अब भी कई गाथाएं सुनने में आती थीं जिनको सिंहासन-च्युत तथा निर्वासित हुए अभी पूरे पच्चीस वर्ष भी नहीं हुए थे। उनके दुर्ग की विशाल भूमि में ऊँची दीवालों से घिरा हुआ, उनका राज प्रासाद अब भी खड़ा था यद्यपि उसका सुनहला सामान तथा मंजुल पर्दे आदि लूटे खसोटे जा चुके थे। उसके अतीत गौरव के महान् ध्वंसावशेष उच्च स्वर से ब्रिटेन के साम्राज्य निर्माण के काले इतिहास का एक छोटा सा अध्याय अब भी वर्णित कर सकते थे।

इसी दुर्ग में जहां से बीस वर्ष पूर्व राज्य वंश का अन्तिम शासक निर्वासित किया गया था, सुदूर पंजाब से एक अन्य व्यक्ति निर्वासित कर के लाया गया था। लाहौर के गोरे इन्स्पेक्टर के अतिरिक्त रंगून पुलिस कमिश्नर माण्डले के मुख्य राजमार्गों को छोड़ कर टेड़े मेढ़े रास्तों द्वारा दक्षिण द्वार से नगर में प्रविष्ट हुये। राजप्रासाद तथा राजसमाधियों के पास से हो कर हमारे चरित्र नायक की गाड़ी एक बंगले में जा खड़ी हुई।

माण्डले जेल के गोरे सुपरिन्टेन्डेन्ट ने, जिसे सूचना मिल चुकी थी, स्वागत किया। कैदी तथा उसके सामान की रसीद देकर जिसमें सोने की घड़ी, जंजीर तथा ३५०) रु० के नोट थे आपने लाहौर पुलिस को विदा किया।

ईंटों की दीवाल का रंग गुलाबी था और यह एक खाई से घिरी हुई थी जिसमें पेड़ों के घने पत्तों की परछाई पड़ती थी। शानदार तथा सुन्दर होते हुए भी, यह किला उदयपुर के किले अथवा पुरन्धरपुर वाले शिवाजी के गढ़ से सर्वथा भिन्न प्रकार का था। लाजपतराय का विचार था कि ऐतिहासिक गाथाओं में वर्णित किलों की तरह यह भी ऊंची ऊंची दीवालों से घिरा हुआ दृढ़ सा गढ़ होगा, परन्तु इसमें उनको निराशा हुई। यह किला तो नगर के अन्य मकानों के समान ही साधा-

रण ऊंचाई का था जिसमें घास के विस्तृत मैदान तथा गोंद और इमली के बहुत से वृक्ष थे।

सुपरिन्टेन्डेन्ट उनको ऊपरवाली छत पर ले गया और उनको वहां दो सुन्दर, हवादार विशाल कमरे दिखलाए जो उन्हीं के निवास के लिए सुरक्षित रखे गए थे। जब तक कि उनके निवास का स्थायी प्रबन्ध नहीं होता, उन्हें वहां ही रहना था। उन कमरों में एक एक मेज़, दो कुर्सियां, निवार का पलंग (जिन पर दो जोड़े जेल के कम्बल तथा उतनी ही सफेद चादरें थीं)। तीन ब्रार्मी रंगदार गलीचे बिछे हुए थे।

जब उनके भोजन के विषय में पूछा गया, तो लाजपतराय ने उत्तर दिया कि मैं तो साधारण पंजाबी खाना पसन्द करूंगा। परन्तु जब तक उसका प्रबन्ध नहीं हो जाता, उन्हें योरुपियन ढंग का खाना दिया जाए। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने अपने तामिल नौकर को लाजपतराय के लिए खाना तैयार करने की आज्ञा दी। इस एंग्लो तामिल रसोइए के हाथ का खाना खाकर उनकी इच्छा पंजाबी रसोइए के बनाए हुए पंजाबी खाने के लिए प्रबल होती जाती थी। अधिकारियों ने उनको कह दिया कि ब्रह्मा में पंजाबी रसोइया मिलना कठिन है। उनको सन्देह था कि स्थानीय अधिकारी उनके लिए पंजाबी रसोइया देना ही नहीं चाहते। छः सप्ताह माण्डले में रहने के अनन्तर उन्होंने जो मेमोरियल वायसराय के नाम भेजा था, उसमें अन्य बातों के अतिरिक्त अपने इच्छानुकूल खाने की मांग भी की गयी थी। डिप्टी कमिश्नर ने उनसे मुलाकात की और पूछा कि आपको कोई शिकायत तो नहीं? उत्तर में उन्होंने पंजाबी भोजन की प्रार्थना की पुनरावृत्ति की, परन्तु इस अधिकारी महाशय को यह विश्वास नहीं होता था कि एक मदरासी रसोइया पंजाबी ढंग का खाना तैयार नहीं कर सकता—यद्यपि यह महाशय स्वयं एक पंजाबी सिविलियन के पुत्र थे और कई वर्ष पंजाब में निवास कर चुके थे। पूरे पांच मास के अनन्तर उनको यह हर्ष समाचार सुनाया गया कि उनके लिए पंजाबी रसोइया रख लिया गया है। यह एक बूढ़ा सिक्ख निकला जो ब्रह्मा चला आया था, क्योंकि उसका एक भाई वहां सेना में नौकर था। वह भी काम तथा आजीविका की खोज में उधर आया था। लाजपतराय सोचते थे कि सम्भवतः खुफिया पुलिस वालों ने उसे यह काम दिलवा दिया होगा। परन्तु उनकी यह शंका दूर हो गयी। वह सिक्ख एक सच्चा तथा सीधा सादा पंजाबी जाट था जिसे किसी प्रकार भी ज़माने की हवा नहीं लगी थी। उसने अपने जीवन में कभी भी किसी के लिए खाना तैयार नहीं किया था। शीघ्र ही रसोइए तथा उसके बन्दी स्वामी पर स्पष्ट हो गया कि वह प्रबन्ध न केवल असन्तोषजनक है, प्रत्युत नितान्त खराब एवं हास्यास्पद है। सिक्ख जाट की स्पष्टवादिता तथा सादगी

दिखलाते हुए रसोइए (नामधारी महोदय) ने स्वीकार कर लिया कि मैंने आप जैसे महापुरुष के दर्शनों के लिए यह नौकरी ग्रहण की है, मेरा कोई अन्य उद्देश्य नहीं। खाना पकाने में तो मैं नितान्त कोरा हूँ। पंजाबी खाने का प्रयोग सर्वथा असफल रहा और दो दिन के अनन्तर फिर उसी तामिल रसोइया के खाने से सन्तोष करना पड़ा, जो पंजाबी खाने की अपेक्षा कहीं रुचिकर तथा स्वादिष्ट था।

सुपरिन्टेन्डेन्ट की कोठीवाले दो कमरों में तो लाजपतराय केवल प्रथम दो दिन ही रहे, उसके पीछे वह पी० डब्ल्यू० डी० के राजप्रासाद की नहर के पार, शाही बाग के उत्तरवाले बंगले में चले गए। इस बंगले तथा शाही बाग के मध्य में एक सार्वजनिक पक्की सड़क थी। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उनको कह दिया था कि वह हाते में कांस्टेबलों की देखरेख में घूम फिर सकते हैं। जिन दिनों आप उस (दो दिन वाली) कोठी में थे, सभी भारतवासी विशेषतः पंजाबी पथिक उस ओर से होकर जाने वाले उनके दर्शन किया करते थे तथा उनका सम्मानपूर्वक अभिवादन किया करते थे।

नया बंगला, लकड़ी तथा ईटों का बना हुआ आधुनिक ढंग का दो मंजिला भवन था। इसकी दोनों मंजिलें दो भागों में बंटी हुई थीं, जहां दो परिवार रह सकते थे। ऊपरवाला पश्चिमी भाग लाजपतराय को दिया गया। इसमें कमरे तथा एक बरामदा और स्नानागार थे जो हाते के साथ लकड़ी की सीढ़ी से सम्बद्ध थे। सीढ़ियों के नीचे ही पहरेवाले योरुपियन सार्जेण्ट का विस्तर तथा मेज़ था जिसे उनके जाने बिना सीढ़ियों पर चढ़ा या उतरा जा सकता था। कमरे में एक खाने की मेज़, एक खाद्य सामग्री की अल्मारी, एक पढ़ने की मेज़, एक आराम कुर्सी, दो दफ्तरी कुर्सियां, तिपाइयां, कपड़े टांगने की एक अल्मारी, तथा मच्छरदानी लगी हुई एक चारपाई थी। ब्रह्मी गलीचे के छः छः इंच चौड़े तीन टुकड़ों के अतिरिक्त फर्श बिलकुल खुला हुआ था।

दक्षिणी रसोइए के अतिरिक्त, बन्दी के अन्य कामों के लिए २५) रु० मासिक पर एक अन्य नौकर भी लगाया गया। उनके कपड़े धोने के लिये एक धोबी रखा गया। दिन में दो बार भिश्ती तथा भंगी आते थे। प्रकाश के लिए उनको दो मोमबत्तियां दी गयीं। कुछ दिन पश्चात् उन्होंने पढ़ने के लिए लैंप मांगा और वह उनको दे दिया गया। कुछ वस्तुएं कैदी के अपने निजी खर्च पर दी जाती थीं और कइयों को सुपरिन्टेन्डेन्ट विलास सामग्री अथवा अनावश्यक कह कर अस्वीकार कर देता था। ऐसी अस्वीकृति से लाला जी को कुछ न कुछ परेशानी अवश्य होती थी। "मैंने पहले सुपरिन्टेन्डेन्ट को भलामानस समझा। उसके सीधेसादे रंग ढंग तथा सरल अकृत्रिम जीवन को देख कर मैंने उसे दयालुहृदय अंग्रेज समझा था"

लालाजी लिखते हैं। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उनको यथोचित व्यवहार तथा पूरे पूरे ध्यान का विश्वास दिलाया था। उसने उनको निजी पुस्तकें पढ़ने को दीं—जस्टिस मैक्कार्थी की "स्मृतियां" तथा एंग्लो-ब्राह्मी पाठ्य पुस्तक देते हुए उसने यह भी सुझाया कि आप ब्राह्मी भाषा सीखने में अपना समय लगाया करें। परन्तु शीघ्र ही परिस्थिति बदल गयी। सुपरिन्टेन्डेन्ट को इस बात का कुछ भी ज्ञान न था कि लाजपतराय पंजाब प्रान्त के कितने महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं। नगर का सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस भी उसके अधिकार का साझीदार था और वह समझता था कि बन्दी की रक्षा आदि का बोझ मेरे सिर पर है। उसका एक खानसामा—लोभी सा व्यक्ति था जो सदा बन्दी के धन में से अपनी मुट्ठी गर्म करने को उत्सुक रहता था। एक गम्भीर मामले पर झगड़ा खड़ा हो गया। "एक नाई को हर दूसरे दिन मेरी हजामत करने को कहा गया। प्रथम मास की समाप्ति पर नाई मेरे पास आया और अपना वेतन मांगने लगा। मैंने कहा कि सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल ही पैसे देगा जिसने काम पर लगाया है। मैंने उसे साहब से पूछ लेने तक प्रतीक्षा करने को कहा। ९ जुलाई को साहब ने मुझसे पूछा कि आपने नाई के पैसे क्यों नहीं दिए? मैंने कहा कि मैं समझता हूँ कि उसको पैसे सरकार देगी; क्योंकि १८१८ के रेग्युलेशन के ३ के अधीन मेरे पद के अनुकूल मेरा खर्चा देने को वह बाधित है। वह भलामानस इतने शब्दों से ही बिगड़ उठा और व्यंगपूर्वक कहने लगा कि मुझे तो किसी ऐसे कानून अथवा नियम का ज्ञान नहीं है और जहां तक आपका सम्बन्ध है मेरी आज्ञा ही कानून है। उसने यह भी कहा कि हजामत भी एक विलास सामग्री है जिसके लिये सरकार पैसा खर्च नहीं कर सकती। क्योंकि आपके लिए हजामत कराना आवश्यक नहीं है। इस देश के रीति रस्मों के ज्ञान से मुझे प्रभावित करने के लिए वह बोला कि एक मुसलमान के कभी कभी अपने सिर की हजामत करवाने पर अनुरोध की बात तो समझ में आ सकती है, परन्तु आप तो हिन्दू हैं, आपके लिए दाढ़ी की हजामत किस प्रकार आवश्यक है? उसने पूछा "आप दाढ़ी क्यों नहीं रख लेते? क्या आप घर में दाढ़ी नहीं रखते थे? (कई आर्य समाजी मित्रों की तरह, वह कुछ काल तक दाढ़ी रखते थे, परन्तु वह तो निर्वासन से कई वर्ष पूर्व की बात है) क्या घर में भी नाई से हजामत करवाया करते थे?" मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने इस प्रकार के कई प्रश्न एक दूसरे के अनन्तर पूछ डाले। उसके यह कहने पर कि मेरी आज्ञा ही कानून है, तो मुझे किसी प्रकार का रोष न हुआ, परन्तु निस्संदेह मैंने अपना अपमान समझा जब उसने मेरी इस बात पर विश्वास नहीं किया कि मैं घर में भी हर दूसरे दिन नाई को पैसे देकर हजामत कराता था और जेल में आकर सरकार के व्यय पर हजामत कराने के विशेषाधिकार का उपभोग करने का मेरा उद्देश्य नहीं

है।" लाला जी ने नाई के पैसे स्वयं दे दिए। दो तीन मास के पश्चात् अधिकारियों ने इस "क्लास" के पैसे भी अपने पास से देने का निर्णय कर दिया।

लाजपतराय को सदा ही बढ़िया खाने का शौक रहा है—बढ़िया का अर्थ उनकी रुचि तथा स्वाद के अनुकूल खाना चाहिये। सुपरिन्टेन्डेन्ट का खानसामा लाजपतराय की रसोई के प्रबन्ध पर भारी प्रभाव डालता था, क्योंकि उनकी भोजन सामग्री खरीदते समय वह अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता था। इससे भी कभी भ्रम उत्पन्न हो जाता था। जिस प्रकार की शाक भाजियां लाजपतराय चाहते थे, वह उनको प्राप्त नहीं होती थीं क्योंकि खानसामा तो लोभवश उनको पूरी तरह लूटना चाहता था, वह सुपरिन्टेन्डेन्ट को झूठमूठ बतला दिया करता था कि उक्त सब्जियां या तो बाजार में मिलती ही नहीं या वह बहुत ही अधिक दामों पर मिलती हैं। लाजपतराय अपने पहरेदार सार्जेण्ट को भी बहुधा वही शाक भाजियां खाते देखा करते थे, हालांकि उसका भोजन बहुत खर्चीला नहीं होता था।

सायं प्रातः भ्रमण के प्रश्न पर भी झगड़ा खड़ा हुआ। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने,आरम्भ ही में, स्वेच्छा से, लाजपतराय को सार्जेण्ट की देखरेख में घूमने फिरने की छुट्टी दे दी थी। शीघ्र ही, योरुपियन सार्जेण्ट के पहरे में किले के अन्दर ही घूमने की आज्ञा दे दी। लाजपतराय के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये वह उत्सुक था। वह चाहता था कि लाजपतराय प्रति दिन एक दो घण्टे नियमपूर्वक भ्रमण किया करें। डिप्टी कमिश्नर ने भी जो कभी कभी लाला जी से मिलने आते थे, इस बात को पसन्द किया। परन्तु सार्जेण्ट उनके साथ दिन में दो बार जाने के इच्छुक न थे। उनको वह भ्रमण जरा भी पसन्द नहीं था। उन बेचारों की भी कठिनाई थी। उन्हें तलवारें, भरे हुए रिवाल्वर, तथा २४ गोलियां लेकर वर्दी में जाना पड़ता था। ग्रीष्म ऋतु की धूप में लाला जी के बंगले से लगभग दो मील दूर पुलिस डिपो नं० ६ से पूरी वर्दी पहन कर तथा शस्त्रास्त्रों से लैस होकर उनको आना पड़ता था।

एक कानूनी कठिनाई ने मामले को और भी उलझा दिया। बन्दी के रूप में तो लाला जी सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल के अधीन थे, परन्तु चूंकि उनके पहरेदार डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस की ओर से नियत किए जाते थे, इस कारण पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने समझा कि बंगले में तथा घूमने के समय बन्दी की रक्षा का उत्तरदायित्व उस पर है। उसने आपत्ति उठायी कि जिन जिन सड़कों की स्वीकृति वह दें, लाजपतराय केवल वहीं घूम फिर सकते हैं। जब अजीतसिंह भी माण्डले किले में निर्वासित हो कर पहुंचे तो लाजपतराय के भ्रमणार्थ केवल दो सड़कें ही शेष रह गयी थीं, जिनमें से लम्बी सड़क पर गर्मी में धूप से रक्षा के लिए कोई इमली के पेड़ न थे। लाजपतराय ने डिप्टी कमिश्नर का ध्यान इधर दिलाया। उस महाशय ने एक काली ऐनक की

सिफारिश की परन्तु, सुपरिन्टेन्डेन्ट बहादुर ने उसे भी विलास की सामग्री कह कर अस्वीकार कर दिया।

उनके मकान के सामने राजप्रासाद वाली नहर में मछलियों की अधिकता थी और सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल ने सुझाया कि मनोरंजनार्थ आप मछलियां पकड़ा करें। साधारण जीवन में उनकी प्रवृत्ति मछली के शिकार की ओर कभी नहीं थी और वह इस "सौम्य कला" को मनोरंजन के स्थान में एक दण्ड ही समझते थे, परन्तु वहां उससे बन्दी को घर से बाहर खुली वायु में रखने का अवसर मिलता था, इसलिए वह भी तत्काल ही इसे मान गए। सार्जेण्ट उनके लिए मछली पकड़ने के डण्डे तथा कांटे खरीद लाया। आपने पहरेदार कान्स्टेबलों तथा सार्जेण्ट को कहा कि आप ही मछलियां पकड़ें, मैं तो आपके पास केवल बैठा ही रहूँगा। दुखित बन्दी को इससे न तो कोई आनन्द ही मिलता था न कोई विश्राम। शस्त्रास्त्र तथा वर्दी से सुसज्जित होकर कोई भी गोरा सार्जेण्ट घण्टों इस प्रकार बैठने के लिये तैयार नहीं था और वर्दी आदि के बिना उनको जाने की आज्ञा नहीं थी। सुपरिन्टेन्डेन्ट बहुधा लाला जी से पूछा करते थे कि मछलियां पकड़ने में कैसी सफलता हो रही है और वह यह सुन कर हताश से हो जाते थे कि हमें तो कोई मछली प्राप्त नहीं हुई। डिप्टी कमिश्नर ने भी वैसा ही प्रश्न किया और लाला जी ने उनको बतलाया कि इस कार्य में सफलता के लिए काफी समय तथा धैर्य की आवश्यकता है। पहरेदार बहुत देर तक बाहर रह नहीं सकते। उसके बिना कोई परिणाम नहीं निकल सकता था। जब नौकरी से फुर्सत मिलती थी तो कान्स्टेबिल डण्डे और कांटे से काम लिया करते थे। अन्त में उनमें से एक चुपके से उन्हें ले कर चम्पत हो गया। "इस प्रकार दूसरों के द्वारा मछली पकड़ने की सन्दिग्ध परिणाम वाली क्रीड़ा का अन्त हुआ।"

माण्डले में लाजपतराय ने दैनन्दिनी (डायरी) रखने का प्रयत्न किया। २० जून को उसमें प्रथम विवरण लिखा गया। वह डायरी तो अप्राप्य है, परन्तु उसके कुछ उद्धरण "मेरे निर्वासन की कहानी" में प्रयुक्त हुए हैं। उनसे ज्ञात होता है कि वहां उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। आमाशय की गड़बड़ी, अनिद्रा, विरेचक चूर्ण तथा सुपरिन्टेन्डेन्ट की बतलायी हुई औषधियों का विवरण भी बहुधा आता है। "माण्डले में मुझे जो जो कष्ट हुए वह लगभग पुराने हैं विशेषत: आमाशय का कष्ट तथा अनिद्रा। अनिद्रा से मेरे बाह्य रंग रूप में कोई भेद नहीं पड़ा। मैं कई रातों तक अच्छी तरह सो नहीं सका, परन्तु मुझमें कोई विकार नहीं आया।

"बन्धन की स्थिति, एकान्तवास, अपर्याप्त व्यायाम, अवांछित परतंत्रता तथा अपमान से उत्पन्न हुआ चिड़चिड़ापन, रुचिकर संगति का अभाव तथा इसी प्रकार के अन्य कष्टों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है और इनसे पुरानी व्याधियां बढ़ ही

जाती हैं। अतः मुझे अपने बन्दी जीवन के प्रथम तीन महीनों में इन बातों से क्लेश हुआ, परन्तु आगे चल कर में अपने भाग्य तथा वातावरण से सन्तुष्ट हो गया और मेरा स्वास्थ्य सुधर गया। ग्रीष्म की रातों में अनिद्रा का एक कारण पंखे का अभाव भी था, क्योंकि सुपरिन्टेन्डेन्ट ने पंखा कुली को भी विलास सामग्री कह कर रद्द कर दिया था।"

कुछ रातों की अनिद्रा का एक और कारण एक छोटा सा "प्रणय काण्ड" था। यह कथा उनके अपने शब्दों में देना उचित होगा क्योंकि निर्वासन कथा के छः सात पृष्ठों में उसका वर्णन आता है। "निर्वासन में मुझे मुख्य कष्ट "एकान्तवास" का था......पहरेदारों में से कुछ सार्जेण्ट मुझ पर बड़े दयालु थे और मैं कभी कभी उनसे बातचीत कर लेता था। परन्तु उनकी संगति से मुझे क्या आनन्द प्राप्त हो सकता था? प्रथम तो मेरी तथा उनकी शिक्षा तथा जीवन स्तर में इतना भेद था कि उनके लिए मेरे भावों तथा अनुभूतियों में प्रवेश करना कठिन था। फिर हमारी रुचियां भिन्न भिन्न थीं। वह अंग्रेज़ी आचरण के पाशविक पहलू के प्रतिनिधि थे, परन्तु मेरी रुचियों की प्रवृत्ति हिन्दू स्वभाव के आध्यात्मिक ढंग की ओर थी।

अंत में ब्रिटिश सिंह के दो मानवी प्रतिनिधियों की अपेक्षा सिंह परिवार के निचली श्रेणी के दो छोटे छोटे जन्तुओं का चुनाव कर लिया और "मेरी निर्वासन कथा" में इन्हीं दो पालतू जीवों का विवरण दिया गया है। अपने बंगले में दो बिल्ली के बच्चे पाकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। वह बड़े सुन्दर थे। एक खाकी रंग के सिंह जैसा दिखायी पड़ता था और दूसरे के काले धब्बे थे। मैंने उनको पालना शुरू कर दिया और वह भी मुझ से घुलमिल गए। उनकी संगति मेरे लिए एक सुखद साधन सिद्ध हुई। मुझे उनसे केवल सुख ही सुख प्राप्त हो, यह बात न थी। रात को वह मेरे ही विस्तरे में मेरे साथ सोने का हठ करते थे। इससे मुझे कष्ट होता था और मेरी कई रातें इस दुविधा में कटीं कि उनको पास रख कर कष्ट उठाऊँ अथवा उनको त्याग कर वियोग दुख सहन करूँ। मैं उन्हें केवल दिन के समय ही अपने पास रखना चाहता था, परन्तु वह रात भी मेरे पास व्यतीत करने को उत्सुक थे। अन्त में मुझे नौकर को कहना पड़ा कि रात को भोजन के अनन्तर उनको बन्द कर दिया करे। कुछ दिनों में वह मेरे स्वभाव से परिचित हो गए और रात को मुझे तंग नहीं करते थे। कभी कभी तो मैं घंटा घंटा भर उनको परस्पर खेलते, चाटते तथा बहिनों की तरह एक दूसरे की बगल में लेटे देखा करता था। उनका पारस्परिक स्नेह भी प्रगाढ़ था। मेरे लिए तो यह एक नवीन अनुभव था। परन्तु यह कैसा विचित्र तथा असंगत प्रतीत होता था जब वह भोजन अथवा मांस के एक टुकड़े के लिए एक दूसरे को फाड़ डालने को उद्यत हो जाते थे। उनमें से एक कुछ अधिक चतुर तथा छली

था और सम्मिलित भोजन का अधिकांश वही चट कर जाता था—उस समय निर्बल बिलावटे की सहायता के लिए मुझे हस्तक्षेप करना पड़ता था। संसार में—मानव जगत् में, अथवा जन्तुओं में अथवा वनस्पति जगत् में—जो कुछ प्रति क्षण हो रहा है, उसकी व्याख्या के रूप में इन बिलावटों का व्यवहार मेरे लिए मनोरंजन तथा शिक्षा का साधन होता था। मैंने उनको एक ही प्याले में दूध पिला कर उनमें न्यायप्रियता तथा समानता के भाव डालने का प्रयत्न किया। इस प्रकार में प्रति दिन घण्टे दो घण्टे उनके काम में लगा रहता था। बारी बारी से वह आते, मेरे कन्धों पर बैठते, मेरे हाथ चाटते तथा अन्य प्रकार से प्रेम दिखलाते। यह अनुभव करके कितना आनन्द होता था कि इस भवन में मेरे दो स्नेही जीव उपस्थित हैं। धीरे धीरे उन्होंने शान्तिपूर्वक इकट्ठे खाना खाना सीख लिया और मुझे एक प्रकार का गर्व अनुभव होने लगा कि मैं उनको शान्तिप्रियता तथा मैत्री की शिक्षा देने में सफल हो गया। माण्डले दुर्ग के उस मकान को त्यागते समय मुझे केवल उनके वियोग का दुख हुआ।" वह उनको अपने साथ न ला सके, क्योंकि उनको रिहाई की आज्ञा जिस समय मिली उस समय वह दोनों मित्र प्रायः भ्रमणार्थ बाहर गए हुए थे। "उनके लौटने तक प्रतीक्षा करने का समय नहीं था, क्योंकि कमिश्नर ने बतलाया कि स्पेशल ट्रेन तैयार है।" सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस तथा डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट ने जल्दी करने को कहा।

इन पालतू जन्तुओं की कृपा से जब दुर्ग को अन्तिम नमस्ते कहने का समय आया, तो लार्ड बाईरन के "शिला के बन्दी" की तरह उनको भी वियोग का दुख हुआ (आप माण्डले में बाईरन की रचनाएं भी पढ़ा करते थे)। "निर्वासन कथा" में अपने "द्वितीय गृह" से विदाई लेते समय अपने भावों को उन्होंने बाईरन के एक सुन्दर उद्धरण द्वारा अभिव्यक्त किया है:—

"अन्त में वह आ ही गए,
और मेरे समस्त बन्धन खुल गए।
यह दृढ़ दीवालें तो मेरे लिए,
एक आश्रम ही बन गयी थीं।
मुझे ऐसा लगा, मानों वह मुझे
मेरे द्वितीय गृह से बलात् पृथक् कर रहे हैं।
मेरी तो मकड़ियों से भी मैत्री हो गयी थी,
मैं सदा उनको शिकार खेलते देखा करता था।
चन्द्रमा की चांदनी में, मैं चूहों को खेलते देखता था,
जब उनको दुख हो रहा है, तो मुझे क्यों कर न हो?

हम सब एक ही आश्रम के निवासी थे,
और मैं उन सब का सम्राट् था,
मुझ में उनकी हत्या करने की शक्ति थी, परन्तु यह
कहना विचित्र प्रतीत होगा कि हमने शान्तिपूर्वक रहना सीख लिया था।
चिरकाल तक साथ रहने का यह परिणाम होता है,
कि मेरी तो अपनी हथकड़ियों तथा बेड़ियों से भी घनिष्ट
मित्रता हो गयी थी, और मैंने स्वाधीनता का स्वागत भी
दीर्घ निःश्वास तथा दुख के साथ किया।"

हमें ज्ञात नहीं है कि अपने स्वतंत्र जीवन में भी लाजपतराय ने कभी कोई पालतू जन्तु रक्खे थे। परन्तु माण्डले में उनको उन बिलूगड़ों से इतना स्नेह हो गया कि "मैंने अपने छोटे से परिवार में वृद्धि करने का निश्चय कर लिया। एक नौकर को मैंने एक कटोरा लाने को कहा। मेरी विदाई से कुछ ही दिन पूर्व मुझे एक कटोरा मिल गया परन्तु वह कुछ सुन्दर सा नहीं था, इसलिए मैंने आते समय उसके स्वामी को लौटा दिया। सीढ़ियों की छत की कड़ियों तथा शहतीरों में एक मैना का जोड़ा रहता था जिसके संगीत का रसास्वादन मैं बहुधा किया करता था, परन्तु एक सार्जेण्ट को वह पसन्द आ गया। मादा मैना तो काफी सजग होने के कारण उसके काबू में न आ सकी, परन्तु उसने उसके बच्चे पकड़ लिए। उसने यह कार्य माता की अनुपस्थिति में किया था। जब माता लौट कर आयी तो बच्चों को वहां न पा कर अत्यन्त उदास हुई और उसने अपने करुण क्रन्दन तथा आर्तनाद से सारे भवन को गुंजायमान कर दिया। कई दिन तक वह अपने घोंसले के चक्कर काटती रही और अन्त में निराश हो कर सदा के लिए वहां से उड़ गयी। इस प्रकार अपने एक पहरेदार की निर्दयता से इन सुन्दर पक्षियों की संगति से मैं वंचित हो गया। इस पहरेदार ने अंग्रेजों तथा भारतवासियों के अवगुण तो अपना लिए थे, परन्तु किसी का भी कोई सद्गुण ग्रहण नहीं किया था।"

यह पालतू जीव तो केवल मनोरंजन मात्र थे। माण्डले में उनके अनिवार्य फुर्सत का अधिकांश समय पढ़ने और लिखने में बीतता था। औसत रूप से वह आठ दस घंटे प्रति दिन गम्भीर प्रकार के अध्ययन तथा लिखने में लगाते थे। केवल कालयापन के लिए पत्रिकाएं तथा उपन्यास भी इसके अतिरिक्त पढ़ लिये जाते थे। ब्रह्म देश, ब्राह्मी जनता तथा ब्राह्मी इतिहास की आपने कई पुस्तकें पढ़ डालीं और आगे चल कर उर्दू में "रोमांचक ब्रह्मा" के नाम से एक ग्रन्थ प्रकाशित कराया। इसमें कुछ तो ब्रह्मा के सामाजिक तथा धार्मिक रीति नीति का वर्णन था और कुछ आधुनिक ब्रह्मा की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं

का विश्लेषण था। इसके कुछ आरंभिक अध्यायों में आवश्यक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दी गयी थी। माण्डले दुर्ग में स्वाध्याय ग्रन्थों की सूची उन्होंने "मेरी निर्वासन कथा" में दी है—इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थ-हैलम का "मध्य काल", मोटले की "डच रिपब्लिक", केई तथा मेलीसन का "भारती विद्रोह"। इस सूची में इतिहास से उतर कर फिलासफी (दर्शन) आती है जिसमें लैकी, हरबर्ट स्पैन्सर तथा फील्डिंग हाल की कृतियें सम्मिलित हैं। उपन्यासों की सूची में मुख्यत: थेकरे तथा डिकन्स, टाल्सटाय तथा वालटेयर, ऐन्थनी होप तथा मेरी कोरेली और चर्चिल कालयापन के लिए पर्याप्त थे, परन्तु हाफिज़ की फारसी गज़लों ने जो गहरा प्रभाव उनके हृदय पर वहां डाला, वह अलौकिक तथा अद्वितीय था। माण्डले में उर्दू ग्रन्थों में ज़ौक की कविता तथा उनके भूतपूर्व अध्यापक मुहम्मद हुसैन आज़ाद की गद्य-रचना शामिल थी।

माण्डले में ब्रह्मा पर उन्होंने जो अपनी पुस्तक लिखी उसका वर्णन तो किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने जीवन के विषय में एक उपन्यास के लगभग १५० पृष्ठ लिखे जिसे उनके पिता जी तथा मित्रों ने नष्ट कर दिया। माण्डले में वह भगवद्गीता का स्वाध्याय भी किया करते थे जिसके फलस्वरूप अंग्रेज़ी में एक निबन्ध "भगवद्गीता का सन्देश" नाम से प्रकाशित हुआ। पहले यह कलकत्ता के "माडर्न रिव्यू" के मार्च १९०८ अंक में छपा था और फिर पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ।

बन्दी जीवन में गीता तथा हाफ़िज़ उनके भारी सहायक सिद्ध हुए। मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए इनसे बढ़िया अन्य मित्र कोई नहीं है। लाजपतराय अपने को इन ग्रन्थों का ऋणी मानते हैं। "भगवान कृष्ण तो मेरे साथ व्यावहारिक नीति की बातें अमर शब्दों में किया करते थे और शिराज़ का विख्यात कवि प्रेम तथा तज्जनित दुख के विषय में अपना काव्य सुनाते। मेरे विचार में मेरे कष्टों का कारण भी तो सिद्धान्त प्रेम तथा देश प्रेम ही थे, अत: हाफिज़ की वाणी तथा आर्तनाद सीधे मेरी हृदय-तंत्री को स्पर्श करते थे और मुझे सान्त्वना प्रदान करते थे। कारावास में मुझे जैसा आनन्द हाफिज़ के अध्ययन से आया, वह बचपन में जब मैं पिता जी से उसे पढ़ता था, कभी नहीं आया था।

गीता के अतिरिक्त वह उपनिषदों का भी स्वाध्याय किया करते थे। वह धार्मिक कर्तव्य समझ कर प्रति दिन इन धर्म ग्रन्थों का पाठ किया करते थे। वह प्रात:काल नियमपूर्वक प्रार्थना करते थे और सायंकाल की सन्ध्योपासना में नियमित न रह सकने के कारण उनको खेद होता था। ईश्वर की आराधना तो किसी न किसी रूप में वह प्रति सायं किया करते थे, परन्तु वेदमंत्रों का किसी विशेष क्रम से पाठ

वाली सन्ध्योपासना उनसे नहीं होती थी। परन्तु उनका वेदमंत्रों के उच्चारण में विश्वास था। ४ अगस्त की डायरी में (जिसका कुछ अंश "मेरी निर्वासन की कथा" में सुरक्षित है) लिखा है कि "मैं कई दिनों से स्वाध्याय तथा प्रार्थना नियमपूर्वक करता हूँ। परमात्मा को हजार बार धन्यवाद है। गत दो तीन दिनों से वेदमंत्रों का उच्चारण कर रहा हूँ, इससे मुझे अपार आनन्द प्राप्त होता है।" विशेष अवसरों पर वह विशेष प्रार्थनाएं भी किया करते थे। "१५ अक्टूबर जिस दिन मेरे मित्र जसवन्तराय की सजा समाप्त होनी थी, मेरे लिए हर्ष का दिन था। उस दिन मैंने उनके स्वास्थ्य के लिए भगवान की विशेष प्रार्थना की।"

"निर्वासन कथा" में एक अध्याय "कारावास में मानसिक दशा" पर भी है जिसके अन्त में आता है. . ."यद्यपि मैं कभी कभी तो अत्यन्त उदास हो जाया करता था, परन्तु साधारणत: परितुष्ट रहता था और अपने समय का श्रेष्ठ उपयोग करने का प्रयत्न करता था।" इन दिनों की मानसिक दशा का अनुमान १३ जुलाई की निम्न डायरी से भली प्रकार हो सकता है—

"१३ जुलाई (शनिवार) खेद है कि प्रार्थना के समय में मेरे मन को शान्ति नहीं थी। भरसक यत्न करने पर भी मन उद्विग्न ही रहा। मैंने कई बार अपने आप से कहा "भगवान ने तुम्हें प्रार्थना, आराधना, चिन्तन, स्वाध्याय तथा साहित्यिक कार्य का अवसर प्रदान किया है। अपनी चिन्ताओं तथा आकांक्षाओं को त्याग कर और प्रभु के कृतज्ञ बन कर तुम उस अवसर से लाभ क्यों नहीं उठाते ? तुम्हें अपनी सन्तान से इतना मोह कभी नहीं था कि वह इस कार्य में बाधा हो। फिर चिन्तित तथा दुखी होने का कारण है ? जो व्यवहार तुम्हारे साथ हुआ है किसी प्रकार भी विचित्र अथवा असाधारण नहीं है। इसी मार्ग में सहस्रों नर-नारियों ने इससे भी कहीं अधिक कष्ट सहन किए हैं। सुकरात जैसे कई ने तो सत्य के लिए प्राण तक त्याग दिए फिर यह भीरुता क्यों ? संसार में तो स्वार्थ का ही बोलबाला है। अपने स्वार्थ के लिए प्रत्येक व्यक्ति दूसरों को दबाता है। अंग्रेज भी वैसा ही कर रहे हैं। वह देवता नहीं कि सच्चे तथा न्यायशील बन सकें। संसार का सदैव यही चलन रहा है।"

इस आत्म विश्लेषण के अनन्तर एक नोट आता है जिसमें वर्तमान परिस्थिति पर पूर्ण सन्तोष तथा शान्ति प्राप्ति का वर्णन है।

"मेरे बन्दी जीवन के अन्तिम दो सप्ताह तो मुक्ति (रिहाई) की निरन्तर प्रतीक्षा में बीते। बारी बारी से मेरे मन में आशा तथा निराशा का संचार होता रहता था। . . .इस प्रकार की अनिश्चितता तथा भविष्य के विषय में अन्धकार बड़े कष्टप्रद थे।"

नि:संदेह, परेशानी का अधिकांश तो जेल के अधिकारियों के व्यवहार के कारण था। आरम्भ में वह जेल के अध्यक्ष को एक भद्र तथा भला व्यक्ति समझते थे, परन्तु उसका व्यवहार सदा अच्छा नहीं होता था। हम नाई वाली बात पहले वर्णन कर ही चुके हैं। इसी प्रकार के कई अवसर आया करते थे कि जिनसे लाजपतराय समझते थे कि उस अधिकारी के मन में देवासुर संग्राम चल रहा है कि "वह एक सरल हृदय अंग्रेज़ का सा आचरण करे अथवा एक ऐंग्लो इंडियन अधिकारी जैसा। मुझे तो वह शिष्टता तथा अभद्रता का विचित्र सम्मिश्रण दिखलाई पड़ता था। सामान्यतया तो वह न्यायशील और अनावश्यक रूप से किसी दूसरे के मामले में हस्तक्षेप करने वाला नहीं था, परन्तु उसका ऐंग्लो-इंडियन ही अज्ञात रूप से उसे कटु तथा विषैला बना देता था।" जब लाजपतराय दुर्ग में पहुंचे, तो सुपरिन्टेन्डेन्ट ने स्वयं ही उनको सुझाया कि वह अपना समय ब्रह्मी भाषा सीखने में लगावें, और इस कार्य के लिए उनको उसने निजी पुस्तकें भी उधार दे दीं। वह इससे भी आगे बढ़ गया और एक मुंशी भी लगाने को तैयार हो गया (यद्यपि सरकारी व्यय पर नहीं)—जो उनको ब्रह्मी सिखलाता। लाजपतराय ने एक ऐंग्लो-ब्रह्मी पाठ्य पुस्तक खरीद कर श्रीगणेश भी कर दिया, परन्तु शीघ्र ही ब्रह्मी सीखने की आज्ञा वापस ले ली गयी, सम्भवत: उच्चाधिकारियों के आदेश से। "मुझे केवल यही कारण बतलाया कि साधारण राजनैतिक हेतुओं की वजह से वह (अध्यक्ष) नहीं चाहता कि मैं ब्रह्मी सीखूं।" क्या उनको संदेह नहीं था कि यदि उन्हें ब्रह्मी भाषा का थोड़ा सा ज्ञान भी हो गया, तो वह ब्रह्मी सैनिकों की राजभक्ति में भी बाधा उत्पन्न कर देंगे?

"मेरी निर्वासन की कहानी" एक ऐसे आत्मा की अभिव्यक्ति करती है जिसे अशिष्ट व्यवहार से क्लेश और व्यथा अनुभव होती थी। यह हुतात्माओं अथवा शहीदों की गाथा नहीं है और जो पाठक इसमें ऐसी गाथा की खोज करने का प्रयत्न करेंगे, उन्हें निराशा ही न होगी, वरन् उसमें छोटी छोटी मामूली बातों के वर्णन से वे झुंझला भी उठेंगे। इस प्रकार की बातें लिखने में लेखक का यह कदापि उद्देश्य नहीं कि वह जनता का करुणापात्र बने। जब उनके साथ किंचिन्मात्र भी अशिष्टता या अभद्रता का व्यवहार होता था तो उनके आत्मा को कठोर व्यथा तथा पीड़ा होती थी, जिसका उन्होंने स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है। इस प्रकार यह कहानी मानसिक चित्रावली द्वारा निर्मित एक छोटी सी फिल्म बन गयी है। "एक दिन अध्यक्ष ने मुझसे विशेष रूप से अशिष्टता का व्यवहार किया क्योंकि मैंने एक मित्र को लिख दिया था कि मैं अस्वस्थ हूँ। वह कहने लगा, तुम चाहते हो कि तुम्हारे परिजन तथा मित्रगण तुम्हारी बीमारी के आधार पर तुम्हारे छुटकारे के लिए आन्दोलन करें। इसका स्पष्ट शब्दों में यह अर्थ था कि मैं रुग्ण होने का बहाना कर

रहा हूँ। एक अन्य अवसर पर उसने इससे भी अधिक अभद्रता का प्रदर्शन किया, जब उसने मेरे नाई का बिल अदा करने से इनकार कर दिया, मानों उसे मेरी इस बात पर रत्ती भर भी विश्वास न था कि मैं घर में भी हर दूसरे दिन हजामत बनवाया करता था। मुझे सम्बोधन करने का ढंग भी उसका अशिष्टतापूर्ण सा होता था। मुझे मेरे नाम से पुकारते समय अथवा मेरे लिए औषधि लिखते समय अथवा मेरे नाम पत्र भेजते समय प्रायः वह शिष्टता के साधारण शब्द छोड़ ही दिया करता था।" एक दिन सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उनसे पूछा कि क्या धनपतराय नाम का आपका कोई भाई है और क्या उसने कभी आपसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की है? लाजपतराय ने उत्तर दिया कि वह मेरा छोटा भाई है। और जब वह चला गया तो मैंने उसे लिखा कि आपके प्रश्न से मेरे मन में विचार आता है कि आपने शायद मेरे भाई के प्रार्थना पत्र के सम्बन्ध में कोई पत्र रोक लिया है। मैं आपका अनुग्रहीत हूँगा यदि आप पूर्व प्रथा के अनुसार मुझे केवल पत्र के लेखक का नाम ही बतला दें . . . । दूसरे दिन जब वह आया तो मैं ऊपर बरामदे में खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। योरुपियन सार्जेण्ट तथा अन्य पुलिस वाले उसका अभिवादन कर रहे थे। वह क्रोध से गरज कर बोला "जब मैं आपसे कोई प्रश्न पूछता हू तो उस समय आपको मुझसे प्रश्न पूछने का कोई प्रयोजन नहीं है। जब वह चला गया तो मैंने उसके ठीक ठीक शब्द नोट कर लिए।" यह शब्द लाला जी की आत्मा को डंक की तरह चुभ रहे थे।

"माण्डले छोड़ने से कुछ दिन पूर्व, सुपरिन्टेन्डेन्ट, मुझसे बुरी तरह भड़क उठा। मुझे कुछ मामूली सा काम था जिसके लिए मुझे दो दिन प्रतीक्षा करने को कहा गया। जब मैंने उसे स्मरण दिलवाया तो वह मेरी अधीरता पर बिगड़ कर कहने लगा, "सुपरिन्टेन्डेन्ट को कई काम करने होते हैं।" यही महाशय थे जिन्हें मुझे अपनी प्रत्येक छोटी बड़ी आवश्यकता बतलानी पड़ती थी। उसका कर्तव्य था कि वह मेरे स्वास्थ्य का पूर्ण ध्यान रक्खे तथा जो वस्तु मुझे दरकार हो, मुझे पहुँचाए। इसी उद्देश्य से वह प्रति दिन आता था और पूछता था कि क्या मैं ठीक और स्वस्थ हूँ और क्या मुझे कोई आवश्यकता है। यदि प्रथम प्रश्न के उत्तर में "हां" और दूसरे के जवाब में 'नहीं' कर दिया जाता, तो सब कुछ शान्तिपूर्वक गुजर जाता था। जिस क्षण मैंने इससे भिन्न उत्तर दिया तो अवश्य ही कोई न कोई गुल खिल जाता था। यदि मुझे किसी खाने की चीज की जरुरत होती तो मुझे कहा जाता कि नौकरों से कहो। नौकर भी ऐसे भलेमानस कि ८० प्रतिशत अवस्थाओं में किसी न किसी बहाने से मेरी बात टाल ही जाते। यदि मुझे किसी कपड़े की आवश्यकता होती तो नौकर उसी प्रकार टाल जाते। यदि मुझे कोई दवाई दरकार होती तो मुझे कहा जाता कि आप अधीर मत हों। यदि मुझे कोई बात पूछनी होती तो मुझ पर अशिष्ट

होने का दोषारोपण किया जाता। फिर भी मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि मुझे उनसे भी अधिक चिड़चिड़े स्वभाव के अफसर के अधीन नहीं रखा गया, क्योंकि मेरा विश्वास है कि वह वास्तव में बुरा नहीं था। साधारणतः उसे मेरे स्वास्थ्य का काफी ध्यान रहता था और वह अनुरोध किया करता था कि मैं लम्बी सैर किया करूं। वह नहीं चाहता था कि मुझे बुरा अथवा अरुचिपूर्ण आहार मिले, परन्तु वास्तविक बात यह है कि इसके लिए उसके पास समय तथा साधन का अभाव था।....मैं नहीं जानता कि राजबन्दियों की रक्षा के कार्य के उपलक्ष्य में उसे कोई विशेष भत्ता मिलता था। यदि नहीं, तो वह उसके लिए फालतू कष्ट का कार्य था, जो उसे स्वभावतः पसन्द नहीं था। राजबन्दियों से सम्बद्ध प्रत्येक छोटी मोटी बात को गुप्त रखने का भी बखेड़ा था। वह इस कार्य के लिए अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से किसी प्रकार की सहायता नहीं मांग सकता था। परन्तु मेरी सम्मति में सबसे महत्वपूर्ण बात जो उसके स्वभाव को प्रभावित करती थी कि वह जेल का अध्यक्ष था। इस रूप में उसका सहस्रों अपराधियों से सम्बन्ध था जिन पर उसे विशाल अधिकार प्राप्त थे और जिनके साथ किसी प्रकार की शिष्टता से प्रदर्शन की उसे कभी आवश्यकता न पड़ती थी। साधारण जेल जीवन के अनुभव से ही वह बन्दियों की आवश्यकताओं का अनुमान लगाता था।"

"मेरे निर्वासन की कहानी" के विवरण कभी कभी अत्यन्त मामूली प्रतीत होते हैं, परन्तु उनसे ज्ञात होता है कि लेखक के मन पर उनका कितना प्रभाव पड़ता था। आरम्भ में जब अध्यक्ष ने उनके साथ अच्छा व्यवहार किया तो उन्होंने लिखा था "शुरू के कुछ दिन वह अत्यन्त कृपालु और दयाशील रहा। उसका विचार था कि सरकार ने मुझ पर बिना मुकदमा चलाए मुझे अपने जन्म स्थान से निर्वासित करके बड़ा भारी अन्याय तथा अत्याचार किया है। अतः कोमल व्यवहार द्वारा उसकी किसी हद तक पूर्ति की जाय।" शायद यह विचार लेखक के मन में किसी अहम्मन्यता के मुहूर्त में आए हों, नहीं तो इस बात का विश्वास करना कठिन है कि अध्यक्ष ने उपरोक्त कारण से उनके साथ दया तथा शिष्टता का व्यवहार किया हो।

जिसे उन्होंने 'अभिवादन' अथवा नमस्ते का हौआ' कहा है, उनको अत्यन्त व्यथित करता था। अपने ढीले ढाले जिगर को सक्रिय रखने के लिए तथा आनन्द की निद्रा लाने के लिए उनको प्रति दिन भ्रमण करने की जरूरत पड़ती थी, परन्तु विवश होकर उन्हें वह त्यागना पड़ा, क्योंकि उससे पीड़ाजनक पेचीदगियां पैदा होने लगीं। दैनिक सैर के समय, शुरू-शुरू में तो उनके साथ एक गोरा सार्जेण्ट रहता था, परन्तु पीछे दो वर्दीवाले कान्स्टेबल भी जोड़ दिए गए। सादे कपड़ों वाले सिपाही भी चारों ओर घूमते रहते थे।

अधिकारियों ने इतना कड़ा पहरा इसलिए ज़रूरी समझा कि माण्डले में भारत-वासियों—विशेषत: पंजाबियों—की भारी संख्या रहती थी। पुलिस में भी पंजाबियों की भारी संख्या थी, परन्तु उनको विशेष रूप से राजबन्दियों से सम्बन्धित ड्यूटी से पृथक रक्खा जाता था। रात को दुर्ग के फाटक पर पहरा देनेवाले छ: पंजाबी सिपाहियों की टुकड़ी को हटाकर उनके स्थान पर ब्रह्मी सफरमैना के आदमी लगा दिए गए। लाजपतराय पर पहरा देनेवाले गोरे सार्जेण्टों के साथ व्यक्तिगत सेवार्थ एक एक कान्स्टेबल लगाया गया था जो पंजाबी मुसलमान थे। उनके स्थान पर भी अन्य सिपाही लगा दिए गए।

भ्रमण करते समय जब कभी कोई देशवासी भाई लाजपतराय को मिल जाता, तो वह उनको नमस्कार तथा अभिवादन करता। पहरेदारों की कृपा से ऐसे व्यक्ति को सदा ही नोट कर लिया जाता। किसी व्यक्ति को उनके पास फटकने अथवा उनसे बातचीत करने की आज्ञा न थी। किसी ने ऐसा करने का प्रयत्न भी नहीं किया। "कई दिन मकान के सामने वाली सड़क पर से गुजरने वाले भारतवासियों को काफी तंग किया गया। कई मदान्ध पुलिस अधिकारियों ने तो वह सड़क ही हिन्दुस्तानियों के लिए बन्द करा दी और किसी को उधर से आने जाने की आज्ञा न थी। गाड़ी में बैठे हुए प्रतिष्ठित पुरुषों को भी उधर से लौटा दिया जाता और कहा जाता कि अन्य मार्गों द्वारा जायँ।" लाजपतराय को अभिवादन अथवा सलाम करने वाले हिन्दुस्तानियों के नाम नोट किए जाते, उन्हें धमकाया जाता तथा उनकी गति विधि पर आंख रक्खी जाती। एक दिन सायं को दो हिन्दुस्तानी सचमुच गिरफ्तार कर लिए गए और सड़कों पर इधर उधर घूमने के अभियोग में कोतवाली लाए गए। उनमें से एक को तो चेतावनी देकर तत्काल ही छोड़ दिया गया। दूसरे को जो सिक्ख था, कुछ समय तक रोका गया। जिला पुलिस के अध्यक्ष ने आकर उससे उसके माता पिता, निवास स्थान, व्यवसाय आदि के विषय में कई प्रश्न पूछे। वह सज्जन एक रिटायर्ड ओवरसियर थे और अब ब्रह्मा में पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट में ठेकेदार थे। उससे पूछा गया—क्या तुम लाजपतराय को जानते हो और तुमने उसे प्रणाम क्यों किया है? उसने उत्तर दिया कि "मैं लाला जी की ख्याति के कारण उनको जानता हूँ और वह एक सन्त तथा महात्मा हैं। मेरा यह कर्तव्य है कि जब कभी मेरी उनसे भेंट हो, मैं उनको नमस्कार करूँ।" उससे पूछा गया—क्या तुम भविष्य में ऐसा न करने की प्रतीज्ञा करते हो? उसने कहा 'नहीं'। फिर उससे पूछा गया कि तुम माण्डले क्यों आए हो? वह बोला कि मैं अपने कारोबार के सिलसिले में यहां आया हूं और बाजार में पंजाबी धर्मशाला में ठहरा हुआ हूं। उसको चेतावनी दी गयी कि फिर कभी उस ओर मत आना और

फिर उसे छोड़ दिया गया। इस घटना से मुझे हार्दिक व्यथा हुई और अगले दिन मैंने सैर पर बाहर जाने से इन्कार कर दिया। मैंने अपने एक मित्र को लाहौर पत्र लिखा जिसमें उपरोक्त घटना का विवरण देते हुए मैंने बतलाया कि मैंने सैर करना बंद कर दिया है क्योंकि मैं अपने देशवासियों को अपमानित तथा पीड़ित होते देखने की अपेक्षा व्यायाम बन्द करना और घर बैठे रहना अधिक पसन्द करता हूं।...मैंने अपने मित्रों से इस बात का भी अनुरोध किया कि वे माण्डले स्थित हिन्दुस्तानियों को यह सूचित करने का कोई ढंग ढूंढ़ निकालें कि वे मेरी ओर कोई ध्यान न दिया करें और यदि मार्ग चलते हमारी भेंट हो जाय तो मुझे नमस्ते, वन्दना आदि न किया करें क्योंकि इससे किसी का कोई लाभ तो होता नहीं, उलटे वे अपमानित होते हैं और मेरी कठिनाइयों में वृद्धि होती है। जिला पुलिस का अध्यक्ष मेरे पास आकर पूछने लगा कि आपने सैर करना किस कारण से बन्द कर दिया है। मैंने उसे सच्चा कारण बतला दिया जिस पर वह कहने लगा कि वह व्यक्ति दो तीन बार इधर भटकता देखा गया। अतः उसको चेतावनी देना आवश्यक था और ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी। जेल के अध्यक्ष ने भी मुझे विश्वास दिलाया कि मेरा अभिवादन करने वालों से किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होगा। परन्तु मैं जानता था कि यह नमस्कार का हौआ अभी खासी देर चलेगा। कई दिन पीछे जेल के अध्यक्ष ने मुझसे पूछा कि क्या सड़कों पर लोग आपको अभी तक नमस्कार करते हैं? मैंने कहा—हां, कोई कोई करते हैं। आगे चलकर मुझे एक से अधिक गोरे सार्जेण्टों ने बतलाया कि देसी सिपाहियों को कह दिया गया है कि आपको सलाम न किया करें और न आपके मकान के सामने सड़क पर ही घूमा फिरा करें। फिर भी कई तो इस आज्ञा की अवहेलना करते हुए आते रहते थे और मुझे देख लिया करते थे और कभी कभी तो मुझे प्रणाम भी किया करते थे। कई अवसरों पर मैंने संकेत से उन्हें ऐसा करने से रोका, परन्तु उन्होंने कोई परवाह नहीं की। कई कई तो ऐसे निधड़क थे कि जब कभी मुझे टुकड़ियों में मिलते थे तो मुझे फौजी सलाम करते थे। मैंने उनसे पीछा छुड़ाने के कई ढंग निकाल लिए थे। उदाहरणार्थ, ज्यों ही मैं देखता कि कुछ पंजाबी मेरी ओर आ रहे हैं, मैं लौट जाता था और मुड़-कर सामने की दिशा को चल देता था अथवा मैं यदि बरामदे वा अहाते में ठहर रहा होता और किसी हिन्दुस्तानी को आते देखता, तो कभी तो मैं कमरे में चला जाता अथवा कभी मकान की पिछली ओर चला जाता कि वे मुझे देख न पावें। कई पुरुष तो, बार बार आते और मेरे दर्शन किए बिना जाने का नाम न लेते। मेरे दर्शनार्थ सड़क पर खड़ा हुआ एक सभ्य वेष का सिक्ख पकड़ लिया गया। जब उसने मुझे बरामदे में देखा, उसने मुझे प्रणाम किया जिस पर उसे पकड़कर जिला

पुलिस के अध्यक्ष के पास पुलिस के पहरे में भेज दिया गया। वह कुछ जोशीला व्यक्ति प्रतीत होता था। ब्रह्मी सब-इन्स्पेक्टर तथा उसमें तकरार हो गया। इस्पेक्टर ने उसे गाली दी जिसका खालसा बहादुर ने कड़ाकेदार उत्तर दिया। इस बातचीत में भी मैंने सुना कि सब इन्स्पेक्टर उस पर मुझे नमस्कार करने का दोषारोपण कर रहा था। उसने कहा "तुम लोग उसे क्यों प्रणाम करते हो, जब सरकार नहीं चाहती कि तुम ऐसा करो ?" उस पुरुष ने उत्तर दिया, 'सरकार किसी कानून द्वारा हमें ऐसा करने से नहीं रोक सकती।' एक सरकारी दफ्तर का चपरासी मेरी ओर हाथ उठाकर मुझे प्रणाम करता हुआ पकड़ा गया। उसे शीघ्र ही छोड़ दिया गया और मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस घटना को न तो डायरी में नोट किया गया और न किसी अन्य प्रकार से उसकी रिपोर्ट की गयी। अधिकारियों की धाँधली के विरुद्ध प्रतिवाद स्वरूप मैं यही कर सकता था कि अपनी सैर बन्द कर दूं और उस गोरे सार्जेण्ट के साथ फिर कभी घूमने न जाऊँ। अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सरकार की इतनी गिरावट देखकर अत्यन्त दुख होता था। एक दिन एक दस वर्ष के मुसलमान लड़के ने मुझे सलाम करने का अनुरोध किया परन्तु उसका पिता दूर से ही उसे ऐसा करने से वर्जित कर रहा था क्योंकि सलाम करने से वह पकड़ लिया जायगा। दुर्ग में भिन्न भिन्न व्यवसायों में लगे हुए पंजाबियों की भारी संख्या अपने काम पर जाती हुई इधर उधर से गुजरते हुए मुझे प्रणाम किया करती थी। मेरे भ्रमणार्थ नियत सड़कों पर कई गोरे अफसरों की कोठियां थीं जिनके पास मदरासी (हिन्दुस्तानी) नौकर थे। इन मदरासियों के बच्चे सदा मुझे सैर करते देखा करते थे। ज्यों ही मेरे भ्रमण का समय होता, वह बाहर निकल आते और सड़क पर खड़े होकर मुझे प्रणाम किया करते। मेरे लिए भी उन नन्हें नन्हें शिशुओं के प्रेम का उत्तर देना स्वाभाविक था और मैं कभी कभी उनकी पीठ पर हाथ फेरता और उनको पैसे देता था। मेरे पहरेदारों में से जो समझदार थे, उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा, परन्तु एक दिन एक सन्तरी ने मुझसे पूछना शुरू किया कि मेरे साथ उनका क्या सम्बन्ध है? जब मैंने कहा कि मैं तो इनसे परिचित भी नहीं, सिवाय इसके कि मैं घूमते समय प्रतिदिन इनको देखा करता हूँ, तो वह उन बच्चों के आदर तथा प्रेम प्रदर्शन पर स्तंभित रह गया। मेरा उत्तर तो एक घृणायुक्त मुसकान थी।

जिस प्रकार (कारावास में) लाजपतराय के देशवासी उनके प्रति मान प्रदर्शन करते थे, उससे कोई भी बन्दी फूला न समाता। कभी कभी पंजाबी महिलाएँ उनके दर्शनार्थ जातीं (दूर से ही) और बन्दी भांप लिया करता था। कभी कोई भारतीय देहाती युवक-मण्डली उधर से गुज़रती और लाजपतराय के कानों में उनके निर्वासन के विषय के करुणाजनक गीत की ध्वनि पड़ जाती। किसी समय

वर्षा ऋतु में भिन्न प्रकार की मण्डली, मेरे मकान के बरामदे की ओर नेत्र उठाए भटकती हुई जाती जिनके सुन्दर वस्त्रों तथा वेष-भूषा से प्रतीत होता था कि वह बम्बई के सम्पन्न बोहरा लोग हैं। माण्डले की सैर को आनेवाले किसी भी भारतीय दर्शक के दर्शनीय स्थानों की सूची में माण्डले का दुर्ग अवश्य शामिल होता और वह उस किले के विख्यात बन्दी के दर्शन भी अवश्य करते। चाहे उसके लिए उन्हें कितनी ही परेशानी क्यों न उठानी पड़ती। "एक दिन १० बजे प्रातः, जब मैं दूसरी मंजिल के बरामदे में बैठा हुआ पढ़ रहा था, तो अकस्मात् मेरी दृष्टि एक भारत-वासी पर पड़ गयी, जो अपने सिर पर लकड़ियों का गट्ठा उठाए हुए था और वह आकर हाते के पूर्वी फाटक के सामने खड़ा हो गया। उसने लकड़ियों का गट्ठा तो धरती पर रख दिया और अपनी पगड़ी खोलकर उसमें से दो सुन्दर कमल पुष्प निकाले। यह स्पष्ट था, कि वह पुष्प मेरे लिए ही लाया था और मुझे भेंट करना चाहता था। उस फाटक पर किसी को देखकर उसने अपनी पगड़ी बांध ली, लकड़ियों का गट्ठा उठा लिया और कमल अपने हाथ में पकड़े हुए, वह पश्चिमी फाटक के पास पहुँचा जहां एक सन्तरी पहरे पर खड़ा था। उसने सन्तरी से प्रार्थना की कि वह यह फूल मुझ तक पहुँचा दे, परन्तु उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और उसे वहां से भगा दिया। कुछ पग आगे जाकर वह एक पेड़ तले खड़ा हो गया और मेरी ओर ताकने लगा। निस्सन्देह, मुझे उसके नेत्रों में श्रद्धा तथा प्रेम स्पष्ट झलकता दिखलायी पड़ा। उसने फूल पेड़ के तने पर धर दिए, हाथ जोड़ मुझे नमस्कार किया और चल दिया। थोड़ी देर के बाद मैंने मदरासी रसोइए को भेजकर वह फूल मंगवा लिए। मेरे लिए वह पुष्प मेरे प्रति मेरे देशवासियों के प्रेम का चिह्न था।" जब रेग्यूलेशन बन्दी के रूप में उनका दूसरा साथी अजित सिंह माण्डले पहुँच गया, तब दुर्ग में 'गुप्त रहने की वार्ता' भी एक विचित्र तमाशा बन गयी। सप्ताहों और महीनों तक यही प्रकट किया गया कि एक ही दुर्ग में बसनेवाले बन्दी को दूसरे बन्दी की उपस्थिति का कोई ज्ञान नहीं है परन्तु उनकी सावधानियों ने ही रहस्य का भण्डा फोड़ दिया। 'मैं जानता था कि उसकी भी खोज हो रही है। सरदार अजित सिंह के पहुँचने के अगले ही दिन सुपरिन्टेन्डेन्ट ने दुर्ग के पूरब की ओर को मेरा भ्रमण बन्द करा दिया। और मैं तत्काल ही इसका कारण समझ गया। फिर, सुपरिन्टेंडेंट मेरी उन पुस्तकों में से (जो मेरे मित्र मदनजीत ने मेरे लिए रंगून से भेजी थीं) कुछ यह कहकर ले गया कि वह एक मित्र के लिए चाहिए। यह पढ़ने के अनन्तर लौटा दी जायँगी।" एक दिन सुपरिन्टेंडेंट अपने साधारण दैनिक चक्कर की समाप्ति पर लाजपतराय से विदा होते समय असावधानी से मेरा नाम लेने के स्थान में 'अजित सिंह, अजित सिंह' पुकार उठा। शीघ्र ही उसने अपनी भूल को सुधारने

का प्रयत्न किया, परन्तु इस प्रयत्न मेंउ से अपनी मूर्खता की अनुभूति हो रही थी। इसके कुछ दिन बाद एक सार्जेण्ट ने मुझसे प्रश्न किया "क्या आप जानते हैं अजित सिंह कहां हैं ?" मैंने कहा मुझे उसका क्योंकर पता हो सकता है? और मेरी अपेक्षा तुम स्वयं इस बात का अधिक ज्ञान रखते हो। वह मुसकराया और मुझे बतलाने लगा कि अजित सिंह भी उसी दुर्ग में पूर्वी फाटक के पास एक मकान में बन्दी है। कुछ दिन पश्चात् मैंने दूर से सरदार अजित सिंह को एक गोरे सार्जेण्ट के साथ सैर करते देखा। फिर तो मैंने पुलिस से बहुधा अजित सिंह के बारे में खुली बातें करते सुना और जब वह उसके मकान पर पहरा देते तो वहां की घटनाओं का वर्णन सुना देते, यद्यपि उच्चाधिकारीगण अभी तक यही समझ बैठे थे कि मुझे सरदार अजित सिंह की माण्डले में उपस्थिति का बिलकुल कोई ज्ञान नहीं है।

यद्यपि लाजपतराय एक 'राजबन्दी' थे, परन्तु डफरिन दुर्ग में उनक खासे सख्त बन्धनों में रक्खा जाता था। उनको कोई समाचारपत्र पढ़ने की आज्ञा नहीं थी। उन्होंने इस विषय पर भारत सरकार से लिखा पढ़ी भी की, परन्तु फिर भी आज्ञा न मिली। पहरा देनेवाले गोरे सार्जेण्टों को भी ड्यूटी के समय अपने पास कोई पत्र रखने की मनाही थी। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सरकार की सावधानियां पूर्ण रूप से सफल रहीं। उनके हाथ में पहुँचने से पूर्व उनकी पुस्तकों की पड़ताल होती थी। हम पहले बतला ही चुके हैं कि "राजनैतिक कारणों के आधार पर उनको ब्रह्मी भाषा सीखने की आज्ञा नहीं दी गयी। वह छः मास माण्डले रहे, परन्तु इस अवधि में किसी मित्र अथवा सम्बन्धी को हाते में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं थी। जब कभी भी नौकर अन्दर जाते थे, अथवा बाहर जाते थे, उनकी तलाशी ली जाती थी।"

उनका समस्त पत्र व्यवहार सेंसर होता था। मेरे नाम भेजी गयी चिट्ठियों में से केवल कुछ ही मुझे दी गयीं। उन्होंने लिखा है—जिन पत्रों में उनकी गिरफ्तारी, निर्वासन अथवा लाहौर, रावलपिण्डी वा अन्यत्र गड़बड़ (तूफानी घटनाओं) आदि का कोई भी संकेत होता, वह निश्चय रूप से रोक लिए जाते। एक पत्र में उन्होंने "खज़ान सिंह ऐण्ड कम्पनी" के बारे में प्रश्न किया था। रावलपिण्डी के जिन वकीलों को राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार किया गया था, खज़ान सिंह उनमें से एक थे।

सरकार द्वारा रोकी गयी चिट्ठियों में कई अत्यन्त रोचक वस्तुए थीं। एक पत्र हैड, जे. सैण्डी द्वारा भेजा गया था जो अपना परिचय इस प्रकार देता है—एक युवक वैलशमैन, आयु २२, भारतीय समस्याओं का तीव्र जिज्ञासु। (इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री) लायड जार्ज का यह देशवासी भारतवर्ष के वर्तमान आन्दोलन के विषय में कुछ पंक्तियां (पत्र) चाहता है। उनसे भेंट करने का अवसर न मिला।

उनके भाई धनपतराय ने उनके साथ भेंट करने की आज्ञा माँगने के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा, परन्तु सर डैनज़िल इब्बटसन की सरकार ने उसे अस्वीकार कर दिया। इससे फिर किसी को ऐसा करने का साहस वा आवश्यकता न हुई।

उन्होंने डफरन दुर्ग से बाहर शाम को टांगे पर सैर की आज्ञा मांगी, परन्तु वह भी अस्वीकार हुई। सच्ची बात तो यह है कि दुर्ग के अन्दर भी दिन रात उनपर कड़ा पहरा रहता था। "दिन के समय तो सड़क के सामने की ओर एक सन्तरी का पहरा रहता था और पिछली ओर से हाते को जानेवाली सीढ़ियों का ताला अन्दर से बन्द रहता था। रात को, सामने वाला सन्तरी अन्दर वाली सीढ़ी पर पहरा देता था जहां से मैं बिस्तरे पर लेटा हुआ उसे दिखलाई पड़ता था और पिछली ओर एक और सन्तरी खड़ा किया जाता था।

"गोरा सार्जेण्ट तथा ब्रह्मी सब-इन्स्पेक्टर दिन में तथा रात को कई बार आकर मुझे देख जाते थे। मेरे नौकरों तथा पुलिस के अतिरिक्त किसी को उसकी उत्सुकता इसलिए प्रबल हो उठी थी कि ब्रिटिश धारा सभा में प्रतिदिन भारतीय राजनैतिक परिस्थिति पर वादविवाद चल रहा है।" इंग्लैण्ड के लोगों को भारतीय स्थिति का बहुत ही कम वास्तविक ज्ञान है, अतः आप इस पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें। मैं आपसे यह भी जानना चाहता हूं कि क्या आपने कोई अति भयंकर कार्य किया है? आशा है कि आपका समय आनन्द से कटता होगा और आपका बन्दी जीवन कष्टकर नहीं होगा।

सालिस्टरों की एक फर्म का एक शुद्ध कारोबारी पत्र भी रोक लिया गया। "विलायत के पत्र 'डेली एक्स्प्रेस' के शिमला के संवाददाता ने आपके बारे में एक निराधार गप्प हांकी है, उसके विरुद्ध मानहानि के प्रस्ताव के बारे में आपका निर्देश चाहिए।" उस पत्र में लाजपतराय के वारण्ट आफ अटारनी के फार्म पर हस्ताक्षर करने को भी कहा गया था। यह शत प्रतिशत व्यक्तिगत चिट्ठी भी रोक ली गयी। क्योंकि सुपरिन्टेंडेंट जेल के सुगम गुरुमंत्र के अनुसार, किसी भारतीय के विरुद्ध अंग्रेज़ी पत्रों में प्रकाशित होनेवाली मानहानि की बातों के विषय में उस भारतीय को अपनी सफाई पेश करने की आज्ञा देना भी 'साधारण राजनैतिक कारणों के आधार पर' अनुपयुक्त है। फिर भी ९ जुलाई १९०७ को मि० विलियम रेडमाण्ड के प्रश्न का धारा सभा में उत्तर देते हुए सत्यवादी जान मार्लेने कहा था "लाजपतराय तथा अजित सिंह को अपने मित्रों के साथ पत्र व्यवहार करने की आज्ञा है, परन्तु उन पत्रों की देखभाल तथा पड़ताल की जाती है कि वह गड़बड़ी करने वाले लोगों को सन्देश न भेज सकें। अभी तक केवल एक पत्र रोका गया है। भारत से मुझे सूचना प्राप्त हुई है कि किसी ने बन्दी से भेंट करने की इच्छा प्रकट नहीं की है।

परन्त मेरा विश्वास है कि यदि कोई ऐसा करना चाहे तो सरकार को कोई आपत्ति न होगी, इस शर्त पर कि इस बात का पूरा ध्यान रखा जाय कि कोई अवांछित तथा आपत्तिजनक बातचीत न हो। मि० मैकारनेस ने एक अतिरिक्त प्रश्न किया कि क्या बन्दी अपने कानूनी सलाहकारों से पत्र व्यवहार कर सकते हैं? मि० मार्ले का उत्तर था 'हां'।

बन्दीजीवन में उन्हें प्राय: घर की याद आती थी। शायद घरेलू मामलों पर विचार करने का जितना समय तथा अवकाश उनको यहाँ मिला, उतना उनको घर रहते कभी न मिला था। जो पत्र उन्होंने माण्डले दुर्ग से अपने पिता जी अथवा अपने पुत्रों को लिखे हैं, उनसे उनकी गृह सम्बन्धी योजनाओं का कुछ पता चलता है। इन पत्रों में राजनैतिक बातों से कोसों दूर रहना आवश्यक था। साधारणतया उनमें यह लिखा जाता कि मैं किस प्रकार दिन बिताता हूं, कैसी ऋतु है, मेरा स्वास्थ्य कैसा है, मैं क्या पढ़ता लिखता हूँ। कभी कभी किसी ऐसे पदार्थ का वर्णन होता जो घर में तो प्राप्त होता था, परन्तु वहां उसका अभाव था। कभी कभी वह अपने कारोबार वा परिवार के मामलों पर निर्देश देते थे। गिरफ्तारी के समय वह अपने ज्येष्ठ पुत्र प्यारेलाल के काम के विषय में सोच रहे थे। प्यारेलाल दो वर्ष पूर्व कालेज छोड़ चुके थे और कारोबार की ट्रेनिंग भी कपास बेलने के एक छोटे से कारखाने में (जिसके लाजपतराय भागी थे) प्राप्त कर चुके थे। हिसार के एक मित्र को पत्र लिखते हुए वह लिखते हैं :—"आपकी हिसार, दिल्ली, नारनौद, मालेरकोटला तथा लायलपुर की फर्म के साथ, मेरा जो हिसाब किताब है, उसको बदलने के बारे में मैंने जो कुछ आपको लिखा था, क्या आपने मेरे उस निर्देश को पूरा कर दिया है? यदि नहीं, तो कृपया शीघ्र ही कर डालिए और मुझे लिखिए कि आपने ऐसा कर दिया है। मेरे दूसरे पुत्र, प्यारेकृष्ण के नाम पर १५०००) रु० का पृथक हिसाब खोलिए। मैं योरुप में उसकी शिक्षा के लिए यह धन सुरक्षित रखना चाहता हूँ। इस खाते का रुपया मेरे पिता जी ही निकाल सकेंगे और उनके अनन्तर लाला प्यारेलाल तथा लाला रणपतराय सम्मिलित रूप से निकलवा सकेंगे। इस हिसाब का धन केवल प्यारेकृष्ण की योरुप में शिक्षा के ऊपर ही व्यय हो सकेगा, अन्य किसी कार्य के लिए नहीं। मैं यह सब कुछ सावधानी के तौर पर लिख रहा हूं, अन्यथा पूर्णत: स्वस्थ तथा सकुशल हूं और चिरकाल तक जीने का इच्छुक हूं"। प्यारेलाल को भी इसी विषय पर लिखते हैं "यदि तुम सरकारी प्रामेसरी नोट बेचने में सफलता प्राप्त करो, तो बिक्री का वह रुपया एक स्थायी डिपजिट में अधिक से अधिक आर्थिक सूद की दर पर जमा करा दो। यह धन प्यारेकृष्ण की शिक्षा के लिए है। यह मेरी प्रबल अभिलाषा है कि ईश्वर के आशीर्वाद

से उसे उत्तम से उत्तम शिक्षा प्राप्त हो कि वह अपने आपको मातृभूमि की सेवा के लिए तैयार कर सके। जहां तक एक बच्चे के भविष्य का निर्माण एक पिता के हाथ में है, मैं चिरकाल से निश्चय कर चुका हूँ कि वह हमारे कालेज के शिक्षा मण्डल में हमारे प्रतिनिधि के रूप में रहेगा, और इस उद्देश्य से उसे सर्वोत्तम शिक्षा (अपनी परिमित आर्थिक अवस्था के अनुकूल) प्रदान की जाय। उसे अपने स्वास्थ्य तथा आचार की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह अपने स्नेही पिता की सदाशाओं को पूर्ण करने का प्रयत्न करेगा।"

डी० ए० वी० स्कूल के एक अध्यापक, शामलाल को पत्र लिखते हुए वह उनसे अपने ज्येष्ठ पुत्र के भविष्य के बारे में अपनी योजनाएँ इस प्रकार रखते हैं "यह पत्र आप लाला हरिलाल को पढ़कर सुना दें। मैं उनको तथा उनके भाई को याद दिलाना चाहता हूं कि उन्होंने प्यारेलाल के लिए काम ढूंढने का वचन दिया हुआ है। प्यारेलाल को अब जीवन संघर्ष में प्रवेश करना चाहिए और अपने परिवार के लिए आजीविका कमानी चाहिए। यह अत्यावश्यक है और मुझे आशा है कि लाला हरिलाल इधर तुरन्त ही ध्यान देंगे। कृपया मुझे लिखना कि वह प्यारेलाल के लिए क्या काम पसन्द करते हैं।" प्यारेलाल के नाम भी कुछ निर्देश थे "यदि एक पक्ष के अन्दर (हरिलाल की ओर से) तुम्हें कोई काम न मिले तो अपने चाचा जी के कारोबार में सम्मिलित हो जाना। उन्होंने एक पत्र में तुम्हारे साझी होने का प्रस्ताव किया है। मेरा विश्वास है कि तुम्हारा उनके साथ अच्छा निभाव हो सकेगा, जब तुम्हें संसार का तथा एक दूसरे का अधिक अनुभव हो जायगा। एक दूसरे को अच्छी तरह समझ लेने और यथासम्भव एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप न करने से बढ़कर कोई वस्तु नहीं। पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य दूसरों को क्षमा करने, सहन करने के लिए तथा परस्पर उदार भाव रखने को सदैव तत्पर रहे। हम भारतवासियों में झगड़ों तथा कलह का कारण संकुचित-हृदयता ही है। अन्य लोगों का स्नेहभाजन होना और उसे कड़ी से कड़ी परीक्षा के समय में भी स्थित रखना ही संसार में एक नवयुवक अथवा किसी व्यक्ति के लिए सबसे महान् अनुशासन है।" प्यारेलाल के भविष्य कार्य के विषय में सबसे महत्वपूर्ण एक और चिट्ठी मास्टर शामलाल के नाम लिखी गयी जिसमें उन्होंने इस बात के संदिग्ध संकेत पर अपना अत्यन्त आन्तरिक दुख प्रकट किया है कि अपने पिता की देश सेवाओं के कारण प्यारेलाल की ओर उचित ध्यान दिया जायगा। इस पत्र से हमें वास्तविक लाजपतराय के दिग्दर्शन होते हैं। "आपकी चिट्ठी के लिए धन्यवाद। मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ यदि आप चिट्ठी के उस भाग के लिए मुझसे धन्यवाद की आशा रखते हों जिसमें आपने मेरे पुत्र की ओर जाति के विचारशील

पुरुषों की सदिच्छाओं का वर्णन किया है। मैं इस रिमार्क से बहुत ही नाराज तथा दुखी हूँ। यदि मेरे बेटे इस भाव से लाभ उठाएँ, तो मैं उन्हें घृणा करूँगा। मेरी इच्छा है कि वह अपने पुरुषार्थ से तथा किसी की विशेष सहायता के बिना रोटी कमाएँ।

"यह सत्य है कि मैंने लाला चन्दूलाल से कहा है कि वह प्यारेलाल के बारे में कुछ करें, क्योंकि चिरकाल पूर्व ही हमने इसके विषय में एक स्कीम बनायी थी। चन्दूलाल के साथ व्यक्तिगत सम्बन्धों के आधार पर मैं उन पर दावा रखता हू जिसका उपरोक्त भावनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं। तुमने वह पत्र औरों को दिखाकर बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं किया। कृपया नाराज मत होना। यह तो नितान्त ही निजी तथा व्यक्तिगत पत्र था और मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि भविष्य में इसके बारे में किसी से कुछ न कहना। रोटी कमाने के लिए, मेरे पुत्र खासे शिक्षित हैं। फिर, वह सभी अविवाहित हैं और आवश्यकता पड़ने पर सब कुछ सहन भी कर सकते हैं। सो मुझे उनकी ओर से किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। इस विषय पर मेरा मन नितान्त स्वतंत्र है। मैंने इस विषय पर इसलिए कुछ लिख दिया, क्योंकि हमारा वियोग अकस्मात् ही हुआ और मैं सब कुछ अनिश्चित अवस्था में छोड़ आया। जब तुम हिसार लौटो, तो यह पत्र लाला हरिलाल तथा पंडित लखपतराय को दिखलाना।" अन्त में जब प्रतीत हुआ कि चन्दूलाल और हरिलाल उस वर्ष प्यारेलाल को काम में नहीं खपा सके, तो उन्होंने अपने पुत्र को वीरतापूर्ण उपदेश दिया "इसका अर्थ है कि एक वर्ष की और देरी हो जायगी. . .मेरी सम्मति में तुम्हारे लिए तीन मार्ग खुले हैं। वह मार्ग बतलाने से पूर्व मैं तुमको अपनी टांगों पर खड़ा होने की उपयुक्तता का स्वर्ण मंत्र तुम्हारे हृदय में बिठलाना चाहता हूँ। संसार में इस जैसी और कोई वस्तु नहीं। मेरे अपने भाव तो यह हैं कि किसी का भी उपकृत नहीं होना चाहिए। मेरी दृष्टि में तो जो व्यक्ति किसी की भी सहायता के बिना अपनी रोटी कमा सकता है (वह आजीविका कितनी ही मामूली क्यों न हो) वह सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। केवल अपने ही पुरुषार्थ से मामूली दाल रोटी कमा लेने में जो नैतिक बल प्राप्त होता है वह आजीवन तुम्हारे काम आएगा। मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे किसी भी मित्र का एहसान उठाओ। मैं नहीं चाहता कि किसी को भी यह कहने का अवसर प्राप्त हो कि उसने मेरे कारण मेरे बच्चों की सहायता की है। ठीक यही कारण था कि मैंने तुम्हारी मनसा, कारखाने की मैनेजरी स्वीकार करने की, पसन्द नहीं किया। यदि उनको कोई हानि हो जाती तो वह कह देते कि वह तुम्हारी अनुभवहीनता तथा कारोबारी ढंगों के अज्ञान के कारण हुई है और इससे मैं आजीवन दुखी बन जाता। अब जीवन कार्य आरम्भ करने के लिए तुम खासे शिक्षित हो चुके हो और तुम्हारे पास कुछ पूंजी भी है। मुझे कोई परवाह न

होगी, यदि तुम पहले दो वर्ष कुछ भी न कमा सको अथवा हानि भी उठाओ। हा, सफल होने का दृढ़ निश्चय अवश्य होना चाहिए। सौभाग्य से तुममें कोई कुटेव आदि नहीं हैं और तुम थोड़े में भी निर्वाह कर सकते हो। तुम्हारा विवाह एक ऐसी कन्या से होने वाला है जो विलासी वातावरण में नहीं पली है और जिसे तुम्हारी गृहस्थी संभालने में किसी प्रकार की लज्जा अथवा संकोच न होगा। तुम्हारे लिए इस लड़की के चुनाव में मेरा मुख्य उद्देश्य यही था। इस परिस्थिति में मुझे कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता कि तुम क्यों अपना कारोबार शुरू न कर दो चाहे वह कितना ही मामूली क्यों न हो।"

परन्तु लाजपतराय के लिए "गृहस्थी" का अर्थ अपने बच्चों की अपेक्षा अपने पिता जी अधिक थे। "मेरी निर्वासन की कहानी" में वह लिखते हैं, "समस्त परि-जनों में से मेरे लिए जिसकी स्मृति दुःखदायी थी, वह मेरे वृद्ध पिता जी थे। मेरा समस्त जीवन अपने पैतृक वात्सल्य तथा मातृभूमि के प्रति मेरे कर्तव्य के बीच संघर्ष में व्यतीत हुआ है। बहुधा मैंने उनकी रुचि के विरुद्ध कार्य करके उनको नाराज़ किया है, परन्तु वह नाराज़गी या रोष इस हद तक कभी नहीं बढ़ा कि वह मुझसे सम्बन्ध विच्छेद कर लें। अस्थायी रोष के होते हुए भी उनकी स्नेहमय छत्रछाया सदा मुझ पर बनी रही। मेरे स्वास्थ्य के लिए चिन्ता करते करते उनके केश समय से पूर्व श्वेत हो गए थे। वृद्धावस्था में भी वह महीनों तक दिन रात मेरी सेवा शुश्रूषा करते रहे और एक क्षण मात्र के लिए मेरे सिरहाने के पास से उठकर नहीं गए, जब अन्य सभी लोग मेरे जीवन से हताश हो चुके थे। मेरी ओर उसी अगाध प्रेम से उनके जीवन को प्रेरणा मिलती थी और इसी अनन्य स्नेह ने मुझे परिवार तथा सम्बन्धियों को त्याग कर संन्यास धारण करने से रोक रखा था। उनके उच्च आचरण के प्रभाव तथा नैतिक आर्जव ने ही मेरे मन में आध्यात्मिक झुकाव पैदा किया। जब से मैंने होश संभाला है मेरे मन के सामने सदा यही मुख्य विचार उपस्थित रहा है कि किसी प्रकार मेरे पूज्य पिता जी मुझसे रुष्ट न हो जायँ। मेरे गृहस्थी जीवन में सभी घरेलू मामलों में वही सर्वोच्च शासक थे। मेरे सार्वजनिक जीवन सम्बन्धी बातों को छोड़कर, मेरे तथा मेरे परिवार के लिए उनकी इच्छा ही प्रधान तथा सर्वोपरि थी।"

निस्सन्देह, माण्डले दुर्ग से कोमलतम भावों से पूर्ण जो पत्र लिखा गया, वह उनके पिताजी के नाम था। उसकी प्रत्येक पंक्ति वात्सल्य रस से सनी हुई है। "मेरे निर्वासन की कहानी" में इस पत्र के विषय में लिखा है—"जहां तक मुझे स्मरण है केवल यही एक पत्र है जिसमें मैंने अपने हृदय के कोमल भाव (निर्बलता की सीमा पर पहुँचे हुए) प्रकट किए हैं। मुझे खेद है कि मैंने ऐसा पत्र

क्यों लिखा और कुछ कुछ तो मेरा जी चाहता था कि उसे नष्ट ही कर दूं।" पत्र यह है—

"आप यह जानने को उत्सुक हैं कि मैं कैसे समय व्यतीत करता हूँ और क्या उर्दू में गीता की टीका का काम शुरू नहीं कर सकता। अपने दिन भर का कार्यक्रम आपको लिखता हूँ। गीता पर अंग्रेजी तथा उर्दू में एक लेख लिखने का मेरा विचार है, परन्तु यहां उसकी टीका का कार्य नहीं कर सकता।...मुझे आशा है कि विद्या का विवाह भली भांति हो जायगा। इससे आपका एक भारी बोझ उतर जायगा। मेरा विश्वास है कि मेरा पुत्र यथाशक्ति आपकी सहायता करेगा और सब प्रकार से आपको प्रसन्न रखेगा। आजकल आप लाहौर में हैं, अतः कृपया मेरी सब पुस्तकों को अच्छी तरह धूप लगवा दें। वही मेरी सर्वोत्तम सम्पत्ति हैं। कृपया आप यह भी ध्यान रखें कि प्यारेलाल प्रिय पार्वती तथा उसके पुत्र के लिए वस्त्रादि पहुंचाने का पूरा पूरा प्रबन्ध करता है। उसका (पार्वती) चित्र सदा मेरे नेत्रों में घूमा करता है। कभी कभी तो मैं अनुभव करता हूँ कि ऐसे व्यक्ति के साथ उसका विवाह करके मैंने भारी पाप किया है जिसके पूर्णतया स्वस्थ होने में सन्देह था। बेचारी कन्या! मुझे उस पर दया आती है। कृपया, उसका सब प्रकार से ध्यान रखें और मेरी ओर से उसे हार्दिक स्नेह। यदि मेरे आँसुओं से उसका कुछ दुख घट सकता है तो मैं अश्रुपात को उद्यत हूँ। वही मेरी प्रियतम बच्ची है जिसके लिए मैं कभी रोया करता हूं। मेरे भाई मेरी कृतज्ञता के पात्र होंगे यदि वह मेरी विधवा बेटी पर कृपादृष्टि रखें। मेरी प्रबल अभिलाषा है कि उसकी शिक्षा के अभाव की पूर्ति के लिए जितना धन व्यय करना पड़े अथवा जितना कष्ट उठाना पड़े वह उठाया जाय जिससे वह पुस्तकाध्ययन द्वारा अपने दुख को विस्मृत कर सके। मुझे ऐसा अनुभव होता है मानो मैंने उसके प्रति अपना कर्तव्यपालन नहीं किया। मेरी इस असाधारण भावुकता को क्षमा करें। बख्शी टेकचन्द के बहनोई की मृत्यु ने मेरे घाव को भी ताज़ा कर दिया है और कल से, पत्र पढ़ते ही, बड़ा उदास हूँ। जो कुछ मेरे मन में था, मैंने आपको लिख दिया, अब मैं ठीक हो जाऊँगा और आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें।"

प्यारेलाल को भी उन्होंने पार्वती के बारे में लिखा, "मुझे हर्ष है कि तुमने अपनी बहिन को पढ़ाने के लिए पंडित ऋषिराज को लगा लिया है। मैं इसे अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ। मैंने सोच रखा था कि जयचन्द के स्वर्गवास होते ही उसकी पढ़ाई शुरू करा दी जाय, परन्तु मैंने इसे अपने मन में रखा कि ताजा शोक कुछ घट जाय। अच्छी शिक्षा से इस अभागी लड़की का वैधव्य दुख तथा निरन्तर शोक बहुत हद तक कम हो जायगा। अच्छे ग्रन्थ, पत्र तथा पत्रिकायें उसे सदा पहुँचाते रहना।

जयचन्द की मृत्यु के अनन्तर यह विचार सदा मेरे मन में रहा है और गत बार जब मैं प्रयाग गया था, तो उसके लिए दो तीन अच्छी पुस्तकें लाया था।"

लाजपतराय के पिता जी जानते थे कि उनका पुत्र दान देने का स्वभाव रखता है, इसलिए उन्होंने इस प्रयोजन के लिये उनको कुछ धन भेजा। लाजपतराय को यह बात बहुत विचित्र-सी लगी। उन्होंने लिखा "लाला रणपतराय ने पिता जी की ओर से मुझे ५०) रु० का एक मनीआर्डर दानार्थ भेजा है। मुझे इससे आश्चर्य हुआ है। क्या मैं यह दान देने की स्थिति में हूँ? कृपया पिता जी को धन्यवाद दें। यह धन भी जमा करा दिया गया है और आवश्यकतानुसार निकलवा दूँगा। इसका एक भाग अर्थात् २५) रु० मैंने जेल के अध्यक्ष तथा अपने नौकर द्वारा दान में व्यय किया है। अध्यक्ष को इसका ज्ञान है और उनकी स्वीकृति से हुआ है।" पिता जी ने अपने पुत्र की इस सज़ा को बिलकुल शान्तिपूर्वक सहन किया। "वह मेरे बच्चों के प्रति वीरतापूर्ण अपना कर्तव्य पालन कर रहे थे और दुख को धैर्य-पूर्वक सहन कर रहे थे। मेरे पास यह जानने का कोई साधन न था कि मेरे परिवार की रक्षा के अतिरिक्त, मेरी सफाई में अपनी अनुभवी लेखनी का उपयोग भी कर रहे थे। अपने प्रबल लेखों द्वारा उन्होंने मेरे विरोधियों तथा अहितकारियों को खूब आड़े हाथों लेकर लज्जित किया था। मुझे यह जानकर लज्जा हुई कि एक भारतीय डिप्टी कमिश्नर ने ब्रिटिश मैजिस्ट्रेट के रूप में अपना कर्तव्य पालन करते हुए इस बूढ़े (पिताजी) की गतिविधि जानने के लिए नियमित तथा सर्वथा अनुपयुक्तरूप से गुप्तचर नियत कर दिए थे, मानो मेरे राजनैतिक विचारों तथा कार्यों का उत्तरदायित्व उन पर था। परन्तु वह वृद्ध किंचिन्मात्र भी विचलित न हुए और उन्हें मेरी निर्दोषता पर पूर्ण विश्वास रहा। अपने उस पुत्र की अनुपस्थिति पर शोक की पराकाष्ठा में भी वह न घबराए जिसके हृदय में उनके प्रति अगाध स्नेह तथा आदर था।

अध्याय अट्ठाईस

लालाजी के आवेदनपत्र

बिना मुकदमा चले अथवा किसी न्यायालय द्वारा दण्डित हुए अनिश्चित काल के लिए बन्दी हुए, लाजपतराय को माण्डले गए अभी कुछ ही सप्ताह व्यतीत हुए थे कि उनको ज्ञात हुआ कि पार्लियामेन्ट में एक प्रश्न द्वारा भारत मंत्री से पूछा गया है कि क्या लाजपतराय ने अपने निर्वासन के विरुद्ध कोई विरोध पत्र दिया है? यदि हां, तो उनके विरोध पत्र का सार क्या है? इस समाचार से वह सोचने लगे "संभवत: ब्रिटिश धारा सभा वाले मेरे मित्र यह जानना चाहते हैं कि मुझ पर बिना मुकदमा चलाए मुझे निर्वासन करने की सरकार की अन्यायपूर्ण कार्यवाही के विषय में मुझे क्या क्या कहना है।" उस समय तक उन्होंने अपनी मुक्ति के लिए किसी प्रकार का प्रार्थनापत्र भेजने का निश्चय नहीं किया था। धारासभा के इन प्रश्नों ने इसका निश्चय कर दिया। उन्होंने पहले ही सरकार को लिख दिया था कि "मेरी गिरफ्तारी तथा उसके कारण आदि के बारे में जरूरी कागजात की एक प्रतिलिपि मुझे दी जाय।" यथासमय उनको ७ मई १९०७ का जारी किया हुआ गिरफ्तारी का वारण्ट मिल गया।

इस पत्र में उनकी गिरफ्तारी का कोई कारण नहीं दिया गया था। उसमें केवल इतना ही अंकित था कि "श्रीमान् सम्राट के राज्य में गड़बड़ी को रोकने के लिए उनको गिरफ्तार किया गया है।" रेग्यूलेशन ३ की एक प्रति उनके पास पहले पहुंच चुकी थी, जो उन्होंने अपने घर से मंगवा ली थी। सुपरिन्टेन्डेन्ट को शंका थी कि इस प्रकार का संदिग्ध साहित्य उनके पास जाने की आज्ञा देनी चाहिए अथवा नहीं। उसने स्थानीय सरकार से परामर्श लेकर उसे उनके पास जाने दिया। उन्होंने २९ जून १९०७ को वायसराय तथा गवर्नर जनरल के नाम एक आवेदन लिख कर जेल के अध्यक्ष को सौंप दिया। तीन सप्ताह के बाद अध्यक्ष ने उसकी एक नकल ब्रह्मा सरकार के लिए उनसे मांगी। लाजपतराय के पास उसकी कोई प्रतिलिपि नहीं थी अत: उन्होंने अपनी स्मरण शक्ति से काम लेकर एक वैसी ही कापी तैयार कर दी। "मेरी निर्वासन की कहानी" में भी इसी को उद्धृत किया है। इस आवेदन पत्र में लाजपतराय ने अपने आपको सर्वथा निर्दोष बतलाया है और बलपूर्वक अधिकारियों

की इस बात का खण्डन किया है कि गिरफ्तारी के समय, उससे पूर्व अथवा उसके अनन्तर श्रीमान् भारत सम्राट के राज्य के किसी भी भाग में शांति भंग अथवा गड़बड़ी की सम्भावना अथवा सकारण आशंका या भय नहीं था। और फिर १८१८ के रेग्यूलेशन ३ का प्रयोग किसी प्रकार भी न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। उन्होंने यह भी लिखा कि वह सदा शान्तिप्रिय कार्यकर्ता रहे हैं और अपने समय का अधिकांश भाग अपने देशवासियों में शिक्षा के प्रचार में, अनाथों, आर्त विधवाओं तथा अकाल पीड़ित जनता की सहायतार्थ धन संग्रह तथा दान वितरण आदि के संगठन कार्य में लगाते हैं। उदाहरणार्थ उन्होंने १९०५ के कांगड़ा की घाटी में भीषण भूकम्प से पीड़ित लोगों की सहायता के लिए काम किया है। तीन वर्ष उन्होंने म्युनिसिपल कमिश्नर के तौर पर कार्य किया है और लगभग २५ वर्ष से वकालत का कार्य कर रहे हैं। अपने २५ वर्ष के सार्वजनिक कार्य में उन पर श्रीमान् सम्राट के राज्य में गड़बड़ी अथवा अशान्ति पैदा करने का सन्देह तक नहीं किया गया। उन्होंने यह भी लिखा कि मैं बढ़े हुए जिगर तथा आमाशय की व्याधियों का रोगी हूँ। अन्त में आपने लिखा कि यदि मेरी तात्कालिक मुक्ति की आज्ञा जारी करना सम्भव न हो, तो मुझे वह कारण तो अवश्य ही बतलाये जायँ जिनके आधार पर मेरे विरुद्ध यह कार्यवाही की गयी है और इसके अतिरिक्त कृपया मेरा यह प्रार्थनापत्र श्रीमान् भारत सम्राट तक पहुंचा दें। जब तक इसका उत्तर नहीं आता, मुझे कतिपय सुभीते प्रदान किए जायँ। मुझे आज्ञा दी जाय कि—

(१) मैं भारतीय तथा अंग्रेज़ी समाचारपत्र पढ़ सकूं। इन पत्रों के पढ़ने के अधिकार से वंचित होकर मैं अपने आपको अत्यन्त अकेला अनुभव करता हूँ।

(२) अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए अपने घर से एक नौकर मंगवा लूँ। अन्त में उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि मुझे यह बतलाया जाय कि मुझे कब तक बन्दी रूप में रक्खा जायगा।

६ अगस्त को सुपरिन्टेंडेन्ट ने उनको उनके प्रार्थनापत्र के बारे में भारत सरकार की आज्ञाएँ पढ़कर सुनायीं और कुछ दिन बाद उनको सरकार के निम्न-लिखित निर्णयों का एक कागज भी दिया—"भारत सरकार ने निर्णय किया है कि आप डफरन दुर्ग से बाहर टांगे पर भ्रमणार्थ नहीं जा सकते।

"पुलिस की चौकसी नहीं घटायी जा सकती (आज्ञा के शब्द अस्पष्ट हैं)।

"आपके विरुद्ध दोषारोपण के विषय में भारत सरकार की आज्ञा है कि पहले दिए हुए कारणों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं बतलाया जा सकता। स्थानीय सरकार द्वारा आप सम्राट को इस विषय में आवेदन भेजें।

"आपको अपने नौकर मंगाने तथा समाचारपत्रों के पढ़ने की आज्ञा नहीं दी जा सकती (पहले भी नहीं थी)।

"सरकार कुछ नहीं बतला सकती कि आपको कब तक बन्दी रखा जायगा।

"आपके सम्बन्धियों से भेंट के बारे में सरकार को कोई भारी आपत्ति नहीं है, परन्तु मुलाकातों की संख्या तथा मुलाकाती व्यक्तियों की संख्या परिमित होगी और यह केवल पंजाब सरकार की आज्ञा से होगी।"

उनके आवेदन तथा कुछ प्रार्थनाओं का यह सम्मिलित उत्तर था। लाजपतराय के पास वाली रेग्यूलेशन की प्रतिलिपि से जेल के अध्यक्ष को यह भी ज्ञात हुआ कि प्रथम जुलाई को अध्यक्ष के लिए बन्दी के विषय में भारत सरकार को एक रिपोर्ट भेजना अनिवार्य है। उसने लाजपतराय से पूछा कि क्या मैं आपके लिए कुछ सुभीतों की सिफारिश भी करूँ? उत्तर में लाजपतराय बोले कि "मुझे दुर्ग से बाहर टांगे पर भ्रमण करने की आज्ञा दी जाय, कुछ पुलिस चौकसी घटा दी जाय तथा मुझे मित्रों से भेंट करने की आज्ञा दी जाय।"

उन्होंने इस रियायत से कोई लाभ नहीं उठाया कि स्थानीय सरकार के द्वारा वह सम्राट को प्रार्थनापत्र भेज सकते हैं। उनको इस बात पर बड़ी हंसी आयी कि सरकार ने कुछ पारिभाषिक कारणों की शरण ली है और कहा है कि प्रार्थनापत्र सम्राट के पास नहीं भेजा जा सकता। कारण कि यह विधिपूर्वक हमें नहीं पहुँचा है। "मैंने तो इसे अत्यन्त व्यर्थ तथा हास्यास्पद बात समझा कि एक बन्दी के लिए यह कहा जाय कि उसने विधिवत् प्रार्थना पत्र नहीं भेजा, जिसे न तो वकील से, न किसी अन्य से परामर्श लेने की स्वतंत्रता है और जिसके लिये जेल का अध्यक्ष ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसे प्रार्थनापत्र दे सकता है। लाला जी यह तो जानते ही थे कि श्रीमान् सम्राट् वैधानिक राजा होने के कारण भारत सरकार की कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे। और फिर जिस कार्यवाही पर मि० ज.न मार्ले जैसे राजनीतिक सिद्धान्तों वाले नीतिज्ञ ने अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी हो।" फिर भी वह चाहते थे कि श्रीमान् सम्राट् को अपनी भारत सरकार की पाषाण हृदयता का परिचय तो हो कि उनके जैसे शिक्षित एवं सम्मानित व्यक्ति को राजबंदी होने की दशा में समाचारपत्र पढ़ने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। उन्हें यह भी सन्देह था कि भारत सरकार श्रीमान् सम्राट को उनके केस की वास्तविक घटनाओं के बारे में अन्धकार में रखना चाहती है, क्योंकि अभी तक उनके विरुद्ध वह साक्षी तथा प्रमाण की खोज में लगी हुई है। लाहौर तथा रावलपिण्डी के दंगों के मुकदमों के अभियुक्तों पर दबाव डाला जा रहा है (और किसी किसी को तंग भी किया जा

रहा है) कि उन दंगों में लाला जी को भी फंसाया जाय और भारत सरकार को आशा है कि उनके विरुद्ध कुछ न कुछ ठोस (प्रमाण) मिल जायँगे।

जेल का अध्यक्ष उन्हें बार बार याद दिलाता था कि वह सम्राट के नाम अपना प्रस्तावित आवेदन भेजना चाहते हैं या नहीं। लाला लाजपतराय जी कह दिया करते थे कि मैं इस पर विचार करूँगा। "क्योंकि मैं कुछ न कुछ इतिहास का ज्ञान रखता था, इसलिए मैं एकाधिपत्य वाले (अत्याचारी) शासकों से किसी प्रकार के न्याय अथवा समुचित व्यवहार प्राप्त कर सकने में सर्वथा हताश हो गया था और मैंने निश्चय कर लिया कि दासता के उस जीवन को धैर्यपूर्वक सहन किया जाय, जो उनकी कृपा का फल है। मैंने सोचा कि इतना ही काफी है कि मैंने अपना लिखित प्रतिवाद भेज दिया है और अपने विरुद्ध अभियोगों की सत्यता को अस्वीकार कर दिया है।" लाला जी के ही ये शब्द हैं।

फिर भी कुछ दिन पीछे अभागे आवेदन के विषय में उनको परेशान होना पड़ा। सुनिए, वह उस सम्बन्ध में क्या कहते हैं—"सितम्बर में, मैंने एक अंग्रेजी पत्रिका में जो मुझे अध्यक्ष ही दे गया था, पढ़ा कि मेरे विरुद्ध एक अभियोग यह था कि मैंने देसी सेनाओं की राजभक्ति में हस्तक्षेप करते हुए उनको बिगाड़ने का प्रयत्न किया है।" इस सर्वथा निराधार अभियोग को उन्होंने लज्जाजनक अपमान समझा और अपने आपको निर्दोष सिद्ध करना चाहा जैसा हम आगे चलकर देखेंगे कि उन्होंने अपनी रिहाई के पश्चात् कई समाचार पत्रों के विरुद्ध मानहानि के मुकदमे दायर किए। सम्भवतः वह मुकदमे दायर करने की बात उनके मन में रही होगी जब उन्होंने माण्डले से २२ सितम्बर को दूसरा मेमोरियल भेजा। यह प्रार्थनापत्र आदरणीय लन्दन स्थित भारत मंत्री के नाम था। इसमें भी उन्होंने अपने को निर्दोषी कहते हुए लिखा कि "मैंने किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं पैदा की। मैंने कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिसके कारण १८१८ का रेग्यूलेशन ३ मुझ पर लागू हो सके।" उन्होंने अपने इस प्रतिवाद की भी पुनरावृत्ति की कि "मुझे सर्वथा अन्धकार में रखा गया है कि मेरे विरुद्ध सरकार के क्या अभियोग हैं। मुझे समाचारपत्र भी पढ़ने को नहीं मिलते, अतः मेरे विरुद्ध भारत सरकार ने जो आरोप लगाये हैं और कल्पित कारण बतलाये हैं, मैं उनका खण्डन करने में भी असमर्थ हूँ। मैंने रावलपिंडी अथवा लाहौर के दंगों में कोई भाग नहीं लिया और न प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी को ऐसा करने की प्रेरणा की है। मैंने कोई विद्रोहात्मक भाषण नहीं दिए। मेरी गिरफ्तारी के समय तथा उससे तत्काल पूर्व सरकार के कतिपय कानूनों अथवा कार्यवाहियों के विषय में जो जनता को कष्ट पहुँचा रही थीं, अपने विचार प्रकट करते समय मैं सदैव कानून तथा विधान की सीमा के अन्दर ही रहा हूँ। मैंने

कभी भी उन शिकायतों को दूर करने के लिये हिंसात्मक तथा गैर कानूनी साधन उपयोग में लाने का समर्थन नहीं किया। मैंने न ऐसे लोगों से कोई सम्पर्क रखा जो, मेरे ज्ञान में, इस प्रकार के साधनों के पक्ष में हैं। मेरे विरुद्ध, यह सन्देह कि मैंने सम्राट की देसी सेनाओं को बिगाड़ने का प्रयत्न किया है, सर्वथा निराधार है, मुझे तो उनके साथ मिलने जुलने अथवा पत्र व्यवहार आदि का कभी कोई अवसर नहीं मिला।"

मेमोरियल में एक महत्वपूर्ण कानूनी तथा वैधानिक प्रश्न भी उठाया गया। वह यह कि "प्रार्थी" के पास ऐसा विचार रखने का कारण है कि जिस रेग्यूलेशन के अधीन उसे गिरफ्तार किया गया है वह समाप्त हो चुकी। ईस्ट इंडिया कम्पनी की एक अवैधानिक कार्यवाही है। वह चार्टर द्वारा कम्पनी को दिए गए अधिकारों की सीमा का उल्लंघन करती है और वह ब्रिटिश विधान तथा कानून के बाह्य रूप तथा उसके आन्तरिक उद्देश्य के सर्वथा विरुद्ध है। अतः यह सर्वथा गैरकानूनी (ultra vires) है। इसे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की स्वीकृति अथवा समर्थन कभी प्राप्त नहीं हुआ। उक्त रेग्यूलेशन की धारा किसी न्यायालय द्वारा किसी प्रकार का मुकदमा चलाए बिना ब्रिटिश प्रजा को स्वतंत्रता से वंचित करने का स्थायी अधिकार शासकों को प्रदान करती है, अतः वह स्वाभाविक न्याय के विचार तथा कानून से संचालित शासन के सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है।"

रेग्यूलेशन के गैर कानूनी होने का विचार उनको "लेजर एण्ड सोर्ड" नाम के ईस्ट इंडिया कम्पनी के इतिहास से प्राप्त हुआ था, जिसे आप कुछ दिन हुए पढ़ रहे थे। आगे चलकर भी कुछ विशेषज्ञ तथा योग्य वकीलों ने इस प्रश्न पर विवाद किया और इस सम्मति से सहमत हुए कि रेग्यूलेशन गैर कानूनी है।

समाचारपत्रों से वंचित किये जाने के कष्ट को वह सब से अधिक अनुभव किया करते थे। उनके बिना तो उनका काम बिलकुल नहीं चलता था। कुछ दिन बाद जब वह फिर जेल गए, (परन्तु राजबन्दी के रूप में नहीं) जेल के मूर्खतापूर्ण नियमों के अनुसार उनको समाचारपत्र पढ़ने की आज्ञा नहीं थी। वहां उनके लिये पत्रों का प्रबन्ध अनधिकृत रूप से कर लिया गया था। कभी कभी वह प्रबन्ध असफल भी हो जाता था। ऐसे अवसर पर उनको जेल जीवन की कड़ी से कड़ी घटना से भी इतनी परेशानी तथा क्लेश नहीं होता था जितना कि अखबारों के न मिलने से। उन्होंने पहले मेमोरियल की तरह दूसरे मेमोरियल में भी वही अखबारों से वंचित रहने की शिकायत की। "प्रार्थी सादर बतलाना चाहता है कि रेग्यूलेशन में वर्णित "व्यक्तिगत प्रतिबन्ध" का वही उद्देश्य है जो उसकी भूमिका में बतलाया गया है अर्थात् बिना मुकदमा चलाए एक व्यक्ति पर बन्धन लगाना, न कि उसे दण्ड देना। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाय, तो भारत सरकार का अखबारों की आज्ञा न देना

तथा प्रार्थी को अपने निजी नौकर अथवा अपने देश के रसोइए रखने की आज्ञा न देना कदापि उचित तथा आवश्यक नहीं ठहराए जा सकते। प्रार्थी को अपने मित्रों से भेंट करने की आज्ञा पर यह प्रतिबन्ध लगाना भी कि केवल वही व्यक्ति बन्दी से मुलाकात कर सकते हैं जिन्हें पंजाब सरकार की ओर से आज्ञा प्राप्त हो चुकी हो और वह भेंट एक अधिकारी की उपस्थिति में समीप बैठ कर होगी, किसी प्रकार न्यायोचित नहीं है।

"उपरोक्त प्रतिबन्ध उस प्रथा तथा परिपाटी के प्रतिकूल है जिसके अधीन इंग्लैण्ड में राजनैतिक बन्दियों अथवा मुकदमा चलाए बिना पार्लियामेन्ट के विशेष कानूनों द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के प्रति व्यवहार किया जाता है।

"अन्त में प्रार्थी को पूर्ण आशा है कि उसके साथ न्याय तथा सद्व्यवहार किया जायगा। अंग्रेज़ जाति तथा उसकी सरकार की न्यायप्रियता जगद्विख्यात है।" उन दिनों भारतीय राजनैतिक नेताओं का उक्त मंत्र में अधिक विश्वास था। यदि समस्त मेमोरियल को आदि से अन्त तक पढ़ा जाय, तो वह दया की प्रार्थना नहीं कहला सकता। लेखक ने अपने कानूनी अधिकारों को ही आधार बनाया है। यह एक रोष एवं अमर्षपूर्ण विरोध तथा ललकार है। कोई आर्त पुकार नहीं!!

इस दूसरे मेमोरियल का उनको कोई उत्तर नहीं दिया गया। उनकी मुक्ति को, जिसके विषय में भारत मंत्री मार्ले तथा भारतीय गवर्नर जनरल मिण्टो में तथा मिण्टो और पंजाब सरकार में लिखा पढ़ी हो रही थी, ही मेमोरियल का उत्तर कहा जा सकता है। कुछ भी हो, सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल ने इस बार उनको कोई निर्णय नहीं सुनाए और न उनके आधार पर उनके लिए कोई खरीता ही भेजा।

अध्याय उन्तीस

इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट में लाला लाजपतराय का प्रश्न

१९०५ में साधारण चुनाव के साथ ही उदारता की लहर ने भारतवर्ष में नवीन आशा का संचार कर दिया। भारत के सभी राजनीतिज्ञ जानते थे कि अच्छी सरकार स्वराज्य की स्थानापन्न नहीं हो सकती। यह जादू भरा वाक्य सर हैनरी कैम्बल बैनरमैन के ही मुख से निकले थे। १९०५ में शायद उक्त महावाक्य से अधिक छीछालेदर तथा दुर्गति किसी भी वस्तु की नहीं हो रही थी। कुछ ही दिन पूर्व जार की एक राजाज्ञा से इसमें जब वैधानिक शासन के संक्षिप्त प्रयोग का अन्त कर दिया गया, तो कैम्बल मैनरमन ने ही सरे बाजार यह कहने का साहस दिखलाया—"ड्यूमा मर गयी, ड्यूमा चिरजीवी रहे"। अब वही कैम्बल बैनरमैन शासन की बागडोर सम्भालने वाले थे। भारतीय राजनैतिक नेताओं ने उन्हें बधाई के तार भेजे और जब वह प्रधान मंत्री बने तो उनसे अनुरोध किया गया कि भारत मंत्री का पद जान मार्ले को दिया जाय। ब्रिटिश उदार दल में कैम्बल बैनरमैन के बाद यदि कोई ऐसा व्यक्ति था जो भारतीय नेताओं की आशाओं का केन्द्र तथा विश्वास का पात्र हो सकता था तो वह "ईमानदार जान" ही था। जान मार्ले वास्तव में उदार सिद्धान्तों का आचार्य था। अन्य शक्तिशाली लोग केवल राजनीतिज्ञ थे, उनमें से विचारक तथा उदारता के सिद्धान्तों का आचार्य कोई नहीं था। उदार दल वालों में जो अधिक अग्रगामी प्रतीत होते थे वह भी व्यापारिक बुद्धि प्रधान थे। कोरे आदर्शवादी थे। व्यावहारिक व्यक्ति के उत्तरदायित्व के भाव का उनमें सर्वथा अभाव था। मार्ले के सिद्धान्तों की परीक्षा आयर्लैण्ड में हो चुकी थी और सिद्ध हो गया था कि ग्लैडस्टोन का जीवनी लेखक उस उदार नीतिज्ञ के उत्तराधिकारी होने के सब प्रकार से योग्य है।

मार्ले को भारत मंत्री बनाने के बारे में जो समुद्री तार भारत से भेजे गए, उनमें से एक इंडियन एसोसिएशन की पंजाब शाखा के प्रधान लाजपतराय की ओर से था।

उनको स्वप्न में भी यह विचार नहीं आ सकता था कि १८ मास से भी कम अवधि के अन्दर मार्ले के वह "उदार" सिद्धान्त एक ओर धरे रह जायेंगे और उस

परिवर्तन का प्रथम शिकार वह स्वयं होंगे। परन्तु मार्ले को पार्लियामेण्ट में अपने इस असाधारण कार्यवाही का समर्थन करने तथा उसकी सफाई देने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अभी लाजपतराय को गुप्त रूप से किसी अनिश्चित स्थान की ओर ले जाया ही जा रहा था कि प्रश्नों के घंटे में डाक्टर वी० एच० रदरफोर्ड ने (जिनसे बढ़कर कई वर्षों तक भारतवर्ष को हितैषी तथा मित्र कम ही प्राप्त होंगे) प्रथम गोला फेंक दिया। उनके पीछे मि० ओग्रेडी तथा आयरिश नेता मि० विलियम रेडमाण्ड ने अतिरिक्त प्रश्नों की बौछार लगा दी। मार्ले के पास बतलाने की सामग्री तो थी नहीं, हां वह भीषण उपद्रवों तथा "महान् शरारत" के विषय में भयोत्पादक तथा गम्भीर ध्वनि में घंटों विवाद कर सकता था।

१३ मई।

डा० रदरफोर्ड (मिडलसैक्स ब्रैण्टफोर्ड) "मैं भारतमंत्री से पूछना चाहता हूं कि यत: भारतीय एक्ट भारत के वायसराय को सम्राट् की किसी प्रजा को गिरफ्तार करने, उसे एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भेज देने, उसे कैद करने, उस पर मुकदमा चलाए बिना उसे आजीवन बन्दी रखने का अधिकार प्रदान करता है। अत: क्या वह बतलाएँगे कि किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के साथ वैसा व्यवहार किया गया है? यदि ह, तो ऐसे व्यक्ति संख्या में कितने हैं? क्या यह अब जेल में हैं और किस अवधि तक? तथा क्या वह बिना विलम्ब उक्त एक्ट को मंसूख करा देंगे?

मि० ओग्रेडी (लीड्स ई०) और मैं भी भारत मंत्री से पूछ सकता हूँ कि क्या पंजाब चीफ कोर्ट के वकील मि० लाजपतराय को लाहौर में गिरफ्तार कर के अन्य प्रान्त में निर्वासित कर दिया गया है? क्या यह गिरफ्तारी एक पुराने एक्ट के अधीन हुई है जो वायसराय को बिना मुकदमा चलाए बन्दियों को अनिश्चित काल तक नजरबन्द रखने का अधिकार देता है? क्या ब्रिटिश भारत के किसी जेल में इस समय कोई ऐसे भारतीय हैं जिन्हें कई वर्ष हुए बिना मुकदमा चलाए इसी एक्ट के अधीन रखा गया है? यदि हां, तो उनकी संख्या क्या है? और क्या उक्त एक्ट को निरस्त करने के लिये कोई पग उठाया जायगा?

भारत मंत्री मि० मार्ले (माण्टरोज़, बर्ग्स)

१८१८ का रेग्यूलेशन राजबन्दियों के नजरबन्दी के लिए है। उसकी प्रस्तावना में लिखा है कि राजकीय कारणों के आधार पर जिसमें अंग्रेजों की विदेशी शक्तियों के साथ मैत्री के सम्बन्धों की रक्षा देसी रियासतों में शान्ति रक्षा ब्रिटिश राज्य की आंतरिक गड़बड़ी तथा बाह्य शत्रुओं से रक्षा आदि भी सम्मिलित हैं, कभी कभी

यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ ऐसे व्यक्तियों को नज़रबन्द किया जा सके जिनके विरुद्ध अदालती कार्यवाही के लिये पर्याप्त सामग्री (कारण) न हों अथवा वह कार्यवाही उस केस के अनुकूल न हो, अथवा किसी कारण से वह कार्यवाही अनुचित हो। ऐसे लोगों के केस का विचार प्रति छः मास में भारत सरकार द्वारा होता है कि क्या नजरबन्दी समाप्त की जाय? इस समय ऐसे ३२ व्यक्ति हैं जिनमें अधिकांश राजनीतिक बन्दी हैं यथा कलात के भूतपूर्व खां, भूतपूर्व महाराजा भरतपुर, १८९१ के मनीपुर दंगों से सम्बद्ध व्यक्ति, तथा चितराल का भूतपूर्व मेहतर। ब्रिटिश प्रजाओं की संख्या कम है, वह अधिकांश मालाबार के मोपला हैं। दस व्यक्ति जेल में हैं। प्रस्तावना में वर्णित अन्तिम कारण अर्थात् आन्तरिक गड़बड़ी से ब्रिटिश राज्य की रक्षा के लिये रेग्यूलेशन की शरण बहुत ही कम ली जाती है। नजरबन्दी के हाल के केसों में बम्बई के नातू बन्धुओं का नाम लिया जा सकता है जिन्हें १८९७ में पूना में मि० रैण्ड तथा लेफ्टनेण्ट आयर्स्ट की हत्या के अनन्तर गिरफ्तार किया गया। मैं यह भी बतला दूं कि लाजपतराय को जहाँ उन्हें ले जाया जा रहा है एक दुर्ग में नजरबन्द किया जायगा और अगले निर्देशों तक उनके साथ राजबन्दी जैसा व्यवहार किया जायगा। दूसरों के साथ उनके पत्र व्यवहार करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जायगा कि वह दंगे फसादों का प्रोत्साहन न कर सकें। मुझे विश्वास है कि धारा सभा मुझे क्षमा करेगी यदि मैं उनको विश्वास दिलाऊं कि दंगों के दमन करने में भारतीय दल से बढ़कर और कोई दिलचस्पी नहीं लेता। यदि उन दंगों की आग फैलती गयी तो सुधार की वह समस्त आशाएँ मिट्टी में मिल जायेंगी जो कि भारतीय वायसराय तथा मैं लाना चाहते हैं। राज्य के कर्मचारियों में से किन्हीं अन्य दो व्यक्तियों ने एक दूसरे को उतनी अच्छी तरह नहीं समझा होगा जैसे वायसराय तथा मैंने एक दूसरे को समझा है। आकस्मिक आवश्यकता तथा जोखिम को सामने रखते हुए ही प्रबन्धकारिणी कार्यवाहियों के औचित्य को आंकना चाहिए। मुझसे बढ़कर इन बातों का कोई विरोधी नहीं (जैसा कि धारा सभा की रिपोर्ट साक्षी है)। अब कल्पना करो कि पंजाब के लेफ्टनेण्ट गवर्नर का विश्वास है—जिसने अपना जीवन तथा सम्पूर्ण सक्रिय सेवा काल पंजाब में ही बिताया है, कि इस प्रकार के आन्दोलन से शरारत फैलती है और वह शरारत काफी विस्तृत, गम्भीर तथा जबरदस्त ढंग की है, उस समय हमें क्या करना चाहिए? मेरा विश्वास है कि मेरे प्रतिष्ठित मित्र अच्छी तरह समझ जायेंगे कि उन शरारतों का अर्थ है। यह वह शरारतें नहीं जिनसे हम यहां अथवा साम्राज्य के किसी अन्य भाग में परिचित हैं। वह महान् तथा विशाल हैं, अतः हमें जब १८१८ की रेग्यूलेशन को मंसूख करने के लिए कहा जाता है, तो सम्राट की सरकार के प्रतिनिधि के रूप में

मैं तथा मेरे सहकारी इस बात पर तुले हुए हैं कि भारत सरकार को किसी भी ऐसे शस्त्र से वंचित न किया जाय जो इन भयंकर फसादों तथा गड़बड़ी के दमन के लिये कानून हमारे हाथ में देता है।

मि० ओग्रेडी ने पूछा—क्योंकि आन्दोलन का रूप शुद्ध राजनीतिक है, क्या भारत मंत्री महोदय यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि जिन सज्जनों को गिरफ्तार किया गया है, उनको सार्वजनिक न्यायालय के सन्मुख समुचित रूप से पेश होने का अवसर दिया जायगा ?

मि० मार्ले—मेरे मित्र के दृष्टिकोण से विचारने पर इस प्रकार का वचन देने का यह अर्थ होगा कि जो कुछ मैं अभी कह चुका हूं, वह वापस ले लूं। यह आकस्मिक आवश्यकता तथा गम्भीर जोखम वाला केस है, अतः हमारे लिए अथवा किसी सरकार के लिये अपने किसी अस्त्र को त्यागना असम्भव होगा।

अन्य सदस्यों ने जिनमें सर हेनरी काटन भी थे—अधिक प्रश्न किए, परन्तु मार्ले ने उनको यह कहकर टाल दिया कि उनके लिए पर्याप्त नोटिस चाहिए और अन्त में वचन दिया कि इंडिया बजट पेश करते समय एक पूर्ण बयान दिया जायगा।

दूसरे दिन मि० ओग्रेडी ने फिर प्रश्न किया कि क्या लाजपतराय का केस किसी न्यायालय में पेश होगा ? तो मार्ले ने उसे उत्तर दिया कि गत दिवस के मेरे बयान को देखिए।

दो सप्ताह पश्चात् धारा सभा में मार्ले पर प्रश्नों की एक अन्य झड़ी लगा दी गयी।

डा० रदरफोर्ड—मैं भारत मंत्री से पूछना चाहता हूँ कि चूंकि लाला लाजपतराय पर मुकदमा चलाए बिना उन्हें गिरफ्तार तथा निर्वासित करना ऐसी बातें हैं जिनसे भारत में सम्राट की प्रजाओं में क्रोध भड़क उठा है, क्या आप उनको मुक्त न कर देंगे अथवा उन पर मुकदमा न चलाएँगे, जिससे ब्रिटिश न्याय के प्रति आदर तथा शान्ति और व्यवस्था की पुनः स्थापना में सहायता हो सके।

मि० मार्ले—मुझे ज्ञान है कि सम्राट की भारतीय प्रजा के कुछ भाग ने उस स्थिति से उत्पन्न बातों को नापसन्द किया है और कुछ ने पसन्द किया है, मैं प्रतिष्ठित सदस्य से इस बात में सहमत कदापि नहीं हो सकता कि बन्दी की मुक्ति अथवा उस पर मुकदमा चलाने से किसी प्रकार शान्ति तथा व्यवस्था कायम होने में सहायता मिलेगी।

डा० रदरफोर्ड ने पूछा—क्या भारत मंत्री धारासभा को यह बतलाएंगे कि इस सज्जन को किस अभियोग के आधार पर गिरफ्तार किया गया है और बिना मुकदमा चलाए उसे निर्वासित किया गया है ?

मि० मार्ले ने उत्तर दिया कि १८१८ के रेग्यूलेशन के अधीन अभियोग पेश करने अथवा उसे पुष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं।

डा० रदरफोर्ड ने पूछा कि क्या भारतमंत्री के पास कोई ऐसी साक्षी है जिसके द्वारा भारत सरकार द्वारा ऐसी गम्भीर कार्यवाही उचित ठहरायी जा सके ?

मि० मार्ले बोले कि मेरी रत्ती भर भी इच्छा नहीं कि इन प्रश्नों में से किसी को भी टाला जाय, परन्तु यदि मेरे मित्र एक सप्ताह भर धैर्य से काम लें तो मैं सारी बात की पूरी पूरी तथा सन्तोषजनक व्याख्या सभा के सन्मुख कर दूँगा।

मि० ओग्रेडी ने कहा—मैं भारतमंत्री से एक सीधा सादा प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या यह सत्य नहीं कि इस सज्जन को एक सभा में भाषण के परिणामस्वरूप गिरफ्तार किया गया है। यह भाषण भूमि कर तथा सिंचाई कर की वृद्धि के विरुद्ध था। क्या आप उसे राजद्रोह समझते हैं ? क्या वह भी १८१८ के रेग्यूलेशन की सीमा में आता है ?

मि० मार्ले—मेरे मित्र उसे सीधा सादा प्रश्न समझते हैं, इसका उत्तर देने के लिए मुझे जिन पेचीदगियों में उलझना पड़ेगा, उसके लिए कम से कम आध घण्टा चाहिए।

मि० ली (सेण्ट पेंक्रास, ई०)ने पूछा कि ब्रिटिश साम्राज्य में कोई अन्य ऐसा स्थान भी है जहाँ यह असाधारण कानून प्रचलित हो जैसा कि भारत में है ?

(कोई उत्तर नहीं दिया गया)

मि० मार्ले भली भाँति समझते थे कि मैं कैसी परस्पर विरोधी बातों की भूल भुलैय्या में फंस गया हूं। उन दिनों मिण्टो के नाम खरीतों से उनकी आंतरिक घबराहट की सुन्दर झांकी मिलती है।

(मार्ले की अन्तरात्मा)—उसका पहला रूप उसके प्रस्तुत दमनकारी हाथ न थाम सका। और प्रस्तुत दमनकारी मार्ले ने अपने पहले रूप का स्पष्ट उपयोग करते हुए संसार को यह दिखलाना चाहा कि वह दमन नहीं, प्रत्युत कुछ और है। मार्ले का विरोध तो इससे भी अधिक होता यदि उसकी ख्याति दमन-विरोधी के रूप में न होती। १६ मई को मिण्टो के नाम पत्र लिखते हुए वह धारासभा के सामने निर्वासनों को न्यायोचित ठहराने के विषय में काफी परेशान है:—

"मुझे भारी चिन्ता हो रही है कि ३० तारीख को धारासभा में कहानी का कितना अंश पेश करूं : मुझे यहां समस्त परिस्थिति रखनी है। उग्रवादियों के लिए तो निर्वासन कड़वी दवा है। यदि आयर्लैण्ड में दमन विरोधी के रूप में मेरे निष्कलंक आचरण की ख्याति न होती, हमारे मित्र (धारासभा) में हमें निस्संदेह खूब आड़े हाथों लेते। जैसी स्थिति है, यदि मेरे भाषण के अनंतर मतगणना करायी गयी तो

आयरिशमैन, मजदूर दल का अधिकांश (यदि समस्त दल नहीं) तथा साधारण सदस्यों की खासी संख्या हमारे विरुद्ध होगी। इससे मेरी स्थिति खराब हो जायगी, क्योंकि यदि हमारे अपने दल की बहुसंख्या ही मेरे विरुद्ध हो गयी, तो मेरी समझ में नहीं आता कि मैं कैसे काम चला सकूंगा। समय आने पर देख लिया जायगा, अभी चिन्ता की कोई बात नहीं।"

फिर २४ मई तथा ७ जून को।

"आगामी बृहस्पति को धारासभा में भाषण की एक चौथाई तैयारी अभी मैं कर सका हूँ। उस स्नेहमय स्वागत का केवल एक नोट ही आपको भेज रहा हूँ। आप सुगमता से कल्पना कर सकते हैं कि वह कितना नाजुक मोका होगा। मुझे शब्दों का चुनाव बड़े ध्यान से करना होगा। मुझे केवल यही सन्तोष है कि मेरे तात्कालिक श्रोताओं से कोई भी किसी प्रकार अमित्र नहीं, यद्यपि हमारे उग्रवादी समर्थक उसकी आलोचना करेंगे तथा टोरी विरोधियों को इसमें परस्पर विरोधाभास की गन्ध आयेगी कि मैंने एक ओर तो लाजपतराय को निर्वासित कर दिया और दूसरी ओर जब विलियम ओब्रायन को बन्दी किया गया था तो मैंने बैलफोर से बुरी तरह लड़ाई की थी। मैं उन बातोंपर अपना समय नष्ट नहीं करूँगा। मैं तो सदैव यह कहता रहा हूँ कि क्रामवेल की अपेक्षा स्ट्रैफर्ड ही आयरलैण्ड का सफल शासक होता, परन्तु इस समय उक्त सिद्धान्त का प्रचार भी तो विचित्र तथा हास्यास्पद लगेगा।"

परन्तु घटना के अनन्तर—

"७ जून। कल अपराह्न को सब कुछ शान्तिपूर्वक हो गया। धारासभा की अग्नि परीक्षा में मैं सफल रहा। मैंने अत्यन्त कर्कश स्वर में धारावाही दीर्घ भाषण दे डाला! इसमें मैंने दृढ़ता के सिद्धान्त का प्रचार करते हुए बिलकुल सच्ची सच्ची बातें सुना दीं। हमारे अधिकांश साथियों को भी चिन्ता थी और यदि वह भी आयरिशमैन तथा मजदूर दल वालों के साथ मिल जाते, तो हमारी दुर्गति होती। आयरलैण्ड वालों ने मुझे पहले ही बतला दिया था कि हमारी आपके साथ वर्षों की मित्रता के कारण हम तो वोट ही नहीं करेंगे। मजदूर दल वाले भी समझदार निकले। इस मामले पर तो वह प्रायः समझ से ही काम लिया करते हैं। मेरे भाषण से उग्र-पंथियों को भी सन्तोष हुआ। बेलफोर ने सज्जनतापूर्वक अपने आदमियों को कह रखा था कि आवश्यकता पड़ने पर मेरा समर्थन करें। यदि मतगणना होती, तो मेरा विचार है कि ३० व्यक्ति भी हमारे विपक्ष में न होते। काफी शानदार परिणाम है।"

उसको बेलफोर के इस एहसान से इतना आनन्द नहीं आया, जितना कि दुख उसको इस बात से हुआ कि कर्जन ने साम्राज्यवाद के मन्दिर में उसका स्वागत किया।

कर्जन की इस चोट से उसको गहरा दुख हुआ होगा, जब भूतपूर्व वायसराय (कर्जन) ने "उदार" भारत मंत्री को साम्राज्यवादी दल में बैठे देखा।

"कुछ दिन हुए कर्जन ने मेरे कुछ पुराने लेख खोज निकाले जिनमें मैंने वारन हेस्टिंग्ज़ को अत्याचारी, दुष्ट, अपराधी तथा अन्य विशेषणों द्वारा याद करते हुए उसकी घोर निन्दा की थी। मैंन वह शब्द बर्क के भाषणों से लिए थे। उस समय से लेकर आज तक बर्क का उच्च आदर्श ही मेरे सामने रहा। मैंने निर्वासन की अनुमति देकर बर्क के अनुकरण की युवावस्था की भूल का प्रायश्चित्त कर लिया है और कर्जन ने उदारता से मेरा स्वागत साम्राज्यवादो मन्दिर में किया है।" (यहीं मार्ले एक विद्वान का परामर्श तथा सुझाव उद्धृत करता है कि हमें भारतीय विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकों में से क्लाईव तथा हेस्टिंग्ज़ पर मेकाले के निबन्धों को निकाल बाहर करना चाहिए।

इन पत्रों में मार्ले का अत्यन्त ही विचित्र तथा मनोरंजक परस्पर-विरोधी रूप हमारे सामने आता है। आधा मार्ले तो दमन की स्वीकृति देता जाता है और दूसरा आधा प्रतिवाद करता रहता है। ७ जून को उसने इन शब्दों में प्रतिवाद किया:—

"मुझे क्षमा करना, यदि मैं एक दो पंक्तियां लिख दूं। कृपया आप अपने किसी भी छोटे अथवा बड़े अधिकारी को हमारी प्रतिष्ठित स्थिति को कलंकित न करने देना। यह भारी सम्भाव्य खतरा है जिसे आप दबा रखें। अब हमने (ज़ंग खायी हुई) पुरानी तलवार निर्वासन का ऐक्ट उठा ली है। अब तो डट कर इसी नीति को अपनाना होगा।"

अपनी आत्मा की फटकार पर वह बार बार अपनी तुलना पीटर्सबर्ग के ज़ारों, नवाबों तथा स्टैफर्ड से किया करता था (यह सभी घोर अत्याचारी शासक थे) परन्तु व्यवहार में आत्मा की आवाज की अवहेलना करते हुए उसका पथ प्रदर्शन जान मार्ले के जीवित अर्द्धभाग द्वारा होता था। वह प्रतिवाद तो करता था, परन्तु वह प्रतिवाद व्यर्थ होता था। उसको पूरा ज्ञान था कि यह प्रतिवाद निष्फल है, परन्तु फिर भी वह प्रोटेस्ट किए जाता था। १८ जुलाई को (पृष्ठ २२५)।

'मैं संदिग्ध पत्र व्यवहार को रोकने तथा खोलने के बारे में एक शब्द कह दूं। मुझे भारतवर्ष के अतिरिक्त इसका एक समीपस्थ देश (आयर्लैण्ड) का भी यही अनुभव हुआ है कि इस प्रकार की बातें नितान्त व्यर्थ हैं।' परन्तु फिर भी चिट्ठियाँ सेन्सर द्वारा खोली जाती रहीं।

फिर, जब मिण्टो ने छापाखानों के कानून की बात चलायी, तो मार्ले कांप

सा गया। परन्तु वह मान गया कि वह कार्यवाही भी "अच्छे अथवा बुरे कारणों से" अनिवार्य है।

धारा सभा में जिस पूर्ण बयान का उसने वचन दिया था, वह ईस्ट इंडिया बजट पेश करते हुए मार्ले ने ६ जून को दिया। ऐसे असाधारण कानून के लिए ठोस कारण तो फिर भी नहीं दिया गया। "अब मैं दंगों के विषय पर आता हूं। मुझे यह कहते हुए अत्यन्त दुख होता है कि पंजाब में फसादों की आग भड़क उठी है। प्रश्नों के उत्तरों से धारासभा के सदस्यों को साधारण स्थिति का ज्ञान तो हो चुका है। १८१८ के रेग्यूलेशन के अधीन (जो अभी तक जीवित है) दमनकारी कार्यवाही की गयी है। यहां मैं सार्वजनिक स्वार्थ रक्षा के प्रश्न की यथाशक्ति जाँच करूँगा। पंजाब की बेचैनी का वर्णन करते हुए आन्दोलन को उत्तेजित करनेवाली परिस्थिति के विषय में कुछ न कहना अनुचित होगा। देश में प्लेग महामारी का भीषण आक्रमण हुआ, फिर ऋतुएं अनुकूल न रहीं। एक अन्य कारण यह भी था कि एक कानून बनने वाला था जिसके बारे में यह समझा जाता था कि यह अधिकांश जनता के लिए हानिकर है। नई आबादियों के ऐक्ट की परिस्थितियों को बिगाड़ कर पेश किया गया। पंजाब कौंसिल के एक भारतीय सदस्य की सम्मति थी कि वह बिल बहुत अनुचित है, परन्तु जैसा कि मैं गत सप्ताह सभा को बतला चुका हूँ, वायसराय ने आन्दोलन के सन्मुख झुक जाने आदि मूर्खतापूर्ण बातों से न डरते हुए, उक्त आयोजना को स्वीकृति देने से इनकार कर दिया। परन्तु इतने में वह बिल राजद्रोह के प्रचारकों के हाथ में एक भारी अस्त्र बन चुका था। मुझे शंका है कि मेरे (ईस्ट नाटिंघम के सदस्य) प्रतिष्ठित मित्र सर हेनरी काटन अभी खड़े होकर बोल उठेंगे कि नई आबादियों के बिल से सम्बन्धित शरारत ही पंजाब के दंगों का कारण है, परन्तु मैं सभा को बतलाना चाहता हूँ कि यह बात कहां तक सत्य है। हम कहते हैं कि यह कारण नहीं है। पंजाब के प्रमुख आन्दोलनकारियों ने १ मार्च तथा १ मई के बीच में २८ सभाएं कीं, इनमें से केवल ५ सभाओं का सम्बन्ध ही कृषि सम्बन्धी शिकायतों से था, शेष २३ सभाएं शुद्ध राजनैतिक सभाएं थीं। लाला लाजपतराय ने इनमें से केवल दो सभाओं में भाग लिया—एक सभा नयी आबादी बिल के बारे में थी और दूसरी सभा राजनीतिक थी। अजित सिंह ने १३ सभाओं में भाग लिया जिनमें से ११ राजनीतिक तथा केवल दो कृषि सम्बन्धी सभाएं थीं। मुझे आशा है कि जो लोग कहते हैं कि यह कृषि सम्बन्धी आन्दोलन था, न कि राजनैतिक आन्दोलन, वह देखेंगे कि वास्तविक घटनाएँ क्या कहती हैं। आंकड़े तो यह सिद्ध नहीं करते कि पंजाब में फसादों के कारणों का आधार कृषि सम्बन्धी प्रश्न थे। इसके विपरीत, प्रतीत यह होता है कि २१ अप्रैल को रावलपिण्डी में कृषि सम्बन्धी सभा की तैयारी

के रूप में राजनीतिक वातावरण गर्म कर दिया गया था जिससे गड़बड़ी पैदा हो गयी। लेफ्टेनेण्ट गवर्नर २९ में से २७ जिलों में स्वयं हो आया।"

सर हेनरी काटन—वह कब गया ?

मि० मार्ले—मेरे पास तिथि नहीं है। यह मार्च अथवा अप्रैल में था। लेफ्टनेण्ट गवर्नर कहता था कि स्थिति गम्भीर है और अधिकाधिक बिगड़ रही है। जैसी भाषा का प्रयोग अजित सिंह ने किया था, मैं उसे धारासभा में प्रकाशित नहीं करूँगा, क्योंकि फिर वह निर्भीक रूप से उद्धृत करके समस्त भारत में उसका प्रचार किया जा सकता है। मैं इस प्रकार की शरारत भरी उत्तेजनाओं के प्रसार का साधन नहीं बनना चाहता। लेफ्टनेण्ट गवर्नर ने घोषणा की कि स्थिति भीषण है और इसे रोकना चाहिए। सर डैनज़िल इब्बटसन लाला लाजपतराय को एक जोशीला क्रान्तिकारी समझते हैं जिनके मन में अपने राजनीतिक सिद्धान्तों के कारण ब्रिटिश सरकार के प्रति अत्यन्त तीव्र घृणा उत्पन्न हो गयी है। परन्तु उनका निजी आचरण निष्कलंक है। सर डैनज़िल यह भी कहते हैं कि समस्त आन्दोलन में उनकी (लाजपत-राय की) यही कोशिश रही है कि यथासम्भव वह स्वयं सामने न आएँ। हालांकि गत कई मास से नियमपूर्वक प्रोपेगैण्डा का प्रोत्साहन उन्हीं के द्वारा होता रहा है। इस आन्दोलन में, जैसा कि सदस्यों को ज्ञात है, कहा जाता है कि सिक्खों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है क्योंकि वही सिक्ख भारत के सर्वोत्तम सैनिक हैं और लायलपुर की अवस्था में सैनिक पेनशन पाने वालों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इस बात का विशेष प्रयत्न किया जाता है कि सभाओं में वह भारी संख्या में उपस्थित हों, उनकी सहानुभूति प्राप्त की जाय तथा उनके भावों को भड़काया जाय। अभी तक तो सक्रिय आन्दोलन केवल उन्हीं जिलों तक परिमित है, जहां सिक्ख अधिक हैं। सिक्खों के ग्रामों में छपे हुए निमंत्रण तथा पुस्तिकाएं भेजी जाती हैं और फिरोजपुर में होने वाली एक सभा में, जहां राजद्रोह का खुला प्रचार किया गया, वहां की सिक्ख पलटन के सिपाहियों को विशेष निमंत्रित किया गया और मुझे आश्चर्य से स्वीकार करना पड़ता है कि कई सौ सैनिक वहाँ जा पहुँचे। सिक्खों को बतलाया गया कि यह तुम्हारी ही सहायता है तथा १८५७ के विद्रोह में अपने देशवासियों पर गोलियां चलाने की तुम्हारी स्वीकृति ही है जिसके कारण अंग्रेज़ भारत पर अपना अधिकार जमाए हुए हैं। फिर एक विशेष घृणित तर्क का आश्रय लिया गया। यह पूछा गया "क्या कारण है कि महामारी भारतवासियों पर आक्रमण करती है और यूरोपियनों पर नहीं ?" सरकार के पास महामारी फैलाने के रहस्यमय साधन हैं। सरकार नदियों तथा कूपों में विष डाल कर प्लेग फैलाती है। कुछ ज़िलों में तो वहां के निवासियों ने सचमुच ही कुओं का प्रयोग बन्द कर दिया है। एक

अधिकारी ने, जो उन दिनों पंजाब में था, मुझे सूचित किया है कि मैंने देखा कि नयी आबादियों में जनता में इस बारे में बड़ी घबराहट फैली हुई है। मैंने अपने आदमियों से कहा कि अपना सामान खोल कर इन लोगों को दिखला दो कि सचमुच उसमें वह भयंकर गोलियां हैं अथवा नहीं। आदमियों ने आज्ञा पालन किया, परन्तु जनता की आशंका इतनी प्रबल थी कि उन्होंने हमारी दूरबीनों के शीशों के पेंच भी खुलवाने का अनुरोध किया जिससे उनको पूर्ण निश्चय हो जाय कि उनके पीछे किसी प्रकार की गोलियां छिपी हुई नहीं हैं। परन्तु, मुझसे पूछा जा सकता है "ऐसे लोगों पर मुकदमे क्यों नहीं चलाते ?" मेरे विचार में सर डैनज़िल इब्बटसन ने इसका एक अच्छा कारण बतलाया है और मैं उसे पूर्णतया पसन्द करता हूँ। उन्होंने अपने अनुभव से पता लगाया है कि आपत्तिजनक बातों का मुकदमे के द्वारा खूब विज्ञापन होता है और इससे सहस्रों कानों तक वह बातें पहुँच जाती हैं, जिन्हें उसकी कानों कान भी खबर नहीं हो सकती थी। जिन पर मुकदमा चलाया जाता है, उनकी ओर जनता का ध्यान खिंच जाता है और देश तथा जाति के कल्याण के लिए शहीद बन बैठते हैं। मूल अपराधी की अपेक्षा वकीलों के भाषण प्रायः अधिक हानिकर सिद्ध होते हैं। फिर जब सज़ाएं सुनायी जाती हैं तो न्यायालय में करुणोत्पादक दृश्य देखने में आते हैं। वही शहीद अपने दल के नेताओं के जाते समय के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अपना सिर झुका देते हैं। उनके गले में हार डाले जाते हैं जब वह जेल को ले जाने वाली गाड़ी पर सवार होते हैं। सड़कों पर उनके साथ लोगों की भीड़ रहती है जो योरुपियनों को गालियां देती है और बाजारों में से उनके शानदार जलूस निकाले जाते हैं। जरा जोखम तथा तात्कालिक आवश्यकता की ओर ध्यान दें। कल्पना कीजिए कि देसी सिपाहियों की केवल एक पल्टन इन बलवाइयों के साथ मिल गयी है। इससे तो खूब तेज आग भड़क सकती है, क्योंकि भारत में आकस्मिक घटनाओं के भी भीषण परिणाम हो सकते हैं। यह जानते हुए कि हमारे हाथ में एक असाधारण नहीं, प्रत्युत स्थायी कानून है और भड़कती हुई अग्नि का जोखम सामने है, क्या ऐसे अवसर पर उसका प्रयोग न करना हमारी बेहूदगी न होती। मुझे तो उसके प्रयोग के लिए किसी प्रकार की सफाई देने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। "राज्य के कारणों" के आधार पर मुझसे अधिक इस शरारत, भयावह स्थिति तथा पाप को कोई नहीं समझ सकता। मैं उसके बारे में सब कुछ जानता हूँ। "राज्य कारण" शरारत तथा भय से पूर्ण हैं, परन्तु राजद्रोह भी तो वैसी वस्तु है और मैं भारी अपराध का उत्तरदायी होता, यदि मैं इस कानून की शरण लेने का विरोध करता।

पूरा बयान वस्तुतः इतना कमजोर तथा बोदा था कि मार्ले को शीघ्र ही

आलोचकों का सामना करना पड़ा। ११ जून को प्रश्नों के घंटे में मि० ओग्रेडी ने फिर पूछा—

मि० ओग्रेडी—मैं भारतमंत्री से पूछना चाहता हूँ कि क्या उन्हें ज्ञात है कि जिस आन्दोलन में लाला लाजपतराय लगे हुए थे, वह रूप में उस आन्दोलन से सर्वथा भिन्न था जिसको अजितसिंह ने अपनी सेवाएं अर्पित कर रखी थीं ? क्या आपका ध्यान उस लेख की ओर है जिसे लाला लाजपतराय ने अपनी गिरफ्तारी से दो घण्टे पूर्व लिखा था जिसमें वह कारण दिए गए थे जिनके आधार पर आन्दोलन चल रहा था ? क्या जिन सभाओं में लाजपतराय के भाषण हुए वहाँ उनकी रिपोर्ट लेने के लिए कोई शार्टहैण्ड रिपोर्टर उपस्थित था ? और किस निश्चित अथवा अनिश्चित साक्षी के आधार पर उनकी गिरफ्तारी तथा निर्वासन की आज्ञा जारी की गयी ?

मि० मार्ले—प्रथम तथा तृतीय प्रश्नों का उत्तर नकार में है। दूसरे का उत्तर "हाँ" और चौथे प्रश्न के उत्तर के लिए मेरे मित्र मेरा, धारासभा में गत बृहस्पति वाला, बयान देखें।

सर हेनरी काटन—क्या प्रतिष्ठित भारतमंत्री के पास अपने गत बृहस्पति वाले बयान के समर्थनार्थ कोई ऐसी सामग्री भी है जिससे यह ज्ञात हो कि लाला लाजपतराय के भाषणों में राजद्रोह का प्राबल्य था, और इस सभा में भी उसे प्रकाशित किया गया ?

मि० मार्ले—उचित समर्थन के बिना मैं इस सभा में कोई बयान नहीं दे सकता।

सर हेनरी काटन—क्या आप इस केस की समस्त बातें सभा की मेज़ पर धरने की कृपा करेंगे ?

मि० मार्ले—मेरे विचार में सरकार तथा कानून और व्यवस्था की दृष्टि से इस सुझाव से अधिक अनुचित कार्य कोई और नहीं हो सकता।

उसी दिन फ्रेडरिक मेकारनेस भी दृढ़ बनकर अनुरोधी प्रश्नकर्ताओं की मण्डली में सम्मिलित हो गए।

मि० मेकारनेस (बर्कशायर, न्यूबरी)—मैं भारतमंत्री से पूछना चाहता हूँ कि क्या भारत सरकार का यह विचार है कि किसी समय लाला लाजपतराय तथा अजितसिंह के विरुद्ध निश्चित अभियोग लगाए और उन्हें किसी न्यायालय के सामने अपनी सफाई पेश करने का अवसर दे ? यदि नहीं, तो उनको बन्धन तथा निर्वासन में किस अवधि तक रखने का विचार है ?

मि० मार्ले—प्रश्न में उठायी गयी बातों के बारे में भारत सरकार की इच्छा के विषय में मैं अभी किसी प्रकार का बयान देने में असमर्थ हूँ।

मि० मेकारनेस—क्या आप बतला सकते हैं कि आप कब तक कोई बयान देने की स्थिति में होंगे?

मि० मार्ले—नहीं, मैं कुछ नहीं कह सकता।

मि० मेकारनेस—मैं भारतमंत्री से पूछना चाहता हूँ कि क्या इंडियन कोड आफ क्रिमिनल प्रोसीजर की धारा ५२७ के अनुसार गवर्नर-जनरल इन कौंसिल को यह अधिकार है कि किसी विशेष अपराध के केस को एक हाईकोर्ट से दूसरे हाईकोर्ट में बदल दे? यदि हाँ, तो क्या भारत सरकार के लिए सम्भव है कि उक्त धारा का उपयोग करते हुए लाला लाजपतराय तथा अजितसिंह पर (सार्वजनिक कानून तथा व्यवस्था को किसी प्रकार की हानि के बिना) उनके अपराधों के कारण मुकदमा चलाए?

मि० मार्ले—उक्त धारा प्रश्न में उठाए गए बदली का अधिकार प्रदान करती है। मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि लाला लाजपतराय तथा अजितसिंह पर मुकदमा चलाना क्यों उचित नहीं समझा गया। मेरे विचार में यदि भारत के किसी अन्य भाग में भी मुकदमा चलाया जाय तो वही कारण कम वैध न होंगे।

लगभग प्रतिदिन प्रश्नों के घंटे में, मार्ले की परेशानी के लिए "लाजपतराय" का भूत खड़ा हो जाता था। उसके उत्तरों तथा टालमटोल से स्पष्ट प्रतीत होता था कि वह प्रश्न उसके लिए एक शामत सिद्ध हो रहे हैं।

सर हेनरी काटन—मैं भारत मंत्री से पूछना चाहता हूँ कि इस बात का कोई उद्गम स्थान है जिससे लाला लाजपतराय का सम्बन्ध सरकार की ओर से नदियों तथा कुओं में विष मिलाने के कथित अभियोग से स्थापित किया जा सके?

मि० मार्ले—मुझे ऐसी कोई बात ज्ञात नहीं है और न ही, जहां तक मैं जानता हूँ, यह बयान दिया गया है कि कथित बातों से लाला लाजपतराय का किसी प्रकार सम्बन्ध है।

मि० स्विफ्ट मैन्कील (क्लेयर, ई०)—क्या भारतमंत्री सभा को उन व्यक्तियों की एक पूर्ण सूची नहीं दे सकते जिन्हें इस प्रकार गिरफ्तार किया गया है, और जिन्हें निर्वासित किया गया है और उनके साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया जा रहा है। क्या उनके साथ प्रथम श्रेणी के अपराधियों सा व्यवहार किया जा रहा है?

मि० मार्ले—आप देखेंगे कि इस प्रकार के लम्बे तथा पेचीदे प्रश्न के लिए पूर्व सूचना की आवश्यकता है।

मि० विलियम रेडमाण्ड ने कहा कि कुछ दिन हुए मैंने यही प्रश्न किया था।

मि० मार्ले—मेरी समझ में नहीं आया कि यह प्रश्न पत्र में दिए गए प्रश्न में से किस प्रकार उत्पन्न होता है, अतः मैं आदरपूर्वक इसके उत्तर देने से इन्कार करता हूँ।

मि० विलियम रेडमाण्ड ने पूछा कि भारत मंत्री बतला सकते हैं कि इन सज्जनों के साथ राजनैतिक कैदियों जैसा व्यवहार हुआ या नहीं ?

मि० लपटन ने पूछा कि क्या हम यह समझें कि लाला लाजपतराय ने कोई राजद्रोहात्मक भाषण नहीं दिए और न ही उन्होंने यह प्रचार किया कि सरकार ने कुओं में विष मिला दिया है ?

मि० मार्ले—मैंने इन बातों के बारे में अपना मत प्रकट कर दिया है। मेरा इन प्रश्नों से कोई झगड़ा नहीं, परन्तु वह पत्र में दिए प्रश्नों में से उत्पन्न नहीं होते।

हमने पिछले अध्याय में देखा है कि लाजपतराय का विचार था कि गवर्नर जनरल के नाम एक मेमोरियल भेज कर अपना केस पेश करें, क्योंकि उन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में मित्र यह जानने को उत्सुक हैं कि वह स्वयं क्या कहना चाहते हैं। १८ जून को मि० फ्रेडरिक मेकारनेस ने पूछा था कि क्या लाजपतराय ने कोई (निर्वासन के विरुद्ध) प्रतिवाद किया है, और मार्ले ने कहा था, जहां तक मुझे ज्ञात है इसका उत्तर नकार में है। शीघ्र ही एक मेमोरियल द्वारा विधिपूर्वक प्रतिवाद किया गया, परन्तु धारासभा में उसके विषय में कुछ भी नहीं कहा गया। १६ जुलाई को फ्रेडरिक मेकारनेस से प्रश्न उठाया।

मि० मेकारनेस—मैं भारतमंत्री से पूछना चाहता हूँ कि क्योंकि १८१८ की भारतीय आर्डिनेन्स के अधीन राजबन्दियों को अपनी सफाई का कोई अवसर नहीं मिलता, सिवाय आर्डिनेन्स की उस धारा के अनुसार जो उन्हें सदा यह अधिकार प्रदान करती है कि वह अपने निर्वासन तथा बन्धन आदि के बारे में जो बातें गवर्नर-जनरल की नोटिस में लाना चाहें, ला सकते हैं, इसलिए वह कृपया लाला लाजपतराय तथा अजितसिंह को उनके इन अधिकारों की सूचना देने का कोई पग उठाएंगे और यह मालूम करेंगे कि उनमें से कोई अपनी सफाई पेश करने अथवा उनके विरुद्ध कथित अभियोगों की शिकायत करने का इच्छुक है ?

मि० मार्ले—लाजपतराय तथा अजितसिंह को पहले ही इस अधिकार के बारे में सूचित कर दिया गया है कि वह गवर्नर-जनरल इन कौंसिल के साथ पत्र व्यवहार कर सकते हैं। लाजपतराय ने पत्र व्यवहार किया है, अजितसिंह ने नहीं।

मि० मेकारनेस ने पूछा कि क्या लाजपतराय की सफाई सभा में पेश की जायगी ?

मि० मार्ले ने नकार में उत्तर दिया।

मि० मेकारनेस—मैं भारतमंत्री से प्रार्थना करता हूँ कि कृपाकर वह बतावें कि क्या वह इस स्थिति में हैं कि राज्य को किसी प्रकार भय में डाले बिना सभा को लाला लाजपतराय की सफाई के रूप की सूचना दे सकते हैं जो उन्होंने १८१८ के आर्डिनेन्स के अधीन भारत सरकार को भेजी है ?

मि० मार्ले—जैसा कि मेरे आदरणीय मित्र जानते हैं १८१८ के रेग्यूलेशन में निश्चित अभियोग का प्रश्न नहीं उठता, परन्तु लाजपतराय को वारण्ट गिरफ्तारी की एक प्रतिलिपि दी गयी थी और उन्हें सूचित किया गया था कि उनकी गिरफ्तारी तथा निर्वासन का कारण श्रीमान् सम्राट के राज्य के एक अंश की आन्तरिक गड़बड़ी से रक्षा करना है। उन्होंने भारत सरकार के नाम एक मेमोरियल भेजा है और लिखा है कि मैंने कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे ऐसी गड़बड़ी उत्पन्न हो और प्रार्थना की है कि मेरा यह मेमोरियल सम्राट् तक पहुँचाया जाय। इसके लिए आवश्यक विधि भी उनको बतला दी गयी है।

मि० मेकारनेस ने पूछा—क्या वह मेमोरियल धारा सभा में पेश किया जायगा ?

मि० मार्ले—मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता जब तक कि उक्त मेमोरियल मेरे पास न पहुँच जाय।

फिर भी प्रश्नमाला जारी रही। उनके कुछ अन्य उत्तर नीचे दिए जाते हैं:—

मि० मार्ले—यह प्रश्न मेरी समझ में नहीं आया। पूछा गया है कि क्या मैं सभा को बतलाऊंगा कि किन कारणों से गिरफ्तारी तथा निर्वासन के लिए १८१८ के कानून की शरण ली गयी है ? मैं पहले भी सभा को बतला चुका हूँ कि गिरफ्तारी तथा निर्वासन से सम्बन्ध रखने वाली बातें ऐसी हैं जिनको बतलाना सार्वजनिक हित के सर्वथा प्रतिकूल है।

मि० ओग्रेडी ने स्पीकर से प्रश्न किया—यतः भारतमंत्री का उत्तर असंतोषजनक है, क्या भारत सरकार उक्त कानून को लागू करने में धारा सभा के सामने उत्तरदायी है ? यदि हाँ, तो क्या धारा सभा के एक सदस्य का यह अधिकार नहीं है कि उसे निश्चित इत्तला दी जाय, चाहे सार्वजनिक रूप में अथवा निजी रूप में, कि श्रीमान् सम्राट् की किसी प्रजा को किन कारणों से गिरफ्तार तथा निर्वासित किया गया है ?

मि० स्पीकर—नियमों के अधीन कोई भी आदरणीय सदस्य कोई भी प्रश्न पूछ सकता है और यदि कोई मंत्री उत्तर न देना चाहे तो उसे ऐसा करने का अधिकार है।

मि० मार्ले—अपने प्रतिष्ठित मित्र के तथा एक दो अन्य आदरणीय सदस्यों

के प्रश्न के उत्तर में मैं कई बार कह चुका हूँ कि जिस स्थिति में भारत सरकार ने, मेरी पूर्ण स्वीकृति से उक्त कानून को लागू करना उचित समझा है, उसकी व्याख्या करना सार्वजनिक हित के प्रतिकूल है।

मि० लपटन—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि अभी तक पंजाब उसी उत्तेजनापूर्ण स्थिति में है कि लाला लाजपतराय को वापस पंजाब ले जाना भयावह है? क्या भारतमंत्री जनता की स्थिति की तथा राजद्रोह के कारणों की जांच करायेंगे?

मि० मार्ले—क्या आपको विश्वास नहीं कि मैं उसकी जांच करा रहा हूँ?

इतने प्रश्नों के उत्तर में व्याकुल मंत्री ने केवल एक ही निश्चित बात बतलायी कि मेरी सम्मति में लाजपतराय के कुछ भाषणों से राजद्रोह की गन्ध आती है।

मि० एच० काटन—(नाटिंघमशायर ई)—क्या मैं भारत मंत्री से पूछ सकता हूँ कि क्या, अपने २० वर्षीय सार्वजनिक जीवन के बीच में, कभी लाला लाजपतराय पर राजद्रोह अथवा अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रचार में कोई मुकदमा चला है, अथवा क्या उनके हाथ लाला लाजपतराय का कोई ऐसा भाषण, वक्तव्य अथवा कार्य आया है जिसमें उन्होंने कभी भी वैध तथा समुचित आन्दोलन की सीमाओं का उल्लंघन किया हो?

भारतमंत्री—मि० मार्ले—हाँ, मैंने लाजपतराय के गत दो वर्षों के सार्वजनिक भाषण देखे हैं, वह स्पष्टतया तथा प्रबल रूप से अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रचार के ढंग के हैं और उनका अन्य कोई अर्थ नहीं निकल सकता। यदि प्रतिष्ठित सदस्य २८ जनवरी १९०६ के "वफादार" में लाजपतराय के लाहौर वाले भाषण को अथवा २७ मार्च १९०७ के "पंजाबी" में उनके लायलपुर के भाषण की रिपोर्ट पढ़ें तो उनको (जो कई वर्षों से भारतीय शासन प्रणाली को चलाने में लगे हुए हैं) पता लगेगा कि उनकी भाषा भारत में वैध आन्दोलन की सीमाओं से बाहर है। मैं इस बात की पुनरावृत्ति करता हूँ कि १८१८ के कानून की शरण लेने का कारण केवल यही भाषण नहीं है।

मि० बैलाक (सेलफोर्ड दक्षिण) ने पूछा कि क्या उक्त भाषणों के कारण किसी न्यायालय में कार्यवाही नहीं की जा सकती?

मि० मार्ले—हाँ, मुझे बतलाया गया है कि कार्यवाही की जा सकती है।

मि० विलियम रेडमाण्ड—फिर वह (भाषण) न्यायालय में क्यों पेश नहीं किए गए?

मि० मार्ले—जैसा मैं कई बार बतला चुका हूँ, कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनको प्रकट करना सार्वजनिक हित के प्रतिकूल है।

प्रश्नों के घंटे में निर्वासन रेग्यूलेशन की वैधता पर एक दो बार आपत्ति उठायी गयी।

मि० मेकारनेस—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आन्तरिक गड़बड़ के अभियोग का निपटारा दण्डविधि द्वारा, जो इस आर्डिनेन्स से चालीस वर्ष पश्चात् पास हुई, नहीं किया जा सकता था और क्या १८१८ के आर्डिनेन्स को ऐसे अपराधों का विचाराधिकार है?

मि० मार्ले—मेरे प्रतिष्ठित मित्र प्राड्वाक् हैं—कानून की बातों से विज्ञ हैं, अतः आप अच्छी तरह समझ सकते हैं कि इस प्रकार के प्रश्नों के लिए पूर्व सूचना चाहिए।

मि० स्विफ्ट मैकनील ने पूछा कि क्या १८१८ का कानून पुरानी ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्वयंभू कौंसिल का एक आर्डिनेन्स मात्र नहीं है जिसे पार्लियामेण्ट की स्वीकृति कभी प्राप्त नहीं हुई?

मि० मार्ले—मैं आपके साथ विवाद नहीं करूँगा, परन्तु यह (उक्त रेग्यूलेशन) भारत का कानून है।

मि० स्विफ्ट मेकनील—और एक अत्यन्त निकृष्ट कानून है।

विलियम रेडमाण्ड कभी न कभी निर्वासित लोगों के साथ व्यवहार के बारे में पूछा करते थे।

मि० विलियम रेडमाण्ड—मैं भारतमंत्री से पूछना चाहता हूँ कि क्या भारत में हाल ही में गिरफ्तार किए गए तथा निर्वासित व्यक्तियों के मित्रों को उनके साथ पत्र व्यवहार करने अथवा किसी समय उनके सम्बन्धियों को उनसे भेंट की आज्ञा है?

भारतमंत्री—मि० मार्ले—लाजपतराय तथा अजितसिंह को अपने मित्रों से पत्र व्यवहार की आज्ञा है, परन्तु उनकी चिट्ठियों की देखभाल की जाती है कि कहीं वह दंगे उत्पन्न कराने वाले सन्देश बाहर न भेज सकें। अब तक केवल एक ही पत्र रोक लिया गया है। मुझे बतलाया गया है कि किसी ने बन्दियों से भेंट करने की इच्छा प्रकट नहीं की। परन्तु उचित देखरेख में भेंट होने में कोई आपत्ति नहीं होगी जिससे कोई अवांछित पत्र व्यवहार न होने पावे।

मि० विलियम रेडमाण्ड ने पूछा कि क्या इन बन्दियों को भी वही सुविधाएँ प्रदान की जायँगी जो किलमैनहम में आयरिश राजबन्दियों को दी गयी थीं?

मि० मार्ले—वह तो पुरानी बात है परन्तु जहाँ तक मुझे याद है कि जिन दिनों आयरलैण्ड के शासन का उत्तरदायित्व मुझ पर था, उस समय किलमैनहम में कोई राजबन्दी नहीं थे।

मि० मेकारनेस—क्या लाजपतराय तथा अजितसिंह को अपने कानूनी परामर्शदाताओं से पत्रव्यवहार की आज्ञा दी जायगी?

मि० मार्ले—हाँ।

मि० विलियम रेडमाण्ड—क्या भारत मंत्री कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं कर सकते कि इन बन्दियों को अपने मित्रों से इतना दूर न रखा जाय?

मि० मार्ले—मुझे आशंका है कि ऐसा करने से हमारी सावधानी की कार्यवाही का प्रभाव जाता रहेगा।

इसके पूर्व मि० मार्ले ने मि० रेडमाण्ड को कहा था कि हम दोनों मिल कर राजनैतिक बन्दियों की लड़ाई लड़ चुके हैं, यदि आप कोई प्रश्न करें तो निस्संदेह उसका सन्तोषजनक उत्तर दिया जायगा।

उदार सिद्धान्तों के भूतपूर्व प्रचारक के लिए प्रतिदिन प्रश्नों का घंटा एक अग्नि परीक्षा बन गया। लाजपतराय के मामले में दिलचस्पी रखने वाले सदस्यों को अपने मन के भाव अभिव्यक्त करने का पूर्ण अवसर तो उस समय प्राप्त हुआ जब मि० जी० ए० हार्डी ने अपना प्रस्ताव पेश किया।

मि० जी० ए० हार्डी (सक्कोक-स्टोव-मार्केट) ने खड़े होकर पेश किया "कि "भारत में शान्ति तथा व्यवस्था रखने के महत्व का अनुमोदन करते हुए, इस सभा की सम्मति है कि एक पार्लियामेण्टरी समिति अथवा शाही कमीशन द्वारा बेचैनी के मूल-कारणों की जाँच करायी जाय।"

डा० रदरफोर्ड ने उक्त प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

सरकार की ओर से उत्तर में कहने को कुछ भी न था। विवाद का उत्तर भारत मंत्री के स्थान में उपमंत्री ने ही दिया "यदि लाजपतराय इस प्रकार के आन्दोलन का प्रोत्साहन करना चाहते थे तो उनको उसकी जोखम भी उठानी पड़ेगी। अन्य वक्ताओं के भाषण तो और भी अधिक उत्तेजनापूर्ण थे। कई तो जान बूझकर योरुपियनों की हत्या के प्रचार की सीमा तक भी जा पहुँचे। इस देश का जनतांत्रिक वातावरण एक क्षण के लिए भी ऐसी भाषा सहन नहीं कर सकता।" किसी अन्य वक्ता की खुली जिह्वा के कारण लाजपतराय को कष्ट भुगतने पड़े।

लाजपतराय के निर्वासन से सम्बद्ध धारा सभा की घटनाओं में से सब से मनोरंजक बात का वर्णन करना तो अभी बाकी है।

सुनिए:—

मि० स्विफ्ट मैकनील—क्या आदरणीय भारत मंत्री ने शैफील्ड के सदस्य के वह रिमार्क्स सुने हैं "लाजपतराय को क्यों न गोली मार दी जाय।" यह एक लज्जापूर्ण विचार है। श्रीमान्, जो कुछ आपने कहा है, उसे वापस लें।

मि० विलियम रेडमाण्ड—मैं एक Point of order (वैधानिक आपत्ति) उठाना चाहता हूँ। मैं आपसे विनयपूर्वक पूछना चाहता हूँ कि इस सभा के एक प्रतिष्ठित सदस्य के लिए यह सुझाव, सार्वजनिक रूप में, पेश करना उचित है कि एक ब्रिटिश प्रजा को गोली मार दी जाय ?

सर हावर्ड विन्सेण्ट (शेफील्ड केन्द्रीय)—शायद यह कहना अनावश्यक है कि मैंने ऐसा कोई रिमार्क नहीं किया। मैं तो अपने आपसे बोल रहा था।

मि० स्विफ्ट मैकनील—मैंने स्वयं आपकी बात सुनी है।

मि० विलियम रेडमाण्ड—हम सभी ने यहाँ सुना है।

मि० स्विफ्ट मैकनील—मैं आदर सहित कहता हूँ कि जो प्रतिष्ठित सदस्य इस सभा में भाषण करता है, वह समस्त साम्राज्य को सम्बोधन करता है। मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या यह इस सभा के विधि विधान के अनुकूल है कि स्पष्ट शब्दों में हत्या को प्रोत्साहित किया जाय ?

मि० स्पीकर—निस्सन्देह मैंने यह वाक्य नहीं सुना।

मि० विलियम रेडमाण्ड—हम सब ने यहाँ सुना है।

मि० स्पीकर—मैंने कहा है कि वाक्य मेरे कानों तक नहीं पहुँचा।

सर हावर्ड विसेण्ट—वह निजी बातचीत भी सुनते हैं। (राष्ट्रीय दलवाले पुकार उठे—ओह, ओह !)

मि० स्विफ्ट मैकनील—अपने शब्दों को वापस लो, तुम्हें ऐसा कहने का साहस ही क्योंकर हुआ ?

मि० स्पीकार—यह बात मेरे कानों तक नहीं पहुँची। मैं तो इतना ही कहने को तैयार हूं। साथ ही मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि यदि शेफील्ड के आदरणीय सदस्य अपने रिमार्क्स को काबू में रख सकें (वह न केवल प्रश्नों के घण्टे में, प्रत्युत वाद विवाद में भी रिमार्क्स करने के आदी हैं) तो इससे समस्त सभा को लाभ होगा।

मि० विलियम रेडमाण्ड—क्या मैं भारत मंत्री से सविनय अनुरोध कर सकता हूँ कि भारतीय स्थिति की गम्भीरता तथा सभा में इस रिमार्क की रिपोर्ट की अशिष्टता (कि एक भारतीय बन्दी को गोली मार देनी चाहिए) को सामने रखते हुए, वह तत्काल ही न केवल अपना, प्रत्युत सरकार का भी ऐसे बयान से सम्बन्ध विच्छेद प्रकट कर देंगे ?

मि० मार्ले—मैं तो केवल यही कहने की जरूरत समझता हूँ कि सौभाग्य है कि प्रतिष्ठित सदस्य कभी किसी उत्तरदायी पद पर नहीं रहा।

मि० विलियम रेडमाण्ड—मैं नोटिस देना चाहता हूँ कि इन भारतीय बन्दियों

का कुछ अनिष्ट हो गया, तो इस सभा के सदस्यों का अधिकांश–निश्चय रूप से आयरलैण्ड के प्रतिनिधि तो उन्हीं लोगों को दोषी समझेंगे जिनका उत्तरदायित्व है।

डा० रदरफोर्ड तथा फ्रेडरिक मेकारनेस ने जिस दृढ़ता से धारा सभा में लड़ाई जारी रक्खी वह उग्रवादी सदस्यों के लिए प्रशंसनीय थी। आगे चलकर लाजपतराय की उन दोनों के साथ गाढ़ मित्रता हो गयी। डा० रदरफोर्ड ने चिरकाल तक अपनी बुद्धि के अनुसार पार्लियामेण्ट में भारतवर्ष की सेवा की है। मेकारनेस चिरकाल तक नहीं जी पाया। लाजपतराय ने स्वयं इस अंग्रेज़ सज्जन के विषय में लिखा था। "मि० मेकारनेस एक अन्य अंग्रेज़ थे जिनकी मैत्री तथा आतिथ्य से मेरी तृषा पूर्णतः शान्त हुई। १९०७ में वह मेरे लिए लड़े थे और मेरे निर्वासन के बारे में प्रतिदिन प्रश्न पूछ पूछ कर जान मार्ले तथा उदार दल के अन्य नेताओं के कोपभाजन बन गए। १९०७ से पूर्व उनको अति उच्च समझा जाता था, उनकी परिपक्व विद्वत्ता, क़ानूनी योग्यता, गम्भीर तथा स्वस्थ सम्मति तथा उनके नपे तुले भाषण उनके महान् बनने के लक्षण थे। एक समय तो उग्र दल का भावी नेता उन्हीं को समझा जाता था। परन्तु शोक है मेरा निर्वासन उनके पतन का कारण सिद्ध हुआ।

"वह मुकदमा चलाए बिना निर्वासन को "उदारता" के प्रारंभिक तथा मूल सिद्धान्तों की अवहेलना तथा उल्लंघन समझते थे। कल्पनाशील जान मार्ले की ओर से चाहे कितनी ही व्याख्या की जाय, अथवा उनको घुड़कियां मिलें, वह धारा सभा में निर्वासन के बारे में प्रश्न पूछने से नहीं रुकते थे। उनकी मुझसे कभी भेंट नहीं हुई। वह मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। वह तो एक सिद्धान्त पर डटे हुए थे। यही सिद्धान्त उनका इष्टदेव था और उसी की वकालत करते हुए उन्होंने अपने दल के नेताओं को रुष्ट कर लिया। जान मार्ले की भारतीय नीति पर तीव्र आक्रमण करने के कारण उनको इतने कष्ट सहन करने पड़े तथा उनसे इतनी घृणा की जाती थी कि सालिस्टरों ने उनको मुकद्दमों की मिसलें भेजना बन्द कर दिया और भारी आय वाले एक सफल वकील की गणना शीघ्र ही खाली बैठकर मक्खियां मारनेवाले वकीलों में होने लगी।

"फ्रेडरिक मेकारनेस का झुकाव अथवा मनोवृत्ति किसी प्रकार भी क्रांतिकारी नहीं थी। वह तीव्र भाषा तथा क्रान्तिकारी साधनों का प्रबल विरोध करते थे। वह एक शान्तिप्रिय व्यक्ति थे और सदा ही आन्दोलन के वैध साधनों का समर्थन किया करते थे। परन्तु वह सिद्धान्तप्रिय पुरुष थे और किसी भी मूल्य पर सिद्धान्तों से डगमगानेवाले नहीं थे। उनकी सहचरी भी वैसे ही उच्च विचारों की महिला थी और उसे भारतीय दर्शन तथा साहित्य में गहरी दिलचस्पी थी। मेरा परिचय

उनसे १९०८ में हुआ, और अन्त तक मैं उनका मित्र तथा विश्वासपात्र बना रहा। हाँ, शोक ! उन दोनों का स्वर्गवास हो गया है।"

लाजपतराय का निर्वासन मार्ले को भी बहुत महँगा पड़ा। उदार सिद्धांतों के पोषक के रूप में उनकी ख्याति सदा के लिए समाप्त हो गयी। धारा सभा में अब वह उच्च नैतिक स्थल पर खड़े होने के अयोग्य थे। वहाँ जाकर उनको काफी परेशानी होती थी और प्रथम अवसर मिलते ही उन्हें धारा सभा छोड़नी पड़ी। अप्रैल १९०८ में केम्ब्रेल बैनर्मेन को राजनीति त्यागनी पड़ी। (शीघ्र ही वह संसार से भी कूच कर गए।) और सम्राट ने उनके स्थान पर एस्क्विथ को निमंत्रण दिया। प्रधान का कर्तव्य था कि अन्तरंग सभा में परिवर्तन करने के लिये मार्ले जैसे उच्च पदस्थ सहकारियों से परामर्श लेते। मार्ले की भारत मंत्री बने रहने की इच्छा थी, परन्तु अब सीधे सादे जान के स्थान में उसे वाइकाऊण्ट जान बनना पड़ता। शीघ्र ही वह वाइकाऊण्ट बन गया।

"इस परिवर्तन का कारण वह असुविधा थी जिसे मार्ले को लाजपतराय की कष्टदायक समस्या के कारण दो चार होना पड़ा" उन दिनों लोगों का साधारण मत यह था।

अध्याय तीस

माण्डले से मुक्ति

लाला लाजपतराय को इस बात का कोई भी ज्ञान न था कि मुझे कब तक माण्डले रखा जायगा। कदाचित् सरकार स्वयं भी नहीं जानती थी। सभी यही प्रश्न करते थे, परन्तु उसका उत्तर कहीं से नहीं मिलता था।

वह समस्त घटनाओं को चौकन्ना होकर देखते थे कि कहीं से उस प्रश्न का कोई संकेत प्राप्त हो। सुदूर माण्डले में बैठा हुआ एक राजबन्दी जिसे समाचार पत्र भी न मिलते हों—इतना ही कर सकता था! सब से प्रथम तो वह पिण्डी के दंगे के परिणाम की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे। लाजपतराय ने आगे चलकर अपनी निर्वासन की कहानी में लिखा है—"मेरा प्रथम विचार यही था कि मेरी मुक्ति सम्भवत: रावलपिण्डी तथा लाहौर के दंगों के मुकदमों के अन्तिम फैसले से पूर्व नहीं हो सकती और यदि किसी ताजा फसाद के कारण उसमें देर न हो गयी, तो चीफ कोर्ट की ओर से इन मुकदमों की समाप्ति पर निश्चय रूप से हो जायगी। इसलिए मैं इन मुकदमों की बाबत अत्यन्त उत्सुक था। मेरा विश्वास था कि चाहे झूठी साक्षियाँ गढ़ने, राजद्रोह की कहानियाँ बनाने, बलात् झूठी बातें स्वीकार कराने अथवा उन दंगों में मुझे फंसाने की कितनी ही कोशिश क्यों न की जाय, मेरे विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकेगा। मुझसे अधिक कोई भी नहीं जानता था कि मैंने क्या किया है अथवा क्या नहीं किया है। मैंने जो कुछ भी किया था, खुले रूप में, उसे गुप्त रखने की कोशिश के बिना ही किया था, और मैं उसे निस्संकोच स्वीकार करने को सदैव तत्पर था। यद्यपि मुझे इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि इस देश की पतित तथा नीच पुलिस सब कुछ सिद्ध करने में समर्थ है—यहाँ तक कि वह बातें भी जिनका कोई अस्तित्व तक नहीं, परन्तु मेरी अन्तरात्मा मुझे कहती थी कि अन्त में सत्य की विजय होगी और शीघ्र ही शासकों को अपने अधीनस्थ लोगों के घृणित हथकण्डों के कारण लज्जित होना पड़ेगा। मेरे मन में रावलपिण्डी के वकीलों का निर्दोष सिद्ध होने का वैसा ही प्रबल निश्चय था जैसे प्रतिदिन सूर्योदय का। ज्योंही मैंने सुना वह सादर बरी कर दिए गए हैं, मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि मेरी मुक्ति में अब अधिक देरी नहीं होगी।"

उनकी दृष्टि से पिण्डीकेस की दीर्घ कार्यवाही का सुखमय अन्त हुआ, क्योंकि चीफ कोर्ट ने उनके मित्रों को न केवल निर्दोष कहकर छोड़ दिया, प्रत्युत जस्टिस मार्टीनों ने तो स्पष्ट शब्दों में घोषित कर दिया कि अभियोग पक्ष ने झूठी साक्षियाँ तैयार की हैं और साथ ही केस से सम्बन्धित अधिकारियों पर स्मरणीय झाड़ डाली। यह शुभ लक्षण थे और उन्हें आशा होने लगी कि शिमला छोड़ने से पूर्व ही भारत सरकार उनके बारे में भी निश्चय करेगी। मन की दौड़ अभिलाषा पूर्ति की ओर ही रहती है, परन्तु कुछ न कुछ उनका अनुमान ठीक ही था। उन्होंने अपने बारे में सेनाओं को बिगाड़ने आदि की काफी निराधार बातें सुन रखी थीं। वह इस बात को भी पूरी तरह समझते थे कि घबराहट के कारण, बिना किसी जाँच पड़ताल के उन बातों को सत्य मान लिया गया है, परन्तु सरकार को अपनी भूल का ज्ञान अवश्य (कभी न कभी) हो जायगा।

हमें निर्वासन की कहानी में बतलाया गया है कि "किसी न किसी प्रकार मैं शिमला में भारत सरकार के ग्रीष्म अधिवेशन की समाप्ति के साथ ही अपनी मुक्ति की आज्ञा का सम्बन्ध जोड़ता था। मैं सोचता था कि शिमला छोड़ने से पूर्व ही भारत सरकार मेरे केस पर पुर्नविचार करेगी और सम्भवत: मेरी मुक्ति की आज्ञा जारी कर देगी, अत: अक्टूबर के मध्य से ९ नवम्बर तक मैंने सदैव उत्सुकता से उधर आँखें लगाए रक्खीं।" २४ तथा २५ अक्टूबर की डायरी के नोटों में चिन्ता तथा अनिश्चितता के कारण किसी प्रकार के कार्य करने के प्रति अनिच्छा का वर्णन आता है। ३०वीं का नोट भी उसी प्रकार का है। अन्तिम नोट बतलाता है कि आशा तथा आशंका में निरंतर संघर्ष के कारण उनका मन अशान्त रहा।

२ नवम्बर की डायरी से यह ज्ञात होता है कि "जो कुछ भी आशा पहले थी, समाप्त हो रही थी जिससे मन में भारी व्याकुलता रही।"

असमंजस की इस अवस्था की इतिश्री ११ नवम्बर के प्रात: सवा दस बजे हुई, जब माण्डले डिविज़न का कमिश्नर, सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा डिपुटी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस के साथ उनके पास पहुँचा। "कमिश्नर मुझे पृथक ले गया और बोला कि आपको मुक्त किया जा रहा है, परन्तु आपको पुलिस गार्द लाहौर ले जायगी और वहाँ रिहा करेगी।" इस सुख समाचार के साथ ही कमिश्नर ने वायसराय की ओर से एक चेतावनी भी जोड़ दी कि यदि आप फिर कोई राजद्रोहात्मक कार्य करते हुए पाए गए, तो आपको गिरफ्तार कर लिया जायगा तथा तत्काल ही निर्वासित कर दिया जायगा। मैंने उसे केवल यही उत्तर दिया कि मैंने सभी कुछ समझ लिया है।

पाठक अन्त में देखेंगे कि जैसे ११ नवम्बर को माण्डले से मुक्ति का सन्देश मिला वैसे इस महान तेजस्वी जीवन की इहलीला की समाप्ति का दिन भी नवम्बर मास

की १७ तारीख—नवम्बर के ११ से १७ तारीखों वाला सप्ताह ही था! यही नहीं—लोकसेवक मण्डल का स्थापना दिवस ९ नवम्बर भी उसके ही सन्निकट की तिथि है। फलतः नवम्बर ९ से १७ तक लालाजी के जीवन की समस्त महत्वपूर्ण चिरजीवी तिथियें आ जाती हैं। इस मुक्ति की तिथि को ध्यान से देखें तो आने वाली घटनाओं को आँकने की उनकी प्रतिभा का स्पष्ट परिचय मिलता है!

उनको तत्काल ही सामान बांधने को कहा गया, क्योंकि एक स्पेशल ट्रेन पहले से ही उनकी प्रतीक्षा में थी। निश्चित समय के अनुसार उसे सवा दस बजे छूट जाना चाहिए। उनको अपने "द्वितीय गृह" को अन्तिम नमस्ते कहने के लिए आध घण्टे से भी कम समय दिया गया। माण्डले में उनके लाडले बिलावटों की प्रणयकथा के दुखान्त का यही कारण था।

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट उनके साथ रेलवे स्टेशन को गया जहाँ एक ओर एक स्पेशल ट्रेन छूटने को तैयार खड़ी थी। गोरे अधिकारियों की एक मण्डली पास ही खड़ी थी। उनमें से जेल का अध्यक्ष उनसे हाथ मिलाते हुए बोला "आपसे छुटकारा पाकर मुझे अपार हर्ष हुआ है। आप सदा सुखी और स्वस्थ रहें।" साथ ही अपने भूतपूर्व बन्दी को समझाते हुए कहने लगा कि फिर ऐसी मूर्खता न कर बैठना। उनके लिए एक फर्स्ट क्लास का डिब्बा सुरक्षित था, जिसमें उनको बिठला कर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उनसे हाथ मिलाए। "स्टेशन के यार्ड में मैंने एक सार्जेण्ट देखा जिसे मैं जानता था कि उस दिन उसका सरदार अजितसिंह पर पहरा था। मैंने परिणाम निकाला कि सरदार अजितसिंह भी उसी गाड़ी में हैं और मैंने पुलिस के डिपुटी सुपरिन्टेन्डेन्ट से पूछा कि यह बात ठीक है। उसने सीधा उत्तर नहीं दिया, कहने लगा कि वह (अजितसिंह) दूसरी ट्रेन से आ रहा होगा। सूर्यास्त से पूर्व मुझे ज्ञात हुआ कि सरदार अजितसिंह उसी ट्रेन के एक सेकण्ड क्लास डिब्बे में एक गोरे इन्स्पेक्टर पुलिस तथा एक गोरे सार्जेण्ट के पहरे में जा रहा है।" लाला जी लिखते हैं।

मार्ले की "स्मृतियों" में प्रकाशित मिण्टो-मार्ले पत्र व्यवहार तथा मेरे श्रीमती वायसराय मिण्टो के अपने पति मिण्टो के पत्र-संग्रह से सरकारी मशीनरी के आन्तरिक गतिविधि का कुछ कुछ ज्ञान होता है कि निर्वासितों को किस प्रकार मुक्ति मिल गयी।

२५ अक्टूबर को मार्ले ने मिण्टो को लिखा—"यद्यपि मुझमें जनता का विश्वास यथेच्छ है, परन्तु सभाओं से सम्बन्धित कानून के बारे में मुझे झगड़े में फँसने की आशंका है। रिप्पन, जो इस बात को सर्वथा भूल जाता है कि उसे भारत गए २० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, बड़ा दुखी है। फिर भी, मैं लड़ने को तैयार हूँ। मैं केवल यही चाहता हूँ कि आप गम्भीरता से विचार करें कि लाजपतराय से किस प्रकार निपटना

होगा। मेरे मन में आता है कि जब आपकी सभाओं के नए कानून का समय आएगा तब हमें यह कहने का अवसर होगा कि "हमने अपने आपको नवीन शस्त्रों से सुसज्जित कर लिया है। शायद हम इससे भी आगे बढ़ जायँ। इस नवीन अधिकार से, तथा यह विचारते हुए कि निर्वासन ने अपना कार्य पूर्ण सफलता से कर लिया है, लाजपत को छोड़ा जा सकता है। मुझे प्रतीत होता है कि जो लोग हमें कमजोर, निर्बल, अंग्रेज़ों की भावनाओं का आदर करने वाला इत्यादि बातें करेंगे, उनके उत्तर में आपके पास यह विशेष क्षेत्रों को घोषित करने का नवीन शस्त्र होगा।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इस कठिनाई को समझते होंगे। बिना दोषारोपण किए अनिश्चित काल के निर्वासन को धारा सभा में समुचित सिद्ध करने के लिए और किसी प्रबल शब्द की जरूरत नहीं। उनकी (लाजपतराय की) मुक्ति से हमें सभाओं का कानून पास करने की राह मिल जायगी तथा अन्य यथेच्छ दमनकारी कानून पास किए जा सकेंगे।"

यह प्रथम चिट्ठी है जिसमें निश्चित रूप से मुक्ति का सुझाव किया गया है। प्रथम संकेत लन्दन से ही हुआ था, यद्यपि वह सम्राट की ओर से नहीं था जैसा कि उस समय कई लोगों का विचार था। इसका यह अर्थ भी नहीं लगाया जा सकता कि वायसराय की इच्छा के प्रतिकूल वह सुझाव उस पर लादा गया था। धारा सभा में, दिन प्रति दिन मुकदमा चलाए बिना अनिश्चित नजरबन्दी के औचित्य का समर्थन करते करते मार्ले थक चुका था। जब मिण्टो ने उससे विद्रोहात्मक सभाओं के कानून तथा अन्य दमनकारी अस्त्रों की स्वीकृति मांगी, तब मार्ले ने उसके प्रतिकार स्वरूप यह सुझाव पेश कर दिया कि अन्य बुराइयां करने के पूर्व एक बुराई का प्रायश्चित्त कर लिया जाय। इस नीति से वह अपने नष्टप्राय उदारता की भावना और कीर्ति के कुछ टुकड़ों की रक्षा तो कर सकेगा, अपने आर्डिनेन्स के शिकार लोगों की मुक्ति की आज्ञा देकर वह संसार के सम्मुख सिर उठा कर यह तो कह सकने में समर्थ हो जायगा कि मैंने प्रतिगामिता को खुली छुट्टी कभी नहीं दे रक्खी थी। साथ ही मिण्टो की ऐंग्लो-इंडियन नौकरशाही को यह विश्व.स दिलाने में सहायता मिलेगी कि निर्वासितों को छोड़ देने का यह अर्थ कदापि नहीं कि दृढ़ शासन के सिद्धान्तों को तिलांजलि दे दी गयी है। "बकरी ने दूध तो दिया, पर बर्तन में मेंगनी डाल कर" वाली लोकोक्ति चरितार्थ की गयी। मिण्टो-मार्ले रूपी बकरी ने निर्वासितों की मुक्ति रूपी दूध तो दिया, पर साथ ही नवीन दमनकारी कानून रूपी मेंगनियों से भी बर्तन भर दिया।

मिण्टो मार्ले के इस सुझाव से सहमत था, परन्तु इब्बटसन का इससे सर्वथा ही मतभेद रहा।

मार्ले की उपरोक्त चिट्ठी का उत्तर देते हुए मिण्टो ने ५ नवम्बर को लिखा:—

"जहाँ तक लाजपतराय तथा अजितसिंह का सम्बन्ध है, निस्संदेह न्यायानुसार हमें उनको शीघ्रातिशीघ्र मुक्त कर देना चाहिए। अब, जब हमने घोषणा कर दी है कि पंजाब में पूर्णतया शान्ति है, उनको अधिक अवधि के लिए बन्दी रखना किसी तर्क से भी उचित नहीं। निस्संदेह, पंजाब सरकार, तथा सम्भवतः वह सभी लोग जोकेवल दमन नीति को ही राज्य का अस्त्र स्वीकार करते हैं, हमारी इस कार्यवाही की कड़ी आलोचना करेंगे, परन्तु मुझे तो इस नीति के औचित्य में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं। मैंने सभी आवश्यक प्रबन्ध कर दिया है और आपको तार द्वारा सूचित कर रहा हूँ।"

फिर मार्ले ने मिण्टो को लिखा—

"८ नवम्बर। लाजपतराय के बारे में आपकी कार्यवाही से मेरी भारी चिन्ता नवृत्त हो गयी। अन्तरङ्ग सभा, जिसके सन्मुख मैंने समस्त मामला अधिकतर आपकी अपनी भाषा में रक्खा है, इस परिणाम से पूर्णतया सहमत है कि अब नवीन दमनकारी अधिकार प्राप्त करने के अनन्तर, आपको, इन नजरबन्दों से छुटकारा पाने का इससे बढ़िया अवसर फिर न मिलेगा।...इब्बटसन के तर्क के अनुसार, "कि पंजाब की शान्ति क्षणिक है, और जब तक यह क्षणिक शान्ति, स्थायी शान्ति में परिवर्तित नहीं हो जाती, लाजपतराय को बन्द रखा जाय," लाजपतराय सदैव माण्डले ही रहेंगे। इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है ?...जैसा इब्बटसन है, वैसा ही रूसी चिन था, और वैसा ही शहीद राजा चार्ल्स प्रथम था जिसका विचार था कि यदि मैं सर जान ईलियट को चिरकाल तक टावर में बन्दी रख सकूँ, तो मैं अपने विरोधियों (राउण्ड हेड्स तथा पार्लियामेन्टेरियन्स) का मूलोच्छेद कर डालूँगा।"

यदि नौकरशाही के कानूनी शस्त्रागार में एक नये (विद्रोहात्मक सभाओं का कानून) कानून की वृद्धि ही, उनकी मुक्ति का कारण था, तो लाजपतराय को निर्वासित करना नितान्त अनावश्यक था। उन्होंने बहुत अधिक सार्वजनिक सभाओं में तो भाषण दिए ही न थे और मार्ले के हाथ तो उनके केवल दो ही भाषण पड़े जिनमें उसे विद्रोह की गन्ध आयी। इसका निपटारा तो किसी न्यायालय में सुगमता से हो सकता था।

जिस समय, मिण्टो ने निर्वासन की स्वीकृति प्राप्त की उसे स्वयं ही सन्देह था कि क्या सचमुच परिस्थिति इतनी गम्भीर हो गयी है जैसा समझा जाता था। १५ मई १९०७ को उसने अपनी पत्नी को (जो उन दिनों इंग्लैण्ड में थी) लिखा—

"...यद्यपि मैंने स्थिति को कभी भी वास्तविक रूप में भीषण नहीं समझा, फिर

भी कुछ न कुछ गड़बड़ी अवश्य है। घबराहट की कार्यवाहियां तो गोरों तथा अर्द्ध गोरों के विवेक के अभाव से हुईं, जिनके विषय में वह उसी पत्र में लिखता है, "वह सर्वत्र ही शस्त्र खरीद रहे हैं और मैंने सुना है कि मैदानों में सैनिक अपनी बन्दूकें अपने बिस्तरों में धर कर सोते हैं और राइफलों वाले अपनी राइफलों को बगल में दबाकर। यह मैं आपको गप्प के रूप में बतला रहा हूँ, परन्तु इस गप्प से प्रचलित भावनाओं का पूरा अनुमान हो सकता है। (१८५७ के) विद्रोह की स्मृतियों ने गोरों तथा देसी लोगों को प्रभावित कर रक्खा है। परन्तु किचनर का, मेरा तथा जानकार लोगों का यह विचार नहीं है कि वर्तमान आन्दोलन किसी प्रकार भी भयानक है।"

सम्भव है, निर्वासन के तत्काल पश्चात् ही मिण्टो को ज्ञात हो गया हो कि लाजपतराय के विरुद्ध कोई ठोस साक्षी नहीं। लेडी मिण्टो के नाम उपरोक्त पत्र में लिखा है "लाहौर की पुलिस ने गिरफ्तारियों की गड़बड़ तो कर दी, परन्तु लाजपत-राय के मकान से एक भी कागज खोजने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया, और दूसरे आदमी को भागने का अवसर भी नहीं देना चाहिए था, जैसा कि उन्होंने दिया है।" हाँ, लाजपतराय के मकान की तलाशी नहीं ली गयी, परन्तु, यह बात निश्चित है, कि यदि तलाशी ली जाती, तो मिण्टो बुरी तरह हताश होता। लाजपतराय ने "विद्रोह" खड़ा करते हुए, वास्तविक आपत्तिजनक कागजात, अमीर अफगानिस्तान के भेजे हुए पत्र तथा अन्य इस प्रकार की सामग्री घर में थोड़े ही रख ली थी। वह अपने कागजात के बारे में सदैव सावधानी से काम लेते थे। आगामी वर्षों में, कई अवसरों पर पुलिस ने उनके मकान की तलाशी ली, परन्तु वहाँ से उनको कोई भी आपत्तिजनक कागज (दस्तावेज़) प्राप्त न हुए। जहाँ तक कागजों का सम्बन्ध था, वह सदैव जागरूक तथा चौकस रहते थे। क्या सचमुच ही उनके पास कोई ऐसे कागज थे? यह स्पष्ट है कि उनको समय से पूर्व सूचना मिल जाती होगी और वह चौकन्ने हो जाते होंगे। परन्तु मिण्टो का, पंजाब पुलिस से, हताश होने का, एक अर्थ तो स्पष्ट है कि वह लाजपतराय के अपराधी होने के बारे में कोई सन्तोषजनक प्रमाण पेश करने में असमर्थ सिद्ध हुए।

उन दिनों साधारणतया यह समझा जाता था कि लाजपतराय की ओर से, सरकारी मनोवृत्ति पर, गोखले के प्रयत्नों का कुछ प्रभाव हुआ है। इसमें कोई असम्भाव्य बात नहीं। सम्भवतः लाजपतराय के निर्वासन के दिनों में केयर हार्डी का भारत आना भी इस विषय में सहायक हुआ हो। उसने भारत की स्थिति को स्वयं अपनी आंखों से देखा और उससे कुछ परिणाम निकाल कर बड़ौदा से "डेली एक्सप्रेस" लन्दन के नाम एक सामुद्रिक तार २१ अक्टूबर को भेजा "मैं संयुक्त

प्रान्त तथा पंजाब के दौरे से लौट आया हूँ । मैंने साधारण रीति से काम लिया है—अर्थात् मैं मुसलमानों, हिन्दुओं तथा सिक्खों के डेपुटेशनों से मिला हूँ, मैंने अधिकारियों से मुलाकातें की हैं, तथा वायसराय और सरकारी सदस्यों से भी मिला हूँ । आपके पाठकों को याद होगा कि गत वसन्त ऋतु में पंजाब से सनसनीपूर्ण समाचार आ रहे थे कि वहाँ विद्रोह, हत्या, अग्निकाण्ड तथा साधारण अव्यवस्था फैल रही है । अब ज्ञात हुआ है कि वह सभी कुछ भावुकतापूर्ण पीलिया रोग पीड़ित सम्पादकीय कल्पना का आविष्कार था ।

लाहौर के आस पास के जिलों तथा रावलपिण्डी में अशान्ति फैलना स्वाभाविक था, क्योंकि वहाँ भूमिकर में २५ प्रतिशत वृद्धि, भारी सिंचाई कर तथा भूमि पर अधिकार करने वाला कानून जारी किए जाने वाले थे। आन्दोलन चल पड़ा। सिंचाई कर वापस ले लिया गया तथा कालोनी बिल रद्द कर दिया गया। आन्दोलन समाप्त हो गया। केवल यही राजद्रोहात्मक आन्दोलन था। पचपन प्रमुख व्यक्तियों को चार मास तक बिना ज़मानत जेल में रखा गया। मुकदमे चले और वह निर्दोष सिद्ध हुए। न्यायाधीश की सम्मति में पुलिस के गवाह झूठे हैं और साक्षियां गढ़ी हुई हैं। राजद्रोहात्मक आन्दोलन के बारे में मुझे तो कोई चिह्न तक नहीं मिला। देसी पुलिस को अत्यल्प वेतन मिलता है, वह निरी अज्ञ है तथा कुत्सित है। मुसीबत के अधिकांश का उत्तरदायित्व इन्हीं पुलिस वालों, नासमझ मैजिस्ट्रेट तथा सनसनीपूर्ण अफवाहें फैलाने वालों पर है. . . ।"

सरकारी अधिकारियों को उलटी-पुलटी खबरें मिलती रहीं। जनता से उनका दूर का भी सम्बन्ध तथा सम्पर्क नहीं। उनको पुलिस की रिपोर्टों पर आश्रित रहना पड़ता है जिन पर उच्च न्यायालय सदा ही अविश्वास करते हैं।

इस समुद्री तार का प्रत्यक्ष प्रभाव विद्रोहात्मक सभाओं वाले उस बिल पर पड़ा जो बनाया जा रहा था। इसके विषय में केयर हार्डी ने लिखा—

"भारत की जनता को, संसार भर की सब से कुत्सित पुलिस की इच्छा तथा दया पर छोड़ना पेट्रोलियम के तालाब में आग से खेलना है।. . .

देश में कुछ न कुछ आशा बँध रही है कि अन्तरंग सभा इस कानून को स्वीकृति देने से इनकार कर देगी अथवा यह भी न हुआ तो व्यावहारिक बुद्धिमत्ता (जिसके कारण राजा का राज्य सदा प्रसिद्ध रहा है) महाराज सम्राट् को हस्तक्षेप करने पर विवश करेगी जब तक कि निष्पक्ष जांच द्वारा उक्त कानून की अनिवार्य आवश्यकता सिद्ध न हो। मेरी हार्दिक अभिलाषा तथा आशा यही है. . . ।

विद्रोहात्मक कार्यवाहियों का प्रतिकार वर्तमान कानूनों से भी समुचित रूप

से हो सकता है। ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप से भारतीय सरकार का एक योग्य परन्तु हठी सदस्य शायद त्यागपत्र दे दे। एक जाति को निराश करने की अपेक्षा वह त्यागपत्र कहीं अच्छा होगा।"

निस्सन्देह, निर्वासनों के अनन्तर पंजाब में एक प्रकार की "शान्ति" तो हो गयी, परन्तु इस शान्ति के कारणों में से इब्बटसन के नयी आबादियों वाले बिल का रद्द होना भी है जिसे मिण्टो ने अनिष्टकर जान कर रद्द करना अनिवार्य समझा। रावलपिण्डी के नेताओं को छोड़ देना दूसरा कारण था। पंजाब में सभाओं का वर्जित घोषित किया जाना भी एक कारण था। सार्वजनिक सभाएं बन्द कर दी गयीं। लाजपतराय के निर्वासन के विरुद्ध प्रतिवाद करने के लिये दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा हुई, परन्तु उसके पश्चात् वहाँ भी सभाएँ बन्द कर दी गयीं। पूर्वी बंगाल में भी उसी कानून की घोषणा कर दी गयी। फरीदाबाद में कलेक्टर की आज्ञा से एक कान्फ्रेन्स होने वाली थी; परन्तु उसका विचार भी छोड़ दिया गया, क्योंकि कलेक्टर ने लाजपतराय के निर्वासन के प्रस्ताव पर आपत्ति उठायी।

उनकी मुक्ति के फैसले के साथ गोखले तथा केयर हार्डी का कुछ सम्बन्ध हो सकता है, परन्तु यह कहना अनुदारता होगी कि मिण्टो तथा मार्ले पर इस दीर्घ निर्वासन के गम्भीर अन्याय का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। मिण्टो ने तो कहा था कि लाजपतराय को साधारण न्याय की दृष्टि से मुक्त करना पड़ा। छः मास में मिण्टो को इस बात का कोई भी प्रमाण न मिल सका कि लाजपतराय का किसी भी गुप्त कार्य के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध है। इसके विपरीत, इस बात के काफी प्रमाण मिलते गए कि गुप्तचर लोग अधिकारियों को धोखा देते रहे हैं। गुप्तचर लोग तो इस बात से अनुचित लाभ उठाते रहे कि अधिकारीगण भयभीत तथा हर सच्ची अथवा झूठी अफवाह में विश्वास कर लेने की मनोवृत्ति रखते हैं। छः मास के अन्त में रेग्यूलेशन के अनुसार उनको केस पर पुनर्विचार करना आवश्यक था, और जब मार्ले ने वायसराय से लाजपतराय की मुक्ति के लिये अनुरोध किया, तो छठा मास ही चल रहा था। समुद्री तार तो इन गुप्त मंत्रणाओं का आदान प्रदान शीघ्रतापूर्वक कर रहे थे, परन्तु लोग अपने अपने अनुमान लगा रहे थे। जब लाजपतराय अपने बिलोटों तथा द्वितीय गृह को छोड़ चुके थे, लाहौर में उनके अपने पत्र ने अपने पाठकों के लिये इलाहाबाद के इंडियन पीपुल में से निम्न सन्दर्भ उद्धृत किया:—

"हमें पता लगा है कि सर डैनज़िल इब्बटसन लाला लाजपतराय के केस पर पुनर्विचार के लिए कभी सहमत नहीं होंगे और जब तक सर डैनज़िल

इब्बटसन पंजाब के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर रहेंगे, उनके मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं है।"

"पंजाबी" के इस पर्चे पर १३ नवम्बर की तिथि थी। १६ नवम्बर वाले आगामी पर्चे में उसने एक मुख्य लेख लिखा जिसका शीर्षक "महाराजाधिराज का स्मरणीय जन्मदिन" था और इसमें सभी को बधाई दी गयी थी। १३ नवम्बर के प्रातः एक छोटा सा विशेष हैण्डबिल भी छपा जिसमें यह महत्वपूर्ण हर्ष समाचार अंकित था:—

रंगून

१२ नवम्बर, ५-४० सायंकाल

"आज प्रातः, ५ बजे लाला लाजपतराय तथा सरदार अजितसिंह को एक स्पेशल ट्रेन द्वारा माण्डले से लाया गया। उनको बन्दरगाह में पड़े हुए एक फौजी जहाज़ "परसियस" में ले जाया गया। निर्दिष्ट स्थान अज्ञात। जनता यह जानने को उत्सुक है कि इस चाल का क्या उद्देश्य है।

इसका अर्थ समझने से पूर्व ही, हमें यह हर्ष समाचार मिला है (जिसके सुनने से नगर में आनन्द की लहर दौड़ गयी है) कि दोनों—लाला लाजपतराय तथा सरदार अजितसिंह सम्राट के जन्म दिन अर्थात् ९ नवम्बर को मुक्त कर दिए गए। सम्राट की सरकार के इस अत्यन्त अनुग्रहशील कार्य के कारण, यह दिवस भारतवासियों की स्मृति में सदा के लिये दुगुना शुभ माना जायगा।

हमारा सर्वप्रथम भाव तो यह है कि हम अपने देश की ओर से श्रीमान् सम्राट् तथा उनके समस्त सम्बद्ध अधिकारियों, विशेषतः मि० मार्ले, लार्ड मिण्टो तथा सर डेनज़िल इब्बटसन को हार्दिक धन्यवाद दें।

दोनों मुक्त सज्जन लाहौर को चल पड़े हैं।

श्रीमान् सम्राट् चिरजीवी रहें।"

सम्राट् की ओर से समाचार को गुप्त रखने के प्रयत्न होते हुए भी, १२ नवम्बर तक खबर चारों ओर फैल ही गयी। स्टेट्समैन के रंगून के संवाददाता ने सविस्तार तार दिया था, जिससे समाचार का समर्थन हो गया।

रिहाई के विषय में जनसाधारण का विश्वास था कि "सम्राट् के जन्मदिन के उपलक्ष में दया" के रूप में यह रिहाई हुई है। इस पक्ष पर विवाद करते हुए "पंजाबी" ने लिखा था—

यह बात नोट करने की है कि निर्वासित सज्जनों को यह हर्ष समाचार ९ नवम्बर अर्थात् सम्राट् के जन्म दिवस को नहीं सुनाया गया, प्रत्युत दो दिन पीछे अर्थात् ११ नवम्बर को बतलाया गया। यात्रा करते हुए भी अधिकारियों ने बन्दियों

को यह नहीं बतलाया कि उनकी मुक्ति महाराज सम्राट् क जन्म दिन के अनुग्रह के रूप में हुई है। उनके स्थान परिवर्तन अथवा रिहाई के वारण्ट में भी इस प्रकार का कोई संकेत न था। लाहौर पहुँचने तथा मुक्त हो जाने के अनन्तर उनको ज्ञात हुआ कि इस घटना का ९ नवम्बर तथा सम्राट् के अनुग्रह से क्या सम्बन्ध है। थोड़ी बहुत प्रामाणिक घोषणाएं जो "पाइनियर" तथा सिविल एण्ड मिलिटरी गजट जैसे पत्रों में प्रकाशित हुईं, उनसे प्रकट होता है कि वह क्षमा की आज्ञा वायसराय की ओर से ही माण्डले गयी थी। प्रतीत होता है कि वायसराय का आज्ञा पत्र ९ नवम्बर को ही माण्डले पहुँचा, परन्तु यह रहस्य अभी तक नहीं खुल पाया कि वास्तव में वह आज्ञा लन्दन से अथवा शिमला से जारी हुई और श्रीमान् सम्राट् या उनके जन्मदिन का भी उसके साथ कोई सम्बन्ध था अथवा नहीं।

लाहौर की ओर वापसी की यात्रा में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। हाँ, अधिकारियों का व्यवहार अधिक शिष्टतापूर्ण था तथा भोजन की सामग्री में बहुत अधिक उदारता प्रदर्शित की गयी थी। यात्रा को गुप्त रखने का प्रयत्न भी पूर्ववत् था, परन्तु जहाँ जहाँ भी वह बन्द गाड़ी ठहरती थी, जनसमूह किसी न किसी प्रकार पता लगा लेते थे। जहाँ जहाँ गाड़ी ठहरती थी, उसकी खिड़कियां बन्द कर दी जाती थीं। लाजपतराय को रंगून के पास वाले उसी स्टेशन पर उतार लिया गया और उन्हें उसी घाट पर से उसी जहाज़ पर सवार कराया गया जिस पर वह पहले गये थे। १२ नवम्बर को ७-१० प्रातः रंगून से चलकर जहाज़ १५ नवम्बर की शाम को हुगली में पहुँचा। दूसरे दिन साढ़े पांच बजे प्रातः संगोर लाइट हाउस से चलकर साढ़े आठ बजे डायमण्ड हार्बर पर जा लगा। वापसी यात्रा में भी समुद्र, उसी प्रकार तूफानी था, यद्यपि अन्तिम दिन शान्त रहा। १० बजे प्रातः जहाज़ ने कलकत्ते से २५-३० मील दूर रायपुर में लंगर डाल दिया।

वहां साढ़े चार बजे सायंकाल तक ठहर कर, जहाज़ कलकत्ते को चल पड़ा। प्रायः सूर्यास्त के समय वह बजबज आ गये। "मैंने फिर भारत भूमि पर पग धरा" लाला जी लिखते हैं। "एक ओर एक स्पेशल ट्रेन प्रतीक्षा में खड़ी थी। बंगालपुलिस के एक इन्स्पेक्टर ने हमारा चार्ज लिया। दोनों बन्दियों को पृथक पृथक रखा गया—एक को फर्स्ट क्लास के डिब्बे में और दूसरे को सेकिन्ड क्लास में। गाड़ी ने एक विशेष निर्धारित मार्ग पकड़ा—रास्ते में बिलासपुर आया वहाँ से एक ब्रांच लाइन द्वारा कटनी तथा वहां से सदर्न पंजाब रेलवे भटिण्डा के रास्ते लाहौर। ट्रेन का नाम कल्पित सा रख दिया गया और इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि प्लेटफार्मों के पास कोई भारतीय न फटकने पावे।" लालाजी ने स्वयं लिखा है। वह आगे लिखते हैं—

"इस समस्त यात्रा में जिसमें सात दिन लगे, सरदार अजितसिंह तथा मुझे पृथक् पृथक् रखा गया। रेलवे यात्रा में प्रायः खिड़कियां बन्द रहती थीं। कभी कभी तो हमें गुप्त रखने का प्रयत्न अत्यन्त हास्यास्पद तथा विचित्र बन जाता था। जहाज़ पर, जब तक कोठरियों का प्रबन्ध नहीं हुआ था, मुझे तथा सरदार अजितसिंह को जहाज़ के भिन्न भिन्न कोनों में खड़ा होने की आज्ञा दी गयी। जहाज़ से उतरने से पूर्व, मुझे कप्तान की आज्ञा मिली कि मैं अपनी कोठरी से बाहर न निकलूं। उसी समय सरदार अजितसिंह को भी नीचे चले जाने को कहा गया। आध घण्टे तक हमारे लिये वह आज्ञा थी और दोनों कप्तान हमारे उतरने तथा पहरे आदि के बारे में बातचीत करते रहे।

पुलिस के पहरे के अतिरिक्त, बंगाल नागपुर रेलवे के ट्रैफिक मैनेजर मि० क्लार्क तथा सहायक ट्रैफिक मैनेजर भी कलकत्ता से उनके साथ हो गए। मि० क्लार्क ही अपनी सेलून में मुझे खाना खिलाता था और उसका व्यवहार शिष्ट तथा सज्जनतापूर्ण था।" लालाजी कहते हैं—"भोजन अधिकांश टीन के बन्द डिब्बों वाला ही था, परन्तु मि० क्लार्क उसे पर्याप्त मात्रा में पहुँचाने का पूर्ण प्रयत्न करता था।"

"मेरे निर्वासन की कहानी" का अन्तिम पृष्ठ मितव्ययिता पर एक मनोहर उपदेश है। सुनिए:—

"वापसी यात्रा में जिस उदारता से खाद्य सामग्री का प्रबन्ध किया गया था, उसमें तथा माण्डले जेल के अध्यक्ष की मितव्ययिता में आकाश पाताल का अन्तर था। मेरे विचार में सरकार को जो भारी बिल मेरे कारण चुकाना पड़ा, उससे पाठक गण मेरे खानपान की रुचियों के बारे में कोई परिणाम न निकालेंगे, क्योंकि जो बहुमूल्य पदार्थ मेरे लिए खरीदे गए थे, मैंने तो उनको स्पर्श तक नहीं किया। मेरे मन में यह विचार आए बिना न रह सके कि कोई भी स्वतंत्र देश सार्वजनिक धन का ऐसा दुरुपयोग करने का साहस नहीं रखता होगा, जैसा कि यहां स्पेशल ट्रेन, स्पेशल जहाज़ तथा अनावश्यक रूप से मामले को गुप्त रखने के प्रबन्ध आदि पर किया गया। सभी कुछ हास्यास्पद था। देश की प्रजा के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क न रखनेवाली विदेशी सरकार के रंगढंग पर यह एक करुणा भरी आलोचना थी।"

अन्त में यात्रा समाप्त हुई। लालाजी को लाहौर के मुख्य स्टेशन के स्थान पर मियांमीर (जिसे आजकल लाहौर छावनी पश्चिमी के नाम से पुकारा जाता है) १८ नवम्बर को साढ़े पांच बजे प्रातः उतारा गया। ११ नवम्बर से १७ नवम्बर के इस पूरे सप्ताह को मानो विधाता ने लालाजी के जीवन की अन्तिम पुनीत घड़ियों के साथ प्रारंभ से ही जोड़ रखा था।

"तत्काल ही मुझे तथा सरदार अजितसिंह को एक सेलून में ले जाया गया। वहाँ लाहौर सेण्ट्रल जेल के अध्यक्ष, मि० सी० एच० बैंसले ने हमें पहले तो माण्डले जेल से लाहौर जेल को बदली की आज्ञा, और फिर मुक्ति की आज्ञा पढ़ कर सुनायी। यह कार्यवाही समाप्त होते ही मुझे सवारी के लिये एक लैण्डो (गाड़ी) तथा मेरे असबाब के लिये एक टमटम दी गयी। लाहौर जिला पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० रण्डल मेरे आगे आगे अपनी गाड़ी चला रहे थे और मुझे मेरी कोठी के अहाते में छोड़कर चले गए।

"इस प्रकार, छः मास और नौ दिनों की अनुपस्थिति के अनन्तर मैं पुनः घर लौट आया।" लाला जी के शब्द हैं। "पंजाबी" ने उनके आगमन की घोषणा निम्नलिखित काव्यमय शब्दों में की—

"७ बजे के लगभग, जंगल की आग की तरह, यह समाचार नगर भर में फैल गया कि निर्वासित सज्जन अभी आ गए हैं और लाहौर में अपने अपने मकानों में जा पहुँचे हैं। शीघ्र ही लाला लाजपतराय के भवन को दर्शनोत्सुक जनसमूह ने घेर लिया। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी श्रेणियों के लोग उनके दर्शन करने तथा बधाई देने के लिये टूटे पड़ते थे। लगभग सारा सोमवार, उनको लोगों के मिलने जुलने में खड़े खड़े व्यतीत करना पड़ा। एक वृद्ध सज्जन लालाजी के चारों ओर के इस दृश्य को देखकर बोल उठे, "लालाजी, यह हैं आपके एक लाख अनुयायी", परन्तु लालाजी की समझ में उस उक्ति का महत्व उस समय न आ सका, क्योंकि ९ मई (घर से वियोग के समय) से लेकर १८ नवम्बर (वापसी) तक का समस्त भारतीय इतिहास तथा समाचारपत्रों की घटनाएँ उनके हृदयपट से मिट सी चुकी थीं। उनका स्वागत भी भिन्न भिन्न प्रकार से किया गया। कई लोग तो उनको मित्र रूप से गले लगाते थे और नेत्रों में स्नेहजल भरा होता था। कई सज्जन उनको दूर से सादर प्रणाम करते थे। दर्शकों में नगर भर के प्रमुख हिन्दू सज्जन सम्मिलित थे। कुछ मुसलमान सज्जन भी अपने पुराने मित्र के दर्शनार्थ आए। लालाजी, छः मास के कारावास, तथा सप्ताह भर की थका देने वाली यात्रा के होते हुए भी हृष्ट पुष्ट तथा आनन्द से थे। मित्र मण्डली को इससे अपार हर्ष हुआ। वह और भी अधिक प्रसन्न हुए जब उनको ज्ञात हुआ कि उनको बिना किसी प्रतिबन्ध के मुक्त किया गया है।"

अध्याय इक्तीसवाँ

मुक्ति के पश्चात् राजनीतिक प्रभाव में भारी वृद्धि आर्यसमाज में वही निष्ठा

रूस में, जब कभी किसी शिक्षा सम्पन्न आचरणवान् अथवा बुद्धिमान् पुरुष, स्त्री अथवा बच्चे को गिरफ्तार करते हैं, तो उसे सीधा साइबेरिया भेज देते हैं। यह कार्य प्रशंसनीय है और शानदार है। यह कार्यवाही इतनी प्रभावशाली तथा पूर्ण होती है कि इसके द्वारा रूसी शिक्षा तथा मस्तिष्क सम्राट् की शिक्षा तथा मस्तिष्क के स्तर की समता की हो जाती है। (मार्क ट्वेन)

माण्डले से लौटकर, लाजपतराय की भारतीय राजनीति के क्षेत्र में, ख्याति चमक उठी। उनके उत्कर्ष में निर्वासन का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके ख्याति-भवन में पहुँचने में प्रथम वर्णनीय सीढ़ी तो वह भाषण था जो उन्होंने १७-१८ वर्ष की आयु में स्वामी दयानन्द के परलोकगमन के अवसर पर दिया था। इससे सार्वजनिक वक्तृत्व के क्षेत्र में आपकी आश्चर्यमयी और जादू भरी शक्ति की घोषणा हो गयी और आपकी गणना आर्यसमाज के इने-गिने चोटी के नेताओं में होने लगी। सर सैयद अहमद खाँ के नाम खुली चिट्ठियाँ उससे अगली भारी सीढ़ी थी, जिसके द्वारा आपकी प्रसिद्धि तथा नाम आर्यसमाज और पंजाब की सीमाओं के बाहर भी जा पहुँचे। उसके तत्काल अनन्तर ही जब आप कांग्रेस अधिवेशन में पहुँचे तो आपको ज्ञात हुआ कि आपने ख्याति के दुर्ग को जीत लिया है। उनका बनारस वाला भाषण जिसमें उन्होंने आत्मविश्वास तथा साहसपूर्ण राष्ट्रीयता का सन्देश दिया था, उनके तथा कांग्रेस दोनों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना है। नवीन शक्तियां, जो जनता की कल्पना को आकर्षित कर रही थीं और जिसके कारण वह राजनीतिज्ञों की वर्तमान नरम नीति को निकम्मी, भिक्षुक वृत्ति समझने लगे थे, इस भाषण की उपज नहीं थीं, परन्तु उससे यह तो स्पष्ट हो गया था कि वह इस बात को अनुभव करने लग गए थे कि कांग्रेस की नीति बिलकुल ढीली-ढाली तथा भीरुतापूर्ण हो रही है। इस भाषण से लाजपतराय के साहसपूर्ण विचारों का पता चलता है जो उनको इंग्लैण्ड के अनुभवों से प्राप्त हुए थे। उन्हीं

दिनों संसार में, विशेषतः पूर्वीय देशों में, विशेष गतिशील शक्तियां काम कर रही थीं। निर्वासन चौथी महत्वपूर्ण सीढ़ी थी—यह भी पिछली तीनों सीढ़ियों की पराकाष्ठा। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया अवस्था की नाईं ये सीढ़ियां, क्रमशः उन्नति की सोपान थीं।

जिन युवक हृदयों पर नरम दल के नेताओं की लच्छेदार तथा सर्वांगपूर्ण वक्तृताओं का रत्ती भर भी प्रभाव न होता था, वही स्वराज्य, स्वदेशी तथा बहिष्कार के नवीन सन्देश से तत्काल ही उछल पड़े। कांग्रेस की बागडोर किसी भी हाथ में क्यों न हो, जनता तो नवीन दल के कार्यक्रम की ओर खिंची चली आ रही थी। नवीन सन्देश से करोड़ों व्यक्तियों की हृदय गति तेज़ हो गयी थी। वीरपूजा के भाव ने एक नयी त्रिमूर्ति—बाल, पाल, लाल (बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल तथा लाला लाजपतराय के रूप में) खड़ी कर दी। यह नेता महाराष्ट्र, बंगाल तथा पंजाब—तीन प्रान्तों के थे, जहां नवीन आन्दोलन अत्यन्त बलशाली था। असंख्य घरों की दीवालों पर इस त्रिमूर्ति के चित्र शोभायमान होकर यह प्रकट कर रहे थे कि वह उनके राजनैतिक अगुआ हैं। उस युग के युवकगण (जिन्होंने आगे चल कर भारत के स्वातंत्र्य आन्दोलन के लिए कुछ त्याग किया अथवा कष्ट उठाए) इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके प्रथम दर्शक यही त्रिमूर्ति—अर्थात् बाल, पाल तथा लाल थे। "वन्देमातरम्" तथा बाल-पाल-लाल के उन सर्वप्रिय चित्रों ने उन युवक नेत्रों के सन्मुख एक ऐसा नवीन संसार ला रक्खा जिसमें निष्क्रिय प्रतिरोध तथा असहयोग की भावना प्रबल थी।

"बाल" तथा "पाल" तो अपनी दलगत भक्ति में बिलकुल अटल थे, परन्तु "लाल" की दशा विचित्र थी। उनको नवीन सिद्धान्तों में तो विश्वास था, परन्तु उनके लिए गोखले के साथ निजी प्रेम सम्बन्ध को तोड़ कर पृथक होना अत्यन्त कठिन था। गोखले विपक्षी दल के सूत्रधार थे। उन्होंने मातृभूमि के लिए भारी त्याग तथा सेवाएं की थीं। लाला जी के उच्च आचरण तथा सत्यप्रियता को देख कर जन साधारण को दृढ़ विश्वास हो गया था कि वह सर्वथा निर्दोष तथा निष्पाप हैं और उनके शत्रुओं के आरोप सर्वथा मिथ्या और निराधार हैं। इस प्रकार उनके निर्वासन को हुतात्मा की अमरता का रंग रूप प्राप्त हो गया था। इससे वह नवीन आन्दोलन के साथ सहानुभूति रखने वालों की दृष्टि में अत्यन्त ऊँचे उठ गए। इससे गर्म दल वाले तो और भी अधिक गर्म हो गए। प्राणों पर खेलने वाले तथा जोशीले युवक तो भड़क ही उठे। भड़कते भावों को प्रतिबन्ध में रखने वाली शक्तियां निर्बल हो गयीं। अपने निर्वासन के अनन्तर की घटनाओं का विश्लेषण करते हुए लाजपतराय ने "यंग इंडिया" में लिखा था:—

"मई १९०७ में, लाजपतराय के आकस्मिक निर्वासन ने विचारों तथा कार्यों की समस्त लहर का रूप ही बदल दिया। राष्ट्रवादी इस परिणाम पर पहुंचे कि निष्क्रिय प्रतिरोध के आन्दोलन का समर्थन गुप्त प्रचार तथा (पशु) बल के मुकाबले में (पशु) बल से होना चाहिए। लाजपतराय के निर्वासन के अनन्तर, माननीय गोपालकृष्ण गोखले ने गवर्नर जनरल की कौंसिल में भाषण देते हुए कहा था कि लाजपतराय एक धार्मिक, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी सुधारक हैं। उनके समस्त देश की अधिकांश जनता उनके प्रति प्रेम तथा श्रद्धा रखती है और जिनके शिक्षा सम्बन्धी तथा परोपकारी कार्य जन साधारण को पसन्द हैं। बिना मुकदमा चलाए, बिना दोषारोपण किए तथा बिना सूचना दिए ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी ने युवक राष्ट्रवादियों को पागल बना दिया है। गम्भीर तथा विचारशील राष्ट्रवादी भी हताश हो गए हैं।

"देश भर के ऐंग्लो-इंडियन पत्रों के हर्ष का पारावार नहीं रहा। लाजपतराय के हेडक्वार्टर, लाहौर से प्रकाशित होने वाले प्रमुख अर्द्ध-सरकारी दैनिक ने तो उनको एक भारी क्रान्तिकारी आन्दोलन के सूत्रधार के नाम से पुकारा। यह भी कहा गया कि एक लाख (जांबाज़) सिर धड़ की बाज़ी लगाने वाले उनके अनुयायी हैं। कलकत्ता के इंगलिशमैन ने तो उन पर भारतीय सेना को बिगाड़ने तथा अफगानिस्तान के बादशाह को भारत पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित करने का दोषारोपण किया। उनको निर्वासित भी किया गया और साथ ही बदनाम भी किया गया। देश की क्रोधाग्नि धधक उठी। लोगों ने एकमत होकर इस कार्यवाही की निन्दा की। उन्होंने बल प्रयोग की ठान ली और स्थापित अत्याचार के विरुद्ध बम, पिस्तौल तथा गोरिला युद्ध का आश्रय लेना प्रारंभ कर दिया। वयस्क लोग, यद्यपि उनसे सहानुभूति रखते थे, परन्तु उस पशुबल के प्रयोग वाले आन्दोलन में कोई भाग नहीं लेते थे, न वह ऐसे कार्यों को अपनी स्वीकृति देते थे।

"सम्भव है कि बंगाल में किसी प्रकार की किसी गुप्त संस्था का अस्तित्व १९०६ में भी हो, परन्तु मई १९०७ तक—अर्थात् लाजपतराय के निर्वासन तक बल प्रयोग का प्रवेश उनके कार्यक्रम में नहीं हुआ था। निर्वासन ने उनका झुकाव निश्चित रूप से उधर ही कर दिया। फिर भी, दिसम्बर १९०७ तक पहली गोली नहीं चली और अप्रैल अथवा मई १९०८ तक पहला बम नहीं फेंका गया। दिसम्बर १९०७ में, सूरत में, राष्ट्रवादियों में सदा के लिए फूट पड़ गयी और वह दो दलों में विभक्त हो गए। युवक दल, अपने बल प्रयोग के कार्यक्रम में दृढ़ हो गया।"

निर्वासित लाजपतराय का प्रभाव ऐंग्लो इंडियन मनोवृत्ति पर भी बिलकुल उतना ही गम्भीर था जितना कि भारतीय गरम दल वालों पर, हां, उसकी दिशाएं

पृथक पृथक थीं। सरकार के अपने उच्चाधिकारी भी स्वीकार करते थे कि लाजपतराय उच्च आचरण के मनुष्य हैं और उनके पास रत्ती भर भी प्रमाण उनके विरुद्ध नहीं था जिससे वह अपनी आशंकाओं को समुचित समझ कर उनको एक असाधारण कानून द्वारा निर्वासित करते। पाठक गण इस कथा के अन्त तक यही देखेंगे कि किस प्रकार ब्रिटिश अधिकारियों ने इस शुद्ध हृदय तथा निर्दोष सज्जन का पीछा जारी रखा और उसे बार बार तंग करते रहे। इसका कारण यही था कि ऐंग्लो-इंडियन मन में इसी १९०७ वाली घटना का भूत बुरी तरह समा गया था। वह समझते थे कि किसी न किसी प्रकार का उनका सम्बन्ध गुप्त योजनाओं तथा गूढ़ षड्यंत्रों के साथ अवश्य है। यदि किसी प्रकार उनको यह विश्वास हो जाता कि उनकी यह धारणा सर्वथा मिथ्या तथा निराधार है, तो (पंजाब की तथा उनकी निजी) अगले वर्षों की कथा सर्वथा दूसरे प्रकार की होती।

अध्याय बत्तीसवाँ

आपत्तिकाल तथा आर्यसमाजी मित्र

उनके आपत्तिकाल में, उनके सभी आर्यसमाजी मित्र उनके साथ न रह सके। नाना प्रकार की बातें उनके कानों तक भी पहुँचीं। दमन-चक्र के कारण, पंजाब के "नेता" फिसल गए। वह डेपुटेशन बना बना कर लेफ्टीनेण्ट गवर्नर के पास जाकर उसे अपनी राजभक्ति का विश्वास दिलाने लगे। आर्यसमाजियों तथा अन्य लोगों में इस विषय में एक प्रकार की होड़ सी लग गयी। आर्यसमाजी नेताओं ने समझा कि लाजपतराय पर किया गया प्रहार वास्तव में उनकी संस्था पर चोट थी। लाला मुंशीराम (आगे चल कर स्वामी श्रद्धानन्द कहलाए) जैसों ने तो साहसपूर्वक इस निराधार प्रोपेगण्डा का खण्डन किया कि आर्यसमाज एक राजद्रोही संस्था है, अन्य लोगों ने शासकों के सम्भाव्य कोप के प्रहार से आर्यसमाज की रक्षा करने के लिए लाजपतराय से सम्बन्ध विच्छेद करना तथा उनके तत्कालीन राजनैतिक कार्यों की निन्दा करना आवश्यक समझा। कई लोगों का विश्वास था कि आर्य-समाज के कतिपय नेताओं की ऐसी कार्यवाही से लाजपतराय सदा के लिए आर्यसमाज को छोड़ जायंगे। परन्तु उनके स्वभाव की विशेषता देखिए कि माण्डले से लौटने के अनन्तर उनका सर्वप्रथम भाषण आर्यसमाज के मंच से लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर हुआ। उनके नाम को सुनकर उस वर्ष लाहौर में जनता असाधारण भारी संख्या में एकत्रित हुई और १९०७ का वार्षिकोत्सव विशेष समारोह तथा उत्साह से हुआ। इस भाषण में आपने अपने मित्रों के कार्य का बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन किया।

एक पत्र ने भाषण के विवरण में लिखा "उन्हें बतलाया गया कि आर्यसमाज ने उनके साथ विश्वासघात किया है और अब उनको चाहिए कि उसके हाथ की कठपुतली न बनें। ऐसे लोग यह कभी नहीं सोचते कि लाजपतराय ने किसी नेता की खातिर आर्यसमाज में प्रवेश नहीं किया था, प्रत्युत उन उच्च आदर्शों के लिए आपने उसमें भाग लिया जो उसने आपके सामने रखे थे। उनको किसी के

विरुद्ध कोई शिकायत नहीं। समस्त जाति के प्रेम तथा सहानुभूति के मुकाबले में कुछ लोगों की उदासीनता क्षन्तव्य है।"

आपने तो इससे भी एक पग आगे जाकर जनता के सामने अपने मित्रों के कार्य का समर्थन किया। "आर्यसमाज जैसी धार्मिक संस्थाओं के लिए यही उचित तथा न्यायसंगत है कि वह राजनीति के क्षेत्र से दूर रहें, नहीं तो उनके आध्यात्मिक सुधार के कार्य को हानि पहुँचेगी। यदि आर्यसमाजी नेताओं ने यह समझा कि आर्यसमाज के साथ मेरे सम्बद्ध होने से उनके अनिष्ट होने की सम्भावना है तो मैं उसकी कार्यकारिणी तथा प्रबन्धक समिति के सभी पदों को त्यागने को उद्यत हूँ। हां, आर्य धर्म के साथ तो मैं आजीवन चिपटा रहूंगा और अपने धर्म अथवा मातृभूमि की उन्नति के लिए सर्वस्व त्याग के लिए सदैव तत्पर रहूँगा।"

धन संग्रह की अपील आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के कार्यक्रम का सब से महत्वपूर्ण अंग होता है। इस वर्ष भी, गत वर्षों की तरह, यह कार्य उनके सिपुर्द किया गया।

कई लोगों ने उन्हें बतलाया कि मुसलमानों ने उनके सत्यानाश का षड्यंत्र रचा है। आपने इसका भी उन्हीं उदार शब्दों में उत्तर दिया। अगले मास अखिल भारतीय स्वदेशी सम्मेलन का सभापतित्व करते हुए आपने कहा "जब से मैं लाहौर पहुंचा हूँ, बार बार मेरे कानों में यह बात डाली गयी है कि मेरे देशवासियों की एक भारी संख्या मुझसे घृणा करती है और मेरे निर्वासन में मुख्यतः मुसलमानों के षड्यंत्र का हाथ है और कुछ हिन्दू सज्जनों ने भी ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से उनसे मिलकर मुझे बर्बाद करने की योजना तैयार की है और मेरे मित्रों अथवा साथियों ने आपत्ति काल में मेरा साथ छोड़ कर अपनी जान बचा ली है। मुझे यह भी बतलाया गया है कि वर्तमान परिस्थिति में देश का राजनैतिक उद्धार टेढ़ी खीर है जिसके लिए मुझे अपना अधिक समय तथा शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए। जहां तक गत छः मास के कष्टों का सम्बन्ध है, मैं नहीं मान सकता कि वह मुसलमानों के षड्यंत्रों के कारण ही मुझे झेलने पड़े। मुझे निश्चय है कि कुछ हिन्दू चापलूसों तथा गुप्तचरों ने भी मुसलमान षड्यंत्रकारियों की सहायता की है और कुछ व्यक्तियों के दोष के कारण समस्त जाति को लांछित करना उचित नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि सामूहिक रूप से देश ने सरकार के कोपभाजन व्यक्तियों का बढ़ चढ़ कर साथ दिया है। मुझे तो अचम्भा है कि देशद्रोहियों तथा नमकहरामों की संख्या इससे अधिक क्यों नहीं है। सरकारी उपाधियों तथा पदों के इच्छुक मुसलमानों की सीमित संख्या को छोड़ कर अन्य मुसलमानों की सहानुभूति के कई प्रमाण मुझे प्राप्त हो चुके थे और अब भी मेरा विश्वास है कि ज्यों ज्यों मुसलमानों

में शिक्षा फैलती जायगी, राजनैतिक उद्देश्यों के लिए हिन्दू और मुसलमानों का मिलाप असम्भव न रहेगा। मैं मुसलमान धोबियों तथा अन्य निम्न श्रेणी के लोगों के मुखड़ों पर दुख तथा सहानुभूति के चिह्नों को कैसे भूल सकता हूँ? जब वह माण्डले के दुर्ग में मुझे भ्रमण करते हुए मिला करते थे मैंने कई लोगों को तो सहानुभूति के कारण रोते और अश्रुपात करते देखा। शासकों ने लोगों को मेरे साथ समवेदना प्रकट करने से रोकने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु मुझे यह बात जीवन भर नहीं भूल सकेगी कि उनके वह प्रयत्न सर्वथा निष्फल रहे और जनता ने मुझे अभिवादन करना जारी रखा। उस सुखद स्मृति ने मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव डाला है और जब से मैं मातृभूमि को लौटा हूँ, वह प्रभाव उत्तरोत्तर गहरे होते गए हैं।" ये शब्द लाला जी के श्रीमुख के हैं।

अध्याय तैंतीसवाँ

कठिन परीक्षा का समय

एक भारी परीक्षा लाला लाजपतराय की प्रतीक्षा में थी। यह परीक्षा उस परीक्षा से भी कहीं कठोरतर थी जिसमें से गुजर कर वह राष्ट्रीय नेता बन पाए थे। अपनी गिरफ्तारी से पूर्व भी वह अनुभव कर रहे थे कि नरम दलवालों तथा तिलक-पंथियों—गरम दल वालों—के बीच मतभेद की खाई दिन प्रति दिन चौड़ी होती जा रही है! यदि इस शक्तिशाली दलके उत्थान के कोई लक्षण दिखलाई न पड़ते तो यह सन्दिग्ध बात है कि लाजपतराय के लिए राजनीति अथवा नेशनल कांग्रेस में किसी प्रकार का आकर्षण हो सकता। कांग्रेस का आरंभिक कार्य उनमें किसी प्रकार का उत्साह उत्पन्न करने में असफल रहा। राष्ट्रीय जागृति में उनका निजी भाग भी तो कांग्रेस मंच द्वारा नहीं, प्रत्युत उर्दू में लिखित मेजिनी तथा गेरीबाल्डी की जीवन वाली पुस्तकों से ही था। परन्तु १९०४-५ से वह वातावरण में एक परिवर्तन देख रहे थे और वह उसके अनुसार ही कार्य करना जानते थे। बनारस कांग्रेस पर उनका भाषण उग्रवादियों की उभरती हुई शक्ति का प्रतीक था। परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं बनारस में उन्हें इस बात की भारी चिन्ता थी कि कहीं गोखले उनसे बिगड़ न बैठें, क्योंकि उनके हृदय में गोखले के प्रति भारी आदर तथा प्रतिष्ठा के भाव थे। लालाजी ने ही समझौते का आधार सम्भाव्य बना कर कांग्रेस पण्डाल में होने वाले अवांछित "दृश्यों" का होना रुकवाया था। यद्यपि आपने तिलक का साथ दिया था, परन्तु उस समझौते से गोखले भी आपके कृतज्ञ हुए। यद्यपि आपने की तो मध्यस्थता किन्तु माने गये तिलक के पक्ष के ही!

लाजपतराय नवम्बर में छूटे, परन्तु यह स्पष्ट दिखलायी पड़ता था कि उससे अगले मास कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर दोनों दलों में दंगल होगा। यद्यपि लाजपतराय साहसपूर्ण नीति के पक्ष में थे, परन्तु अन्य लोगों की अपेक्षा उनको इस बात की कहीं अधिक चिन्ता थी कि कांग्रेस में वह फूट न पड़ने पावे। सम्भव है कि अधिक सोच विचार के पश्चात् वह इस परिणाम पर पहुंचे हों कि द्रुत गति से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी। सम्भव है कि गोखले के प्रति उनकी निजी

श्रद्धा (और किसी हद तक मालवीय के प्रति भी) इसका कारण हो कि वह भी संकोच में पड़ गए और उन्होंने अपनी गति मन्द कर ली। कारण कुछ भी क्यों न हो, सत्य यह है कि आप स्पष्ट रूप से किसी दल के पक्ष में होने के अनिच्छुक थे।

परन्तु जनता ने, उनको, विशेषतः निर्वासन से लौटने के पीछे, तिलक दल में सम्मिलित मान लिया और उनसे वैसे ही व्यवहार की आशा की जाने लगी। क्या बाल-पाल-लाल की त्रिमूर्ति का कोई अन्य अर्थ हो सकता था ?

राष्ट्रीय दल वालों का भी वैसा ही विचार था और वह उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए उम्मीदवार खड़ा करना चाहते थे।

इसी प्रकार, नरम दलवालों ने भी स्पष्ट कर दिया कि वह उनको अध्यक्ष नहीं बनने देना चाहते।

यह सत्य है कि गोखले के हृदय में भी उनके लिए सच्चा और महान् आदर था। कई लोगों के लिए तो यह एक पहेली थी कि लाजपतराय एक ही समय में तिलक तथा गोखले दोनों के मित्र और प्रशंसक हों। जन साधारण का तो यह भी विश्वास था कि तिलक को क़ैद कराने का उत्तरदायित्व भी गोखले का है, परन्तु वही लोग यह भी कहते थे कि लाजपतराय की मुक्ति के प्रयत्न भी गोखले द्वारा हुए हैं। जब नरम तथा गरम दल का प्रश्न आया, तो लाजपतराय ने अपने व्यवहार से स्पष्ट कर दिया कि वह गोखले के पन्थ के अनुयायी नहीं।

इस प्रकार जन साधारण, तिलकानुयायी तथा नरम दल वाले, सभी लाजपतराय को उग्रपन्थी समझते थे, परन्तु लालाजी स्वयं उग्रपन्थी कहलाने को तैयार नहीं थे, यदि उसका अर्थ कांग्रेस में फूट पड़ना ही था। वह राष्ट्र के सर्वोच्च पद-ग्रहण को भी उद्यत नहीं थे, यदि उसका अर्थ गोखले की अप्रसन्नता अथवा कांग्रेस में फूट पड़ना था। वह प्रतीक्षा कर सकते थे।

प्रश्न यह था कि उनकी इस कार्यवाही से उग्रवादियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? शायद उनका ध्यान प्रश्न के इस पहलू की ओर अधिक न था। शायद वह दलबन्दी की अपेक्षा सम्मिलित मोर्चे को अधिक महत्व देते थे। यदि उनके मित्र यह अनुभव करने लगें कि उन्होंने उनके दल को छोड़ दिया है तो उनकी अपनी इच्छा। इस सम्बन्ध विच्छेद में उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ तो था नहीं। जैसा कि महाकवि ब्राउनिंग ने "पतित नेता" में लिखा है कि "वह एक मामूली उपाधि की खातिर हमको छोड़ गया है।"

"हम नवम्बर में ही छूटे, और मैं अभी भारत पहुंचा ही था कि तिलक ने आगामी कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए मेरा नाम पेश कर दिया। नरम दल वालों ने विरोध किया और मैंने उम्मीदवार बनने से इनकार कर दिया। इससे गोखले

तो प्रसन्न हुए परन्तु तिलक बिगड़ उठे। अब यह प्रसिद्ध किया गया कि कांग्रेस के खुले अधिवेशन में स्वागत समिति की ओर से चुने हुए प्रधान मि० रासबिहारी के मुकाबिले में तिलक का नाम पेश किया जायगा।"

सूरत अधिवेशन के पश्चात् तिलक, खापर्डे, अरविन्द घोष एवं मुकर्जी तथा बी० सी० चटर्जी के हस्ताक्षरों से जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ, उसमें लाजपतराय की नामज़दगी का विरोध करने का दोष गोखले के सिर मढ़ दिया गया।"सूरत में स्वागत समिति में सर फिरोजशाह के अनुयाइयों का बहुमत था और माननीय मि० गोखले ने चालाकी से कमेटी द्वारा रासबिहारी घोष का नाम मनोनीत करवा लिया और लाला लाजपतराय का नाम बिलकुल ही काट दिया गया। कारण यह बतलाया गया कि इस समय सरकार को नाराज नहीं कर सकते। सरकार शीघ्र ही हमारे आन्दोलन का गला घोंट देगी। इस बात को जनता की भावना का अपमान समझा गया है और डा० घोष के नाम देश के विभिन्न भागों से कम से कम एक सौ तार पहुंचे होंगे जिनमें उनसे प्रार्थना की गयी कि उदारशयता दिखला कर लाला लाजपतराय के पक्ष में रिटायर हो जायं। दुर्भाग्य से डा० घोष ने जनमत की अवहेलना करने का निश्चय कर लिया। इसके विपरीत, लाला लाजपतराय ने पद ग्रहण करने से ही इनकार कर दिया। परन्तु जनता इससे सन्तुष्ट नहीं हुई क्योंकि वह उपरोक्त कारण से कांग्रेस के प्रधान के चुनाव के सिद्धान्त पर विवाद करना चाहती है। जनता का विश्वास है कि सरकार की दमनकारी नीति का बलशाली प्रतिवाद लाला लाजपतराय को कांग्रेस का प्रधान चुन कर ही किया जा सकता है।"

उत्तर में गोखले ने लिखा—"मुझ पर यह दोषारोपण किया गया है कि मैंने लाला लाजपतराय का नाम अध्यक्ष पद के लिए इसलिए पेश नहीं होने दिया कि इससे सरकार अप्रसन्न हो जायगी और तत्काल ही हमारे आन्दोलन का गला घोंट देगी। किसी भी निजी बातचीत को प्रसंग में पृथक करके बुरी तरह बिगाड़ना हमारे विरोधियों को शोभा नहीं देता। २४ नवम्बर को स्वागत समिति की बैठक से पूर्व मैं सूरत के एक उग्रवादी सज्जन से इस बारे में बातचीत कर रहा था। मैंने उनको बतलाया कि तीन कारणों से लाला लाजपतराय को मनोनीत करना अनुचित होगा:—

प्रथम, कांग्रेस अधिवेशन की तैयारी के लिए स्वागत समिति के पास केवल एक ही मास की अवधि है। (हालांकि अन्य स्थानों में कम से कम ३-४ मास मिला करते हैं) सूरत के कार्यकर्ताओं में किसी प्रकार का मतभेद भी काम की प्रगति में बाधक सिद्ध होगा।

दूसरा, लाजपतराय के बारे में उनके प्रस्ताव की सफलता की बहुत ही कम संभावना है, क्योंकि २०० सदस्यों में उनकी शक्ति तो केवल ५-६ है जिनके कि आज सायंकाल को बैठक में आने की आशा है। यदि लाला लाजपतराय का नाम अस्वीकृत हुआ तो उनका अपमान होगा और यह दुखद बात होगी।

तीसरा, यद्यपि लाला लाजपतराय मुक्त हो गए हैं, परन्तु उनके निर्वासन का आधारभूत सिद्धान्त अभी विवादास्पद विषय है। मेरी प्रबल आकांक्षा है कि समस्त देश का जनमत ठोस रूप से उनके साथ रहे। यदि कांग्रेस का एकपक्ष उनको अपना उम्मीदवार खड़ा कर दे, तो देश में फूट पड़ने की भारी सम्भावना है। मैंने यह भी बतलाया कि लाजपतराय को प्रतिष्ठा प्रदान करने के अन्य उपाय भी हो सकते हैं। मैंने यह भी कहा कि यदि आपका उद्देश्य सरकार की अवहेलना करना है तो मैं आपके प्रस्ताव का अर्थ समझ गया हूँ। एक सज्जन बोले, "हां, यदि हम और कुछ भी न करें, तो सरकार की अवहेलना तो अवश्य होनी चाहिए।" मैंने उत्तर दिया "मेरा विश्वास ऐसी बातों में नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर कांग्रेस सरकार की कार्यवाही की निन्दा कर सकती है, परन्तु उसे और भी महत्वपूर्ण काम करने हैं। इस समय सरकार की सहायता तथा सहयोग के बिना हमारा गुजारा नहीं चल सकता।"

एक अन्य वक्तव्य में सन्धि के वार्तालाप के विषय में उन्होंने लिखा—"लाला लाजपतराय जो २५ दिसम्बर के प्रातः सूरत पहुंचे, मि० तिलक तथा खापर्डे आदि से दोपहर को मिले और उनसे झगड़ा निपटाने का अनुरोध किया। तिलक तथा खापर्डे उनकी बात मान गए। फिर वह मि० गोखले के पास गए। तिलक तथा खापर्डे उसी दिन (२५ दिसम्बर) सायंकाल होने वाले राष्ट्रीय सम्मेलन को लौट गए। इस सम्मेलन में प्रत्येक प्रान्त से एक एक प्रतिनिधि को लेकर एक राष्ट्रीय कमेटी चुनी गयी जिसका कार्य दूसरे दलवालों से सन्धि की बातचीत करना था। यह भी फैसला किया गया था कि यदि उक्त कमेटी बड़े बड़े कांग्रेस अधिकारियों से कोई समझौता करने में असफल रहे, तो राष्ट्रीय दल वालों को प्रधान के चुनाव का विरोध करना शुरू कर देना चाहिए। उस रात को अथवा आगामी प्रातःकाल तक लाला लाजपतराय की ओर से उन्हें कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई।"

"उसी दिन (२५ को) लाला लाजपतराय ने मुझसे पूछा था कि क्या मैं विपक्षी दल के नेताओं को विश्वास दिला सकता हूँ कि आप लोग प्रस्तावों के बारे में भ्रम में हैं। सभी प्रस्ताव तो एजण्डा पत्रों में नहीं हैं। मैं मान गया और लाला लाजपतराय चले गए और उसी शाम को विश्वास दिला आए।"

"गरम दल के वक्तव्य में कुछ सज्जनों द्वारा समझौते के प्रयत्नों का वर्णन किया गया है। उसमें तीन महानुभावों के नाम दिए गए हैं जिन्होंने मुझसे बातचीत करने की जिम्मेदारी उठायी थी—लाला लाजपतराय, बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा मि० चुन्नीलाल डी० सराजा। इनमें से मि० चुन्नीलाल ने इस बारे में मुझसे कभी भेंट नहीं की। लाला लाजपतराय ने मुझसे संक्षिप्त बातचीत की। यह २५ दिसम्बर के सायंकाल को हुई जब हम प्रधान के स्वागतार्थ रेलवे स्टेशन पर गए थे। इसमें मि० तिलक का प्रस्ताव था कि पांच व्यक्ति उनके दल से और पांच अन्य पक्ष से मिल कर प्रस्तावों के शब्दों तथा निर्माण पर फैसला कर लें। मैंने लाला लाजपतराय को बतलाया कि शब्दों का फैसला करना विषय निर्धारिणी सभा का काम है और जिस कमेटी का प्रस्ताव मि० तिलक ने किया है, ऐसी कमेटी तो इससे पूर्व कभी नियुक्त नहीं की गयी थी। इसके अतिरिक्त मि० तिलक के लिए तो पांच व्यक्ति मनोनीत करना सहज था, क्योंकि उनके अनुयाइयों की सभाएं प्रति दिन होती रहती हैं, परन्तु घबराहट तथा कड़वाहट के वातावरण में कौन से पांच व्यक्ति अन्य प्रतिनिधियों की ओर से बोलने का अधिकार रख सकते हैं? कल विषय निर्धारिणी सभा की बैठक कर लें और हम देख लें कि किसी प्रकार मतभेद दूर किए जा सकते हैं या नहीं। लाला लाजपतराय मेरी बात को समझ गए और उन्होंने अपने प्रस्ताव पर अधिक अनुरोध न किया।"

गोखले के कुछ ही विचार क्यों न हों, लाजपतराय को उनसे कोई शिकायत नहीं थी। वह क्रोध से नहीं, वरन् बड़ी शान से मैदान से एक ओर हो गए। इससे उनको गोखले के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। वह गोखले तथा तिलक दोनों के भक्त रहने का प्रयत्न करते थे, परन्तु ठीक तथा उचित मार्ग से एक इंच भर भी इधर-उधर होना नहीं चाहते थे। उन्हें केवल इसी बात का खेद था कि उनके क्षेत्र से हट जाने से भी वह आपत्ति न टल सकी जिसका उन्हें भय था। दोनों दलों में भारी अविश्वास तथा सन्देह पाए जाते थे और दोनों ही लड़ने पर तुले हुए थे। जब घटना का केवल ऐतिहासिक महत्व शेष रह गया था—अर्थात् उसके काफी काल के पश्चात्, लाजपतराय ने कहा था, "दोनों पक्षों में सन्देह तथा अविश्वास इतना गहरा था, कि दोनों दलों के अनुयायी लड़ने पर कमर कसे हुए थे। संधि के समस्त प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए।" परन्तु वह इसमें गोखले या तिलक किसी को भी दोषी नहीं समझते थे। सूरत अधिवेशन की समाप्ति पर पत्रों के नाम वक्तव्य जारी करते हुए आपने लिखा था कि राष्ट्रवादियों की अपेक्षा नरम दल वाले फूट तथा लड़ाई के लिए कहीं अधिक उत्सुक दिखलायी पड़ते थे। परन्तु गोखले के विचार कुछ ही क्यों न हों, वह फूट नहीं चाहते थे। मि० तिलक की इच्छा

भी फूट की न थी। परिस्थितियां इतनी प्रबल सिद्ध हुईं कि दोनों ही विवश हो गए और फूट को रोक न सके।

झगड़े के गुण दोषों की तरह, सन्धि के प्रयत्नों के बारे में भी लोगों की भिन्न सम्मतियां थीं। यहां उनका विवरण देना अनावश्यक है। खुले शब्दों में लाजपतराय ने अपने सन्धि-मिशन के बारे में लिखा था : "उन दिनों मि० गोखले से मेरा घनिष्ठ सम्पर्क था और मैंने देखा कि वह बहुत घबराए हुए थे। उनका स्वास्थ्य नष्ट हो चुका था। उनको न निद्रा आती थी और न ही किसी प्रकार कल पड़ती थी। उनके समय का अधिकांश वाद विवाद में बीतता था। उनके सन्देश लेकर मैं प्रतिदिन कई बार राष्ट्रीय दल वालों के पास जाता था और मि० तिलक को यह बतलाने का यत्न करता था कि प्रधान के चुनाव का विरोध सर्वथा अनुचित तथा असंगत है। हम विवाद करते थे और युक्तियां देते थे और प्रत्येक बार मुझ पर यही प्रभाव पड़ा कि वह मुझसे सहमत हो गए हैं। परन्तु ऐसा होना भाग्य में नहीं बदा था।"

सूरत अधिवेशन का आंखों देखा तथा सुन्दर विवरण तो मि० डब्ल्यू० एच० नेविन्सन ने अपनी पुस्तक "न्यू स्पिरिट इन इंडिया" में दिया है। उसमें लाजपतराय द्वारा सन्धि की जी तोड़ परन्तु असफल चेष्टाओं का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। नेविन्सन की पुस्तक में से एक विस्तृत उद्धरण देना अनुचित न होगा—

"उग्रवादियों अथवा राष्ट्रदल वालों ने नगर से दूर अपना पृथक कैम्प खड़ा करके एक नया तथा निर्णायक पग उठाया है। गत दो दिनों से मि० तिलक ने वहाँ रह कर उनको संगठित किया है और वहां व्याख्यान दिये हैं। एक दिन पूर्व मि० अरविन्द घोष के सभापतित्व में वहां ५०० प्रतिनिधियों की एक सभा हुई और मि० तिलक ने परिस्थिति पर विस्तृत भाषण देते हुए नरम दल की विशेषत: निन्दा की, क्योंकि अफवाह है कि उन्होंने स्वायत्त शासन, स्वदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा वाले गत वर्ष के कलकत्ता वाले प्रस्ताव को वापस ले लिया है। उनका यह पग असह्य है। उसे स्वीकार करने की अपेक्षा तो वह अध्यक्ष के चुनाव का विरोध अधिक पसन्द करेंगे।

प्रस्तावों का तो कहीं नाम निशान तक न था। अफवाह थी कि उनमें इतने भारी परिवर्तन कर दिए गए हैं कि उनका रूप तक पहचानना कठिन है। कांग्रेस के प्रस्तावित विधान का एक शीर्षक कहीं देखा गया। वहां लिखा था कि कांग्रेस का अन्तिम ध्येय ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य सदस्यों के सदृश भारत के लिए भी स्वायत्त शासन प्राप्त करना है।"

समस्त वातावरण अविश्वास से पूर्ण था। कांग्रेस अधिवेशन के लिए सूरत जैसे स्थान का चुनाव ही कितना रहस्यपूर्ण था। माडरेटों, पारसियों तथा पार्लिया-

मेण्टवादियों के गढ़—बम्बई के समीप ही तो सूरत है। उन लोगों में न तो त्याग की ज्वाला है। लोक व परलोक दोनों का आनन्द लूटने वाले तथा विदेशी सरकार से उपाधियां ग्रहण करने वाले बम्बई नगरवासी कितने निकम्मे हैं! यहीं सूरत सर फिरोजशाह मेहता की अतुल सम्पत्ति का आधार था। अब समस्त पश्चिमी तट तथा बम्बई हाते पर उसी का प्रभुत्व छाया हुआ है। कलकत्ता की १९०१ की कांग्रेस के प्रधान मि० दीनशा ईदुल जी वाचा धनकुबेर उनके साथी हैं। उनके आदेश के सामने सिर झुकाने वाले अन्य भक्तगण उन्हें घेरे हुए हैं। सरकार को प्रसन्न करना ही उनका चरम लक्ष्य है। प्रसन्न होकर सरकार उपाधियां प्रदान करती है अथवा घृणा वा उपेक्षा से काम लेती है। क्या राष्ट्रीय कांग्रेस को उपाधि-धारी पारसियों के हाथ की कठपुतली बनने दिया जाय?

"........सभी बातों से एक ही उद्देश्य सिद्ध होता था। बम्बई के नरम दल वाले उस युग के अनुकूल नेता नहीं, उनको निकल जाना चाहिए!

राष्ट्र वादियों का सन्देह दिन प्रति दिन बढ़ता गया और अफवाहें सुन सुन कर उनका क्रोध भड़कता गया। क्रिसमस वाले दिन, दोपहर के पश्चात्, शान्त, निर्भीक, नरम दल वाले, लाला लाजपतराय—मि० गोखले के निजी मित्र—राष्ट्रवादियों की ओर से सभापति के पद के उम्मीदवार—लाजपतराय सन्धि का प्रस्ताव लेकर गए। वह चाहते थे कि उभय पक्ष के पांच पांच नेता मिल कर एक सभा करें। राष्ट्रीय दल ने मि० तिलक, मि० अरविन्द घोष, नागपुर के मि० खापर्डे तथा अन्य दो व्यक्तियों को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। सन्धि की आशा से लाजपतराय मि० गोखले के पास गए, जिस समय वह प्रधान के स्वागतार्थ रेलवे स्टेशन पर गए हुए थे। भला १६०० प्रतिनिधियों की ओर से बोलने वाले पांच नेताओं की नियुक्ति मि० गोखले किस प्रकार करते? गत २२ वर्ष से कांग्रेस अपने प्रस्तावों का निर्णय विषय निर्धारिणी सभा द्वारा करती आयी थी। प्रधान के भाषण के पश्चात् सायंकाल विवाद के लिए विषय निर्धारिणी सभा की बैठक हुआ करती थी। भला उस पुरानी वैधानिक प्रथा को क्यों तोड़ा जाय?

रासबिहारी के शानदार जुलूस, गगनबेधी नारों, पुष्पमालाओं तथा राष्ट्रीय पताकाओं के आवरण में अविश्वास, सन्देह तथा मृत्यु अपना काम कर रहे थे। उस रात को किसी को भी निद्रा नहीं आयी। आशंकाओं तथा अविश्वास से पूर्ण, वाद विवाद, मंत्रणाएं तथा परामर्श करते हुए, नेता गण इस कैम्प से उस कैम्प को बार बार इधर उधर आते जाते दिखायी दे रहे थे।

मि० सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को अपने साथ मिलाने के लिए—सन्धि के लिए नहीं—मि० तिलक, अरविन्द घोष तथा मि० खापर्डे उनके घर प्रस्ताव लेकर

गए। अमृत बाजार पत्रिका के मि० मोतीलाल घोष भी सन्धि दूत बन कर उनके साथ गए, यद्यपि उनमें सन्धि दूतों जैसा कोई भी गुण नहीं था। सुरेन्द्रनाथ के सामने उन्होंने दो शर्तें रक्खीं जिनके अधीन वह प्रधान के चुनाव का विरोध करना छोड़ सकते थे—स्वायत्त शासन, स्वदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा पर कलकत्ता वाले चार प्रस्ताव ज्यों के त्यों, गत वर्ष की भांति दुहराए जायं और प्रधान के चुनावपर किसी वक्ता द्वारा प्रतिष्ठापूर्वक इशारा किया जाय कि जनता की इच्छा लाजपतराय को प्रधान बनाने की है। ऐसे समय पर तो यह कार्य सुरेन्द्रनाथ जैसे वक्ता के लिए भी टेढ़ी खीर था। परन्तु वह दोनों दलों की कठिनाई को समझते थे और किसी को भी संकट में छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने दोनों शर्तों का उत्तरदायित्व अपने सिर पर लिया और राष्ट्रवादियों को मि० गोखले अथवा स्वागतकारिणी समिति के प्रधान सूरतवाले मि० त्रिभुवनदास मालवी से भेंट करने को कहा। उन्होंने मि० गोखले से भेंट करने की कोशिश ही नहीं की और मि० मालवी उनसे भेंट न कर पाये, क्योंकि वे उपासना में लगे हुए थे।

मंच पर बैठने वाले लोगों (नेताओं) का आगमन आरम्भ हो गया। सर्वप्रथम आने वालों में डा० रुदरफोर्ड थे, फिर एक शान्त, गम्भीर मुद्रा वाले सफेद-पगड़ीधारी सज्जन ने एक ओर से प्रवेश किया। उनके सम्मानार्थ दस हजार व्यक्ति खड़े हो गए। बार बार करतल ध्वनि होने लगी। मातृभूमि के लिए कष्ट सहन करने वालों के प्रति किसे श्रद्धा तथा प्रेम नहीं होता? यह लाजपतराय थे।

"स्वागतकारिणी समिति का भाषण समाप्त हुआ। कानून, बैंकिंग तथा व्यापारिक जगत के महारथी दीवान बहादुर अम्बालाल, एस० देसाई, भूतपूर्व चीफ जस्टिस नियमपूर्वक डा० घोष का नाम प्रधान पद के लिए पेश करने के लिए खड़े हुए। डा० घोष ही मनोनीत सभापति थे। घोष का नाम सुनते ही, बार बार अस्वीकृति का शोर सुनाई पड़ने लगा, और एक ऊँची आवाज "कदापि नहीं" गूंज उठी। दीवान अम्बालाल के बैठते ही, उनके पास ही, मेज के समीप सैकड़ों रंग-मंचों के वीर, श्वेत दाढ़ी वाले मेघनाथ, मातृभूमि की सेवा में नवीन तथा अटूट उत्साह वाले नवयुवक, स्वभाव तथा युक्ति से समान रूप से दोनों पक्षों के मित्र सुरेन्द्रनाथ बनर्जी उठ खड़े हुए। आप दीवान अम्बालाल के प्रस्ताव का अनुमोदन करना चाहते थे कि डा० घोष ही प्रधान पद को सुशोभित करें। उनके मुख से अभी कोई शब्द निकलने ही न पाए थे कि घनघोर मेघ गर्जन की तरह शोर का ज्वालामुखी फट पड़ा और कानों पड़ा शब्द सुनाई नहीं देता था।

प्रतिनिधियों तथा दर्शकों का समूह अपनी भुजाएं, अपने दुपट्टे, अपनी छड़ियां

तथा अपने छाते घुमाता हुआ, उछल पड़ा और अविरल चीख पुकार मचाने लगा। उनके सिरों पर "मध्यप्रान्त" का शीर्षक लटक रहा था—वही मध्यप्रान्त जहां नागपुर है और जहां कांग्रेस का अधिवेशन होना था। "नागपुर को याद रक्खो", वह पुकार उठे। "मिदनापुर को स्मरण करो"—मिदनापुर जहां एक दो सप्ताह पूर्व बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन के दिनों में, सुरेन्द्रनाथ ने उग्रवादियों के विरुद्ध शान्ति स्थापना का प्रयत्न किया था और स्वयं पुलिस के जिला अध्यक्ष के साथ एक ही मंच पर शोभायमान था। मदरास के श्वेत पगड़ियों वाले भी उनमें मिल गए। पूरे दस हजार व्यक्तियों ने खड़े होकर कोलाहल मचाना आरम्भ कर दिया। मि० मालवीय ने पीतल की बनारसी घंटी बजा कर जनता को शान्त करना चाहा, परन्तु व्यर्थ। सुरेन्द्रनाथ कूद कर मेज़ पर खड़े हो गए। कोलाहल इतना अधिक था कि वहां सुरेन्द्रनाथ का गर्जन भी नक्कारखाने में तूती की आवाज़ सिद्ध हुआ। वह बार बार चिल्लाते थे, परन्तु उनकी कोई भी नहीं सुनता था। वह बैठ गये, और क्षण भर के लिए तूफान भी शान्त हो गया। नेताओं के झगड़ने का शब्द सुनायी दे रहा था। डा० घोष अधीर तथा क्रोध से व्याकुल थे। मि० गोखले दुखी, चिन्तातुर, कई रातों से अनिद्रित तथा थके हुए से थे।

"अधिवेशन समाप्त" की गूंज सुनायी देने लगी। "यदि वह सुरेन्द्रनाथ की बात भी नहीं सुनते, तो फिर किसकी सुनेंगे?" एक बोला। "यह कांग्रेस का अपमान है" दूसरे ने कहा। "यह बंगाल का अपमान है" तीसरा बोला। सुरेन्द्रनाथ फिर मेज़ पर चढ़ गए और फिर कोलाहल आरम्भ हो गया। फिर सभापति ने बनारसी घंटी बजायी और बजाना व्यर्थ सिद्ध हुआ। हिचकी की भांति न सुनायी पड़ने वाली आवाज़ में उसने बैठक स्थगित करने की घोषणा कर दी। मंचवाले उठ खड़े हुए, सुरेन्द्रनाथ उतर आए। कुछ भारतीय महिलाएं जो कांपती हुई आवाज़ से "वन्दे मातरम्" का गीत गाने के लिए आयी थीं, पिछले द्वार से बाहर निकल गयीं और कांग्रेसी नेता अपने अपने तम्बुओं में चले गए।

२२ वर्ष की धीमी तथा नियमित प्रगति के पश्चात्, कांग्रेस आध घंटे से भी कम समय में टूट फूट गयी।...मैं पूना के मि० केलकर के साथ बातचीत कर रहा था। वह कहते थे कि वह घटना आकस्मिक तथा अप्रत्याशित है। वह डा० घोष के चुनाव का विरोध करने पर तो तुले हुए थे, परन्तु कोलाहल द्वारा नहीं। वह तो विरोध भी न करते यदि माडरेटों का सन्धि प्रस्ताव देर से न पहुंचता। मैं नगर से दूर, राष्ट्रीय कैम्प में गया जहां मि० तिलक अपनी संदिग्ध विजय करके अभी अभी लौटे थे। उन्होंने भी वैसे ही विश्वास दिलाया। समस्त घटना एक भारी भूल थी और इसका कारण यह था कि कलकत्ते वाले प्रस्तावों की पुनरावृत्ति

की जिम्मेदारी का समाचार उनके पास देर से पहुंच पाया—अर्थात् प्रधान के भाषण आरम्भ होने के अनन्तर। उसी समय मि० गोखले ने मुझे प्रस्ताव दिए और मैं मान गया था कि मैं सन्तुष्ट हूँ यदि उनमें से कुछ हटा लिए जायं और प्रस्ताव मूल रूप में रक्खे जायं। परन्तु उस समय तक अनुयाइयों को विश्वास दिलाने तथा सन्धि के लिए मेरे जोर लगाने में देर हो चुकी थी।

यह कहना कठिन है कि कलकत्ता के प्रस्तावों के बारे में कठिनाई कहां तक महत्वपूर्ण थी। अथवा उनसे सन्धि की सम्भावना की हार्दिक इच्छा कहां तक टपकती थी। मि० तिलक के पास उनके पहुंचने की देर आकस्मिक थी—सूरत के एक मुद्रक का दोष था। मि० गोखले ने स्वयं ऐसा कहा है और उनकी बात सन्देह रहित है। (मि० नेविन्सन प्रस्ताव के शब्दों में परिवर्तन को पृष्ठ २५०-३ पर लिखते हैं। विशेषत: स्वदेशी तथा बहिष्कार पर विवाद—देखें) "बहिष्कार के प्रस्ताव का तो शायद जिक्र तक नहीं था। परन्तु लोगों के मनों में अवश्य ही विभिन्नता का विचार था। रात भर सन्धि की चर्चा चलती रही। जब तक कलकत्ता प्रस्तावों को मूल रूप में नहीं रखा जाता, उन्हें डा० घोष के चुनाव के विरोध का आदेश मिला हुआ है। परन्तु सभी नेताओं की बात सुनने तथा कोलाहल न मचाने का आदेश भी है। सन्धि दूत ही एक कैम्प से दूसरे कैम्प के चक्कर काट रहे थे। क्या सम्मिलित रूप से उभय पक्ष के नेता विवाद नहीं कर सकते थे? क्या मि० गोखले मि० तिलक से भेंट नहीं कर सकते थे? क्या सुरेन्द्रनाथ सन्धि नहीं करा सकते थे? क्या पार्लियामेण्टों की जननी के सदस्य डा० रुदरफोर्ड अपने ऐतिहासिक अनुभव से कोई लाभ नहीं पहुंचा सकते थे? दूतों का आवागमन रात भर जारी रहा और उस रात भी कोई नहीं सो सका। दूसरे दिन दोपहर तक पण्डाल ठसाठस भर गया।......फिर डा० रासबिहारी घोष अपने हाथ में अध्यक्ष के भाषण की मुद्रित प्रति लेकर खड़े हुए। यह भाषण गत मध्याह्नोत्तर की बैठक में पढ़ा जाना चाहिए था और दुर्भाग्य से उसी दिन प्रात: कलकत्ता के कुछ समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गया था जिसमें उग्रवादियों पर खूब कटाक्ष किया हुआ था।

प्रतिनिधियों की प्रथम पंक्ति में (मंच पर अपने सुरक्षित स्थान पर नहीं) मि० तिलक बैठे हुए थे। ज्यों ही जुलूस पण्डाल में प्रविष्ट हुआ, मि० तिलक ने एक स्वयंसेवक लड़के के हाथ सभापति के नाम एक नोट भेजा कि अनुमोदक के भाषण के अनन्तर मैं अध्यक्ष के चुनाव पर कुछ बोलना चाहता हूँ। उन्होंने यह भी लिखा था कि मैं रचनात्मक तजवीज के साथ एक संशोधन पेश करना चाहता हूँ। सभापति तथा अन्य जिन लोगों ने नोट देखा था उनसे प्रतीत होता है कि वह संशोधन

कांग्रेस को स्थगित करने के बारे में था। इस मतभेद पर आगे चल कर बड़ा विवाद चला, परंतु गड़बड़ी में वह नोट कहीं खो गया।

पूर्ण शान्ति तथा निस्तब्धता में कार्यवाही आरम्भ हुई । मि० मालवीय ने मि० बैनर्जी को अपना भाषण देने तथा डा० घोष की अध्यक्ष पद पर नियुक्ति का अनुमोदन करने की आज्ञा दी। भाग्य के थपेड़े खाए हुए वीर की भांति सुरेन्द्रनाथ ने ठण्डे जोश से भाषण करते हुए कांग्रेस की पिछली सफलताओं का वर्णन किया और शक्ति के लिए एकता का महत्व दर्शाते हुए जनता की करतलध्वनि के मध्य में ैठ गए। इलाहाबाद के धनाढय ैरिस्टर मि० मोतीलाल नेहरू ने कुछ नपे तुले वाक्यों में भाषण दिया। प्रत्येक वक्ता ने बच बच कर शब्दों का प्रयोग किया। मि० मालवीय ने प्रस्ताव किया कि डा० घोष प्रधान के आसन को सुशोभित करें। जनता की तुमुल ध्वनि में इस प्रस्ताव को पास घोषित किया गया। वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध डा० घोष प्रधान के आसन पर पधारे और शीघ्र ही अपना विचारपूर्ण भाषण देने लगे। "प्रतिनिधि भाइयो, देवियो और भद्र पुरुषो! मेरा प्रथम कर्तव्य यह है कि आपने जो प्रतिष्ठा मुझे प्रदान की है, उसके लिये आपको धन्य-वाद दूं।"

इस प्रथम कर्तव्य से आगे वह नहीं बढ़ पाए। आकाश में विद्युत वेग की भांति, मि० तिलक प्रधान की कुर्सी के ठीक सामने खड़े हो गए। आपने एक संशोधन की सूचना दी थी, अब वह उसे पेश करने को डट गए। "आप कांग्रेस को स्थगित करने का प्रस्ताव पेश नहीं कर सकते। आपका ऐसा करना अनियमित है" मि० मालवीय पुकार उठे। "मैं प्रधान के चुनाव के बारे में संशोधन पेश करना चाहता हूँ और इस समय आप सभापति नहीं हैं" तिलक ने उत्तर दिया। "मैं आपको अनियमित (out of order) घोषित करता हूँ" डा० घोष बोले। "आप प्रधान नहीं चुने गए। मैं प्रतिनिधियों से अपील करता हूँ" मि० तिलक ने उत्तर दिया।

शेष सब कुछ कोलाहल में दब गया। मि० तिलक हाथ जोड़ कर श्रोताओं के सामने खड़े हो गए। उनके दोनों ओर नवयुवक माडरेट बदला लेने के लिए जोश से कूद कर खड़े हो गए। मुक्के दिखलाते हुए तथा जोर शोर से चीखते हुए, उन्होंने मि० तिलक को मंच की सीढ़ियों से नीचे धकेलने की धमकी दी। उनके पीछे, डा० घोष क्रोध से व्याकुल होकर ऊंचे ऊंचे बोल रहे थे। माडरेटों के कोप को रोकते हुए, मि० गोखले अपने प्रतिद्वन्द्वी के रक्षार्थ बाहें उठा कर खड़े हो गए। परन्तु मि० तिलक को किसी रक्षा की जरूरत नहीं थी। वह हाथ जोड़ कर, निर्भीक और हिंसावादियों को चुनौती देने के लिए मूर्ति की तरह खड़े थे। सामने श्वेताम्बर श्रोताओं का अधीर समुद्र ठाठें मार रहा था।

अकस्मात् आकाश में कुछ उड़ता दिखलायी पड़ा—एक जूता—मराठी जूता, लाल चमड़ेवाला, नोकदार पंजे और लोहे से जड़ी हुईएड़ीवाला जूता था। वह सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के गाल पर लगा और सर फिरोजशाह मेहता पर पड़ा। मानो वह श्वेत पगड़ी वाले समूह के मंच पर धावा बोलने का संकेत था, उछलते कूदते, क्रोध से फुफकारते हुए, लम्बी लाठियां घुमाते हुए वह, माडरेट दिखलायी पड़ने वालों पर बेतहाशा टूट पड़े। मैंने देखा कि इंडियन नेशनल कांग्रेस की उस गड़बड़ी में अन्त्येष्टि क्रिया हो रही है।"

वैल्मी के युद्ध में महाकवि गेटे की भांति, मैं भी कह सकता था कि आज एक नवीन युग का श्रीगणेश हुआ है और तुम कह सकते हो कि तुम भी उसमें उपस्थित हो।

उस रात भी सन्धि वार्तालाप फिर चल पड़ा। परन्तु अब अविश्वास इतना गहरा हो गया था कि सन्धि के प्रत्येक नये प्रयत्न से अविश्वास की मात्रा बढ़ती जाती थी। अगले दिन (२८ दिसम्बर) को खून खराबी की भयंकर अफवाहें फैल रही थीं। अब २०० पुलिस वाले टूटे फूटे पण्डाल की रक्षा कर रहे थे। वहां ९०० माडरेटों की एक कन्वेंशन हुई। उस सभा की सब से महत्वपूर्ण बात मंच पर लाजपतराय की उपस्थिति और उनकी यह घोषणा थी कि वह कांग्रेस के पुराने झण्डे तले लड़ाई जारी रखेंगे।

"आज एक नवीन युग का श्रीगणेश हुआ है और तुम कह सकते हो कि तुम उस अवसर पर उपस्थित थे," नेविन्सन ने गेटे के प्रसिद्ध शब्दों की पुनरावृत्ति की। सूरत की घटनाओं के कई वर्ष बाद जब लाजपतराय उनको याद करते थे, वह कहा करते थे "सूरत अधिवेशन के साथ हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का एक युग समाप्त हुआ और दूसरा युग आरम्भ हुआ।" निस्सन्देह उन घटनाओं के मुख्य निर्माता तिलक ही थे; (दोनों युगों के) आदि तथा अन्त के सूत्रधार मि० तिलक ही थे।"

सूरत में तिलक के बारे में अपने विचार वह इस प्रकार प्रकट करते हैं "जिस बात ने मेरे मन को उस समय प्रभावित किया था और जिसे मैं अब तक नहीं भुला सका हूँ वह मि० तिलक की अलौकिक शक्ति थी। जिस समय वह अपना संशोधन पेश करने के लिए खड़े हुए, चारों ओर से उन पर निन्दा तथा अपशब्दों की बौछार हो रही थी, परन्तु उनमें घबराहट अथवा व्याकुलता का नाम तक न था। मंच पर बैठे हुए नेताओं में कोई भी उनके विचारों से सहमत नहीं था। वह स्वयं महाराष्ट्र के ब्लाक में बैठे हुए थे। उनकी निर्भीकता को देखकर दर्शकों के मुख से प्रशंसा के शब्द निकल रहे थे। समस्त अधिवेशन में, उनके व्यवहार से प्रतीत होता था

कि उनमें आकाश तथा पाताल की सभी शक्तियों को पराजित करने की अद्भुत शक्ति मौजूद है।"

१९०७ में, लाजपतराय ही लाखों व्यक्तियों के दृष्टिकेन्द्र बने हुए थे। चाहे कांग्रेस का प्रधान अथवा सूत्रधार कोई भी हो, जनता के नायक लाला जी थे और सब से अधिक जोर से स्वागत उन्हीं का होता था। यदि कोई लड़ाई झगड़ा भी होता था, तो वह उन्हीं के नाम पर होता था, यद्यपि उन्होंने सदैव सन्धि स्थापन का कार्य किया। उन्हें इस बात से दुख और परेशानी होती थी कि उनका नाम झगड़ों में घसीटा जाता था। सूरत की सब से विचित्र समस्या यही थी। सन्धि वार्ता के टूट जाने के अनन्तर भी, उन्होंने शान्ति तथा संधि के लिए एक और अपील की। सूरत से उनका अन्तिम सन्देश, स्वदेशी सम्मेलन के प्रधान के भाषण के रूप में था। "मैं अपने माडरेट मित्रों से प्रार्थना करता हूँ कि वह शत्रुओं के हाथ में न खेलें। सम्भव है कि उग्रवादियों के कुछ रंग-ढंग आपको नापसन्द हों, परन्तु इसी कारण से उन्हें सदा के लिए शत्रु के हवाले करना, उनको शत्रु समझना, उनका अपमान करना, उन्हें सरकार के अत्याचार का शिकार बनने देना अथवा ऐंग्लो इंडियनों का हास्य भाजन बनने देना बुद्धिमत्ता नहीं होगी।. . .अपने उग्रवादी मित्रों से भी मैं सादर अपील करता हूं कि वयोवृद्ध लोगों की धीमी चाल तथा व्यावहारिक अनुभव के शब्दों से अधीर मत हों।"

इण्डियन नेशनल कांग्रेस का निजी इतिहासकार लिखता है "१९०७ की राजनीतिक घटनाएं लाला जी के व्यक्तित्व के चारों ओर केन्द्रीभूत थीं। राष्ट्र-वादियों ने १९०७ में लाला लाजपतराय का नाम अध्यक्ष पद के लिए पेश किया। यह अधिवेशन नागपुर में होना था, परन्तु इसे सूरत में परिवर्तित कर दिया गया। गोखले ने, जो इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे, स्पष्ट कहा था "यदि आप सरकार की अवहेलना करेंगे, तो सरकार आपका गला घोंट देगी।" लाला जी को पदवी की किंचिन्मात्र भी परवाह न थी और आपने उदारता से अपना नाम वापस ले लिया। संधि वार्तालाप के समय, तिलक चाहते थे कि कांग्रेस के अध्यक्ष का नाम पेश करते समय लाला जी के नाम का सादर संकेत अवश्य किया जाय और सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी तत्काल ही मान भी गए थे, परन्तु उस ओर कुछ भी न हो पाया।"

ऐसा प्रतीत होता था कि झगड़े का कारण यह था कि माडरेट लाजपतराय को प्रधान नहीं बनने देना चाहते थे। जब सन्धि वार्तालाप आरम्भ हुआ, तो तिलक की ओर से एक मुख्य शर्त यह थी कि लाजपतराय के नाम का "सादर संकेत" अवश्य किया जाय। सन्धि की बातचीत का कोई परिणाम न निकला और डा० रासबिहारी घोष को उस अवसर पर अपना प्रधान-पद-भाषण पढ़ने का मौका नहीं

मिला। उसमें यद्यपि लाजपतराय के कांग्रेस के प्रधान बनने के बारे में तो कुछ नहीं कहा गया, परन्तु उनके निर्वासन का उसमें विस्तृत वर्णन था।

प्रधान के भाषण में लिखा था, "जो वर्ष अब समाप्त हो रहा है, उसमें देश में बड़ी बड़ी महत्वपूर्ण बातें हुई हैं। नाटक का सर्वप्रथम अंक लाला लाजपतराय तथा अजितसिंह का निर्वासन था। इसके अनन्तर सार्वजनिक सभाओं को रोकने वाला आर्डिनेन्स, रावलपिण्डी का मुकदमा, पंजाब तथा बंगाल के पत्रों पर मुकदमे आदि घटनाएं हुईं। शिमला में कौंसिल चेम्बर में पटाक्षेप सार्वजनिक सभाओं के ऐक्ट पास करने से हुआ।

"१८१८ के रेग्यूलेशन ३ को पुनर्जीवित करने के पक्ष में कहा जाता है कि यह एक स्थायी कानून है। यह स्थायी कानून नहीं है, वरन् सभी कानूनों की मिट्टी पलीद करना है। यह हमारी स्वतंत्रता के लिए स्थायी खतरा है, हमारे विधान-ग्रन्थों के लिए स्थायी अपमान है। हमें गम्भीरता से बतलाया जाता है कि मुकदमा चलाने से जनता का ध्यान आकर्षित हो जाता है और राजद्रोह के मुकदमे सदा उचित तथा वांछित नहीं होते... । शायद यह किसी वकील की निर्बलता हो, परन्तु मैं भारतीय सरकार को इस जंग खाए हुए अस्त्र के प्रयोग पर बधाई नहीं दे सकता। एक व्यक्ति को ऐसे कारणों के आधार पर निर्वासित कर देना जिन्हें प्रकाश में लाने का सरकार में साहस नहीं है, नितान्त "अवैधानिक", "अत्याचार-पूर्ण", "अन्याययुक्त", "असंगत" तथा "बेहूदा" है। इनमें से एक विशेषण भी मेरा निजी नहीं है। मैंने वह सभी हैन्सर्ड से लिए (उद्धृत किए) हैं और इनका प्रयोग एक दृढ़ लिबरल (उदार दल) ने एक स्मरणीय अवसर पर किया था। जब से साइमन डी माण्डफोर्ड ने पार्लियामेण्ट का निर्माण (आविष्कार) किया है, हाउस आफ कामन्स में इस बारे में मि० मार्ले का उत्तर अत्यन्त लज्जाजनक तथा अनुचित था। परन्तु प्रतीत होता है कि जो कुछ एक देश में सत्य माना जाता है, वह दूसरे देश में सत्य नहीं होता।...

"और इस असाधारण कानून का सर्वप्रथम शिकार किसे बनाया गया? एक गम्भीर धर्मप्रिय तथा समाज सुधारक को, एक अनिन्दनीय सदाचारी व्यक्ति को, एक महापुरुष को जिसका जीवन ही परोपकार के अर्पण हो चुका है, और जो पंजाब का आराध्य देव है, उसको। अकस्मात् खुफिया पुलिस को ज्ञात होता है कि वह क्रान्तिकारी हैं और उनके हृदय में अंग्रेजी सरकार के प्रति असीम घृणा का समुद्र उमड़ रहा है और वह सरकार को बलात् उलटने के लिए षड्यंत्र रच रहा है। यदि लाला लाजपतराय पर मुकदमा चलाया जाता, तो वह अपनी निर्दोषिता बड़ी शान से सिद्ध करते और दिखला देते कि शक्तिशाली लैफ्टीनेण्ट गवर्नर भी निर्भ्रान्त

नहीं हैं। वह सफलतापूर्वक यह दिखला देते कि मेरे समस्त कार्य तथा साधन पूर्णतः वैधानिक रहे हैं और मैंने राजद्रोह अथवा अराजकता फैलाने वाले विरोध प्रदर्शन (एजीटेशन) का सदा विरोध किया है। परन्तु हमारे एक महान् नेता को उस रियायत से वंचित रक्खा गया जो (न्यायालय द्वारा) घृणित से घृणित अपराधी तक को दी जाती है। आज यदि उनके देशवासी, लाला लाजपतराय को शहीद समझते हैं, तो इसका श्रेय सरकार को है जिसने उन्हें ऐसी उच्च पदवी प्रदान की है और जिसने कांटों का अमूल्य मुकुट उनके सिर पर धर दिया है। यदि माण्डले का दुर्ग अब एक पवित्र स्थान या तीर्थ समझा जाता है (मैं जानता हूँ कि मेरे कई देशवासी ऐसा समझते हैं), तो उसे वह पवित्रता सरकार द्वारा ही प्रदान की गयी है।

"इटावा में भी वैसा ही दुखान्त नाटक हो जाता, यदि सर जान हीवट अपनी दूरदर्शिता से अधिकारियों द्वारा धूर्तता से निर्मित नीचतापूर्ण षड्यंत्र को समय पर भांप न जाते। परन्तु एक कल्पित विद्रोह के भूत ने पंजाब के अधिकारियों को अन्धा बना दिया था और उन्हें जन समूह के एक दंगे में ब्रिटिश शासन के पतन की गम्भीर योजना दृष्टिगोचर हुई। रावलपिण्डी के मुकदमे से राजद्रोहियों का शिकार करने वालों के रंग ढंग पर प्रकाश पड़ता है। समाज में उच्च स्थान रखने वाले भद्र पुरुषों को, जिन्हें पंजाब की जनता अपना नेता समझती है, बदमाशों की तरह न्यायालय में घसीट लाना और उन पर यह दोषारोपण करना कि उन्होंने अपने राजद्रोहात्मक भाषणों द्वारा भयंकर दंगों को प्रोत्साहित किया है, पूरे छः मास तक उनको कारागार में रक्खा गया, क्योंकि उनकी जमानत इस कारण अस्वीकार कर दी गयी कि राज्य के रक्षार्थ उन्हें खुला छोड़ने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। परन्तु उस मुकदमे का क्या फल निकला? वह पूर्णतः निर्दोष सिद्ध हुए और सरकारी पक्ष की बुरी तरह पोल खुल गयी। स्पेशल मैजिस्ट्रेट का फैसला बतलाता है कि जनता को ठोस शिकायतें थीं जिसके लिए उन्होंने पूर्णतः वैधानिक रूप से विरोध-प्रदर्शन प्रारम्भ किया। परन्तु अधिकारियों की घबराहट ने उसे बढ़ाकर विद्रोह का रूप दे दिया। जिस साक्षी के आधार पर छः वकीलों को महीनों जेल में रखा गया, वह आधार सन्दिग्ध (यदि मनगढ़न्त नहीं) था और साक्षी की छायामात्र से भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता था कि उन लोगों का अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध किसी षड्यंत्र में कोई हाथ था।"

इसके अनन्तर "पंजाबी" पत्र में लाजपतराय द्वारा गिरफ्तारी से कुछ घंटे पूर्व लिखित एक लेख में से असन्तोष के कारणों की एक सूची दी गयी और फिर उसकी आलोचना।

व्याधि का यही निदान पूर्णतः ठीक था, क्योंकि ज्योंही बड़ी शिकायतें दूर

कर दी गई, पंजाब शान्त हो गया, यद्यपि नौकरशाही अपने मन में शायद यही समझती होगी कि यह सुखद परिणाम लाला लाजपतराय तथा अजितसिंह के निर्वासन के फलस्वरूप है और उनकी दूरदर्शिता तथा सामयिक कार्यवाही से एक अन्य विद्रोह टाल दिया गया है।

लाजपतराय सूरत की भारी पहेली बन गए। वह सन्धि के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे थे, और उनके नाम पर भारी लड़ाई छिड़ी हुई थी। जब संधि वार्ता टूट गयी और फूट न टल सकी, वह उन लोगों के मध्य में जा बैठे, जिन्होंने उनके उच्च पद प्राप्ति का विरोध किया था, (उनके साथ नहीं,जोउनके लिए लड़ रहे थे) और पहेलियों की पहेली लाला जी—जब कांग्रेस में फूट पड़ गयी, तो समरांगण अर्थात् सूरत ही में शान्त रचनात्मक कार्य में जुट गए, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

सूरत की फूट से कांग्रेस के मार्ग में भारी बाधा पड़ गयी और लाजपतराय के मार्ग में भी। उस समय भी तथा आगे चल कर भी चोटी के नेता होते हुए भी फूट ने उनके लिये विशेष और भारी कठिनाइयां पैदा कर दीं। वह, कांग्रेस से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद करना तथा राष्ट्रवादियों से मिल कर प्रतिद्वन्द्वी खेल खड़ा करना नहीं चाहते थे, परन्तु फिर भी उन्हें इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि माडरेटों के साथ उनका निर्वाह नहीं हो सकेगा। उन्हें प्रतीत होता था कि शीघ्र ही राजनीति मृतप्राय हो जायगी।

इतने में उनको एक अन्य दिशा से ज़रूरी तथा दुखद बुलावा आ गया, जहां शीघ्र ही पहुँचना अनिवार्य था। १९०६ में ताऊन का भारी जोर रहा। अब भयानक दुर्भिक्ष ने गत वर्ष की आपत्ति को भी मात कर दिया। राजनीति कितनी ही ज़रूरी क्यों न हो, लाजपतराय ऐसी आपत्ति के प्रति भला उदासीन कैसे रह सकते थे! इसके अतिरिक्त वह राजनीति, जिसमें जनसेवा का कार्यक्रम सम्मिलित न हो, उनके लिए व्यर्थ थी। वह झगड़ों में अपनी शक्ति नष्ट करने को तैयार न थे। आगामी कई मास के लिए आपने दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता का कार्य संगठित करने का कार्यक्रम बना लिया। आपने यह निश्चय सूरत में ही कर लिया था। स्वदेशी सम्मेलन के प्रधान के भाषण की समाप्ति पर आपने कहा था "अभागा देश अब एक भीषण अकाल के पंजे में है। हम जिस राष्ट्र की सेवा करने के इच्छुक हैं वह झोपड़ियों में निवास करता है और भारी संकट में है। सरकार अपना कर्त्तव्य पालन कर रही है, या कम से कम कर्त्तव्य पालन का दावा कर रही है। क्या हम, जो उनके प्राणों के प्राण हैं, पीछे रह जायेंगे? .....मैं अपने मित्रों तथा साथियों से अपील करता हूँ कि वह इस कार्य में कन्धा लगाएं और दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रान्त में

गैर सरकारी अकाल सहायता-कार्य संगठित करें। मैं जानता हूँ कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है और कठिनाइयां असीम हैं, परन्तु निस्वार्थ देशभक्ति पूर्ण जीवन के प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) का स्वर्ण अवसर हमें हाथ से खोना नहीं चाहिए।"

नेविन्सन लिखते हैं, "लालाजी के आचरण की प्रबलता तथा ख्याति की ओर से उदासीनता की यह विशेषता थी कि सूरत कांग्रेस की फूट के पश्चात् आपने अपना भारी प्रभाव माडरेट दल को प्रदान कर दिया और जैसा कि मैं कह चुका हूँ, उन्होंने पुराने झण्डे तले लड़ाई जारी रखने की घोषणा की। परन्तु उनकी उससे भी भारी विशेषता यह थी कि जब कांग्रेस टूट फूट गयी, वह सामाजिक (सोशल) तथा स्वदेशी सम्मेलन के लिए सूरत ठहर गए और उन्होंने अकाल-पीड़ितों की सहायता का फण्ड खोल दिया, मानो कुछ हुआ ही न हो।"

नेविन्सन ने जिसने कि सूरत की घटनाएं देखी थीं लाजपतराय का अध्ययन भी समीप से किया था। वह उनके बारे में लिखते हैं:—

"लाजपतराय जिनका कि जीवन तपस्या तथा उदारतापूर्ण था, जिन्होंने निर्धनों तथा अशिक्षितों की सेवा के लिए भारी सांसारिक सफलता का जीवन त्याग दिया था, उन पुरुषों में से थे, जिनकी आत्माओं में अपने देशवासियों के दुखड़े प्रवेश कर जाते हैं। स्वभाव से राजनीति से दूर दूर रहने वाले होने के कारण उन्होंने अपना जीवन उन गूढ़ प्रश्नों के हल में लगा दिया जो अच्छी अथवा बुरी सरकारों की पहुँच से बहुत दूर हैं। वह चालीस की आयु को पार कर चुके थे जब उनमें भारी परिवर्तन आया। यह सत्य है कि वह १९८८ में कांग्रेस के आरम्भ से २ या ३ वर्ष के अन्दर ही कांग्रेस में सम्मिलित हुए, परन्तु उनसे बढ़ कर किसी ने कांग्रेस तथा उसके साधनों (कार्य प्रणाली) की समालोचना नहीं की। कांग्रेस का भारी भरकम आकार, उसका मजे मजे से काम करना, भारतवासियों की दरिद्रता अथवा अज्ञान के प्रति उसकी उदासीनता और राजनीतिक दुखड़ों को दूर करने के लिए प्रस्तावों तथा भाषणों की अमोघ शक्ति में उसका भ्रमपूर्ण विश्वास लाजपतराय को खटकते हैं।"

कई वर्ष पश्चात्, यदि कभी सूरत की बात छिड़ जाती थी, तो लाजपतराय सदैव दो बातें बतलाया करते थे—प्रथम सूरत काण्ड में महाराष्ट्र नेता लोकमान्य तिलक की निर्भीकता और दूसरी यह कि आपने अरविन्द घोष को यह समझाने का प्रयत्न किया था कि वे दलबन्दी से ऊँचे रह कर देश के राजनीतिक गुरु के रूप में रचनात्मक भाग लें। अरविन्द ने उत्तर दिया था कि प्याले को भरने से पूर्व उसे खाली करना आवश्यक होता है।

अध्याय चौंतीसवां

काँग्रेस में दलबन्दी

निश्चित रूप से कांग्रेस के दो टुकड़े हो गए। जब लाजपतराय ने यह घोषणा कर दी कि मैं तो पुराने झण्डे तले लड़ाई जारी रखूँगा, तो उनसे मतभेद रखने वाले आश्चर्यचकित रह गए और उनके प्रशंसक जो उन्हें अपने दल का समझते थे, हताश हुए। उन्होंने उग्रवादियों का साथ देने से इन्कार कर दिया, यद्यपि राजनीतिक विचारों में वह उग्रवादियों के कहीं अधिक समीप थे। जिस दल ने अब कांग्रेस पर अधिकार कर लिया, उनसे तो लाजपतराय का भारी मतभेद था। सूरत कांग्रेस के पश्चात् कन्वेंशन में सम्मिलित होकर, यद्यपि अप्रत्यक्षरूप से उनकी गणना भी माडरेट दल में होने लगी थी, वास्तव में, वह माडरेटों के गढ़ में राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रचार कर रहे थे। जनता की दृष्टि में आपकी प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं घटी। सूरत के बाद, उन्होंने जो दिग्विजयी भ्रमण किया, उससे यही सिद्ध होता था, परन्तु राजनीतिक नेताओं के वह कोपभाजन बन गए थे। माडरेट जानते थे कि लाजपतराय उनके दल में नहीं खप सकते, और वह स्वयं भी नर्म दल की दलदल में फंसने के इच्छुक नहीं थे। राष्ट्रवादियों का विचार था कि वह उनके दल से भाग गए हैं।

उनको "भगोड़ा" कहलाने की कोई परवाह न थी, क्योंकि पंजाब के कांग्रेसी उनके साथ थे। दुनीचन्द, रामभजदत्त, हरकिशनलाल तथा अन्य पंजाबी कांग्रेस-वादियों ने कन्वेंशन में भाग लिया था, परन्तु फिर भी वह माडरेट दल से पूर्णतः सहमत नहीं थे। उनके अपने प्रान्त में उनके आलोचक भिन्न प्रकार के थे, उनमें से विख्यात हरदयाल थे, जो विभिन्न प्रकार के "वादों" की खिचड़ी के रूप में उग्रवादी बन रहे थे। उन्हें किसी प्रकार का समझौता सहन न था। उसने समस्त कांग्रेस-इतिहास तथा राजनीति पर माडरेटों के अधिकार को "नीच पतन" बतलाया।

सूरत में पंजाब के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त जिन अन्य प्रान्तों के प्रमुख नेताओं ने भाग लिया था, उनमें मोतीलाल घोष तथा अश्विनीकुमार दत्त भी थे। बहुत से अन्य दृढ़ राष्ट्रवादी भी वहा जाना चाहते थे, परन्तु उनको अवांछित समझ कर किसी ने घुसने नहीं दिया। जब अप्रैल, १९०८ में इलाहाबाद में कन्वेंशन हुआ तब

उसमें अधिकांश ऐसे लोगों ने भाग लिया जो आगे चल कर असहयोग आन्दोलन के अग्रणी बने। उस प्रकार की अग्रगामी कार्यवाही कभी माडरेट प्रोग्राम का भाग नहीं था। उनमें पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा दीपनारायण सिंह भी थे।

सूरत कन्वेंशन के सभापति राशबिहारी घोष थे। जब वह आल इंडिया कान्फ़ेन्स में परिवर्तित हो गयी तो उसके सभापति सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी बने। इस सम्मेलन ने अपनी संक्षिप्त सी बैठक में दस प्रस्ताव पास किए जिनमें से चार प्रमुख विवादास्पद विषय—स्वायत्त शासन, स्वदेशी, बंगभंग व बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा-सम्बन्धी थे और एक प्रस्ताव निर्वासनों पर था जो इस प्रकार था—

(क) यह सम्मेलन पूर्ण शान्ति काल में, बिना मुकदमा चलाए और सफाई का उचित अवसर दिए बिना ही लाला लाजपतराय तथा सरदार अजित सिंह के निर्वासन की निन्दा करता है। यह दकियानूसी कानून (जिसके अधीन निर्वासन हुए) सर्वथा भिन्न परिस्थितियों में विभिन्न श्रेणी के लोगों के लिए बनाया गया था और अंग्रेजी शासन की स्थापित प्रथाओं के सर्वथा प्रतिकूल है।

(ख) यह सम्मेलन बलपूर्वक अनुरोध करता है कि इस समय जब लाला लाजपतराय तथा सरदार अजित सिंह को मुक्त कर दिया गया है, सरकार तत्काल ही उन कारणों को प्रकाशित करे जिनके आधार पर गत मई में उनके विरुद्ध वह कार्यवाही की गयी।

(ग) क्योंकि १८१८ का रेग्यूलेशन तथा अन्य वैसे रेग्यूलेशन अनुत्तरदायी शासकों के हाथ में विशाल अधिकार देते हैं, यह सम्मेलन अनुरोध करता है कि ऐसे रेग्यूलेशन शीघ्र ही मंसूख किए जाएं।

कन्वेंशन ने प्रान्तीय मंत्री नियुक्त किए और पंजाब के लिए लाजपतराय तथा हरकिशनलाल को चुना गया। अप्रैल में, इलाहाबाद में फिर उसका अधिवेशन हुआ। उससे पूर्व, विपिनचन्द्र पाल ने कलकत्ता में राष्ट्रवादियों की ओर से सन्धि की शर्तें बतला दी थीं। वह चाहते थे कि राशबिहारी घोष की प्रधानता में स्थगित कांग्रेस को फिर से बुलाया जाय, और "ध्येय" जिसके कारण इतना झगड़ा उठ खड़ा हुआ था, कांग्रेस पर थोपने का प्रयत्न न किया जाय। इन शर्तों पर राष्ट्रवादी कांग्रेस में वापस आने को तैयार थे। सूरत में तो उन्होंने यह स्वीकार करने से ही इनकार कर दिया था कि डा० घोष नियमित रूप से प्रधान चुने गये हैं। यद्यपि अभी तक उनका यही विश्वास था कि चुनाव नियमपूर्वक नहीं था, परन्तु समझौते की खातिर, अब मि० पाल, डा० घोष को स्वीकार करने को उद्यत थे, यदि माडरेट दल की ओर से "ध्येय" का झगड़ा बन्द कर दिया जाय। कन्वेंशन में लाजपतराय उन लोगों में से थे, जो इन दोनों मांगों को स्वीकृत कराना चाहते थे, परन्तु माडरेट

राष्ट्रवादियों को लौटा लाने के उत्सुक ही नहीं थे। गोखले फूट न चाहते हों, परन्तु वह शान्ति चाहते थे, और शायद कांग्रेस में उन्हें कोई शान्ति प्राप्त न होती, यदि उन्हें राष्ट्रवादियों के साथ काम करना पड़ता। बहुत से माडरेट नेता राष्ट्रवादियों के बिना ही प्रसन्न थे, यद्यपि इसका अर्थ राजनीतिक आन्दोलन को निर्बल करना था। इलाहाबाद के संधि-वार्तालाप के साथ माडरेट नेताओं की कोई सहानुभूति अथवा सहयोग नहीं था। जब "ध्येय" के बारे में गोखले का संशोधन अस्वीकृत हुआ, तब सर फिरोजशाह मेहता क्रोध से उबल पड़े और धमकियां देने पर उतर आए। इससे स्पष्ट है कि वह केवल उन्हीं लोगों का स्वागत करने को तैयार थे, जो उनसे सहमत हों। जब कांग्रेस को पुनः बुलाने का प्रश्न आया, तब माडरेट नेता विपिन चन्द्र पाल के समझौते वाले प्रस्ताव को नहीं मानना चाहते थे, यद्यपि वह प्रस्ताव उनके मतानुकूल था। वह नहीं चाहते थे कि राष्ट्रवादी कांग्रेस में वापस आवें। और उन्हें अपने बच्चे-कन्वेंशन से भी विशेष प्रेम हो गया था। डा० घोष जिन्हें उन्होंने सूरत कांग्रेस का प्रधान चुना था, को कांग्रेस का अधिवेशन बुलाने के लिए कहने के स्थान में, उन्होंने कन्वेंशन के मंत्रियों—गोखले तथा वाचा को नये सिरे कांग्रेस अधिवेशन बुलाने का अधिकार दे दिया। लाजपतराय ने ए० चौधरी के स्थगित अधिवेशन को बुलाने के प्रस्ताव का समर्थन किया, परन्तु माडरेट नेताओं ने उसका विरोध किया और अपना प्रस्ताव पास करा लिया। अपने मन में वह नये अधिवेशन बुलाने तथा स्थगित अधिवेशन बुलाने का अनावश्यक पारिभाषिक भेद भली भांति समझते थे। यदि उनकी चलती, तो वह गोखले तथा वाचा द्वारा बुलाए गए अधिवेशन में भी राष्ट्रवादियों को वापस ले आते! वह राष्ट्रवादियों को यह मामूली परिभाषा समझाने में असलफल रहे। वह नरम दल वालों को राष्ट्रवादियों का दृष्टिकोण भी न समझा सके।

मिलाप की तो अब कोई आशा न रही। अब सन्धि का अनुरोध करना मूर्खता ही थी। दोनों दलों के मतभेद की खाड़ी दिन प्रति दिन चौड़ी होती जा रही थी और लोग एक दूसरे से दूर होते जा रहे थे। वह माण्डले से अभी हाल ही में लौटे थे, उनका सभी स्थानों में भारी समारोह से स्वागत होता था, परन्तु राष्ट्र की राजनीति में वह सर्वथा अलग अलग रह गए। इन्हीं दिनों, बंगाल में एक राजनीतिक सम्मेलन में भाषण करते हुए बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था, "नेताओं में फूट तथा झगड़े का कारण काफी कार्य का अभाव है। यदि उन्हें काफी काम करने को हो तो उनके उत्साह को ईंधन मिलता रहता है। उपरोक्त सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए आपने बतलाया सभी नेतागण तू-तू-मैं-मैं में व्यस्त हैं और ट्रांसवाल समस्या जैसे उपयोगी कार्य की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। हमें आशा करनी

चाहिए कि बाबू विपिनचन्द्र पाल अपने वेदान्त का प्रयोग इस स्थिति पर भी करेंगे और ध्येयों, विधानों, नामों, शब्दों, परिभाषाओं तथा व्यक्तित्व के झगड़ों को व्यर्थ समझते हुए कार्य और केवल कार्य को ही कल्याण मार्ग समझेंगे।" कार्य में तो लाजपतराय किसी से पीछे रहने वाले नहीं थे, परन्तु चूंकि उनका व्यवहार दलबन्दियों से सर्वथा मुक्त था, अतः उस स्वाभाविक पदवी से वंचित रहे जिसके कि वह, अपनी प्रतिभा तथा कष्ट सहन के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन की नीति निर्धारित करने के, अधिकारी थे। उनको दलबन्दियों के झगड़ों में कोई आनन्द नहीं आता था, अतः उन्होंने अपने आपको अधिक उपयोगी और विवाद रहित कार्यों में डाल दिया। विशेषतः अकाल पीड़ितों की सहायता के कार्य में वह अगले कई मास लगे रहे।

ब्रह्मा से लगातार निमंत्रण आ रहे थे। स्वतंत्र पर्यटक के रूप में उस रहस्यमय तथा रोमांचक देश के दर्शनों की अभिलाषा उन्हें भी थी। आपने ब्रह्मा वालों का निमंत्रण स्वीकार कर लिया और इलाहाबाद से कन्वेंशन की समाप्ति पर उधर चल पड़ने का विचार रखते थे। परन्तु स्वास्थ्य के बिगड़ जाने के कारण घर को ही विश्रामार्थ लौट आये। जब वह ठीक हो गए, तब आपको संयुक्तप्रान्त के अकाल-पीड़ितों की तत्कालिक सहायता का बुलावा आ गया।

अध्याय पैंतीसवां

देश भ्रमण तथा अकालपीड़ितों की सहायता

सूरत के पश्चात्, हमारी कहानी का सिलसिला बम्बई जाता है। लाजपतराय ने देश का भ्रमण आरम्भ कर दिया था। वह जहां कहीं भी जाते, निर्वासन से हाल ही में वापस आए हुए राष्ट्रीय वीर का स्वागत बड़े समारोह से होता। जनता उनके विचारों को सुनने को अत्यन्त उत्सुक थी। लाहौर लौटने से पूर्व वह बम्बई, कलकत्ता, कानपुर और देहली गए। बम्बई में वह ठीक आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर ही पहुँचे जहां उनका उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ। बम्बई में उनके दो भाषण हुए। एक आर्यसमाज पर, जिसमें उन्होंने जनता को विशेषतः डी० ए० वी० कालेज तथा राष्ट्रीय शिक्षा के महत्व के बारे में बतलाया। दूसरा भाषण, स्वदेशी पर हुआ। आप अकाल पीड़ितों के लिए धन संग्रह भी करते थे। बम्बई से वह कलकत्ता पहुँचे। हावड़ा स्टेशन पर उनका शानदार स्वागत हुआ और उनकी सेवा में दो मानपत्र नागरिकों तथा युवक दल की ओर से पेश किए गए। टाउनहाल में एक सभा हुई और वह आर्यसमाज तथा जनता में कार्य की आवश्यकता पर बोले। दूसरे दिन, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के सभापतित्व में भारी सभा हुई। जनता की अपार भीड़ उनका व्याख्यान सुनने तथा उनके दर्शन करने आयी, यद्यपि सारा दिन वर्षा होती रही। कानपुर में भी आपने स्वदेशी का प्रचार किया और अकालपीड़ितों के लिए धन की अपील की। इस दिग्विजय यात्रा का अन्तिम पड़ाव देहली था, जहां फूलों, पुष्पमालाओं, प्रशस्ति की कविताओं जुलूसों तथा मानपत्रों द्वारा आपका स्वागत हुआ। उनके उत्साही प्रशंसक तथा श्रद्धालु भक्त, उनके मित्र के मकान से पटनीमल की हवेली तक उनकी गाड़ी अपने हाथों से खींच कर ले गए। वहां आपने बतलाया कि पड़ोस के जिलों में लोग भूख से मर रहे हैं और हमें उदारतापूर्वक धन से उस भीषण स्थिति का मुकाबला करना चाहिए। जब वह लाहौर पहुँचे तो आपने पहले तो आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में रविवार को धन की अपील की, फिर पत्रों द्वारा यही काम किया। वह लाहौर अधिक दिन न ठहरे। फरवरी के अन्त में आप संयुक्त प्रान्त के दुर्भिक्ष ग्रस्त इलाके का दौरा करने लगे। आगरा नगर व जिले में अकाल की विशेष भीषणता थी, अतः

उन्होंने उधर विशेष ध्यान दिया। आगरा में उनको आर्य मिलन सभा की ओर से एक मानपत्र तथा एक थैली भेंट की गयी और स्वदेशी बाजार की जनता ने आपकी अपील पर उसी समय १०००) रु० दिया, जो उन दिनों भारी रकम समझी जाती थी। संयुक्तप्रान्त में १२ दिन भ्रमण करने के अनन्तर आपने अखबारों में दुर्भिक्ष ग्रस्त इलाके का आंखों देखा वर्णन प्रकाशित कराया। आप लोगों को बतलाते थे कि सरकारी एजेन्सी द्वारा कितनी ही योग्यता से कार्य क्यों न किया जाय, वह काफी नहीं है। कार्य बड़ा विशाल है। इसके अतिरिक्त जनता द्वारा संगठित कार्य से हम आत्मविश्वास तथा दृढ़ता का पाठ भी सीखते हैं। वर्तमान परिस्थिति में तो नौकरशाही की एजेन्सी योग्यता का अभिमान भी नहीं कर सकती। उन्हें सरकारी मशीन के विशेष दोष निरीक्षण करने का भी खासा अवसर मिला है। आगरा में उन्होंने एक अनाथगृह देखा जिसमें ४७ व्यक्ति सहायता पाने वाले थे और जिनके भोजन पर १२०) रु० मासिक से अधिक खर्च नहीं हो रहा था, परन्तु जिसके प्रबन्ध के लिए एक अध्यक्ष, एक अस्पताल सहायक, एक अकाउण्टेण्ट, दो चपरासी, एक सन्तरी, एक रसोइया तथा एक पानी वाली (सक्का) रक्खे हुए थे और अनाथों की अपेक्षा प्रबन्धों का व्यय कहीं अधिक था।

दुर्भिक्ष का कार्य करते हुए जहां आपके सामने मानव सेवा का उच्च आदर्श रहता था, वहां हिन्दू जाति के हितों का भी ध्यान रहता था। आपने किसी को हिन्दू धर्म में प्रविष्ट नहीं किया, परन्तु ईसाई प्रचारकों को क्षुधार्त हिन्दुओं के कष्ट-समय का दुरुपयोग करते हुए देख कर आपके मन को कष्ट होता था। आपने कई अस्थायी अनाथालय खुलवा दिए।

मई में वह, दुर्भिक्ष ग्रस्त इलाके के दूसरे दौरे पर चल पड़े और लखनऊ से आरम्भ कर के, वह सीतापुर, गोंडा, मिर्जापुर तथा इलाहाबाद गए। आपने सहायता केन्द्रों का निरीक्षण किया और कार्यकर्ताओं के साथ विचार विनिमय करते रहे। केन्द्रीय समितियाँ तो लखनऊ तथा इलाहाबाद में थीं, कई स्थानों पर स्थानीय कमेटियां स्थापित की गयीं। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन इलाहाबाद कमेटी के मंत्री थे। पं० मदनमोहन मालवीय सहायता के कार्य में बड़ी दिलचस्पी लेते हुए, कई स्थानों पर लाजपतराय के साथ दौरा करते रहे। इस कार्य में उनके लेफ्टीनेण्टों में सर्वेण्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी के मि० जी० के० देवधर थे, जो यू० पी० में कार्य आरम्भ करने से पूर्व लाहौर उनसे आदेश और हिदायतें लेने आए थे। लाजपतराय के अधिकांश स्वयंसेवक उनके अपने प्रान्त से ही भर्ती हुए थे। बंगाल के स्वयंसेवकों को इस कारण भर्ती नहीं किया गया, कि उन्हें हिन्दुस्तानी भाषा का पर्याप्त ज्ञान न था। आपकी धन के लिए अपील बड़ी सफल रही। कुछ विदेश में रहने

वाले भारतीयों (उदाहरणार्थ जापान से) ने भी उनको धन भेजा। पत्रों में एक नोट द्वारा उन्होंने संयुक्त प्रान्त की उदासीनता के बारे में शिकायत की है कि उनको वहां से स्वयंसेवक नहीं मिले और उन्हें अपने प्रान्त से कमी पूरी करनी पड़ी। कुछ केन्द्रों में उनके कार्यकर्ताओं को सरकार की ओर से भी अच्छी सहायता प्राप्त हुई, परन्तु कुछ केन्द्रों में वह पुलिस तथा अधिकारियों में सहानुभूति के अभाव की शिकायत करते हैं। नार्थ वैस्टर्न रेलवे ने शुरू में ही घोषणा कर दी कि अकालग्रस्त इलाकों को भेजी जाने वाली सामग्री (जिसे लाजपतराय प्रमाणित करें) आधे किराये पर भेजी जायगी। इसी प्रकार की घोषणा ईस्ट इंडियन रेलवे की ओर से भी हुई।

आगे चल कर सहायता का कार्य यू० पी० की सीमाओं से बढ़ गया। शायद कुछ धन सहायता से बच गया था या कम से कम उसके बचने की आशा थी। आपने पत्रों द्वारा निर्धन विद्यार्थियों से आर्थिक सहायता के प्रार्थना पत्र मांगे और दानियों से भी आज्ञा मांगी कि वह धन का इसप्रकार प्रयोग कर सकें।

दुर्भिक्ष में जनता की सहायता द्वारा, लाजपतराय को भारतवर्ष की मुख्य समस्या—जन साधारण की दरिद्रता का समीप से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। जिसका ज्ञान अन्य राजनीतिज्ञों को सरकारी रिपोर्टों तथा आंकड़ों आदि के निर्जीव साधनों द्वारा होता है। कभी कभी तो वह उन लोमहर्षण दृश्यों को देख कर अत्यन्त हताश से हो जाते थे। उनके लेखों में एक में अकाल का दृश्य इस प्रकार चित्रित किया गया है—

"उनमें से अधिकांश तो मृतप्राय दिखायी पड़ते थे। हम तो कुछ इने गिने लोगों को सहायता देना चाहते थे और हमने अभी थोड़ी सी सहायता दी थी। हमें देख कर बालकों तथा अन्य विपदाग्रस्त लोगों का भारी समूह हम पर टूट पड़ा और सहायतार्थ पुकार मचाने लगा। स्वयंसेवकों ने पैसों की कुछ मुट्ठियां भर कर फेंकी। इस पर जो हृदय-विदारक तथा दुखदायी दृश्य देखने को मिले वह वर्णनातीत हैं। मैंने स्वयंसेवकों को आज्ञा दी कि शायद उन्हें भूखों मरने देना उन पर अधिक दयालुता होगी, क्योंकि इससे उनके दुखों की समाप्ति हो जायगी और हमारी सहायता द्वारा उनका आजीवन मृत्यु तथा क्षुधा का संघर्ष बना रहेगा। अधेड़ आयु के स्त्री पुरुषों की दशा तो कुछ अच्छी थी, परन्तु वृद्ध तथा बालकों की स्थिति अधिकांशतः अत्यन्त नाजुक थी। कुछ लोगों को मुफ्त सहायता दी जाती थी, कुछ लोगों से काम लिया जाता था। शीघ्र अथवा विलम्ब से सभी के संघर्ष का परिणाम अकालमृत्यु ही दिखलायी पड़ता था।

अच्छी बात यह है कि इसी केन्द्र में बैठे हुए मेरे मन में यह विचार आया कि

क्या इन लोगों को मृत्यु का ग्रास बनने देना उनके प्रति अधिक दयालुता नहीं होगी, क्योंकि उनमें से अधिकांश तो निश्चितरूप से ही काल के मुँह में चले जायेंगे।

(पंजाबी, २ मई, १९०८)

कभी कभी कोई आशा की किरण भी दिखलायी पड़ जाती थी। लाजपतराय ने अपने एक लेख में एक "स्वर्गीय दृश्य" का वर्णन किया है, यद्यपि अन्त में उससे भी निराशा में ही वृद्धि हुई।

एक स्वर्गीय दृश्य

इस दुखमय काण्ड के मध्य में, मैंने एक दृश्य देखा जिसका मेरे मन पर भिन्नप्रकार का प्रभाव पड़ा। दस बारह वर्ष की एक कृषकाय बालिका, सिर से पांव तक नंगी (उसकी कमर में लज्जावरण के रूप में एक फटे चिथड़े के अतिरिक्त कुछ भी न था) मिट्टी का एक टोकरा उठाए हुए, मुसकराती जा रही थी, मानो उसकी अंतरात्मा उसके चारों ओर के समस्त संसार का उपहास कर रही थी—यह संसार जिसमें धनी तथा निर्धन के कृत्रिम भेद विद्यमान हैं और जहां नश्वर तथा अस्थिर पदार्थों के लिए निरन्तर संघर्ष तथा कलह जारी रहते हैं। वह बालिका अपने चारों ओर के दुखों के प्रति निर्लिप्त थी, अतः प्रफुल्लित थी।

ज्योंही उस निर्दोषिता की प्रतिमा—उस बालिका पर मेरी दृष्टि पड़ी, मैं मंत्रमुग्ध की तरह उसी स्थान पर गड़ गया। मैंने उसे देखा और मुसकराया। लड़की भी मुसकरायी। मानो प्रेम भावना से प्रेरित हो कर निस्संकोच मैं उसकी ओर बढ़ा और दुलार से मैंने अपना हाथ उसके सिर पर रखा। मेरा विचार उसे चुम्बन करने तथा उसे कुछ धन देने का था। इस भय से कि कहीं देखने वाले मेरी हँसी न उड़ाएं, मैं रुक गया। यह सब कुछ मिनटों में ही हो गया। बेचारी लड़की अपना टोकरा लेकर चली गयी और दुखी मन से मैं भी वहां से चला आया। काश कि मेरे पास उस समय उस बालिका का चित्र लेने के लिए एक कैमरा होता। उसका चित्र मेरे मानस पट पर स्थाई रूप से अंकित हो गया है। जब मैंने इस घटना पर अधिक विचार किया तो मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि हिन्दू धर्म का यही पहलू (जीवन की सभी दशाओं में शान्ति तथा सन्तोष) हमारी राजनैतिक दासता का मुख्य कारण बन रहा है...। शायद दोपहर के १२ बजे होंगे कि हम वहां से बिदा हुए। उस दृश्य का मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं दिन भर उदास रहा।

(पंजाबी—२९ फरवरी १९०८)

अध्याय छब्बीसवां

पुनर्वार विदेश-यात्रा का कारण

२३ अगस्त को उनके मित्रों ने (जिनमें लाहौर से बाहर वाले भी सम्मिलित थे) लाहौर स्टेशन पर उन्हें विदाई दी। उनके मित्र दीवानचन्द कपूर का नवयुवक बेटा राधाकिशन उनकी यात्रा का साथी था। रामभजदत्त चौधरी सरला देवी भी उसी दिन योरुप को रवाना हुए और उनकी मित्र मण्डली भी उनको विदा करने रेलवे स्टेशन पर आयी थी। उनका बम्बई में भी स्वागत हुआ। "पंजाबी" में एक रिपोर्ट छपी कि लाला लाजपतराय चुपके चुपके चले गए हैं।

इस समय तक तिलक को छः वर्ष का कठोर कारावास प्राप्त हो चुका था। अपने पत्र में कुछ (आपत्तिजनक) लेखों के कारण अरविन्द घोष भी गिरफ्तार कर लिए गए थे और उनकी बहन ने जनता से धन संग्रह की अपील की थी जिससे उनका मुकदमा लड़ने का प्रबन्ध किया जा सके। पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में राष्ट्रवादी पत्रों के विरुद्ध राजद्रोह तथा अन्य प्रकार की कार्यवाहियां की जा रही थीं। बाल-पाल-लाल की त्रिमूर्ति में से, प्रथम (बाल गंगाधर तिलक) ब्रह्मा को निर्वासित कर दिए गए थे, जहां से लाल (लाजपतराय) गत वर्ष ही लौटे थे. लाल दलबन्दी से उस समय बाहर ही थे। तिलक के साथ ही अरविन्द घोष को भी देश भर में राष्ट्रीयता तथा राजनीति का निर्माता माना जाता था, परन्तु इस समय वह भी स्वतंत्र नहीं थे। सूरत के पश्चात्, पाल (विपिनचन्द्र) ने दक्षिण में कुछ दिन गर्जना की, परन्तु उन्होंने भी योरुप जाने का निश्चय कर लिया जिससे वह अंग्रेज जनता तथा योरुप और अमेरिका के प्रमुख नेताओं को बतला सकें कि भारतवर्ष में क्रान्ति का आगमन अनिवार्य है। वह क्रान्ति शान्तिपूर्ण होगी अथवा किसी अन्य प्रकार की, इसका निर्णय बहुत हद तक उनकी नीति पर निर्भर रहेगा। लगभग उन्हीं दिनों तिलक के दाएं हाथ—मि० जी० एस० खापर्डे भी योरुप को चल दिए।

लाजपतराय के मन में देश की राजनीतिक परिस्थिति का सुखमय चित्र अंकित नहीं हो सकता था। जैसा कि उन्हें पहले ही भय था, फूट से आन्दोलन निर्बल हो गया। सरकार ने दमनचक्र चलाना आरम्भ कर दिया और फूट उसकी सहायक हुई। राष्ट्रीय उत्साह की लहर समाप्त नहीं हो गयी थी, केवल उसका संचालन

करने वालों का अभाव था। उत्साही युवक जिन्हें कि खुले आन्दोलन में सन्तोषजनक मार्ग नहीं सूझता था गुप्त हिंसावादी सभाओं में भरती होने लगे। बंगाल में क्रांतिकारियों का एक विख्यात मुकदमा चल रहा था। जहाज़ पर ही उन्हें ज्ञात हुआ कि उक्त केस ने विचित्र नाटक का रूप धारण कर लिया है और सुलतानी गवाह नरेन्द्रनाथ गोसाईं की कन्हायीलाल दत्त तथा सत्येन्द्रनाथ बोस ने मिल कर हत्या कर डाली है।

१९०५ में लाला लाजपतराय निश्चितरूप से कांग्रेस के प्रतिनिधि बन कर योरुप गए थे, इसके अतिरिक्त वह बहुत सी बातें देखना और अध्ययन करना चाहते थे। इस बार न तो कोई निश्चित बुलावा था और न कोई निश्चित उद्देश्य। उन्होंने जहाज़ पर से जसवन्तराय के नाम एक विस्तृत पत्र में इस बात का पूरा विवरण दिया है कि क्यों और किस भावना से उन्होंने इस यात्रा का फैसला किया। वह पत्र "पंजाबी" में प्रकाशित हुआ था। उसमें से कुछ भाग यहां दिए जाते हैं—

"मैं नहीं जानता कि आपको क्या लिखूं सिवा इस बात के कि मैं दुखी होकर इस बार घर से विदा हुआ। जुलाई १९०५ में, जब जीवन में प्रथम बार भारत तट को छोड़ कर चला था, तो मैं प्रसन्न था क्योंकि मुझे विशाल संसार के दर्शन करने, ज्ञान प्राप्ति तथा अपने देशवासियों के हितार्थ उस यात्रा के सदुपयोग करने की आशा थी। उस समय मैं समझता था कि मैं एक मिशन (उद्देश्य) को लेकर जा रहा हूँ। अंग्रेज़ी जीवन से सर्वथा अपरिचित होने के कारण मुझे आशा थी कि जिन लोगों के हाथ में भारत का भाग्य सूत्र है, मैं उन पर कुछ प्रभाव डालूंगा। मेरा विचार था कि जब घर में (इंग्लैण्ड में) रहने वाले अंग्रेज़ भारत स्थित अंग्रेज़ों के अन्याय की कहानी सुनेंगे, तो वह अवश्य न्याय करेंगे। अपने देश के शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलनों में दिलचस्पी रखने के कारण, मैं आशा करता था कि पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली के बारे में बहुत कुछ सीख कर आऊँगा और अपने समय तथा धन का सदुपयोग करूँगा...गत दो सप्ताह में बार बार मुझसे पूछा गया है कि मैं क्यों योरुप जा रहा हूँ और कब लौटूंगा?"

एक नाज़ुक प्रश्न

इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करते हुए और यह कहते हुए कि दोनों बातों के बारे में ठीक ठीक कुछ नहीं कह सकता, मैं अपने मन में एक प्रकार की लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि तुम ऐसे समय जा रहे हो, जब मातृभूमि बड़ी नाजुक घड़ियों में से गुजर रही है, जब मेरे मित्र तथा सहकारी (समस्त देश में) विपदाग्रस्त हो रहे हैं और मेरे प्रेमियों तथा प्रशंसकों को मेरे

परामर्श तथा मंत्रणा की अत्यन्त आवश्यकता थी। मैं महसूस करता हूँ कि ऐसे कड़े अवसर पर हिन्दुस्तान छोड़ना (कुछ मास के लिए ही सही) मानों भय से भागना तथा अपने मित्रों को अकेला छोड़ना ही है। कुछ मित्रों ने, सचमुच ऐसा संकेत किया भी हैं। तुम तो जानते ही हो कि इसमें कितनी सच्चाई है। तुम जानते हो कि मेरे कुछ प्रसिद्ध मित्रों ने ही इंग्लैण्ड जाने का अनुरोध किया था। अफवाह इतनी प्रबल थी कि आपके कालमों में खण्डन के होते हुए भी, "बंगाली" में एक लेखक ने बतलाया कि उसके पास यह कहने के उत्तम प्रमाण हैं कि मैं बाहर जा रहा हूँ। परन्तु उस समय मैंने जाने से इनकार कर दिया था, क्योंकि उस समय मैं दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता के कार्य में व्यस्त था और लाहौर की स्थिति का पूरी तरह जांच करने का अवसर मुझे नहीं मिला था। जिस कारण ने मुझे अब बाहर ढकेला है, वह उस समय उपस्थित नहीं था। उसके अनन्तर भी समय समय पर मुझे बाहर जाने का परामर्श मिलता रहता था, परन्तु मैंने दुर्भिक्षकार्य के लिए भी लाहौर छोड़ना उचित नहीं समझा, जब तक कि बमों की आशंका के सिलसिले में तलाशियां लेने तथा मेरे साथियों की (राजद्रोह के सिलसिले में) गिरफ्तारियों की अफवाहें गर्म थीं।

"मेरे पुत्र का विचार अध्ययन के लिए योरुप जाने का था और मेरे सामने भी उसके साथ जाने का प्रलोभन था, परन्तु उन्हीं दिनों पंजाब में तलाशियों तथा गिरफ्तारियों की अफवाहें गर्म थीं। मैंने प्रलोभन को जीत कर जाने से इनकार कर दिया। मैंने अपना निश्चय क्यों बदल दिया है, यह स्वाभाविक प्रश्न है जो कि मेरे बारे में पूछा जा रहा है। इसका उत्तर टालने के उद्देश्य से मैंने अपनी विदाई गुप्त रखी और इसलिए आशंका से भी कि किसी को पता लग गया और उसने "बंगाली" के नाम तार दे दिया।

दुखदायी वातावरण

"अच्छा, सच्ची बात यह है कि मैं लाहौर के जीवन से तंग आ गया था। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मेरे निर्वासन के पीछे जीवन का इतना अध:पतन हो जायगा। धीरे-धीरे मुझे ज्ञात हुआ कि जिन लोगों ने मुझे निर्वासित कराने में प्रमुख भाग लिया था, उनका परिस्थितियों पर कोई काबू न था। ईमानदार राजभक्तों, सच्चे व सीधे माडरेटों तथा उदाराशय गर्म दल वालों की बात तो समझ में आ सकती हैं और मनुष्य उनके साथ सहयोग कर भी सकता है, परन्तु दोनों दलों के प्रवंचकों, धूर्तों तथा देशद्रोहियों की नीचता को सहन करना असम्भव है।

"क्या ईमानदार व्यक्तियों के लिए यह सम्भव है कि उन लोगों के साथ सम्पर्क रक्खें अथवा उनके साथ मिल कर कार्य करें, जो राजभक्त, माडरेट तथा उग्रवादी का पार्ट भी खेल सकते हों और सब से बढ़ कर जासूसी का कार्य भी करते हों, क्योंकि उससे उनकी जेबें भरती हैं? लाहौर में जिस प्रकार की बातें सुनने में आती हैं, यदि उनका पच्चासवां भाग भी विश्वस्त समझा जाय, (जो विगत परिस्थितियों में राजभक्त तथा माडरेट नेता बनने का दावा करते फिरते थे) तो यही कहना पड़ेगा कि ईश्वर ऐसे देशभक्तों से देश को बचाये। निस्संदेह माडरेट भी कई प्रकार के होते हैं। बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के ढंग के माडरेट भी हैं, मि० गोखले, सर फिरोजशाह मेहता अथवा माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय के प्रकार के माडरेट हैं। मनुष्य उनके राजनीतिक सिद्धान्तों से सहमत हो सकता है अथवा उनसे मतभेद रख सकता है, परन्तु उनकी ईमानदारी तथा सच्चाई पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। उन लोगों के बारे में आपकी क्या सम्मति होगी जो अपने आर्थिक लाभ के लिए ही राजभक्त, माडरेट अथवा उग्रवादी बन जाते हैं। यदि जासूसी करने से उनको विशाल धन की प्राप्ति होती है तो उन्हें इसमें भी कोई संकोच नहीं। हो सकता है, यह मेरे मस्तिष्क की कल्पनाओं का ही परिणाम हो (काश कि यह सत्य हो) परन्तु मुझे तो लाहौर, आजकल ऐसे ही लोगों से पूर्ण दिखलाई पड़ता है। आप यह भी निश्चय नहीं कर सकते कि किस का विश्वास किया जाय और किसका अविश्वास। प्रतिष्ठित वेशभूषा रखने वाले और प्रतिष्ठित पदों को सुशोभित करनेवाले कुछ व्यक्ति हैं जिनका मुख्य व्यवसाय सच्चे, झूठे अथवा अत्युक्तिपूर्ण किस्से अधिकारियों तक पहुँचाना मात्र है। गत २-३ मास से मुझे खेद होने लगा कि आर्यसमाज के साधारण क्षेत्र ही में मजे से मैं काम क्यों न करता रहा। आर्यसमाज, ब्राह्मो समाज अथवा किसी अन्य सभा या समाज में शान्त सामाजिक तथा धार्मिक काम करने वाले लोग, कम से कम विश्वसनीय तो हैं। उनमें भी जासूस तथा द्रोही हो सकते हैं। क्योंकि चिर-काल से विदेशी दासता के जुए में रहते लोगों के लिए इस व्याधि से बचना कठिन होता है, परन्तु उन संस्थाओं में अधिकांश लोग ईमानदार हैं। उन्हें अपने नैतिक अधःपतन का भय बना रहता है। लाहौर से बाहर रहने वाले कल्पना भी नहीं कर सकते कि गत राजनैतिक संकट के समय लाहौर के समाज का कितना भारी नैतिक पतन हो गया था। अन्तरात्मा की आवाज की तनिक भी परवाह न करते हुए लोग मित्रों के साथ द्रोह करने से भी न चूके। पुरानी शत्रुता का बदला लेने में भी कोई कसर न रखी गयी। समाज के स्तम्भ कहलाने वालों का मुख्य उद्देश्य अधिकारियों के साथ अच्छा सम्बन्ध बनाए रखना और उन्हें प्रसन्न रखना रहा है। मैं तो जासूसों के बारे में सदा परेशान रहता था। अब तो आपको तथा अन्य मित्रों

को ज्ञात होगा कि मैंने किस कारण से अपने परिवार तथा कार्य से कुछ काल के लिए सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। मुझे आशा है भारतवर्ष से यह संक्षिप्त अनुपस्थिति मेरी मानसिक विकलता को ठीक करने में सहायक होगी और मैं लौटकर अधिक आशावाद से काम कर सकूँगा।"

यात्रा में भी "जासूस" आपको तंग करते रहे और कभी कभी बड़ा मज़ा आ जाता था। लाजपतराय की लाहौर से विदाई की रिपोर्ट देता हुआ एक पत्र लिखता है "कहा जाता है कि एक मुसलमान डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ने लाला लाजपतराय के सेकण्ड क्लास वाले सुरक्षित सेलून के साथ वाला फर्स्ट क्लास सेलून सुरक्षित करा लिया था।" मुसलमान अफसर तो उनके साथ जहाज़ पर नहीं था, परन्तु एक योरुपियन अफसर अवश्य था और उसे काफी परेशान होना पड़ा था, जब मार्सेल्स में भारतीय विद्यार्थियों का एक उत्साही समूह भारतीय युवकों के नेता का स्वागत करने के लिए ट्रेन में चढ़ गया और लाजपतराय भीड़ में ही मिल गए। बेचारा अंग्रेज अफसर, लाजपतराय के कार्य का निरीक्षण करने लण्दन पहुंचा।

जसवन्तराय के जिस पत्र में से हमने अभी उद्धरण दिया है, उसी में यह भी लिखा था कि पंजाब में राजनैतिक कार्य किस प्रकार करना चाहिए और पंजाब में गरमदल तथा नरम दल के नाम से किसी प्रकार की फूट नहीं पड़नी चाहिए, किस प्रकार के राजनैतिक नेताओं तथा कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित करना चाहिए। पत्र की समाप्ति पर जहाज़ के साथियों का वर्णन दिया गया है। हमें ज्ञात होता है कि लगभग एक दर्जन पंजाबी विद्यार्थी अंग्रेज़ी विश्वविद्यालयों में अध्ययनार्थ जा रहे थे और जहाज़ पर भारतीय यात्रियों की संख्या ३० या ४० थी जिनमें टैगोर परिवार की एक तरुण बंगाली महिला तथा मि० ए० चौधरी भी थे। "आज हमें चपातियां तथा कढ़ी खाने को मिलीं। विद्यार्थियों को रोटी खाने की प्रबल इच्छा थी और उन्हें यह परिवर्तन पसन्द आया।"

लाजपतराय किसी अनिश्चित उद्देश्य के बिना ही चले गए थे और जैसा कि उन्होंने लिखा था कि वह देश के सार्वजनिक जीवन की खराबी से ऊब कर ही विदा हो गए थे, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि उन्होंने देश सेवा के कार्य का कोई भी अवसर हाथ से जाने दिया। आप बड़े शक्तिशाली प्रचारक (प्रोपेगैण्डा करने वाले) सिद्ध हुए और प्रोपेगैण्डा का कोई भी अवसर हाथ से जाने नहीं देते थे। आप पत्रों में लेख लिखा करते थे और मंच से व्याख्यान दिया करते थे। यदि कभी भारतीय आन्दोलन के शत्रु किसी अंग्रेज़ी पत्र में कोई अशुद्ध बातें लिखते थे तथा कोई गलतफहमी फैलाने का अपराध करते थे तो आपको खूब मौका मिल जाता था। "मांचेस्टर गार्जियन" तथा "डेली न्यूज़" जैसे महत्वपूर्ण पत्रों ने उनके साथ

भेंट कर के उसका विवरण प्रकाशित किया। अंग्रेज़ी लेखक जगत में सर्वोच्च पदवी रखने वाले महारथी नैविन्सन तथा स्टेड ने भी उनसे भेंट की। "रिव्यू आफ रिव्यूज़" की ओर से भेंट करते हुए मि० स्टेड ने एक मनोरंजक प्रश्न उनसे किया—"यदि आप भारत में ब्रिटिश वायसराय होते, तो आप क्या करते?" सम्भवतः लाजपतराय ने इस प्रकार की परिस्थिति के लिए अपने आपको तैयार न पाया, परन्तु आपने फिर भी अपने विचार, प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों तथा धारासभाओं के बारे में प्रकट किए जिनका सार मि० स्टेड ने यह निकाला, "दूसरे शब्दों में, आप वायसराय के पद को भारत में ब्रिटिश सरकार की कब्र खोदने के लिए प्रयोग करेंगे।" इसके पश्चात् शीघ्र ही वह भेंट समाप्त हो गयी। मि० नेविन्सन तो भारतीय समस्या तथा भारतीय आन्दोलन का अध्ययन स्वयं हिन्दुस्तान आकर कर चुके थे, अतः उनके प्रश्न लाजपतराय से छोटी छोटी बातों—तत्कालिक शिकायतों—के बारे में होते थे। लाजपतराय ने उनको जासूसी तथा राजनैतिक बन्दियों के साथ साधारण अपराधियों जैसा व्यवहार किया जाना आदि बतलाया।

किसी भारतीय ने "डैली न्यूज़" में लिखा कि हैदराबाद में एक (पेनी) आने के भोजन से गुजारा हो सकता है। लाजपतराय ने भारतवर्ष में चालू कीमतों के आंकड़े देते हुए उसका उत्तर दिया। एक "पंजाबी मिशनरी" ने उसी पत्र में बेगार को उचित ठहराया, लाला जी ने उसको झाड़ दिया। स्वेंसी में भाषण करते हुए मि० लायड जार्ज ने उदार चुनाव क्षेत्रों तथा लिबरल (उदार) युवकों में नवजीवन संचार के महत्व पर बल देते हुए कहा कि देश में किसी श्रेणी को प्रतिष्ठित बना देने से जाति का उत्साह तथा पुरुषत्व क्षीण हो जाता है (करतल ध्वनि) देश की रक्षार्थ जनता को ऐसी संस्थाओं के विरुद्ध घोर प्रतिवाद करना चाहिए। इस भाषण से भी लाजपतराय को खूब सामग्री प्राप्त हुई और शीघ्र ही "डेलीन्यूज़" के नाम पत्र लिखते हुए पूछा कि "अर्थ सचिव द्वारा सार्वभौमिक सत्य समझे जाने वाले लिबरलिज्म के सिद्धान्तों को भारतवर्ष पर क्यों लागू नहीं किया जाता?" इससे स्पष्ट होता है कि लाजपतराय कितने महान् प्रोपेगैंडिस्ट (प्रचारक) थे।

आप इंग्लैण्ड में भ्रमण करते थे और व्याख्यान देते थे। "क्लेफ़म" में उनकी सभा के प्रधान एस० के० रेटक्लिफ़ थे। वेस्टबोर्न पार्क में, पार्लियामेण्ट के सदस्य गी० पी० गूच प्रधान थे, अन्य स्थानों में मेकडानाल्ड तथा ओलिवियर सभापति बने। भाषण के अन्त में उनसे प्रश्न पूछे जाते थे, जिनके वह सन्तोषजनक उत्तर दिया करते थे। एक बार आपसे पूछा गया कि "प्रतिनिधि शासन की मांग करने वाले करोड़ों व्यक्तियों से आपका क्या अभिप्राय है? क्या आप उन संस्थाओं के आंकड़े पेश कर सकते हैं जिन्होंने प्रार्थनापत्र या मेमोरियल भेजे हैं? क्या आप

कोई विश्वस्त प्रमाण दे सकते हैं कि आप ५ प्रतिशत से अधिक जनता का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं? उनकी ओर से संक्षिप्त परन्तु मुँहतोड़ उत्तर था कि अंग्रेज़ सरकार ने स्वयं आन्दोलन की सत्यता का प्रमाण दिया है। निर्वासन तथा दमन-चक्र अनावश्यक—होते, यदि केवल ५ प्रतिशत जनता का सम्बन्ध होता।" आप प्रत्युत्पन्नमति वक्ता थे और घटनाएं तथा आंकड़े सदा आपके पास विद्यमान् रहते थे। पार्सिवाल लेण्डन नाम के किसी व्यक्ति ने "भारतीय असन्तोष" पर "डेली टेलीग्राफ" को पत्र लिखे। लाजपतराय को उसके इस विचार का कि राष्ट्रीय आन्दोलन ब्राह्मणों के प्रभुत्व का आन्दोलन है—खण्डन करने का स्वर्णावसर मिल गया। उसने यह भी लिखा था कि आर्यसमाजियों ने सिक्खों की राजभक्ति में बिगाड़ पैदा कर दिया है। स्वयं लाजपतराय पर भी उसने कृपा दृष्टि की थी, परन्तु लाजपतराय ने केवल यह कह कर सन्तोष कर लिया, "यह बातें इस समय फैसले के लिए कलकत्ता हाईकोर्ट के सामने हैं। न्यायशीलता के साधारण नियमों के अनुसार आपके संवाददाता को इन बातों का विवरण नहीं देना चाहिए था, परन्तु उनके सामने मुझे ब्रिटिश जनमत की आंखों से गिराने का भारी प्रलोभन था जिसका संवरण वह न कर सके।" मि० लेण्डन ने हिन्दुओं पर यह घृणित लांछन लगाया कि उनमें सैनिक शक्ति का अभाव है और उसने अफगान (आक्रमण) भय की बातें लिखीं। लाजपतराय ने इसका खूब करारा जवाब दिया "यदि मि० लेण्डन इतिहास का अध्ययन कुछ अधिक ध्यान से करते तो उन्हें ज्ञात होता कि अंग्रेज़ों के आगमन से बहुत काल पूर्व, पंजाब के हिन्दू अफगान हौए का भय खो चुके थे। यदि आज भी वह अफगान सीमा पर जाकर पूछताछ करें तो उन्हें मालूम होगा कि आज भी अफ़गान माताएं अपने बच्चों को डराने के लिए एक हिन्दू क्षत्री सेनापति (हरिसिंह नलुवा) का नाम इस्तेमाल करती हैं। (इन क्षत्रियों की श्रेणी को सूदखोर बनिए कहा जाता है) सच्ची बात यह है कि सैनिक मनोवृत्तियां विशेष काल तथा परिस्थितियों की उपज हुआ करती हैं। उन पर किसी वर्ण अथवा जाति विशेष का एकाधिकार नहीं होता।"

लण्दन स्थित भारतियों ने १६ अक्टूबर १९०८ को राष्ट्रीय दिवस मनाया। कैक्सटन हाल में एक सार्वजनिक सभा की गयी जिसमें लाजपतराय तथा विपिनचन्द्रपाल प्रमुख वक्ता थे। पाल की वक्तृता काव्यमय गद्य में थी। लाजपतराय ने कहा कि भारत में राष्ट्रीयता का जन्म १६ अक्टूबर १९०५ को हुआ था, आज हम उसकी तीसरी वर्षगांठ मना रहे हैं।

हम पहले भी "पंजाबी" में प्रकाशित लाजपतराय के विदेश से लिखे प्रथम पत्र में से उद्धरण दे चुके हैं। उसी में वह पत्र माला जारी रही। कई लेखों में तो

लाजपतराय ने जो जो दृश्य तथा वस्तुएं देखी थीं, उन्हीं का वर्णन है। उदाहरणार्थ पत्र नं० २ में मुख्यतः उद्योग तथा कला की एंग्लो-फ्रेंच प्रदर्शिनी का विवरण है। उससे अगले पत्र में उन दिनों इंग्लैण्ड के महिला आन्दोलन की नायिका—श्रीमती पेंखर्स्ट तथा उनकी सहकारिणी वीरांगनाओं के सनसनीपूर्ण कार्यों की विस्तृत कहानी है।

लाजपतराय के साथी राधाकिशन ने भी कुछ संस्मृतियां लिखीं। एक दिन प्रातः लाजपतराय कहने लगे कि मेरा बटुआ खो गया है जिसमें भारी रकम थी। पीछे प्रतीत हुआ कि उन्होंने गलती से कहीं इधर उधर धर दिया था और होटल के छोकरे को मिल गया। वह छोकरा उसे लाजपतराय के पास ले आया और उसे अच्छा पुरस्कार मिला।. . . राधाकिशन कहते हैं कि ईमानदारी का इनाम अवश्य देना चाहिए यह शब्द अभी तक मेरे कानों में गूंज रहे हैं। इसी विदेश भ्रमण में उनकी क्रोपाटकिन से भेंट हुई। एक पत्र में वह उनके निवासस्थान का पता भी देते हैं, परन्तु वह कुछ काल श्याम जी के इंडिया हाउस में रहे।

विल्फ्रेड स्कावर्ट ब्लण्ट अपनी डायरी में इन दिनों के लाजपतराय के विषय में लिखते हैं "गोखले तथा लाजपतराय मुझसे मिलने आये" वह २२ अक्टूबर १९०८ की डायरी में लिखते हैं, "उन्हें नेविन्सन ने भेजा था। वह एक घंटा ठहरे और हमने भारतीय परिस्थिति पर पूर्णतः विवाद किया। मैं दोनों से हताश हुआ। मेरा विश्वास है कि गोखले एक सुसंस्कृत, उच्च शिक्षा प्राप्त प्रतिभाशाली मराठा ब्राह्मण है और नेविन्सन के अनुसार राष्ट्रीय आन्दोलन का नेता है। वह अपने विचार सुन्दरता से अंग्रेज़ी में अभिव्यक्त करता है और निस्संदेह एक योग्य वक्ता है। परन्तु स्पष्टतया वह क्रान्ति का नेता नहीं है और उसके बिना उनका कुछ नहीं बन पायेगा। उसमें उस उत्साह (जो अन्तिम सफलता में विश्वास द्वारा प्राप्त होता है) अथवा कड़वाहट (जो घृणा तथा निराशा की शक्ति है) का अभाव है। उसने मुझे बतलाया है कि मैं माडरेट कहलाना पसन्द नहीं करता, परन्तु यदि किसी उग्रवाद का प्रतिनिधि हूँ तो उसकी सफलता की भारत में कोई गुंजाइश नहीं।. . . उसे मार्ले में भारी श्रद्धा थी और उसने स्वाधीनता पर मार्ले के सभी लेख पढ़ डाले हैं, परन्तु उसका विचार था कि व्यक्तिगत स्वाधीनता का प्रचार करता था न कि राष्ट्रीय या जातीय स्वाधीनता का। मैंने उसे बतलाया कि मार्ले टूटी हुई बांसरी है। उसने कहा कि इस बारे में मेरे मित्र लाजपतराय आप से सहमत होंगे। इस पर मैंने लाजपतराय से पूछा कि आपका क्या मत है? लाजपतराय सर्वथा भिन्न प्रकार का पुरुष है। पूर्णतया शुद्ध प्राचीन ढंग का, परन्तु गोखले की अपेक्षा कहीं घटिया संस्कृति तथा प्रतिभा वाला। उनका अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व भी निर्बल है।

उनके विचारों में स्पष्टता का अभाव है। वह कुछ भीरु तथा आचरण में निन्दाप्रिय हैं। मैंने उनमें कोई ऐसी बात नहीं देखी जिसके कारण भारत सरकार उनसे भयभीत हो गयी अथवा जिसके आधार पर मार्ले ने उसे असाधारण कानून द्वारा गिरफ्तार करना तथा मुकदमा चलाए बिना, (भारत के लिए खतरा समझ कर) निर्वासन करना आवश्यक समझा। गोखले की अपेक्षा, उनके विचार कम शान्त थे, परन्तु उनमें स्पष्टता का अभाव था। उन्होंने एक से अधिक बार कहा "मैं भारतवर्ष के विषय में कुछ नहीं जानता, मैं तो अपने प्रांत पंजाब की बात कर रहा हूँ। शायद यदि वह मेरे साथ अकेले होते तो साहस से सभी कुछ कह डालते, परन्तु उन्हें अपने साथी से भय था और मैंने उन्हें भयभीत करा दिया जब मैंने उनसे पूछा कि "देशी सेनायें कहां तक राष्ट्रीय पक्ष का साथ देने को तैयार हैं?" यह स्पष्ट था कि मैं उन दोनों की दृष्टि में कहीं बड़ा क्रांतिकारी था। लाजपत ने जाते हुए मेरे हाथ में एक छोटी सी पुस्तक पकड़ा दी। यह उनकी गिरफ्तारी तथा निर्वासन का सीधा और कहीं कहीं बिलकुल बच्चों जैसा वर्णन था। मुझे आशा है कि वह पुस्तक हमारे ऐंग्लो-इंडियन लोगों के हाथ में नहीं पड़ेगी, नहीं, वह उसकी हंसी उड़ायेंगे। वास्तव में यह बड़ी बेहूदा बात है कि उसके लेखक को जातीय वीर बना दिया जाय। मेरा विचार है कि इंग्लैण्ड में उनका मिशन सफल नहीं होगा। कहीं अच्छा होता यदि वह मेरे मित्र × की तरह किसी उग्रवादी को भेजते जिसके मुख में गालियां और धमकियां होतीं और हमारे उग्रवादी भी देखते कि भारतवर्ष में भी ऐसे व्यक्ति हैं जिनसे डरना चाहिए। न्याय तथा मनावता के अधिकारों के इन मधुरभाषी वकीलों की बात यहां कोई नहीं सुनेगा और मैंने उनको यह बात बतला भी दी।

क्या यह मित्र खापर्डे के अतिरिक्त कोई और थे ? मनुष्य को सन्देह होता है। विश्वास तो लगभग यही होता है। खापर्डे तथा ब्लण्ट की भेंट तो पहली बार इससे ५ मास आगे चलकर हुई। ब्लण्ट की डायरी में खापर्डे के बारे में यों लिखा है :—

"१२ मार्च (१९०९)। एक भारतीय सज्जन, खापर्डे—ने हिण्डमन से परिचय पत्र लेकर मुझसे भेंट की। वह गोखले तथा लाजपतराय से सर्वथा भिन्न प्रकार का सच्चा राष्ट्रवादी है। वह इंगलैण्ड पहली बार आया है और अपने मित्र तिलक (जिसे माण्डले निर्वासित किया गया है) के लिए यथाशक्ति दौड़ धूप कर रहा है। वह बहुत खुले शब्दों में उग्र राष्ट्रीयता की बातें करता है।...माडरेट लोग तो व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होते हैं, परन्तु देश में उनका कोई अनुयायी नहीं। गोखले का लाभ इसी में था कि वह अंग्रेजों के खेल खेलें नहीं तो उसकी यह मान-प्रतिष्ठा

आदि न होतीं। जहां तक लाजपतराय का सम्बन्ध है, उसकी गिरफ्तारी भारी गलती थी, क्योंकि वह महत्वपूर्ण व्यक्ति नहीं था। दंगों के वास्तविक नेता तो अभी तक पकड़े नहीं गए।...इंगलैण्ड के आगमन से उसका विश्वास हो गया है कि न्यायशीलता के नाम पर अपील करना व्यर्थ है और यदि भारत में कोई परिवर्तन लाना आवश्यक है तो बातों से अधिक भी कुछ होना चाहिए और हिंसा अवश्य होगी।" स्पष्ट है कि खापर्डे की हास्यपूर्ण तथा उग्र बातचीत का ब्लण्ट पर गहरा प्रभाव पड़ा। और गोखले तथा लाजपतराय के बारे में भी उसका प्रभाव ब्लण्ट पर पड़ा हो। यह बात विचित्र न होगी कि × खापर्डे है। खापर्डे के शीर्षक के नीचे उसका गोखले तथा लाजपतराय से मुकाबला ध्यान देने वाली बात है। खापर्डे तथा लाजपतराय की राष्ट्रीयता की विभिन्नता तो आगामी घटनाओं से खुली अर्थात् जो कुछ तिलक की मृत्यु के पश्चात् हुआ।

साधारणतः ब्लण्ट लोगों के नाम बीजगणित के चिह्नों द्वारा छिपाने का आदी नहीं था क्या इसका यह कारण था कि × चिह्न आपको सहज प्रतीत हुआ क्योंकि × के साथ ५ मास आगे चलकर भेंट में भी यही चिह्न डाला गया था?

तिथियुक्त डायरी में शायद, ब्लण्ट लाजपतराय की पुस्तक की रसीद के बारे में लिख रहा हो और उसकी आलोचना किसी आगामी तिथि को हो। हां, ब्लण्ट ठीक कहता है कि 'मेरे निर्वासन की कहानी' काफी अपरिपक्व लेखनी का फल है। यह भी ठीक है कि ब्लण्ट के ऐंग्लो-इंडियनों ने इसकी कोई हंसी नहीं उड़ायी, यद्यपि उनमें से बहुतों के लिए पुस्तक देखना आवश्यक था।

हम यह भी कह सकते हैं कि ब्लण्ट ने लाजपतराय के एक मूड का ठीक ठीक चित्र उतारा है। भिन्न भिन्न समयों पर वह भिन्न भिन्न रूप दिखला सकते थे। जब वह चुप्पी साधना पसन्द करते थे, तो दर्शन पर उनके भद्दे संस्कारों तथा मानसिक गड़बड़ी का संस्कार पड़ता था। २२ अक्तूबर को वह बिस्तर से उलटी ओर से उठे हों अथवा मार्ले के सुधारों के बारे में उनकी गोखले से कोई झड़प हुई हो जिससे वह घबराए हुए से हों। "मैं नहीं जानता" से स्पष्ट है कि वह खुली बातचीत करने के मूड में न हों, जैसा कि ब्लण्ट को भी यही सन्देह हुआ। 'शायद यदि वह मेरे साथ अकेले होते'...सम्भव है कि शीघ्रता से बनाए हुए विचारों का आगे चलकर खापर्डे द्वारा पुष्टिकरण ही गया हो।

अध्याय सैंतीसवां

लाजपतराय बनाम 'इंग्लिश मैन'

लाजपतराय अभी माण्डले में ही थे कि उन्होंने कुछ अंग्रेजी तथा ऐंग्लो-इंडियन पत्रों के विरुद्ध मानहानि के केस चलाने के बारे में सालिस्टरों की एक फर्म के साथ पत्र व्यवहार शुरू कर दिया था। उक्त समाचारपत्र समझते थे कि जहां तक एक निर्वासित व्यक्ति का सम्बन्ध है, उसे बदनाम तथा कलंकित करने की उन्हें खुली छुट्टी है। परन्तु माण्डले के दुर्ग में अपने विपक्षियों के मुकाबले में कानूनी तोपें चलाने की पूरी सुविधाएं कहां प्राप्त हो सकती थीं। जेल के अधिकारियों ने तो वह पत्र व्यवहार ही रोक लिया, अतः उनको यह कार्य स्वतंत्र होने तक स्थगित रखना पड़ा। अपनी मुक्ति के तीन मास पश्चात्, ६ फरवरी १९०८ को, लाजपतराय के अटोर्नी (वकीलों) ने इंग्लिशमैन से यह लिखित मांग की कि वह बिना शर्त क्षमा मांगे तथा पचास सहस्र रुपये हर्जाना अदा करे, जो कि दान आदि कार्यों में खर्चा जायगा। इसका इंग्लिशमैन की ओर से कोई उत्तर नहीं दिया गया, जिससे मामला अधिक तीव्र हो उठा। २४ अप्रैल को कलकत्ता हाईकोर्ट में उसके विरुद्ध ५०,०००) रु० हर्जाने का दावा दायर कर दिया गया। इस मुकदमाबाज़ी का आधार पत्र के पंजाब के संवाददाता की लेखमाला का दसवां लेख था जो १० सितम्बर १९०७ को इंग्लिशमैन में प्रकाशित हुआ था। लाजपतराय मई में निर्वासित हुए थे और नवम्बर में मुक्त हो गए थे। यह लेख जिन दिनों प्रकाशित हुआ था, स्पष्टतया उनकी मुक्ति की आशाएं बन्धनी प्रारम्भ हो गयी थीं। इसमें सरकार से उनको न छोड़ने का अनुरोध किया गया था, क्योंकि ऐसा करना मूर्खता होगी। वह लेख निम्नलिखित है :—

"अब समय आ गया है जब लाला लाजपतराय के निर्वासन के विषय में सच्ची बातें प्रकाशित कर दी जायँ। गत वर्ष पंजाब की कुछ देशी पलटनों के देशी अफसरों ने गुप्त रूप से अपने कमान अफसरों को रिपोर्ट दी कि सिपाहियों को बिगाड़ने के निरन्तर प्रयत्न किए जा रहे हैं। यथासमय, कमान अफसरों ने उच्चाधिकारियों को सूचित किया। इसी वर्ष के आरम्भ में लगभग देशी पलटन के देशी अफसरों ने सूचना दी कि एजीटेटर लोग नहरीआबादी वाले बिल का प्रयोग सिपाहियों

को सरकार के विरुद्ध भड़काने में कर रहे हैं। और इस सिलसिले में लाला लाजपतराय तथा अजितसिंह के नाम प्रमुख एजीटेटरों के रूप में लिए जा रहे हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि नहरी आबादी में अधिकांश पुराने फौजी लोग आबाद हैं जिनका आजकल के सैनिकों से घनिष्ट सम्बन्ध है। देशी अफसरों ने इस बात की चेतावनी दी कि यदि नहरी आबादियों का बिल रद्द न किया गया तो हम पंजाब में देशी सेनाओं की प्रतिक्रिया के उत्तरदायी न होंगे। कमान अफसरों ने गुप्तरूप से लार्ड-किचनर को बतलाया है कि यदि उक्त बिल रद्द न किया गया और लाला लाजपतराय तथा अजितसिंह को गिरफ्तार न किया गया, तो हम पंजाब की देशी सेनाओं के बिगड़ने के उत्तरदायी न होंगे। लार्ड किचनर ने तत्काल ही लार्ड मिण्टो से मुलाकात की। लार्ड मिण्टो ने पंजाब के सिविल अधिकारियों को तार दिया कि इन भयानक समाचारों के विषय में अपनी सम्मति भेजें। लाहौर के सिविल अधिकारी लायलपुर की घटना से पहले ही घबड़ाए हुए थे, उन्होंने शीघ्र ही लार्ड किचनर के बयानों का समर्थन कर दिया, परन्तु नहरी आबादी के बिल के रद्द करने की निन्दा की। उनकी सम्मति में लाजपतराय तथा अजितसिंह का निर्वासन ही पर्याप्त होगा। लार्ड मिण्टो का झुकाव पंजाब के सिविल अधिकारियों की बात मानने की ओर था, परन्तु लार्ड किचनर ने अनुरोध किया कि यदि नहरी आबादी का बिल रद्द न किया गया और लाजपतराय तथा अजितसिंह को निर्वासित न किया गया तो मैं प्रतिवाद स्वरूप त्यागपत्र दे दूँगा। क्योंकि लार्ड मिण्टो तथा लार्ड मार्ले, लार्ड किचनर का पद त्याग करना सहन नहीं कर सकते थे, नहरी आबादी का बिल तत्काल ही रद्द कर दिया गया और लाजपतराय तथा अजितसिंह को निर्वासित कर दिया गया। कोई अधिकारी इन बातों की सत्यता से कितना ही इनकार करे, मेरा दावा है कि यह सभी बातें सत्य हैं। भारत में चिरकाल के निवास से मुझे तो यह अनुभव प्राप्त हुआ है कि किसी बात के बारे में सरकारी नौकर तथा पारिभाषिक अशुद्धि में कोई विशेष भेद नहीं होता। कुछ भी हो इन बातों से प्रतीत होता है कि गत मई मास से पार्लियामेण्ट में लाजपतराय के बारे में पूछे गए प्रश्नों के बारे में मि० मार्ले किस कारण से मौन हैं। इन बातों को इस समय प्रकाशित करने का मेरा केवल यह उद्देश्य है कि लार्ड मार्ले ने धारा सभा में लाजपतराय की मुक्ति के बारे में अर्द्ध वचन दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि लाजपतराय ने पंजाब के सैनिकों को बिगाड़ने का अपराध किया है, अतः उनको कई वर्ष पूर्व छोड़ देना भीषण मूर्खता का कार्य होगा। लाजपतराय के गुण ही उनको अधिक भयानक बनाते हैं। इसी प्रकार के अर्द्ध धार्मिक, अर्द्ध राजनीतिक, आधे पागल और आधे होशियार प्रचारक ही अत्यन्त भयानक षडयंत्रकारी होते हैं।"

जून के अन्त में मि० जस्टिस फ्लेचर के सामने केस पेश हुआ। अब लाजपतराय स्वतंत्र हो चुके थे, अतः वह स्वयं कलकत्ता पहुंचे। यह जानते हुए कि कैसे शक्तिशाली तथा दर्पशील शत्रुओं से लोहा लेना है और अपने पक्ष को सही सिद्ध करना है, उन्होंने वैधानिक युद्ध के लिए यथाशक्ति सर्वोत्तम प्रबन्ध कर लिए। ऐसे महत्वपूर्ण केस के लिए दोनों ओर से कानूनी महारथी जुटाए गए। मि० आशुतोष चौधरी, मि० व्योमकेश चक्रवर्ती, मि० एस० आर० दास, मि० बी० सी० मित्र, तथा मि० लहरी (इनको मैसर्ज बी० ए० बोस ऐण्ड कम्पनी की ओर से परामर्श प्राप्त था) वादी की ओर से पेश हुए। मि० नार्टन तथा मि० बाग्रम (जिनको मेसर्ज सुन्दरम् ऐण्ड कम्पनी की हिदायतें प्राप्त थीं) प्रतिवादियों की ओर से थे। प्रतिवादियों में इंगलिशमैन की स्वामिनी ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनी, मि० एच० न्यूमैन, तथा मि० ए० ई० डचस्रे, सम्पादक और मि० बाप्ता मुद्रक तथा प्रकाशक थे। न्यायालय में प्रतिदिन ऐसे प्रसिद्ध केस की कार्यवाही सुनने को दर्शकों की भारी भीड़ जमा होती थी।

प्रतिवादियों की ओर से लिखित बयान में 'उचित समालोचना' तथा 'समुचितता' की युक्ति दी गयी। मि० मार्टन को केस के आरम्भ में ही समुचितता सिद्ध करने में कठिनाइयां प्रतीत होने लगीं। वह मिण्टो, मार्ले, किचनर तथा पंजाब-सरकार के मत्थे मढ़ी गयी बातों में से कोई भी सिद्ध न कर सका। अपने बयान के समर्थन के लिए न तो उसके पास कोई गवाह थे और न ही कोई साक्षी। उसने पैंतरे बदलने शुरू कर दिए। वह जानना चाहता था कि कौन सी विशेष बातें तथा बयान वादी के आचरण के लिए हानिकारक हैं।

न्यायाधीश (जज)—तुमने आरम्भ ही इस बात से किया है कि ये सब बातें सत्य हैं?

मि० मार्टन—नहीं, मैं तो जानना चाहता हूं कि कौन सी विशेष बातें वादी की सम्मति में हानिकर हैं।

जज—वादी का कहना है कि ये बातें ही सत्य नहीं हैं।

मि० मार्टन—मेरी प्रार्थना है कि ये बातें, चाहे सत्य हों अथवा असत्य, अपमानजनक नहीं हैं।

मि० मार्टन अपनी बातें सत्य सिद्ध नहीं करना चाहते थे। उनको अपनी बातों की सत्यता वा असत्यता की चिन्ता नहीं थी। वह तो बार बार इसी बात पर बल देते थे कि क्या वे अपमानजनक हैं? परन्तु न्यायाधीश उन्हें ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता था। कई पैंतरे बदलने के बाद मि० मार्टन ने फाइल में अपने लिखित बयान में संशोधन करना चाहा।

मि० मार्टन—मुझे मालूम होता है कि आप इन बातों के बारे में मेरे विरुद्ध हैं?

जज—हां।

मि० मार्टन—मैं अपने लिखित बयान के चौथे तथा पाँचवें पैरे के संशोधन की आज्ञा चाहता हूं।

न्यायाधीश ने संशोधन की अनुमति देने से इनकार कर दिया। अपने फैसले में उसने कहा 'वादी' के वकील के बहस शुरू करते ही प्रतिवादी के वकील मि० मार्टन ने कहा कि मैं 'समुचितता' वाली बात को छोड़कर अपने बयान को संशोधित करना चाहता हूं। मैंने यह प्रार्थना निम्नकारणों के आधार पर अस्वीकार कर दी है। प्रथम तो मुकदमा आरम्भ हो जाने के बाद प्रतिवादी को इस प्रकार की आज्ञा देना अन्याय होगा, क्योंकि उनको इस नवीन सफाई की कोई पूर्व सूचना नहीं मिली थी, दूसरा वह यह सिद्ध नहीं कर सके कि वादी के कार्यों की समालोचना करने का अधिकार सम्राट की किसी अन्य प्रजा के अधिकार की अपेक्षा किस भ ति विशेष है? तीसरा लिखित बयान तो ६ जून, १९०८ को फाइल किए गए थे। यह विशेषाधिकार वाली बात उनको पीछे सूझी है।"

समुचितता वाली बात भी समाप्त हो गयी। उचित समालोचना वाला तर्क भी ठहर न सका, क्योंकि जब घटनाएं ही मिथ्या हैं तो उनकी उचित आलोचना का क्या अर्थ? मि० चौधरी ने कहा। मि० मार्टन तो अपनी सभी घटनाओं को आलोचना का रूप देना चाहते थे। न्यायाधीश की समझ में यह बात नहीं आती थी कि यह क्योंकर सम्भव हो सकता है।

मि० मार्टन—समुचितता की युक्ति वापस लेने का यह अर्थ नहीं कि उसे त्याग दिया गया है परन्तु उसका तो केवल यही अर्थ है कि मैं अपने बयान को सिद्ध नहीं कर सका। कल्पना करो कि मेरे समस्त गवाह मर चुके हैं। कल्पना करो कि किसी ने एक निन्दात्मक लेख प्रकाशित किया, जिसे वह सत्य समझता है, परन्तु उसे सिद्ध करने वाले सभी गवाह मर गए। कल्पना करो कि मैं लार्ड किचनर को साक्षी के रूप में पेश ही नहीं करता, अथवा वह मेरे प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार कर दें कि यह सरकारी रहस्य हैं, तो उस समय जो स्थिति मेरी होगी, इस समय भी वही समझ लीजिये।

जज—यदि आपको भारत सरकार के पत्र के बारे में वह इत्तला प्राप्त हुई है तो वह ऐसे साधनों द्वारा मिली है जहां से प्राप्त करने का आपका कोई अधिकार नहीं था।

मि० मार्टन—साधन का उचित अथवा अनुचित होने का इस केस से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जज—मैंने बयानात पढ़े हैं। आपको वह अनधिकृत साधनों द्वारा ही प्राप्त हुए होंगे।

मि० मार्टन—लार्ड किचनर तथा लार्ड मिण्टो की मुलाकातों का इस प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है। लाजपतराय के विरुद्ध अभियोग यह है कि वह देशी सिपाहियों को बिगाड़ता रहा है। पार्लियामेण्ट में भारतमंत्री के शब्दों का केवल यही अर्थ लिया जा सकता है।

न्यायाधीश को मि० मार्टन की निर्बल युक्तियों में कोई सार दिखलायी न पड़ा। वह घटनाएं तो सिद्ध नहीं कर सका। वह भारतमंत्री का आश्रय लेना चाहता था। मि० मार्ले ने चतुराई से काम लेते हुए धारा सभा में सेनाओं के बिगड़ने की बात तक नहीं की। मि० मार्टन, ने मि० मार्ले के 'राजद्रोह' 'सक्रियद्रोह' आदि अनिश्चित शब्दों की आड़ लेकर तथा लाजपतराय के निर्वासन और उनके लायलपुर के भाषण में पेनशन पाने वाले सैनिकों की उपस्थिति से लाभ उठा कर अपना पक्ष सिद्ध करना चाहा।

मि० जस्टिस फ्लैचर ने मि० मार्टन की युक्तियों की आलोचना करते हुए लिखा, 'धारा सभा में सदस्यों के भाषण तथा वक्तव्य सुरक्षित होते हैं और इसीप्रकार पार्लियामेण्ट में भारतमंत्री तथा अन्य सदस्यों के विवरण (वादी के निर्वासन के बारे में) भी सुरक्षित हैं। परन्तु उनकी रिपोर्टों के विषय में यह बात लागू नहीं हो सकती। कल्पना करो कि धारा सभा का कोई सदस्य दलबन्दी आदि के कारण किसी व्यक्ति पर अपमानजनक आक्रमण करता है, तो क्या जनसाधारण में से कोई उसी बात को प्रकाशित करने का अधिकार रख सकता है, केवल इसी हेतु से कि वह बात धारा सभा में कही गयी है? मेरी दृढ़ सम्मति है कि उक्त लेख की बातें पार्लियामेण्ट की रिपोर्ट में से नहीं ली गयी हैं, और यदि ली भी गयी हैं तो वह पार्लियामेण्ट की कार्यवाही की ठीक ठीक तथा शुद्ध रिपोर्ट नहीं है।" जहां तक हर्जाने की मात्रा का प्रश्न है, उसका सम्बन्ध इस बात से है कि वादी को कोई हानि पहुंची है।

लाजपतराय मि० नार्टन को जानते थे, क्योंकि वह भी एक कांग्रेसी था। इससे तो परिस्थिति और भी विचित्र हो गयी। एक अवसर पर तो मि० चौधरी कहने लगे 'मैं नहीं जानता कि क्या मेरे मित्र (मि० मार्टन) यह प्रश्न भी उठायेंगे कि लेख में जिस व्यक्ति की ओर संकेत है, वह लाजपतराय ही है?"

मि० मार्टन—नहीं, मैं ऐसा क्यों करने लगा। यदि मैं लाजपतराय को देख लूं तो
मैं उन्हें पहचान लूंगा।

इस पर वादी खड़ा हो गया और मि० मार्टन बोला, हां, यही मेरे मित्र लाजपतराय हैं।

मि० नार्टन के उत्तर में मि० चौधरी ने कुछ केस उद्धृत करने चाहे, परन्तु न्यायाधीश ने अनावश्यक समझा। कुछ दिनों के अनन्तर फैसला सुनाया गया। १५,००० रु० हर्जाना दिलाया गया तथा केस का खर्च भी।

जज ने इस बात को अस्वीकार कर दिया कि निर्वासन की घटना प्रतिवादी के लिए किसी प्रकार सहायक हो सकती है। निर्वासन वाले रेग्यूलेशन को पढ़कर वह इस परिणाम पर पहुंचे कि रेग्यूलेशन के निर्माताओं ने इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखा था कि केवल निर्वासन के कारण किसी व्यक्ति के आचारण पर कोई आंच न आने पाये तथा उसे कलंकित करने वालों को कोई आश्रय न मिल सके। 'रेग्यूलेशन के निर्माताओं के मन में निर्वासन के कारणों को गुप्त रखने का एक यह उद्देश्य भी हो सकता है कि उसकी ख्याति तथा आचरण के विरुद्ध उन बातों का उनके विरोधियों द्वारा दुरुपयोग न हो सके।

मानहानि का दूसरा अभियोग लन्दन के एक बलशाली दैनिक पत्र के विरुद्ध था। केस तो अपेक्षाकृत साधारण सा था, परन्तु जिस घटना के आधार पर वह उठाया गया था, वह इंगलिशमैन के लेख से कहीं हास्यास्पद था। लन्दन के 'डेलीएक्सप्रेस' ने, लाजपतराय के निर्वासन के २ मास पीछे २९ जून, १९०७ को अपने शिमला के संवाददाता की रिपोर्ट के आधार पर लेख प्रकाशित किया, जो इस प्रकार था :—

अध्याय अड़तीसवां

निर्वासन रहस्य

एक महान् भारतीय एजीटेटर को क्यों निर्वासित किया गया ?

(विशेष संवाददाता से)

शिमला, २७ जून।

मि० मार्ले ब्रिटिश धारा सभा में लाजपतराय के अपराध के रूप के बारे में प्रकाश डालने से निरन्तर इनकार करते रहे हैं। लगभग एक मास हुआ कि उनको लाहौर में गिरफ्तार करके माण्डले को निर्वासित कर दिया गया। एक उच्च पदाधिकारी ने मुझे उसका अधोलिखित स्पष्टीकरण भेजा है। लाजपतराय (जो राजद्रोहात्मक आन्दोलन के शक्तिशाली तथा उत्साही नेताओं में से थे) ने अफगानिस्तान के अमीर के साथ, जिन दिनों वह भारत पधारे थे, एक भेंट की और उन्होंने भारत को अंग्रेज़ी राज्य से मुक्ति दिलाने की एक योजना (षड्यंत्र) पेश की। अमीर साहिब न तो इससे चकित हुए और न ही हताश। उन्होंने पंजाब-नेता को स्पष्ट शब्दों में सूचित कर दिया कि मेरे भ्रमण का राजनीति से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। हां, उन्होंने वचन दिया कि यदि उनके पर्यटन की समाप्ति पर लाजपतराय उनके सामने कोई लिखित योजना पेश करें, तो उस पर विचार करने में उन्हें प्रसन्नता होगी।

'जब अमीर महोदय काबुल लौट गए, तब उक्त पत्र उनकी प्रतीक्षा में था अर्थात् उनसे पहले वहां पहुंच चुका था। इसमें लाजपतराय ने उनको सुझाया था कि अफगान सेना भारत की सीमा में प्रवेश करे। अमीर को विश्वास दिलाया गया कि भारतीय देशी सेनाएं पूर्णरूप से सहायता करेंगी।

लाजपतराय ने बतलाया कि सिक्ख पलटनों में भारी असन्तोष फैल रहा है और ब्रिटिश शासन पूर्ण रूप से नष्ट हो जायगा।

"अमीर ने तत्काल ही योजना की रूपरेखा वाइसराय को भेज दी और लार्ड मिण्टो ने लिखा कि मूल पत्र ही उसे भेज दिए जायें। अमीर ने पत्र भेज दिए और महान् एजीटेटर को गिरफ्तार कर लिया गया।"

मुक्ति के अनन्तर, जब लाजपतराय इंग्लैण्ड गए तब उन्होंने अपने सालिस्टर विल्सन ऐण्ड को० को निर्देश दिए जिन्होंने २८ सितम्बर १९०८को 'डेली एक्सप्रेस' लिमिटेड को लिखा कि उसके संवाददाता (उच्च पदाधिकारी) का क्या नाम है ? साथ ही यह भी पूछा गया कि वह लाजपतराय के आचरण पर कटाक्ष करके, उनकी मानहानि के अपराधी हुए हैं। अब उसकी क्षतिपूर्ति के लिए क्या करने को उद्यत हैं ? इसका कोई उत्तर नहीं मिला, सो मामला न्यायालय तक पहुँचा। अक्तूबर १९०९ में केस मि० जस्टिस ग्रैथम तथा स्पेशल ज्यूरी के सम्मुख पेश हुआ।

लाजपतराय स्वयं इंग्लैण्ड में उपस्थित नहीं रह सकते थे और यह उनके लिए भारी घाटे की बात थी। साधारणतया यही समझा जाता था कि यदि वह स्वयं साक्षी के कटघरे में पेश होते, तो उनका केस अत्यन्त दृढ़ होता। 'डेली एक्सप्रेस' के वकील के लिए मि० नार्टन वाले कलकत्ता वाले केस की अपेक्षा अमीर वाली घटना को सिद्ध करना कहीं अधिक टेढ़ी खीर था। कुछ भी हो, न्यायाधीश ने साधारण क्षतिपूर्ति वाली बात स्वीकार कर ली। ज्यूरी ने वादी के पक्ष में ५० पौंड की क्षतिपूर्ति की आज्ञा दे दी।

केस का फैसला सुनाते हुए, न्यायाधीश ने निर्वासन की घटना तथा लार्ड मार्ले की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के महत्व पर कुछ बल दिया। वादी को लार्ड मार्ले ने ही निर्वासित किया था। लार्ड मार्ले से अधिक प्रजा की स्वतंत्रता की चिन्ता भला और किसे हो सकती थी ! और सभी के मन में उनके लिए आदर के भाव थे। न्याय-तुला में घटनाओं की अपेक्षा ख्याति तथा नाम भारी सिद्ध होते हैं ।

अध्याय उन्तालीसवां

कांग्रेस में फूट

मार्च में लाजपतराय भारत (लाहौर में फिर पुराने झगड़ों और दलबन्दी के वातावरण में) लौट आए। लाहौर के नेता, कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के बारे में असाधारणतया उत्तेजित हो रहे थे। एक दल तो लाहौर में अधिवेशन बुलाने के लिए स्वागत समिति का प्रबन्ध कर रहा था परन्तु दूसरा दल यह चाहता ही नहीं था कि कांग्रेस का अधिवेशन पंजाब में हो।

कांग्रेस के राजनैतिक ध्येय से सहमत होते हुए उन्होंने फूट से बचने का भरसक यत्न किया। यद्यपि वह एकता के लिए माडरेटों के कन्वेंशन में चले गए, परन्तु उन्हें शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि वह उनके साथ भी नहीं चल सकते। मिलाप के लिए, उनके सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। जो थोड़ी सी आशा शेष थी, तिलक के माण्डले भेजे जाने से वह भी जाती रही। वह तिलक को तो प्रभावित कर सकते थे, परन्तु उनके लेफटीनेण्टों से निपटना कठिन था। उन्होंने यह भी देख लिया था कि माडरेटदल के सक्रिय विरोध ने परिस्थिति को बहुत हद तक बिगाड़ दिया था। इससे सरकार को दमन चक्र चलाने तथा उग्रवादियों को कुचलने का अच्छा अवसर मिल गया। फलस्वरूप राजनीतिक आन्दोलन तथा कांग्रेस दोनों निर्बल हो गए।

सूरत की घटना के १८ मास पश्चात् (जुलाई १९०९ में) आपने 'पंजाबी' में एक पत्र प्रकाशित करवा कर खुले रूप से अपने विचार जनता के सामने रखे। उन दिनों यह विवाद छिड़ा हुआ था कि दिसम्बर १९०९ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हो अथवा नहीं। इस विख्यात पत्र के आरंभ में आपने लिखा 'सार्वजनिक जीवन का जो थोड़ा बहुत अनुभव मुझे है, उसने मुझे यही सिखाया है कि जिस विवाद में कोई मनुष्य कोई भी पक्ष लेने में असमर्थ हो, तो वहां बुद्धिमत्ता का काम यही होता है कि वहां वह मौन धारण कर ले और विवाद से पृथक रहे। सूरत की घटना के पश्चात् कांग्रेस के विवाद के बारे में मेरा यही दृष्टिकोण रहा है। अकाल पीड़ितों की सहायता के सिलसिले में मैं जहां कहीं दौरे पर जाता था, लोग मुझसे प्रश्न किया करते थे कि दोनों दलोंमें से फूट का उत्तरदायित्व किसपर है? मैं इसका उत्तर देने में सदा इनकार करता रहा। परन्तु अब परिस्थिति बदल गयी है और मैं भी अपने बन्धन कुछ ढीले कर रहा हूं।

"मेरे हृदय में सर फिरोजशाह मेहता तथा श्री गोखले के लिए भारी श्रद्धा है तथा प्रशंसा के भाव हैं। मैं सर फिरोजशाह मेहता को भारतीय राजनीतिज्ञों में से सबसे अधिक साहसी, योग्यतम तथा अनुरूपतम नेता समझता हूं। श्री गोखले का देशानुराग तथा उदाराशयता सन्देह से परे हैं। उनकी सत्यता पर सन्देह करना देश में सत्यता के अस्तित्व से इनकार करना है। यह सम्मितियां रखते हुए भी ईमानदारी से कहा जा सकता है कि उनकी नीति, सूरत की घटनाओं के अनन्तर बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं रही। सूरत की घटनाओं का जितना दुख मुझे हुआ है, शायद ही किसी को हुआ हो, क्योंकि उसमें सीधा उत्तरदायित्व मेरे ही ऊपर था। श्री तिलक का सब से बड़ा दोष (जिसके कारण वह निर्वासन कष्ट भुगत रहे हैं) यह था कि अपने दल का नेतृत्व करने के बदले, वह खुद अपने अनुयाइयों के पीछे पीछे चलते थे। मेरी प्रार्थना पर, सूरत में वह दो बार मान गए, कि डा० राशबिहारी घोष के चुनाव का विरोध न किया जाय और कलकत्ता के चार प्रस्तावों वाली बात विषय निर्धारिणी समिति पर छोड़ी जाय, परन्तु ज्यों ही मैं वहां से चला, वह अपने साथियों की सम्मति के सामने विवश हो गए। परन्तु यह भी सत्य है कि फूट का उत्तरदायित्व केवल श्री तिलक के दल पर नहीं था, दूसरा दल भी लड़ने पर तुला हुआ था। यदि वह पूरा बल देते, तो फूट टल सकती थी। मेरी सम्मति है कि देश के हितार्थ कांग्रेस का प्रबंध तथा उस पर कण्ट्रोल तो माडरेट दल के हाथ में रहे और दूसरा दल भी कांग्रेस के अन्दर रह कर उसकी नीति को प्रभावित करता रहे, जैसा कि प्रबल अल्पमत वाले किया करते हैं। इसी विचार को लेकर मैं कन्वेंशन में शामिल हुआ था। परन्तु शीघ्र ही मुझे मालूम हो गया कि मेरे प्रयत्नों को नापसन्द किया जाता है, अतः मैंने इधर काम करना बन्द कर दिया। उस समय से दोनों ओर के शुभचिन्तक मित्रों के, सन्धि के प्रयत्न असफल रहे हैं। मेरी समझ में तो फूट को स्थायी बनाकर माडरेट गण भारी भूल कर रहे हैं।

"यदि सर फिरोजशाह मेहता तथा श्री गोखले वर्ष में एक दिन उग्रवादियों के साथ मिल बैठें तो उनकी राजनीति के बारे में किसीप्रकार का भ्रम फैलने की कोई गुँजाइश नहीं है। हां, एक ही संस्था में उग्रवादियों की उपस्थिति से माडरेट लोगों की शक्ति तथा प्रभाव में वृद्धि होगी। इस समय, एक दल तो लगभग कुचल दिया गया है। यह कहना तो नितान्त मूर्खता तथा बेहूदगी है कि श्री गोखले ने श्री तिलक को निर्वासित कराया है। कोई भी बुद्धिमान् इस पर विश्वास नहीं करेगा। परन्तु इससे भी किसी को इनकार नहीं हो सकता कि १९०७ की फूट तथा माडरेटों की ओर से मध्यप्रान्त की सरकार की ओर सभाएं बन्द कराने वाले

अन्यायपूर्ण कार्य के विरुद्ध प्रतिवाद न करना उनके लिए अनुचित था। जहाँ तक राजनैतिक दूरदर्शिता का प्रश्न है में इन माडरेट नेताओं के जूतों के तस्मे खोलने की योग्यता भी नहीं रखता, परन्तु यह मेरी प्रबल सम्मति है कि भारतीय राष्ट्रीय दल के वाम पक्ष का विनाश स्वयं कांग्रेस के लिए भयावह है। माडरेट नेताओं को इस बात की समझ देर में आएगी। मेरा तो यह विचार है कि जब इंग्लैण्ड में सरकार बदल जाएगी तब माडरेट लोगों का औपनिवेशिक स्वराज्य का सिद्धान्त टिक नहीं सकेगा। अभी से उस ओर की हवा चलनी शुरू हो गयी है। २६ फरवरी को लार्ड सभा में द्वितीय भाषण में इंडियन कौंसिल बिल की दूसरी रीडिंग पेश करते हुए, लार्ड मार्ले ने उसी ढंग का मामूली संकेत कर दिया है। कुछ ही हो, इस समय, एक ही राजनैतिक मंच पर दोनों दलों के मिलाप की कोई सम्भावना नहीं है। मैं तो अपने अनुभव से जानता हूं कि एक बार फूट पड़ जाने पर सन्धि कराना कितना कठिन होता है। यदि दोनों ओर से अविश्वास की प्रबलता हो, तो भूतकाल की बातों को भुलाना बड़ा ही कठिन होता है।"

इलाहाबाद के कन्वेंशन के फैसलों के वैधानिक पहलू के बारे में उसी पत्र में लाजपतराय लिखते हैं :—

"मुझे तो माडरेट दल के इंडियन नेशनल कांग्रेस के नाम के प्रयोग के अधिकार के विषय में भी गहरा सन्देह है। जिस कांग्रेस को देश १८८७ से १९०७ तक जानता था, उसका तो अस्तित्व ही समाप्त हो चुका है। कन्वेंशन को कोई अधिकार न था कि वह पुरानी इंडियन नेशनल कांग्रेस के लिए विधान का निर्माण करे। वह केवल उसकी सिफारिश कर सकती थी जिसे यदि कांग्रेस बहुमत से अपना लेती तो उसे पुराने जीवन को जारी रखने का उसका अधिकार स्थापित होता। व्यक्तिगत रूप से मैं अपनी इस सम्मति को गुप्त नहीं रखना चाहता कि इलाहाबाद के कन्वेंशन ने जिन सिद्धान्तों को तय किया है, कांग्रेस केवल उन्हीं पर चलायी जा सकती है, परन्तु मैं यह अन्यायपूर्ण बात स्वीकार नहीं कर सकता कि विधान को उन लोगों पर लादा जाय जिनका उसके निर्माण में कोई हाथ नहीं" (और वह भी पुरानी संस्था के नाम पर)। उन्होंने यह भी सुझाया कि कांग्रेस के वार्षिक सम्मेलन भी कुछ काल के लिए स्थगित कर देने चाहिए।

लाजपतराय ने 'पंजाबी' में लिखा, "कांग्रेस के बारे में कोई विवाद छेड़ने का मेरा विचार नहीं है। सार्वजनिक जीवन के थोड़े बहुत अनुभव ने मुझे बतलाया है कि जिस विवाद में मैं निश्चपूर्वक कोई पक्ष ग्रहण नहीं कर सकता और दोनों की भलाई चाहता हूं, बुद्धिमत्ता तथा सही नीति यही है कि मैं उससे पृथक ही रहूँ। दिसम्बर १९०७ की सूरत की फूट के बाद मेरा इस बारे में यही दृष्टिकोण रहा है।

अकालपीड़ितों की सहायता के लिए दौरे के दिनों में बहुधा लोग मुझसे प्रश्न किया करते थे कि दोनों दलों में से फूट का उत्तरदायित्व किसका है? तो मैं उत्तर देने से इनकार कर देता था। मार्च १९०९ में जब मैं इंग्लैण्ड से लौटा हूं तो कांग्रेस के एक महामंत्री ने मुझे निजी पत्र लिखकर पंजाब की परिस्थिति के बारे में पूछा। मैंने एक गुप्त पत्र द्वारा अपने विचार उन्हें बतलाते हुए लिखा कि वह यही विचार सर फिरोजशाह मेहता तथा मि० गोखले को भी बतला दें। यह बात याद रखनी चाहिए कि पंजाब में वर्तमान झगड़ा मेरे लौटने से पूर्व ही चल रहा था और इसे चलाने में मेरा कोई हाथ नहीं था। मेरी प्रबल सम्मति है कि प्रान्त के सर्वोत्तम हिन्दूमत के विरोध के बावजूद आगामी कांग्रेस-अधिवेशन लाहौर में बुलाना बुद्धिमत्ता नहीं होगी और देश, प्रान्त तथा कांग्रेस के हित के लिए हानिकर होगी।" फिर आप प्रान्त के भिन्न भिन्न नगरों के भिन्न भिन्न नेताओं के विचार उद्धृत करते हैं जिनसे आपने प्रान्त के वर्तमान् सार्वजनिक दृष्टिकोण के विषय में एक मत स्थिर करने के लिए परामर्श लिया था। पत्र के अन्त में—

"क्या कांग्रेस को बन्द ही कर दिया जाय? कदापि नहीं। कुछ काल तक वार्षिक प्रदर्शन बन्द कर दिए जायँ और स्थायी भारतीय कमेटी जारी रहे। अथवा प्रदर्शन केवल उन्हीं प्रान्तों में किए जायँ जहां के कार्यकर्ता एकमत हों। (कम से कम शिक्षित हिन्दुओं में) अपने प्रान्त की बात बतलाऊं। हम देखते हैं कि इस प्रान्त के हिन्दू अपनी पराजय पर बहुत बिगड़े हुए हैं जो कि स्वाभाविक है। उन्हें सोचने विचारने तथा अध्ययन करने का समय मिलना चाहिए। यदि उनकी इच्छा हो तो अन्य उपायों से अपनी स्थिति सुधार लें। उन्हें बिगाड़ने का प्रयत्न मत कीजिए। उनमें अधिक फूट मत डालिए। कुछ स्थानों में अभी सार्वजनिक जीवन का कोमल पौधा धीरे धीरे पनप रहा है, उसकी जड़ें मत उखाड़िए और उसे नरक मत बनाइए। राष्ट्रीय संकट के काल में भावुकता का स्थान बुद्धि को मिलना चाहिए। गत दिसम्बर में, जब कुछ पंजाबी प्रतिनिधियों ने कांग्रेस को लाहौर निमंत्रित किया था, परिस्थिति सर्वथा भिन्न थी। अब उसमें परिवर्तन हो गया है। परिवर्तित परिस्थिति के अनुसार हमारी आयोजनाओं में परिवर्तन करने में कोई अपमान का अनुभव नहीं होना चाहिए। काल ही महान् चिकित्सक है। राष्ट्रीय जीवन में उसका भारी हाथ होता है। हमें ठण्डे दिल से काल के कल्याणकारी हस्तक्षेप पर विश्वास रखना चाहिए। साथ ही राष्ट्र निर्माण का कार्य ऐसे मार्गों द्वारा चलाने की कोशिश करनी चाहिए जहां सरकार के भ्रम की कम आशंका हो। अशुद्ध सिद्धान्त स्थापित करने की अपेक्षा विनीत भाव से काम करते रहना अच्छा है। जब मिलाप का अभाव हो, और न ही उसकी सम्भावना हो, वहां बलात् मिलाप

का प्रयत्न करने का परिणाम सक्रिय शत्रुता होता है। इस समय हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सम्मिलित नाम पर बोलने से हिन्दू बिगड़ उठेंगे। यदि अधिकांश हिन्दुओं के नाम से भी बोलने की कोशिश की गयी, तो वह जोर से अस्वीकार कर देंगे।

इन्हीं विचारों तथा मार्ले के सुधारों के कारण लाजपतराय तथा कांग्रेस के माडरेट नेताओं के मतभेद की खाई चौड़ी होती गयी। आप गोखले की तरह सुधारों को अधिक महत्व नहीं देते थे। मिण्टो ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का अंश अपनी योजना में लाकर मुसलमानों को प्रलोभन दिया। 'माडरेटों' को एकत्र करो—मुसलमानों को 'एक करो' मिण्टो-मार्ले योजना का यही सार प्रतीत होता था।

कांग्रेस अधिकारियों ने लाजपतराय का परामर्श स्वीकार नहीं किया। वार्षिक सम्मेलन का त्याग नहीं किया गया और प्रतिनिधि गण नियमपूर्वक दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में लाहौर में जमा हुए। हरकिशनलाल की मण्डली ही सारा खेल खिला रही थी। आर्यसमाज के अधिकांश नेता उससे पृथक रहे। लाजपतराय तथा हरकिशनलाल एक दूसरे से और भी दूर हो गए। अलफ्रेड नन्दी के सम्पादकत्व में 'ट्रिब्यून' लाजपतराय का और अधिक विरोधी हो गया। उसकी आलोचनाएं बड़ी तीक्ष्ण तथा विषैली होती थीं।सबसे प्रभावशाली ट्रस्टी, हरकिशनलाल के हाथ में ही उसकी नीति की बागडोर थी। अधिवेशन से कुछ काल पूर्व अफवाहें उड़ने लगीं कि मनोनीत प्रधान सर फिरोजशाह मेहता ने प्रधान बनने से इनकार कर दिया है। अधिवेशन से छः दिन पूर्व, अफवाह सत्य सिद्ध हुई और प्रधान का स्थान पंडित मदनमोहन मालवीय को ग्रहण करना पड़ा। पंडित मालवीय के प्रति भारी व्यक्तिगत श्रद्धा रखते हुए भी, लाजपतराय कांग्रेस-अधिवेशन से दूर दूर रहे—कांग्रेस के दिनों में वह लाहौर से बाहर चले गये।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व से पूर्ण वैधानिक सुधारों की जिस नयी योजना को श्री गोखले ने आशीर्वाद दिया था, पंजाब के हिन्दू नेता उस से बहुत बिगड़े। पत्रों के कालमों में साम्प्रदायिक आधार पर कुछ उच्च पदवियों पर की गयी नियुक्तियों से विवाद छिड़ा हुआ था। शीघ्र ही एक नयी चाल की बातें सुनायी पड़ने लगीं—कि हिन्दुओं का अपना पृथक संगठन होना चाहिए। डी० ए० वी० कालेज के विख्यात नेता लाला लालचन्द ने (जो आगे चलकर चीफ कोर्ट के जज बने) इसमें गहरी दिलचस्पी दिखलायी। पंजाब हिन्दू सभा का जन्म हुआ २१-२२ अक्तूबर १९०९ को अर्थात् लाहौर कांग्रेस से कुछ समय पूर्व प्रथम हिन्दू सम्मेलन लाहौर में हुआ। लाजपतराय प्रतिनिधि के रूप में इस सम्मेलन में सम्मिलित

हुए और हिन्दू राष्ट्रीयता पर सम्मेलन के प्रथम प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए उन्होंने एक भाषण दिया। (प्रस्ताव व्याख्यान वाचस्पति पंडित दीनदयालु शर्मा ने इस प्रकार पेश किया था)।

"यह सम्मेलन हिन्दू जाति की समस्त श्रेणियों तथा वर्गों से अनुरोध करता है कि पारस्परिक भ्रातृत्व की भावनाओं को प्रोत्साहित करें और समान (साझी) राष्ट्रीयता के भाव को दृढ़ करें कि (क) जातियों के मध्य पर यथोचित स्थान प्राप्त करें। (ख) मानव जाति के कल्याण में भाग ले सकें (ग) अपने साम्प्रदायिक हितों की रक्षा कर सकें (घ) मानव कल्याण के लिए पूर्वजों के प्रदत्त अनुभव, संस्कृति तथा सभ्यता का पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचार तथा प्रसार करना।"

लाजपतराय ने हिन्दुओं के प्राचीन गौरव के विषय में उद्धरणों से पूर्ण एक ओजस्विनी वक्तृता दी। उन्होंने धार्मिक तथा समाजिक दृष्टिकोण तथा नए साम्प्रदायिक दृष्टिकोण पेश करते हुए अपनी जाति को निम्न शब्दों में परामर्श दिया—

"अपने अन्य धर्मों के देशवासियों के प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं है। मैं सभी का अभ्युदय तथा कल्याण चाहता हूं। अपने सम्प्रदाय की स्थिति सुधारने तथा अपने सहधर्मियों के लिए लाभदायक पद प्राप्त करने के लिए, जो जो प्रयत्न उनकी ओर से होते हैं, मैं उन्हें बुरा नहीं समझता। भारत की वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति में उन्हें अपने सम्प्रदाय के हितों की रक्षा करने का पूर्ण अधिकार है, बशर्ते कि ऐसा करते हुए वे गैर-हिन्दुस्तानियों के साथ अपवित्र गठजोड़ करके हिन्दुओं को हानि न पहुंचायें। और हिन्दुओं के मुकाबले में हिन्दुओं को तथा गैर-हिन्दुस्तानियों के मुकाबले में हिन्दुस्तानियों को मेरा वही उपदेश है जो युधिष्ठिर ने दुर्योधन के उन शत्रुओं को दिया था जो पाण्डवों के पास यह प्रस्ताव लेकर आए थे कि हम मिलकर दुर्योधन को हराएं।

"हम पांच हैं और वे (कौरव) सौ हैं, परन्तु जब किसी तीसरे शत्रु का सामना करना हो तो हम एक सौ पांच हैं।"

शायद पंजाब हिन्दू सभा के सभी प्रवर्तक, इस "एक सौ पांच" वाली भावना से प्रेरित नहीं हो रहे थे—यदि यह बात भुला ही दी जावे कि हिन्दू 'पांच' नहीं, प्रत्युत सौ हैं और हिन्दुओं तथा भारतीयों—दोनों का नाद (नारा) "वह मुट्ठी भर हैं और तुम असंख्य हो" होना चाहिए। दो वर्ष अनन्तर शादीलाल (आगे चलकर हाईकोर्ट के चीफ जज तथा प्रिवी कौंसिल के सदस्य बने) ने भी एक हिन्दूसभा के सम्मेलन में भाषण करते हुए महाभारत के उसी वाक्य से अपना वक्तव्य समाप्त किया था। उसने गैर-हिन्दुओं के मुकाबले में हिन्दुओं से ही संगठन तथा

एकता का अनुरोध किया था। अन्य भारतीय जातियों को दुर्योधन जैसा चचेरा भाई भी नहीं समझा गया।

लाजपतराय ने, यद्यपि वह पंजाब हिन्दूसभा के मामलों में दिलचस्पी लेते थे, और हिन्दू राष्ट्रीयता की जो व्याख्या की थी, उसके विषय में काफी उत्साह रखते थे, मगर अपने आप को उन्होंने इस नये आन्दोलन से पूर्णतः सम्बद्ध नहीं कर लिया। हिन्दूसभा तो नौकरियों तथा पदवियों—अर्थात् दाल रोटी जैसी मामूली बातों के लिए संघर्ष करना चाहती थी, परन्तु लाजपतराय की रुचि अधिक महत्वपूर्ण तथा महान् प्रश्नों में थी।

यह एक विचित्र बात है कि पंजाब हिन्दूसभा के जन्म के शीघ्र ही पश्चात् हरकिशनलाल जो कांग्रेस के प्रतिनिधि समझे जाते थे और जिसके मुकाबले में किसी हद तक हिन्दू सभाखड़ी की गयी थी, हिन्दूसभा की एक्ज़ीक्यूटिव कमेटी में आगए, मगर लाजपतराय उससे पृथक ही रहे। राजनीति सदा ही ऐसी विचित्रताओं से पूर्ण रही है। कुछ बातों में लाजपतराय ने सभा को मित्रतापूर्ण सहायता देना जारी रक्खा और कुछ अन्य बातों में मतभेद रखनेवाले मित्र की भांति चेतावनियां भी देते थे। अक्तूबर १९१२ में देहली में, चतुर्थ वार्षिक सम्मेलन पर आपने हिन्दू शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की सहायता के लिए एक प्रस्ताव पेश करते हुए हिन्दू शिक्षा कोष निर्माण का सुझाव दिया। भाषण द्वार हिन्दू कालेज देहली के कोष में ५,५०० रु० जमा हो गए। आप देख ही चुके कि निर्वासनों के बाद, लेफ्टीनेण्ट गवर्नर के पास डेपुटेशन ले जानेवाले हिन्दुओं ने कितनी गिरावट दिखलायी थी। आप उस पहलू को कभी नही भूलते थे।

तिलक के माण्डले से लौटने के काफी समय बाद खंडित कांग्रेस को फिर पूर्णता प्राप्त हुई। उस समय तक, वह माडरेटों की संस्था बनी रही और लाजपतराय उससे लगभग पृथक ही रहे। १९०९ में योरुप से लौटने पर उन्होंने वक़ालत शुरू कर दी और सार्वजनिक जीवन में प्रत्यक्ष राजनीतिक कार्य को छोड़ कर अन्य कार्यों में लगे रहे। जैसा कि हम देख चुके हैं, वह पंजाब हिन्दूसभा के प्रवर्तकों में से थे। उन्होंने आर्यसमाज के कार्यों में भी दिलचस्पी लेना जारी रखा। आर्यसमाज, अनारकली के वार्षिकोत्सव पर, उन्होंने डी० ए० वी० कालेज के आयुर्वेदिक तथा औद्योगिक विभाग के लिए धन संग्रह किया—वह राष्ट्रीय शिक्षा के प्रोत्साहनार्थ अपने ढंग से कुछ न कुछ करते रहते थे। इसी प्रकार उन्होंने डी० ए० वी० हाई स्कूल में महात्मा हंसराज की स्मृति में एक व्याख्यान—हाल के निर्माण के लिए धन संग्रह करने में सहायता की। १९०९ में उन्होंने अछूतों—दलित जातियों के बारे में एक व्याख्यान माला दी। आपने अछूतोद्धार के प्रश्न की

ओर विशेष ध्यान दिया। नवम्बर १९१३ में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर घोषणा की गयी कि लाजपतराय एक भारी धनराशि—पचास हजार रुपए—अछूतोद्धार के कार्य के लिए दान दे रहे हैं। आधा धन तो रावी के पास, दलित परिवारों की एक आदर्श बस्ती बसाने के लिए लगभग २०० कनाल भूमि खरीदने में व्यय किया गया।[1] उनके शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक सुधार का कार्य-क्रम बनाया गया। जालन्धर जिले में दलित जातियों में कुछ पाठशालाएं तथा केन्द्र खोले गए। लाजपतराय के निर्देश में एक नवयुवक भाई बालमुकन्द जिन्हें देहली षडयंत्र अभियोग में मृत्युदण्ड हुआ, इन केन्द्रों का निरीक्षण करते थे।

उसी मास उन्होंने अपने जन्मस्थान, जगरांव में, अपने पिता जी के नाम पर राधाकृष्ण हाईस्कूल की आधार शिला रक्खी।

इन्हीं दिनों आप म्युनिसिपल कमेटी के चुनाव में उम्मीदवार खड़े हुए। लाजपतराय की उम्मीदवारी स्वयं एक भारी घटना थी। चुनाव के समय जनता में असाधारण उत्साह पाया जाता था और आपको भारी संख्या में वोट मिले। आप अपने चुनाव के दिनों की एक मनोरंजक घटना याद किया करते थे। एक दिन वह अपने मतदाताओं के सामने भाषण कर चुकने के अनन्तर अभी बैठे ही थे कि एक अन्य उम्मीदवार उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि आप कुछ शब्द मेरे पक्ष में भी फरमाइये, क्योंकि वाहगुरु ने आपको (भाषण शक्ति) अधिकार दिया है। वह सज्जन एक आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। एक अन्य घटना भी आप वर्षों तक सुनाया करते थे। एक अपढ़ तथा गूँगा वोटर भी लाजपतराय का फोटो (चित्र) अपने हाथ में पकड़े हुए अपना वोट देने आया था।

म्युनिसिपल कमेटी में लाजपतराय के काम की प्रशंसा उनके राजनैतिक विरोधी—अधिकारियों तथा ऐंग्लो-इंडियनों द्वारा भी होने लगी। पहले वह उन्हें एक भयानक क्रान्तिकारी तथा देश में गुप्त षड्यंत्रों का प्रेरक तथा अधिनायक समझते थे। लाजपतराय की म्युनिसिपल कमिश्नरी के दिनों में लाहौर की सड़कों तथा गलियों में बिजली के लैम्प लगाए गए। उनके प्रयत्नों से मुख्य म्युनिसिपल सुधार वेश्याओं को अनारकली बाजार से निकाल दिया जाना तथा हीरामण्डी के पृथक मुहल्ले में बसाना था। हम नहीं कह सकते कि आगे चलकर भी जब उनको समस्त

[1]यह योजना पूर्ण न हो सकी थी, क्योंकि शीघ्र ही लाजपतराय भारतवर्ष से बाहर चले गए। कई वर्ष के पश्चात् उनकी मृत्यु हो जाने पर भूमि का अधिकांश बेच दिया गया। वह धन लोक सेवक मण्डल के पास अछूतोद्धार के लिए सुरक्षित है।

गन्दगी के आर्थिक तथा सामाजिक—आधारों का गहनतर ज्ञान हुआ, उनमें इस प्रकार के सुधारों के विषय में वैसा ही उत्साह रह गया था अथवा नहीं। वह देश की व्यापारिक तथा औद्योगिक उन्नति में दिलचस्पी लेते थे। पंजाब नेशनल बैंक के डायरेक्टरों में उनकी उपस्थिति संस्था के लिए अत्यन्त सहायक थी। उन्होंने छोटी छोटी दस्तकारियां जारी करने की कोशिश भी की। पंजाब में चमड़े के धन्धे को इनसे विशेष प्रोत्साहन मिला। कोआपरेटिव लाइफ बीमा कम्पनी चलाने में भी उनका हाथ था।

'पंजाबी' और उसका मुद्रणालय लाभ पर बेच डाले गए और उन्होंने एक राजनैतिक कार्यकर्ताओं को ट्रेण्ड करने की एक योजना बनायी जो उक्त धन से चलती थी।

परन्तु उनके योरुप चले जाने से वे सारे कार्य स्थगित हो गए। उससे उनकी वकालत का भी अन्त हो गया। १९०९ में 'इंग्लिश मैन' वाले मुकदमे में साक्ष्य देते हुए, उन्होंने कहा था कि 'मेरी गणना पंजाब चीफ कोर्ट के छः वा सात चोटी के वकीलों में है।'' यदि वे ध्यान देते तो सर्वप्रथम स्थान उन्हीं का हो सकता था। वह स्वयं कहते हैं "मैं वकालत द्वारा अच्छा धन कमा रहा था और मेरे सर्वोच्च वकील बनने की भारी आशाएं थीं। चीफ कोर्ट (जो अभी तक हाई कोर्ट नहीं बनी थी) के न्यायाधीश भी जो मेरे राजनैतिक विचारों के कारण किसी किसी समय मुझे पसन्द नहीं करते थे, मेरे प्रति अपना व्यवहार बदलने लगे। मेरे मुवक्किल मुझमें पूर्ण विश्वास रखते थे और मुझे भारी फीसें देते थे। म्युनिसिपल कमेटी में मेरे कार्य को देखकर अधिकारियों की मनोवृत्ति में कुछ परिवर्तन हो गया और वह यह मानने लगे कि मैं भी एक समझदार व्यक्ति हूं, न कि ठोस क्रान्तिकारी जैसा कि वह मुझे समझते रहे।

जिन ५ वा ६ वर्षों की घटनाएं संक्षेप में लिखी गयी हैं, उनमें १९१० का विवरण विशेष रूप से देना है। १९०९ के अन्त में, पुलिस ने भाई परमानन्द के मकान पर छापा मारा। और उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया। अदालत ने उनसे नेकचलनी की जमानत मांगी। तलाशी में पुलिस कई कागजात ले गयी जिनमें लाजपतराय की ओर से लिखे हुए दो पत्र भी थे। ये पत्र न्यायालय में पेश किए गए और अदालत ने पत्रों के लेखक की भी उनके बारे में जांच की। रोलेट कमेटी ने इन 'महत्वपूर्ण' पत्रों का खास जिक्र किया है। कमेटी की रिपोर्ट के १४२ पृष्ठ पर लिखा है "१९१० में भाई परमानन्द पर (जो आगे चलकर लाहौर षड्यंत्र के अभियुक्तों में से एक थे और जिन्हें आजन्म कालेपानी का दण्ड हुआ था) क्रिमिनल प्रोसीजर कोड के अधीन मुकदमा चला और उनसे नेकचलनी की जमानत

ली गयी। अलीपुर षडयंत्रकारियों द्वारा व्यवहृत बम-पुस्तिका तथा अन्य कागजात जिनमें लाजपतराय की लिखी हुई दो महत्वपूर्ण चिट्ठियां भी थीं, उनके पास पायी गयीं। यह चिट्ठियां १९०७ के संकट काल में परमानन्द को लिखी गयीं, जो उन दिनों इंग्लैण्ड थे। पहली चिट्ठी पर २८ फरवरी, १९०७ की तथा दूसरी पर ११ अप्रैल की तिथियां दी हुई हैं। दोनों लाहौर से भेजी गयी थीं। प्रथम पत्र में लाजपतराय ने भाई परमानन्द से प्रार्थना की थी कि कृष्णवर्मा से अनुरोध करें कि वह अपना कुछ धन यहां के विद्यार्थी वर्ग को राजनीति पर सद्विचार देने वाली कुछ पुस्तकें भेजने में खर्चे। उन्होंने भाई परमानन्द को यह भी लिखा कि वह पता लगावें कि कृष्ण वर्मा क्या अपने १० हजार रुपये के दान का कुछ भाग राजनीतिक प्रचारकों के लिए हमें भी देने को तैयार हैं?

दूसरे पत्र में लाजपतराय ने लिखा था "लोग बिगड़े हुए से हैं। कृषक वर्ग ने भी (विरोध प्रदर्शन) एजीटेशन आरम्भ कर दिया है। मुझे तो केवल यही भय है कि वह समय के पूर्व ही न फट पड़े।' जब परमानन्द के विरुद्ध मुकदमा चला तो लाजपतराय ने बतलाया कि उपरोक्त वाक्य का मेरा यह मतलब है कि. क्योंकि कृषक वर्ग राजनीतिक आन्दोलन चलाने का आदी नहीं है, कहीं ऐसा न हो कि वह शान्तिपूर्वक एजीटेशन न चला सके। इस परिस्थिति में मैं कृषक वर्ग में राजनीतिक आन्दोलन के पक्ष में नहीं हूं। उन्होंने अदालत को यह भी बतलाया कि मैंने जिस प्रकार की पुस्तकें मंगवायीं, उनकी सूची अदालत में पेश की गयी अन्य चिट्ठी में है जिसमें क्रान्तिकारी, राजनैतिक अथवा ऐतिहासिक उपन्यास भी शामिल हैं। उसमें ये शब्द भी थे कि अपने निर्वासन से लौटने के समय तक श्यामजी कृष्ण वर्मा के राजनैतिक हिंसा आदि विचारों का मुझे ज्ञान नहीं था। उसके पश्चात् मेरा उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

इन महत्वपूर्ण पत्रों में कोई असाधारण बात न थी, जब तक कि आप उनमें असाधारण अर्थ ज़बरदस्ती ढूंढने का प्रयत्न न करें। परन्तु यह काण्ड लाजपतराय के लिए काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। भाई परमानन्द के मकान पर पुलिस के छापे तथा वहां से लाजपतराय की चिट्ठियां मिलने के पश्चात् लाजपतराय के मित्रों ने उनको भी अपने मकान पर वैसे ही छापे के लिए तैयार रहने को कहा। लाजपतराय से परामर्श लिए बिना अथवा उनको सूचित किए बिना, उन्होंने उनकी जो भी पुस्तकें तथा कागजात उनके हाथ आए, बलात् उनके घर से ले गए और उन्हें नष्ट कर दिया। चिट्ठियों, पत्रिकाओं, कागजात अथवा हस्तलिखित के जिस ढेर को अग्नि में भस्म कर दिया गया, उनमें उर्दू में निज जीवन सम्बन्धी एक उपन्यास था, जो लाजपतराय ने माण्डले के दिनों में लिखना शुरू किया था। उस समय

उनका विचार था कि शायद सुरक्षा के लिए उसे वहां से हटा दिया गया है, परन्तु उनके खेद तथा आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्हें बतलाया गया कि अन्य कागजात के साथ उसे भी नष्ट कर दिया गया है। अपनी जीवनकथा को उपन्यास के रूप में पुनः लिखना अत्यन्त कठिन था। उनके संग्रह में से कुछ मुद्रित ग्रन्थ भी खो गए थे। कई वर्ष पश्चात् वह कभी कभी "प्रीलुकर रचित रूसी वीर तथा वीरांगनाएं" का जिक्र किया करते थे और कहा करते थे, "आप जानते हैं कि उन दिनों मेरी वह प्रिय पुस्तक थी और मैं नवयुवकों को उसे पढ़ने की सिफारिश किया करता था। परन्तु जब मेरे मित्र मेरी सुरक्षा के लिए घबरा गए, उन्होंने कई चीजें नष्ट कर डालीं और वह मेरी "वीर और वीरांगनाएं" भी ले गए।"

भाई परमानन्द के विरुद्ध मुकदमें (तथा इसी प्रकार की अन्य घटनाओं) का एक महत्वपूर्ण परिणाम पंजाब के नेताओं पर बुरा तथा विनाशकारी प्रभाव पड़ना था। उन दिनों का विचित्र सिद्धांत था—जो हमारे साथ नहीं, वह हमारे विरुद्ध हैं।" डी० ए० वी० कालेज के अधिकारियों ने उसी घृणित सिद्धान्त से प्रभावित होकर भाई परमानन्द का नाम काट दिया और अदालत के फैसले की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता भी न समझी गयी। भाई परमानन्द ने अपना जीवन कालिज की सेवा में अर्पण कर दिया था। १९०७ में 'नेताओं' की अग्निपरीक्षा हुई थी और और अधिकांश असफल रहे थे। उस समय लाजपतराय ने उनके इस कार्य की उदारतापूर्ण आलोचना की थी जब वह निर्वासन से लौटे तो आपने अधिकारियों का पक्ष लिया। जब नेताओं की इच्छा के विरुद्ध आप आर्यसमाज के प्रधान चुने गए, तो आपने वह सम्मान अस्वीकार कर दिया, क्योंकि आप उन्हें परेशानी में नहीं डालना चाहते थे। अब उन्हें यथार्थ का ज्ञान हो गया था। जब आप फिर इंग्लैण्ड जाने लगे, तो दुख का भारी बोझ उनके हृदय पर था।

१९१० में इंग्लैण्ड में रहते हुए लाजपतराय ने जून के अन्त में कैक्सटन हाल में होनेवाले शासित जातियों के सम्मेलन में, भारत का प्रतिनिधित्व किया। प्रोफेसर गिलबर्ट मरे ने अपने उद्घाटन वाले भाषण में लाजपतराय का जिक्र करते ए कहा "मेरा विश्वास है कि मि० लाजपतराय भारतीय आन्दोलन के सर्वोत्तम नेता हैं। मैं बतलाना चाहता हूं कि एक उच्च अधिकारी ने जिसने लाजपतराय के निर्वासन का समर्थन किया था, मुझे बतलाया था कि भारत के अन्य पुरुषों की अपेक्षा लाजपतराय के विषय में मेरे हृदय में कहीं अधिक आदर भाव हैं। प्रगतिशील विचारों का गला घोंटा जा रहा है, और प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों का खुला प्रचार जारी हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यदि छापाखाने के कानून को लागू करने का अधिकार मुझे दे दिया जावे, तो मैं किपलिंग को

ताले में बन्द कर दूंगा और 'पंच' के मि० एन्स्टी को उसका आह्लादपूर्ण साथी बना दूंगा।"

सम्मेलन में फिनलैण्ड, जार्जिया, मराको, फारस, पोलैण्ड तथा मिश्र के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ई० डी० मोरेल तथा डिल्के ने अफ्रीका, मैक्सिको तथा पेरू में दासता, बेगार तथा प्रतिज्ञाबद्ध श्रम जीवन आदि विषयों पर प्रकाश डाला। सम्मेलन में अन्य महानुभावों के अतिरिक्त फ्रेड्रिकमेकारनेस, डा० रद्दरुफोर्ड, जी०के० चेस्टरटन तथा राबर्ट लिण्ड भी थे। जे० ए० हाब्सन एक अधिवेशन के प्रधान थे।

लाजपतराय के अतिरिक्त, इस सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि विपिनचन्द्र पाल, दुबे तथा सर हेनरी काटन थे। भारत-मिश्र-मराको बैठक के प्रधान फ्रेड्रिकमेकारनेस थे और 'भारत की वर्तमान' स्थिति पर लाजपतराय का भाषण कार्य-क्रम का मुख्य अंग था। वक्ता ने मार्ले के सुधारों के आधार पर भारत के नवीन विधान की समालोचना की, परन्तु उनके भाषण का अधिकांश लिबरल शासन के सुधारों के साथ नागरिक स्वाधीनता की शोकजनक अवस्था के बारे में था। उन्होंने स्वयं अपने विचार इसप्रकार रखे थे—

संक्षेप में लिबरल सरकार की भारत में गत चार वर्षों के शासन की दमननीति इसप्रकार काम करती रही :—

(१) किसी प्रकार के मुकद्दमा चलाये बिना और उनको बतलाए बिना ११ भारतीयों का निर्वासन।

(२) देसी भाषाओं तथा ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर पत्रों का पूर्णतः मुँह बन्द करना।

(३) विदेशी नौकरशाही तथा देश के ज़मींदारों और पूँजीपतियों का देश के शिक्षित वर्ग के विरुद्ध अपवित्र गठजोड़ सुधार योजना तथा नवीन प्रेस ऐक्ट की विशेषता रही है।

(४) राजनैतिक शिकायतों की चर्चा के लिए सार्वजनिक सभाओं के अधिकारों का छिन जाना।

(५) भाषण स्वातंत्र्य का छिन जाना।

(६) राजनैतिक अभियोगों के लिए नृशंस तथा अमानुषिक दण्ड तथा जेलों में राजनैतिक बन्दियों के साथ नृशंस व्यवहार।

(७) हाईकोर्टों में ज्यूरी के बिना मुकद्दमा चलाना तथा अदालती जांच का गुप्त रूप से होना, इस जाँच में अभियुक्त के वकील की सहायता लेने का अधिकार भी छीन लेना।

(८) नवीन ढंग की तथा अश्रुतपूर्व गुप्तचर प्रणाली जिससे कि गुप्तचरों की संख्या तथा उनके पुरस्कारों में असाधारण वृद्धि।

(९) स्कूलों में पढ़ने वाले लड़के तथा लड़कियों, ज़नानखानों में रहने वाली महिलाओं तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले नवयुवकों की देखरेख के लिए जासूसी विभाग की स्थापना।

(१०) लोगों के पत्र-व्यवहार तथा डाक में खुले रूप से हस्तक्षेप।

(११) शस्त्र कानून का अत्यन्त भीषण प्रयोग।

(१२) घरों की विस्तृत रूप से तलाशियां, तथा विदेशों में कुछ काल निवास के उपरान्त हिन्दुस्तान को लौटने वालों की अन्धाधुन्ध तलाशियां।

(१३) देश के शासन में, जातीय तथा साम्प्रदायिक पृथकता के विष का प्रवेश।

(१४) देश के धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा सामाजिक आन्दोलनों को सन्देह की दृष्टि से देखना।

(१५) धीरे धीरे, अपनी प्रजा के लिए निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा जारी करने के विषय में भारत सरकार का खुला इनकार।

सच्ची बात यह है कि राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, शिक्षा तथा परोपकार सम्बन्धी सब प्रकार के सार्वजनिक कार्यों को कार्यकर्ताओं के लिए भयजनक बनाकर, देश भक्ति को एक अपराध-सा बना दिया गया है।

इसके मुकाबले में लार्ड मार्ले के सुधारों को लीजिए, जिसमें बंगाल, बम्बई तथा मद्रास की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में एक एक हिन्दुस्तानी सदस्य की वृद्धि तथा एक सदस्य की वृद्धि वायसराय की कौंसिल में। परन्तु इन प्रान्तीय कौंसिलों की नियुक्तियों के लिए कृतज्ञता प्रकाशित नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त, देश को मुसलमानों तथा गैर मुसलमानों में विभाजित करने से सुधारों का मूल्य बहुत कम हो गया है और सारी स्कीम, राजनीतिक उद्देश्यों के लिए, धार्मिक तथा साम्प्रदायिक अखाड़े का काम कर रही है।

देश के दुखों का केवल एक ही इलाज है अर्थात् दक्षिणी अफ्रीका की तरह उसे वास्तविक स्वायतशासन प्रदान किया जाय।'

मार्ले के सुधारों का नकली प्रजातंत्रवाद दर्शाते हुए लाजपतराय जी ने दिखलाया कि सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी जैसा व्यक्ति अपने प्रान्त की स्थानीय कौंसिल के लिए खड़ा नहीं हो सकता। सम्पत्ति की शर्त लागू करने से श्री गोखले तथा श्री दादा भाई नौरोजी जैसे व्यक्ति प्रान्तीय कौंसिलों के चुनाव में खड़े नहीं हो सकते। उनके अपने प्रान्त—पंजाब में, धारा सभा (कौंसिल) में १४ गैर-सरकारी सदस्यों के मुकाबले में ११ सरकारी सदस्य हैं और १४ में से केवल ५ ही का चुनाव

होता है। कौंसिल की समस्त कार्यवाही अंग्रेज़ी भाषा में होती है। परन्तु कई मनोनीत सदस्य उस भाषा से बिलकुल अनभिज्ञ हैं।

उनके भाषण का सबसे प्रभावशाली अंश लिबरल शासन के जासूसी जाल के बारे में था, जो अत्यन्त वेतन पाने वाली अशिक्षित तथा जघन्य पुलिस द्वारा स्कूलों तथा कालिजों में फैला दिया गया है। "मानव प्रकृति की नीचतम भावनाओं के अवलम्बन लेकर, पिता को पुत्र के विरुद्ध, भाई को भाई के विरुद्ध, पत्नी को पति के विरुद्ध, मित्र को मित्र के विरुद्ध तथा अध्यापक को शिष्य के विरुद्ध (तथा इसके विपरीत पुत्र को पिता के विरुद्ध, पति को पत्नी के विरुद्ध इत्यादि इ़यादि) खड़ा कर दिया गया है। यह तो मानवता के स्रोतों को अपवित्र करना है। इस समस्त खेदजनक स्थिति का मूल कारण अंग्रेज़ी शासन है। "कोई विदेशी नौकरशाही यह सह ा नहीं कर सकती कि पौरुष, आत्मविश्वास, आत्मावलम्बन, आत्मसाह्य जैसे सद्गुणों का प्रचार करने वाले देशानुरागी, त्यागी, सार्वजनिक भावना रखने वाले मनस्वियों का अस्तित्व भी देश में रहे, क्योंकि वह अज्ञातरूप से जन साधारण के हृदय में बेचैनी तथा असन्तोष के भावों का संचार करते हैं। नौकरशाही को तो स्वभावतः भीरु, अवसरवादी तथा निर्लज्ज, खुशामदी और घृणित परोपजीवी लोग ही प्रिय लगते हैं।"

गिलबर्ट मरे तथा फ्रेड्रिक मेकारनेस द्वारा लाजपतराय तथा मिस्री नेता फरीदबेग की प्रशंसा सुनकर कान्फ्रेंस की योजना करने वाली समिति के उत्साही महामंत्री, तथा क्रोपाटकिन के कुछ ग्रन्थों का अंग्रेज़ी में अनुवादकर्त्री आयरिश महिला श्रीमती एन० एफ० ड्राईहर्स्ट लिखती हैं "स्वभावतः मिस्री तथा भारतीय नेताओं के दर्शन करने तथा उनके भाषण सुनने की मेरी उत्सुकता जागृत हो गयी। दोनों ही मेरे निजी मित्र बन गए। फरीदबेग का भाषण फ्रेंच में हुआ और उसकी वेश-भूषा पाश्चात्य योरुपियन ढंग की थी, परन्तु लाला लाजपतराय सुदूरपूर्व की सजीव प्रतिमा थे। कद के छोटे परन्तु अत्यन्त आत्माभिमानी, अपने देश की पगड़ी पहने हुए लगभग एक घंटे तक उन्होंने अपनी ललित तथा निर्दोष धारा प्रवाह अंग्रेज़ी द्वारा श्रोताओं को मंत्रमुग्ध बनाए रखा।"

श्रीमती ड्राईहर्स्ट लाजपतराय की घनिष्ट मित्र बन गयीं और जब कुछ वर्ष पश्चात् वह अमेरिका गए तो उसने अपनी शिकागो की सहेलियों को उनके बारे में लिखा जिससे उनकी मित्र मण्डली का वृत्त और भी विशाल बन गया। लाजपतराय ने १५ वर्ष पश्चात् उसके अन्तिम दर्शन किए और उनकी प्रार्थना पर उसने उनके पत्र 'पीपुल' के लिए एक लेख लिखा था जिसमें उसने जार्जिया के प्रति सोवियट सरकार की नीति की आलोचना की थी। १९१० में वह उसके घर कई बार जाते थे

और वह भी कई बार उनके यहां आती थी, जहां वह अपने लन्दन के मित्रों को पूर्वीय पाचनकला का रसास्वादन कराया करते थे। एक दिन जब लाजपतराय उसके घर में अतिथि थे, एक भारतीय सैनिक अफसर की पत्नी वहां आयी और लाजपतराय का नाम सुनते ही उसको एक ओर ले जाकर हंसते हंसते कहने लगी "क्या तुम्हें ज्ञात है कि तुम्हारा यह अतिथि समस्त भारतवर्ष का सबसे खतरनाक व्यक्ति है ?"

इन्हीं दिनों लाजपतराय के परिवार में एक भारी शोकजनक घटना हो गयी। उनका दूसरा पुत्र, प्यारेकृष्ण जो उनकी महान् आशाओं का केन्द्र बना हुआ था, भारतीय जड़ी बूटी की ज्ञान प्राप्ति तथा औषधि निर्माण का कार्य सीखने इंग्लैण्ड भेजा गया था। अभी पढ़ाई शुरू किए उसे थोड़े ही दिन हुए थे कि वह बीमार पड़ गया और उसे डेवनशायर के स्वास्थ्य गृह में प्रविष्ट कराया गया। १९०८ में जब लाजपतराय इंग्लैण्ड गए तो उन्होंने चेफोर्ड में अपने रुग्ण पुत्र से भेंट की और उनको उसके पुनः स्वस्थ हो जाने की काफी आशा थी। परन्तु प्यारेकृष्ण भारत को लौट आया और उसका रोग घातक सिद्ध हुआ। पिता को एक ऐसे पुत्ररत्न से वंचित होना पड़ा जिसे वह अत्यन्त प्रेम करते थे और जिसे वह सदा अपनी सब सन्तानों से अधिक प्रतिभाशाली समझते थे। अपने महान् कार्य तथा अपनी मातृभूमि के स्वातंत्र्य युद्ध के भार को निज परिवार के किसी योग्य उत्तराधिकारी के कन्धे पर डालने का उनका सुख स्वप्न सदा के लिए मिट्टी में मिल गया।

अध्याय चालीसवां

तीसरी बार विदेशयात्रा

तीसरी बार आप इंग्लैण्ड गए फिर कांग्रेस के प्रतिनिधि बनकर।

दिसम्बर १९१३ में कराँची में, इंडियन नेशनल कांग्रेस ने इंग्लैण्ड को डेपुटेशन भेजने का प्रस्ताव पास किया, क्योंकि आशा थी कि १९१४ के बसन्त में भारतमन्त्री लार्ड क्राव इण्डिया आफिस के सुधारार्थ धारा सभा में एक बिल पश करेंगे। कराँची अधिवेशन ने डेपुटेशन का प्रस्ताव तो पास कर दिया, परन्तु उसके लिए धन संग्रह का कार्य प्रान्तीय संस्थाओं पर छोड़ दिया। आशय यह था कि वे संस्थाएँ अथवा डेपुटेशन के सदस्य खुद ही व्यय का भार उठावें। डेपुटेशन के सदस्य मनोनीत करने का अधिकार प्रान्तीय संस्थाओं को ही दिया गया। पंजाब ने लाजपतराय को मनोनीत किया। अन्य प्रान्तों से भूपेन्द्रनाथ बसु (बंगाल), एम०ए०जिन्ना तथा समर्थ (बम्बई) तथा कृष्णसहाय (बिहार) थे। लाजपतराय शीघ्रही मान गए, क्योंकि उनका अनुभव था कि कभी-कभी योरुप जाना भारी शिक्षा तथा प्रेरणा का साधन होता है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक तौर पर भी उपयोगी सिद्ध होता है।

१९१४ के मदरास में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के प्रधान के रूप में भी लाजपतराय का नाम लिया जा रहा था। अतः यह उचित था कि इंग्लैण्ड में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व उन्हीं द्वारा हो जब कि भारत सम्बन्धी किसी विधान-निर्माण का कार्य ब्रिटिश धारा सभा में होने वाला हो।

लार्ड क्रीव के बिल की भाषा, परिभाषा, शर्तों आदि की अपेक्षा उपरोक्त वाह्य कारण ही लाजपतराय के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण थे। बिल तथा उसकी परिभाषा आदि के लिए, कलकत्ता के भारी माडरेट, भूपेन्द्रनाथ बसु ही काफी थे। लाला जी डेपुटेशन के अन्य सदस्यों के साथ बिदा न हो सके, क्योंकि बम-षड्यन्त्र का एक केस चल रहा था। कभी-कभी यह अफवाहें उड़ने लगती थीं कि लाजपतराय भी किसी-न-किसी प्रकार उक्त षडयन्त्र से सम्बद्ध होंगे, उनके घर की तलाशी

ली जायगी और उन्हें षड्यन्त्रकारी अथवा हिंसात्मक कार्यों के प्रेरक के रूप में गिरफ्तार कर लिया जायगा। लाजपतराय जानते थे कि उनके विरुद्ध इस प्रकार का आरोप सिद्ध करने की सरकार के पास लेशमात्र भी सामग्री अथवा साक्ष्य नहीं है, परन्तु उन्हें यह भी ज्ञात था कि पुलिस के भाव उनके प्रति किसी प्रकार भी मैत्रीपूर्ण नहीं थे, और कभी-कभी तो यही पुलिस अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध घृणित से घृणित कार्य करने से भी नहीं झिझकती। १९१४ के इन दिनों के विषय में वह लिखते हैं : "मुझे सबसे भारी भय तथा आशंका यही थी कि पुलिस किसी-न-किसी प्रकार मुझे देहली में चलने वाले उस लाहौर-बम-केस में न फँसा ले।" वह उक्त केस के दो अभियुक्तों में दिलचस्पी ले रहे थे और उनको यथाशक्ति उनकी सहायतार्थ लाहौर रहना पड़ा। एक तो उनके मित्र लाला हंसराज का पुत्र और उनके अपने बेटे प्यारेकृष्ण (जिनकी इंग्लैण्ड में ही विद्यार्थी जीवन में ही अकाल-मृत्यु हो गयी) का मित्र—बलराज था और दूसरा भाई परमानन्द का सम्बन्धी भाई बालमुकुन्द था जो गत एक वर्ष से उनके साथ अछूतों में काम कर रहा था। भाई बालमुकुन्द के उच्च आचरण के आप भारी प्रशंसक थे। अपनी स्वलिखित जीवनी में लाजपतराय ने बालमुकुन्द का स्मरण बड़े सुन्दर तथा प्रशंसापूर्ण शब्दों में किया है : "बलराज का मेरे घर में आना जाना बिलकुल खुला था और वह मेरे पुस्तकालय तथा पत्र आदि देखा करता था। बालमुकुन्द,केवल निर्वाह मात्र के लिए पैसे लेकर दलितोद्धार का कार्य करता था। हमने जालन्धर कमिश्नरी में उनके बच्चों की शिक्षा के लिए कई पाठशालाएँ खोल रखी थीं और हमने रावी के पार उस भूमि पर जो मैंने २५,००० रु० को खरीदी थी, उनकी एक बस्ती बसाने की योजना बना ली थी। अपने जीवन में मैं शिक्षित तथा अर्द्ध शिक्षित नवयुवकों की एक भारी संख्या से मिला हूँ, जिन्होंने मातृभूमि की सेवा तथा त्याग की उच्च भावनाओं में हद कर दी। बालमुकुन्द उन दिनों २० वर्ष का था। उसका व्यक्तिगत आचरण शुद्धतम और उसकी निस्वार्थता अलौकिक थी। उसके दिल में मेरे प्रति भारी श्रद्धा तथा स्नेह था और मेरे आदेश पर वह प्राण त्यागने को तैयार रहता था। मैं उसके हृदय पर रचनात्मक सामाजिक कार्य की उपयोगिता की भावना अंकित करते हुए उसे राजनैतिक अग्निक्रीड़ा (पटाखे बाज़ी) से पृथक रहने का उपदेश दिया करता था। वह मान गया था और उसने अछूतों में कार्य शुरू कर दिया था। वर्ष के अन्त में, केवल एक बार वह मेरे पास रहा और उसने मुझे संकेत दिया कि रचनात्मक कार्य में उसका जी इतना नहीं लगता जितना कि मातृभूमि की राजनैतिक मुक्ति के लिए अधिक बलशाली क्रान्तिकारी कार्यों में। गुप्त क्रान्तिकारी दल के साथ उसके सम्बन्ध की कथा १९१४ के मुकद्दमे में बतलायी

गयी। मुझे ठीक ठीक याद नहीं कि वह सम्बन्ध कब तक किस तिथि से शुरू हुआ, परन्तु में उसकी यह बात समझता हूं कि जब कार्य का अवसर आया, उसने स्वेच्छा से मेरी नौकरी छोड़ दी और चला गया। बालमुकुन्द एक गम्भीर प्रकृति का तरुण था। वह कोई कार्य तात्कालिक भावुकता के वशीभूत होकर नहीं करता था। स्पष्ट है कि वह पूरे सोच विचार के बाद ही क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित हुआ। मेरी नौकरी तो एक बहाना मात्र थी। ऐसी उच्चात्मा का व्यक्ति मुझे धोखा नहीं दे सकता। जिस बात ने मेरी सतर्कता तथा सजगता को ढीला कर दिया, वह यह थी कि उसने नौकरी के दिनों एक तरुण युवती से विवाह कर लिया और उससे बड़ा अनुराग रखता था। जहां तक मुझे याद है वादी यह सिद्ध नहीं कर सके कि लाहौर के लारंस गार्डन वाले बम फेंकने की घटना में उसका कोई हाथ था, क्योंकि अभियुक्तों के विरुद्ध मुख्य आरोप यही था। न्यायालय को पता लगा कि वह गुप्त संस्था के प्रमुख संचालकों में से हैं। और १९११ का बम काण्ड भी उन्हीं उद्देश्यों के अनुसार हुआ। उस केस के अभियुक्तों पर दिसम्बर १९११ में लार्ड हार्डिङ्ग पर हत्याकारी आक्रमण करने का सन्देह भी किया जाता था। बालमुकुन्द को फांसी हुई और उसी दिन उसकी तरुण पत्नी का भी लाहौर में स्वर्गवास हो गया। मुझे भाई बालमुकुन्द की गिरफ्तारी तक कुछ भी ज्ञात नहीं था कि उसका सम्बन्ध क्रान्तिकारी आन्दोलन से था। यदि मुझे इसका ज्ञान पहले होता तो मैं उसे रोकने का प्रयत्न करता और सम्भवतः देशसेवा के अधिक उपयोगी कार्यों के लिए उसे भी बचा लेता।

सो, अभियोग पत्र की समाप्ति तक लाजपतराय भारत से चल न सके और लाला हंसराज आदि उनके मित्र कहते थे कि अब जाने में अधिक विलम्ब नहीं होना चाहिए।

भूपेन्द्रनाथ बसु तथा उनके साथी, लार्ड क्रीव से भेंट कर चुके थे, तथा प्रस्तावित बिल के बारे में भी उनसे बातचीत कर चुके थे। लाजपतराय १७ मई को अपने साथियों से जा मिले। कलकत्ता के माडरेट नेता ही डेपुटेशन के मुखिया थे, जैसा कि लाजपतराय ने लिखा था "भूपेन्द्र बाबू ही हमारे डेपुटेशन के मुखिया थे और उनका ही इंडिया आफिस के अधिकारियों तथा अन्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञों से सम्पर्क था। वही अपने स्वभाव तथा शिक्षा दीक्षा से वार्तालाप करने के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति थे। समय समय पर वह हमें बतलाते रहते थे कि अधिकारी क्या करना चाहते हैं, वह कहां तक जाने को तैयार हैं और व्यावहारिक अथवा अव्यावहारिक क्या है। उनके निर्देश में हमने नोट तैयार किये और भारत मंत्री के विचारार्थ भेज दिए। केवल भूपेन्द्र बाबू ही जानते थे कि उन्होंने उन पर कितना ध्यान दिया।"

और बिल के बारे में लिखते हैं—"जो बिल लार्ड क्रीव ने पेश किया था, वह बिलकुल ही व्यंग ढंग का था, जिससे सन्तुष्ट तो कोई भी न था, और जिसका विरोध चारों ओर से हो रहा था। जब डेलीगेशन भारत से चला, तो बिल की धाराएँ प्रकाशित नहीं हुई थीं और उस पर भारतीय मत प्रकट नहीं हुआ था। जब उसकी धाराएँ छप गयीं तो भारतीय पत्रों ने भारी असन्तोष प्रकट किया—और जो कहीं उनका समर्थन हुआ भी तो पहुत ही ढीला ढाला था। डेलीगेशन में भी आपस में मतभेद था। व्यक्तिगत रूप से उसका स्वागत करने का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आया, परन्तु हमारे मुखिया उसका समर्थन करने पर वचनबद्ध थे, अतः एकता की खातिर हमने भारतमन्त्रीको नोट भेजते हुए, उस बिल में भारी परिवर्तन सुझाए और साधारणतः उससे स्वीकृति दी। टोरी दल ने बिल का अत्यन्त विरोध किया और टोरी पत्रों ने तो विरोध का तूफ़ान खड़ा कर दिया. . . ।

लार्ड क्रीव का बिल अस्वीकृत हुआ और उस पर इण्डियन डेलीगेशन के नेता के अतिरिक्त अन्य किसी को भी खेद नहीं हुआ।

इस बिल की असफलता देखकर लाजपतराय को एक बार फिर इग्लैण्ड जाने का बहाना मिल गया। जब तक वह इंग्लैण्ड रहे, उन्होंने वहाँ के राजनीतिक क्षेत्रों में सम्पर्क बढ़ाने का ही यत्न किया, जिससे वह सम्पर्क भारतवर्ष की समस्याओं लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। जिन दिनों केयर हार्डी भारत भ्रमण कर रहे थे, वह उनसे भेंट न कर सके, क्योंकि वह उन दिनों माण्डले के दुर्ग में शाही बन्दी थे। १९०९ में वह हार्डी से मिले, परन्तु वास्तविक भेंट १९१४ में ही उनसे हुई और उनके लिए लाजपतराय के हृदय में मान तथा प्रशंसा के भाव विकसित हुए। १९१४ में लन्दन पहुँचने पर प्रथम स्वागतपत्र जो लाजपतराय को मिला, वह केयर हार्डी की ओर से था और उसमे उनसे हाउस ऑफ कामन्स में खाना खाने का बार बार अनुरोध किया गया था। हार्डी के बारे में लाजपतराय ने आगे चल कर लिखा था—'केयर हार्डी के दर्शन मात्र से ही मेरे प्रति प्रेम उमड़ पड़ता था। अपने समस्त जीवन में जितने सार्वजनिक नेताओं से भेंट करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, हार्डी महोदय उन सब में पवित्रात्मा थे—सीधे सादे, सरल हृदय, विनीत, मधुरता तथा सत्यता की प्रतिमूर्ति। वह मानवता के उपासक तथा प्रेमी थे, अतः उनके मन में धर्म, जाति तथा वर्ण आदि का कोई भेद भाव न था। उच्च सिद्धान्तों का मौखिक दावा तो बहुत लोग करते हैं, परन्तु उनका जीवन ही उन सिद्धान्तों के अनुसार था। एक निर्धन तथा निम्न कुल में उनका जन्म हुआ था। वह आजीवन उपर्युक्त आदर्शों के अनुयायी रहे। शक्ति सम्पन्न लोगों की कृपादृष्टि की आपको लेशमात्र परवाह न थी। क्या घर में और क्या

राजप्रासाद में, आपकी वेषभूषा व चाल ढाल सदा समान रही। वह मज़दूर दल के प्रवर्तक तथा जन्मदाता थे, परन्तु खेद है मज़दूर दल उनके आदर्शों तथा सिद्धान्तों से बहुत दूर चला गया है। वह संसार भर के अत्याचार पीड़ितों तथा दलितों के —चाहे वे भारतवर्ष के हों, अथवा योरुप, अमरीका, अफ्रीका या कहीं और स्थान के—मित्र तथा हितैषी थे। यह सत्य है कि वह कोई भारी विद्वान अथवा भारी वक्ता नहीं थे, परन्तु उनके नि छल तथा सच्चे शब्द श्रोताओं के मन को आलौकिक रूप से मोह लेते थे और उनके प्रति श्रोताओं में श्रद्धा तथा प्रेम के भाव पैदा करत थे। वह सच्चे अर्थों में एक सन्त तथा भविष्यवक्ता का सम्मिश्रण थे। अपने सिद्धान्तों के कारण उनको भारी कष्ट सहन करने पड़े, परन्तु उससे उनके सिद्धान्तों अथवा व्यवहार में किसी प्रकार का भेद नहीं पड़ा। जो कुछ कहते थे, उसे करके दिखलाते थे। ऐसे थे वह महात्मा केयर हार्डी जिनके जीवन का श्रीगणेश कोयले की खान में हुआ और उन्होंने वेस्ट मिनिस्टर में पार्लियामेण्टरी दलके नेता तथा प्रवर्तक के पद तक उन्नति की। वह गरीब अवश्य थे, परन्तु उनके दिल में शाही उदारता व विशालता का साम्राज्य था।"

एक और सज्जन फ्रेडरिक मेकरनेस थे जिन्होंने जैसा कि हम निर्वासन के अध्यायों में देख चुके हैं—धारा सभा में बार बार प्रश्नों द्वारा मार्ले का नाक में दम कर दिया था। इस महाशय तथा लाजपतराय में गहरी मैत्री हो गयी। लाजपतराय लिखते हैं—"फ्रेडरिक मैकारनेस एक अंग्रेज सज्जन थे जिनकी मित्रता तथा आतिथ्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। १९०७ में वह मेरे लिए लड़ते रहे और प्रतिदिन निरन्तर मेरे निर्वासन के बारे में प्रश्न पूछने के कारण जान मार्ले तथा उदार दल के अन्य नेताओं के कोप भाजन बन गये। १९०७ से पूर्व वह बहुत बड़े माने जाते थे। उनकी विद्वत्ता, कानून का गहन ज्ञान, उनकी गम्भीर तथा तर्कपूर्ण सम्मति तथा उनके सन्तुलित भाषणों ने उन्हें महान् बनाया था। अग्रगामी क्षेत्रों में वह बड़े होनहार समझे जाते थे। परन्तु अफसोस कि मेरा निर्वासन उनके पतन' का कारण सिद्ध हुआ।

मुकदमा चलाए बिना ही निर्वासन उदारवाद के मूल सिद्धान्तों की ऐसी भारी अवहेलना थी कि किसीप्रकार भी मैकारनेस सन्तुष्ट नहीं रह सकते थे। धारासभा में कल्पनाप्रिय जान मार्ले की ओर से चाहे कितनी ही व्याख्याएं क्यों न पेश की जाती हों, परन्तु वह निरन्तर नये नये प्रश्न तथा आपत्तियां खड़ी करने से नहीं चूकते थे। मेरे उनके दर्शन कभी हुए नहीं थे। वह मेरे विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। वह तो केवल एक सिद्धान्त पर ही अड़ गए। वह सिद्धान्तों के ही उपासक थे। उसी के लिए वह अपने दल के नेताओं की दृष्टि में गिर गए। जान मार्ले की

भारतीय नीति पर उनसे तीव्र कटाक्षों तथा तीक्ष्ण आक्रमणों के कारण उनको इतना सताया गया कि सालिस्टैरों ने उन्हें मुकदमे भेजने बन्द कर दिए और एक भारी क़ानूनी प्रैक्टिस वाले उच्च वकील को भूखों मरने का समय देखना पड़ गया।

फ्रेडरिक मैकारनेस की मनोवृत्ति अथवा झुकाव किसी प्रकार का क्रान्तिकारी न था। वह कड़ी भाषा तथा क्रान्तिकारी उपायों को पसन्द नहीं करते थे...। वह एक शान्तिप्रिय व्यक्ति थे और सदा एजीटेशन के वैधानिक उपायों का ही समर्थन करते थे। वह सिद्धान्तों के उपासक थे, अतः चाहे कुछ भी हो जाय, अपने सिद्धान्तों पर डटे रहते थे। उनकी धर्मपत्नी भी वैसी ही उदाराशया थीं और उन्हें भारतीय दर्शन तथा साहित्य में अत्यन्त रूचि थी। १९०८–९ में मेरा परिचय उनसे हुआ और मुझे आजीवन उनके मित्र तथा श्रद्धापात्र होने का सौभाग्य प्राप्त रहा...।

एक और महत्त्वपूर्ण मैत्री वैवस दम्पति के साथ थी, जिनके विषय में लाला लाजपतराय लिखते हैं :—

"अन्य अंग्रेज़ मित्रों में से वैव दम्पति हैं जिनकी सहृदयता तथा कृपा मेरे लिए बहुमूल्य थी। उनकी अनुपम विद्वत्ता तथा उनके लिखित चिरस्मरणीय ग्रन्थों का ज्ञान संसार भर को है परन्तु यह शायद बहुत ही कम लोग जानते होंगे कि मित्र के रूप में वह कितने सज्जन तथा दयालु हैं। उनकी भेंट से ही बौद्धिक भोज का-सा आनन्द आता है। जो कुछ सर्वोत्तम उनके अन्दर है, वह निःसंकोच आपको प्रदान कर देते हैं। वह समाजवादी हैं, परन्तु क्रान्तिकारी समाजवादी नहीं, ब्रिटिश फैबियन सोसायटी, फैबियन मनोवृत्ति तथा फैबियन साहित्य का अस्तित्त्व उन्हीं के दम से है। मज़दूर दल के निर्माण में उनका भारी हाथ रहा है। उनके प्रभाव तथा सहानुभूति के कारण ही बहुत से विख्यात लेखकों का प्रारम्भिक जीवन सफल हो पाया है। भारतीय राष्ट्रवादियों को भारतीय राजनीति पर मि० सिडनी वैव के विचार पसन्द नहीं आते। वह इतने सतर्क तथा फैबियन हैं कि राष्ट्रवादी मनोवृत्ति को रुचिपूर्ण नहीं लगता। वैव दम्पति विद्या तथा ज्ञान के तो आगार हैं। मि० सिडनी वैव का अपने मित्रों के साथ व्यवहार इतना स्नेहपूर्ण है कि वह उनको पत्र लिखते समय स्टेनोग्राफर से काम नहीं लेते। १९१४ में जिन दिनों मैं इंग्लैण्ड में था, वह मेरे लिए भारी उपयोगी सिद्ध हुए।"

वयोवृद्ध सर विलियम वैडरबर्न के विषय में तो निस्सन्देह लाजपतराय को बहुत कुछ कहना था।

"स्वर्गीय सर विलियम वैडरबर्न, सभी भारतीय राजनैतिक कार्यकर्ताओं

बल्कि सभी श्रेणियों के भारतवासियों के मित्र, हितैषी, गुरु तथा पथ प्रदर्शक थे। आप इण्डियन सिविल सर्विस के पद से रिटायर होकर आए थे। आप सर्वोच्च श्रेणी के अंग्रेज़ देशानुरागी थे, परन्तु आपके विषय में निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वह भारतवर्ष के प्रेमी थे। भारतीय कोष से प्राप्त होनेवाली पेन्शन की एक एक पाई वह भारत के कल्याण के लिए खर्च करते थे। आप इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के प्रधान थे और वर्षों तक कमेटी तथा उसके साप्ताहिक पत्र 'इंडिया' के संचालन का खर्च अपनी जेब से करते रहे जो भारतीय नेता राजनैतिक कार्य के लिए इंग्लैण्ड जाते थे, प्राय: वे विलियम वैडरबर्न से परामर्श लेते थे और वे यथाशक्ति उनका कार्य सहज बनाने की कोशिश करते थे। उनके परामर्श तथा सहायता हमारे लिए लगभग अनिवार्य थी।"

जब लाजपतराय इंग्लैण्ड पहुंचे, तो उस समय सर विलियम विशी (फ्रान्स) गए हुए थे, परन्तु ज्योंही (जून के मध्य में) वह लौटे, तो उन्होंने कांग्रेस प्रतिनिधयों से भेंट की। विशी से उन्होंने लाजपतराय को लिखा था कि मैं सभी प्रतिनिधियों से ११ बजे प्रात: मिलूँगा और मैं चाहता हूं कि आप सवा दस बजे आ जाएं, क्योंकि अन्य प्रतिनिधियों के आने से पूर्व मैं आपसे थोड़ी बहुत बातचीत करना चाहता हूं।" भेंट में बातचीत का मुख्य विषय लार्ड क्रीव का इंडियन बिल था। लाजपतराय को उन्होंने बार बार अपने देहात वाले निवास-स्थान मेरेडिथ में निमंत्रित किया और विशेषत: पंजाब के राजनैतिक असन्तोष की बाबत पूछते थे। उनके साथ कई बार वार्तालाप हुआ और निश्चय हुआ कि इस विषय में सर विलियम एक नोट लिखेंगे और उसे इंडिया आफिस को भेजेंगे। परन्तु अन्त में इस बारे में कुछ न हो पाया।

वह ब्रिटिश मजदूरों तथा ट्रेड यूनियन आन्दोलन में दिलचस्पी ले रहे थे और १९१४ में वह भारतवर्ष में भी ट्रेड यूनियन आन्दोलन चलाने का विचार कर रहे थे।

वैव दम्पति ने उन्हें फैबियन ग्रीष्म विद्यालय में आमंत्रित किया। मनोहर अंग्रेज़ी झीलों के इलाके में स्थित अपने निवास स्थान में उन्होंने छुट्टियां मनाई, वहीं उन्होंने शिक्षा भी प्राप्त की। इस विद्यालय का स्मरण करते हुए लाजपतराय ने लिखा था "जुलाई के अन्तिम १० दिन इंग्लैण्ड के सर्वोत्तम समाजवादी कार्यकर्त्ताओं तथा विचारकों के साथ हर्षमय वार्तालाप में व्यतीत हुए। उनमें मि० वैव तथा श्रीमती वैव, मि० बर्नार्डशा, मि० कोल तथा मि० बैबिट थे। मि० कोल के नेतृत्व में तरुण दल ने विद्रोह कर रक्खा था। वह खुले तौर पर वैव दम्पति की आलोचना करते, उनपर हमले करते और उनकी हँसी उड़ाते थे, परन्तु वैव दम्पति कभी भी नहीं बिगड़ते थे और सभी आलोचनाओं तथा आक्रमणों का हँस हँसकर सामना करते थे।"

लाजपतराय सदैव चौकन्न रहते थे और विदेश में शिक्षा के अवसरों का अध्ययन

करते रहते थे। इस बार आपने इंग्लैण्ड में रहनेवाले 'भारतीय विद्यार्थियों की समस्या' पर विशेष ध्यान दिया। इस कार्य के लिए आपने 'न्यू स्टेट्समैन' के सम्पादक टी० डब्ल्यू० आर्नल्ड से कई बार भेंट की। पत्र के संचालक वैब दम्पति के सुझाव पर सम्पादक महाशय ने भारतीय प्रश्नों पर लाजपतराय के लेख प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। अन्य लेखों के साथ साथ लाजपतराय ने उसे एक लेख 'भारतीय विद्यार्थियों की समस्या' पर भी दिया। यह लेख १५ वर्ष बाद भी उतना ही ताज़ा तथा सामयिक लगता था और उन्होंने अपने जीवन चरित्र में उसे उद्धृत किया।

इन्हीं दिनों कामागाटा मारू काण्ड पत्रों के शीर्षक का विषय बन रहा था। मई, जून तथा जुलाई १९१४ में उपनिवेशों में विशेषतः कैनेडा में भारतीयों की स्थिति का प्रश्न छिड़ा हुआ था। लाजपतराय ने उन्हीं दिनों लण्डन रहते हुए पत्रों में उसी विषय पर लेख लिखे। न्यू स्टेट्समेन के अतिरिक्त उनका सम्पर्क उन दिनों डेली न्यूज़ (जिसके सम्पादक ए० जी० गार्डीनर थे) तथा वेस्ट मिन्स्टर गज़ट (जिसका सम्पादन जे० ए० स्पेण्डर द्वारा होता था) से भी था।

अपनी स्वलिखित जीवनी में कामागाटा मारू काण्ड पर लाजपतराय लिखते हैं "बाब गुरुदित्त सिंह भारतीयों से भर कर एक जहाज़ केनेडा ले गए, जिससे कि ब्रिटिश कोलम्बिया के इमीग्रेशन नियमों के औचित्य की परीक्षा की जा सके। वह अपने यहां भारतवासियों को प्रवेश नहीं करने देते थे जब तक कि वह भारत से सीधे एक ही जहाज़ में केनेडा की यात्रा करके न आवें। यह बात उन दिनों असम्भव थी। पश्चिमी केनेडा को यात्री ले जानेवाले साधारण जहाज़ों के लिए किसी हिन्दुस्तानी को ले जाना वर्जित था। यदि कोई यह भूल कर बैठता तो उसे अपनी जेब से किराया देकर हिन्दुस्तानी को वापस लौटाना पड़ता था। पंजाब के गुरुदत्त सिंह उन दिनों चीन में ठेकेदार थे। उन्होंने भारी धन व्यय करके और भारी आत्म विश्वास के साथ एक जापानी जहाज किराए पर लिया और लगभग ५०० सिक्खों को उस पर सवार करके केनेडा के तट पर ले गया। इन सिक्खों को वहां उतरने नहीं दिया गया, और समुद्र में तथा तट पर कड़ा पहरा लगा दिया गया जिससे कोई यात्री वहां उतर न सके। एक यात्री ने, वकील द्वारा न्यायालय का द्वार खटखटाया, परन्तु कुछ न बना। सर्वोच्च न्यायालय में भी अपील अस्वीकृत हुई और अन्त में लाचार होकर जहाज को वापस होना पड़ा। मई में जब मैं इंग्लेंड पहुंचा तो मैंने मामले में दिलचस्पी लेना आरम्भ किया और भारत उपमंत्री, अन्य सज्जनों तथा बड़े बड़े सम्पादकों से मैंने भेंट की और उनसे हस्तक्षेप का अनुरोध किया। मैंने पत्रों में लिखा कि उपनिवेशों की यह नीति खतरनाक

तथा अन्यायपूर्ण है। मि० चार्ल्स राबर्टस उन दिनों इंडिया आफिस के उपमंत्री थे। वह हमारे कार्य के साथ सहानुभूति रखते थे, परन्तु इंडिया आफिस में उपनिवेशों से अपील कराने की न तो शक्ति थी और न इच्छा। पत्रों ने भी विरोध किया और टाइम्स ने अपने अग्रलेख में किपलिंग के शाश्वत सत्य कि 'पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम' की ओर संकेत किया। लिबरल पत्रों ने मेरे लेख तथा पत्र प्रकाशित किए साधारणतः बड़ा सहानुभूतिपूर्ण विचार रखते हुए बतलाया कि इस बुराई का दुष्परिणाम यह होगा कि पूर्व तथा पश्चिम में संघर्ष की सम्भावना बनी रहेगी। परन्तु उन्होंने कोई विशेष राह न सुझायी। युद्ध छिड़ने से तीन मास पूर्व अंग्रेजी पत्र इसी विषय के लेखों से पूर्ण रहते थे।

२३ जून को भारत उपमंत्री मि० चार्ल्स राबर्टस ने लाजपतराय को लिखा केनेडियन राजनीतिज्ञ मि० हेनरी बोरसा आपसे भेंट करने को उत्सुक हैं। उपमंत्री की तरह, उनका यह विचार था कि केनेडियन उदार नेता उनके साथ कामागाटा मारू की गुत्थी के बारे में बातचीत करना चाहते हैं। दो दिन पीछे मि० बोरसा ने सीधे ही उनको निमंत्रित करते हुए लिखा "हमारे देशों के मध्य में वर्तमान कठिनाई के होते हुए भी, मुझे भारत में दिलचस्पी है। न्यू लीडर में ११ तथा १२ जून को प्रकाशित आपके दोनों पत्रों को मैंने सहानुभूति तथा दिलचस्पी से पढ़ा है। आपके साथ "भारत में राष्ट्रीयता की उन्नति" के बारे में बातचीत करने में मुझे प्रसन्नता होगी।" सो उसने सुझाया कि वह किसी शान्त तथा एकान्त स्थान में इकट्ठा भोजन भी करें और भारत तथा केनेडा की राष्ट्रीयता की बातों तथा भावनाओं की तुलना करेंगे।"

मि० हेनेरी बोरसा उन दिनों केनेडियन धारा सभा में फ्रेंच केनेडियम उदार दल के नेता थे। वह एक सुसंस्कृत तथा प्रभावशाली व्यक्ति थे और माण्टरियल में एक दैनिक पत्र का सम्पादन करते थे। उनका मुझ से भेंट करने का उद्देश्य उससे सर्वथा भिन्न था जो मि० चार्ल्स राबर्टस ने समझा था। मैंने उनसे लण्डन में तथा फिर अमेरिका में लम्बी चौड़ी बातचीत की। उसने उपनिवेशों की एशिया विरुद्ध नीति का उत्तरदायी अंग्रेजों को बतलाया। वह केनेडा में हिन्दुस्तानियों के लिए मुक्त द्वार नीति के प्रश्न की अपेक्षा संसार में जनतावाद के विकास तथा उत्कर्ष में अधिक दिलचस्पी रखते थे। उनसे भेंट करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ, परन्तु जिस प्रश्न में मेरी तात्कालिक दिलचस्पी थी, उसमें वह किसी प्रकार की सहायता देने का वचन न दे सके।" बृटिश साम्राज्यवाद के कामागाटामारू के अभागे शिकार लोगों की सहायता की सभी कोशिशें निष्फल सिद्ध हुईं। हताश आगन्तुक अपने देश को लौट गए, जहां तट पर उतरते ही उनका स्वागत गोलियों से किया गया।

अध्याय इकतालीसवां

१९१४ का विश्वयुद्ध

जब वह घर मे चले थे, तो उन्होंने छः मास के दौरे का विचार किया था। अब उनको इंग्लैंड रहते दस सप्ताह हो गए थे। कांग्रेस डेपुटेशन का कार्य समाप्त हो चुका था। उन्होंने फ्रान्स, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रिया बल्कान, टर्की तथा मिश्र के भ्रमण का कार्यक्रम बनाया। उक्त सभी देशों के विख्यात लोगों के नाम आपने आवश्यक परिचय पत्र भी ले लिए। इसमें वैव दम्पति विशेषतः सहायक हुए। जुलाई के अन्त में वह पूरी तैयारी कर चुके। फेबियन विद्यालय के बन्द होते ही वह इंग्लैण्ड से चल देते। वह अभी वहीं थे कि सर्जेवो का हत्या-काण्ड हो गया।

वह ३१ जुलाई को लण्डन लौट आए और वातावरण को आगामी महान् संकट के लक्षणों से पूर्ण पाया। जब तक ज्ञात न हो जाए कि क्या होने वाला है, यात्री एजेन्सियां योरुप जाने का परमर्श कभी न दें। अगले दिन आस्ट्रिया तथा जर्मनी के युद्ध का श्रीगणेश हो गया।

अब तो एक ही प्रश्न था कि इंग्लैंड भी युद्ध में सम्मिलित होगा अथवा नहीं। मतभेद प्रतीत होता था, परन्तु ३ अगस्त को ब्रिटिश सरकार ने फ्रान्स का पक्ष लेने के निश्चय की घोषणा कर दी।

इस निश्चय ने इंग्लैंड में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों में भारी दुविधा पैदा कर दी। लाजपतराय लिखते हैं कि यहां के रहनेवाले निज देशवासियों के रवैये को देखकर मुझे तो अपने जीवन में प्रथम बार ज्ञात हुआ कि किस प्रकार विदेशी शासन शासितों के वीरोचित गुणों का भी सत्यानाश कर देता है। मैं अपने चारों ओर ढोंग, पाखण्ड तथा कायरता का सजीव चित्र देखता था। मैं बताता हूं मेरा क्या अभिप्राय है।

"युद्ध की घोषणा से भारतीय मन पर जो प्रथम प्रभाव पड़ा वह ठोस प्रसन्नता तथा आनन्द का है। जहां कहीं आपको भारतीय मिलते, वह आपको इंग्लैंड की कठिनाइयों पर खिलखिला कर हँसते नजर आते। वह खुश थे कि अन्त में उनको मौका मिल गया। अब अंग्रेज़ उन्हें मनाने पर बाध्य होंगे। अंतरंग सभा के निश्चय के २४ घंटे के अन्दर मैंने कई भारतीयों से क्लब में भेट की जो युद्ध के विषय में

इस प्रकार बातें कर रहे थे मानों वह आनन्द का अवसर हो। उनमें हिन्दू तथा मुसलमान उच्च पदाधिकारी लोग भी थे। उनकी इस बेहूदा प्रसन्नता पर बिगड़ कर मि० जिन्ना ने उन्हें झिड़कते हुए कहा कि ज़रा क्लब के अंग्रेज सदस्यों की उदासी तथा चिन्ता का तो ध्यान कीजिए। उसके २४ घण्टे के अन्दर सारी स्थिति बदल गयी। सभी भारतीय राजभक्ति तथा साम्राज्य के प्रति भक्ति तथा सद्भावना प्रदर्शन की दौड़ में एक दूसरे से बाजी मार ले जाने तथा औरों का नेतृत्व करने की कोशिश कर रहे थे। कांग्रेस प्रतिनिधियों में भी मतभेद पैदा हो गया।"

"एक दिन मुझे इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के कमरों में जाने का अवसर मिला और वहां मुझे कांग्रेस प्रतिनिधि मण्डल के दो साथी मिले। वे कांग्रेस की ओर से राजभक्ति का वक्तव्य प्रकाशित करने की चर्चा कर रहे थे। वे उच्च ब्रिटिश नीतिज्ञों से भी मिल चुके थे और उन्होंने परामर्श दिया था कि यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए। उन्हें जो चिन्ता खाए जा रही थी वह थी मेरे उनमें सम्मिलित नहीं होने का भय। मुझे देखते ही उन्होंने बात चला दी। वह उसी समय तथा वहीं वक्तव्य जारी कराना चाहते थे, क्योंकि हम तीनों का बहुमत था, अतः समझा जाता था कि अन्य सदस्य स्वेच्छा से हस्ताक्षर कर ही देंगे। परन्तु मैं तो उनके लिए टेढ़ी खीर सिद्ध हुआ। मैंने उनके प्रस्ताव पर कई आपत्तियां उठायीं।

१. एक प्रश्न पर विचारार्थ प्रतिनिधि मण्डल की कोई नियम पूर्वक मीटिंग नहीं बुलायी गयी।

२. डेलीगेशन का कार्य समाप्त हो चुका है। बिल की अस्वीकृति के पश्चात् डेलीगेशन तोड़ा जा चुका है।

३. भारतवर्ष के नेताओं ने इस बारे में अभी अपना कोई मत प्रकट नहीं किया है और न हमें कोई निर्देश भेजे हैं।

मेरे सहकारी मेरे इस विरोध पर बहुत क्रुद्ध हुए। एक ने तो मुझे गालियां देना आरम्भ कर दिया और मेरी और उसकी तू तू मैं मैं हो गयो। अन्त में पता लगा कि एक अन्य डेलीगेट क्लब में उपस्थित हैं और उसे बुलाया जा सकता है। (यह मि० एम० ए० जिन्ना थे) वह बुलाए गए और वह मुझ से सहमत थे। बात स्थगित कर दी गयी। फैसला यह हुआ कि डैलीगेटों की नियमित सभा अगले दिन प्रातः बुलायी जावे और पांचवें सदस्य को जो अनुपस्थित थे, सूचना दी जावे।

अगले दिन की नियमित सभा में बहुमत से निश्चय हुआ कि अभी मामले में शीघ्रता की जरूरत नहीं और हमें भारत से समाचारों की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इतने में अन्य भारतीय सज्जनों ने लण्डन में उपस्थित प्रमुख हिन्दुस्तानियों के

हस्ताक्षरों से एक घोषणा निकालने का आन्दोलन शुरू कर दिया। सर एम० भावनगरी तथा पंडित भगवान दीन दुबे इस आन्दोलन के मुख्य संचालक थे। इंडियन नेशनल कांग्रेस के पराजित डैलीगेट अपनी अपील सर विलियम वैडरवर्न के पास ले गए, जो उस समय मेरेडिथ में थे और उनसे अपील बनवा कर ले आए।

"इस वक्तव्य का समाचार मुझे "टाइम्ज" द्वारा प्राप्त हुआ जिसमें वह वक्तव्य एक नोट के साथ कि सभी प्रतिनिधियों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिए हैं, जिनमें मैं भी सम्मिलित था, प्रकाशित हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने मेरे हस्ताक्षर भी बना दिए क्योंकि उसका विश्वास था कि सर वैडरवर्न की तैयार की हुई अपील पर मेरे हस्ताक्षर अवश्य होंगे। देश के तथा मेरे निजी हितार्थ उस वक्तव्य पर मेरे हस्ताक्षर आवश्यक समझे गए। ७ अगस्त को मुझे पंडित भगवान दीन दुबे का निम्न तार मिला:—

वयोवृद्ध भारतीयों (जिनमें प्रतिनिधि भी सम्मिलित हैं) ने लार्ड क्रीव को राजभक्ति का विश्वास दिलाने वाला पत्र लिख दिया है। यदि आप भी उस पर हस्ताक्षर करना चाहते हैं तो शीघ्र पहुंच जाइए।"

"मैं वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने के लिए पंडित दुबे के कमरे में नहीं गया, परन्तु मैंने एक दो दिन पीछे नेशनल लिबरल क्लब में हस्ताक्षर कर दिए। शायद उस पर मेरे हस्ताक्षर अन्तिम थे। मैं भी साम्राज्य के हितार्थ लड़े जाने वाले युद्ध के साथ पूर्ण सहयोग की नीति के साथ बँध गया। भारत से जाने वाली खबरें भी निराशापूर्ण थीं। साम्राज्य के प्रति राजभक्ति तथा विश्वास की घोषणा लगभग सभी राष्ट्रीय नेताओं द्वारा की गयी। वायसराय की लेजिस्लेटिव कौंसिल में एकमत से एक प्रस्ताव पास किया गया कि युद्ध लड़नेवाली भारतीय सेना का सारा व्यय भारतीय कोष पर पड़ेगा। ब्रिटिश जनता, पार्लियामेंट तथा सारे पत्र स्वभावतः भारतवर्ष तथा भारतीय राजभक्ति की खबरों से पूर्ण थे। १० सितम्बर को "टाइम्ज" ने सर वेलेण्टाइन चिरोल का एक पत्र प्रकाशित किया कि युद्ध ने सिद्ध कर दिया है कि शिक्षित नेताओं का भारतीय जन साधारण तथा राजाओं पर कुछ भी वास्तविक प्रभाव नहीं है। और वह स्वयं भी नहीं चाहते कि ब्रिटिश राज्य का अन्त हो। उसी अंक में बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु के हस्ताक्षरों से एक पत्र भी प्रकाशित हुआ।

समस्त इंगलैण्ड में प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गयी, और भारतवासियों की इस पेशकश को स्वेच्छापूर्ण, सार्वदेशिक, उत्साहपूर्ण इत्यादि शब्दों को नाम दिया गया। खुले रूप में यह युक्ति भी दी गयी कि यह सब कुछ ब्रिटिश राज्य की न्यायपरायणता के कारण हुआ है।'

बम्बई में सर फिरोजशाह मेहता के एक भाषण को अंग्रेजी पत्रों ने खूब जोर शोर से उद्धृत किया।

"इन सब बातों से हम लोगों की परेशानी बढ़ रही थी, क्योंकि हम तो सदा यह प्रचार करते रहते थे कि भारत में अंग्रेजी राज्य, अस्वाभाविक तथा अन्यायपूर्ण है और लूट-खसोट की नीति द्वारा आर्थिक रूप से भारत का बुरी तरह शोषण किया जा रहा है। अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध हमारे भाषणों तथा वक्तव्यों के उत्तर के रूप में भारतवासियों का यह राजभक्तिपूर्ण प्रदर्शन हमारे मुंह पर थप्पड़ है। इस परिस्थिति में मैंने "न्यू स्टेट्समैन" के लिए "भारत तथा युद्ध" विषय पर वैबस दम्पती से एक लेख लिखने की आज्ञा मांगी। स्वभावतः प्रकाशन से पूर्व वह लेख को देखना चाहते थे। जब लेख सम्पादक के पास पहुँचा तो उसने प्रकाशित करने से इन्कार कर दिया, क्योंकि उसमें इंगलैण्ड के प्रति शत्रुता के भाव पाए जाते थे।

दूसरी बार, वैबस दम्पती की सिफारिश से सम्पादक मान गया। यह लेख उनके नाम पर नहीं, वरन् "एक जानकार" की ओर से प्रकाशित हुआ।

सर विलियम वैडरबर्न को ज्ञात नहीं था कि लेखक कौन है, परन्तु तत्काल ही "एक जानकार" के सुझाव के अनुमोदन में उसने एक लम्बा चौड़ा पत्र भेजा। इसके अतिरिक्त उसने लाजपतराय को लिखा—

"न्यू स्टेट्समैन में" "भारत तथा युद्ध" पर एक उत्तम लेख को पढ़कर (क्या तुम जानते हो वह किसने लिखा ?) मैंने निश्चय किया कि इसी विषय पर सम्पादक के नाम एक पत्र ही उचित होगा। कृपया पत्र का अगला अंक पढ़ें जिसमें वह छपेगा।

जब सर विलियम को ज्ञात हुआ कि "एक जानकार" लाजपतराय के अतिरिक्त और कोई, नहीं, तो उसने उन्हें लिखा :

"जो बातें उस दिन आपने मुझे बतलायी थीं, मैं उन पर विचार करता रहा हूँ। यह उचित होगा कि वह बातें ब्रिटिश जनता के सामने रक्खी जायँ।

"क्योंकि आपको सन्देह था कि आपके अपने नाम से विचार प्रकाशित करना उचित होगा वा नहीं; मैं सोचता हूँ कि मैं भी वैस्टमिनिस्टर अथवा न्यू स्टेट्समैन (जो आपको पसन्द हो) आपके विचार प्रकाशित कराऊँ कि ये ब्रिटिश सरकार के एक हितैषी जानकार भारतीय मित्र के विचार हैं। यदि आपको यह योजना पसन्द आए तो कृपया मुझे उस पत्र की एक प्रतिलिपि भेज दें, जो आपने "वैस्ट मिनिस्टर" के नाम लिखा था।"

परन्तु लाजपतराय ने लिखा :

"भारतवर्ष की राजभक्ति के वास्तविक महत्व पर अंग्रेजी पत्रों में जो कुछ अन्य प्रकाशन हुआ वह आक्सफोर्ड के एक भारतवासी का गुप्त पत्र है जो १ अक्तूबर के "न्यूज" पत्र में छपा।

"जब राजभक्त भारतीय पत्रों में युद्ध ऋण तथा युद्ध चन्दों के संग्रह के विषय में शिकायतें होने लगीं, तब मैंने न्यू स्टेट्समैन में (इस बार अपने हस्ताक्षर से) "भारतवर्ष पर युद्ध के आर्थिक प्रभाव" पर एक लेख लिखा जिसे कई अंग्रेजों ने "बागियाना लेख" कहा।

"अब १४ वर्षों के अनन्तर, उन दिनों को याद करते हुए, मेरा विचार है कि १९१४ के युद्ध में भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का आचरण सर्वथा अनुचित तथा देशभक्ति रहित था। मैं कदापि यह मानने को तैयार नहीं कि वे अथवा उनके देशवासी इंग्लैण्ड से प्रेम रखते थे और उसकी रक्षा के लिए उत्सुक थे। मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि राजभक्ति तथा विश्वास की अधिकांश घोषणाएँ निरा पाखण्ड तथा ढोंग थे। वह ऐसा करने में विवश थे। वह किसी अन्य नीति के लिए उद्यत न थे और कइयों का यह विचार था कि भारतवासियों के लिए युद्ध तथा युद्ध पद्धति का कुछ अनुभव बुरा न होगा। सच्ची बात यह है कि केवल दो व्यक्ति जिन्होंने भारत के धन तथा जन द्वारा युद्ध में सहायता देने के विरुद्ध अपनी निर्बल आवाज उठायी थी, स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक तथा पंडित मदनमोहन मालवीय थे। सार्वजनिक नेताओं के लिए करोड़ों मनुष्यों तथा करोड़ों रुपयों का उदारता-पूर्वक दान दे देना और किसी प्रकार की शर्त के बिना दे देना सहज है, परन्तु उससे केवल राजनैतिक अयोग्यता ही सिद्ध हुई।

अध्याय बयालीसवां

कांग्रेस का मद्रास अधिवेशन : कांग्रेस का वास्तविक रूप क्या हो ?

जब अप्रैल में लाजपतराय भारत से बिदा हुए थे, तब उस समय उनका नाम इंडियन नेशनल कांग्रेस के सम्भाव्य प्रधान के रूप में लिया जा रहा था। जब उन्होंने कांग्रेस मिशन पर इंग्लैण्ड जाना स्वीकार किया था तब शायद उनके मन में ये ही विचार आ रहे थे। उनके भारत लौटने में काफी विलम्ब हो गया। क्या वह समय पर भारत पहुंच कर मदरास अधिवेशन में प्रधान बन सकेंगे ?

परन्तु प्रथम सवाल तो यह था कि क्या उन्हें प्रधान पद दिया भी जायगा ? जब तक यह सचमुच चुन न लिए जायं, उन्हें उसका निश्चय नहीं हो सकता था। जब वह बम्बई से चुपचाप चले गए थे, तब उनके पीछे कई घटनाएं घटी थीं। सबसे बड़ी बात थी एक युद्ध—महायुद्ध जिसने बड़ी बड़ी आशाओं पर पानी फेर दिया था। जो लोग साधारण परिस्थितियों में उनकी प्रधानता को सहन कर लेते, वही युद्ध काल में उनके चुनाव पर बिगड़ उठते, क्योंकि कांग्रेस उन दिनों माडरेटों की मुट्ठी में थी।

भारत से समाचार आए कि ९ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों में से ६ ने उनके पक्ष में वोट दिए हैं। साधारणतः यह समझा जाता है कि स्वागत समिति प्रान्तीय-संस्थाओं के बहुमत के निश्चय पर स्वीकृति की मुहर लगा देती है। कांग्रेसी मामलों पर जानकारी रखनेवाले, इलाहाबाद के "लीडर" ने विश्वस्त रूप से यही भविष्यवाणी की थी। यद्यपि उनको गड़बड़ी की आशंका थी, परन्तु इस बात की उतनी ही सम्भावना भी थी, कि ७ वर्ष पूर्व जो प्रधान पद उन्हें तिलक तथा अन्य बहुत से लोग देना चाहते थे, वह उनको पेश किया जाय। उस समय, वह काफी परेशान हुए थे। क्या अब परिस्थिति उससे भिन्न होगी ? वह सोचते थे और उनके संदेह बढ़ते जाते थे। अपनी मानसिक तुला में वह पक्ष तथा विपक्ष की युक्तियों तथा तर्क का सन्तुलन करते थे। पांच कारण वह एक पलड़े में धरते थे—(१) यह देश का सर्वोच्च प्रतिष्ठापद है जिससे देश के राजनैतिक इतिहास तथा ख्याति मन्दिर में मनुष्य को निश्चित स्थान प्राप्त हो जाता है। (२) प्रधान-

पद से घोषित विचारों का प्रसार संसार के अन्य देशों में हो सकेगा। (३) प्रधान के रूप में मैं अपने विचारों के अनुसार राष्ट्रीय संस्थाओं का संचालन कर सकूंगा। (४) कांग्रेस की कार्यवाही में एक ऐसी भावना डाल सकूंगा कि वह उसकी स्थायी विशेषता बन जायगी। (५) इन सबसे बढ़कर इस प्रधानता द्वारा तिलक दल को कांग्रेस में पुनः सम्मिलित होने को प्रेरित करने का मुझे अवसर प्राप्त होगा और एक प्रकार से राष्ट्रीय दल के दोनों पक्षों को एक कर सकूंगा।

इन पांच बातों के विपक्ष में वह तीन बातें रखते थे। उनकी मानसिक विकलता का पूर्ण चित्र उनके अपने शब्दों में एक लम्बे चौड़े उद्धरण से मिलता है जो कांग्रेस के मुख्य दल-माडरेटों के सिद्धान्तों तथा नीति पर पूर्ण प्रकाश डालता है।

अब मुझे प्रधान पद क्यों स्वीकार नहीं करना चाहिए:—

(क) कांग्रेस के अधिकांश नेताओं के साथ मेरे मौलिक मतभेद हैं—सिद्धान्तों पर तथा कांग्रेस संचालन पद्धति पर। शायद मदरासी कांग्रेसियों का विचार है कि मैंने अपना राजनैतिक मत बदल लिया है और मैं कांग्रेस की संचालन पद्धति से पूर्णतः सन्तुष्ट हो गया हूँ, परन्तु यह बात सत्य नहीं है। मेरे राजनैतिक विचार लगभग वे ही हैं जो मेरे निर्वासन से पूर्व थे। अब भी मेरा विचार है कि कांग्रेस को जनता के राजनैतिक शिक्षणार्थ चलाया जाना चाहिए, न कि सरकार से राजनैतिक रियायतें प्राप्त करने के लिए। यह रियायतें, कांग्रेस प्रचार तथा आन्दोलन के फलस्वरूप भले ही प्राप्त हो जायं, परन्तु इन्हें कांग्रेस का तात्कालिक उद्देश्य कदापि न बनाया जाय। एक समय था जब कांग्रेसी नेता साहस का प्रचार करते, जनता के सामने उच्च आदर्श रखते, तथा उनकी प्राप्ति के लिए आत्मोत्सर्ग तथा त्याग की प्रेरणा देते थे। यही वे दिन थे जब कांग्रेस ने "एक वृद्ध की आशा" तथा "पूर्व में एक नक्षत्र" आदि ट्रैक्ट प्रकाशित किए। यही वे दिन थे जब कांग्रेस शस्त्र कानून की मंसूखी तथा भारतियों के सेना में भरती होने के अधिकार पर जोर देती थी। उन दिनों कांग्रेस के प्रचार से अपूर्व उत्साह पैदा होता था। क्योंकि कांग्रेस मंच से निर्भिकतापूर्ण घोषणाएं हुआ करती थीं।........। आजकल कांग्रेस के प्रचार पर दो बातों का प्रभाव रहता है—सरकार का भय तथा अल्पसंख्यक जातियों का भय। इन दोनों ने राष्ट्रीय शिक्षण संस्था के रूप में कांग्रेस का महत्व बहुत कुछ घटा दिया है। सच्चाई, उच्च सिद्धान्तों तथा शुद्ध राजनीति की भाषा का स्थान अर्द्ध सत्य, कूटनीतिज्ञता, विवशता तथा गिड़गिड़ाने के शब्दों ने ले लिया। इस समय तो कांग्रेस के सामने एक ही ध्येय रहता है कि धारा सभाओं के कितने स्थानों पर अधिकार जमाने में सफलता हुई है अथवा

धनिक वर्ग और उच्च मध्यम वर्ग की सन्तानों के लिए नौकरशाही से कितने उच्च पद प्राप्त किए जा सके हैं। कांग्रेस के अधिकांश नेता धारासभाओं के सदस्य बनने में सफल हो जाते हैं, और कुछ ने एक्जीक्यूटिव कौंसिल की मेम्बरियां भी प्राप्त कर ली हैं। अधिकारियों के साथ मैत्री बनाए रखने की अभिलाषा ने निस्वार्थी नेताओं के भाषणों तथा विचारों पर बुरा प्रभाव डाला है। कांग्रेस-मंच पर दिए जाने वाले भाषणों की अपेक्षा कौंसिल भवन में दी जाने वाली वक्तृताओं की तैयारी पर कहीं अधिक समय तथा ध्यान दिया जाता है। दोनों की तुलना करने से आकाश-पाताल का अन्तर दिखलायी पड़ता है। कांग्रेस मंच पर भी बोलते समय फूंक फूंक कर पग धरा जाता है, फलस्वरूप उन भाषणों का राजनैतिक एजीटेशन का महत्व जाता रहता है। १९०७ से नवीन दमनकारी तथा बन्धनात्मक कानूनों ने जनता के आतंक में वृद्धि कर दी है। जिन सज्जनों ने कौंसिल भवन में मुद्रणालय कानून के पास कराने के पक्ष में वोट दिये हैं, उनमे हम यह आशा कैसे कर सकते हैं कि वह कांग्रेस मंच से उसकी मंसूखी का आन्दोलन करेंगे ? यदि कांग्रेस का केवल यही काम रह गया है कि जो कुछ नेतागण कौंसिल भवन में करें, तथा कहें उसी की हां में हा मिलाएं तो मेरी सम्मति में "पायनियर" गलती पर नहीं है। जब वह कहता है कि कांग्रेस का अस्तित्व व्यर्थ है। कांग्रेस की अपेक्षा मुस्लिम लीग की घोषणाएँ कहीं अधिक साहसपूर्ण होती हैं, क्योंकि अभी उसे निष्क्रियता का रोग नहीं लगा है। मेरे विचार में कांग्रेस का नेतृत्व उन लोगों के हाथ में होना चाहिए, जिनका सरकार से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है। कांग्रेस के प्रधान वे व्यक्ति होने चाहिएं जिन्हें धारा सभाओं अथवा एक्जीक्यूटिव कौंसिल की सदस्यता का कोई लोभ न हो। उसके मंत्री भी उसी श्रेणी के लोग होने चाहिएं। मैं जानता हूँ कि मद्रास के तथा भारत के अन्य भागों के कांग्रेसी नेता इन बातों में मुझ से सहमत नहीं हैं। इस परिस्थिति में मेरे लिए प्रधान पद स्वीकार करना अनुचित तथा गलत होगा।

(ख) मैंने भारतीय जनता के निःशस्त्र होने के अपमान को इतने जोर से कभी अनुभव नही किया था, जितना कि जर्मनी तथा इंग्लैण्ड के वर्तमान युद्ध के समय में। जर्मन तथा आस्ट्रियन एक ओर तथा अंग्रेज, फ्रेंच तथा बेलजियन लोग अपनी अपनी स्वतंत्रता के लिए एक दूसरे से लड़ रहे हैं। शस्त्र उठाने तथा चलाने की शक्ति रखने वाले प्रत्येक पुरुष को रण क्षेत्र में जाने का अधिकार प्राप्त है और देशानुराग की भावना से प्रेरित होकर वह अपनी स्वाधीनता तथा मान रक्षा के लिए मृत्यु को आलिंगन करने के लिए उद्यत हैं। यह सत्य है कि ब्रिटिश राज-नीतिज्ञों ने हमारे सैनिकों को भी ब्रिटिश सैनिकों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा

कर लड़ने का मान प्रदान किया है, परन्तु आखिर यह सैनिक भाड़े के टट्टू नहीं तो और क्या हैं ? इंग्लैण्ड में सभी पुरुष नहीं-नहीं, उनकी स्त्रियों की भी भारी संख्या शस्त्रों का प्रयोग जानती हैं। वे लोग महीना भर ड्रिल परेड से समरभूमि में खड़े होने के योग्य बन जाते हैं । हजारों और लाखों व्यक्तियों ने स्वेच्छा से सेना में अपना नाम दिया है और भर्ती होने के ३ वा ४ सप्ताह के अन्दर युद्ध में भेज दिए गए हैं । परन्तु हमारी क्या अवस्था है ? यदि स्वयंसेवक भर्ती होने की हमारी पेशकश को सरकार स्वीकार भी कर ले, तो भी हम उनके मार्ग में रोड़े अटकाने वाले सिद्ध होते। कल्पना करो कि जर्मन सेना आज भारत में प्रवेश करती है, हमारी स्थिति क्या होगी ? सर वैलेण्टाइन चिरौल ने हमें टाइम्ज में बतलाया है कि हमारी राजभक्ति को "आंतरिक अराजकता" के भय से प्रेरणा मिली है। अन्य लोग कहते हैं कि हम जर्मनों से भय-भीत हो गए हैं और अपने स्वार्थ के कारण राजभक्ति का प्रदर्शन कर रहे हैं। वह ठीक कहते हों वा गलत, परन्तु इस बात से किसी को, इन्कार नहीं हो सकता कि शस्त्रों के कानून ने हमें नितान्त विवश बना रक्खा है। हमारे देश के उच्च वंशीय तथा उच्च व्यवसायों में लगे हुए वयःप्राप्त समर्थ पुरुषों की अपेक्षा इंग्लैण्ड ब्वाय स्काऊटों की स्थिति कहीं अधिक प्रतिष्टा-पूर्ण तथा उच्चतर है। अन्य लोगों को निःशस्त्र राजभक्ति, विवशता की राजभक्ति अथवा लाचारी की राज-भक्ति का अभिमान भले ही हो, परन्तु मुझे कोई अभिमान नही है। इस बात पर मेरी अनुभूतियाँ इतनी तीव्र हैं कि उग्र भाषा का प्रयोग किए बिना मेरे लिए अध्यक्ष के भाषण की रचना सम्भव नहीं। मैं कह नहीं सकता कि मदरास के प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को मेरे विचार (अथवा मेरी भाषा) पसन्द आयेगी भी अथवा नहीं। उनको परेशान करने की मेरी इच्छा नहीं है। मैं उनके आतिथ्य का दुरुपयोग नहीं करना चाहता। यह बात मेरी प्रकृति तथा आत्मा के विरुद्ध है कि मैं किसी पर, विशेषतः उन लोगों पर, जो मुझे मान तथा प्रतिष्ठा के पद पर आमंत्रित कर रहे हैं, अपने विचार थोप दूं। उनसे सहस्त्रों मील की दूरी पर बैठा हुआ, मैं उनसे परामर्श भी तो नहीं ले सकता।

(ग) एक अन्य कारण भी है जिसके आधार पर मुझे उस प्रतिष्ठित पद को स्वीकार नहीं करना चाहिए। वर्ष भर में भारतवर्ष के अन्दर तथा भारत से बाहर कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुई हैं जिनका बलपूर्वक प्रतिवाद करना चाहिए और जिनका साहसपूर्ण मुकाबला करना चाहिए। मेरी शिक्षा दीक्षा कुटिल नीति के वातावरण में नहीं हुई और मैं इस सिद्धान्त का अनुमोदन नहीं कर सकता कि मनुष्य को सदैव—विशेषतः राजनीति के क्षेत्र में ईमानदार तथा सत्यवादी नहीं

रहना चाहिए। फिर भी तीव्र भाषा के प्रयोग का अथवा अपने राजनैतिक अधिकारों के विषय में अत्यन्त उग्र रवैया अख्तियार करने का यह अवसर नहीं है जिसे किसी रूप में भी सरकार का विरोध समझे जाने की सम्भावना हो। यदि यही बात है, तो अध्यक्ष के भाषण में अथवा मंच पर से विवाद के विषय—यथा कौंसिल की नियमावली, न्याय तथा शासन विभागों के पृथक्करण आदि विषयों पर—साधारण सिद्धान्तों की मुहारनी रटना बाकी रह जाता है। मुझे यह बिलकुल पसन्द नहीं और कांग्रेस का प्रधान पद स्वीकार कर लेने पर मेरी स्थिति बड़ी गलत तथा हास्यास्पद हो जायगी।"

युद्ध से उनको और भी कुछ कड़वे अनुभव प्राप्त हुए और उन्हें निज मातृभूमि की अपमानजनक स्थिति का बुरी तरह ज्ञान हुआ। आप यह भी पूरी तरह समझ गए कि युद्ध के कारण, मौलिक बातों के विषय में स्पष्टवादिता को न तो कांग्रेसी नेता पसन्द करेंगे और न ही अधिकारीगण सहन करेंगे। अतः एक शासित (दासता पाशबद्ध) देश की शासनपद्धति के वैधानिक प्रबन्धों के बारे में, अध्यक्ष के भाषण में बाल की खाल निकालना एक पोच कार्य तथा व्यर्थ की शिर-पीड़ा होगी।"

गहन तथा दीर्घ सन्तुलन के पश्चात् लाजपतराय इस परिणाम पर पहुँचे कि यदि अवसर मिले, तो भी प्रधान पद को स्वीकार करने से बलपूर्वक इन्कार कर देना चाहिए।

उनकी दुबिधा तो समाप्त हो चुकी थी, परन्तु स्पष्ट शब्दों में "नहीं, धन्यवाद" कहना भी परेशानी से खाली नहीं था। सौभाग्य से युद्ध-कालीन अधिवेशन के लिए लाजपतराय को प्रधान बनाना माडरेटों के लिए उससे भी अधिक परेशानी का कारण होता। सो एक दिन समाचार आया जिससे लाजपतराय को आश्चर्य की अपेक्षा शान्ति हुई—कि माडरेटों ने हस्तकौशल से काम लेकर एक नितान्त शुद्ध तथा बावन तोले पाव रत्ती माडरेट नेता भूपेन्द्रनाथ बसु को प्रधान चुन लिया है।

इलाहाबाद स्थित उनके संवाददाता ने जो उन्हें प्रान्तीय वोटिंग आदि के बारे में सूचित करता रहा, अब उनके पर्दे के पीछे होने वाली घटनाओं के बारे में लिखा जिससे नयी और अप्रत्याशित बातों का पता चलता है :—

"मुझे खेद है कि मैंने आपको कांग्रेस प्रधान पद के वोटों के बारे में सूचित किया। जो कुछ भी हुआ था वह गुप्त रूप से हुआ था। कमेटियों से दोबारा भी परामर्श लिया गया (जो निन्तात अवैधानिक कार्यवाही थी) और उन पर पूरा दबाव डाला गया कि वह आपके पक्ष में वोट न दें। मि० वाचा, मि० मधोलकर, नवाब सैयद मुहम्मद, मि० सुब्बाराव, मि० नटेसन तथा मि० हक उन लोगों में

से थे जिन्होंने दबाव डाला परन्तु मि० जी सुब्रह्मण्य ऐयर ने "हिन्दू" के नाम पत्र लिखकर भण्डाफोड़ कर दिया कि सरकार तथा मुसलमानों में अप्रियता के कारण आपको अध्यक्ष बनाना नीति विरुद्ध होगा। मदरास तथा बिहार ने अपने वोट उलट दिए और स्वागत कमेटी ने भूपेन्द्र बाबू के चुनाव की घोषणा कर दी। मुझे अचम्भा होगा यदि वह (भूपेन्द्र बाबू) निमंत्रण को अस्वीकार कर दें। आपको मेरे विचार पत्र द्वारा ज्ञात हो चुके होंगे। मैं भूपेन्द्र बाबू को विधि पूर्वक चुना हुआ प्रधान नहीं मानता, परन्तु फिर भी प्रधान वही बनेंगे। मैं कांग्रेस अधिवेशन में नहीं जाऊंगा। मुझे विश्वास है आप सकुशल हैं। आप भारत कब लौट रहे हैं?

१९०७ में और उसी प्रकार १९१४ में माडरेट नेताओं के षड्यंत्रों द्वारा, वह कांग्रेस के प्रधान नहीं बन सके। विचित्र बात यह है कि दोनों अवसरों पर वह स्वयं हट गए और शायद खुश थे (कम से कम १९१४ में) कि एक परेशानी से मुक्ति मिली।

अध्याय तैंतालीसवां

गांधीजी युद्धकी सहायतामें

मोहनदास करमचन्द गांधी, जो दक्षिणी अफ्रीका में अपने कार्य के कारण ख्याति प्राप्त कर चुके थे, परन्तु शायद अभी भारतीय राजनीति में उनका प्रथम श्रेणी के नेताओं में विकास होना था, उन दिनों इंगलैण्ड में थे। वह तत्काल ही भारतवासियों का स्वयंसेवकदल संगठित करने में लग गए। अपने दल के लिए कुछ नवयुवकों को एकत्रित करने के अनन्तर, वह उन प्रथम श्रेणी के नेताओं का सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न में जुट गए, जो उन दिनों किसी न किसी काम से इंग्लैण्ड आए हुए थे। एम० के गान्धी के हस्ताक्षरों से एक स्वयंसेवक द्वारा एक निमंत्रण लाजपतराय को भी पहुंचा।

६० टाल्बट रोड
२१ अगस्त १९१४

प्रिय लाला लाजपतराय,

वर्तमान आपत्तिकाल में जिन भारतीय स्वयंसेवकों ने अपनी सेवाएं सरकार को पेश की हैं, कल उनकी एक सभा में मुझे अधिकार दिया गया कि आपको तथा अपने प्रतिष्ठित देशवासियों से कमेटी के अवैतनिक सदस्य बनने की प्रार्थना करूं। वह कमेटी कल बनायी गयी। स्वयंसेवकों की कमेटी कार्यकारिणी कमेटी है। परन्तु अवैतनिक सदस्यों से अपना समय देने की आशा नहीं की जाती। उनकी सरपरस्ती से कमेटी की मान वृद्धि होगी। आशा है आप यह निमंत्रण स्वीकार करेंगे।

आपका स्नेहपात्र
एम० के० गान्धी

लाजपतराय ने तत्काल ही अपनी स्वीकृति दे दी। दूसरा पत्र २४ अगस्त को गान्धी जी के हाथ से लिखा हुआ था, जिसमें कमेटी के निमंत्रण की स्वीकृति के लिए "धन्यवाद" देते हुए उनको विश्वास दिलाया गया कि कमेटी की समस्त

कार्यवाही की उनको पूरी सूचना दी जाया करेगी। पत्र व्यवहार से निकट सम्पर्क स्थापित हो गया। दूसरे पत्र में गान्धी जी ने लिखा था, "आपके निमंत्रण के लिए भी धन्यवाद। हम दोनों बुधवार को ७ बजे सायं आपके पास पहुँच जायँगे। आपको सूचित कर दूं कि हम दोनों फलाहारी हैं। मैं यह इसलिए लिख रहा हूँ कि हमारे लिए आपको कष्ट न करना पड़े।"

स्वयंसेवक दल के बारे में गान्धी जी की योजना का समर्थन करते हुए, लालाजी ने एक सीमा नियत कर दी थी जिसके आगे बढ़ने को वह इच्छुक न थे। कई वर्ष पश्चात् इस घटना के बारे में उन्होंने लिखा—

"उन दिनों भारतवर्ष में किसी ईमानदार भारतीय देशभक्त के लिए कोई गुंजाइश न थी। कोई अपने विचारों को गुप्त न रखे और युद्ध के बारे में सरकार की समस्त बातों का समर्थन न करे। मैं किसी प्रकार भी जर्मनी के पक्ष में नहीं था अथवा युद्ध के दिनों में भारत में किसी प्रकार की क्रान्ति के प्रयत्नों के पक्ष में न था। परिस्थितियों से विवश होकर मुझे भी अंग्रेज सरकार के प्रति राजभक्ति की घोषणाओं में सम्मिलित होना पड़ा। मि० गान्धी कई प्रकार से ब्रिटिश सरकार की सहायतार्थ सहानुभूति प्राप्त करने तथा स्वयंसेवक भर्ती कराने में लगे हुए थे। उन्होंने युद्ध में घायल सैनिकों की मरहम पट्टी करने वाले दल को संगठित किया था और इस कार्य के लिए वह इंगलैण्ड में बसनेवाले भारतीय युवकों को भरती करने तथा इंग्लैण्ड गए हुए मुख्य भारतीय नेताओं का सहयोग प्राप्त करने में व्यस्त थे। मुझे तो उन्होंने उस दल का नेतृत्व भी प्रस्तुत किया, यदि मैं युद्ध भूमि को जाने को तैयार होता। इस बारे में मेरे अपने विचार भिन्न थे। मैं युद्ध में अंग्रेजों की सहायता के विरोध का आंदोलन चलाने के पक्ष में तो नहीं था। मैं तो उनकी युद्ध नीति का समर्थन करने को भी उद्यत था, यदि उससे हमारे युवकों को भी सेना में प्रतिष्ठित पदों की प्राप्ति शस्त्राशस्त्र के प्रयोग तथा युद्ध कला में निपुणता प्राप्त करने का अवसर मिल पाता। सरकार ने यह दोनों बातें अस्वीकार कर दी। सरकार ब्रिटिश विश्व विद्यालयों में से तो ग्रैजुएटों तथा अण्डर ग्रैजुएटों को सेना में अफसर भर्ती कर रही थी, परन्तु उसने हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को वही सुभीते प्रदान करने से साफ इन्कार कर दिया। घायलों की सेवा करने वाले स्वयंसेवकों का शिक्षण भी अंग्रेज अफसरों के अधीन होना तय हुआ। इस बारे में मैंने उपमंत्री से कई बार भेंट की और उनसे खूब बातचीत भी की, परन्तु उसका कुछ फल न निकला। इंडिया आफिस तथा ब्रिटिश युद्ध कार्यालय किसी प्रकार पिघलन में नहीं आते थे। भारतीय, चाहे वह यूनिवर्सिटियों के हों, चाहे अन्य, प्रतिष्ठित पद नहीं प्राप्त कर सकते थे। वह तो केवल हथियार के रूप में

बर्ते जा सकते थे। इस दशा में मैं बिना किसी शर्त के युद्ध में भर्ती होने को तैयार नहीं था, परन्तु मेरे देश के शिक्षित नेताओं का मत इससे भिन्न था। इस परिस्थिति में मेरे लिए यह विचारना आवश्यक हो गया कि यदि मैं भारत लौट जाऊं, तो मेरी क्या स्थिति होगी। यह स्पष्ट है कि यदि मेरा दृष्टिकोण व व्यवहार स्वतंत्र हुआ तो वह आपत्ति हीन न होगा। मेरे मौन रहने का भी उलटा अर्थ लिया जायगा, और मुझे कई प्रकार से सताये जाने की भी आशंका थी।"

सेवा दल की छोटी सी बात से भी लाजपतराय को ज्ञात हो गया कि युद्ध के बारे में उनकी अन्तरात्मा उन्हें राजभक्त दल में सम्मिलित होने नहीं देगी। कांग्रेस प्रतिनिधियों में से केवल मि० एम० ए० जिन्ना ही उनका समर्थन करते थे। आगामी घटनाओं से स्पष्ट हो गया कि भारतवर्ष के कांग्रेस नेताओं ने वसु तथा समर्थ की नीति का अवलम्बन किया है, न कि लाजपतराय तथा जिन्ना की नीति का।

भारतीय स्थिति तथा भारतीय नेताओं की विचार प्रणाली का विश्लेषण करते हुए लाजपतराय उन्हें चार भागों में विभाजित करते हैं:—

(१) वह लोग जो बिना किसी शर्त के इंगलैण्ड को सहायता देना चाहते थे।

(२) वह लोग जो भविष्य में ब्रिटिश साम्राज्य में भारत की स्थिति का स्पष्टीकरण करने की शर्त लगाते थे। स्व० बालगंगाधर तिलक इसी श्रेणी में थे।

(३) वह लोग जो चाहते थे कि भारत तटस्थ रहे।

(४) वह लोग जो जर्मनी के साथ सहानुभूति रखते हुए इस नीति का अनुकरण करते थे कि इंग्लैण्ड का संकट ही भारतवर्ष के लिए स्वर्णावसर है।"

आरम्भ से ही उनका रवैय्या बालगंगाधर तिलक की तरह रहा और युद्ध के अन्त तक आप उसी नीति पर डटे रहे, हां युद्ध की लगभग समाप्ति पर उनका झुकाव कुछ कुछ सहयोग की ओर हो गया। उनके लिए अंग्रेजों का पक्ष तथा जर्मनी का पक्ष—दोनों ही मार्ग समान रूप से भयावह थे। सचमुच यह उनकी कड़ी परीक्षा का काल था? अपने लिए ठीक नीति निर्धारित करना उनके लिए उतना कठिन नहीं था, जितना कि उस पर निर्भीकता से डटे रहना। इंग्लैण्ड के जनमत के प्रगतिशील पत्रों के लिए भी उनकी इस कार्य प्रणाली को ठीक ठीक समझना कठिन हो रहा था। आपने यह भी देख लिया कि उनके अपने प्रमुख देशवासी भी उन्हें ठीक तौर पर नहीं समझ रहे थे। अधिक काल इंग्लैण्ड में रहना उन्हें कष्टप्रद प्रतीत होने लगा।

इसका अर्थ निजी असुविधाएं न समझा जाय। उनके अंग्रेज मित्रों का व्यवहार पूर्ववत् प्रेमपूर्ण था। बनारस के बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने वहां एक किराये का मकान लेकर, अपना घर बसा लिया था और लाजपतराय को अपना अतिथि बना लिया था। वैब दम्पति का सौहार्द तथा मैत्री को तो वह सदैव हर्ष तथा कृतज्ञता से याद करते थे। आपने वहां आर्यसमाज पर एक पुस्तक लिखनी शुरु कर दी। उसकी समाप्ति पर सिडनीवेब ने उसे अपने प्रकाशकों द्वारा छपवा देने तथा स्वयं उसकी प्रस्तावना लिखने का वचन दिया था। परन्तु फिर भी वह अत्यन्त बेचैन थे। उन्हें इंग्लैण्ड के प्रति अपने देशवासियों की राजभक्ति के प्रदर्शन नितान्त असत्य तथा अधःपतनकारी प्रतीत होते थे। उस वातावरण में उनका दम घुटने लगता था। परन्तु उससे वह किस प्रकार बच सकते थे? क्या वह भारत को लौट चलें? उधर जाना निराशाजनक था। युद्ध के फूट पड़ने से योरुप का भ्रमण तथा सिडनी वेब और अन्य मित्रों के परिचय पत्र निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। इंग्लैण्ड में रहना संकटमय था, और हिन्दुस्तान लौटना तो कुएं से निकल कर खाई में गिरने वाला जैसा मामला था।

अन्त में एक मार्ग निकल ही आया। अपने मकान के भाड़े की अवधि समाप्त होने पर, बाबू शिवप्रसाद अमेरिका जाने का विचार कर रहे थे। आपको भी दूसरी बार अन्ध सागर के पार जाने का अवसर मिल गया। अपनी आर्यसमाज वाली पुस्तक छपवाने का प्रबन्ध करने की आपको चिन्ता थी। प्रकाशक मान गए कि पुस्तक के प्रूफ उनको वहीं पहुंचा दिए जायंगे। अतः आप ने अमेरिका जाने का निश्चय कर लिया।

अध्याय चौवालीसवां

अमेरिका की ओर

१४ नवम्बर, १९१४ को, जो जर्मन, यहूदी तथा अन्य विभिन्न अवांछित विदेशी लोग, जो युद्ध के छिड़ जाने के कारण इंग्लैण्ड छोड़ने को विवश हुए, उन सभी को लेकर लिवरपूल से "एस० एस-फिलेडेलफिया" नामक जहाज न्यूयार्क को चल पड़ा। जहाज के भारतीय यात्रियों में (जो स्वेच्छा से इंग्लैण्ड से जा रहे थे) लाजपतराय तथा बाबू शिवप्रसाद के अतिरिक्त प्रो० विनयकुमार सरकार तथा प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बोस तथा उनकी पत्नी थे। एक सप्ताह पश्चात् कुछ पंजाबी मित्रों ने न्यूयार्क बन्दरगाह पर उनका स्वागत किया। परन्तु वर्ण भेद की कुछ कठिनाइयों के अनन्तर ही लाजपतराय तथा शिवप्रसाद को न्यूयार्क के होटल में स्थान मिला।

वह दोनों महीना भर होटल में ठहरे, फिर तीन मास के लिए दौरे पर चल पड़े और बोस्टन, वाशिंगटन, अटलांटा, न्यू ओर्लियन्स, शिकागो, साल्ट लेक सिटी तथा लास एंजेल्स (कैलेफोर्निया) गए। आप जहां कहीं गए, आपने बड़े ध्यान से वहां की मुख्य समस्याओं—अमरीकन भट्ठी में विभिन्न योरुपियन जातियों का सम्मिश्रण, काले तथा गोरे का वर्ण भेद, विश्वविद्यालय तथा शिक्षा का संगठन, दान प्रणाली तथा दान वीरों की भारी भारी वारदातें आदि का अध्ययन किया। आपने "संयुक्त राज्य अमरीका पर एक हिन्दू के विचार" नामक ग्रन्थ में अपने वहां के अनुभव दिए हैं। अमेरिका में उनकी विशेष दिलचस्पी का कारण यह था कि उनकी दृष्टि में अमेरिका मानव जाति का एक अद्वितीय तथा विशाल कौतुकागार है, न कि वहां के गगनचुम्बी भवनों, विलासमय यात्रा साधनों, आधुनिक ढंग के होटलों, महान् कौतुकागारों, पुस्तकालयों तथा कला भवनों अथवा स्थापत्यकला के अद्भुत चमत्कारों के आधार पर उनको कोई विशेष अभिरुचि हुई। वह लिखते हैं मैंने वहां के लगभग सभी दर्शनीय स्थान देखे हैं, परन्तु "मानव समस्या" ही मेरे अध्ययन का मुख्य विषय रहा है। मेरा अधिकांश समय तथा ध्यान मनुष्य के व्यक्तिगत तथा समष्टि जीवन तथा उनके सुख तथा दुख की आधारभूत स्थितियों के अध्ययन में लगा है। अतः यह कोई अचम्भे की बात नहीं है कि मेरी प्रथम

पुस्तक में अमेरिका के विज्ञान तथा स्थापत्य कला सम्बन्धी महान् चमत्कारों—जहाजों, पुलों, भवनों, नहरों, पार्कों आदि का कोई वर्णन नहीं है। पाठक को मेरी पुस्तक में इस प्रकार की किसी बात की आशा नहीं करनी चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिका-मानव जाति की एक महान् प्रयोगशाला तथा कौतुकागार है। यह एक छोटा-सा जगत है जहां संसार भर की जातियों, लोगों, भाषाओं तथा आचार-विचार के प्रतिनिधियों तथा मानवता के सभी रूपों का दिग्दर्शन किया जा सकता है। एक अर्थ में—जनता की विभिन्नता तथा रचना में तो संसार को सभी महान् बन्दरगाह, विशेषतः लण्डन, पेरिस, बर्लिन, जेनेवा, कुस्तुनतुनिया, रोम, काहिरा, सिकन्दरिया, बम्बई तथा कलकत्ता कास्मोपलिटन (Cosmopaliton) हैं, परन्तु इस बारे में तो शिकागो बोस्टन तथा सान फ्रान्सिसको तक भी न्यूयार्क की समता नहीं कर सकते। क्या मेरे पाठकों को इस बात का ज्ञान है कि न्यूयार्क संसार में सब से बड़ा यहूदी नगर है और वहां की आबादी का दूसरे नम्बर पर अधिकांश इटालियनों का है। यहूदियों के प्रति ईसाइयों के संस्कारों की ऐतिहासिक झलक अमरीकनों में भी पायी जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में हबशी से उतर कर यहूदी ही सब से बड़ा घृणा पात्र है, फिर भी प्रत्येक वयः प्राप्त यहूदी को वोट देने तथा अमेरिका के किसी भी निवासी की तरह नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। यहूदी को इसका महत्व प्राप्त है और उसे इसका अभिमान है। कहा जाता है कि एक तिहाई न्यूयार्क के स्वामी यहूदी ही हैं और अमेरिका के सब से अधिक धनिक वर्ग की गणना यहूदियों में होती है। पुस्तक के किसी आगामी अध्याय में न्यूयार्क के यहूदियों ने मुझ पर जो कृपाएं की हैं, उनका वर्णन करूँगा।

पृथ्वी तल पर, न्यूयार्क ही रहने के लिए सर्वोत्तम स्थान है। न्यूयार्क के ५ म् एवेन्यू में तो धनिक वर्ग का निवासस्थान है, परन्तु ३ य एवेन्यू कंगाल तथा धनहीनों के लिए सुरक्षित है। मैं घण्टों ५ म् एवेन्यू की ४२ वीं गली के कोने पर खड़ा होकर संसार के धनाढ्यों तथा लक्ष्मी के वरद पुत्रों के दर्शन किया करता था और ३ य एवेन्यू की ३४ वी गली की मोड़ पर खड़ा होकर उन अभागे कंगालों को देखा करता जो धनोपार्जन तथा आजीविका की खोज में न्यूयार्क आए थे। चिरकाल तक तो न्यूयार्क अथवा अमेरिका ने किसी के लिए अपने द्वार बन्द नहीं किए और सभी जातियों और वर्णों का खुले दिल से स्वागत होता था। अमेरिका तथा उसके प्राकृतिक साधनों के विकास और धनोत्पादन के वैज्ञानिक उपायों के लिए उनके श्रम की आवश्यकता थी। उन दिनों अमेरिका को मानवता की (पिघलाने वाली) भट्टी समझा व पुकारा जाता था। लोग वहां आते थे और अमेरिका के जनतावाद के विराट स्वरूप में पचते जाते थे। उन्होंने अपने आपको तथा देश को धनी

बनाया। उनके श्रम तथा प्रयत्न के बिना, देश ऐसा समृद्ध तथा धनी नहीं हो सकता था जैसा कि वह आज है। जो लोग पहले वहां आए थे, उनके विचार के अनुसार संयुक्तराज्य अमेरिका का विशाल क्षेत्रफल, उनके पूर्वजों ने भूमि के आदिम स्वामियों की हत्या तथा निर्मूलता द्वारा प्राप्त किया है और उत्तराधिकार तथा आधुनिक सभ्यता के नियमों के अनुसार अमेरिका अब उन्हीं की एकमात्र सम्पत्ति है। अतः वह दूसरों को वहां आने तथा बसने से रोकते हैं। संसार की दो अत्यन्त प्रतिभाशाली योग्यतम तथा मेहनती जातियां—चीनी तथा हिन्दू संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रवेश नहीं कर सकतीं। अस्थायी निवास, व्यापार अथवा अध्ययन (वह भी बड़ी अपमानजनक शर्तों के साथ) के अतिरिक्त उनका प्रवेश वर्जित है। मजे की बात यह कि उक्त प्रकार के बन्धन तथा कानून श्रम जीवी दल की मनोवृत्ति की छाया मात्र है। चिरकाल तक अमेरिका संसार भर के कंगालों, दरिद्रों, धनहीनों तथा अभागों की स्वर्णभूमि बना हुआ था। आजीविका तथा व्यवसाय की खोज में उधर जानेवालों को मनोवांछित पदार्थ प्राप्त हो जाते थे। वह जितनी अधिक संख्या में वहां जाते थे, उतना अधिक काम तथा उतनी ही अधिक मजदूरी उनकी प्रतीक्षा में होती थी। शीघ्र ही उनको ज्ञात हो गया कि अमेरिका उनकी सम्पति है और यह उनका ईश्वरप्रदत्त अधिकार है कि वह शेष मनुष्य जाति—विशेषतः एशियावासियों के लिए—अमेरिका के द्वार बन्द कर सकें। संसार की यही प्रथा है। जिस ईश्वर को दयालु, कृपालु तथा न्यायप्रिय मान कर ईसाई, मुसलमान तथा हिन्दू पूजते हैं, उसका नियम यही है। मार्क्स द्वारा प्रचारित तथा लेनिन द्वारा अपनाए समाजवाद का यही फल और व्यावहारिक उपयोग है। परन्तु यह कोई नवीन नियम अथवा सिद्धान्त नहीं है। अतीत काल की सभी जातियां चिरकाल से यही करती चली आयी हैं, यद्यपि ठीक इसी रूप में नहीं। आधिपत्य ही ९।१० स्वामित्व है—यह उतना ही प्राचीन सिद्धान्त है जितना कि आदिम (प्रथम) पुरुष का जन्म।. . .अमेरिका अब निर्धनों की स्वर्ण भूमि नहीं रहा, परन्तु वह आज भी उन लोगों का देश है जिनका अधिकांश अतिथि सत्कार, दयालुता, उदारता तथा सहिष्णुता आदि सद्गुणों से युक्त है। वर्ण भेद की भावना दक्षिणी भागों में देशव्यापी है और उत्तर में भी उसके चिन्ह स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं। इस दोष को छोड़ कर अमेरिकन लोग साधारणतया विदेशियों के प्रति बड़े दयालु होते हैं और विपत्तिकाल में उनकी सहायतार्थ सदैव उद्यत रहते हैं। मैंने अमेरिका में ८ मास भ्रमण किया, मेरे साथ उनका व्यवहार सदैव स्नेह तथा उदारतापूर्ण रहा है और मैंने अपने ग्रन्थ की भूमिका में उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। जब मैं अपने अमेरिका के तीसरे भ्रमण का तथा १९१६ से

१९१९ तक वहां रहने का वर्णन करूँगा, तो मैं अमेरिका के कुछ मित्रों का उल्लेख करूँगा।"

अमेरिका में लाजपतराय ने विशेषतः दक्षिणी रियासतों में वर्ण भेद की समस्या तथा टस्केगी प्रयोग में उन्होंने दिलचस्पी ली। हबशी नेताओं में उन्होंने कुछ मित्र बनाए। खास कर डा० डु बाए० जिसे वह प्रयोग पसन्द नहीं था, प्रशान्त महासागर के तट पर वह भारतियों विशेषतया पंजाबी कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आए। बार बार उनसे यही प्रश्न पूछा जाता था कि कृपया युद्ध के प्रति अपना दृष्टिकोण बतलाइए। यह काफी सिरदर्द का कारण बन जाता था, परन्तु इसका वर्णन किसी आगामी अध्याय में किया जायगा ।

अध्याय पैतालीसवां

जापान की ओर

युद्ध को चलते एक वर्ष हो गया था और वह शीघ्र समाप्त होता दिखलायी नहीं पड़ता था। ऐसा ज्ञात होता था कि वह कई वर्ष तक चलेगा। युद्ध के अन्त तक वह कहाँ दिन व्यतीत करें ? ७ मास अमेरिका में रह कर वह किसी निश्चित फैसले पर नहीं पहुँच पाये कि स्वदेश को लौटा जाय अथवा निर्वासिन में ही (युद्ध) काल-यापन किया जाय। इंगलैण्ड में ७ मास रहकर आपने प्रशान्त महासागर को पार करने तथा जापान देखने का निश्चय कर लिया। अपने देश को छोड़कर, उन्होंने कोई एशियाई देश नहीं देखा था। ब्रह्मा भी अँग्रेजों के भारतीय साम्राज्य का एक अंश था, परन्तु उसके दर्शन करने का दावा वह नहीं कर सकते थे, यद्यपि उनको वहाँ शाही बन्दी के रूप में ले जाया गया था। परिवर्तन के लिए जापान जाने का विचार कुछ बुरा न था। यदि युद्धकाल निर्वासन में ही व्यतीत करना है तो अमेरिका की अपेक्षा जापान बुरा न रहेगा। उनके मित्र बाबू शिवप्रसाद गुप्त मई में समुद्र पार चले गए थे। दो मास पश्चात् लाजपतराय ने भी उनका अनुगमन किया।

३ जुलाई को सेनफ्रैन्सिसको में अमेरिका से वह बिदा हो गए। उस समय यह कहना कठिन था कि वह अन्तिम बिदाई थी अथवा फिर कभी अमेरिका के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा। दो सप्ताह तक आधुनिक ढंग के अग्निबोट पर आपने आनन्द उठाया। विशेषतः हवाई टापुओं के सुन्दर पेड़ों, झाड़ियों, मनोहर सामुद्रिक जन्तुओं तथा आकर्षक समुद्र तट के दृश्यों से आप अत्यन्त प्रभावित हुए।

१९ जुलाई को आप एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में योकोहामा के बन्दरगाह पर उतरे। वहाँ आप के स्वागतार्थ कोई भी उपस्थित नहीं था। शायद अपने भ्रमण में प्रथम बार ही, जहाज पर अपना सामान छोड़कर अपने ठहरने का प्रबन्ध करने के लिए स्वयं उतरे।

परन्तु शीघ्र ही वह वहाँ हिल मिल गये। लकड़ी की खड़ाऊँ पहने, चोगा (जापानी किमोनो) से सुसज्जित जापानी, अपने दैनिक जीवन में, अंग्रेजों तथा अमरीकनों की अपेक्षा, लाजपतराय को भारतवासियों के कहीं सन्निकट दिखलायी पड़े। "उनके मकान, उनकी दूकानें, उनका रहन सहन, उनकी सरल आदतें मेरे

अपने देशवासियों के रहन सहन, चाल ढाल, तथा घरों से इतनी अधिक मिलती जुलती थी कि योरुप अथवा अमेरिका में उस सादृश्य का लेशमात्र नहीं था। उनसे मेरे हृदय में जापानियों के प्रति भ्रातृत्व की भावना का संचार होता था।"

वह वर्ष के सबसे घटिया भाग—गर्मी के दिनों में जापान उतरे थे। पारे का चढ़ाव उस ऋतु में प्रिय लाहौर की स्मृतियाँ जगा देता था। अमेरिका से चलते समय, उन्होंने सोचा था कि जापान से स्वदेश को लौट जाऊँगा, यदि वहाँ जाने में किसी प्रकार का भय न हुआ, परन्तु जापान पहुँचने के एक सप्ताह के अन्दर ही उन्हें यह विचार बदलना पड़ा, क्योंकि उन्होंने चीन सागर के मार्ग से भारत लौटने वालों की करुण कथा सुन ली थी कि किस प्रकार उन्हें सिंगापुर तथा हांगकांग में गिरफ्तार किया गया, उनकी तलाशियाँ ली गयीं, उन्हें नजरबन्द कर लिया गया, तथा उन्हें अन्य प्रकार से तंग किया गया (उनके मित्र, बाबू शिवप्रसाद गुप्त उन्हीं सताए जाने वाले लोगों में से थे)।

वह मनोरञ्जनार्थ जापान नहीं गए थे। कुछ काल से वह सोच रहे थे कि आधुनिक उन्नति के प्रतीक इस पूर्वीय देश के दर्शन किए जाय। कई वर्ष हुए एक पंजाबी वकील ने जापान के पुनरुत्थान पर उर्दू में एक पुस्तिका लिखी थी और लाजपतराय ने उसकी भूमिका लिखी थी। डी० ए० वी० कालेज में एक जापानी अध्यापक भी आपकी कृपा से आया था। अमेरिका जाने से पूर्व, आपके इंगलैण्ड के पत्र व्यवहार से भी ज्ञात होता है कि आप जापान जाने का विचार कर रहे थे। वह जापान की आश्चर्यजनक उन्नति का रहस्य जानना चाहते थे, परन्तु उनके मन में एक अन्य उद्देश्य भी था।

"मैं जापान तथा भारतवर्ष के बीच में एक ऐसा सम्बन्ध स्थापित करने पर तुला हुआ था, जो दोनों देशों के लिए स्थायी महत्त्व रखता हो। अतः उस उद्देश्य से मैंने वहाँ के व्यक्तियों तथा संस्थाओं का अध्ययन शुरू कर दिया।"

वहाँ दीर्घकालीन निवास का विचार रखकर, उन्होंने खर्चीले इम्पीरियल होटल के कमरों को छोड़ दिया। भारतीय मित्रों ने उनके रहने को मकान का प्रबन्ध कर दिया। यद्यपि योरुप तथा अमेरिका की अपेक्षा, यहाँ उन्हें कई सुविधाएँ थीं, परन्तु यहाँ की भाषा का भेद एक भारी कठिनाई सिद्ध हुआ। मि० के० आर० सभरवाल नामी एक भारतीय युवक वर्षों से वहाँ रहने के कारण जापानी भाषा सीख गया था। इसने लाजपतराय का सेक्रेटरी बनना स्वीकार कर लिया। वह उनके पास रहने तथा उनके पथ प्रदर्शक और दुभाषिए का काम करने लगा। (कई वर्ष पीछे लाजपतराय ने केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य के रूप में इस युवक को जापान से भारत पहुँचाने में सहायता दी थी)।

उनका सेक्रेटरी का प्रबन्ध केवल दो सप्ताह ही जारी रह सका। लाजपतराय ने एक विद्यार्थी तथा राजदूत के तौर पर काम करना शुरू कर दिया।

जापान में, उन्होंने जो कुछ विद्यार्थी के रूप में सीखा, वह उन्होंने निज देशवासियों को पहले कलकत्ता के "माडर्न रिव्यू" द्वारा फिर एक पुस्तिका द्वारा प्रस्तुत कर दिया। जापान में भारतवर्ष के राजदूत के रूप में उन्होंने पत्रों में लेख लिखे तथा व्याख्यान दिए। वसेदा यूनिवर्सिटी में उनका स्वागत किया गया। आपने टोक्यो तथा अन्य स्थानों में बहुत से शिक्षणालयों में विद्यार्थियों के सामने भाषण दिए और शिक्षकों तथा पत्रकारों में कई मित्र बनाए।

परन्तु जापानी सरकार तथा जापानी राजनीतिज्ञों के रंग ढंग से आप बुरी तरह हताश हुए। क्योंकि उन पर ऐंग्लो-जापानी मैत्री का भूत बुरी तरह सवार था। उन्हें एशिया अथवा हिन्दुस्तान के स्वाधीनता के आन्दोलन के पक्ष की अपेक्षा, इंगलैण्ड के साम्राज्यवादी हितों की रक्षा की कहीं अधिक चिन्ता थी। इस बारे में वह मैत्री की कर्तव्य-सीमा का उल्लंघन-सा कर रहे थे। आप जुलाई के मध्य में जापान उतरे थे। जुलाई तथा अगस्त में, वहाँ यूनिवर्सिटियों तथा शिक्षा जगत में उनके देखने योग्य कुछ न था, क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में शिक्षणालय बन्द रहते हैं। अक्तूबर तक, आपने अमेरिका को लौट जाने का निश्चय कर लिया। उसी मास के आरम्भ मे वह जहाजों के कार्यक्रम देखने लगे और दिसम्बर में छूटने वाले किसी जापानी जहाज में आपने सीट माँगी। ४ दिसम्बर को आपको सूचना मिली कि "तेनिया मारू" में आपको एक केबिन मिल गयी है। एक सप्ताह बाद योकोहामा बन्दरगाह पर उनके मित्र उनको बिदाई देने आए, जहाँ ५ मास पूर्व आपके स्वागतार्थ एक भी मुखड़ा बन्दरगाह पर दिखायी नहीं पड़ा था और आप अपरिचित के रूप में उतरे थे।

यदि वह अमेरिका को न चल देते, तो नवम्बर के अन्त तथा दिसम्बर के आरम्भ में जापान निवासी भारत मण्डल में ऐसी घटनाएँ घटित होतीं, जिनसे उनका चिरकाल तक जापान रहना कठिन होता। उनकी बिदाई से एक दो दिन पूर्व, एक मित्र ने उनको लिखा : "वर्तमान घटनाओं का रुख देखते हुए आपके (अमेरिका को लौट जाने के) निश्चय के औचित्य की सराहना करता हूँ, परन्तु मुझे इस बात का हार्दिक दुःख है कि विवश होकर आप हमारी पहुँच से दूर जा रहे हैं।" उन घटनाओं का विवरण हम आगामी अध्याय में देंगे।

अध्याय छियालीसवां

युद्धकाल में भारतीय क्रान्तिकारी

लाजपतराय अपने इंगलैण्ड स्थित भारतियों की राजभक्ति के ढोंग से तंग आकर वहाँ से चल दिए। अमेरिका स्थित भारतियों में उस रोग के कोई चिन्ह न थे। इसके विपरीत जब वह अमेरिका के प्रशान्त तट पर केलेफोर्निया पहुँचे, तो वहाँ के भारतियों में इंगलैण्ड के शत्रुओं के साथ मैत्री स्थापित करने तथा अँग्रेजी शासन के विरुद्ध भारतवासियों में विद्रोह भावना संचार करने का आन्दोलन चल रहा था। यहाँ तो उनकी तथा तिलक की इस नीति को भी (कि इंगलैण्ड की सहायता करनी चाहिए, यदि वह सहायता भारतवर्ष के हितों तथा आत्माभिमान के अनुकूल हो) भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के विरुद्ध भीषण तथा कायरतापूर्ण देशद्रोह समझा जाता था। जहाँ वह फूंक फूंक कर पग धरने वाले इंगलैण्ड स्थित भारतीय राजनीतिज्ञों की दृष्टि में एक राजद्रोही समझे जाते थे, वहाँ इस क्रान्तिमय वातावरण में कुछ उत्साही अधकचरे युवकों की नजर में एक देशद्रोही समझे जाने लगे। वहां तो स्थायी आधार मूल सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देकर अवसरवादिता का पूर्ण प्राबल्य था, परन्तु यहाँ अन्धे देशानुराग के जोश में, लोग व्यावहारिकता तथा दूरदर्शिता से नाता तोड़ बैठे थे। इसकी उन्हें बिल्कुल कोई चिन्ता नहीं थी कि जर्मनी भारत का हितचिन्तक है अथवा नहीं, उनके लिए इतना ही काफी था कि वह इंगलैण्ड से लड़ रहा था। भारत में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर देना चाहिए, चाहे भारतवर्ष एक ऊँची पहाड़ी से गहरे अन्धेरे खड्ड में कूदने को ही क्यों न उद्यत हो। लाजपतराय इस प्रचार की भयानकता तथा मूर्खता को पूरी तरह समझते थे। परन्तु भारतीय क्रान्तिकारी, विशेषत: गद्दार दल के कुछ नेता बार बार उनके पास आते और उनसे अनुरोध तथा प्रार्थना करते थे कि वह उनमें सम्मिलित हों तथा उनका नेतृत्व करें। जिस प्रकार उन्होंने गांधी जी के सेवा दल का नेतृत्व करना अस्वीकार कर दिया था, उसी प्रकार उन्हें यहाँ भी स्पष्ट इनकार करना पड़ा।

उनके जापान चले जाने के पूर्व तथा उनके वहाँ से लौट आने पर, अमेरिका स्थित भारतीय क्रान्तिकारी अपने प्रबल अनुरोध, खुशामद तथा धमकियों द्वारा उनको सदैव आमंत्रित करते रहे। जापान स्थित भारतीय क्रान्तिकारियों की भी

यही अभिलाषा थी। हम देख चुके हैं कि जो नवयुवक, जापान में उनका सेक्रटरी, पथ प्रदर्शक तथा दुभाषिया बना था, उन्हें एक ही पखवाड़े के अन्दर छोड़कर चल दिया। लाजपतराय को पीछे ज्ञात हुआ कि उस महाशय को दल के आदेश से किसी क्रान्तिकारी मिशन पर चीन भेजा गया था। जापान पहुँचने के दो सप्ताह के अन्दर ही एक दिन आप होटल की सूची यह जानने के लिए देख रहे थे कि क्या वहाँ कोई हिन्दुस्तानी भी ठहरे हुए हैं। उस सूची में उन्हें कई अवांछित व्यक्तियों के नाम दिखाई पड़े। वह नहीं चाहते थे कि जापानी पुलिस आकर अनावश्यक ही उनको परेशान करे। लाजपतराय शीघ्र ही उस होटल को छोड़ कर चलने लगे, परन्तु उन लोगों ने कहा कि आप यहीं रहें, हम स्वयं छोड़ जायंगे। हमने परिस्थिति पर विचार किया और परस्पर यह तय हुआ कि कोई भी किसी को तंग न करे और दोनों अपना अपना काम जारी रखें।

शीघ्र ही, अंग्रेज सरकार के कहने पर जापानी सरकार ने उनकी देखरेख आरम्भ कर दी। जहाँ कहीं वह जाते, दिन रात दो जापानी पुलिसमैन उनका पीछा करते। मुझे इस बात का पूरा ज्ञान था, अतः मैं भी खुले तौर पर अपने साथियों से भेंट करना पसन्द नहीं करता था। एक दिन एक व्यक्ति जान बूझकर मेरे पास आया। पुलिस उसके साथ थी। वह मकान तथा अहाते के अन्दर नहीं आए। मैंने उससे प्रार्थना की कि मुझे व्यर्थ तंग न करे। कुछ दिन पीछे प्रकाशित हुआ कि पुलिस वालों की नजर बचाकर वह कहीं भाग गया है। दूसरे व्यक्ति ने मुझे कभी परेशान नहीं किया और न ही कभी मेरे मकान पर आया, यद्यपि मैं कभी कभी एक साझे मित्र के यहाँ उससे भेंट किया करता था। चिरकाल तक, मैं उसके नाम तथा व्यक्तित्व से अपरिचित रहा। अमेरिका से आए हुए अन्य महाशय मुझ से भेंट करने का अनुरोध करते रहे। इसको खूब रुपया मिलता था और बड़ी शान से रहता था जिसके कारण जापानी अधिकारियों द्वारा सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था।

नवम्बर के अन्त में, टोक्यो स्थित हिन्दुस्तानियों ने जापान के नवीन मिकाडो (सम्राट्) के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में एक भारी भोज का आयोजन किया। लाजपतराय ने सभापति बनना स्वीकार कर लिया, इस शर्त पर कि वहाँ किसी प्रकार के राजनीतिक भाषण न दिए जायँ और हिन्दुस्तानियों की ओर से केवल उन्हीं की वक्तृता हो। जब कुछ जापानी अतिथियों ने राजनीतिक विषय छेड़ने चाहे तो अध्यक्ष ने तत्काल ही उनको बिठला दिया। परन्तु इतना होने पर भी अंग्रेज काफी बिगड़े। "जापान एडवार्टाइजर" के सम्पादकीय लेख में उन्होंने लिखा कि मि० लाजपतराय तथा उसके देशवासियों ने जापानी पत्रकारों को भोज दिया है। (यद्यपि भोज में पत्रकारों की अपेक्षा शिक्षा शास्त्री, प्रमुख व्यापारी तथा शिष्ट

गण और अमेरिकन तथा अँग्रेज अतिथियों की संख्या कहीं अधिक थी) और जहाँ जापान सम्राट् के स्वास्थ्य तथा दीर्घायु को टोस्ट-पान किया गया, वहाँ भारत सम्राट् का नाम तक नहीं लिया गया। यह स्पष्ट राजद्रोह है। जापानियों तथा भारतवासियों का इस प्रकार मिलन हो रहा था कि मण्डप की सजावट में केवल जापानी पताकाओं का प्रयोग किया गया। भारत सम्राट् तथा यूनियन जैक का इससे बढ़कर क्या अपमान हो सकता है? आगे चलकर "एडवर्टाइजर" ने कई अशुद्ध तथा भ्रमोत्पादक बातें स्वीकार कीं और लिखा कि भोज में कोई टोस्ट-पान नहीं हुए। भोज की समाप्ति पर भोज के दोनों संयोजकों (भारतीय क्रान्तिकारियों और बंगाली सज्जनों) को नोटिस मिली कि ५ दिन के अन्दर जापान छोड़कर चले जायँ। दो पुलिस कांस्टेबुलों को २४ घण्टे उनकी देख रेख पर नियत किया गया। इससे भारतीय तथा जापानी समाजों में भारी क्षोभ पैदा हुआ। समस्त जापानी पत्रों ने इस आज्ञा की निन्दा की और शरणागतों की रक्षा की अवहेलना पर अधिकारियों को कोसा, क्योंकि इन राजनीतिक शरणागतों का युरुपीय लोगों में काफी मान तथा प्रतिष्ठा थी। प्रमुख जापानी पत्रकारों का एक डेपुटेशन पुलिस अधिकारियों से मिला। परन्तु उसने बतलाया कि आज्ञा तो कार्यालय से जारी हुई है। प्रधान मन्त्री, काऊण्ट ओकूमा (उन दिनों बीमार थे) कहने लगे कि मुझे तो इस के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। अतः मैं इसे रद्द करने में असमर्थ हूँ, क्योंकि इससे विदेश मन्त्री का अपमान होगा। जापानी राजनीतिज्ञ, जो इस आज्ञा के विरुद्ध थे, एक अन्य उपाय से उन हिन्दुस्तानियों को बचाने की सोचने लगे। अन्तिम दिवस की सायंकाल को वह दोनों भारतीय जापानी धारा सभा के प्रमुख सदस्यों से भेंट करने गए। वह तो अन्दर चले गए, परन्तु उनका पीछा करने वाले पुलिस मैन बाहर खड़े रहे। कुछ काल पीछे पता लगा कि भारतीय मकान के अन्य द्वार से बच कर निकल भागे हैं। फिर वह गिरफ्तार नहीं हो पाए। कुछ काल पीछे उनमें से एक अमेरिका लौट आया। दूसरा अभी तक जापान में है, और यदि मुझे ठीक पता लगा है तो उसने एक प्रतिष्ठित जापानी लड़की से विवाह कर लिया है। यह निश्चित है कि ऐसे राजनीतिक शरणागतों के लिए जापान उपयुक्त स्थान नहीं है। भोजवाली घटना की गूंज लाजपतराय को अमेरिका लौटते हुए प्रशान्त महासागर के वक्षस्थल पर तैरते हुए जहाज में भी सुनाई दी थी।"

लाजपतराय ने भारतवर्ष में भी क्रान्तिकारी तथा उग्रवादी दल के रंगढंग देखे थे। वह अजितसिंह तथा उसकी "भारतमाता" को पंजाब में अच्छी तरह जानते थे और महाराष्ट्र तथा बंगाल के आन्दोलनों से वह अनभिज्ञ नहीं थे, सबसे बढ़कर वह श्यामजीकृष्ण वर्मा तथा हरदयाल को निकट से जानते थे। परन्तु अमेरिका

के गद्दार दल का कार्यक्रम उपरोक्त सभी संस्थाओं से बढ़कर विशाल तथा उग्र था। (लाजपतराय के शब्दों में) "उसका उद्देश्य हिन्दुस्तान में राजनीतिक क्रान्ति पैदा करना और अंग्रेजी जुए से भारत को स्वतन्त्र कराना था" उसके साधन निम्न थे :

(क) भारतवर्ष तथा भारत से बाहर अँग्रेजों के विरुद्ध प्रचार करना।

(ख) सशस्त्र तथा निःशस्त्र विद्रोह का संगठन करना।

(ग) (सरकारी तथा अन्य) विदेशी एजेंसियों के साथ मैत्री स्थापित करना।

हरदयाल (जिसने गत महायुद्ध में वही पार्ट अदा किया, जो पार्ट सुभाष बोस ने वर्तमान युद्ध में किया है) गद्दार पार्टी के प्रवर्तक समझे जाते थे। जब लाजपतराय कैलेफोर्निया पहुँचे, तो हरदयाल जर्मनी चले गए थे। मौलवी बरकतुल्ला, सरदार भगवानसिंह तथा अन्य लोग संयुक्तराज्य अमेरिका में उनके साथी तथा सहकारी थे। पण्डित रामचन्द्र दल के एक सक्रिय सदस्य, उन दिनों दल के मुखिया थे। प्रशान्त तट के सिक्खों तथा हिन्दुओं के धन से उस आन्दोलन का संचालन हो रहा था। वह खूब उदारता से रुपया देते थे। लाला हरदयाल अमेरिका से चले गए थे और सरदार भगवानसिंह तथा मौलवी बरकतुल्ला भी अनुपस्थित थे। यह स्पष्ट था कि आन्दोलन के नेतागण महायुद्ध में जर्मनों से सहयोग कर रहे थे। वर्ष के आरम्भ में, एक भारतवासी ने जो जर्मन एजेण्ट के तौर पर काम कर रहा था, मेरे पास आकर मुझे एक भारी धनराशि भेंट करनी चाही, यदि मैं भारतीय स्वतन्त्रता के एक घोषणापत्र पर अपने हस्ताक्षर कर दूं, जिसे जर्मन, उन दिनों फ्लाण्डर्स में लड़नेवाली भारतीय सेनाओं में फेंकना चाहते थे। मैंने इस प्रकार की कोई बात करने से इनकार कर दिया। दूसरी बार सान फ्रांसिसको में फिर उसी बात को दुहराया गया परन्तु मैंने फिर अस्वीकार कर दिया। परन्तु मुझे पण्डित रामचन्द्र तथा उनकी पत्नी से सामाजिक सम्बन्ध रखने में कोई आपत्ति नहीं थी। जब मैं सान फ्रांसिसको पहुँचा, तो उसकी पत्नी अस्पताल में थीं। ज्यों ही वह अच्छी होकर घर लौटीं, तो उन्होंने मुझे खाने पर बुलाया। पण्डित दम्पति बहुत गरीबी का जीवन व्यतीत करते थे। एक हिन्दू त्यौहार (मेरे विचार से होली थी) के उपलक्ष में हिन्दुस्तानियों की एक सभा में पण्डित रामचन्द्र ने मुझे कायर तथा भीरु के नाम से पुकारा। उत्तर में मैंने उसे बुद्धिहीन नेता का नाम दिया। जिसने अँग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह संगठित करने के लिए अपने सर्वोत्तम देशवासियों को मृत्यु के मुख में भेजा है। पण्डित रामचन्द्र ने मुझसे भेंट करना जारी रखा। मेरे साथ उसकी मुलाकातें चुपके चुपके हुआ करती थीं, क्योंकि उसे अपने प्रभाव को खो देने का भय रहता था। उन दिनों गद्दार पार्टी दो दलों में बँटी हुई थी, जिनमें से एक दल पण्डित रामचन्द्र

के विरुद्ध था। वह उस पर विश्वास नहीं रखते थे। वह मुझसे प्रार्थना करने लगे कि आप पण्डित रामचन्द्र के विरुद्ध विद्रोह के नेता बनें, परन्तु मैंने इनकार कर दिया। उस समय मेरा विश्वास था कि यद्यपि पण्डित रामचन्द्र जल्दबाज, बुद्धिहीन तथा अदूरदर्शी है, परन्तु वह सच्चा व्यक्ति है। उसकी केवल महत्त्वाकांक्षा यह थी कि कैलेफोर्निया में सर्वोच्च नेता बना रहे। इसी उद्देश्य से वह सदा अन्य नेताओं को खतरनाक कार्यों पर कैलेफोर्निया से बाहर विभिन्न मिशनों पर भेज दिया करता था। जब मैं जापान से लौटकर आया, तो फिर मैं उसके तथा बरकतुल्ला, सरदार भगवानसिंह तथा सन्तोपसिंह जैसे अन्य नेताओं के सम्पर्क में आया। पण्डित रामचन्द्र का देहान्त हो गया है। मैं मृत व्यक्ति को बदनाम नहीं करना चाहता। परन्तु इतिहासकार को तो सच्चाई बतलानी पड़ती है। मैं १९१६ से १९१९ तक अमेरिका रहा। मेरे पास काफी प्रमाण हैं कि पण्डित रामचन्द्र न केवल प्रज्ञाहीन तथा अदूर दर्शी ही थे, प्रत्युत बेईमान भी थे। वह दुगुने बेईमान थे। वह धन तथा फण्डों में भी गड़बड़ी करते थे तथा निज देशवासियों के विश्वास का दुरुपयोग करते थे। उनके एक अति घनिष्ट मित्र मि० वैष्णो दास बगाई ने (दुर्भाग्य से जिसका देहान्त हो चुका है) मुझे बतलाया कि उसे अँग्रेजों का वैतनिक जासूस बनने को कहा गया था, यदि वह अपना सारा वेतन पण्डित रामचन्द्र के हवाले करता जावे। मि० बगाई ने स्वीकार किया कि पण्डित रामचन्द्र के आदेश से मैंने बहुतसे नीच कार्य किए हैं, उदाहरणार्थ मेरे विरुद्ध अंग्रेजों को इत्तलात पहुँचाने तथा मुझे किसी न किसी मुकदमा में फँसाने में अंग्रेजों की सहायता करने का कार्य किया है। मेरे पास मि० बगाई के कुछ पत्र हैं जिनके द्वारा उसके मौखिक वक्तव्य की पुष्टि होती है। मुझे विश्वस्त रूप से ज्ञात हुआ कि पं० रामचन्द्र तिगुना पार्ट खेल रहे थे। वह संस्था के धन में गड़बड़ी करते थे, अँग्रेजों से धन प्राप्त करते थे और जर्मन सरकार से भी रुपया लेते थे। व्यय के मद में दिखलायी धन राशियाँ उन्होंने खर्च नहीं कीं। इन्हीं सन्देहों के परिणामस्वरूप उसे न्यायालय में ही गोली मार दी गयी। पुलिस ने उसके आक्रमणकारी पर भी गोली चलाकर उसे भी वहीं ठण्डा कर दिया। उनके तथा संस्था के कुछ अन्य सदस्यों के मध्य में कुछ धन के बारे में झगड़ा खड़ा हो गया। मामला एक मध्यस्थ के सुपुर्द किया गया और मुकदमा के फैसले तक धन मध्यस्थ की अमानत में रखा गया। मध्यस्थ ने अपने ही पक्ष में फैसला दिया और सारा धन स्वयं दबा बैठा। आन्दोलन के साधारण अनुयाइयों के प्रति न्याय करते हुए, कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार अपनी मातृभूमि की खातिर भारी भारी रकमें खर्च कीं। सिक्ख तथा हिन्दू नेताओं ने भारी कष्टों का सामना किया और कई बार गिरफ्तारी से बाल-बाल बचे। उनमें से अधिकांश मातृभूमि के सच्चे

उपासक थे और अपने पसीने की गाढ़ी कमाई को उदारता से देश कल्याणार्थ वे प्रदान कर देते थे। आन्दोलन की लुटिया डुबोने वाला तो "शिक्षित वर्ग" ही था जिसने नाना प्रकार से अपने अज्ञ तथा सीधे-सादे साथियों को धोखा दिया।"

लाजपतराय ने क्रान्ति की भँवर में पड़ने से दृढ़तापूर्वक इनकार कर दिया, परन्तु क्रान्तिकारी नेताओं में से कुछ व्यक्तियों से आपकी गहरी मित्रता स्थापित हो गयी। आप मौलवी बरकतुल्ला की सत्यनिष्ठा के भारी प्रशंसक थे, परन्तु अकसर, हँसी में, उसके मुंह पर ही खरी-खरी सुनाते हुए कहा करते थे कि भूपाल के मौलवी में राजनीतिक विवेक तो लेशमात्र भी नहीं होता। बहुधा, मौलवी जी, उनके सन्मुख क्रान्ति की भारी तथा पेचीदी योजनाएँ रखा करते थे। आप बड़े धैर्य से उन्हें सुनते और अन्त में एक दो उपयुक्त प्रश्नों के साथ क्रान्ति के उन हवाई किलों को गिरा देते थे, परन्तु हमें यह बातें मालूम हैं, आप हममें विश्वास क्यों नहीं रखते? "मौलवी जी का अन्तिम उत्तर होता।" मौलवी जी, आप बड़े भले आदमी हैं, परन्तु हैं पूरे बग-लौल (अक्ल के कोरे), लाजपतराय का आलोचनात्मक तथा व्यंगमय उत्तर होता। मौलवी जी समझते थे कि वह आलोचना मित्र भाव से की जा रही है। इसके अति-रिक्त लाजपतराय अपने मन में साफ निश्चय किए हुए थे कि मैं आजीवन निर्वासन में नहीं रहना चाहता और युद्ध की समाप्ति पर मुझे हिन्दुस्तान लौटना चाहिए। कल्पित आदर्शों के पीछे दौड़ने वाले लोगों द्वारा देशभक्त कहलवाने की अपेक्षा, राष्ट्रनिर्माण के उपयोगी कार्य को लाजपतराय कहीं अधिक अच्छा समझते थे और उसे वह कुर्बान करने को तैयार नहीं थे। लाजपतराय स्वयं लिखते हैं :

"मैं भारत लौटना चाहता था। यह स्पष्ट था कि जर्मनों के साथ मैत्री अथवा खुली मित्रता रखने वाले भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ सम्पर्क बढ़ाने से उनका भारत लौटना असम्भव हो जायगा। जब कभी, मैं युक्तियों द्वारा अपने मित्रों को अपनी बात मनाने में असफल होता, तो मैं उन्हें इसी बात से प्रसन्न होने देता कि वह मुझे कायर के नाम से पुकार लें।

मैं यह भी नहीं चाहता था कि मेरे किसी देशवासी का अनिष्ट केवल इस कारण से हो कि वह कोई ऐसी कार्यवाही कर रहा है जो मुझे पसन्द नहीं। सब साधनों से उनकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य था। वह मेरा आदर करते थे और मुझसे प्रेम रखते थे। मैं उनके देशानुराग की प्रशंसा करता था। उन्हें निश्चय था कि मैं कभी भी उन्हें धोखा नहीं दे सकता। कभी कभी वह मुझ से परामर्श लेते थे और मैं भी प्रसन्नता तथा खुले दिल से अपनी राय देता था। मेरा उद्देश्य उनको अनिष्ट से बचाना था। उनमें से अधिकांश मेरी इस सदाशयपूर्ण तटस्थता की कद्र करते थे और मेरी कार्य-शैली में मुझे अबाधित रूप से चलने देते थे।

लाजपतराय भारतीय क्रान्तिकारियों को तीन महाद्वीपों में कार्य करते देख चुके थे और कई दलों को तो काफी निकट से देख चुके थे। अपने जमाने में उनको विदेशी क्रान्तिकारी आन्दोलनों के नेताओं से भेंट करने का अवसर भी मिला। क्रान्तिकारी कार्य के बारे में अपने विचारों तथा अनुभवों का निचोड़ उन्होंने 'यंग इण्डिया" में दिया है। वे शब्द अमर रहेंगे और क्रान्तिकारी कार्य की ओर आकृष्ट होने वाले इस देश के नवयुवकों के लिए प्रकाश स्तम्भ सिद्ध होंगे।

१. कोई जाति स्वाधीन होने की अधिकारिणी नहीं जो अपनी स्वतन्त्रता स्वयं जीतने में असमर्थ है और आवश्यकता पड़ने पर उसके लिए युद्ध करने को उद्यत नहीं होती।

२. मुख्यतः वाह्य सहायता के द्वारा जीती हुई स्वतन्त्रता के शीघ्र ही खो जाने की आशंका बनी रहती है। "जातियों का निर्माण उनके निज हाथों द्वारा ही होना चाहिए।" यह बात शाश्वत सत्य है।

३. स्वातन्त्र्य-युद्ध की शक्ति जहाँ नैतिक तथा आध्यात्मिक सम्पत्ति है, वहां वह भौतिक तथा वैज्ञानिक सम्पत्ति भी है।

४. क्रान्ति की सफलता के लिए, आवश्यक है कि उसका आधार नैतिक तथा दयायुक्त हो। उसका आधार जनतन्त्र होना चाहिए और केवल जनवाद के हितार्थ उसका संचालन होना चाहिए। "जनता के लिए तथा जनता द्वारा" ही क्रान्तियों का नारा होना चाहिए।

५. गुप्त आन्दोलन दुधार हथियार होते हैं। जहाँ सशस्त्र तथा दृढ़ मूल स्वच्छन्द राज्य के विरुद्ध उनका प्रयोग होना चाहिए, वहाँ इस बात का ध्यान भी रखना आवश्यक है कि वह स्वार्थी, महत्त्वाकांक्षी तथा निर्लज्ज लोगों के व्यक्तिगत लाभ तथा धन संचय का वह साधन न बन सके। क्रान्तिकारी आन्दोलन जितना ही कम गुप्त हो, उसके नैतिक पहलू के लिए उतना ही अच्छा है।

६. क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए धैर्य तथा साहस की तरह अनुशासन तथा विवेक भी आवश्यक हैं।

७. किसी क्रान्तिकारी आन्दोलन को अपनी मानव शक्तियों का अपव्यय कदापि नहीं करना चाहिए। साधारणतः क्रान्तिकारियों की संख्या बहुत थोड़ी होती है। उनको अन्धाधुन्ध बलिदान करते जाना साधारण हत्या से अधिक गम्भीर अपराध है। अपने प्राणों से खेलने वाले क्रान्तिकारी तो अपनी श्रेणी के सर्वोत्तम होते हैं। आन्दोलन के प्रारम्भ में उनकी असामयिक मृत्यु से आन्दोलन महान् शक्तियों से वञ्चित रह जाता है। और अनुभवहीन महत्त्वाकांक्षी तथा घटिया दर्जे के लोगों

के नेता बन जाने से आन्दोलन की सफलता में विलम्ब पड़ जाता है और आन्दोलन घृणा तथा उपहास का पात्र बन जाता है।

८. क्रान्तिकारी आन्दोलन, अपनी प्रकृति के कारण है, प्रजातन्त्र के ढंग पर संचालित नहीं किया जा सकता। क्रान्तिकारी नेता असाधारण तौर पर प्रतिभाशाली होने चाहिए तथा उनका नैतिक आचरण अत्यन्त उच्चकोटि का होना चाहिए। नैतिक रूप से अत्यन्त दुर्बल, रुपये-पैसे के मामले में पूर्ण ईमानदारी न रखने वाले तथा अपनी शक्ति और अधिकार का निःस्वार्थ तथा निष्पक्ष उपयोग करने में असमर्थ व्यक्तियों के हाथ में क्रान्तिकारी नेतृत्व कदापि सुरक्षित नहीं रह सकता।

९. क्रान्तिकारी आन्दोलन की सबसे बड़ी सम्पत्ति उसके अनुयाइयों की श्रद्धा है। उनका व्यक्तिगत जीवन निष्कलंक हो, उनके उद्देश्य निःस्वार्थ हों, उनकी आत्म संयम तथा आत्म दमन की शक्ति विशाल हो। तथा क्रान्ति ही उनका जीवन ध्येय हो। अपने कार्य की सत्यनिष्ठा में उनकी अगाध श्रद्धा हो। उनकी सफलता का आधार यही उपरोक्त गुण ही हैं।

१०. क्रान्तिकारी आन्दोलन का आधार अन्धी श्रद्धा नहीं, प्रत्युत् बुद्धि तथा विवेक होने चाहिएँ। नेताओं को अपने कार्य के विघ्न और बाधाओं का पूर्ण ज्ञान और चेतना होनी चाहिए।

११. अपने साथियों के साथ उनका व्यवहार, नितान्त सरलता तथा सत्य का होना चाहिए।

सारांश यह है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए शहीद और हुतात्माएँ होनी चाहिएँ। स्वतन्त्रता का पौधा तो अपने शहीदों के रक्त से पनपता है परन्तु केवल शहीद बनाने के नाम से अपने अनुयाइयों को मृत्यु के मुख में धकेलने वाली संस्था शीघ्र ही बदनाम हो जाती है।

अध्याय सैंतालीसवां

निर्वासित तथा राजदूत

लाजपतराय का विचार, लाहौर से केवल ६ मास के लिए बाहर रहने का था, परन्तु अब उनको विदेश रहते २० मास हो गए। युद्ध को छिड़े लगभग डेढ़ वर्ष हो चला था और कोई नहीं कह सकता था कि अभी यह हत्याकाण्ड और रक्त प्रपात, कितने मास अथवा कितने वर्षों तक और चलेगा। अब वह फिर अमेरिका जा पहुँचे, अल्प निवास के लिए नहीं, बल्कि युद्धकाल तक के लिए एक घर ढूंढने के लिए। भारत लौटना भी सम्भव न था। आगामी घटनाओं से प्रतीत होता है कि यदि वह हिन्दुस्तान को लौटने का प्रयत्न करते भी तो उन्हें आज्ञा मिलने की सम्भावना नहीं थी। युद्ध की समाप्ति तथा सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो जाने पर भी उनको पासपोर्ट प्राप्त करने में काफी कठिनाइयाँ हुई। अनुभव से उन्हें ज्ञात हो गया कि इंगलैण्ड अथवा जापान की अपेक्षा शरणार्थी के लिए संयुक्तराज्य अमेरिका कहीं अच्छा और सुरक्षित देश है।

सो १९१५ के अन्त में वह युद्धकालीन निर्वासित के रूप में अमेरिका लौट आए। ऐसी स्थिति के अनुकूल उपर्युक्त कार्य ढूंढ़ना आवश्यक था। जून में जापान जाने से पूर्व ही संयुक्तराज्य पर आपने अपना ग्रन्थ समाप्त कर लिया था, जिसमें अमरीकनों तथा अमेरिका स्थित भारतीय कार्यकर्ताओं की समस्याओं की विवेचना की गयी थी। अब उनका कार्य अमेरिका के जनमत को भारतीय प्रश्न के बारे में शिक्षित कराना तथा अमेरिका की सहानुभूति उसके पक्ष में करना था। अब वह अमेरिका में हंगरी के निर्वासित देशभक्त लोईस कोसुथ की तरह, अपने अभागे देश की खातिर, अमेरिका की जनता में निज मातृभूमि के राजदूत की तरह दिन काट रहे थे।

अमेरिका के नगरों में कुछ दिनों के लिए, एक स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों की धूमधाम को छोड़कर, सुशिक्षित तथा अत्यन्त उदाराशय अमरीकनों के लिए भारतवर्ष का अस्तित्व तक का ख्याल नहीं था। एक अमरीकन विद्यालय में एक हिन्दू विद्यार्थिनी ने लाजपतराय को बतलाया कि उसकी पाठ्य-विधि में भारतीय इतिहास भी सम्मिलित है, परन्तु उसकी अध्यापिका सदैव उस विषय को टाल

देती रही है। लड़की ने पूछा कि भारतीय इतिहास के बारे में आप इस प्रकार क्यों मौन हैं? तो उसने उत्तर दिया कि हिन्दुस्तानियों ने कुछ करके नहीं दिखलाया है, अतः वह इतिहास में स्थान पाने के अधिकारी नहीं हैं। यद्यपि अमेरिका ने ह्विटनी तथा लेनमन जैसे विख्यात संस्कृतज्ञ पैदा किए थे, तो भी भारत के विषय में यह अज्ञता बड़ी भारी थी और अक्षन्तव्य थी।

इसी बात का सुधार करने तथा अमेरिकावासियों का ध्यान भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के महत्त्व की ओर खींचने के लिए, लाजपतराय ने अपनी शक्ति लगा दी। अभी तक अमेरिका युद्ध में तटस्थ था, यद्यपि स्वाधीनता तथा जनतन्त्र के नाम पर अमेरिका को युद्ध में सम्मिलित करने के लिए ब्रिटिश प्रोपेगैण्डा द्वारा पूरा जोर लगा रहा था, अतः भारतीय प्रश्न को अमेरिका के तथा संसार के सामने लाने का यही उपयुक्त अवसर था। उन्होंने वहाँ शीघ्र ही सम्पर्क स्थापित कर लिए। भारत के इस राष्ट्रीय नेता में कुछ ऐसी सर्वप्रियता तथा सार्वभौमिकता का गुण था कि वह विभिन्न लोगों तथा जातियों के हृदय में अपना स्थान जमा लेते थे। उनके सरल तथा जनतन्त्रवादी रंग ढंग अमरीकनों को अपील करते थे। यानी कभी कभी वह उनके मुंह पर खरी खरी भी सुना देते और उनके आत्माभिमान पर प्रहार भी कर देते, तो भी वह उनकी स्पष्टवादिता तथा सत्यनिष्ठा पर मुग्ध होकर उनकी बातों को गम्भीरता से सुनते थे। अमेरिका के एक साप्ताहिक पत्र में सम्पादकीय विभाग में काम करने वाले आयरिश पत्रकार फ्रांसिस हैकिट लिखते हैं कि लाजपतराय से उनका परिचय प्राप्त किए अभी थोड़े दिन हुए थे कि लाजपतराय ने कहा "आप जानते हैं कि हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की अपेक्षा भी आयरिश लोगों का व्यवहार हमारे साथ बहुत घटिया रहा है।" मुझे यह सुनकर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि जिन लोगों के पास अधिकार अभी नया नया आता है, उनका स्वच्छन्द बन जाना स्वाभाविक है। परन्तु मुझे जिस बात से हर्ष हुआ, वह उनकी स्पष्टवादिता थी। लाजपतराय सत्य को टालना नहीं जानते थे।" मि० हैकिट ने लिखा।

लाजपतराय ने, विशेषतः उग्रवादी नेताओं, प्रगतिशील पत्रकारों तथा यूनिवर्सिटी के विद्वानों से सम्पर्क स्थापित कर लिया। शीघ्र ही उनके व्याख्यानों की भारी माँग होने लगी और वह पत्रों के लिए भी खूब लिखने लगे। कुछ उच्च श्रेणी की पत्रिकाओं के लिए, भारतवर्ष तथा अन्य एशियाई देशों के बारे में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की समालोचना किया करते थे।

अमेरिका के युद्ध में सम्मिलित होने के अनन्तर, उन्होंने अपने कार्य को और भी अधिक संगठित कर लिया। अक्तूबर १९१७ में अमेरिका की इण्डिया होम रूल लीग का जन्म हुआ और लाजपतराय स्वयं उसके प्रधान बने। भारत के स्वतन्त्रता

संग्राम के अनथक योद्धा डा० जे० टी० सण्डरलैण्ड, लीग के उपप्रधान चुने गये (डा० सण्डरलैण्ड ने तो लाजपतराय के अमेरिका से चले जाने के पीछे भी लीग का कार्य जारी रखा। इस संस्था से सम्बद्ध अन्य सज्जन के० डी० शास्त्री तथा एन० एस० हार्डीकर उसके मन्त्री तथा आर० एल० वाजपेयी कौंसिलर थे।

जनवरी १९१८ से, लीग की ओर से एक छोटी सी पत्रिका, "यंग इण्डिया" भी निकलनी शुरू हो गयी।

भारत के प्रश्न को जनमत के सन्मुख ले जाने वाली लीग तथा "यंग इण्डिया" प्रथम संगठित प्रयत्न थे और भारतवर्ष के बारे में विदेशी प्रचार के सिलसिले में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। अब तक तो विदेशी प्रचार का कार्य केवल इंगलैण्ड तक ही परिमित था जहाँ वैडरबर्न के निर्देश में अपने पत्र "इण्डिया" द्वारा, इण्डिया नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी, कांग्रेस का दृष्टिकोण पेश किया करती थी। लाजपतराय स्वयं "यंग इण्डिया" का सम्पादन करते थे और एन० एस० हार्डीकर उसके प्रबन्ध में सहायता देते थे। यह पत्रिका थी तो छोटी-सी, परन्तु उसका कार्य अत्यन्त प्रभावशाली था।

ब्रिटिश कमेटी तथा "इण्डिया" की तरह लीग तथा "यंग इण्डिया" का इण्डियन नेशनल कांग्रेस से सम्बन्ध नहीं था, यद्यपि लाजपतराय के लिए कांग्रेस से सम्बन्ध जोड़ना कठिन नहीं था, क्योंकि अब १९१६ वाले लखनऊ वाले अधिवेशन पर कांग्रेस के दोनों दल पुन: एक हो गए थे। अमेरिका में उनका कार्य स्वतन्त्र रूप से ही चलता रहा और भारत के केवल एक ही नेता—बाल गंगाधर तिलक ने उनको अपना नैतिक समर्थन तथा ठोस सहानुभूति प्रदान की। लोकमान्य तिलक १९१८ में स्वयं वैलेण्टाइन चिरोल के विरुद्ध मानहानि का केस लड़ने इंगलैण्ड गए थे। (आप केस में हार गए) हिमालय की भाँति उच्च तथा सागर की तरह गहन, व्यक्तित्व रखते हुए भी लोकमान्य तिलक में उस सार्वभौमिकता के गुण का अभाव था जिसके स्वामी लाजपतराय थे। लाजपतराय का विदेशों का अनुभव अत्यन्त विशाल था। अंग्रेजी पत्रों द्वारा प्रचार कार्य संगठित करने में तिलक को भारी बाधाओं का सामना करना पड़ा। इस निजी अनुभव के बाद तो वह लाजपतराय के कार्य को कहीं अधिक प्रशंसा करने लगे। इग्लैण्ड से उन्होंने लाजपतराय को पत्र लिखते हुए, उनका खासा प्रोत्साहन किया और ठोस सहायता के लिए उनको वचन दिया।

भारतीय प्रश्न के लिए अमेरिका में अन्य महत्त्वपूर्ण घटना १९१८ में रवीन्द्र-नाथ ठाकुर का व्याख्यानों के लिए दौरा था। यद्यपि यह प्रत्यक्ष राजनीतिक कार्य नहीं था, परन्तु निस्सन्देह इससे अमेरिकन चेतना में भारत को कहीं अधिक स्थान प्राप्त हुआ। कविवर टैगोर तथा लाजपतराय की भेंट तो नहीं हो पायी, परन्तु

इसमें कोई सन्देह नहीं कि टैगोर के कार्य मे अप्रत्यक्ष रूप में लाजपतराय के नियमित कार्य को सहायता मिली।

लाजपतराय का होमरूल लीग प्रचार अपनी चरम सीमा पर सन्धि सम्मेलन के समय पहुँचा। भारतवर्ष का केस अमरीकन सेनिट की विदेशी सम्बन्ध समिति के सामने पेश किया गया। माननीय डुडले फील्ड मेलोन सेनेटर ने कमेटी के सामने भारत का पक्ष रखा। अन्य सज्जनों के अतिरिक्त, सैनेटर नारिस भी इस कार्य में सम्मिलित थे। समस्त केस मुख्यतः लाजपतराय द्वारा तैयार किया गया था। यदि वह अमेरिका में उपस्थित न होते, तो ऐसे कार्य का विचार तक भी किसी को न आता। उस परिस्थिति में अमेरिका में भारतवर्ष का अधिकाधिक प्रचार तथा समर्थन हुआ। यह भारत का सौभाग्य था कि लाजपतराय जैसे अद्वितीय तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति निर्वासित होकर अमेरिका में उसके राजदूत का कार्य कर रहे थे।

१९१८-१९ में प्रज़ीडेंट विल्सन के नाम की धूम मची हुई थी। एक अधिक स्वतन्त्र तथा शान्तिमय नवीन संसार के निर्माण कार्य करने वाले साहसी आत्माओं के लिए विल्सन का व्यक्तित्व प्रकाशस्तम्भ का काम दे रहा था। भारतवर्ष से जी० सुब्रह्मण्य अय्यर ने हिन्दुस्तान के बारे में उन्हें एक लम्बा चौड़ा खरीता भेजा। हिन्दुस्तान के अखबारों में कई दिनों तक इसी पत्र की चर्चा चलती रही, क्योंकि वह स्वतन्त्रता के उस महान् अमेरिकन देवदूत के नाम लिखा गया था, जिसे इब्राहीम लिंकन से बड़ा महापुरुष समझा जाता था। यदि हिन्दुस्तानी पत्रकार अमेरिकनों की भाँति विचारते, तो उन्हें यह एक मामूली सी बात नजर आती। उस चिट्ठी को अमेरिका के कुछ अखबारों ने भी प्रकाशित किया क्योंकि भारत के प्रश्न के सिलसिले में लाजपतराय ने काफी काम किया था।

भारत सरकार ने तो यह कल्पना कर ली थी कि अमेरिका में जो भी पुस्तक, पुस्तिका अथवा पत्रिका लाजपतराय द्वारा प्रकाशित हो, उसको भारत में प्रवेश निषिद्ध कर देना चाहिए। क्या ब्रिटिश प्रचारकों ने यह संकेत नहीं किया था कि वह जर्मन एजेण्ट हैं ? ब्रिटिश सरकार ने उनकी पुस्तक "यंग इण्डिया" पर प्रतिबन्ध लगा दिया। कमाण्डर जोशिया वेजवुड ने हाउस आफ कामन्स में उस मूर्खतापूर्ण प्रतिबन्ध को विचित्र ढंग से तोड़ डाला। यंग इण्डिया की विजय हुई। इससे वेजवुड तथा पुस्तक के रचयिता—लाजपतराय में दृढ़ मैत्री हो गयी, परन्तु बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि इस मित्रता का श्रीगणेश कमाण्डर महोदय के एक भारतीय देशभक्त लेखक की ओर से एक भारी लड़ाई के द्वारा हुआ और उसने लेखक के दर्शन तक नहीं किए थे। कुछ काल पश्चात् दोनों की भेंट प्रथम बार न्यूयार्क में हुई। इस भेंट

मे पूर्व उनका परस्पर पत्र-व्यवहार होता रहा। तब से पत्र-व्यवहार द्वारा दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। युद्ध के अन्तिम वर्षमें,वेजवुड के पत्रोंमें लाजपतराय के ईरान चले जाने का विचित्र सुझाव था। लाजपतराय भी कुछ शर्तों पर ईरान जाना मान गए थे। इस पत्र से प्रतीत होता है कि ब्रिटेन के युद्ध प्रयत्नों के बारे में उनके रवैये में कुछ परिवर्तन हो गया। परन्तु उनके लेखों तथा भाषणों से ऐसे किसी परिवर्तन के लक्षण दिखलायी नहीं पड़े। वह बिना शर्त सहयोग देने को तैयार थे यदि इंगलैण्ड लाजपतराय जैसे भारतीय नेताओं को अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व के कार्य सुपुर्द करने को तैयार होता। हम कह नहीं सकते कि वेजवुड ने उस सुझाव के बारे में क्या किया और ब्रिटिश विदेशमंत्री तथा भारतमंत्री ने उसका किस प्रकार स्वागत किया, हम तो इतना जानते हैं कि इस ओर कुछ भी नहीं हो पाया।

हमारे यह निर्वासित राजदूत अमेरिका में किस प्रकार जीवन व्यतीत करते थे? निस्सन्देह उस जीवन में राजदूत की शान का नितान्त अभाव था। परन्तु निर्वासित देशभक्त के कठोर जीवन में भी भारी गौरव था। जब उन्होंने देखा कि उन्हें तो वहाँ दीर्घ काल के लिए निवास करना होगा, तो उन्होंने खर्चीले होटलों से सम्बन्ध विच्छेद की ठान ली। यद्यपि वह अपनी लेखनी द्वारा अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए धन जुटा लेते थे, उन्होंने समझ लिया था कि उन्हें अनिश्चित कालतक अपनी बचत पर ही गुजारा करना होगा। कभी-कभी तो उनको तथा उनके साथियों को स्वयं अपने हाथ से अत्यल्प व्यय में, खान-पान का प्रबन्ध करना पड़ता था।

एक बार, अमेरिका में, अपने मितव्ययी जीवन का वर्णन करते हुए, लाजपतराय ने कहा था : "मैं किसी भी काम से नहीं घबराया। मैंने अपने हाथों से अपना खाना बनाया है। मैंने अपने हाथों से अपने कपड़े धोए हैं। मैंने अपना कमरा साफ किया है। कभी-कभी मैंने सायंकाल का भोजन ५ सेण्ट की रोटी से किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे पास धन का अभाव था। मेरे हाथ में सार्वजनिक धन के हजारों रुपये थे, परन्तु मैं अपने निजी कार्य के लिए एक पाई भी खर्च नहीं करता था।"

यह जापान से लौटने पर उनके कैलेफोर्निया जीवन का कुछ कुछ दिग्दर्शन है। १९१७ के अन्त में वह न्यूयार्क चले गए, क्योंकि वह उनके कार्य के लिए उपयुक्त स्थान था। यहाँ उनके लेखन-कार्य के लिए पुस्तकालयों का अधिक सुभीता था। न्यूयार्क स्वयं भी उनके लिए एक मनोरञ्जक स्थान था, क्योंकि वह मानवता का कौतुकागार था तथा भारतीय समस्या के लिए अमेरिकन जनमत के शिक्षण का उपयुक्त केन्द्र था, विशेषतः अमेरिका के महायुद्ध में सम्मिलित होने के अनन्तर।

भारत के प्रश्न में दिलचस्पी लेने वाले सभी लोगों के लिए १४६० ब्राडवे स्ट्रीट केन्द्र बन गया।

अमेरिका रहते हुए लाजपतराय आर्थिक कठिनाइयों से सर्वथा मुक्त नहीं थे, क्योंकि वह अपने गुजारे के लिए बहुत कम काम करते थे। आपने अपने वसीयतनामा द्वारा निज सम्पत्ति का अधिकांश अपने पुत्रों को दे दिया था। अपनी पुस्तकों तथा अमेरिकन पत्र-पत्रिकाओं द्वारा उनको थोड़ी-सी आय होती थी, जब वह हिन्दू धर्म, भारतवर्ष तथा एशिया के बारे में प्रकाशित पुस्तकों की समालोचना किया करते थे। आप मितव्ययिता का जीवन व्यतीत करते थे और सरल जीवन की आदत उनके लिए लाभकारी सिद्ध हुई। वह बहुधा अपने कमरों में अपना खाना स्वयं पकाते थे। यह उन नवयुवकों के सामने एक उच्च आदर्श था, जो मातृभूमि की सेवा के लिए उनसे ट्रेनिंग लेने आते थे। कई पत्रिकाओं तथा उनके निजी "यंग इण्डिया" के लिए समालोचना का कार्य करते हुए, उनके पास उत्तमोत्तम ग्रन्थों का एक अच्छा संग्रह हो गया। उन्होंने अपना निजी पुस्तकालय बनाना आरम्भ कर दिया। जब वह भारत लौटे तो यह संग्रह, लाहौर की पुस्तकों के संग्रह में जोड़ दिया गया। यह लोक सेवक मण्डल के द्वारकादास पुस्तकालय का सुन्दर श्रीगणेश था।

अंग्रेज जासूस उन्हें प्रायः परेशान किया करते थे। भारत सरकार के जासूसी विभाग का एक उच्च अधिकारी---एक पंजाबी लाजपतराय के कार्य की रिपोर्ट लेने वहाँ गया हुआ था। एक बार उन्हें ज्ञात हुआ कि एक गुप्तचर निचली मंजिल में लगे हुए उनके टेलीफोन की बातचीत सुनता रहता है।

उनके दीर्घ सार्वजनिक जीवन में ब्रिटिश सरकार के हाथ, कभी भी कोई सन्दिग्ध वस्तु नहीं लगी। परन्तु फिर भी उनके शत्रु उनके बारे में मिथ्या बातें फैलाते रहे। उन्हें तो यह कहते भी लज्जा नहीं आयी कि लाजपतराय जर्मनी से धन प्राप्त करते हैं। वह निराधार बातें कभी की विस्मृति के गर्भ में जा चुकी हैं, अतः उनका वर्णन करना अनावश्यक होगा।

न्यूयार्क जाकर, कुछ काल तक, मोतियों के एक गुजराती व्यापारी श्री दवे के यहाँ अतिथि रहे। श्री दवे तो स्वयं अजीर्ण रोग के रोगी थे और उनके पास एक होशियार रसोइया था। उसके पकाए स्वादिष्ट खानों का आनन्द उठाने के लिए स्वस्थ्य अतिथियों का वहाँ सदैव स्वागत होता था।

संयुक्तराज्य अमेरिका में वह विद्यार्थी तथा अध्यापक दोनों का पार्ट सफलता से अदा करते रहे। एक संस्था ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया, परन्तु उन्होंने स्वरचित पुस्तक में (संयुक्त राज्य अमेरिका के बारे में) उसका कहीं जिक्र नहीं किया, शायद इसका यह कारण हो कि ग्रन्थ के प्रकाशन के अनन्तर ही उन्हें उस संस्था

—रैण्ड स्कूल का ज्ञान हुआ हो। यहाँ उन्होंने कई व्याख्यान सुने, और स्वयं भी इतिहास तथा राजनीति पर व्याख्यान दिए। उदाहरणार्थ : "संसार की राजनीति में एशिया का स्थान तथा महत्त्व" पर आपकी छः लेक्चरों की एक व्याख्यानमाला हुई। प्रतीत होता है कि अमेरिका में रहते रहते एक बार उन्हें कुछ आधुनिक योरुपीय भाषाएँ सीखने का विचार भी आया था। अमेरिकन मानवता के कौतुकागार के एक बड़े भाग में बोली तथा समझी जाने वाली स्पेनिश भाषा की एक प्रारम्भिक कक्षा में आपने अपना नाम लिखवाया था परन्तु उसमें आपने कोई खास उन्नति नहीं की और अन्त तक आपको जिस योरुपीय भाषा का ज्ञान रहा वह अंग्रेजी भाषा ही थी।

दूसरा भाग

अध्याय एक

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ते में

तीसरी बार यह प्रश्न लाला लाजपतराय के सामने आया कि क्या उनको भी इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रधान पद के लिए खड़ा होना चाहिए। अब पुरानी कठिनाई—कि वह माडरेट नेताओं के साथ अपने प्रेम सम्बन्ध तोड़ने में असमर्थ थे—तथा माडरेट (नर्म दल) नेता किसी भाँति उनको अपने दल से बाहर रखना चाहते थे—जाती रही। कांग्रेस तीव्र गति से जन साधारण का आन्दोलन बनती जा रही थी। अमृतसर अधिवेशन ने यद्यपि कोई उग्र कार्यक्रम तैयार नहीं किया था, परन्तु माडरेटों की दृष्टि में वह एक महान् जनप्रदर्शन था। गोखले की मृत्यु के अनन्तर, लाजपतराय का उस दल के साथ सम्बन्ध समाप्त हो गया, क्योंकि वह सम्बन्ध, समान राजनीतिक दृष्टिकोण की अपेक्षा (गोखले) नेता के प्रति व्यक्तिगत सम्मान पर अवलम्बित था। अतः उनको अब १९०७ की तरह इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी कि माडरेट दल वाले उनको स्वीकार कर लेंगे वा नहीं। १९१४ की नाईं, अब उनको कोई परवाह नहीं थी कि माडरेट लोग उनकी अनुपस्थिति से लाभ उठाकर किसी माडरेट नेता को कांग्रेस में ठूंसने की चाल चल सकेंगे। अब इस बात की भी कोई आशंका नहीं थी कि एक दल तो उनको अपना उम्मीदवार समझता रहे और दूसरे दल वाले मुकाबले के लिए किसी और को खड़ा कर दें।

यद्यपि कांग्रेस राजनीति में नर्म दल वाले लगभग मिट चुके थे, परन्तु नयी समस्याओं का सामना भी तो करना था। भारत पहुँचे, अभी उनको तीन ही सप्ताह बीते होंगे कि महात्मा गान्धी ने अपने असहयोग का कार्यक्रम प्रकाशित कर दिया और साथ साथ खिलाफत नेताओं ने भी यही निश्चय कर लिया था। एक प्रकार से "असहयोग" ही उनकी (लाजपतरायकी) भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा उनका राजनीतिक दर्शन (फिलासफी) था। परन्तु महात्मा के बनाए हुए कार्यक्रम के कुछ अंशों का समर्थन करना उनके लिए कठिन था। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि क्या जनता महात्मा गान्धी के इस प्रस्तावित तूफानी आन्दोलन पर चलने को उद्यत होगी? प्रश्न पृथक पृथक अंशों का नहीं था,

बल्कि सभी कुछ इस बात पर आश्रित था कि जनता उसे व्यावहारिक रूप देने को कहां तक उद्यत है। अपने पिछले राजनीतिक दृष्टिकोण तथा मनोवृत्ति के कारण, उनके महाराष्ट्र तथा बंगाल के राष्ट्रवादियों से घनिष्ठ सम्बन्ध था, परन्तु गान्धी एक नवीन शक्ति थे। गान्धी जी की पवित्रता, साहस, सादगी तथा सत्य प्रेम के लिए, उनके हृदय में उच्च भाव तथा श्रद्धा थी और वह उन्हें भारतीय जनता का एकछत्र नेता समझने लगे थे क्योंकि गान्धी जी का व्यक्तिगत रहन सहन ठीक भारतीय जन साधारण के रहन सहन जैसा ही था। जिस प्रकार हजरत मूसा ने मिश्र में अपने देशवासियों का नेतृत्व किया था, उसी प्रकार यह भी भारतीय जनता को मुक्ति मार्ग दिखलायेंगे, यह उसका प्रबल विश्वास था। लाजपतराय दक्षिण अफ्रीका में गान्धी जी के कार्यों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करते रहे और वहाँ से स्वदेश लौट आने पर उनके कार्यक्रम को अच्छी तरह देखते रहे। उन्होंने उन्हें महायुद्ध के दिनों में इंग्लैण्ड में काम करते भी देखा था और उनकी राजनीति से सहमत न होते हुए भी उनके उत्साह, गाम्भीर्य्य तथा संगठन शक्ति की प्रशंसा की थी। आगे चलकर उन्होंने गान्धी जी के राजनीतिक दार्शनिक तत्व व अहिंसा के सिद्धान्त पर, उनके साथ सार्वजनिक पत्रों में वाद विवाद छेड़ा था। परन्तु दृष्टिकोण के इन मतभेदों के होते हुए भी आपने गान्धी जी के व्यक्तित्व तथा कार्य की (विशेषतः रौलेक्ट एक्ट के दिनों से) जी भरकर प्रशंसा की थी। तब से आप गान्धी जी की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होते गए। आप अमेरिका से लौटने के पूर्व जो सन्देश अपने देशवासियों के नाम भेजते रहे, उनसे गान्धी जी के प्रति उनकी उच्चतम हार्दिक श्रद्धा टपकती है। आपने कहा था, हमारी रुचि के अनुकूल नेता तो गान्धी ही हैं। "परन्तु अभी किसी भी भारी आन्दोलन में गान्धी जी के नेतृत्व की परीक्षा नहीं हुई थी जिसके कारण कि उन्हें आगामी संघर्ष का प्रधान सेनापति चुना जा सके। गान्धी जी इस बात पर तुले हुए थे कि आन्दोलन चला दिया जाय, चाहे उनसे भी अधिक अनुभवी नेता उसमें उनको सहयोग दें वा नहीं। यह भी दिखलायी पड़ रहा था कि उनका साथ न देने वालों की बुरी गत बनने वाली है। ५ वर्ष की दीर्घ अवधि के लिए देश से अनुपस्थित रहने वाले व्यक्ति के लिए बड़ी ही कठिन समस्या थी। वह दलबंदियों से पृथक रहनेवाली अपनी पुरानी नीति पर डटे रहे। ऐसा प्रतीत होता था कि पारस्परिक प्रतिस्पर्धा रखनेवाले तथा नए नए दल देश में बन रहे हैं। अप्रैल के तीसरे सप्ताह में होमरूल लीग के प्रधान के तौर पर गान्धी जी ने अपना एक घोषणापत्र तथा तिलक ने अपनी नैशनल डैमोक्रेटिक पार्टी की ओर से एक और घोषणापत्र जारी किया। इन दोनों में से किसी के साथ भी अपने को सम्बद्ध करने का लाजपतराय का विचार न था।



मई के अन्त में बनारस में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने प्रथम बार असहयोग पर विचार किया। बनारस में होते हुए भी, तिलक उस सभा में नहीं आए। कुछ दिन अनन्तर भारतवर्ष के सभी भागों के प्रतिनिधि व्यक्तियों का एक सम्मेलन असहयोग पर विचार करने के लिए हुआ। गान्धी जी का मुसलमानों के साथ समझौता हो चुका था और असहयोग कार्यक्रम को "अन्तरात्मा" का प्रश्न समझते उससे बँधे हुए थे, चाहे कांग्रेस का निर्णय कुछ ही हो। बनारस की सभा में निश्चय हुआ कि कार्यक्रम पर कलकत्ता में इंडियन नेशनल कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में विचार हो। पंजाब की घटनाओं पर हण्टर कमेटी की ओर से तैयार की जानेवाली रिपोर्ट पर सरकार के फैसले पर विचार करने के लिए अमृतसर में ही कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुलाने का फैसला कर लिया गया था। अब वह रिपोर्ट छप गयी थी और इंडियन नेशनल कांग्रेस की उस समिति की रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गयी थी। सरकार का फैसला भी ज्ञात हो चुका था। इतने में खिलाफत की समस्याएँ भी उठ खड़ी हुई थीं। उन दोनों बातों ने सम्मिलित होकर असहयोग कार्यक्रम को जन्म दिया था। अमृतसर अधिवेशन के अनन्तर वैधानिक सुधार ऐक्ट के नियम भी बन तथा छप चुके थे। अधिकांश लोगों का मत था कि इन नियमों ने माण्टेग्यू सुधारों को खोखला बना डाला है जिसे अमृतसर अधिवेशन "असन्तोषजनक तथा निराशाजनक" घोषित कर चुका था। इन सभी बातों पर इंडियन नेशनल कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में विचार हो सकता था। वह अधिवेशन सितम्बर के प्रथम सप्ताह में कलकत्ता में बुलाया गया।

शीघ्र ही कांग्रेस की वैधानिक मशीन उस बात का निश्चय करने में लग गयी कि जिन असाधारण परिस्थितियों से विवश होकर भारतवर्ष तथा भारतीय कांग्रेस ने एक अधिवेशन बुलाया है उसके प्रधान पद को कौन सुशोभित करे? स्वभावतया बहुत लोगों को लाला जी का नाम ही सूझा, क्योंकि उनके महान् उत्सर्ग तथा सेवाओं को मान्य करने का यही अवसर था और जनता यह आशा लगाए हुए थी कि उनके निर्वासन काल में उन्हें जो अमूल्य अनुभव हुआ है उससे भी देश लाभ उठाए। क्योंकि विशेष अधिवेशन में पंजाब में हुए अत्याचार तथा हत्याकाण्ड आदि प्रश्न मुख्यतः विचाराधीन थे। इसलिए सबसे बड़े पंजाबी को ही प्रधान पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति समझा गया।

अन्य नाम भी प्रस्तावित थे—जिनमें तिलक का नाम भी था—परन्तु बहुमत लाजपतराय के पक्ष में था। २४ जुलाई को, कांग्रेस के प्रधान मोतीलाल नेहरू का खास तार आया "तिलक ने अस्वीकार कर दिया है, आपसे अधिक उपयुक्त अन्य कोई नहीं।" २७ जुलाई को मोतीलाल का डुमरांव (जहां कि

लाला जी तथा सी० आर० दास एक मुकदमे के सिलसिले में गए हुए थे) एक और तार पहुंचा—"आप विधिपूर्वक प्रधान चुन लिए गए हैं। बधाई।" परन्तु वह अभी भी डांवाडोल थे क्योंकि चुनाव सर्वसम्मति से वा भारी बहुमत द्वारा नहीं हुआ था। परन्तु १९०७ वा १९१४ की तरह उनके नाम का विरोध कहीं से भी नहीं हुआ। आपने कई मित्रों से परामर्श किया और कुछ दिन तक निश्चय नहीं किया। उनके मित्रों में से दो पत्र प्राप्त हुए हैं। एक पत्र लाहौर के अखबार ट्रिब्रेयून के सम्पादक श्री कालिनाथराय का है और दूसरा उनके पुराने मित्र मूलराज का है। दोनों पर २८ जुलाई की तिथि है और दोनों में उनसे बलपूर्वक अनुरोध किया गया है कि वह प्रधान पद को स्वीकार कर लें। श्री राय ने लिखा था "भारी बहुमत के दिन जाते रहे। आपके चुनाव के पक्ष में होते हुए भी बहुत से लोग कई कारणों से वोट नहीं देते।" और मूलराज ने लिखा था कि "प्रधान पद फूलों की सेज नहीं होती।" उसने संक्षिप्त रूप से वह शक्तियां भी गिना दी जो कांग्रेस को कुचलने पर उधार खाए बैठी हैं। साथ ही अपने ढंग से उनको मंत्रणा दी, "हमारे मित्र लाला हरिकिशनलाल के शब्दों में सब कुछ भगवान भरोसे ही छोड़ देना चाहिए।" सबसे बढ़कर यह बात थी कि बंगाल के राष्ट्रवादियों ने, जिनके लिए उन्हें बड़ा आदर भाव था, और जिनका सब को अतिथि बनना था, २९ जुलाई को उनको एक तार दिया :—

"बंगाल बहुमत से आपके पक्ष में है, स्वीकृति दें। चौधरी।" सर आशुतोष चौधरी, हाल ही में कलकत्ता हाईकोर्ट की जजी से रिटायर हुए थे और कलकत्ता कांग्रेस के कार्यों में उनका भारी हाथ था।

एक मास में कलकत्ता में होने वाले विशेष अधिवेशन के प्रधान पद को स्वीकार करने का लाला जी ने निश्चय कर लिया।

इन्हीं दिनों में (अगस्त १ को) तिलक के स्वर्गवास हो जाने से पेचीदगी बढ़ गयी। सारा देश शोकसागर में डूब गया। (परन्तु इसकी विशेष हानि तो उन लोगों को पहुँची जो अभी तक असहयोग के नवीन कार्यक्रम के बारे में तटस्थ थे। वे तो स्वर्गवासी की विशुद्ध सम्मति तथा दृढ़ नेतृत्व से वंचित हो गए) लाजपतराय के लिए तो एक ऐसे व्यक्ति अन्तरहित हो गए जिनकी कि वह पुराने कांग्रेसियों में से पूजा करते थे। यद्यपि (लाजपतराय) उन्होंने सूरत में दलबन्दी में पड़ने से इन्कार कर दिया था, परन्तु फिर भी दोनों नेता एक दूसरे को पूर्ण रूप मे समझते थे और आगे चलकर भी दोनों मिलकर काम करते थे, मानो कभी कुछ हुआ ही न हो। नेता के चल बसने पर क्या महाराष्ट्र दल के साथ उनके प्रेम सम्बन्ध जारी रह सकेंगे? स्वयं दल के सन्मुख यह प्रश्न खड़ा हो

गया कि भविष्य में उनका नेता कौन होगा। उनमें से कुछ नेतृत्व के लिए महाराष्ट्र से बाहर की ओर भी देखने लगे थे और पंजाबी नेता पर आंखें लगाए बैठे थे क्योंकि वह जानते थे कि उनके नेता के साथ यदि किसी व्यक्ति का राजनीतिक दृष्टिकोण समता तथा सामीप्य रखता है तो वह पंजाब के ही हैं। तिलक की मृत्यु के शीघ्र ही पश्चात् यह स्पष्ट होने लगा कि यद्यपि महात्मा गान्धी अनुरोध करते थे कि यदि लोकमान्य तिलक जीवित रहते, तो वह उनके आन्दोलन को आशीर्वाद देते, परन्तु तिलक दल वाले गुजरात के इस नए नेता को पसन्द नहीं करते थे। इससे लाजपतराय की कठिनाइयाँ बढ़ जातीं, यदि वह भी निश्चय रूप से गान्धी जी तथा असहयोग के पक्ष में हो जाते। कुछ समय तक अभी वह परिस्थितियों के बारे में सावधान रहना चाहते थे।

अपने अध्यक्षीय भाषण में भी उन्होंने न तो असहयोग कार्यक्रम का पक्ष ही ग्रहण किया और न ही उसका विरोध किया, प्रत्युत भावी अध्यक्षों से भी सिफारिश की कि विवादास्पद विषयों में कभी कोई पक्ष न लिया करें।

"जिस विषय पर देश में भारी मतभेद हो, जैसा कि इस समय है, अध्यक्ष को कोई भी पक्ष ग्रहण करके कांग्रेस का निर्णय पहले ही नहीं दे देना चाहिए।.... में एक ऐसा मार्ग ग्रहण कर रहा हूँ, जो मेरी सम्मति में आपको इस सभा (कांग्रेस) के राष्ट्रीय आकार को सदा के लिए स्थिर रख सकने में सहायक होगा और जिससे आपको एक अन्य लाभ भी होगा कि भविष्य के अध्यक्षों के चुनाव में आपका क्षेत्र संकुचित न होगा।......यथासम्भव कांग्रेस अध्यक्षों का चुनाव आप उन्हीं लोगों में से करें जो देश के राजनीतिक जीवन में सदा अग्र रहते रहें हैं। जब कोई विवादास्पद विषय विचाराधीन हो, तो अध्यक्ष को सर्वथा निष्पक्ष रहना चाहिए, चाहे उसके व्यक्तिगत विचार कुछ ही क्यों न हों। जब आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने मुझे यह प्रतिष्ठित पद प्रदान किया तो मैंने इसी मार्ग पर चलने का निश्चय कर लिया था।......असहयोग कार्यक्रम के विषय में मैं निजी विचार भी रखता हूं, परन्तु कांग्रेस के अधिवेशन के समय मैं पक्षपात रहित होकर कार्यवाही चलाऊँगा।

यद्यपि कांग्रेस के अधिवेशन में अब केवल एक ही मास रह गया था, ५० महस्त्र शब्दों में अध्यक्ष भाषण लिखना काफी परिश्रम का काम था। उनका यह भाषण अपने ढंग का निराला था। वह लिखित भाषणों को पढ़ना तो पसन्द ही नही करते थे, वह तो अपने श्रोताओं के साथ अत्यन्त समीप का सम्बन्ध तथा सम्पर्क रखना चाहते थे। सौभाग्य से उनकी असाधारण स्मरण शक्ति ने उनकी यह समस्या हल कर दी। छपी हुई प्रति को देखे बिना ही, वह ५० हजार शब्दों का भाषण दे सकते थे।

इस भाषण का तीन चौथाई भाग तो ओडवायर के शासन में पंजाब की लम्बी दुख गाथा (जिसकी चरम सीमा सैनिक शासन का आतंक था) के बारे में था। जब से पंजाब की पीड़ा तथा अपमान के समाचार उनको (अमरीका में बैठे हुए) निर्वासन काल में मिलने आरम्भ हुए, उनकी अन्तरात्मा में बेचैनी तथा खलबली सी मच गयी थी। उन्हीं भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति इस भाषण में हुई। (मार्शल।) सैनिक शासन के बारे में सबने सुना था। उन्होंने अपनी राम कहानी का श्रीगणेश उस दिन से किया जब ओडवायर ने पंजाब के शासन की बागडोर लेफ्टीनेण्ट गवर्नर के रूप में संभाली और आते ही भेंट तथा नजराने स्वीकार करने, दरबार लगाने तथा इन दरबारों में प्रतिष्ठित तथा प्रमुख नागरिकों के साथ अपमानजनक व्यवहार करने की प्रथा चलायी। प्रथम दिन से ही यह स्पष्ट था कि ओडवायर जनता के राजनैतिक नेताओं को अपमानित करना तथा कुचलना चाहता था। अपने भाषणों में वह जिन राजनैतिक सिद्धान्तों का प्रचार करता था, उन्हें ब्रिटिश प्रथाओं की परिभाषा में "प्रशियन" कहा जा सकता है। उन्हीं सिद्धान्तों के ठीक अनुकूल ही उसने अपने आतंकवादी शासन का श्रीगणेश प्रान्त के प्रेस तथा अखबारों को यह कहर कर दिया कि सरकार उनको दबाने में कानून का आश्रय लेगी, उनसे जमानतें मांगी जायंगी और जमानतें जब्त भी की जायंगी। उसने उक्त धमकी को पूरा कर दिखाया और अखबारों का गला घोंटने तथा स्वतंत्रता के अणुमात्र से भी वंचित करने का भरसक प्रयत्न किया। केवल राजनैतिक जीवन तथा नागरिक स्वतंत्रता ही उसकी मनमानी कार्यवाहियों के शिकार न थे, पंजाब के व्यापारिक तथा औद्योगिक जीवन पर तुषारपात करने तथा उसकी कमर तोड़ने वाली आपत्ति भी ओडवायर के शासन काल में आयी। कांग्रेस के अध्यक्ष के भाषण में लाजपतराय ने कहा था "यह आपत्ति पंजाब सरकार के अधिकारियों तथा (पंजाब के औद्योगिक जीवन के कर्णधार) लाला हरकिशनलाल के कुछ व्यक्तिगत शत्रुओं के षड्यंत्र द्वारा आयी। मैं उन दिनों, पंजाब नेशनल बैंक (केवल एक ही भारतीय बैंक जो उस आपत्ति से सुरक्षित रहा) का डायरेक्टर था। और मुझे इस बात को देखने तथा अनुभव करने के पूरे अवसर प्राप्त थे कि किस प्रकार वह भारतीय जिन्होंने वह आपत्ति पैदा की, बार बार पंजाब सरकार के एक अधिकारी से भेंट करते थे। उससे पांजाब पर जो कष्ट आ टूटा, पंजाब सरकार ने उसके निवारणार्थ कुछ भी नहीं किया।

जब पंजाब नेशनल बैंक ने सरकार से प्रार्थना की कि आवश्यकता पड़ने पर सरकार सहायता का विश्वास दिलाए, तो सरकार ने उत्तर दिया कि बंगाल बैंक को ही भारी धन राशि दे दी गयी है और जहां जब सहायता की जरूरत

पड़ेगी, वही काम करेगा। पंजाब नेशनल बैंक ने वैसा ही आश्वासन दिलाने के लिए बंगाल बैंक से प्रार्थना की और जमानत के रूप में सरकारी प्रामेसरी नोट पेश करने चाहे, मगर उन्होंने साफ इनकार कर दिया। हमारे हृदयों पर जो प्रभाव उस समय पड़ा, वह यह था कि प्रान्त के सिर पर टूट पड़ने वाले इस दुर्भाग्य से नौकरशाही प्रसन्न है, और यथाशक्ति वह सकंट-निवारण के लिए कुछ भी न करेगी। योरुपियन बैंकों को तो तात्कालिक तथा उदारता पूर्वक सहायता दी गयी, परन्तु भारतीय बैंक सामयिक सहायता के अभाव में चौपट हो गए। सभी इसी परिणाम पर पहुँचते थे कि नौकरशाही का विचार प्रान्त के आर्थिक तथा औद्योगिक धन्धों को कुचल डालने का है ताकि आर्थिक स्वतंत्रता का कोई चिन्ह भी अवशेष न रह पावे। बैंकों की आपत्ति ने हमें इस विवशता का पूरा-पूरा ज्ञान करा दिया जिसे वर्तमान शासन प्रणाली ने जन्म दिया था। हमने यह अनुभव किया कि विदेशी पूंजीपतियों ने हम पर न केवल अपनी शासन प्रणाली ही ठोंसी है, प्रत्युत हमारी ही गांठ के रुपए से (कर के स्वरूप में) अपना कारोबार तथा अपनी शर्तें भी यहां स्थापित कर ली हैं। जब औद्योगिक कमीशन पंजाब आया था, तो लाला हरकिशनलाल ने अपनी गवाही में इसके साथ अन्य बातें भी उनके सन्मुख रखी थीं और जब किसी कमिश्नर ने उनको याद दिलाया कि "क्या आप समझते हैं—आप क्या कर रहे हैं?" तो उन्होंने बड़े जोर से कहा था, "हां"।

इस प्रकार उन्होंने अपने श्रोताओं के सामने समस्त ओडवायर के शासन की झांकी प्रस्तुत करते हुए बतलाया कि किस प्रकार वह शासन अक्षरशः आतंकवाद तथा अन्धेरखाता था और वह अप्रैल व मई १९१९ में अपनी चरमसीमा को पहुँच गया। जनरल डायर का वर्णन करते हुए माण्टेग्यू ने भी सर माईकल ओडवायर के आदर्शों का वर्णन इन्हीं शब्दों में किया है। उसने मार्शल ला की कार्यवाहियों की जांच की थी और कहा था कि पंजाब में मार्शल ला जारी करने तथा उससे पूर्व व पश्चात् की घटनाओं के साथ जिन व्यक्तियों का सम्बन्ध है सर माईकल ही उनमें से प्रमुख दोषी थे। "मैं तो यह कहने का भी साहस करता हूँ कि भारत में अंग्रेजी शासन के समस्त इतिहास में किसी व्यक्ति ने ब्रिटिश साम्राज्य का इतना भारी अहित नहीं किया और ब्रिटिश जाति के यशस्वी नाम को इतना कलंकित नहीं किया जितना कि सर माईकल ओडवायर ने।"

आपने ओडवायर के विरुद्ध नियमपूर्वक चार्जशीट (दोषारोपण) तैयार किया :—

(१) मैं उस पर आरोप करता हूँ कि उसने जान बूझकर "फूट डालो

और शासन करो" की नीति बर्ती है—मुसलमानों को हिन्दुओं से तथा दोनों को सिक्खों से पृथक कर रखा है।

(२) मैं उस पर दोषारोपण करता हूँ कि उसने सैनिक तथा शिक्षित श्रेणियों तथा देहाती और शहरी हितों में कृत्रिम तथा शरारतभरे भेदभाव उत्पन्न करके तथा उनमें पारस्परिक तुच्छ प्रतिस्पर्द्धा पैदा करके प्रान्त की जनता में नयी राजसी फूट तथा पृथकता डाली है।

(३) मैं उस पर दोषारोपण करता हूँ कि उसने रंगरूटों की भर्ती करने में युद्ध के लिए चन्दे तथा ऋण आदि प्राप्त करने में कानून तथा अपने अधिकार का दुरुपयोग किया है।

(४) मैं उस पर दोषारोपण करता हूँ कि भर्ती तथा युद्ध ऋण आदि के कार्यों में जो लोग उसके हाथ की कठपुतलियां थे, उसने उनके घृणित तथा शैतानी करतूतों पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया है, और वह अपने अधीन न्यायाधीशों तथा पुलिस की घूसखारी तथा नीच कार्यों को रोकने में असफल रहा है।

(५) मैं उस पर दोषारोपण करता हूँ कि उसने कानून की विधि तथा विधान को उन लोगों को कुचलने में बर्ता है जिन्होंने किंचितमात्र भी स्वतंत्रता का भाव अथवा राजनीतिक उन्नति की इच्छा प्रदर्शित की है।

(६) मैं उस पर यह दोषारोपण करता हूँ कि उसने मार्शल ला की आवश्यकता के बारे में भारत सरकार को धोखा दिया है और साधारण कानून के अधीन चलने लायक अभियोगों को भी मार्शल ला के अधीन ले जाकर भी धोखा दिया है। वह स्पष्ट झूठ बोलने का अपराधी है जब उसने भारत सरकार को सुझाया कि पंजाब का जनरल आफिसर कमांडिंग भी मेरे साथ सहमत है।

(७) मैं उसपर यह दोषारोपण करता हूँ कि उसने जान बूझकर प्रतिहिंसात्मक तथा दण्डात्मक उद्देश्यों के लिए मार्शल ला जारी रखा, जब कि पंजाब में न तो कोई विद्रोह था और न प्रान्त में पुनः गड़बड़ी की कोई सम्भावना थी।

(८) मैं उस पर यह दोषारोपण करता हूं कि वह पंजाब के लोगों को अपमानित करने तथा उन पर नृशंस अत्याचार ढाने आदि का शब्दों तथा कार्यों द्वारा साधन बना रहा है।

(९) मैं उसपर जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड का सहायक होने का दोषारोपण करता हूँ। जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड का समर्थन करके उसने अपने आपको मार्शल ला शासन द्वारा की गयी समस्त कार्यवाहियों का उत्तरदायी बना लिया है।

(१०) मैं उस पर यह दोषारोपण करता हूँ कि उसने पंजाब के लोगों से दण्डात्म रूप में वसूल किए अनुचित जुर्मानों आदि पर पर्दा डालने की कोशिश की है।

(११) मैं उस पर यह दोषारोपण करता हूँ कि उसने १० तारीख की खेदजनक घटनाओं के उपरान्त ११ को, तथा जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के अनन्तर १४ अप्रैल को अमृतसर न जाकर अपने कर्तव्य पालन में दण्डनीय असावधानी दिखलायी है।

(१२) मैं उस पर यह दोषारोपण करता हूँ कि उसने पंजाब से बिदा होते समय अनुचित तथा नीच धमकियों द्वारा पंजाब की जनता से बलात् मान-पत्र प्राप्त किए हैं, और जब वे मान पत्र उसके पिट्ठुओं के संरक्षण में थे, तो उनमें भारी परिवर्तन कर डाले गए और अपने बचाव के लिए इंगलैण्ड जाकर उनका दुरुपयोग किया।

यह बड़े भारी तथा गम्भीर आरोप हैं। मैं चुनौती देता हूँ कि इनकी पूरी पूरी जांच करायी जाय, और मैं ईश्वर तथा जनता के सन्मुख घोषणा करता हूं कि जब तक ऐसी जांच न की जायगी, मेरा प्रान्त तथा मेरे देशवासी सन्तुष्ट नहीं होंगे।"

उनके भाषण का अधिकांश उन्हीं आरोपों के सिद्ध करने वाले प्रमाणों, घटनाओं तथा युक्तियों से पूर्ण था। इनमें ओडवायर के अपने वक्तव्य तथा उसके आतंकपूर्ण शासन की वे बातें सम्मिलित थीं जिनका उनको व्यक्तिगत ज्ञान था। कुछ सामग्री उनको ओडवायर की भर्ती करने तथा युद्ध के लिए धन संग्रह आदि के ढंगों तथा षडयंत्रों के पैदा करने तथा उनसे निपटने के जारशाही उपायों, तथा मार्शल ला शासन पर कांग्रेस उपसमिति तथा हण्टर रिपोर्ट की साक्षियों में से प्राप्त हुई थी।

आगे चल कर ओडवायर ने सर शंकरन नायर के विरुद्ध मानहानि का एक केस जीत लिया था और समझने लगा कि वह निर्दोष है। सच्ची बात यह है कि सर शंकरन नायर का शिमला में भारत सरकार के एक सदस्य होने के नाते, ओडवायर की काली करतूतों में अप्रत्यक्ष रूप से, हाथ था। अतः उनका पक्ष खासा निर्बल था। ओडवायर की सफाई का यही अर्थ हो सकता था कि भारत सरकार ने उनके कार्यों की रोक थाम नहीं की, अतः वह (भारत सरकार) भी दोषी है। परन्तु यदि वह सचमुच यह सिद्ध करना चाहता था कि वह निर्दोष है तो उसे लाजपतराय (अथवा कांग्रेस उपसमिति वा हण्टर कमेटी के बहुमत के विरुद्ध) के विरुद्ध मानहानि का केस चलाना चाहिए था जिनसे बढ़कर ऐसे प्रभावशाली शब्दों में किसी ने उस पर दोषारोपण नहीं किया था।

पंजाब के अन्याय के अतिरिक्त, विशेष अधिवेशन में दो अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों—टर्की का संधिपत्र तथा माण्टेग्यू सुधार के चलाने के नियमों पर भी विचार होना था। सुधार नियमों के विषय में तो उनका अपेक्षाकृत संक्षिप्त सा संकेत था। सुधार योजना के बारे में तो मैं अपनी सम्मति एक वाक्य में दे सकता हूँ–१९१८ में तो हमें कुछ कुछ प्रसन्नता होती थी, १९१९ में इससे उदासीनता हो गयी और १९२० में वह निराशा में परिणत हो गयी। जब भारत मंत्री तथा वायसराय का सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित हुआ तब मेरे मन में प्रसन्नता की लहर उठी थी, परन्तु वह क्षणिक ही सिद्ध हुई। जब उसे वैधानिक रूप प्राप्त हुआ, और इसको चलाने वाले नियमों तथा उपनियमों ने तो और अधिक निराशापूर्ण बना डाला है। आपने जनता से अनुरोध किया "निश्चय कर लो कि हम पूरी रोटी लेंगे, आधी से कदापि सन्तुष्ट न होंगे। मुझे तो आधी रोटी स्वीकार करने में भी कोई आपत्ति न होगी, परन्तु इस शर्त पर कि जो आधा भाग हमें मिलेगा, उस का चुनाव हम स्वयं करें, न कि नौकरशाही। नौकरशाही आटा गूँधने तथा रोटी पकाने की कला में ऐसी दक्ष है कि जो आधा भाग वह अपने लिए रख लेगी, समस्त पौष्टिक अंश तो उसी में होंगे और हमारे भाग में सूखी तथा नीरस भूसी ही आएगी। आटा गूँधते समय वह चालाकी से हमारे भाग में कई व्याधियों के कीटाणु भी मिश्रित कर डालेंगे।"

"यह हमारे सौभाग्य की चरम सीमा होगी, यदि नियमों तथा कायदों में वर्णित हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख तथा ईसाइयों के भेद भाव, देहाती तथा शहरी लोगों के भेद भाव, ब्राह्मण तथा अब्राह्मण के भेदभाव, ब्रिटिश प्रजा तथा देशी रियासतों की प्रजा के भेद भाव तथा सैनिक श्रेणियों और नागरिकों के भेद भावों के होते हुए भी हम राष्ट्रीय भावना का विकास करने में समर्थ हो गए। वह भावना उक्त क्षुद्र भेद भावों से उच्चतर होगी और उसके द्वारा हम एक ठोस जाति बन पाएंगे और स्वतंत्र जाति के रूप में जिएंगे और फूलेंगे फलेंगे।

टर्की की समस्या पर भी लाजपतराय ने बलपूर्ण तथा सारगर्भित वक्तव्य दिया। आपने समस्या के केवल धार्मिक पहलू पर ही अधिक ध्यान नहीं दिया।

"मि० लीलैण्ड बक्सटन के शब्दों में इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं कि अमुक प्रोफेसर अथवा अमुक डाक्टर के मुसलमानों के विश्वासों के विषय में क्या विचार है। सच्ची बात तो यह है कि अधिकांश मुसलमानों का क्या विश्वास है। सुन्नी मुसलमानों का विश्वास है कि टर्की का सुल्तान उनका खलीफा है और इस्लाम के हितों की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि वह सुल्तान एक

विशाल, बलशाली तथा स्वतंत्र राज्य का अधिक नायक हो। मुस्लिम विधान ग्रन्थों में इस प्रकार के राज्य की सीमाओं की परिभाषा दी हुई है।

"इस समस्या के धार्मिक पहलू पर भारत भर के मुसलमानों में पूर्ण मतैक्य है। मेरा विश्वास है भारतवर्ष के लाखों सुन्नी मुसलमानों में से कुछ इने गिने लोग ही ऐसे होंगे जिन्हें इस बात में किसी प्रकार का सन्देह होगा। अत: हमें स्वीकार करना होगा कि इस मामले में केन्द्रीय खिलाफत कमेटी की व्याख्या ही ठीक है। यह मामला हमारे मुसलमान देशवासियों के निर्णय का था और उहोंने फैसला कर लिया है। उनका दावा है टर्किश संधिपत्र इस्लाम के मूल सिद्धान्तों की अवहेलना करता है, उन्हें अपने धार्मिक कर्त्तव्यपालन से रोकता है और हमारे लिए उस जाति के साथ मैत्री के सम्बन्ध बनाए रखना असम्भव बनाता है जो उसके जन्म का कारण है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन्धि के समय ब्रिटिश प्रधान मंत्री की ओर से भारत के मुसलमानों को दिए गए वचन की मिट्टी-पलीद की गयी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत के मुसलमानों में इस बात मे भारी असन्तोष तथा व्याकुलता फैली है कि टर्की का सन्धिपत्र इस्लाम के मूल सिद्धान्तों की अवहेलना करता है। उनके धार्मिक कर्तव्य पालन में बाधा डालता है और उनके लिए उस जाति के साथ मित्र भाव रखना असम्भव बनाता है जो उसके जन्म कारण है।

सन्धिपत्र के राजनीतिक पहलू तथा भारतीय समस्या पर उसके अप्रत्यक्ष प्रभाव के बारे में (केवल भारतीय मुसलमानों के लिए नहीं) आपने बहुत कुछ कहा।

"परन्तु मेरे विचार में टर्किश सन्धिपत्र में और भी कई बातें हैं जिन पर ध्यान देना चाहिए। मेरा दावा है कि एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य का अधिक फैलाव भारत के कल्याण के लिए हानिकर तथा मानव जाति की स्वतंत्रता के लिए घातक है। अंग्रेजों ने अफ्रीका तथा एशिया के भिन्न-भिन्न भागों को जीतने के लिए बहुधा भारतीय सेनाओं का उपयोग किया है। चिरकाल तक समस्त योरुपीय राष्ट्र एक अलिखित कानून को अपने लिए अनिवार्य समझते रहे कि किसी भी योरुपीय युद्ध में अयोरुपीय सेनाएँ न बर्ती जाएँगी। गत महायुद्ध में उस कानून की इतिश्री कर दी गयी। मित्रराष्ट्रों ने योरुप में युद्ध के दिनों में तथा युद्ध के अनन्तर भारतीय सेनाओं तथा अफ्रीकन सेनाओं का उपयोग किया। काली (रंगदार) सेनाएं जर्मनी पर अधिकृत रहीं तथा कुछ काल के लिए उन्हें आयलैंड में भी रक्खा गया। मैं इस घृणित सामाजिक प्रतिबन्ध के उच्छेद पर रुष्ट नहीं हूँ। उस दृष्टिकोण से तो मैं उसका स्वागत करूँगा, परन्तु

निस्संदेह उससे सैनिकवाद का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाता है। अरब में अंग्रेजी आधिपत्य तथा मेसोपोटैमिया की अंगरेजों द्वारा विजय से तो व्यावहारिक रूप में फारस तथा मध्यएशिया के भी साम्राज्य पेट में समा जायँगे और शायद आगे चल कर जो कुछ भारत में हुआ है, वहां भी उसी की पुनरावृत्ति हो—अर्थात् जनसाधारण से अस्त्र-शस्त्र छीन लिए जायं और कुछ लोगों को सेना में भर्ती करके उन्हें सैनिक शिक्षा दी जाय। हमारे मनों में डायर के बारे में विवादों की स्मृति अभी ताज़ी है। मेरे देशवासी अपनी तथा शेष संसार की स्वतंत्रता पर उस कार्यवाही के प्रभाव की कल्पना करें। हमारे लिए, जो इस देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, यह सम्भावना कभी सुखकर नहीं हो सकती कि भारत में अफगान, फारसी तथा अरबी सेनाएं रक्खी जायं। कहा जायगा कि ऐसी सम्भावना तो सुदूर तथा कपोल-कल्पित है। मुझे भय है कि मैं इस विचार से सहमत नहीं हो सकता। जो कुछ आज सुदूर दिखलायी पड़ता है, कल समीप हो सकता है। यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को मिस्र, ईरान, अरब, मेसोपोटैमिया, सीरिया तथा मध्य एशिया में भारतीय सेनाएं वर्तने में किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ, तो उन देशों में भर्ती की हुई सेनाओं को हमारे विरुद्ध बर्तने में उसे भला क्यों संकोच होने लगे ? यदि यह बात सत्य निकली, तो हिन्दू-मुस्लिम समस्या दस गुना अधिक भयानक तथा कष्टप्रद हो जायगी।"

"फिर इस प्रश्न का एक अन्य पहलू भी है। यदि इन देशों की मुस्लिम जनता ने अंग्रेजों का विरोध जारी रक्खा (जैसा कि आगामी कई वर्षों तक इसकी संभावना है, उन देशों में सदैव भारतीय सेनाओं को उन्हें कुचलने के लिए भेजा जायगा—जिसका यह अर्थ होगा कि हमारे धन-जन का निरन्तर व अनन्त अपव्यय होता जायगा। अतः भारत के हित के लिए यह अनिवार्य है कि पश्चिमी एशिया के ये मुस्लिम देश स्वतंत्र तथा स्वाधीन बने रहें। ये आदेशात्मक क्षेत्र (मैंडेटरी ज्यूरिसडिक्शन) के बहाने भी उनका ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिश्रण हमारे लिए अहितकर होगा। हम जानते हैं कि इन आदेशों (मेण्डेट्स) का वास्तविक प्रयोजन क्या है। अंग्रेजों को मेसोपोटैमिया में ८० हजार सैनिक रखने पड़े हैं और फ्रेंच सरकार को भी उतने ही सैनिक सीरिया में रखने पड़े हैं। युद्ध के अनन्तर भी इन शक्तियों ने इन देशों में पानी की तरह धन व्यय किया है। यह व्यय उन पिछड़े हुए देशों के कल्याणार्थ नहीं किया जा रहा है। जहां पहले टर्की का साम्राज्य था, वहां इस समय कई युद्ध चल रहे हैं।"

लाला जी के मन में कोई ऐसा भ्रम नहीं था कि राष्ट्र संघ (लीग आफ नेशन्स) के द्वारा जातियों अथवा राष्ट्रों में किसी नवीन युग (प्रेम सम्बन्धों) का श्रीगणेश

किया जायगा। "सज्जनो, राष्ट्रसंघ एक निरर्थक-सी संस्था है। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस ही लीग हैं।" ये लालाजी के शब्द हैं।

खिलाफत के अन्याय तथा पंजाब के अन्याय के बारे में लाला लाजपतराय ने बड़े जोरदार शब्दों में अपने विचार प्रकट किए, परन्तु जैसा हम पहले भी कह चुके हैं, इन अन्यायों की क्षतिपूर्ति करने वाले महात्मा गांधी के असहयोग कार्यक्रम के बारे में उन्होंने मौन साध रखा। दोनों पक्षों में बड़े-बड़े धुरन्धर नेता तथा महारथी जुट रहे थे। अली बन्धु, कुछ अन्य मसलमान नेता तथा अन्त में कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन के प्रधान—पंडित मोतीलाल नेहरू भी गांधी के पक्ष में थे। लाजपतराय इसमें एक छोटा सा परिवर्तन चाहते थे—अर्थात् विद्यालयों तथा न्यायालयों का बहिष्कार शनैः-शनैः हो। असहयोग का प्रस्ताव स्वयं गांधीजी ने पेश किया था। विपिनचन्द्र पाल ने एक संशोधन पेश किया और सी० आर० दास ने उसका अनुमोदन किया। वास्तव में गांधीजी के कार्यक्रम के विरोध का नेतृत्व दास ही के जिम्मे था। तिलक का स्वर्गवास हो चुका था। लाजपतराय तो अध्यक्ष के रूप में तटस्थता से सन्तुष्ट थे। कार्यक्रम का विरोध दास के नेतृत्व में बंगाल तथा महाराष्ट्र के राष्ट्रवादियों की ओर से हो रहा था। विषय निर्धारिणी सभा में केवल ७ वोटों के मामूली बहुमत से प्रस्ताव पास हो गया, परन्तु खुले अधिवेशन में गान्धीजी की विजय हुई। मतगणना खूब कस कर तथा सावधानी से की गयी। इस कार्य के लिए पण्डाल खाली कराना पड़ा और वोटों की पड़ताल का काम स्वयं अध्यक्ष के निरीक्षण में ६ घण्टों में समाप्त हुआ। १८५५ वोट गांधीजी के प्रस्ताव के पक्ष में थे और ८७३ संशोधन के पक्ष में थे। अधिवेशन की समाप्ति पर-लाजपतराय ने कुछ आशंकाएं प्रकट कीं। यह वहां से वैसे ही तटस्थ लौटे, जैसे तटस्थ गए थे।

लाजपतराय असहयोग के सिद्धान्त से पूर्णतया सहमत थे। एक प्रकार से कलकत्ता के कार्यक्रम में भी उन्हें कोई दोष वा त्रुटि दिखायी नहीं दी। वह जानते थे कि राजभक्त लोग सरकारी उपाधियों आदि का त्याग नही करेंगे, परन्तु इतना भी कम न था कि जनता की दृष्टि में उनका कोई महत्व न रहा। यदि वकीलों की एक भारी संख्या न्यायालयों का बहिष्कार कर दे तो इससे जनसाधारण को कोई हानि नहीं होगी, प्रत्युत कुछ लाभ ही होगा। उनका निजी विचार भी पुनः वकालत करने का नहीं था, क्योंकि वह अपने अनुभव से अच्छी तरह जानते थे कि ब्रिटिश न्याय प्रणाली ने भारतीय जनता को भयानक हानि पहुंचायी थी। राष्ट्रवादियों में गांधीजी के कार्यक्रम के आलोचकों को धारासभाओं का बहिष्कार खटकता था, परन्तु इसका मूल सुझाव लाजपतराय की ओर से किया हुआ था और

गांधीजी ने इसे अपना लिया। इस बारे में उन्हें परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। हां, शिक्षा के बहिष्कार से वह सहमत नहीं हो सकते थे। वह स्वयं जीवन भर राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थक रहे। उन्होंने इस समस्या पर काफी गहरा विचार किया था और जनमत को उसके पक्ष में करने का प्रयत्न भी किया। उन्होंने इसके लिए अपने ढंग से कुछ प्रयत्न भी किए, यद्यपि उनकी अपनी बनायी हुई संस्थाएं भी उनके आजर्शों से विपरीत दिशा में जाती हुई प्रतीत होती थीं। वह पूर्ण रूप से जानते थे कि अशुद्ध शिक्षा प्रणाली जनसाधारण के लिए अहितकर सिद्ध हो रही है, परन्तु साथ ही वह समझते थे कि शिक्षा के बहिष्कार से भी किसी प्रकार समस्या हल नहीं होगी। कार्यक्रम के विभिन्न अंशों की अपेक्षा, उन्हें इस बात की कहीं अधिक चिन्ता थी कि क्या वह अवसर उपयुक्त है? यदि कार्यक्रम को वास्तविक तथा दृढ़ जनमत का समर्थन प्राप्त है, तो गलतियों वा अशुद्धियों की कोई चिन्ता नहीं। जनमतके घोषण के बिना पूर्णतम कार्यक्रम भी केवल ढोंग वा तमाशा मात्र है। अतः वह कुछ प्रतीक्षा करके, घटनाचक्र के विकास का रुख देखना चाहते थे। वह एकदम आन्दोलन में नहीं कूद पड़े, परन्तु जो लोग कूद पड़े थे, आपने उनकी निन्दा अथवा आलोचना भी नहीं की मुझे शंका है कि इस आत्मोत्सर्ग के कार्यक्रम में देश हमारा साथ दे सकेगा अथवा नहीं। . . . मैं आन्दोलन की प्रगति में किसी प्रकार भी बाधा नहीं डालूंगा। मैं सब प्रकार से आपकी सफलता चाहता हूं और यदि आप जनसाधारण को सहमत कर लें तो मैं भी आपका समर्थक बन जाऊँगा। तिलक के परलोकगमन के अनन्तर गान्धीजी ने असहयोग के बारे में उपरोक्त शब्दों में तिलक की सम्मति बतलाई। लाजपतराय की भी वही सम्मति थी। हां, उनके मन में यह स्पष्ट था कि एक वर्ष के भीतर स्वराज्य-प्राप्ति असम्भव है। उसका उन्हें कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होता था। वह उन आशावादियों में से नहीं थे जिनका विश्वास था कि यदि हमने एक वर्ष के लगभग कलकत्ता कार्यक्रम को चला लिया तो सरकारी मशीन का चलना बन्द हो जायगा और अंग्रेजी राज्य नष्टभ्रष्ट हो जायगा। लाजपतराय भलीभांति जानते थे कि संघर्ष बहुत दीर्घ तथा कठोर होगा और कलकत्ता कार्यक्रम को केवल एक तैयारी मात्र समझा जा सकता है। जनसाधारण का ध्यान आकृष्ट करने के लिए तो इस प्रकार के नारे ठीक समझे जा सकते हैं, परन्तु नेताओं के लिए यह उपयुक्त नहीं कि इस प्रकार के अन्धे आशावाद को राष्ट्रीय नीति का आधार बनाएं।

+ + +

लाहौर लौटकर वह चुपचाप अपने उस कार्य में संलग्न हो गए जो आपने असहयोग अधिवेशन (कलकत्ता) से पूर्व आरम्भ कर रखा था। अपने उर्दू दैनिक

पत्र "बन्देमातरम्" के लिए काम करने और तिलक राजनीतिक विद्यालय की योजना को व्यावहारिक रूप देने में लगे। उस विद्यालय के लिए धन संग्रहार्थ आप दौरा करते थे। यद्यपि वह विद्यार्थियों से विद्यालयों का बहिष्कार नहीं करवाना चाहते थे, परन्तु उनकी यह इच्छा अवश्य थी कि यदि कुछ नवयुवक शिक्षालयों से असहयोग कर लें, तो उन्हें ठोस राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने का अवसर प्राप्त हो जायगा।

पंजाब में असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश गम्भीरता से नहीं हो पाया। पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने इसके लिए पर्याप्त उत्साह नहीं दिखलाया, फलत: सैफुद्दीन किचलू, के० सन्तानम् तथा शार्दूलसिंह कवीश्वर—इन तीन मंत्रियों की एक विशेष असहयोग समिति बनायी गयी। उपरोक्त सज्जन, तथा रामभजदत्त चौधरी और सरला देवी ही असहयोग के आधार स्तम्भ थे। आगे चलकर कुछ कालेजों के विद्यार्थियों ने उनकी सहायता करना शुरू कर दिया। सन्तानम् तथा कवीश्वर ने लाजपतराय तथा हरकिशनलाल को अपने साथ लेने का भरसक प्रयत्न किया, क्योंकि वह जानते थे कि इन महारथियों के बिना पंजाब में बलशाली आन्दोलन सम्भव नहीं होगा। हरकिशनलाल अपने स्वभाव के अनुसार सभी बातों को हँसी में उड़ा देते थे और सीधे "हां" अथवा "नहीं" में उत्तर देने की परवाह नहीं करते थे। लाजपतराय आन्दोलन की सफलता चाहते थे, परन्तु कुछ काल तक प्रतीक्षा कर रहे थे।

महात्मा गान्धी पंजाब पधारे। कुछ दिनों के लिए तो कालेज के विद्यार्थियों में बड़ा जोश रहा और उनकी हड़तालों ने संस्थाओं की प्रबन्धक कमेटियों को चिन्तातुर बना डाला। महात्मा के दर्शन करने तथा उनके विचार सुनने के लिए विशाल जनसमूह भी एकत्रित होता था, परन्तु उनका आगमन भी लालाजी को असहयोग आन्दोलन का पक्षपाती न बना सका। महात्मा गान्धी के चले जाने के अनन्तर कुछ अन्य वकीलों ने असहयोग किया। जिन विद्यार्थियों ने पढ़ाई छोड़ी थी, उनका अधिकांश तो वापस कालेजों में चला गया। केवल मुट्ठी भर ही डटे रहे। परन्तु लालाजी की तरह, पंजाब प्रतीक्षा ही कर रहा था।

कभी कभी कोई विद्यार्थी उनसे परामर्श लेने आ जाता था कि क्या वह विद्यालय छोड़ दे? साधारणत: उनका यह उत्तर होता था कि विद्यार्थी स्वयं अपने हानि लाभ तथा बहिष्कार के गुण-दोष पर विचार करे और फिर फैसला करे। आप साधारण शिक्षा को अधिक महत्व नहीं देते थे, परन्तु आप कहा करते थे कि विद्यार्थी उसी दशा में विद्यालय को तिलांजलि दे यदि वह समझे कि वह उस पर दृढ़ रह सकेगा। भावुकता के वशीभूत होकर कोई पग नहीं उठाना चाहिए। यदि वह

कोई मेडीकल (डाक्टरी) विभाग अथवा इंजीनियरिंग विभाग का विद्यार्थी होता, अथवा किसी ऐसे विद्यार्थी के माता पिता उनसे परामर्श लेने आते, तो आप निश्चित रूप से असहयोग के लिए मना कर देते। देश के लिए केवल ग्रेजुएटों की आवश्यकता नहीं है, परन्तु मातृभूमि को अभी और भी अधिक डाक्टरों, इंजीनियरों तथा विशेषज्ञों की आवश्यकता है।

कभी कभी ऐसे नवयुवक भी उनके पास आते थे जिन्होंने निश्चित रूप से कालिज छोड़ें थे। वे उनके पास डरते डरते आया करते, क्योंकि लालाजी आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे। उनको सदा अचम्भा होता था जब लालाजी उनको मैत्रीपूर्ण परामर्श देते और अपने तिलक विद्यालय में उनका स्वागत करते। वे जानते थे कि अधिकांश विद्यार्थियों ने अपने माता पिता की इच्छा के विरुद्ध असहयोग किया है। आपने उनके लिए एक छात्रावास का प्रबन्ध कर दिया और अपने विद्यादिया के धन से उनके निर्वाहार्थ उदारतापूर्ण खर्च करते थे। आप यह नहीं चाहते थे कि विद्यार्थीगण सभी प्रकार की शिक्षा से असहयोग करें। आपके विद्यालय में न केवल पंजाब से असहयोगी विद्यार्थी आने लगे, प्रत्युत उत्तर प्रदेश (यू० पी०), कुछ मध्यप्रान्त तथा महाराष्ट्र से भी आए। एक नवयुवक दक्षिण भारत से भी आया। कांग्रेस के आगामी नियमपूर्वक अधिवेशन तक इसी प्रकार काम चलता रहा। अब वह समय आ गया था कि निश्चित रूप से लालाजी आन्दोलन में शामिला हो जायँ अथवा निश्चित रूप से उससे पृथक् रहें।

यद्यपि पंजाब में आन्दोलन ने कोई बल नहीं पकड़ा था, परन्तु लाजपतराय समझते थे कि वहां उसकी काफी गुंजाइश है। कई अन्य प्रान्तों में आन्दोलन की प्रगति आश्चर्यजनक थी।

एक प्रकार से लाजपतराय भी आन्दोलन के समीप आते जा रहे थे। कांग्रेस अधिवेशन के साथ ही साथ, नागपुर में अखिल भारतीय विद्यार्थी सम्मेलन भी हो रहा था। उनसे उक्त सम्मेलन के अध्यक्ष बनने की प्रार्थना की गयी, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। कलकत्तावाली परिस्थिति की पुनरावृत्ति हो रही थी, परन्तु भेद केवल इतना था कि विद्यार्थियों को इस बात का पूरा ज्ञान था कि वे क्या करने जा रहे हैं, और उनके अध्यक्ष उनसे पूर्णत: सहमत नहीं हैं। अध्यक्ष महोदय ने युवक संस्था वालों को धन्यवाद देते हुए लिखा था "मैं नहीं जानता आपकी दी हुई इस प्रतिष्ठा पर मुझे प्रसन्न होना चाहिए वा नहीं। मेरे कन्धों पर इससे अधिक नाजुक कार्य का भार कभी नहीं पड़ा और मैं थोड़ा घबरा-सा गया हूँ। स्वागत समिति को धन्यवाद देते हुए मुझे उनके विरुद्ध एक शिकायत करनी है कि उन्होंने मेरे साथ न्याय नहीं किया है। जिस समय उन्होंने मुझे इस आदरणीय पद



से सम्मानित किया, उन्हें स्कूलों तथा कालेजों के बारे में असहयोग सम्बन्धी मेरे विचारों का पूर्ण ज्ञान था। यह कोई रहस्य नहीं था। मैंने अपने विचार खुले रूप में व्यक्त कर दिए थे। यह जानते हुए भी उन्होंने मुझे अपना अध्यक्ष चुन लिया है और मझे इस सम्मेलन के वास्तविक उद्देश्य की कोई सूचना नहीं दी (हँसी)। इस असमंजस में होते हुए भी मैं अपने कर्तव्य पालन में त्रुटि नहीं आने दूंगा और एक वयोवृद्ध स्पष्ट वक्ता पंजाबी के रूप में अपने हृदय के भाव आपके सामने रक्खूंगा।"

"कलकत्ता कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में मैंने अपने भाषण के अन्त में कहा था कि मैं स्कूलों तथा कालेजों के बहिष्कार के कार्यक्रम के विरुद्ध हूँ। मैं इस विषय पर समय समय पर अपने विचार प्रकट करता रहा हूँ जिन्हें सम्भव है कुछ लोग शायद असंगत समझते हों। कांग्रेस अधिवेशन से लौटते ही मैंने विद्यार्थियों की एक सार्वजनिक सभा में उनको बतलाया था कि यदि समस्त आर्ट्स कालेज तथा वकालत के कालेज बन्द कर दिए जायं, तो मुझे प्रसन्नता होगी (सुनो, सुनो) जब कभी भी कोई विद्यार्थी मेरे पास परामर्श के लिए आता, तो मेरा यही परामर्श होना।

वकालत का कालेज—	तत्काल ही त्याग दो।
मेडिकल, इंजीनियरिंग अथवा टेक्नीकल कालेज	—कभी न छोड़ो।
आर्ट्स कालेज	सोच विचार कर पग उठाओ।

यदि तुम वास्तव में यही समझते हो कि तुम्हारा कर्तव्य पालन अथवा मातृभूमि की पुकार यही है, तो आर्ट्स कालेजों को त्याग दो, परन्तु मन में ऐसे किसी भ्रम को स्थान मत दो कि कोई आपकी शिक्षा के प्रबन्ध के लिए राष्ट्रीय महाविद्यालय स्थापित कर देगा . . .। इस विषय में हम सभी लोग सहमत हैं कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली द्वारा नौकरशाही की स्थिति मजबूत होती है और हमें यथाशक्ति कुछ न कुछ करना चाहिए। आर्थिक रूप से स्वतंत्र तथा शिक्षा के सम्बन्ध में (सरकार से) स्वतंत्र विद्यालय स्थापित करने में हमारा राष्ट्रीय उत्तरदायित्व है। परन्तु मैं नहीं जानता कि क्या हम इस प्रश्न पर भी सभी एकमत हैं वा नहीं कि इस समय अपनी समस्त शक्तियां राष्ट्रीय विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की स्थापना में लगा देने से, समस्त देश में राजनीतिक प्रचार के अधिक महत्वपूर्ण तथा महान् कार्य की ओर से उदासीनता न समझी जायगी। इस समय हम ऐसा नहीं कर सकते। हम अत्यल्प काल में स्वराज्य प्राप्ति चाहते हैं, अतः अपना समय तथा शक्ति ऐसी समस्या में नहीं लगा सकते। मैं अपने मित्रों से अनुरोध करता रहता हूं कि हम ऐसा कोई कार्य आरम्भ नहीं करेंगे जिससे हमारे मुख्य कार्य में किसी प्रकार की बाधा पड़े। मैं यह बात इससे पूर्व भी कह चुका हूं कि राष्ट्रीय सरकार के बिना हम

राष्ट्रीय शिक्षा का प्रबन्ध करने में असमर्थ हैं. . .यह बात स्पष्ट करने के पश्चात् मैं किसी भी विद्यार्थी को बलपूर्वक कह सकता हूं कि तुम आर्ट्स अथवा वकालत के कालेज को छोड़ दो।"

इस प्रश्न का कि असहयोगी विद्यार्थी क्या करें ? उत्तर देते हुए आपने कहा—

"कार्य का विशाल क्षेत्र आपके सामने पड़ा है। राष्ट्र को संगठित करना, उद्योग धन्धों को पुनर्जीवित करना, अपनी मातृभूमि के प्रति द्रोही बनने के बिना प्रतिष्ठापूर्वक रोटी कमाना आदि. . .कार्यों में लग जाओ। जो भी कार्य मिल जाय, उस पर डट जाओ। मुझे ज्ञात है कि महात्मा गांधी के इस वाक्य को हँसी में उड़ाया गया कि "लोगों को जाकर सड़कों का निर्माण करना अथवा कारखानों में कार्य करना चाहिए।"एक ईमानदार, स्वतंत्र, देशप्रेमी सड़क बनानेवाले मजदूर की पदवी एक डिप्टी कलेक्टर से कहीं अधिक उच्चतर है। (सुनो, सुनो) मैं चाहता हूं कि राष्ट्र के नवयुवक ग्रामों, कारखानों तथा मिलों में जाकर अपने हाथों से काम करें और अपने आपको उन मजदूरों के साथी तथा सहकारी समझें जो आपसे प्रोत्साहित होने की प्रतीक्षा में आंखें लगाए बैठे हैं।"

विद्यार्थियों ने लालाजी की चेतावनी की ओर कोई ध्यान न दिया और यह प्रस्ताव पास कर दिया कि "समस्त सरकारी, सरकार द्वारा सहायता लेने वाले विद्यालय, तथा सरकारी चार्टर द्वारा चलने वाले भारतीय विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध शिक्षणालयों का पूर्ण बहिष्कार किया जाय।" दूसरे प्रस्ताव द्वारा भारतीय नेताओं से आशा प्रकट की गयी कि "वे शीघ्रातिशीघ्र प्रत्येक प्रान्त में राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध राष्ट्रीय ढंग पर चलने वाले राष्ट्रीय शिक्षणालय स्थापित करें और भारतीय युवकों की साधारण तथा औद्योगिक शिक्षणार्थ संस्थाएं चालू करें. . .।"

उचित चेतावनी देकर, उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया था। अब कान्फ्रेन्स जो निर्णय चाहती, वह करने को स्वतंत्र थी।

सौभाग्य से, कांग्रेस में भी, उन दिनों समझौते की भावना प्रबल थी। गत तीन मास से गान्धीजी की प्रत्येक बात मानी जा रही थी। अब गान्धीजी को भी पता लग चुका था कि लाजपतराय तथा सी० आर० दास को साथ लिए बिना वह बड़े घाटे में हैं अर्थात् उनके लिए आगे पग उठाना कठिन हो रहा था। जिस प्रकार वे दोनों सम्मिलित मोर्चे के पक्ष में थे, उसी प्रकार गान्धीजी को भी उनका सहयोग प्राप्त करने की चिन्ता थी।

अन्त में कांग्रेस को लाजपतराय की चेतावनी की ओर ध्यान देना पड़ा। अब एक नया सिद्धान्त निकाला गया। कलकत्ता वाले प्रस्ताव में तो कहा गया था कि

सरकारी स्कूलों तथा कालेजों से विद्यार्थियों को धीरे धीरे निकालते जाना और उनके स्थान पर भिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूल तथा कालेज स्थापन करना।"

नागपुर में इसका संशोधन इस प्रकार किया गया—

(क) १६ वर्ष से ऊपर आयु वाले विद्यार्थियों से शीघ्र ही सरकारी संस्थाओं से सम्बन्ध विच्छेद करने का अनुरोध करना, यदि वे विद्यार्थी अनुभव करते हों कि उनका ऐसी सरकार की संस्थाओं में पढ़ना उनकी अन्तरात्मा के विरुद्ध है, जिसका कि अन्त करने का राष्ट्र ने निश्चय कर लिया है, तो ऐसे विद्यार्थियों को यह परामर्श देना कि वे असहयोग आन्दोलन से सम्बद्ध किसी भी प्रकार की विशेष सेवा करें अथवा राष्ट्रीय शिक्षणालयों में शिक्षा प्राप्त करें।

(ख) सरकार से सम्बद्ध अथवा सरकार से सहायता लेने वाली संस्थाओं के संचालकों, प्रबन्धकर्ताओं तथा अध्यापकों से तथा म्युनिसिपल कमेटियों और डिसट्रिक्ट बोर्डों से मांग करना कि वे अपनी संस्थाओं के राष्ट्रीयकरण में सहायता दें।

अब लालाजी सन्तुष्ट थे कि शिक्षणालयों का अन्धाधुन्ध बहिष्कार तो रुक गया, और स्कूलों के अल्पायु बालकों तथा कालेजों के वयस्क युवकों में कुछ भेद किया गया और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली जारी करने का अव्यावहारिक उत्तरदायित्व भी सीमित कर दिया गया।

सी० आर० दास तो मुख्यतः कौंसिलों के बहिष्कार के विरुद्ध थे। नागपुर-अधिवेशन से पूर्व ही कौंसिलों के साधारण चुनाव हो चुके थे। बहिष्कार की कृपा से ८० प्रतिशत से अधिक मतदाता वोट देने से तटस्थ रहे। नागपुर में अभी समझौते तथा सम्मिलित मोर्चे की बातचीत चल ही रही थी कि सी० आर०दास ने मुहम्मद अली को बतलाया कि मैंने असहयोग को स्वीकार करने का फैसला कर लिया है। मुहम्मद अली ने प्रसन्न होकर बंगाली नेता के दाएं गाल को चुम्बन किया। दूसरे दिन असहयोग कार्यक्रम वाला मुख्य प्रस्ताव सी० आर० दास ने पेश किया और लाजपतराय ने उसका समर्थन किया। वास्तव में यह गांधीजी की विजय थी जिसमें गांधी, दास तथा लाजपतराय का समान भाग था। कांग्रेस के इतिहासकार ने इस दृश्य का वर्णन इन सुन्दर शब्दों में किया है:—

"कलकत्ता में असहयोग का स्टूल केवल एक टांग पर आश्रित था। नागपुर में यह ठीक ठीक चारों टांगों पर खड़ा हो पाया। गान्धी, नेहरू, दास तथा लालाजी सभी इसके समर्थक थे।"

कुछ बातें पर्दे के पीछे अर्थात् चुपके चुपके ठीक हो पायीं। दैनिक वन्देमातरम् का सहायक सम्पादक तथा लालाजी का विश्वस्त मित्र तथा सहायक रामप्रसाद

उनके साथ नागपुर में थे। वह लिखते हैं "चाहे किसी भी प्रकार हुआ हो, मुख्य बात यह है कि नेताओं का मिलाप हो गया। यह बाहर की लीपापोती न थी, प्रत्युत हार्दिक मिलाप था।"

असहयोग प्रस्ताव के अतिरिक्त, लालाजी ने एक अन्य प्रस्ताव भी भेजा जिसके द्वारा कांग्रेस के ध्येय में भारी परिवर्तन हो गया। १९०८ से ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विश्वास किए बिना कोई भी कांग्रेस में भर्ती नहीं हो सकता था। यह एक प्रकार की राजभक्ति की शपथ थी जो नर्म दलवालों ने गर्म दलवालों को कांग्रेस से खदेड़ निकालने के लिए तैयार की थी। क्योंकि गर्म दलवाले तो खुले रूप से ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहते थे। अब चूंकि नर्म दल वाले कांग्रेस से पृथक हो चुके थे, इस शपथ को रहने देन का कोई कारण न था, कुछ भी हो, कम से कम, राजभक्ति की शपथ, असहयोग कार्यक्रम के साथ तो असंगत लगती थी। उस शपथ को हटाने का प्रस्ताव गान्धीजी ने पेश किया और लालाजी ने उसका समर्थन किया। पहले तो कांग्रेस का ध्येय "वैधानिक साधनों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ही उत्तरदायी शासन प्राप्त करना" था, परन्तु अब वह ध्येय "समस्त शान्तिमय तथा उचित उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्ति" में बदल दिया गया। अब तो ध्येय तथा साधन दोनों में ही परिवर्तन हो गया।

एक ओजस्वी भाषण में कांग्रेस ध्येय के इतिहास का वर्णन करते हुए लालाजी ने बतलाया कि सूरत की फूट का एक कारण यही ध्येय का प्रश्न भी था। उस समय भी उन्हें यह बात खटकती थी कि श्री अरविन्द जैसे सच्चे तथा उच्च देशानुरागी के लिए भी कांग्रेस में कोई स्थान नहीं था। "उस समय भी पूर्ण स्वतंत्रता के लिए न तो हमारे पास साधन विद्यमान थे और न ही प्रबल इच्छा। परन्तु मैं समझता था कि हममें से किसी को भी यह अधिकार नहीं था कि किसी व्यक्ति को केवल इस कारण कांग्रेस से बाहर रखा जाय कि इसका आदर्श अत्यन्त उच्च है।" ब्रिटिश साम्राज्य तथा ब्रिटिश कामनवेल्थ में भेद समझने वालों से लालाजी ने प्रश्न किया कि कहीं ब्रिटिश कामनवेल्थ का अस्तित्व भी है ? " हालफोर्ड नाईट ने जो उस समय ब्रिटिश मजदूरों की ओर से प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे, उत्तर दिया "अभी नहीं।" अंग्रेज राजनीतिज्ञों के वायदों के बारे में लालाजी ने कहा "हम अंग्रेज सज्जनों के वचनों पर तो विश्वास कर सकते हैं, परन्तु अंग्रेज राजनीतिज्ञों के शब्दों पर कदापि नहीं।" ब्रिटिश अन्तरंग सभा के महारथियों—लायड जार्ज, कर्जन, विन्स्टन चर्चिल, मिलनर तथा माण्टेग्यू आदि का नाम लेते हुए आपने कहा "आप वर्तमान् ब्रिटिश अन्तरंग सभा के किसी भी एक सदस्य का नाम मुझे बतलावें, जिसके शब्दों पर एक पंसारी के शब्दों की अपेक्षा अधिक विश्वास किया जा सके।

है ?" आपने इस बात का भी स्पष्टीकरण कर दिया कि ध्येय परिवर्तन का अर्थ अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद कदापि न समझा जाय। यदि भारतवासियों की अभिलाषा होगी तो वह स्वेच्छा से तथा अपनी शर्तों पर अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध जारी रख सकते हैं।

साधनों के परिवर्तन के बारे में बतलाते हुए आपने कहा, "मैं उन लोगों में से हूँ जिनका यह विश्वास है कि प्रत्येक जाति का यह अन्तर्निष्ट अधिकार है कि अवसर मिलने पर किसी स्वेच्छाचारी तथा अत्याचारी सरकार के विरुद्ध विद्रोह करे, परन्तु मेरा विश्वास है कि इस समय न तो हमारे पास सशस्त्र विद्रोह के साधन ही हैं और न ही ऐसी हमारी इच्छा है। मैं भविष्य की सम्भावनाओं पर विवाद नहीं करूँगा, परन्तु मेरी इच्छा है कि मेरे देशवासी किसी ऐसे भ्रम अथवा गलतफहमी में न रहें कि इंडियन नेशनल-कांग्रेस के नेतागण उनको अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए हिंसात्मक उपायों के प्रयोग से रोकते हैं।"

ब्रिटिश मजदूर दल के मित्र प्रतिनिधियों में लालाजी के घनिष्ठ मित्र जोसिया वेजवुड भी थे। वह असहयोग के पक्ष में नहीं थे और उन्होंने नागपुर में स्पष्ट रूप से ये ही विचार प्रकट भी किए।

लालाजी भली भाँति समझते थे कि असहयोग के कार्यक्रम को स्वीकृति देने से उनके कन्धों पर भारी उत्तरदायित्व आ पड़ेगा। पंजाब का सारा बोझ भी उन्हीं पर आ पड़ेगा। उनको इस भारी उत्तरदायित्व से बड़ा हर्ष हुआ।

नागपुर अधिवेशन से लौट कर आपने पंजाब में गम्भीरतापूर्वक कार्य आरंभ कर दिया। सब से प्रथम कार्य कालेज के विद्यार्थियों का एक प्रान्तीय सम्मेलन बुलाना था, क्योंकि पंजाब में आन्दोलन के लिए आपको विद्यार्थियों में से ही रंगरूट भर्ती करने थे।

एक स्वागत कमेटी बनायी गयी जिसके पदाधिकारी नियमपूर्वक चुन लिए गए। (मैं इस कमेटी तथा कान्फ्रेन्स का मंत्री था) अध्यक्ष पद के लिए लालाजी ने डाक्टर सैफुद्दीन किचलू का नाम सुझाया। लाहौर जिला में कान्फ्रेन्स वर्जित थी, अतः कान्फ्रेन्स गुजरांवाला होनी तय हुई। स्वयं लालाजी ने भी भाषण दिया। पत्रों में भी आपने बलशाली प्रचार शुरू कर दिया। और आपने डी० ए० वी० कालेज-प्रबन्ध कमेटी पर भी आक्रमण करने से संकोच नहीं किया। अपने पुराने मित्र तथा सहकारी, महात्मा हंसराज के साथ पत्रों में खूब जोर का वाद विवाद छेड़ दिया। उनके साथ लालाजी का यह प्रथम तथा अन्तिम विवाद था।

कालेज तो बन्द न हो पाए, परन्तु गांवों को कांग्रेस का सन्देश पहुंचाने वाले विद्यार्थी कार्यकर्ता उनको प्राप्त हो गए। असहयोग युग की रीति के अनसार

विद्यार्थियों ने एक आश्रम खोल दिया और वहां कुछ दिनों के लिए तैयारी के पर ठहर कर खादी के वस्त्रों में सुसज्जित होकर प्रान्त भर में चारों ओर देह को चल दिए।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने तिलक स्वराज्य-फण्ड के लिए एक कर रुपये संग्रह करने तथा कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य भर्ती करने का भारी कार्यत्र तैयार किया था। लालाजी के पंजाब का भी उसमें यथोचित भाग होना चाहिए आपकी विद्यार्थी सेना ने बड़ा शानदार कार्य कर दिखलाया। आपके प्रयत्न असहयोगी वकीलों की संख्या भी बढ़ गयी और आपको संगठन कार्य के लि वकीलों, व्यापारियों तथा अन्य श्रेणियों में से कार्यकर्ता मिलने लगे देशानुरा का समुद्र अपूर्व ठाठें मार रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह दिन प्रति दि शक्तिशाली होता जायगा और जो कुछ उसके सामने आयेगा उसे बहा ले जायगा रावलपिण्डी में होने वाले प्रान्तीय सम्मेलन में भी भारी उत्साह पाया जाता था। इसी प्रकार के कई जिला सम्मेलन तथा इलाका सम्मेलन हुए। प्रान्त भर में जहां कुछ मास पूर्व उदासीनता तथा निर्जीवता छायी हुई थी, अब वह नवीन उत्साह तथा जीवन से पूर्ण दिखलायी पड़ता था।

लाहौर में लालाजी ने म्युनिसिपल चुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवार खड़े किये और लगभग सभी हिन्दू सीटों पर भारी बहुमत से अधिकार कर लिया। अपने आपको अजेय समझने वाले पुराने-पुराने सदस्यों ने कांग्रेस के मुकाबले में मुंह की खायी। लाहौर म्युनिसिपलिटी में कांग्रेस दल नौकरशाही की आंखों में कांटा सिद्ध हुआ। अन्य स्थानों ने भी लाहौर का अनुकरण किया।

जो विद्यार्थीगण कालेजों को छोड़कर आए थे, वे अपने साथ कई टेढ़ी तथा पेचीदा समस्याएं भी लाए। कुछ काल के लिए तो देहाती कार्य ठीक था, परन्तु उसके पीछे वे अपनी शिक्षा पूर्ण करना चाहते थे। उनका इस बात पर अनुरोध था कि उनके अध्ययन तथा पठन पाठन का कुछ प्रबन्ध किया जाये। कालेज के विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए एक कौमी महाविद्यालय खोल दिया गया जहां उनकी शिक्षा समाप्त होने पर उन्हें एक कौमी विद्यापीठ से उपाधियां प्रदान की जाने वाली थीं। लालाजी उस विद्यापीठ के चांसलर (मुख्याधिष्ठाता) बनाए गए। एक स्कूल विभाग भी खोल दिया गया जहां दस्तकारी सिखलाने पर बल दिया जाता था। (लालाजी का अपना नाती—उनकी लड़की का इकलौता बेटा—इस स्कूल में प्रथम प्रवेश करने वालों में से था) अन्य केन्द्रों में भी कुछ स्कूल खुल गए जगरांव में लालाजी का अपना स्कूल—राधाकिशन हाई स्कूल को राष्ट्रीय स्कूल बनाया गया और कुछ ही दिनों में वह विद्यार्थियों से खाली हो गया।

इन सभी समस्याओं का अर्थ तो कठोर परिश्रम था, और कठोरतम कार्य तिलक स्वराज्य फंड के लिए एक करोड़ रुपए का संग्रह था। कुछ भी हो, पंजाब को अपना भाग अवश्य जमा कर देना था।

उसके लिए लालाजी को भारी श्रम करना पड़ा। प्रान्त भर में उनको भ्रमण करना पड़ा। कभी कभी तो एक ही दिन में पांच छः दूर दूर के स्थानों पर जाकर व्याख्यान देने पड़े और हर छोटे व बड़े से धन वसूल किया। पंजाब के जिम्मे ९ लाख रुपये की भारी राशि लगायी गयी परन्तु लालाजी भी तो महान् भिक्षुक थे! आपने वह धन संग्रह कर के ही दम लिया।

पंजाब के सब से प्रभावशाली दैनिक पत्र के सम्पादन के अतिरिक्त, उनको कई छोटे बड़े कार्य करने पड़ते थे। उनको बहुधा पंजाब से बाहर भी जाना पड़ता था। आपको नेशनल वर्किंग कमेटी के देश भर के विभिन्न स्थानों में समय समय पर होने वाले अधिवेशनों में भी सम्मिलित होना पड़ता था। एक बार अली भाई उनके साथ थे। एक बार धोबी ने कपड़े गड़बड़ कर दिए और बड़े भैया (शौकत अली) की एक शलवार (जो एक पूरे तम्बू के आकार की थी) लालाजी के कपड़ों से बदल गयी। वह शलवार चिरकाल तक उस दौरे तथा हिन्दू मुस्लिम नेताओं के सम्मिलित कार्य की यादगार (स्मृति) के रूप में उनके पास रही।

अध्याय दो

भद्र अवज्ञा आन्दोलन का निश्चय तथा लाला जी की गिरफ्तारी

नवम्बर के आरम्भ तक दोनों दल संघर्ष के लिए तैयार हो गए। आन्दोलन के नेता ने "एक वर्ष के अन्दर ही स्वराज्य" की प्रतिज्ञा की थी और स्थानीय नेताओं तथा स्वयंसेवकों द्वारा यही सन्देश देश के कोने कोने में पहुंचाया गया। वर्ष समाप्त होने को था, अतः कोई भारी पग उठाना आवश्यक था। चारों ओर "भद्र अवज्ञा" की चर्चा चल रही थी। कांग्रेस कार्यकारिणी उसके श्रीगणेश के लिए पूरे यत्न से तैयारियां कर रही थी।

लार्ड रेडिंग भी खुले विद्रोह का मुकाबला करने के लिए कुछ कठोर कार्यवाही करने की सोच रहे थे। पंडित मदनमोहन मालवीय तथा सर शंकरन् नायर जैसे मध्यस्थों के प्रयत्न भी असफल रहे तथा गान्धीजी और अन्य कांग्रेसी नेताओं के साथ लार्ड रेडिंग की मुलाकात का भी कोई परिणाम नहीं निकला। वायसराय को विशेष चिन्ता इस बात की थी कि जब ड्यूक आफ कनाट भारत पधारें तो उनका कहीं बहिष्कार न किया जाय (वास्तव में पहले प्रिंस आफ वेल्स के भारत पधारने का प्रोग्राम बनाया गया था) वायसराय ने आरम्भ में दमन चक्र को पूरे जोर से इसलिए नहीं चलाया कि वह ड्यूक का शान्तिपूर्वक आगमन चाहते थे। परन्तु अब तो स्पष्ट हो गया था कि दोनों दलों में किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सकता। कांग्रेसी नेता भद्र अवज्ञा आन्दोलन को गम्भीरता से चलाना चाहते थे और ड्यूक आफ कनाट का यथाशक्ति प्रबल बहिष्कार करने पर तुले हुए थे। अली भाइयों को कैद कर के वायसराय ने दमन नीति का श्रीगणेश तो कर ही दिया था, परन्तु अभी दमन चक्र को पूरे जोर से चलाने में उन्हें कुछ संकोच था।

प्रथम अप्रत्याशित पेचीदगी बम्बई में दंगों के रूप में उठ खड़ी हुई। जिन पारसियों ने बहिष्कार में सम्मिलित होने से इनकार किया, उन्हें जनता का कोपभाजन बनना पड़ा। असहयोगी नेता तो शान्तिमय वातावरण चाहते थे परन्तु उसमें गड़बड़ी पड़ गयी। इन घटनाओं से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने उपवास

शुरू कर दिया। लालाजी तथा अन्य बड़े बड़े नेता दौड़े दौड़े बम्बई पहुंचे। शीघ्र ही वहां स्थिति सुधर गयी। कांग्रेस कार्यकारिणी ने परिस्थिति पर विचार किया और अहिंसा तथा अनुशासन पर जोर देते हुए उसने भद्र अवज्ञा के बारे में अपनी नीति में कुछ संशोधन कर दिया। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को सूचित किया गया कि कार्यकारिणी कमेटी से पूछे बिना उन्हें आन्दोलन चलाने की अनुमति नहीं दी जायगी। स्वयंसेवकों की प्रतिज्ञा भी कठोर कर दी गयी।

परन्तु इसका उद्देश्य आन्दोलन की गति को शिथिल करना न था। दोनों ओर से खूब जोर शोर की तैयारियां हो रही थीं। पंजाब सरकार तो सदा ही "मजबूत" रहती है।"

बम्बई के निर्णय के अनन्तर, लाजपतराय लाहौर लौट आए। वह अपने प्रान्त के अधिकारियों के बदले हुए रुख को शीघ्र ही ताड़ गए। बम्बई की घटनाओं पर भी वह विचार करने लगे थे। अनुशासन के अभाव तथा उसके आन्दोलन के नेता पर प्रभाव से वह समझ गए कि कांग्रेस के कवच में भारी त्रुटियां मौजूद हैं, परन्तु यदि फिर कोई गड़बड़ी हुई, तो क्या नेता अपना आन्दोलन बन्द कर देंगे? शंकाएं उत्पन्न हुईं, परन्तु कुछ देर में दब गयीं। कार्यकारिणी की मीटिंग में सन्तोषजनक निर्णय हो चुके थे। बम्बई में उन्होंने अपने मन में नोट किया कि नेता के कुछ विश्वस्त लेफ्टीनेण्ट उतने शुद्ध नहीं हैं जितना कि उन्हें होना चाहिए और अधिनायक को इस बात का पूर्ण ज्ञान है।

लाजपतराय अपने प्रान्त में बम्बई निर्णय को व्यावहारिक रूप देने में लग गए। अपने साथियों को पूरी बातें समझाने के लिए अपने प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की एक सभा बुलायी, परन्तु अधिकारियों के बदले हुए रंग ढंग देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि शायद वह चिरकाल तक उन्हें स्वतंत्रता से काम नहीं करने देंगे। क्या आन्दोलन के हित के लिए उन्हें कुछ काल तक बाहर रहने का प्रयत्न करना चाहिए? क्या अपने प्रान्त में आन्दोलन के मुख्य संचालक के रूप में वह कर्तव्यच्युत तो नहीं समझे जायगे, यदि वह अपने किसी कार्य के कारण शासन तथा व्यवस्था के विशाल पंजों में फंस जाय? कुछ भी हो, उन्होंने अपने अधिनायक को अपने प्रान्त की परिवर्तित परिस्थिति की सूचना देना उचित समझा। "सरकारी सेंसर के रंग ढंग देख कर आपने डाक अथवा तार द्वारा सूचना देना ठीक नहीं समझा। विशेष दूत के रूप में मुझे साबरमती भेजा गया। निश्चय यह किया गया कि कम से कम एक बात पर मुझे महात्मा गांधी की इच्छा का तार द्वारा पता लग जाना चाहिए—"क्या लालाजी को शीघ्र ही गिरफ्तार हो जाना चाहिए अथवा वह कुछ काल तक प्रतीक्षा करें।" सेंसर से बचने के लिए सन्देश को व्यापारिक रूप

दे दिया जाय अर्थात् कपास अथवा चने के एक सौदे के विषय में तार दिया जाय जो लाला जी के नाम न हो, वरन् एक कल्पित व्यापारी—जसवन्तराय के नाम हो।"

"मैं साबरमती को चल पड़ा। वहां पहुंचते ही ज्ञात हुआ कि कुछ घंटे पूर्व ही महात्मा जी बारदोली जाते हुए सूरत को रवाना हो गए हैं कि वहां चल कर भद्र अवज्ञा के आन्दोलन की तैयारियों का निरीक्षण कर सकें। सूरत जाने से पूर्व, मैंने श्रीमती कस्तूरबा के हाथ की पकी हुई भकड़ी (गुजरात के ग्रामीणों की बाजरे की रोटी) चटनी के साथ खाने का आनन्द उठाया। मैंने अराविल आश्रम में महात्माजी से भेंट की और वहां उनको सब बातें बतलायीं। उन्होंने धैर्य पूर्वक मेरी बातें सुनकर, मुझे अपनी सम्मति तथा आदेश दिया। अन्त में उन्होंने मुझसे पूछा "क्या तुम मेरी बातों को ठीक ठीक समझ गए हो? क्या तुम मेरा सन्देश अपने नेता को पूर्ण रूप से पहुंचा सकोगे? मैंने कहा "हां।" वह मुझसे कहने लगे कि हमारी बातचीत का संक्षेप लिख डालो। मैंने लिख लिया। वह मेरी रिपोर्ट से सन्तुष्ट हो गए और उन्होंने वह रिपोर्ट अपने सेक्रेटरी (मेरा विचार है वह उनका पुत्र देवदास गांधी था) को दे दी कि उसकी नकल कर ले। मेरे लेख में महात्मा जी ने एक संशोधन किया और उचित स्थान पर सात शब्द जोड़ दिए जो उनके सन्देश के महत्वपूर्ण भाग का संक्षेप था। "लालाजी न तो गिरफ्तारी से बचने का और न ही गिरफ्तार होने का प्रयत्न करें"। उनका यह मतलब था कि आन्दोलन के नए नेताओं के लिए जिनकी अभी अग्नि परीक्षा होनी बाकी थी, जेल जाना जरूरी अथवा सहायक हो सकता है। लालाजी के लिए ऐसा कोई प्रमाण पत्र आवश्यक न था। वहां से चलने से पूर्व, महात्मा जी ने मुझे अपने साथ बारदोली जाने का निमंत्रण दिया, ताकि मैं अपनी आंखों से देख सकूं कि वहां सामूहिक भद्र अवज्ञा के लिए किस प्रकार तैयारी की जा रही है। फिर देश के अन्य महत्वपूर्ण मामलों के बारे में बातचीत होती रही। महात्मा जी कहने लगे कि "मैं सोच रहा हूं कि भद्र अवज्ञा आन्दोलन (सत्याग्रह) का जो अब तक भीषण रुद्र रूप रहा है, क्यों न उसे शान्त विष्णु रूप दिया जाय"। मेरी अभिलाषा थी कि महात्मा जी उक्त बातचीत का स्पष्टीकरण करें। महात्मा जी कहने लगे कि यह अभी विचार धुन्धला-सा है जिस समय स्पष्ट हो जायगा तो यंग इंडिया में प्रकाशित कर दिया जायगा।"

मैं बारदोली नहीं जा सका, क्योंकि मैं नहीं जानता था कि लालाजी कब तक स्वतंत्र रह सकेंगे। मैं यथासम्भव शीघ्र ही उनकी गिरफ्तारी से पूर्व उनके पास पहुंचना चाहता था। मैंने गुप्त सांकेतिक भाषा में गांधीजी का सन्देश भेज दिया

और वापसी यात्रा पर चल पड़ा। मैं गाड़ी बदलने के लिए दिल्ली उतर पड़ा। मुझे डा० एम० ए० अन्सारी से भेंट करनी थी (अहमदाबाद जाते हुए मैं उनसे मिला था। उनकी इच्छा थी कि मैं वापसी पर उनसे भेंट करूं) अखबार बेचने वाले ऊंचे स्वर में पुकार रहे थे "लाला लाजपतराय गिरफ्तार कर लिए गए।"

उन्होंने २ दिसम्बर को प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलायी थी और उसी पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। अधिकारी तो किसी बहाने की खोज में लगे थे। अब उन्हें अच्छा अवसर मिल गया। लाहौर, अमृतसर तथा शेखूपुरा में १९०८ का विद्रोहात्मक सभाओं वाला कानून लागू कर दिया गया। अर्थात् वहां किसी प्रकार की सभा करना गैर कानूनी करार दे दिया गया। स्वयंसेवक दल को भी गैर कानूनी घोषित कर दिया गया।

पंजाब कांग्रेस ने नौकरशाही की चुनौती स्वीकार कर ली। २७ नवम्बर को सूबा कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी समिति ने कांग्रेस तथा खिलाफत स्वयंसेवकों के पुनः संगठन का निश्चय किया। अनुशासन भंग तथा हिंसा के खतरे से बचने के लिए यह भी फैसला किया गया कि बहुत ही छोटी सभाएं बलायी जायँ और किसी भी ऐसे व्यक्ति को सभा में न जाने दिया जाय जो कांग्रेस के अहिंसावाद के अनुशासन को मानने अथवा गिरफ्तार होने और जेल जाने को तैयार न हो।

जिस प्रकार बुद्धिमान् लकमान की कथा में मेमने को खा जाने से पूर्व भेड़िए ने उसके साथ बातचीत की थी, उसी प्रकार, लाजपतराय के विरुद्ध कोई पग उठाने से पूर्व डिप्टी कमिश्नर किसी बहाने की खोज में था। कमेटी की एक छोटी सी सभा में सार्वजनिक शान्ति भंग होने की रत्ती भर भी आशंका नहीं थी। इससे पूर्व ऐसे अवसरों पर कभी किसी प्रकार की उत्तेजना अथवा गड़बड़ी नहीं हुई, और इस बार तो संचालक और भी अधिक सचेत थे। बैठक से एक दिन पूर्व डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट की ओर से एक पत्र आया जिसमें कमेटी के सदस्यों की बन्द कमरे में होने वाली सभा को सार्वजनिक सभा करार दिया गया था।

कांग्रेस के मंत्री की ओर से डिप्टी कमिश्नर को सूचित कर दिया गया कि पत्र उन्हें पहुंच गया है। दूसरे दिन प्रातःकाल और कुछ पत्र व्यवहार हुआ। डिप्टी कमिश्नर चाहता था कि उसे विश्वास दिलाया जाय कि सभा में केवल वे ही बातें की जायँगी जिनकी सूचना दी जा चुकी है। इसी प्रकार की अन्य भी कुछ बातें उसने लिखीं।

डिप्टी कमिश्नर की बातें हास्यास्पद थीं जैसा कि आगे चलकर सरकार को स्वीकार करना पड़ा था। कांग्रेसी लोग भला ऐसी बात क्यों कर स्वीकार कर सकते थे। यदि वह स्वीकार करते तो अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारते। लालाजी

की कार्यकारिणी कमेटी ने मजिस्ट्रेट की आपत्तियों की ओर कुछ भी ध्यान न दे हुए, सभा का काम करने का निश्चय कर लिया। इसका परिणाम स्पष्ट था। लालाजं ने सदस्यों से कहला भेजा कि वह नियत समय से काफी देर पूर्व आ जायँ ताबि गिरफ्तारी होने से पहले ही सभा की कार्यवाही कर ली जाय। कार्यवाही को ठीक ठाक कर लिया गया था कि देर न होने पावे। दूसरे दिन (गिरफ्तारी की प्रतीक्षा में) महात्मा गांधी के नाम चिटठी तथा निज देशवासियों के नाम सन्देश तैयार कर लिए गए।

डिप्टी कमिश्नर की अन्तिम निषेधात्मक आज्ञा २ बजे से कुछ ही पूर्व पहुँची, जबकि सभा हो रही थी। २ बजने से पूर्व ही कार्यवाही समाप्त कर ली गयी थी। अब तो मजिस्ट्रेट को केवल यह बतलाना बाकी था कि जो उसके मन भावे सो करे। उनको अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

"मैं इस सभा को सार्वजनिक सभा घोषित करता हूँ और आपको सभा विसर्जित करने की आज्ञा देता हूँ" मेजर फेरार डिप्टी कमिश्नर आते ही कड़क कर बोला। पुलिस के सीनियर सुपरिनटेंडेंट, एक दो अन्य योरुपियन पुलिस अधिकारी तथा कान्स्टेबलों की टुकड़ी उसके साथ थी।

"मैं घोषणा करता हूँ कि यह सार्वजनिक सभा नहीं है और आपकी आज्ञा अवैध है और मैं सभा को विसर्जित करने से इनकार करता हूँ।" सभा के प्रधान लाजपतराय नैतिक अधिकारी के रूप में गरज कर बोले।

पुलिस को आज्ञा दी गयी कि लाजपतराय को गिरफ्तार कर ले, तथा सभा को बलात् भंग कर दे। सभा में उपस्थित सभी लोग गिरफ्तारी के लिए कटिबद्ध थे, परन्तु अधिकारियों ने लाजपतराय के अतिरिक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के महामन्त्री श्री के० सन्तानम, पंजाब खिलाफत कमेटी के मन्त्री श्री मलिकलाल खाँ तथा सर्वप्रिय तरुण नेता और म्यूनिस्पिल कमिश्नर (जिसे मेजर फेरार अवांछित व्यक्ति समझता था) को ही चुना और गिरफ्तार किया।

बन्दियों को न थाने में और न जेल में ले गए और न ही न्यायालय में, जहाँ कि साधारणत: गिरफ्तारी के बाद लोगों को ले जाया जाता है, प्रत्युत् उन्हें सरकारी तार घर में ले गए। वहाँ सशस्त्र पुलिस तथा सैनिकों का पहरा था। वहाँ उनको ३ घण्टे से भी अधिक ठहरना पड़ा, जबकि एक मैजिस्ट्रेट ने वहाँ आकर पुलिस को उनका रिमाण्ड दिया और उन्हें सैण्ट्रल जेल भेज दिया गया। लाजपतराय को तार घर जैसे सुरक्षित स्थान में ले जाने का हमें तो केवल यही अर्थ मालूम पड़ता है कि १९०७ की तरह अधिकारी लाजपतराय की गिरफ्तारी से भयभीत हो गए थे और समझते थे कि उसके पीछे भारी तूफान खड़ा हो जायगा।

न तो कोई तूफान खड़ा हुआ और न ही किसी प्रकार का हिंसा-प्रदर्शन। सरकार की आशंका निराधार थी, परन्तु उनको चिन्ता बराबर लगी रही। गिरफ्तारियाँ तो उन्होंने कर डालीं, परन्तु उसके बाह्य औचित्य के लिए उन्हें काफी सोच विचार करना पड़ा। केस के बारम्बार स्थगित किए जाने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह कोई सरल कार्य नहीं था। लाजपतराय ने स्वयं एक बयान लिखा : "इस केस में कोई रिमाण्ड आवश्यक वा उचित नहीं था। डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने सेडिशन्स मीटिंग्ज ऐक्ट के अधीन कार्यवाही की। उसने स्वयं हमें गिरफ्तार किया। यदि वह कानून लागू होता है तो हम अपराधी हैं। केस का फैसला एक घण्टे में हो सकता है।" अभियोग के औचित्य के बारे में सन्देह उठ खड़े हुए थे और लाजपतराय स्वयं देखते थे कि सरकारी तार घर में ही अधिकारी वर्ग कान्फ्रेन्स कर रहे हैं। जिला मैजिस्ट्रेट ने तो उन्हें सेडिशन्स मीटिंग्ज ऐक्ट के अधीन पकड़ा था, परन्तु रिमाण्ड देने वाले मैजिस्ट्रेट ने बतलाया "उनके विरुद्ध भारतीय दण्ड विधि की १४५वीं धारा के अधीन केस चलाया जायगा और यदि वह चाहें तो जमानत पर छूट सकते हैं।" मैजिस्ट्रेट ने दो सप्ताह की अवधि पुलिस को मुकदमे की तैयारी के लिए दे दी।

७ दिसम्बर को उन्हें न्यायालय में ले जाया गया और उस दिन रिमाण्ड की अवधि फिर बढ़ा दी गयी। "स्पष्ट है कि अधिकारियों को अपने कानून की धारा का निश्चय नहीं था। ठीक धारा खोजने के लिए उन्हें समय दरकार था। जिला मैजिस्ट्रेट तथा पुलिस पशोपेश में पड़ गए कि हमारे विरुद्ध किस धारा के अधीन केस चलाएं। १३ दिसम्बर को ज्यों ही हमने न्यायालय में प्रवेश किया, हमें बतलाया गया कि जिला मैजिस्ट्रेट ने १९११ के १०वें ऐक्ट की छठी धारा के अधीन मुकदमा दायर किया है। न्यायाधीश ने बतलाया कि पहले वह उसी मुकदमे को लेगा, यद्यपि वह सम्मन केस है और दूसरा वारण्ट केस था। मुझे स्पष्ट प्रतीत होता था कि यह सब न्यायाधीश, जिला मैजिस्ट्रेट तथा सरकार के कानूनी परामर्शदाता की आपसी मन्त्रणा का परिणाम है। इस प्रकार, अभियोग पक्ष को यह निश्चय करने में नौ दिन लग गए कि वहाँ कानून की कौनसी धारा लागू होगी। उन्होंने अपनी कमान में दो तीर रक्खे जिससे कि न्यायाधीश भारी दण्ड दे सके।" यही चालें अनिश्चित काल तक चलती गयीं। निदान १९ दिसम्बर को अभियोग पक्ष ने अपना केस पेश कर दिया। २१ तारीख को लालाजी को अपना बयान देने को कहा गया। दूसरे दिन सरकारी वकील ने विवाद किया और न्यायाधीश ने ४ जनवरी तक हुक्म सुनाना स्थगित कर दिया। ७ जनवरी को हुक्म सुनाया गया। उनको ५ सप्ताह तक अधिकारी वर्ग की अयोग्यता तथा बुद्धिहीनता के कारण जेल में सड़ना पड़ा।

न्यायाधीश ने आरोप निर्माण करते समय अभियुक्त से पूछा कि वह दोषी है अथवा निर्दोष? "मैं कुछ नहीं कहता" अभियुक्त का उत्तर था। असहयोग के दिनों की प्रथा के अनुसार लालाजी बोले कि मैं सरकार के शासनाधिकार अथवा कानून को स्वीकार नहीं करता और न्याय में कोई भाग नहीं लेना चाहता। उनकी ओर से वकील पेश नहीं हुआ, न ही कोई गवाह पेश किए, और न ही आपने अभियोग पक्ष के गवाहों का कूट परीक्षण (जिरह) किया। मुकदमे की समाप्ति पर लालाजी ने एक संक्षिप्त वक्तव्य दिया जिससे न्यायालय में कुछ सनसनी पैदा हुई। उन्होंने बतलाया कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के नाम अपने प्रथम दो पत्रों में मेजर फेरार ने कोई निषेधात्मक आज्ञा जारी नहीं की। यह दोनों तथा अन्तिम पत्र मेजर फेरार ने जिला मैजिस्ट्रेट के रूप में नहीं, प्रत्युत् डिप्टी कमिश्नर के रूप में भेजे हैं और डिप्टी कमिश्नर का सेडिशन्स मीटिंग ऐक्ट के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सभा सर्व-साधारण के लिए खुली नहीं थी। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के नाम ही उसकी सूचना भेजी गयी थी। (ये सदस्य प्रान्त की विभिन्न कमेटियों के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं)। उत्तर में डिप्टी कमिश्नर को इन बातों से सूचित कर दिया गया कि वह सभा सार्वजनिक नहीं है। दफ्तर के चपरासियों तथा क्लर्कों तक का सभा में प्रवेश रोक दिया गया। जब मेजर फेरार वहाँ पहुँचा तो उसने उन्हें यह नहीं बतलाया कि उनका जमाव किसी प्रकार गैर कानूनी है अथवा उसने सभा को निषिद्ध घोषित कर दिया है। वह तो केवल यही बोला "मैं इस सभा को सार्वजनिक सभा घोषित करता हूँ। मैं आप लोगों को तितर बितर होने की आज्ञा देता हूँ।" इसका न तो कोई अर्थ था और न ही यह कानून था। मैं किसी पारिभाषिक युक्ति से किसी प्रकार का लाभ नहीं उठाना चाहता। मेरा तो यह दावा है कि शुरू से लेकर आखिर तक समस्त कार्यवाही कानून विरुद्ध है, और यह एक अन्य कारण है जिसके आधार पर मैं इस सरकार को स्वीकार नहीं करता—मैं नहीं मानता कि उसका कानूनी तौर से निर्माण हुआ है।"

यहाँ सरकारी वकील हरबर्ट ने आपत्ति उठायी कि अभियुक्त ठीक नहीं कह रहा है। उसे उत्तर मिला "हरबर्ट, यह बिलकुल ठीक है। मेजर फेरार के रूप में यह सरकार पाशविक बल का अवतार है।" हरबर्ट अपनी आपत्ति पर डटे रहे और न्यायालय ने वक्तव्य के इस भाग को लिखना अस्वीकार कर दिया। "आपने मुझे बयान देने को कहा है, यह देखना मेरा काम नहीं है कि आप इसे लिखते हैं अथवा नहीं।" अभियुक्त लालाजी शान्तिपूर्वक बोले। साथ ही उन्होंने कहा, "मैंने वकील के तौर पर ४० वर्ष काम किया है, परन्तु अभी तक मुझे कोई ऐसा कानून नहीं मिला जिसमें कोई मैजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त के बयान में रुकावट डाले।"

मैजिस्ट्रेट—"मैं इस प्रकार का वक्तव्य नहीं सुन सकता।"

लालाजी—"बहुत अच्छा, मैं प्रतिवाद रूप में बैठ जाता हूँ।" कृपया आप एक नोट लिखेंगे कि आपने कुछ बयानात की आज्ञा नहीं दी ?

मैजिस्ट्रेट—क्या यह सत्य है ?

लालाजी—हाँ, सभा में मेरे अतिरिक्त किसी ने कोई भाषण नहीं दिया, अथवा कोई बात नहीं की। उस सभा को बुलाने का उत्तरदायित्व मेरा ही था। मैं ही उसका सभापति था और मैंने ही उसका संचालन किया।"

७ जनवरी को मैजिस्ट्रेट ने फैसला सुनाया और धारा ११५ के अधीन एक वर्ष का कठोर दण्ड तथा दूसरे आरोप में ६ मास का कारावास और ५००) जुर्माना किया।

गिरफ्तारी, मुकदमा तथा दण्ड सभी विचित्र थे, और मामले की, न केवल भारतवर्ष में प्रत्युत् इंगलैण्ड में भी खूब ख्याति हुई। मैनचेस्टर गार्जियन तथा "नेशन" जैसे ब्रिटिश पत्रों ने मुकदमा चलाने से पूर्व भी केस पर टिप्पणियाँ लिखीं। "नेशन" ने लिखा कि "लालाजी पश्चिमोत्तर भारत में मि० गांधी के प्रबल सहायक हैं। भारतीय राष्ट्रवादियों में आपका नाम इंगलैण्ड तथा अमेरिका तक में विख्यात है। सूबा कांग्रेस कमेटी के साधारण काम को चलाने के लिए एक सभा बुलाने के अपराध में उनको गिरफ्तार कर लिया गया है। आशा है कि मि०लाजपतराय से नियमानुकूल न्याय होगा।" चौदह वर्ष हुए जब उनको ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक असाधारण पुराने आर्डिनेन्स के अधीन निर्वासित किया था तो पार्लियामेण्ट में भारी तूफान मचा था। भारत भर में कोई अन्य व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसका व्यक्तित्व तथा इतिहास भारतीय नौकरशाही शासन के लिए इतना अपयश तथा अपकीर्ति का कारण हो। वह गांधी की तरह कोरे सिद्धान्तवादी नहीं हैं। वह स्वभाव से एक उदार राजनीतिज्ञ, व्यवसाय से एक वकील तथा कार्य में एक परोपकारी और शिक्षण सुधारक हैं। कन्याकुमारी से खैबर तक सभी शिक्षित हिन्दुस्तानी जानते हैं कि वह पंजाब सरकार के उत्तरदायी मन्त्री होने के स्थान में आज एक भारी असहयोगी तथा शिमला के अधिकारियों की दृष्टि में गांधी से उतर कर खतरनाक व्यक्ति किस कारण से बने हुए हैं ?"

उनका नियमपूर्वक न्याय हुआ। उनको एक नया और विचित्र अनुभव हुआ और सरकार की खूब बदनामी हुई। शीघ्र ही सरकार ने हस्तक्षेप किया और धारा १४५ वाला दण्ड मन्सूख कर दिया गया। दूसरे दण्ड के बारे में भी उन्होंने अपने काननी अफसरों से परामर्श किया और जनवरी की समाप्ति से पूर्व ही उसकी मन्सूखी की आज्ञा भी पास हो गयी। एक सरकारी विज्ञप्ति भी प्रकाशित की गयी

जिसम स्वीकार किया गया जिस प्रकार की सभाओं के लिए लाजपतराय तथा उनके साथियों को गिरफ्तार किया गया है, सार्वजनिक सभा नहीं थी और उस पर सेडिशन्स मीटिंग ऐक्ट लाग नहीं हो सकता।

इस प्रकार पूरे ५९ दिनों के लिए सम्राट् की प्रजा के चार व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया, उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया, उन्हें दण्ड दिया गया और उन्हें जेल में रखा गया और फिर पंजाब सरकार को ज्ञात हुआ कि जो कुछ उसके एजेण्ट करते रहे, नितान्त गैरकाननी था।

× × ×

पंजाब सरकार को अपने मैजिस्ट्रेटों की भूल सुधार की चिन्ता तो थी, परन्तु लाजपतराय को स्वतन्त्र करने का उसका कोई विचार नहीं था। उनके तीन साथियों को तो छोड़ दिया गया, परन्तु उनको नहीं। ३० जनवरी को आधी रात के पीछे उनको जगाया गया, सुपरिनटेंडेण्ट के दफ्तर में ले जाया गया और छोड़ दिया गया। ज्यों ही वह जेल के फाटक से निकले, उनको एक वारण्ट द्वारा पुनः उस स्वतन्त्रता से वञ्चित कर दिया गया, जो उन्हें ५ मिनट पूर्व प्राप्त हुई थी। इस कागज पर मेजर फेरार, जिला मैजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर थे और वह इस प्रकार था :--

"क्योंकि लाला लाजपतराय के विरुद्ध १९११ के १०वें ऐक्ट की ७वीं धारा के तथा १९०८ के १४वें ऐक्ट की १७वीं धारा के अधीन मुकदमा चलाया जाना है, आपको निर्देश किया जाता है कि उसे गिरफ्तार कर लें और ३१ जनवरी को सेण्ट्रल जेल में मेरे सामने पेश करें।"

३० जनवरी १९२२, हस्ताक्षर
एम० एल० फेरार
जिला मैजिस्ट्रेट, लाहौर

उनको पुनः जेल में प्रविष्ट कर दिया गया। जिस कोठरी में वह गत दो मास से रहते आए थे, उसी में उनका बिस्तर तथा अन्य सामान पहुँचा दिया गया। काली अन्धेरी रात में उनको स्वतन्त्रता प्राप्त भी हुई और वह छिन भी गयी। दूसरे दिन संसार ने सुना कि लाजपतराय रात को पुनः गिरफ्तार कर लिए गए।

पुनः गिरफ्तारी से सरकार के भूल सुधार का कार्य निष्फल हो गया। पहले तो केवल दो या तीन बेकायदगियाँ हुईं, परन्तु अब तो अनियमित कार्यवाहियों का ताँता बँध गया। मुक्ति की आज्ञा देते हुए, सरकार ने सजा तो मन्सूख कर दी थी, परन्तु, प्रतिष्ठा के झूठे विचार से उनको निर्दोष नहीं माना था। इससे ऐसे पेचीदे

प्रश्न पैदा हो गए, जिनका सरकार सामना नहीं कर सकती थी। शीघ्र ही लालाजी ने एक प्रश्नमाला उनपर फेंकी:—

(क) क्या इन गिरफ्तारियों तथा मुकदमों में पंजाब सरकार का हाथ था? क्या उसने उनकी स्वीकृति अथवा अधिकार दिए?

(ख) यदि हाँ, तो क्या इन मुकदमों की स्वीकृति देने से पूर्व, पंजाब सरकार ने अपने कानूनी अफसरों से परामर्श लिया?

(ग) यदि हाँ, और कानूनी अफसरों ने मुकदमे चलाने की स्वीकृति दी तो शीघ्र ही १४५ भारतीय दण्ड विधि के अधीन दण्ड में क्यों छूट दी गयी? क्या यह छूट सरकार की दया का फल था अथवा उन्हें ज्ञात हुआ कि दण्ड ही गैरकानूनी है? यदि पिछली बात ठीक है तो फैसला सुनाने से पूर्व ही सरकारी वकील को मुकदमा वापस लेने की हिदायत क्यों नहीं की गयी? यदि यह दया का कार्य था तो सरकारी विज्ञप्ति में क्यों नहीं बतलाया गया?

(घ) यदि उन्होंने अपने कानूनी अफसरों से परामर्श नहीं लिया, तो इसका उत्तरदायी कौन था? सरकार अथवा जिला मैजिस्ट्रेट?

(ङ) यदि जिला मैजिस्ट्रेट, तो जिला मैजिस्ट्रेट तथा न्यायाधीश की इस कानूनी अनभिज्ञता के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए सरकार ने क्या पग उठाया है?

(च) अभियुक्त को इस गैरकानूनी नजरबन्दी के कारण जो कष्ट, चिन्ता तथा खर्च उठाना पड़ा है, सरकार की ओर से उसकी क्षतिपूर्ति के लिए क्या किया गया है?

(छ) पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की सभा को भंग करते समय, ३ दिसम्बर को जिन व्यक्तियों के विरुद्ध बल प्रयोग किया गया था, उनसे क्षमा याचना करने तथा उनकी क्षतिपूर्ति के लिए सरकार ने क्या पग उठाया है?

(ज) के अधीन हमें प्रतीत हुआ है कि जिस मैजिस्ट्रेट ने दण्ड दिया था, उसकी पदोन्नति की गयी है और जिला मैजिस्ट्रेट अभी तक जिला लाहौर के चार्ज में हैं।

(झ) के अधीन मुझे मुक्त करने के ५ मिनट के अन्दर ही पुन: गिरफ्तार कर लिया गया और गिरफ्तारी का कारण वे ही १४५ भारतीय दण्ड विधि वाले आरोप थे। यही समझना चाहिए कि दोनों सजाएँ कायम हैं और जब भी सरकार चाहे, उनका प्रयोग अभियुक्त के विरुद्ध कर सकती है।

श्री जी० एच० हैरिस, एक प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट ने १३ जनवरी को उनके विरुद्ध आरोप-निर्माण किया।

"तुमने ३ दिसम्बर १९२१ को पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान के रूप में एक घोषणापत्र प्रकाशित किया जो ६ दिसम्बर के ट्रिब्यून में छपा।

उक्त घोषणापत्र में, तुमने प्रत्येक कांग्रेस सदस्य से जो सजा से भयभीत न हो, राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल में जिसे सरकार ने गैर कानूनी घोषित किया था, भर्ती होने की प्रेरणा की थी, अतः तुम १९०८ के १४वें ऐक्ट की १७(अ) धारा तथा भारतीय दण्ड विधि की धारा ११७ के अधीन दोषी हो।"

एक बार फिर, न्यायालय तथा अभियोग पक्ष के मनों को कानूनी व्यथाओं ने परेशान कर दिया। इस समय तक जिला मैजिस्ट्रेट कानून की खामी मिट्टी पलीद कर चुके थे। लाजपतराय ने इस नये मुकदमे में उसकी बेकायदगियों का चित्रण दो चरणों में इस प्रकार किया :—

"इन दो अपराधों में से एक समन केस था तथा जमानत के योग्य था। दूसरा भी समन केस तथा जमानत के काबिल हो सकता है यदि अपराध १९०८ के १४वें ऐक्ट की धारा १७(१) के अधीन है, परन्तु वारण्ट किसी धारा का वर्णन नहीं करता। ३१ तारीख को मुझे जिला मैजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया और उसने क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की धारा १६७ के अधीन रिमाण्ड दे दिया, जा कि इस केस पर लागू नहीं हो सकता। उसने मुझसे नहीं पूछा कि "क्या मैं जमानत पर छूटना चाहता हूँ।" ३१ को जब मैंने जिला मैजिस्ट्रेट से पूछा कि मेरे विरुद्ध क्या अपराध है? उसने केवल वारण्ट में वर्णित धारा का नाम लिया। जब मैंने उससे १९०८ के १४वें ऐक्ट की १७ धारा (१) के बारे में पूछा, तो वह बोला कि मैं कुछ नहीं कह सकता, परन्तु कोर्ट इन्स्पेक्टर ने १७(२) धारा का जिक्र किया।

"क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की धारा १६७ लागू नहीं हो सकती, क्योंकि स्वयं जिला मैजिस्ट्रेट ने मुकदमा चलाया था। रिमाण्ड की स्वीकृति के पीछे पुलिस ने क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की धारा १५४ के अधीन प्रथम रिपोर्ट लिखी जिससे कि १६७ धारा की कार्यवाही को कानूनी रूप प्राप्त हो जाय। किसी रिमाण्ड की जरूरत नहीं थी, क्योंकि अभियोग पक्ष मेरे घोषणापत्र को ही मुकदमे का आधार समझता था।"

परन्तु यह तमाशा यहीं समाप्त नहीं हुआ।

१३ तारीख को आरोप निर्माण करा दिया गया, (लाजपतराय ने किसी प्रकार का बयान देने से इनकार कर दिया) तो सरकारी वकील ने विवाद के लिए न्यायालय से प्रार्थना की। परन्तु न्यायालय की सम्मति में केस इतना स्पष्ट तथा सरल था कि विवाद अनावश्यक प्रतीत होता था। अब तो केवल फैसला सुनाना शेष था जिसके लिए न्यायालय ने १५ जनवरी नियत कर दी।

१५ तारीख को कोई फैसला नहीं सुनाया गया, उसके स्थान में कानून का एक बिलकुल नया तमाशा शुरू कर दिया गया। स्पष्टतः उन्हें ज्ञात हो गया था कि

बहुत सी निराधार बातों को लेकर वह अपने आपको हास्यास्पद बना रहे हैं। लाजपतराय फिर लिखते हैं :—

"ऐसा प्रतीत होता है कि १३ और १५ तारीख के मध्य में न्यायाधीश अथवा अभियोग पक्ष को पता चला कि :—

(१) ३री तथा ६ठीं दिसम्बर को राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल का जन्म भी नहीं हुआ था।

(२) १६वीं दिसम्बर तक वह गैरकानूनी संस्था घोषित नहीं हुई। पंजाब गवर्नमेण्ट गजट जिस पर १२ दिसम्बर की तिथि थी, उसी दिन छपा।

(३) ३ दिसम्बर से जेल में रहते हुए, मैं उस संस्था को जन्म देने अथवा उसकी कार्यवाहियों के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता था। यह जानकर न्यायाधीश तथा अभियोग पक्ष ने मन्त्रणा की और फैसले को स्थगित कराने तथा त्रुटियों को सुधारने का निश्चय किया। यह सब कुछ अभियुक्त (मेरी) की पीठ के पीछे हुआ और मेरे पास यह विश्वास करने के कारण हैं कि जिला मैजिस्ट्रेट, कानूनी अफसर तथा न्यायाधीश सभी इसमें सम्मिलित हैं।"

परिणाम यह हुआ कि १५ तारीख को कोई फैसला नहीं सुनाया गया। उस दिन मैजिस्ट्रेट ने २० तारीख तक मुकदमा स्थगित कर दिया क्योंकि

"श्री हरबर्ट, सरकारी वकील एक प्रार्थना-पत्र देने के लिए मुकदमा स्थगित कराना चाहते हैं। वह कहते हैं कि केस में एक भूल हो गयी है। यह भूल वास्तव में अभियोग का एक भाग है और इसे शुरू में ठीक नहीं किया गया। वह चाहते हैं कि २० फरवरी १९२२, सोमवार तक मुकदमा स्थगित किया जाय।"

२० तारीख को मैजिस्ट्रेट ने पुनः आरोप निर्माण किया और दो मुकदमों की बाबत पृथक्-पृथक् लिखा :

"तुमने ३ दिसम्बर १९२१ को लाहौर में पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान के तौर पर एक घोषणापत्र प्रकाशित किया (जो ६ दिसम्बर के ट्रिब्यून में छपा) जिसमें तुमने जनता को सेडिशन्स मीटिंग ऐक्ट द्वारा निषिद्ध स्थानों में सार्वजनिक सभाएँ करने की प्रेरणा की और कानून भंग करने, जेल जाने और भद्र अवज्ञा के सिद्धान्त का प्रचार करके उन्हें उकसाया और इस प्रकार सार्वजनिक शान्ति भंग करने के दोषी हुए।"

"तुमने ३ दिसम्बर को एक घोषणा द्वारा प्रत्येक कांग्रेस सदस्य को गैरकानूनी राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल में भर्ती होने की अपील की। सरकार ने कांग्रेस तथा खिलाफत के स्वयंसेवक दलों को गैर कानूनी घोषित कर रक्खा था।

इस प्रकार तुम १९०८ के १४वें ऐक्ट की १७(१) धारा तथा ११७ भारतीय दण्ड विधि के अधीन दोषी हो।"

उस दिन प्रथम बार, लालाजी ने क्रुद्ध होकर असहयोगी का चोला उतार फेंका और न्यायालय से अनुरोध किया कि मुझे सरकारी वकील के आरोपों का जवाब देने के लिए समय दिया जाय और मुकदमा स्थगित किया जाय। न्यायालय अभियोग पक्ष की खातिर तो केस को बार बार स्थगित करता रहा था, परन्तु अब लालाजी की बात को अस्वीकार करते हुए उसने लिखा :—

"सरकारी वकील ने प्रार्थना की है कि मुकदमे को समन केस के स्थान में वारण्ट केस समझा जाय। यदि अभियुक्त की इच्छा हो तो वह अभियोग पक्ष के गवाहों को दोबारा बुला सकता है।

अभियुक्त ने प्रार्थना की है कि उसे सरकारी वकील की दरख्वास्त का उत्तर देने के लिए समय दरकार है। मेरी सम्मति में यह अनावश्यक है। मैं सरकारी वकील से सहमत हूँ कि यह वारण्ट केस होना चाहिए। अभियुक्त स्वयं एक वकील है। वह अच्छी तरह समझ सकता है कि उसके विरुद्ध क्या केस है।

अभियुक्त लगातार कहता रहा है कि असहयोगी के तौर पर मैं मुकदमे की कार्यवाही में कोई भाग नहीं लेना चाहता।"

जब अदालत ने उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी, तो लालाजी ने मुकदमे को किसी अन्य न्यायालय में बदलवाने के लिए हाईकोर्ट को लिखने की धमकी दी। यद्यपि कोर्ट का रवैया भी काफी परेशान करने वाला था, परन्तु लालाजी के क्रुद्ध होने का वास्तविक कारण कुछ अन्य ही था (जैसा कि हम अगले अध्याय में बतलाएँगे)। इसके बाद लालाजी ने न्यायालय के सामने कोई लिखित अथवा मौखिक वक्तव्य नहीं दिया। हाँ, अपने देशवासियों के नाम एक वक्तव्य जारी किया जिसमें अधिकारियों के छल कपट की खूब पोल खोली गयी। इस बयान का उद्देश्य अपने आपको निरपराध सिद्ध करना, अथवा दया की प्रार्थना करना अथवा सहानुभूति प्राप्त करना नहीं था, प्रत्युत् यह दिखलाना अभीष्ट था कि कुछ अधिकारीगण किस प्रकार के कानून ज्ञान से सर्वथा कोरे हैं और राजनीतिक कार्यसिद्धि के लिए कानून की आड़ ले रहे हैं। अन्त में आप लिखते हैं "सत्य तो यह होता कि अपनी प्रतिष्ठा की रक्षार्थ, अधिकारी वर्ग स्पष्ट घोषणा कर दें कि असहयोगी होने के नाते हमारा न्याय प्राप्ति का कोई अधिकार नहीं रहा और जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, सभी नियम, कायदे और कानून उठाकर ताक पर धर दिए गए हैं। इससे दोनों पक्ष बहुत से अनावश्यक कष्ट से बच जाते।"

इसी वक्तव्य में उन्होंने आरोप की वास्तविक घटनाओं पर भी पूर्ण प्रकाश डाला है।

"सच्ची घटनाएँ इस प्रकार हैं :

१४ नवम्बर वाली मूल सरकारी घोषणा भी जिसके अनुसार खिलाफत स्वयंसेवकों को गैरकानूनी करार दिया गया है, दोषपूर्ण है। क्योंकि पहले तो कांग्रेस स्वयंसेवक संस्था का अस्तित्व भी न था। भिन्न-भिन्न स्थानों में स्वयंसेवक कहलाने वाले युवक दलों के भिन्न-भिन्न नाम थे। उनका कोई एक प्रान्तीय संगठन नहीं था। पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अधीन काम करने वालों को "इण्डियन नेशनल सर्विस" के नाम से पुकारा जाता था। लाहौर नगर कांग्रेस कमेटी वाली संस्था "स्वराज्य सेना" कहलाती थी। बम्बई में २० नवम्बर को होने वाली आल-इण्डिया कांग्रेस कमेटी की मीटिंग में इस मामले पर विचार हुआ और फैसला हुआ कि स्वयंसेवकों को एक बिलकुल नए विधान के अनुसार संगठित किया जाय। (क) उनका नाम "नेशनल वालण्टियर कोर" हो। (ख) सारे प्रान्त के लिए एक ही यूनिट हो। (ग) वह एक ही केन्द्रीय प्रान्तीय बोर्ड के अधीन हो। (घ) प्रत्येक को लिखित प्रार्थनापत्र देना पड़ेगा और अहिंसा तथा अन्य बातों के लिए तीन पृथक् प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने होंगे। (ङ) इन सभी प्रार्थना पत्रों पर पंजाब प्रान्तीय बोर्ड की स्वीकृति आवश्यक होगी। इस प्रकार यह स्पष्ट था कि न तो मूल घोषणा ठीक कानूनी रूप में थी और न ही दूसरी घोषणा लागू हो सकती थी। यदि कोई स्वतन्त्र न्यायाधीश होता तो वह अभियोग पक्ष को यह त्रुटियाँ दूर करने का समय कभी न देता। गत दस सप्ताहों से वह मुझ पर मुकदमा चला रहे हैं और उसके पास कानून तथा वास्तविक घटनाओं का पता लगाने के लिए काफी समय था। न्यायाधीश ने तो न्याय तथा धर्म को बिलकुल तिलाञ्जलि ही दे दी है। उसने तो जिला मैजिस्ट्रेट तथा सम्राट् को प्रसन्न करने की चेष्टा की है, इसलिए वह सदा ही उनकी उँगली के इशारों पर नाचता रहा है और उसने मुझे उत्तर देने के लिए एक दिन का समय देने से भी इनकार कर दिया है।"

इस वक्तव्य के प्रकाशन से पूर्व ही उनको दण्ड का हुक्म सुना दिया गया। उसमें निम्नलिखित बेकायदगियाँ थीं :

"भारतीय दण्ड विधान की ११७ धारा के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वह धारा केस पर लागू ही नहीं होती, क्योंकि

प्रथम : यदि वह मान भी लिया जाय कि मैंने जनता को स्वयंसेवक बनने तथा सार्वजनिक सभाएँ करने की प्रेरणा की, तो यह स्पष्ट है कि धारा ११७ जनसाधारण पर सामूहिक तथा समष्टि रूप से लागू होता है, परन्तु स्वयंसेवक भर्ती होना प्रत्येक

मनुष्य का व्यक्तिगत कार्य है। यह कार्य जनता द्वारा समष्टि रूप से होना असम्भव है। इसी प्रकार जनता समष्टि रूप से भाषण अथवा व्याख्यान भी नहीं दे सकती।

दूसरा : राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल का तो घोषणा के बाद ही जन्म हुआ।

तीसरा : घोषणा में स्पष्ट बतलाया गया है कि कार्यकारिणी समिति की स्वीकृति के बिना कोई भी भद्र अवज्ञा नहीं कर सकेगा।

चौथा : इसी घोषणा तथा इन्हीं घटनाओं को ही भारतीय दण्ड विधान की १४५ धारा वाले मुकदमे का आधार बनाया गया था। वह आरोप भी अभी तक कायम है।

पांचवां : इन दोनों धाराओं की भाषा से प्रगट होता है कि प्रोत्साहन तो मूल अपराध का एक भाग है। मैं नहीं जानता कि इस घोषणा के आधार पर अभी कितने और मुकदमे मेरे विरुद्ध चलाए जाने हैं। मैं तो बलिदान का बकरा बनने को तैयार हूँ।"

फिर भी लाजपतराय को दो वर्ष के कारावास का दण्ड सुना दिया गया।

अध्याय तीन

भारतीय राजनीति में महान् परिवर्तन

पंजाब कांग्रेस सभा में लालाजी की गिरफ्तारी और उनकी सजायाबी में ३ मास बीत गए। इस अवधि में भारतीय राजनीति में महान् परिवर्तन हो गए। उनकी गिरफ्तारी के समय भी परिवर्तन के बीज उपस्थित थे, परन्तु उनके विकास तथा वृद्धि के बारे में भविष्यवाणी करना सहज न था। दो बातों ने इस विकास में भाग लिया—कांग्रेस का भद्र अवज्ञा आन्दोलन चलाने का निश्चय तथा जनता की ओर हिंसात्मक प्रयत्न—यद्यपि कांग्रेस का प्रचार इसके सर्वथा विपरीत था।

आरम्भ से ही "भद्र अवज्ञा" को प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोग की पराकाष्ठा समझा गया, यद्यपि यह सम्भव है कि असहयोग के जन्मदाता को यह आशा हो कि असहयोग के (सरकारी कर देने से इनकार का) भीषण रूप धारण करने से पूर्व ही सरकार से सन्धि हो जायगी। यह आशाएँ असफल रहीं और गुजरात के एक छोटे से तालुके—बारदोली के लोगों ने सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व तथा अध्यक्षता में अक्तूबर में भद्र अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने का फैसला कर दिया। असहयोग के नेता की योजना थी कि यह प्रयोग बारदोली में उनकी निजी देखरेख में चलाया जाय और अन्य स्थानों में स्थानीय नेताओं द्वारा दुहराया जाय। कार्यकारिणी समिति ने ३ नवम्बर को एक प्रस्ताव पास किया कि यदि कुछ शर्तें पूरी हो जायँ, तो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को व्यक्तिगत तथा सामूहिक भद्र अवज्ञा जारी करने का अधिकार दिया जायगा। इसके दो सप्ताह के अन्दर ही बम्बई में दंगे शुरू हो गए जिसमें ५० से अधिक व्यक्ति मारे गए और ४०० घायल हुए। युवराज के भारत आगमन की जनता के द्वारा बहिष्कार की हड़ताल पर यह दंगे फूट पड़े। असहयोग का नेता विचलित हो गया। लम्बे उपवास के अतिरिक्त भद्र अवज्ञा चलाने पर और अधिक प्रतिबन्ध लगा दिए गए और स्वयंसेवकों के अहिंसा व्रत को और अधिक कठोर बना दिया गया। परन्तु आन्दोलन का विचार छोड़ नहीं दिया गया। उसे और भी तीव्र करना था। अधिकाधिक स्वयंसेवक भर्ती होने थे। यद्यपि भद्र अवज्ञा का कार्य प्रान्तीय कमेटियों की इच्छा पर निर्भर नहीं

था, परन्तु समझा यह जा रहा था कि आन्दोलन की सभी तैयारियाँ जारी रहेंगी और यदि सम्भव हुआ तो अधिक तेज गति से कार्य होगा। बम्बई के दंगों का अर्थ बारदोली के मोर्चे का स्थगन तो था, परन्तु इसे त्याग नहीं दिया गया।

जब लालाजी गिरफ्तार हुए तो यह परिस्थिति थी। प्रति क्षण, देश महान् घटनाओं की प्रतीक्षा में था। लालाजी को "एक वर्ष के अन्दर स्वराज्य" की आशा तो नहीं थी, परन्तु निकट भविष्य में उसके लिए एक भारी प्रयत्न की आशा उन्हें अवश्य थी। गिरफ्तारी के समय अपने देशवासियों के नाम सन्देश में उन्होंने लिखा था :

"जब मैं अमेरिका से चला था, मैं जानता था कि मुझे चिरकाल तक जेल से बाहर नहीं रहने दिया जायगा। मैंने चलते समय अपने मित्रों को कहा था कि यदि मुझे ६ मास भी अपने देशवासियों में काम करने दिया गया तो मुझे सन्तोष होगा। परन्तु ईश्वर के अनुग्रह से मैं आपके साथ १९ मास काम कर सका, और अब प्रसन्नचित्त यह दृढ़ विश्वास लेकर जेल जा रहा हूँ कि जो कुछ हमने किया है, हमने अपनी आत्मा तथा ईश्वर के आदेश के अनुसार किया है। मेरे मन में किसी प्रकार की शंका वा भय नहीं। मुझे विश्वास है कि जो मार्ग हमने चुना है, वही ठीक मार्ग है और हमारी सफलता निश्चित है। मेरा यह भी विश्वास है कि मैं शीघ्र ही लौट कर आपके बीच पुनः काम जारी करूँगा। यदि यह न भी हुआ, तो भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जब मैं अपने भगवान् के पास लौटूंगा तो मुझे किसी प्रकार का खेद नहीं होगा। मैं एक निर्बल तथा शक्तिहीन व्यक्ति हूँ। मुझमें महात्मा गांधी जैसी गौरवमय आध्यात्मिकता का अभाव है। कभी-कभी मैं अपने क्रोध को छिपा नहीं पाता। मैं यह दावा भी नहीं करता कि मेरे मन में वे भावनाएँ उत्पन्न ही नहीं हुई जिन्हें पैदा नहीं होना चाहिए। परन्तु मैं यह दावा सचाई से कर सकता हूँ कि निज मातृभूमि तथा राष्ट्र के हित ही सदैव मेरे सन्मुख रहे हैं। मैं जानता हूँ कि कर्तव्यपालन में मैंने कई भूलें की हैं और कभी-कभी मैंने ऐसी आलोचनाएँ की हैं जिससे मेरे कुछ देशवासी बिगड़ सकते थे। उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। आशा है कि मुझे माडरेट तथा आर्यसमाजी भाई विशेषतः क्षमा कर देंगे।"

"मेरे देशवासियो, मैं आपसे पृथक् होता हूँ। मैं इस दृढ़ विश्वास के साथ कारागार को जा रहा हूँ कि मेरे राष्ट्र तथा मातृभूमि की प्रतिष्ठा आपके हाथ में सुरक्षित रहेगी। "वन्दे मातरम्" तथा तिलक राजनीतिक विद्यालय मेरे दो बच्चे हैं, उनको भी मैं आपकी रक्षा में छोड़ रहा हूँ।"

अली बन्धु लालाजी से भी पूर्व गिरफ्तार हो चुके थे, यद्यपि महात्माजी ने उनको अपने कुछ वक्तव्यों के लिए खेद प्रकट करने को समझाया था। फिर एक-एक

करके सभी चोटी के नेता—सी० आर० दास, अबुलकलाम आजाद तथा मोतीलाल नेहरू पकड़ लिये गए। अब महात्माजी उनके परामर्श तथा मन्त्रणा से लाभ नहीं उठा सकते थे। अब तो देश का नेतृत्व एक ही व्यक्ति का मामला बन गया था।

अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और नियमित रूप से महात्मा गांधी को कांग्रेस का अधिनायक—डिक्टेटर—नियुक्त कर दिया गया। परन्तु इसे युद्धकालीन परिस्थिति समझा गया। महात्माजी को आन्दोलन के संचालन के लिए ये असाधारण अधिकार दिए गए। उन्हें अधिनायक नियुक्त करते समय कांग्रेस प्रस्तावों में कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए।

"कांग्रेस कार्यकर्ताओं की भारी संख्या की होनेवाली गिरफ्तारियों को सामने रखते हुए यह कांग्रेस (यथासम्भव अपनी साधारण मशीनरी को साधारण ढंग से काम करने के लिए सुरक्षित रखते हुए) महात्मा गांधी को अधिनायक नियुक्त करती है और उन्हें कांग्रेस का विशेष अधिवेशन, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी अथवा कार्यकारिणी का अधिवेशन बुलाने के पूर्णाधिकार देती है। उन्हें अपने उत्तराधिकारी नियुक्त करने तथा आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के दो अधिवेशनों के बीच यह अधिकार प्रयोग करने का हक है।

कांग्रेस उस उत्तराधिकारी तथा आगामी उत्तराधिकारियों को उपरोक्त अधिकार प्रदान करती है, इस शर्त पर कि आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी (जिसका समर्थन विशेष कांग्रेस द्वारा होगा) की स्वीकृति के बिना महात्मा गांधी तथा उनके उत्तराधिकारी भारत सरकार अथवा ब्रिटिश सरकार से किसी प्रकार की सन्धि नहीं कर सकेंगे। कांग्रेस की आज्ञा प्राप्ति के बिना महात्मा गांधी अथवा उनके उत्तराधिकारी कांग्रेस के ध्येय में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकेंगे।"

महात्मा पूरे उत्साह से काम कर रहे थे और १ फरवरी को उन्होंने लार्ड रीडिंग (वायसराय) के नाम ७ दिन का नोटिस देकर एक घोषणापत्र (अल्टीमेटम) भेजा जिसमें माँग की गयी थी कि सभी कैदियों को (यदि उनके विरुद्ध कोई हिंसात्मक अपराध न हो) छोड़ दिया जाय और खिलाफत तथा पंजाब की शिकायतों की तलाफी के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन चलाने की पूरी स्वतन्त्रता दी जाय। यदि ७ दिन की समाप्ति पर यह न हुआ तो बारदोली में भद्र अवज्ञा आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया जायगा।

गोरखपुर के पास चौरीचौरा नामक एक छोटे से अज्ञात ग्राम (उस समय से चौरीचौरा को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हो गया है) में अकस्मात् दंगा फूट पड़ा। २२ पुलिस कांस्टेबलों की हत्या कर डाली गयी। बम्बई में १७ नवम्बर को, मद्रास

में १३ जनवरी को और चौरीचौरा में ५ फरवरी को गड़बड़ी हुई। यह ५ फरवरी का दिन बारदोली के अल्टीमेटम की समाप्ति से केवल दो दिन पूर्व ही था।

महात्माजी ने भद्र अवज्ञा पर पुनः विचार करना शुरू कर दिया। क्या बम्बई के दंगे के बाद ही पुनः विचार आरम्भ हो गया था? क्या यही विचार युवराज के आगमन पर दंगों तथा बम्बई के फैसलों के बाद ही शुरू हुआ था? क्या हिंसा प्रदर्शन से ही विष्णु रूप के विचार का श्रीगणेश हो गया था? इन प्रश्नों के कुछ ही उत्तर क्यों न हों, हमारी कथा की अगली घटना यह है कि १२ फरवरी को बारदोली में कांग्रेस वर्किंग कमेटी का अधिवेशन हुआ और महात्मा गांधी के परामर्श से सामूहिक भद्र अवज्ञा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया। इस फैसले का आधार बम्बई तथा चौरीचौरा पर हिंसात्मक प्रदर्शन ही थे। गिरफ्तार होने, जलूसों तथा सार्वजनिक सभाओं इत्यादि के सभी कार्य त्याग दिए गए और कांग्रेस वालों को रचनात्मक कार्य (जिसमें हाथ की बुनाई तथा कताई प्रमुख थी) में अपनी शक्तियाँ लगाने को कहा गया।

अध्याय चार

बारदोली के निश्चय के पश्चात् की घटनाएँ

लालाजी को ये समाचार अपने दूसरे मुकदमे के दिनों में मिले। महात्माजी की इस आत्महत्या (हराकारी) की उन्हें सदा ही आशंका बनी रहती थी। आखिर वही होकर रहा, जिसका भय था। जिस सेनानायक से वह "विजय अथवा सर्वनाश" की आशा रखते थे, उसने सेना की परीक्षा लिए बिना ही "पीछे हटो" का हुक्म दे दिया। उनकी यह चाल लालाजी के विचार से देशद्रोह से कम न थी। परन्तु एक सच्चे अनुयायी की तरह आपने अपने सेनानायक की इस कार्यवाही को शान्तिपूर्वक स्वीकार कर लिया।

२० फरवरी के अदालती दृश्य की पृष्ठभूमि उपरोक्त बातें थीं, जब लालाजी ने केस को दूसरे न्यायालय में परिवर्तित कराने की धमकी दी थी। वास्तव में उन्हें केस के परिवर्तन में कोई दिलचस्पी नहीं थी। "मैं तो केवल समय चाहता था" उन्होंने एक लम्बे वक्तव्य में लिखा। वह अनुभव करते थे कि देश का सत्यानाश किया जा रहा है और नेतागण गलत मार्ग पर चल रहे हैं और मुझे जेल से निकलकर इन सबका सुधार करना चाहिए। वह जानते थे कि उनके विरुद्ध एक भद्दा तथा निराधार सा केस है। वह मामूली सा समन केस है और वह जमानत पर छूट सकते हैं। इस प्रकार "पीछे लौटो" कहने वाले अपने सहकारियों से अपने मन की बातें तो कह सकेंगे। वह जानते थे कि वर्किंग कमेटी के बारदोली वाले फैसले पर विचार करने के लिए २४ तारीख को आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी बुलायी गयी है।

वह सचमुच ही बाहर आना चाहते थे। के० सन्तानम ने (जो उस समय न तो कैदी थे, ना ही विचाराधीन अभियुक्त) जो उस समय अदालत में एक मित्र के रूप में मौजूद थे, उनको समझाया कि आप इस प्रकार आवेश में आकर नेताओं के विरुद्ध विद्रोह खड़ा न करें। परन्तु लालाजी को काबू में लाना कठिन था। काफी देर तक जेल के न्यायालय के एक कोने में वाद विवाद होता रहा। निदान सन्तानम तथा अन्य मित्रों की युक्तियों के सामने नहीं, वरन् उनकी दोस्ताना प्रार्थनाओं के सामने लालाजी झुक गए।

उन्होंने अपने मनोभावों का प्रदर्शन महात्मा गांधी के नाम एक भारी पत्र में किया। पत्र के आरम्भ में तो महात्मा गांधी के व्यक्तित्व तथा नेतृत्व की भारी प्रशंसा की गयी थी, परन्तु अन्त में लिखा था कि आपकी भूलें भी आपकी महानता की तरह हिमालय के तुल्य हैं। उन्होंने वे सभी अवसर गिना दिए जब-जब गांधीजी ने भूल की। उन्होंने गांधीजी के असहयोग कार्यक्रम के कुछ अंशों की आलोचना की जिन्हें अन्य लोगों ने उनके (महात्मा के) अनुरोध के कारण स्वीकार कर लिया था, हालाँकि उनका विवेक उन्हें स्वीकार नहीं करता था। सबसे बढ़कर पत्र में बारदोली के फैसले की निर्दयतापूर्ण आलोचना की गयी थी। गम्भीर विश्लेषण द्वारा उन्होंने असहयोग की कमजोरियाँ भी बतलाते हुए लिखा कि आप आन्दोलन की सफलता के लिए जिस पूर्ण अहिंसा के वातावरण को आवश्यक समझते हैं, जहाँ तक आम जनता के नेतृत्व का सम्बन्ध है, वह तो एक असम्भव वस्तु है। पत्र की भाषा बिलकुल स्पष्टवादिता से पूर्ण थी और अन्त में लालाजी ने महात्मा गांधी से तीव्र शब्दों के लिए क्षमा याचना करते हुए लिखा था कि "यद्यपि ये शब्द एक भावुक हृदय के उद्‌गार हैं, परन्तु उनकी सत्यनिष्ठा पर सन्देह न किया जाय।"

महात्मा गांधी ने एक पोस्टकार्ड के० सन्तानम को लिखा कि "मुझे वह पत्र पहुँच गया है परन्तु इस समय लालाजी (जेल में रहने के कारण) नागरिक रूप में मृत से हैं और इस प्रकार के पत्र लिखने का उनको कोई प्रयोजन नहीं।"

वह एक महत्त्वपूर्ण पत्र था और खेद है कि उसकी कोई प्रति नहीं रखी गयी। जब महात्मा गांधी से उसके बारे में पूछा गया तो वह बोले—वह एक आवेशपूर्ण पत्र था, उसकी प्रतिलिपि रखना जरूरी नहीं था। एक मित्र की सच्ची आलोचना-पूर्ण पत्र को केवल इसलिए फाड़ डालना कि उसमें कुछ कठोर भाषा का प्रयोग किया गया था, कहाँ तक उचित है, इसका निर्णय भिन्न-भिन्न लोग अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार भिन्न-भिन्न ढंग से करेंगे। कई वर्ष पश्चात् असहयोग आन्दोलन का विश्लेषण करते हुए लालाजी ने एक लेखमाला में लिखा था :

"बारदोली का फैसला तथा बारदोली के प्रस्ताव एक आशाभरे तथा विश्वास पूर्ण संसार पर एक बम की तरह टूट पड़े। इससे जनता घबड़ा गयी, कुछ-कुछ चकित हो गयी और उसे क्रोध चढ़ा। बीस हजार के लगभग लोग जेलों में थे। लगभग एक करोड़ रुपया जमा किया गया। प्रान्तों के अधिकांश प्रमुख नेता छिन गए। सरकार तथा उसके एजेण्टों ने जनता को बुरी तरह उत्तेजित किया, परन्तु जनता बिलकुल शान्त तथा ठण्डी रही। सहस्रों लोगों ने पुलिस के हाथों तथा जेलों में कष्ट उठाए परन्तु प्रतिहिंसा का विचार तक उनके मन में नहीं आया। यह सब कुछ केवल इसलिए हुआ कि जनता की आँखें बारदोली के नवयुग की ओर लगी हुई

थीं। अकस्मात् ही वज्रपात हुआ। प्रतिक्रिया के रूप में निराशा, क्रोध तथा अशान्ति का फैलना स्वाभाविक था।".

कहा जाता था कि महात्मा गांधी को मोतीलाल नेहरू और शायद सी० आर० दास की ओर से भी इसी प्रकार के पत्र प्राप्त हुए। २४ फरवरी को एम० ए० अन्सारी के मकान पर महात्मा जी तथा अन्य मित्रों ने लालाजी की चिट्ठी पढ़ी। लालाजी की आलोचना का महात्माजी ने यह उत्तर दिया कि जेल में बैठे हुए लोग नागरिक रूप से मृत समझे जाने चाहिए और राजनीतिक संस्थाओं को परामर्श देने अथवा उनका नेतृत्व करने की आशा उनसे नहीं की जानी चाहिए।

बारदोली के पश्चात् असहयोग आन्दोलन में लगे हुए महात्माजी के विवेकशील साथियों ने स्थिति पर स्वतन्त्र रूप से विचारना आरम्भ कर दिया।

जब अन्य चोटी के नेता जेल से बाहर आए, तो उन्होंने परिस्थिति को नया रूप देना शुरू कर दिया। जून १९२२ में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने इस उद्देश्य से भद्र अवज्ञा कमेटी नियुक्त की। नवम्बर में इस कमेटी की रिपोर्ट पर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में विचार हुआ। कमेटी की नियुक्ति का उद्देश्य तो भद्र अवज्ञा को पुनर्जीवित करना था और अ० भा० का० कमेटी के प्रस्ताव द्वारा प्रान्तीय समितियों को विशेष शर्तों के अधीन भद्र अवज्ञा जारी करने का अधिकार दिया गया था। परन्तु समझा यही गया कि निकट भविष्य में उन शर्तों के पूरा होने अथवा भद्र अवज्ञा जारी होने की कोई आशा वा सम्भावना नहीं थी। इस कमेटी की दौड़ धूप का परिणाम यह सुझाव था कि धारा सभाओं पर प्रतिबन्ध उठा लिया जाय। इससे १९२४ के आम चुनाव में कांग्रेस दल के लिए सेना तैयार हो गयी।

लालाजी ने स्वयं भी कमोवेश इन्हीं लाइनों पर सोचना शुरू कर दिया था और जेल की कोठरी में से भी उस विद्रोह में अपना भाग ले रहे थे जिसके आधार पर स्वराज्य दल का जन्म हुआ। सी० आर० दास पंजाब आए और स्वभावतया बारदोली के पीछे की घटनाओं के बारे में वह लालाजी के विचार जानना चाहते थे। उनको लालाजी से भेंट करने की आज्ञा नहीं मिली। अतः उनसे वाद-विवाद तो सम्भव न था, परन्तु लालाजी ने एक पत्र द्वारा अपने विचारों से उनको सूचित कर दिया। लालाजी ने पंजाब में चित्तरंजन दास का हार्दिक स्वागत करते हुए लिखा कि "हमारे प्रचार कार्य को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई। हमारी भूलों के होते हुए भी इसने जनता की मनोवृत्ति को पूर्ण रूप से बदल डाला है और उनके विचारों तथा आदर्शों को परिवर्तित कर डाला है। यदि उस दृष्टिकोण से देखा जाय, तो जो कुछ हमने किया, उसके लिए हमें कोई खेद नहीं। आप जानते ही हैं

कि कलकत्ता के विशेष अधिवेशन के अवसर पर मुझे कार्यक्रम की सफलता में सन
था, परन्तु गत २ वर्षों का सिंहावलोकन करते हुए, मुझे कोई सन्देह नहीं र
कि महात्मा जी ही ठीक थे। एक वर्ष के लिए तो उनका कार्यक्रम ठीक था, पर
दीर्घ अवधि के लिए उन पुराने हथियारों से काम नहीं चलेगा। एक वर्ष के लि
जनता से जिस प्रकार के त्याग की मांग की जाती है, उसे अनिश्चित काल
लिए नहीं दुहराया जा सकता। मैं चाहता हूँ कि कार्यक्रम में कुछ लचीलाप
हो। महात्मा गान्धी में कभी कभी उस लचक का अभाव रहता है।

"मुझे जिस भूल का खेद हो रहा है, वह दिसम्बर तथा जनवरी में महात्माजं का अपरिवर्तन वाद है। मेरे विचार में राजनीति के क्षेत्र में मनुष्य को सिद्धांत में तो दृढ़ता होनी चाहिए, परन्तु साधनों तथा नीति में नहीं। कृपया आप इर भ्रम में न रहें कि मैं औचित्य की वेदी पर सत्य तथा ईमानदारी का बलिदा चढ़ाना चाहता हूँ। परन्तु मैं यह कदापि नहीं मान सकता कि राजनीति की चालें अथवा औचित्य का राजनीतिक आन्दोलन में कोई स्थान ही नहीं। वायसराय ने दिसम्बर में महात्मा जी को लड़ाई बन्द करने का प्रतिष्ठापूर्ण अवसर दिया था जिसे उन्होंने खो दिया। फिर मालवीय सम्मेलन पर उनका आग्रह तथा उनका अल्टीमेटम भारी भूलें थीं। मैं यह बातें केवल आलोचना की खातिर नहीं लिख रहा हूँ। मेरा उद्देश्य यह है कि हम भविष्य निर्माण के लिए अपने पिछले कार्य-हानि तथा लाभ आदि का सन्तुलन करें। हमें देखना चाहिए कि हम कहां खड़े हैं। सरकार भयभीत तथा अवज्ञापूर्ण है। उसको देश में हमारे प्रभाव से भय लगता है, परन्तु वह हमें कुचलने पर तुली हुई है। इस कार्य के लिए उसने न्याय, औचित्य तथा नैतिकता का उल्लंघन करने में कोई कसर नहीं रखी। उनका विश्वास है कि युद्ध तथा प्रणय में सभी कुछ उचित है और इसी सिद्धान्त पर चलती भी है। हमने ऐसा कभी नहीं सोचा था।"

चित्तरंजन दास को जिस बात में मुख्य दिलचस्पी थी, वह धारा सभाओं पर से प्रतिबन्ध हटाना था। महाराष्ट्र के मित्र तो अनुरोध कर रहे थे कि असहयोग का समस्त कार्यक्रम खतम कर दिया जाय। यद्यपि लाला जी भी उनसे सहमत थे, परन्तु उन्हें उन मदों के त्यागने में कोई लाभ नहीं दिखायी पड़ता था जो व्यवहार में नहीं आ रहे थे। विद्यालयों के बहिष्कार पर बोलते हुए आपने कहा "हम विद्यालयों के विरुद्ध कोई प्रचार नहीं कर रहे हैं। शिक्षणालयों का बहिष्कार तो एक आदर्शमात्र है। जो इस पर अमल नहीं कर सकता, कांग्रेस उसे कोई दण्ड नहीं देती।" इसी प्रकार मैं न्यायालयों के बहिष्कार पर अपनी शक्ति नष्ट नहीं करूंगा, क्योंकि अदालतों का पूर्ण बहिष्कार असम्भाव्य है और सभी

असहयोगी अपने आचरण से इसे स्वीकार करते हैं। मैं कई कांग्रेसियों को जानता हूँ जिनमें से कुछ नेता गण भी हैं, जो दीवानी अदालतों का बहिष्कार नहीं करते। क्या व्यापारी वर्ग दीवानी अदालतों का बहिष्कार कर सकता है? क्या जमींदार तथा कृषक ऐसा कर सकते हैं? यदि हम कांग्रेस को देशव्यापी राष्ट्रीय संस्था बनाना चाहते हैं तो इस विचार को व्यावहारिक रूप देना असम्भव है। मेरे विचार में, हमने यह बुद्धिमत्ता का कार्य किया कि सरकार के चलाए हुए मुकदमों में अपनी सफाई पेश नहीं की। हमारे प्रदर्शन सफल रहे। अब समय आ गया है कि हम इस बारे में कुछ परिवर्तन करें। असहयोग के इस पहलू का युद्धकालीन नीति के तौर पर तो समर्थन किया जा सकता है, परन्तु अनिश्चित काल के लिए इसे नहीं चलाया जा सकता। हममें से कुछ इने गिने ऐसा कर सकें, परन्तु समस्त राष्ट्र अथवा कांग्रेस नहीं कर सकती।"

इस पत्र में आपने उस मुख्य प्रश्न पर विस्तृत आलोचना नहीं की, जिसमें श्री दास को दिलचस्पी थी—अर्थात् धारा सभाओं पर कांग्रेस प्रतिबन्ध। प्रतिबन्ध का विचार वास्तव में असहयोग के जन्मदाता का नहीं, वरन् स्वयं उनकी उपज था। प्रतिबन्ध को समुचित करार देते हुए उन्होंने लिखा था :—

"अब हम सबसे महत्वपूर्ण तीसरी बात को लें। काफी सोचविचार के बाद मेरा यह मत है कि सहयोग के लिए अथवा रुकावट के लिए कौंसिलों में जाना भूल होगी। "जवाबी सहयोग" अथवा "जवाबी असहयोग" निरर्थक शब्द हैं। सिनफीन के चरण चिन्हों पर चलना ही हमारे लिए श्रेष्ठ होगा—अर्थात् समानान्तर सरकार की स्थापना करना। सरकारी मताधिकार के अनुसार प्रतिद्वन्द्वी असेम्बलियाँ तथा प्रतिद्वन्द्वी कौंसिलों का चुनाव हमारी भारी नैतिक विजय होगी। मेरे विचार में, कार्यक्रम में परिवर्तनों का कार्य आगामी अप्रैल अथवा मई में होनेवाले विशेष अधिवेशन तक स्थगित करना बुद्धिमत्ता होगी। परिस्थिति वग से बदल रही है। हमें अभी से अपने हाथ नहीं बाँध लेने चाहिए। राजनीति सदा ही बदलने वाला खेल है। मेरे विचार में कोई भी एक निश्चित नीति सब परिस्थितियों तथा सब कालों के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकती।

सामूहिक भद्रअवज्ञा को कभी शुरू न करो, अथवा उसकी स्वीकृति कभी मत दो, यदि आप उसे अन्त तक ले जाने को तैयार नहीं (चाहे उसके लिए कितना ही भारी दाम चुकाना पड़े)। जहां तक व्यक्तिगत भद्र अवज्ञा का सम्बन्ध है, उसकी स्वीकृति बड़े पैमाने पर कभी न दें, जब तक कि देश के पास पचास सहस्र ऐसे लोग न हों जो जेल जाने तथा कैद का कष्ट उठाने को कटिबद्ध न हों।"

इस समय तक वह प्रतिबन्ध हटाने के बारे में सोच रहे थे, परन्तु उनं विचार अभी तक स्पष्ट नहीं हुए थे। न तो वह माडरेटों की तरह सुधारों के सफर बनाने के पक्ष में थे, और ना ही वह अन्दर से असहयोग करने—अर्थात् रुकाव डालने की चालों के पक्ष में थे।

(इस चिट्ठी का अन्तिम भाग हिन्दू-मुस्लिम एकता के बारे में था जिर के बारे में हम किसी अगले अध्याय में बतलाएँगे।) कुछ भी हो, अब वह धार सभाओं के बहिष्कार पर अनुरोध नहीं कर रहे थे। श्री दास के तात्कालिक काम के लिए यही पर्याप्त था। दास ने उनको कहला भेजा कि गया अधिवेशन पर वह परिवर्तन के लिए जोर लगाएँगे और वह (लालाजी) जेल के अन्दर से यथासम्भव उनका समर्थन करेंगे।

उनकी प्रार्थना व्यर्थ नहीं गयी। लालाजी ने "एक वैधानिक विद्रोही के विचार" नाम से एक लेख माला लिखी, जिनमें वैधानिक विद्रोही एक गान्धी-भक्त—दयालदास के सामने अपने मन की बातें रखता है। प्रति दिन ६ बजे प्रातः नवम्बर के शीत में दोनों की भेंट होती है। दयालदास अपने विचारों की खातिर फाँसी पर लटकने अथवा अग्नि में कूदने को तैयार था। गान्धी जी ने ही उसके लिए जीवन तथा मरण की समस्याएँ हल कर दी थीं और उसे सोचने तथा स्वतंत्र विचार करने के कष्ट से मुक्त कर दिया था।

अध्याय पाँच

फिर जेल में

"आपके बन्दी के तौर पर, मुझे आपसे किसी प्रकार की रियायत अथवा कृपा की इच्छा न होगी। जो कुछ मुझे आप खाने को देंगे, मैं खा लूंगा, और जिस प्रकार का काम आप मुझसे लेना चाहेंगे, मैं करूँगा।" लाला जी ने अपनी गिरफ्तारी से पूर्व हरकिशनलाल से कहा था, जब एक दिन वह २, कोर्ट स्ट्रीट में उनके दर्शनार्थ आए थे। उन्होंने हंसते हंसते एक बात यह भी कह दी थी—इस आयु में उन्हें पाखाना अच्छी तरह नहीं आता, जब तक कि उनके लिए एक पृथक् कमोड का प्रबन्ध न हो।

सच तो यह है कि वह कारावास की अवधि को आत्म शासन तथा शान्ति का शिक्षणालय समझते थे। "मैं बिल्कुल प्रसन्नचित्त और प्रफुल्लित हूँ। किसी प्रकार की रियायतों के लिए शिकायत नहीं करूंगा। मैं अनुरोध करूंगा कि मेरे साथ साधारण कैदी सा व्यवहार किया जाय। आप विश्वास रखें कि मैं आपके आन्दोलन को किसी प्रकार कलंकित नहीं करूँगा।" गिरफ्तारी से पूर्व आपने महात्मा गान्धी को लिखा था। जेल जाने से पूर्व, आप यह आदेश दे गए थे, कि उनके लिए घर से भोजन न भेजा जाय। आपने पंजाब की जनता के नाम सन्देश भेजते हुए भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किए थे।

"आरम्भ में ही, मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं पूर्णतः प्रसन्न हूं। मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूं कि उसने मुझे वर्तमान सरकार की कृपा द्वारा नैतिक साधना करने का अवसर दिया है। मैं प्रयत्न कर रहा हूँ कि अहंकार, मिथ्याभिमान, स्वार्थ तथा आत्मप्रशंसा के जो अंश मेरे आचरण में हैं, वह कारावास जीवन की भट्ठी में नष्ट हो जायँ ताकि मैं इस स्थान से पवित्र होकर लौटूं। पिछली बार जब मैं कैद हुआ था, मुझे जेल जीवन का कुछ अनुभव नहीं था और मुझे मानवता के अधःपतन के दृश्य के अवलोकन का कोई अवसर नहीं मिला था। इस बार के अनुभव ने मुझे सिखला दिया है कि धन, शिक्षा तथा पदवी द्वारा मानव गौरव में रत्ती भर भी वृद्धि नहीं हो सकती। इस संसार में सत्यनिष्ठ मनुष्यों का भारी अभाव है और मेरी प्रबल इच्छा केवल मनुष्य बनने की है।

मेरे चारों ओर असंख्य मनुष्य हैं—अधिकांश कैदी हैं और कुछ जेल के अधिकारी। मेरी सम्मति में, इन लोगों का अधिकांश जो जेलों से बाहर हैं, और जिन्हें अपने धन, शिक्षा तथा पदवी के कारण समाज में प्रतिष्ठित समझा जाता है, इन कैदियों से किसी प्रकार भी उच्चतर अथवा श्रेष्ठतर नहीं। वह लोग जेल से बाहर हैं क्योंकि समाज (जिस ढंग से आजकल उसका निर्माण हुआ है,) दरिद्रता तथा विवशता का दण्ड देता है, न कि अपराधों का। वहां कौन बदमाशी नहीं करता ? परन्तु जहां दरिद्र तथा विवश कैदी को मानवता के उच्च आसन से धक्का देकर निर्दयता पूर्वक पतित किया जाता है, अन्य लोगों को उन्नति तथा सम्पति के रूप में बदमाशी का पुरस्कार दिया जाता है। एक बन्दी होने के नाते, कैदी को मानवोचित व्यवहार से वंचित रखा जाता है। यहां तक कि धीरे धीरे उसके उच्च गुणों का विनाश हो जाता है। और वह पशु बन जाता है। उसके वार्डर (रक्षक) भी पशु बन जाते हैं, क्योंकि समाज उनका सहन करता है। मैंने अनुभव किया है कि मनष्यों के साथ केवल इसीलिए प्रेम किया जाय कि वह मनुष्य हैं, न कि उनके धन, विद्या तथा पदवी के कारण। जैसे शैतान के घर हैं। उनके अन्दर अवर्णनीय शरारत तथा बेईमानी भी चलती है। मेरे हृदय में इन मैले कुचैले, शरारत भरे तथा अत्याचार पीड़ित अपराधियों के लिए अगाध स्नेह है। उनके अपराधों और शरारतों का उत्तरदायित्व समाज पर है, नहीं तो उनमें से प्रत्येक के भीतर वही दैवी गुण हैं जो महात्मा गान्धी में हैं। ये जेलें सुधार के उद्देश्य से नहीं बनायी गयीं, वरन् इसलिए कि शक्तिशाली लोगों को निज अहम्मन्यता प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हो सके। उनकी शिक्षा व दीक्षा ने उन्हें विवश बना रखा है। स्वयं उनकी दशा दयनीय है। मैं उनके विरुद्ध कोई ईर्ष्या व द्वेष नहीं रखता। इन कारणों से मैं अपने कारावास को ईश्वर का अनुग्रह समझता हूँ। आत्म-संयम का आचरण करने तथा विनीत भाव सीखने का इससे अच्छा शिक्षणालय नहीं मिल सकता, बशर्ते कि कोई अपनी प्रकृति को इनके अनुकूल ढाल सके।"

अधिकारी भी लाला जी को विशेष रियायतें देने को उत्सुक नजर नहीं आते थे। मैजिस्ट्रेटों का रवैया भी बड़ा खराब था। उन्होंने लालाजी के किसी सम्बन्धी, मित्र अथवा वकील को उनसे भेंट करने की आज्ञा न दी। मानो जेल की नियमावली भी स्थगित कर दी गयी हो।

ट्रिब्यून, २ फरवरी १९२२ में लिखा था: "हमें ज्ञात हुआ है कि यद्यपि लाला लाजपतराय का केस अभी विचाराधीन है, परन्तु जेल सुपरिन्टेण्डेण्ट ने दुलीचन्द, लाला रामप्रसाद और पं० ज्ञानचन्द रामपाल को उनसे भेंट

करने की आज्ञा नहीं दी। लोगों का विचार है कि यह सरकार की आज्ञा से हुआ है। मंगलवार शाम को लाला लाजपतराय के पुत्र तथा पुत्री को भी उनसे मुलाकात नहीं करने दी।"

शीघ्र इस अन्याय का अन्त हुआ और विचाराधीन कैदी के रूप में, उनको मुलाकातों के साधारण सुभीते मिल गए। मित्रों की ओर से उनको फलों के टोकरे भेजे जाने लगे, जो कि सेण्ट्रल जेल के अन्य कांग्रेसी कैदियों के साथ बाँट कर खाए जाते थे। जेल की ओर से जो भोजन उन्हें दिया जाता था, वह बहुत ही घटिया किस्म का होता था और अच्छी तरह पका हुआ भी नहीं होता था। परन्तु अन्य कांग्रेसी कैदियों को तो और भी घटिया भोजन दिया जाता था। उच्च श्रेणी के १४ कैदियों ने जेल के अध्यक्ष को लिखा कि यह सब भेद-भाव दूर किया जाय।

" हम कैदियों के भोजन में किसी प्रकार के सुधार का भी स्वागत करते हैं, और हमारी सम्मति है कि राजनीतिक बन्दियों को बढ़िया भोजन दिया जाना चाहिए जिसके कि वे अधिकारी हैं। हमारे लिए भी यह कम से कम स्केल (भोजन का) है। हम यह लिखने में विवश हैं कि जब तक सभी राजनीतिक बन्दियों को यही भोजन नहीं दिया जाता, हम भी इसे ग्रहण नहीं कर सकते। भोजन के मामले में एक श्रेणी के राजनीतिक बन्दियों का दूसरी श्रेणी से क्यों भेद होना चाहिए ?

यदि सरकार यह सिद्धान्त स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि सभी राजनीतिक कैदी इसी भोजन के अधिकारी हैं, तो शुद्ध वातावरण में ठीक तौर पर रसोई का प्रबन्ध चलाने के लिए यह आवश्यक है कि कोई रसोई का प्रबन्ध हमारी देखरेख में हो।"

परन्तु सरकार ने इधर कोई ध्यान नहीं दिया। कभी कभी साधारण श्रेणी वाले बन्दी "उच्च" श्रेणी वालों पर बिगड़ उठते थे, यद्यपि जो कुछ भी बाहर से भेजा जाता था, सभी में बांट दिया जाता था। उन्हें यह शिकायत रहती थी कि उन्हें बाहर से चीजें प्राप्त करने का अधिकार क्यों नहीं है।

समानता की इस भावना का आधार चाहे जितने ही उच्च भाव क्यों न हों उसे व्यावहारिक रूप देना इतना सहज नहीं है। नियम यह होना चाहिए कि बुढ़ापे, निर्बलता और अन्य कारणों से जिनको सचमुच सुभीते की दरकार हो, अन्य लोग पूरा प्रयत्न करें, कि वह सुभीते उन्हें प्राप्त हों। जेल वासियों में इसी भावना की जरूरत होती है, परन्तु दुर्भाग्य से इसी का ही अभाव होता है।

शीघ्र ही वह उच्च श्रेणी के बन्दी के तौर पर रहने लग गए। जब मुकदमे का फैसला सुना दिया गया, तब जेल के नियमानुसार महीने में वह एक ही भेंट अपने मित्रों आदि से कर सकते थे। जेल के छोटे अधिकारी सदा ही उनकी

प्रतिष्ठा करते थे और उनसे सहानुभूति रखते थे। जेल के वार्डर तथा अन्य सभी कैदी सभी प्रकार से उनकी सेवा में लगे रहते थे। कभी कभी वह थक जाते, तो एक मोटा तगड़ा भंगी कैदी उनकी मालिश किया करता था। कांग्रेस के स्वयंसेवक—विशेषतः लाहौर दल का कप्तान, और द्वाबे का एक अनपढ़ अकाली सिक्ख (जिसे पढ़ाने में लाला जी दिलचस्पी रखते थे) सदैव उनकी सेवा सुश्रूषा में दत्तचित्त रहते थे।

जेल अधिकारियों ने पुस्तकों की खुली छूट दे रखी थी, वह जितनी पुस्तकें चाहते मंगवा सकते थे। लिखने का सामान भी उनको मिल जाता था, परन्तु समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं की सख्त मनाही थी। अखबारों के बिना तो उनका गुजारा ही नहीं चलता था। उन्होंने जेल के कष्ट हंसते हंसते सहन किए और अपने गौरव तथा मर्यादा को तिलांजलि देकर उन्होंने कभी कभी किसी प्रकार की रियायत वा सुभीता प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया। आप जेलवासियों के जीवन में खूब दिलचस्पी लेते थे और उन्हें दोस्त बना लेते थे। इतनी नैतिकता के होते हुए, भी सच तो यह है कि वह महात्मा गान्धी के आदर्श-सत्याग्रही नहीं थे। जेल अधिकारी तो यह समझने में असफल रहे कि उनके लिए अखबारों का क्या महत्व है, परन्तु वह अपने लिए अखबारों और पत्रिकाओं का प्रबन्ध कर ही लेते थे और कभी कभी प्रेस में प्रकाशित होने के लिए लेख अथवा पत्र भी बाहर भेज देते थे। तिलक विद्यालय के तरुण कार्यकर्ताओं का यह काम होता था कि प्रति दिन उनको अखबार आदि जेल के फाटक तक पहुँचा दें, फिर वे अखबार अन्दर उनके पास भी जा पहुँचते थे। जब श्री सी० आर० दास को उनसे भेंट की अनुमति नहीं मिली, तो इसी गुप्त राह से लाला जी ने उनको देश की परिवर्तित स्थिति पर अपने विचार भेजे थे और देशबन्धु के सुझाव पर ही उन्होंने अपने लेखों द्वारा धारा सभाओं पर से प्रतिबन्ध हटाने के लिए प्रचार जारी रक्खा।

गया कांग्रेस अधिवेशन पर श्री दास ने लालाजी के इन लेखों और पत्रों का खूब अच्छा इस्तेमाल किया। जब महात्मा गान्धी को आन्दोलन के बन्द करने के ढंग के विरुद्ध प्रतिवाद की चिट्ठियां आनी शुरू हो गयीं तब उन्होंने उत्तर दिया कि लाला जी तथा मोतीलाल जी जेल में होने के कारण, नागरिक के तौर पर मृत समझे जाने चाहिए, इसलिए उनका ऐसी चिट्ठियाँ लिखने का कोई काम नहीं है। लाला जी, श्री दास तथा मोतीलाल को महात्मा जी के उपरोक्त सिद्धान्त में कोई विश्वास न था। (आगे चलकर तो स्वयं महात्मा जी का विश्वास भी जाता रहा।)

उनको अखबार अवश्य मिलने चाहिए और मिलते थे। यदि अचानक उनके

बण्डल पहुँचने में देर हो जाती, तो वह बहुत कुढ़ा करते। यदि कभी असाधारण देर हो जाती, तो वह बुरी तरह बिगड़ उठते और ऊँचे स्वर में गालियां देते और कहते कि उनके मित्रों को उनकी क्या परवाह है। जेल के कुछ अधिकारी जानते थे कि उनको दैनिक पत्रों की बड़ी चिन्ता रहती है। दयालु डाक्टर भ्रमण करते करते अपना समाचार पत्र उनके पास (छोड़) "भूल" जाते। माण्डले में भी उनका नाई तथा भिश्ती इसी प्रकार से अखबार उन्हें पहुँचाया करते थे।

पंजाब के अधिकारीगण सी० आर० दास जैसे कांग्रेसी नेताओं को तो उनसे भेंट करने की आज्ञा नहीं दे सकते थे, परन्तु कभी कभी वह किसी विशेष व्यक्ति को उनसे मुलाकात करवा देते थे, यदि वह उनकी सम्मति में आपत्तिजनक व्यक्ति न हो। पंडित मदनमोहन मालवीय ने जेल में उनसे खूब बातें कीं। एक बार पादरी सी० एफ० एण्ड्रूज ने उनसे भेंट की। डा० एन० आर० धर्मवीर, जो अभी विलायत में डाक्टरी करते थे, और कई वर्षों के बाद हिन्दुस्तान में आए थे, उनसे दो बार मुलाकात कर सके—एक बार लाहौर में और एक बार धर्मसाला में।

सन्त निहालसिंह भी कई वर्ष बाद १९२१ के आरम्भ में युवराज के आगमन के समय, इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के कई पत्रों के रिपोर्टर बन कर आये थे। पंजाब के गवर्नर सर एडवर्ड मेकलेगन के साथ खाना खाते हुए, उन्होंने पूछा कि क्या वह अपने मित्र लाजपतराय से भेंट कर सकते हैं? गवर्नर ने तत्काल ही आवश्यक आज्ञा जारी कर दी। विशेष मुलाकाती होने के कारण, सन्त निहालसिंह ने सेन्ट्रल जेल पहुंचते ही इच्छा प्रकट की कि वह लालाजी की कोठरी में ही उनसे भेंट करेंगे। उनको वहां ले जाया गया और आगे चलकर उन्होंने बड़ी सजीव और सुन्दर शैली में अपनी आंखों देखी बातों का वर्णन किया। वह लिखते हैं—

"सहायक जेलर मुझे फाटक पर मिला और मुझे लालाजी की कोठरी में ले गया। मैंने कोठरी देखने की इच्छा प्रकट की थी। यह एक छोटी सी, बिना सामान तथा सुभीते की जगह थी। हां, साफ जरूर थी और प्रकाश का भी अच्छा प्रबन्ध था। वहां कुछ पुस्तकें भी पड़ी थीं, परन्तु जहां तक मुझे याद है, कोई अखबार नहीं थे।

खाने के नमूने को देख कर मुझे वह बहुत ही भद्दा तथा मोटा झोटा लगा। मेरे दिल को इतनी चोट लगी कि मैं उस चमड़े जैसी रोटी का एक टुकड़ा मि० माण्टेग्यू (भारत मंत्री) को दिखलाने के लिए अपने साथ ले गया, परन्तु मेरे लण्डन पहुंचने से पूर्व ही बेचारे मि० माण्टेग्यू को उसके देशवासियों ने उसके पद से खदेड़ कर बाहर कर दिया था, क्योंकि उन्हें भय था कि यदि उसे मनमानी करने दी गयी तो वह

भारतवर्ष भारतवासियों को लौटा देगा। मेरी पत्नी रोने लग पड़ी, जब उसने देखा कि हमारे मित्र को इस प्रकार का भोजन खाने को विवश किया जाता है।

मुझे अन्दर ले जाने वाला अधिकारी लालाजी का बड़ा आदर करता था। लालाजी ने भी मुझे बतलाया कि उनके साथ अच्छा व्यवहार होता है। जेल के नियमों को नर्मी से बर्ता जाता था।

सरकारी तौर पर लालाजी को राजनीतिक बन्दी स्वीकार नहीं किया गया। इस बात की उनकी बराबर शिकायत बनी रही।

"जेल जीवन का "आन्तरिक" ज्ञान लालाजी को बुरी तरह अखरता था। उन्होंने मुझे जेल अधिकारी के सामने ही बतलाया कि जब मैं बाहर जाऊंगा तब जेल सुधार का कार्य करूंगा। (उन्होंने बाहर आकर सचमुच काम किया)।

फिर मैंने मि० एस० ई० स्टोक्स की कोठरी देखी। यह अमेरिका से भारतवासियों को ईसाई बनाने के उद्देश्य से यहां आये थे, परन्तु भारतीय सभ्यता के जादू से मुग्ध होकर, वह राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में आन मिले, यहां तक कि उनके साथ जेल जाने को भी तैयार हो गये। मैंने देखा कि लालाजी की अपेक्षा उनके साथ कहीं अच्छा व्यवहार होता है। उसकी कोठड़ी अधिक विशाल तथा अधिक हवादार थी। उसका भोजन भी निस्संदेह कहीं बढ़िया और कई प्रकार का था।

क्योंकि स्टोक्स एक भलामानस था, इसलिए उसने मुझसे इस भेदभाव के बारे में शिकायत की। उसने अधिकारियों से प्रतिवाद किया था कि उसके "श्वेत चमड़े" के कारण उसके साथ क्यों विशेष व्यवहार किया जाता है। और उसे "योरुपियन" कहलाना भी पसन्द नहीं क्योंकि वह जन्म से अमेरिकन तथा स्वेच्छा से भारतीय है। (उन्होंने विवाह भी एक हिन्दुस्तानी महिला के साथ किया) वह अनुरोध करते थे कि उनके साथ बिलकुल वही व्यवहार किया जाय जो जेल में उसके अन्य हिन्दुस्तानी भाइयों के साथ किया जाता है। क्योंकि जेल के अधिकारी उसकी बात नहीं मानते थे, उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि उन्हें हाथ से चलाने वाली एक चक्की दे दी जाय। जब मैं (बिना किसी प्रकार की सूचना दिए) उनकी कोठरी में पहुंचा, तब वह आटा पीस रहे थे और उनके माथे तथा अर्द्ध नग्न शरीर से पसीना बह रहा था।

लालाजी और मैं, अधिक समय तक एक विशेष कमरे में (जो इसी उद्देश्य के लिए पृथक रक्खा गया था) बातें करते रहे। लाला रामप्रसाद, जिन्होंने अध्यापक का कार्य छोड़ कर सम्पादक का कार्य ग्रहण किया था और जिनके चरणों में छात्र रूप से बैठने का सौभाग्य मुझे बचपन में प्राप्त हुआ था, उस समय जेल में

थे और उस समय वहां उपस्थित थे। मि० स्टोक्स भी हमारी बातचीत के समय वहां थे।

दयालु जेल अधिकारी की वहां उपस्थित रहने की ड्यूटी थी, परन्तु वह अन्दर बाहर आता जाता रहा । हमारी बातचीत सार्वजनिक विषयों पर थी, इसलिए हम निश्शंक रूप से विचार विनिमय करते रहे ।"

उसी जेल में उनके अन्य मित्र तथा साथी के० सन्तानम् तथा गोपीचन्द भार्गव थे जिन्हें सरकार ने मैजिस्ट्रेट की अनियमित कार्यवाही के भूल सुधार के तौर पर मुक्त कर दिया था, यह क्षतिपूर्ति लाला रामप्रसाद द्वारा हो गयी जिसे "वन्देमातरम्" के लेख के कारण दो वर्ष का दण्ड दिया गया था। मि० स्टोक्स को भी उसी जेल में रक्खा गया था, परन्तु "योरुपियन" समझ कर वह पृथक वार्ड में थे जिसके कारण मि० स्टोक्स को भी उतना ही खेद था जितना कि लालाजी तथा उनके अन्य पंजाबी मित्रों को। लालाजी के उत्तराधिकारी, पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान आगा मुहम्मद सफदर शीघ्र ही उनके पास पहुंच गए। अन्य प्रसिद्ध मुसलमान मित्र भी वहां थे—पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के अब्दुलगफ़ार खां उस समय नवयुवक थे और अभी इतने विख्यात नहीं हुए थे, परन्तु अपनी सत्यनिष्ठा तथा विनीत स्वभाव और असाधारण आकार के कारण सब के आकर्षण का केन्द्र बने हुए थे। अन्य प्रमुख मुसलमान, लुधियाना के प्रसिद्ध मौलवी हबीबुर्रहमान थे जो पंजाब खिलाफत कमेटी के विख्यात व्यक्ति थे । इन मुसलमान मित्रों से घिरे होने के कारण लालाजी को भारतीय राजनीति में मुसलमानों के धार्मिक तथा नागरिक दृष्टिकोण को समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार की खुली तथा स्पष्ट बातचीत के अवसर उन्हें पहले कभी नहीं मिले थे।

लालाजी के दिल में इसी जेल में रहते रहते ही लक्ष्मी बीमा कम्पनी चलाने का विचार पैदा हुआ। वह उत्सुक थे कि सन्तानम् को जिसने अच्छी वकालत को लात मार दी थी और जो पंजाब में उनका अत्यन्त प्रतिभाशाली सहायक था, कहीं जीविका के लिए पंजाब को छोड़ कर कहीं अन्यत्र न जाना पड़े। इसी चिन्ता के कारण, जेल से छूटते ही उन्होंने एक बीमा कम्पनी की आधार शिला रख दी।

इसी कारावास की अवधि में उनके ग्रन्थों की तीसरी किस्त की रचना हुई। प्रथम बार तो आर्यसमाज के दिनों में—अर्थात् १८९०-१९०० में उनके द्वारा उर्दू में जीवन चरित्र रचे गए। बीमारी के दिनों में ऐबटाबाद के निवास से ग्रन्थ रचना में कुछ सहायता मिली। एक छोटी सी पुस्तक छः मास माण्डले के दुर्ग में रह कर तैयार हुई। पांच वर्ष के निर्वासन काल में उनकी रचनाओं की दूसरी किस्त प्रकाशित हुई। अब जेलखाने में तीसरी किस्त तैयार होने लगी जिसमें ६००

पृष्ठ का प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास उर्दू में, महाराज अशोक तथा छत्रपति शिवाजी का बिलकुल संशोधित संस्करण सम्मिलित थे।

पत्रों के लिए लेखों में कुछ तो वे थे, जो श्री सी० आर० दास के अनुरोध से धारा सभाओं पर से असहयोगियों द्वारा प्रतिरोध हटाने के बारे में थे। "एक वैधानिक विद्रोही के उद्‌गार" अपने ढंग की सुन्दर लेखमाला थी। जेल में होने के कारण उनको अपना नाम दिए बिना लेख प्रकाशित कराने पड़ते थे। प्रायः उनके नीचे "विदुर" के हस्ताक्षर हुआ करते थे।

उनकी अन्य विख्यात रचना "भारतीय राजनीति का "क, ख, ग" थी, जो माडर्न रिव्यू में उनके पुत्र के नाम से प्रकाशित हुई, परन्तु विवेकशील पाठक स्पष्ट रूप से समझ गए कि यह पिता की कृति है। (मार्क्सवाद के क्षेत्र को छोड़ कर) यह अपने ढंग की निराली कृति थी जिसमें एक भारतीय राजनीतिक नेता ने मूल सिद्धान्तों का परीक्षण करते हुए सक्रिय राजनीति को समाजशास्त्र के ठोस आधारों से जोड़ने का प्रयत्न किया। कुछ उदार नेता "शासन और व्यवस्था" तथा "प्रारंभिक कर्तव्य" आदि की मुहारनी रटा करते थे, वह समाजशास्त्र तथा राजनीति के सिद्धान्तों में वर्तमान प्रवृत्तियों के बारे में उनको ट्रेनिंग देना चाहते थे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध बम्बई वाले भाषण में उन पर देशद्रोही होने का दोषारोपण किया था और श्रीनिवास शास्त्री के साथ वाद-विवाद का उन्हें खूब आनन्द आया था। "उद्‌गारों" में उसी उत्साह तथा उग्रता से आरोपों की पुनरावृत्ति की गयी। "क,ख,ग" में दमन नीति में माडरेटों और नौकरशाही की मैत्री की पोल खोली गयी।

बन्दी के रूप में भी उन्हें कुछ श्रम करना पड़ता था और उसमें उन्हें आनन्द आता था। प्रथम कुछ सप्ताहों को छोड़कर, वह कताई के विशेषज्ञ बनने के उत्सुक नहीं थे। मूंज का काम करने में उनका मन लगता था। आपने मूंज की कई चटाइयाँ बुन लीं और उन्हें इसका अभिमान था। जब वह जेल से बाहर आए, तब वह चटाइयाँ अपने साथ ले आए। यथासमय, एक-एक चटाई या तो उनके धनी प्रशंसक सार्वजनिक कार्यों के लिए धन देकर ले गए, या वह कुछ मित्रों के घर जा पहुँचीं जिनका स्नेह धनियों के दान से कहीं अधिक मूल्यवान था।

× × ×

दो वर्ष का कारावास काफी कठोर दण्ड था, और आश्चर्य होता, यदि जेल के कष्टदायक वातावरण में उनका स्वास्थ्य न बिगड़ जाता। बारदोली की पराजय तथा देशव्यापी दंगों से देश का वातावरण अन्धकारमय होता गया। १९२३ में उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। उन्हें भारी शोक था कि वह पूज्य पिताजी की अन्तिम घड़ियों में उनके पास न रह सके।

इन सब बातों से उनका स्वास्थ्य बुरी तरह बिगड़ गया। यद्यपि कुछ काल के लिए उनको काँगड़ा घाटी के शीत तथा स्वास्थ्यप्रद स्थान धर्मसाला भी ले जाया गया, परन्तु उनकी शारीरिक अवस्था चिन्ताजनक रही। कारावास के आरम्भ में ही उनके तरुण साथी डा० गोपीचन्द भार्गव ने देख लिया था कि वह जेल का खाना पचाने में असमर्थ हैं, अनिद्रा का दौर प्रबल होता जा रहा है और जीर्ण रोग बढ़ता जा रहा है। धीरे-धीरे उनका सारा शरीर जवाब दे बैठा। थोड़ा थोड़ा ज्वर उनको प्रतिदिन आने लगा और जेल के डाक्टर कुछ भी न कर सके। ज्वर निरन्तर आता रहा और उनकी शक्ति क्षीण होती प्रतीत होने लगी। फेफड़े के बिगाड़ का सन्देह होने लगा, परन्तु ठीक-ठीक कुछ कहना सहज न था। उनकी रुग्णावस्था से काफी चिन्ता फैलने लगी। धारा सभा में सरकार से प्रश्न पूछे जाने लगे। पहले तो इतना कहना ही काफी समझा गया कि कष्ट गम्भीर नहीं है, उसकी ठीक-ठीक चिकित्सा हो रही है और जेल जाने से पूर्व भी उनके आमाशय में सूजन थी। जेल के डाक्टर उनके इलाज में पूर्णतः असफल रहे। लालाजी को अपने निजी डाक्टरों आदि से परामर्श लेने की छूट दी गयी। रायबहादुर डा० महाराज कृष्ण कपूर तथा डा० निहालचन्द सिकरी ने उनका परीक्षण किया और सेण्ट्रल जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट, लेफ्टीनेण्ट कर्नल ए० डब्ल्यू ग्रीग, आई० एम० एस० के साथ केस पर विचार किया गया। डा० महाराज कृष्ण ने अपने पत्र में मि० ग्रीग को अपनी सम्मति दी।

"जब मैंने पहले-पहल रोगी को देखा तो फेफड़ों की हालत के बारे में, मैं डा० निहालचन्द के साथ सहमत होने से झिझका। मैंने समझा यह मामूली और नगण्य है। हाँ, तीन अन्य परीक्षणों तथा मुलाकातों के पश्चात् मेरा निश्चित मत बन गया और मैंने लाला लाजपतराय के पुत्र को सोच विचार कर निदान बतला दिया। ऐसा करने से पूर्व मैंने आपसे मुलाकात करना चाहा और आपको बतलाया कि रोगी के फेफड़ों की दशा प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। इस बात पर विचार करते हुए कि रोगी को गत ७-८ सप्ताहों से धीमा ज्वर आ रहा है (९९° से ९९.६° और कभी-कभी १००° से १००.६° तक तापमान जाता है) उनको पसीना भी आता है और उनके परिवार में राज्ययक्ष्मा के प्रबल चिन्ह पाये जाते हैं। मुझे उनके फेफड़ों की यक्ष्मा का प्रबल सन्देह हुआ। हम रोगी का निरीक्षण करते रहे और मुझे यह देखकर खेद होता है कि गत १० दिनों में रोगी की दशा अधिक खराब हो गयी है। २९ की शाम को जब मैंने रोगी के बारे में आपसे बातचीत की तो आप मुझसे सहमत थे कि फेफड़ों की खराबी काफी बढ़ गयी है, परन्तु उनके यक्ष्मा होने व न होने के बारे में आप निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते थे। यह सत्य है कि उनको खाँसी नहीं है और बलगम भी उन्हें नहीं आती और उनके तोल में भी घटती नहीं देखी गयी, परन्तु चिरकाल तक धीमा धीमा ज्वर आने, दोनों

फेफड़ों पर निश्चित चिन्हों के फैलते जाने तथा परिवार में राजयक्ष्मा के लक्षण पाये जाने से मैं तो यह घोषणा करने में विवश हूँ कि यह फेफड़ों की यक्ष्मा का केस है। यदि हम अन्य लक्षणों—अर्थात् थूक में कीटाणु तथा तोल में न्यूनता द्वारा यक्ष्मा के निदान के समर्थन की प्रतीक्षा करते रहें, तो मुझे भय है कि तब हम उन्हें चिकित्सा के आधुनिक ढंगों से कोई लाभ नहीं पहुँचा सकेंगे। आपने देखा होगा कि वह काफी निर्बल हो गये हैं। उनको श्रम तथा गर्मी से बचाने के लिए, आपने हमें जेलर के कार्यालय के स्थान में रोगी की कोठड़ी में उनसे भेंट करने की आज्ञा दी है। उनकी पाचन शक्ति तथा भूख भी तेजी से घट रही है। मानसिक चिन्ता के लक्षण उनके मुख पर स्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं और लाहौर की तीव्र गर्मी उनकी शारीरिक अवस्था को बुरी तरह नष्ट कर रही है।

इन परिस्थितियों में, मैं, सरकार के शुभचिन्तक के रूप में रोगी के प्रति अपने कर्तव्य पालन में त्रुटि करने के लिए उत्तरदायी बनूंगा, यदि आपके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र उनके प्राण रक्षा के उपाय न बतलाऊं। मेरा यह प्रबल विचार है कि इस जेल से तत्काल ही उनको किसी शीतल स्थान में ले जाया जाय जहां भली प्रकार से उनकी देखरेख तथा उपचार किया जाय। चिन्ता तथा उत्तेजना से उनकी रक्षा की जाय। शायद इस उपाय से कुछ वर्षों के लिए उनकी जीवन वृद्धि की जा सके। यदि यही दशा रही, तो मुझे कोई सन्देह नहीं कि उनका रोग फिर किसी के वश का नहीं रहेगा।

मुझे यह लिखने की आज्ञा दी जाय कि मैं यह सब कुछ डाक्टर के तौर पर लिख रहा हूँ, इसमें मेरा कोई राजनैतिक उद्देश्य नहीं है। मैंने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि मेरी सम्मति समाचार पत्रों तक न पहुँच जाय, कहीं ऐसा न हो कि सनसनी पैदा हो जाय।"

अन्त में परिस्थिति की गम्भीरता और देशव्यापी हाहाकार के सामने सरकार को झुकना पड़ा। और लालाजी को छोड़ दिया गया। आप अत्यन्त निर्बल हो गए और आपको निरन्तर ज्वर आता था। आपने लगभग १८ मास की सजा काटी। आपको दो वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड हुआ था, जिसमें साधारण छूट की अवधि मिलाकर आपको लगभग २० मास की जेल काटनी पड़ती।

अध्याय छः

जेलजीवन की झांकी

ज्योंही लालाजी आराम से जेल में बैठ गए, उन्होंने भारतीय इतिहास पर भारी संख्या में पुस्तक संग्रह शुरू कर दिया और ६०० पृष्ठ की पुस्तक लिखने में व्यस्त हो गए। लाहौर सैण्ट्रल जेल के निवास के प्रथम २ मास ही में आप सारी पुस्तक डा० गोपीचन्द भार्गव को लिखवाते गये। जेल से बाहर आते ही, लोक-सेवक मण्डल ने उनके प्रकाशकों द्वारा उसे प्रकाशित कराया। जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं, लाला जी ने १८९०-१९०० में एक पतली-सी पुस्तक प्राचीन भारत पर प्रकाशित की थी और प्रतिज्ञा की थी कि किसी अन्य अवसर पर उसका विस्तृत संस्करण निकालेंगे। कारावास ने उनको वह अवसर दे दिया। यह नवीन संस्करण भी किसी मौलिक अन्वेषण अथवा छानबीन का परिणाम न था, परन्तु साधारण पाठक के लिए जिसके लिए पाश्चात्य भाषाओं के ग्रन्थ दुर्बोध तथा दुर्गम हैं, यह इस विषय की सर्वोत्तम पुस्तक थी। विशेषतः लालाजी ने इण्डो-आर्यन सभ्यता का पूर्ण चित्र (उस समय की नवीनतम खोज के आधार पर) पेश किया। एक अत्यन्त मनोरञ्जक परिशिष्ट में उन्होंने इस सभ्यता की, आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से तुलना करते हुए आशा प्रकट की कि मनुष्य अभी एक ऐसी नवीन संस्कृति का निर्माण करेगा जिसमें दोनों के श्रेष्ठ अवयवों का सुन्दर सम्मिश्रण तथा समन्वय होगा।

आपका विचार मुस्लिम-कालीन भारत पर भी एक ग्रन्थ रचने का था। आपने फारसी के मूल ग्रन्थों से, उसके लिए, अधिकांश सामग्री भी सञ्चित कर ली थी, परन्तु उसे पुस्तक का रूप देने का अवकाश न मिल सका। उनका इस पहली जिल्द का पुनरावलोकन करने का विचार भी था, परन्तु इसके लिए भी अवकाश की आवश्यकता थी। मृत्यु से पूर्व, पुस्तक के हिन्दी संस्करण के लिए उस पुस्तक का कुछ संशोधन किया गया। भारत के प्राचीन इतिहास की यह रचना, उन्होंने अपने प्रथम गुरु को समर्पित की जिन्होंने उनके हृदय में इतिहास की जिज्ञासा उत्पन्न की थी। ये गुरु उनके पूज्य पिता मुंशी राधाकृष्ण जी ही थे जिनका कि उन्हीं दिनों स्वर्गवास हो गया था, जब लालाजी जेल में यह पुस्तक तैयार कर रहे थे।

इतिहास का दूसरा ग्रन्थ ३०० पृष्ठ का उर्दू में "महाराज अशोक" का जीवनचरित्र था। १८९०-१९०० में अशोक के बारे में बहुत कम सामग्री प्राप्य थी। अगले कुछ वर्षों में प्राचीन भारतीय इतिहास के अन्वेषकों ने महाराज अशोक को विस्मृति के गर्त से निकालने और उन्हें विश्व की अमर आत्माओं में उचित स्थान देने का प्रशंसनीय और सफल प्रयत्न कर डाला। अन्वेषकों तथा इतिहासकारों की इस विजय का श्रेय महाराज अशोक की निजी दूरदर्शिता को है, जो अपनी जीवन-गाथा पत्थर की चट्टानों पर खुदवाकर छोड़ गए। वह शिलालेख आज के भारतीय साम्राज्य से भी कहीं अधिक विशाल क्षेत्रफल के विभिन्न कोनों से प्राप्त हुए हैं और उन लोगों के लिए मुंहतोड़ उत्तर का काम कर रहे हैं जो कहते थे कि अंग्रेजी राज्य से पूर्व भारतवर्ष को शासन सम्बन्धी एकता देखना नसीब नहीं हुआ था। अशोक के जीवन की मुख्य विशेषता वह उच्च आदर्शवाद है जिसकी आशा दार्शनिकों तथा पैगम्बरों से तो की जा सकती है, परन्तु राजाओं और शासकों से नहीं। महाराज अशोक के जीवन के इसी अलौकिक तथा विरले गुण ने लालाजी को निज देशवासियों के लिए उनका जीवन चरित्र लिखने को प्रेरित किया।

गम्भीर मनोवैज्ञानिक के रूप में लालाजी, अशोक की उच्च राजाज्ञाओं की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि "कभी-कभी उनसे व्यक्तिगत अहम्मन्यता की गन्ध आती है, परन्तु यह ऐसी मानव निर्बलता है जिससे कि कोई पैगम्बर, अवतार, वक्ता, साधु व नेता भी सर्वथा मुक्त नहीं हुए, और यदि कोई ऐसा व्यक्ति हुआ है तो उसके बारे में आगामी सन्तति नितान्त अनभिज्ञ रही है।"

समुचित रूप से "महाराज अशोक" का समर्पण महात्मा गांधी के नाम होना था और लालाजी को उनकी आज्ञा भी मिल गयी थी, परन्तु या तो प्रकाशकों की असावधानी से अथवा इस कारण से कि आज्ञा देर से प्राप्त हुई, पुस्तक का प्रकाशन बिना समर्पण ही हुआ।

"महाराज अशोक" की इतिश्री धर्म पर एक ४० पृष्ठ के निबन्ध के साथ होती है। यहाँ हम उसमें से कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं।

"मुझे तो ऐसे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं जो किसी अत्यन्त सुदूर स्थान पर बैठा हुआ दिन रात हम पर शासन करता है और जिसे निश्चय रूप से सर्व शक्तिमान, न्यायकारी और दयालु कहा जाता है और फिर भी वह संसार का संहारकर्ता तथा दण्डदाता है और जिसे प्रार्थनाओं और खुशामद द्वारा पूजना और प्रसन्न करना पड़ता है। हाँ, मुझे एक विभूति के अस्तित्व में अवश्य विश्वास है जो सृष्टि का अन्तिम कारण है, परन्तु जिसकी कोई व्याख्या भी नहीं कर सकता। कोई नहीं कह सकता कि वह विभूति कौन है, क्या है अथवा क्या करती है। ब्रह्माण्ड

अनन्त और सुन्दर है, अतः वह विभूति भी अनन्त तथा सुन्दर होनी चाहिए, परन्तु उस परब्रह्म को न तो कोई जानता है और न ही जान सकता है। वेदों और उपनिषदें की उक्ति "नेति नेति" अर्थात् "वह यह भी नहीं यह भी नहीं," मेरे विचार में, एक गहन सत्य है। उपनिषद विनीत भाव से घोषणा करते हैं कि जो उसे जानने का दावा करता है, वह कुछ नहीं जानता......।

परन्तु जो धर्म उसे न्यायकारी तथा बुद्धिमान् कहते हैं, निश्चय रूप से उसका अपमान करते हैं, यदि वह अपने अनुयायियों को यह भी बतलाते हैं कि संसार दुखपूर्ण है, और सुखी होने के लिए उन्हें त्याग और निवृत्ति का मार्ग ग्रहण करना चाहिए...। हमें जीवन जीने के लिए दिया गया है, न कि जीवन तथा मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने के प्रयत्नों के लिए। जीवन को दीर्घ तथा आनन्दमय बनाना, उसे सुन्दर और विशाल बनाना, उसे ऐसा प्रेममय बनाना कि जीवन स्वयं ही प्रेम बन जाय और जीवन को उच्च व पूर्ण बनाना ही जीवन का उद्देश्य और स्वर्ग है। इस कार्य के लिए सत्य से बढ़ कर अन्य कोई सहायक नहीं। जैसा कि उपनिषदों का वचन है कि सत्य से बढ़ कर कोई धर्म नहीं। जो इस धर्म को अपनाता है, धर्मात्मा बन जाता है, और सत्य ही काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार आदि पापों से उसकी रक्षा करेगा। वही स्वतंत्र, निर्भीक, उच्च, उदार तथा प्रेममय जीवन व्यतीत करता है। भय उसको छू नहीं सकता, कायरता उससे कोसों दूर भागती है। क्या विधाता ने प्रकृति तथा सौन्दर्य की रचना इसलिए की है कि मनुष्य उन्हें हलाहल विष समझ कर उनसे दूर भागे?......क्या विश्व की सुन्दरतम रचना—स्त्री की रचना—उसने इसलिए की है कि मनुष्य उससे दूर भागे? सत्य तथा प्रेम के धर्म का तो यह आदेश है कि मनुष्य इस सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति का दुरुपयोग न करे और उसे निज काम वासना का दास न बनावे।...

स्त्री प्रकृति की विचित्र रचना है और समस्त प्रकृति की प्रतिमूर्ति है। मातृत्व विश्व की विचित्रतम, सुन्दरतम तथा सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। मनुष्य को भी चाहिए कि अपनी निर्माण शक्ति बढ़ाने में प्रकृति का अनुकरण करे।

स्त्री पुरुष में प्रेम का संचार करती है...। वेदों में स्त्री से वीर माता बनने की प्रेरणा की गयी है, परन्तु वह तभी सम्भव है कि प्रकृति के नियमों को पालन करते हुए पुरुष तथा स्त्री का पवित्रतम तथा पापरहित सम्मिलन हो...।

इस उत्पादन कार्य से दूर भागना धर्म नहीं, वरन् स्पष्ट अधर्म है।

स्त्री हमें यह शिक्षा भी प्रदान करती है कि मातृत्व (उत्पादन) के कर्तव्य पालन में महान् से महान् (मृत्यु तक) संकट का भी हंसते हंसते सामना करना चाहिए।

केवल सन्तानोत्पादन करना ही रचना का कार्य नहीं है। नए नए प्रदेश ढूँढ़ निकालना, नयी मशीनों का आविष्कार करना, नये ग्रन्थ रचना, कलाएं, ललित कलाएं तथा दस्तकारियां आदि सभी उत्पादन कार्य के अंग हैं। इन उत्पादक शक्तियों का विकास करना और उनको अधिकाधिक बढ़ाना—यही स्वर्ग है।

आध्यात्मिक पूर्णता का यह अर्थ नहीं है कि जंगल में बैठ कर राम नाम अथवा अल्लाह् अल्लाह् की माला जपी जाय अथवा वेद मंत्रों का उच्चारण किया जाय अथवा मन्दिरों में घण्टे बजाए जायँ। सर्वोच्च आध्यात्मिकता तो उन महानुभावों की है जिन्होंने अपनी उत्पादक शक्तियों का विकास करते हुए, संसार के सौन्दर्य में वृद्धि की है। जिसने इस प्रकार सौन्दर्यमय जीवन बना लिया है और जो अपने चारों ओर सौन्दर्य की वर्षा करता है, उसी का जीवन धन्य है. . .।

निवृत्ति द्वारा जीवन का अन्त करना रचनात्मक "सौन्दर्य" से विपरीत जाना है। यथासमय मृत्यु में भी एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य होता है। असामयिक मृत्यु के विरुद्ध तो समस्त प्रकृति भी प्रतिवाद करती है।

मैं तो प्राचीन वैदिक धर्म को ही सत्य, सरल तथा स्वाभाविक समझता हूं जिसमें किसी सिद्धान्त अथवा मत का प्रचार नहीं किया गया और न ही किसी मत पर अनुरोध किया गया है। आगे चल कर पंडितों और पुरोहितों ने मनुष्यों को विशेष सिद्धान्तों, मतों तथा प्रथाओं का दास बना डाला।

यहां मैं इस बात पर विवाद नहीं करना चाहता कि इन प्रथाओं और विश्वासों की कोई उपयोगिता है अथवा नहीं, परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह शुद्ध धर्म का अंग नहीं। वह तो सामाजिक धर्म का एक भाग है। यह प्रचार करना कि जो उन्हें स्वीकार नहीं करता, नरक में झोंका जायगा, मानव समाज को गुमराह करना है. . .। मेरे लिए परलोक अथवा पुनर्जन्म को मानना अथवा न मानना आवश्यक नहीं है, परन्तु मैं मृत्यु से पूर्व की अवधि—अर्थात् इस जीवन के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। मैं यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता कि भविष्य जीवन के लिए वर्तमान जीवन को बिगाड़ दिया जाय। यदि कोई भविष्य जीवन है तो इस जीवन को सुन्दरतापूर्ण व्यतीत करने वाले के लिए तो वह कहीं अधिक आनन्दमय होना चाहिए। संन्यासी बन जाना और स्त्री को त्याग देना जीवन का धर्म नहीं है। यदि किसी को संन्यास में ही जीवन प्राप्त होता है, तो उसे संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिए। मैं उसके मार्ग में बाधा डालना नहीं चाहता, परन्तु मैं इसे जीवन का सर्वोच्च आदर्श भी नहीं समझता। अग्नि परीक्षा का सामना करना और सफलता प्राप्त करना मेरी सम्मति में संसार से भाग जाना और संन्यास ग्रहण करने से कहीं अधिक उच्च और श्रेष्ठ है। स्त्री से दूर भागना वीरता के अभाव का प्रतीक है। उसके

सौन्दर्य तथा सौजन्य का अनुभव करना, मातृत्व को समझना तथा उसकी पूजा करना—यही सात्विक जीवन है। समस्त विपत्तियों का सामना करना और उनमें आनन्द अनुभव करना, अपने मन तथा जीवन को सौन्दर्य से पूर्ण करना, उसे अपने नेत्रों का काजल बना डालना और अपने हृदय को प्रेम का शाश्वत् स्रोत बना डालना—यही सर्वोच्च मोक्ष है। इससे बढ़ कर उच्चतर जीवन अन्य नहीं है।"

× × ×

इस ग्रन्थमाला का अन्तिम पुष्प "शिवाजी" था। प्रस्तावना में लेखक कहता है कि "मूल पुस्तक के ६ठे संस्करण को देख कर मैंने सोचा कि नवीनतम खोजों के प्रकाश में तो पुस्तक बिलकुल पुरानी हो गयी है। पहले तो यह विचार आया कि इस पुस्तक को रद्दी ही कर दिया जाय, परन्तु फिर निश्चय किया कि इसका संशोधित संस्करण निकाला जाए।

गत २५ वर्षों में शिवाजी के बाल्यकाल तथा उसकी दिग्विजयों के विषय में बहुत सी नवीन बातों की खोज हुई है। यदुनाथ सरकार जैसे विशेषज्ञों ने फारसी सामग्री का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है और कई विद्वानों ने मराठी के मूल स्रोतों की छानबीन भी की। १८९६ ई० में मराठी सामग्री तो बहुत ही न्यून थी। उस समय एक महाराष्ट्र मित्र ने एम० जी० रानडे के "मराठों के इतिहास" की पाण्डुलिपि आपको पढ़ कर सुनायी थी। ग्राण्ट डफ जैसे अंग्रेजों के द्वारा लिखित इतिहासों का आधार भी फारसी सामग्री थी। अब रालिन्सन जैसे लोगों ने मराठी लेखों की सहायता से उसका संशोधन कर दिया था। (लालाजी अमेरिका में थे जब रालिन्सन की पुस्तक प्रकाशित हुई थी। लालाजी ने उसकी समालोचना की थी।) इसके अतिरिक्त तखाखू और किर्लोस्कर जैसे मराठी विद्वानों ने मराठी सामग्री तथा महाराष्ट्र के दृष्टिकोण को अंग्रेजी में प्रकाशित कर दिया था।

इसके अतिरिक्त लालाजी का निजी दृष्टिकोण भी अब विशाल हो गया था। १८९५ में तिलक तथा उसके साथियों ने राज्याभिषेक की स्मृति में महाराष्ट्र को एक वार्षिक त्योहार "शिवाजी पर्व" प्रदान किया था। उस समय लालाजी ने भी वीरपूजा की भावना से प्रेरित होकर उस विषय को लिया था। इस समय उन्होंने उसे इतिहास में विद्यार्थी तथा समालोचक के रूप में लिया।

नवीन प्रस्तावना में आपने लिखा—

"झूठ झूठ है, बेईमानी बेईमानी है, धोखा धोखा है, स्वार्थ स्वार्थ है... और साम्राज्यवाद साम्राज्यवाद है, चाहे एशिया, योरुप अथवा अमेरिका में अंग्रेजों, हिन्दुस्तानियों, चीनियों, हबशियों अथवा जापानियों द्वारा क्यों न किए जाएँ। पापी पापी है चाहे उसकी जाति अथवा रंग कोई क्यों न हो। चाहे उनके समर्थन में

कितनी ही व्याख्या क्यों न की जाय, उससे पाप की मात्रा घट नहीं सकती। हम यह भी कह सकते हैं कि भिन्न भिन्न युगों तथा भिन्न भिन्न देशों के नैतिक मापदण्ड भिन्न भिन्न होते हैं और किसी व्यक्ति की परीक्षा उसके युग के मापदण्ड द्वारा होनी चाहिए। मैंने अपनी तरुण अवस्था में हिन्दू राष्ट्रीयता के सम्मोहक प्रभाव से प्रभावित होकर शिवाजी के जिस आचरण का वर्णन किया था, वह इस अध्याय के अन्त में दिया गया है। मैं यह नहीं कहता कि वह अशुद्ध था या मैं उसे वापस लेता हूं। परन्तु मैं इतना कह सकता हूं कि जो कुछ मैंने उन दिनों लिखा था मेरे आजकल के विश्वास से भिन्न है और काल ने उस पर निस्संदेह अपना प्रभाव डाला है।"

समालोचक की कठोर अग्नि परीक्षा में शिवाजी बहुत अच्छी तरह सफल रहे—क्योंकि उनका व्यक्तिगत जीवन नितान्त निर्मल था, उसकी महान् कृतियों ने उसे "महान्" की उपाधि का वास्तविक अधिकारी बना दिया था। युद्ध तथा लूट मार के समय में भी उसे स्त्रियों की मर्यादा तथा प्रतिष्ठा का ध्यान रहता था। अपने समकालीन नेताओं और औरंगजेब की तुलना में भी उनका उच्च आचरण तथा नेतृत्व के गुण कहीं बढ़िया थे। परन्तु लालाजी, तखाखू जैसे शिवाजी के प्रशंसकों के साथ सहमत नहीं हो सकते थे जिन्होंने शिवाजी को सातवें आकाश पर चढ़ाते हुए लिखा था कि शिवाजी जैसी शासन सम्बन्धी प्रतिभा तथा विलक्षणता प्राचीन अथवा अर्वाचीन इतिहास के किसी शासक में नहीं थी। यह लोग शिवाजी के व्यक्तिगत शासन की व्याख्या आधुनिक जनतंत्रवाद के विचारों के प्रकाश में करते थे। लालाजी की दृष्टि में शिवाजी राष्ट्रनिर्माता न थे, वरन् एक साम्राज्य निर्माता थे। उसका शासन स्वराज्य—अर्थात् जनता का शासन नहीं था। उसके मंत्रीगण साधारण नौकरशाही मशीन के पुर्जे थे जिनका प्रयोग सभी निरंकुश शासक किया करते थे। वह सचिव मंडल प्रजा के प्रतिनिधि नहीं थे, यद्यपि वह लोकोपकारी स्वच्छन्द शासन था। भला लालाजी को यह बात कैसे पसन्द आती कि बेचारे कृषक से पैदावार का २/५ (जो अन्य करों को सम्मिलित कर के १/२ तक बन जाता था) भूमिकर के रूप में ले लिया जाय। यद्यपि लालाजी शिवाजी के सच्चे तथा महान् प्रशंसक थे, परन्तु यह उन्हें "स्वतंत्रता के सैनिक" कहने को तैयार न थे।

उन्होंने अफ़जलखां तथा शाइस्ता खां से संबन्धित घटनाओं की पुन: जांच की और शिवाजी को बुरा नहीं कह सके। धोखा अथवा विश्वासघात का आरोप सिद्ध नहीं हो सका और न ही वह शिवाजी की गुरिल्ला युद्ध पद्धति की निन्दा कर सके। "साधनहीन लोगों को यदि अपने से अधिक संगठित तथा प्रबलतर सेना से लड़ना पड़े, तो गुरिल्ला युद्ध ही सर्वश्रेष्ठ युद्ध पद्धति है।" लालाजी राजपूतों की अन्धी वीरता के भारी प्रशंसक थे, परन्तु वह अच्छी तरह जानते थे कि कूटनीति

निपुणता भी भारी गुण है और उसके अभाव का परिणाम प्रायः घातक हुआ करता है। जब प्रोफेसर रालिन्सन ने लिखा कि शिवाजी को अपने युग तथा अपने देश के मापदण्ड से मापना चाहिए, तब लालाजी ने उत्तर दिया कि पूर्वीय देशों का मापदण्ड किसी प्रकार भी पाश्चात्य देशों के मापदण्ड से घटिया नहीं है। पश्चिम के विख्यात विद्वान भी जातियों की नैतिक परीक्षा के लिए तीन भिन्न प्रकार के मापदण्ड रखते हैं। एक तो सिद्धान्तों के लिए तथा प्रचारार्थ, दूसरा योरोपियन जातियों के लिए और तीसरा "घटिया" जातियों को जलील करने के लिए। जिस मापदण्ड द्वारा संसार के अन्य साम्राज्य निर्माताओं—सिकन्दर, तैमूरलंग, महमूद ग़जनवी, अलाउद्दीन खिलजी, नेपोलियन अथवा क्लाइव के कार्यों की जांच पड़ताल की जाती है, उसी से शिवाजी के कार्यों तथा आचरण की जांच होनी चाहिए। इस सन्तुलन में शिवाजी का पलड़ा, किसी प्रकार भी हलका नहीं होगा। हां, यदि शिवाजी हलका सिद्ध हो सकते हैं तो महाराज अशोक के मापदण्ड से, न कि सिकन्दर अथवा नेपोलियन के मापदण्ड से।"

संक्षेप में लालाजी ने महापुरुषों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया था। सर्वोच्च श्रेणी के लोग तो वह थे जिन्होंने स्वार्थ को ठुकराते हुए संसार के परोपकार के लिए काम किया। बुद्ध, शंकराचार्य, ईसा, मुहम्मद, उमर, सन्तपाल, नानक, दयानन्द, गान्धी, अशोक, कार्ल मार्क्स, मेजिनी तथा वाशिंगटन इस श्रेणी में थे। शिवाजी की गणना इस श्रेणी में नहीं थी। निकृष्ट श्रेणी के वह "महापुरुष" थे जिन्होंने स्वार्थ सिद्धि तथा निजी महत्वाकांक्षा के लिए प्रायः भारी अत्याचार किए थे। चंगेज खां और तैमूरलंग इस श्रेणी में थे। शिवाजी की गणना मध्यम श्रेणी में की जा सकती है जिसके कार्यों की प्रेरक शक्ति तो व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा थी, परन्तु इससे जनता का भी कल्याण हुआ।

अध्याय सात

जेल से बाहर

लाहौर की कड़ाके की गर्मी से लालाजी को बचाने के लिए यह नितान्त आवश्यक था कि उनको किसी ठण्डे स्थान पर ले जाया जाय। इसका सोलन में प्रबन्ध किया गया और रिहा होते ही वह सोलन चले गए। वहां जाते ही उनका स्वास्थ्य सुधरना शुरू हो गया। युवावस्था की तरह अब भी, भारी रोग के अनन्तर वह शीघ्र ही चंगे हो जाते थे और लिखने-पढ़ने, सार्वजनिक भाषण देने तथा दौरा करने के काम में मित्रों और डाक्टरों की आशाओं से कहीं बढ़ कर द्रुत वेग से काम में लग गए। यद्यपि सोलन में उनका रोग अच्छा हो गया, परन्तु वह पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ न कर सके। प्रतीत होता है कि उनके शरीर को दीर्घ विश्राम की आवश्यकता थी जिससे कि वह सारी गरमी सोलन ही व्यतीत कर सकें। वहीं से वह लिखने पढ़ने के अतिरिक्त अपनी संस्थाओं का संचालन करते रहते थे। कभी कभी वह राजनीतिक परामर्शों में भी भाग लेते थे, क्योंकि अबुलकलाम आजाद तथा मोतीलाल नेहरू ने भी गर्मी का कुछ भाग सोलन में व्यतीत किया। कुछ दिनों के लिए जवाहरलाल नेहरू भी अपने पिता के पास आकर ठहरे थे। वह अक्सर परस्पर मिलते रहते और नवीन समस्याओं पर वार्तालाप करते थे। नवीन समस्याएं—हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य तथा कौंसिलों और धारासभाओं में प्रवेश—थीं। विचार यह था कि जिस प्रकार १९१४ में लखनऊ कांग्रेस के अवसर पर एक हिन्दू-मुस्लिम सन्धि की गयी थी, उसी प्रकार अब भी एक नवीन सन्धि कर ली जाय। कहा जाता था कि (आन्ध्र देश में) कोकनाडा में होने वाले कांग्रेस के आगामी अधिवेशन में इसी प्रकार की किसी सन्धि पर विचार होगा। लालाजी तथा मौलाना आजाद किसी ऐसी सन्धि की रूपरेखा की चर्चा करते रहे और ऐसा प्रतीत होता था कि वे दोनों सहमत थे।

मोतीलाल नेहरू से राजनीतिक बातचीत साधारणत: स्वराज्य दल के निर्माण तथा जनमत को (कांग्रेस के लिए धारा सभाओं, कौसिलों पर अधिकार प्राप्त करने के बारे में) शिक्षित करने की बाबत होती थी। लालाजी अभी जेल ही में थे कि स्वराज्य दल का निर्माण हो चुका था। मि० सी० आर० दास उसके प्रधान तथा

मोतीलाल नेहरू मंत्री बने थे। जेल से भी लालाजी उनकी सहायता करते रहे। अब बाहर आकर तो यथाशक्ति उनकी पूरी सहायता की आशा थी। विशेषतः पंजाब कौंसिल का चुनाव उनके हवाले कर दिया गया। सोलन में बैठे हुए ही उन्होंने कौंसिल के लिए उम्मीदवार खड़े किए और स्वराज्य दल के झण्डे तले चुनाव लड़े। चुनाव के परिणाम काफी सन्तोषजनक थे। नागपुर तथा अन्य स्थानों की तरह वहां भारी बहुमत से चुनाव में सफलता तो सम्भव न थी, परन्तु लगभग शहर की सारी हिन्दू सीटें तथा कुछ देहाती और सिक्ख सीटों पर अधिकार प्राप्त हो गया। प्रान्त की विशेष परिस्थितियों को सामने रखते हुए, इससे अधिक प्राप्त करना तो सम्भव भी नहीं था। हिन्दू-मुस्लिम मैत्री के अभाव में, मुसलमानों की सीटों पर अधिकार प्राप्ति का तो प्रश्न भी नहीं उठता था। अतः उसका अर्थ आधी सीटें—आधी सफलता थी। सीटों के विभाजन में ओडवयार की भेद नीति—अर्थात् शहरी और देहाती का झमेला खड़ा कर दिया गया था। अधिकांश स्थान बड़े बड़े जमींदारों के लिए प्रायः सुरक्षित कर दिये गये थे। संसार के अन्य देशों की तरह पंजाब के भूमिपति और जमींदार भी प्रतिगामी होते हैं।

यद्यपि लालाजी स्वयं कौंसिल के सदस्य नहीं थे, परन्तु पंजाब स्वराज्य दल उन्हीं के निर्देश से चलता था। शीघ्र ही लालाजी ने मोतीलाल को बतलाया कि पंजाब में स्वराज्य दल के सदस्यों को कुछ बातों में विशष अधिकार दिए जाने चाहिए जिससे कि वह पंजाब के हिन्दुओं की विशेष समस्याओं का ध्यान रख सकें (ये हिन्दू धारा सभा में अल्प संख्या में हैं परन्तु प्रान्त में स्वराज्य दल की रीढ़ की हड्डी हैं)। पंजाब की विशष परिस्थितियों तथा कठिनाइयों को छोड़ कर भी लालाजी को धारा सभाओं में निरी बाधा डालने की नीति पसन्द नहीं थी। जब वह समस्त भारत में स्वराज्य दल के काम को कुछ काल तक देख चुके तो वह बड़ी अधीरता से उन लोगों का विरोध करने लगे जो अड़ंगा नीति द्वारा कौंसिलों को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए उनमें प्रविष्ट हुए थे।

लालाजी को यह बात पसन्द नहीं थी कि कौंसिलों के बहिष्कार को मन्सूख कर के उनमें प्रवेश किया जाय और फिर अन्दर जाकर उससे असहयोग की नीति बर्ती जाय। कांग्रेस का निजी इतिहासकार लिखता है—

"गया का अधिवेशन, कांग्रेस के दोनों दलों में, भारी संघर्ष था। यह आशा नहीं की जा सकती थी कि चित्तरंजनदास जैसा व्यक्ति जिसे मोतीलाल तथा विट्ठल-भाई पटेल का समर्थन प्राप्त हो, चुपचाप जनता के विचारों के सामने घुटने टेक देगा और कौंसिलों के बहिष्कार को स्वीकार कर लेगा। उन्होंने संगठित रूप से कार्य किया और कार्यक्रम तैयार कर लिया गया। दास को बंगाल प्रान्तीय कौंसिल पर

अधिकार करना था और मोतीलाल जी का हल्ला देहली और शिमला पर होना निश्चित हुआ। महाराष्ट्र नागपुर का ध्यान रखेगा. . .।"

जब दास गया कांग्रेस के अध्यक्ष बने, तब उनकी जेब में दो महत्वपूर्ण कागज थे—एक तो उनका सभापति-भाषण था और दूसरा उनका प्रधान पद से त्यागपत्र तथा स्वराज्य दल का विधान था। तीसरा कागज लालाजी का जेल से भेजा हुआ गुप्त पत्र था जिसमें उनके कौंसिल कार्यक्रम पर विचार दिए हुए थे।

पत्र में लालाजी ने विशेष रूप से उन व्यक्तियों के नाम दिए हुए थे जिन्हें वह पत्र पढ़वाना चाहते थे, परन्तु दास ने स्वेच्छा से हर छोटे बड़े को वह दिखला दिया और उसका खूब प्रकाशन किया। अधिवेशन की समाप्ति पर दास ने त्यागपत्र पेश कर दिया जिसका निर्णय आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की आगामी बैठक में होना था। उनके दल तथा अपरिवर्तनवादियों ने (राजगोपालाचार्य के नेतृत्व में) पूरे जोर शोर से अपना अपना कार्य आरम्भ कर दिया। आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक तक अबुलकलाम आजाद तथा जवाहरलाल नेहरू (जो गया कांग्रेस के समय जेल में थे) भी बाहर आ गए थे और उन्होंने कांग्रेस में फूट को रोकने का भरपूर प्रयत्न किया। कुछ सप्ताहों के लिए विराम संधि कर दी गयी। आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने जो प्रस्ताव पास किया उसका चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य तथा अन्य "अपरिवर्तनवादी" दल के सदस्यों ने विरोध किया और छः सदस्यों ने कमेटी से त्यागपत्र दे दिया। दास ने प्रधान पद से त्यागपत्र दे दिया। डा० अन्सारी की अध्यक्षता में वर्किंग कमेटी का पुर्ननिर्माण किया गया और अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में सितम्बर के तीसरे सप्ताह में इस परिस्थिति का सामना करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया।

इस अधिवेशन के समय, लालाजी सोलन में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। अधिवेशन की तरफ से उनका, जेल से आगमन पर, स्वागत किया गया।

भय था कि कांग्रेस में फूट पड़ जायगी और उसके दो स्पष्ट दल हो जायँगे—दास तथा नेहरू अपनी समस्त शक्तियां देहली पर केंद्रित कर रहे थे और पूर्ण कौशल से उनका संगठन तथा संचालन कर रहे थे। ६ सितम्बर को मोतीलाल नेहरू का तार आया—

"यदि डाक्टर आज्ञा दें तो आप १० सितम्बर को देहली में होने वाले प्रारंभिक सम्मेलन में अवश्य पधारें। आपके निवास का प्रबन्ध कुतब में होगा। केवल चुने हुए लोग आपसे भेंट करेंगे। उत्तर तार द्वारा दीजिए।"

परन्तु वह न तो प्रारंभिक सम्मेलन में और न ही अधिवेशन में जा सके।

देहली अधिवेशन का प्रधान अबुलकलाम आजाद को बनाया गया था, क्योंकि

वह दोनों दलों के विश्वासपात्र थे, परन्तु भय था कि इससे भी दोनों दलों की लड़ाई तथा फूट रुक न सकेगी। जब आजाद जेल से बाहर आए, तब उनके प्रयत्नों से दो मास की विराम सन्धि हो पायी। अब कार्य उनकी शक्ति से बाहर हो गया था, परन्तु सौभाग्य से एक अन्य नेता ठीक समय जेल से बाहर आ गए और उन्होंने देश को फूट से बचा लिया। यह मुहम्मदअली थे जिन्होंने कहा कि "मेरे कान में उड़ती चिड़िया कह गयी है कि स्वयं महात्मा गांधी कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध नहीं लड़ेंगे।" उसका वक्तव्य था तो अस्पष्ट-सा ही, परन्तु अपरिवर्तनवादियों के पास यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं था कि उसने अन्य दल का पक्षपात किया है और जन-साधारण पर यह प्रभाव पड़ा कि महात्मा गांधी ने देवदास गान्धी द्वारा मुहम्मदअली के नाम दोनों दलों की सन्धि के लिए सन्देश भेजा है। कांग्रेस ने यह अनुमति-सूचक प्रस्ताव पास किया—

"जिन कांग्रेसी लोगों को कौंसिल प्रवेश के विषय में कोई धार्मिक तथा अन्तरात्मा सम्बन्धी आपत्ति नहीं है, वह आगामी चुनावों में उम्मीदवार खड़े होने तथा वोट देने का अधिकार बर्तने में स्वतंत्र हैं। अतः यह कांग्रेस कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध सारा प्रचार बन्द करती है।"

तीन मास अनन्तर कोकनाडा में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भी इसी फैसले को दुहराया गया और वहां चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने भी उसका समर्थन किया। इस फैसले द्वारा स्वराज्य दल को यथेष्ट स्वतंत्रता मिल गयी।

देहली कांग्रेस ने एक राष्ट्रीय सन्धि के लिए एक आलेख तैयार करने के लिए एक कमेटी की नियुक्ति भी कर दी। (अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की किसी गत बैठक में यह कार्य डा० अन्सारी के सुपुर्द किया गया था।) लालाजी भी इस कमेटी के सदस्य नियुक्त किए गए।

अन्त में सोलन से, वह लाहौर आ गए। यद्यपि अभी उनका स्वास्थ्य कमजोर था, परन्तु कुछ न कुछ काम वह कर ही लेते थे।

अध्याय आठ

देश में निराशा के बादल

इन १८ महीनों में क्या से क्या हो गया। जब लालाजी गिरफ्तार हुए थे, लोगों के उत्साह का वारापार न था। वह निकट भविष्य में ही बड़ी बड़ी बातों की आशाएं लगाए बैठे थे। कई लोगों को तो अभी तक दृढ़ विश्वास था कि वर्ष की समाप्ति से पूर्व ही स्वराज्य प्राप्ति का चमत्कार हो जायगा, यद्यपि उसमें केवल चार सप्ताह ही शेष थे। वह आशाएं पूरी न हो सकीं। तीस हजार व्यक्ति जेल गए थे, परन्तु शीघ्र ही बारदोली निर्णय की प्रतिक्रिया हो गयी। लालाजी के कई साथी भी जेल गए और सजा काट कर वापस आ गए। कई अभी तक सजाएं काट रहे थे। महान् राष्ट्रीय नेताओं में से अभी महात्मा गांधी की ही सजा बहुत लम्बी थी। दास तथा नेहरू लौट आए थे और गांधी के कार्यक्रम को संशोधित करने में लगे हुए थे और राजगोपालाचार्य इस कार्य में पग पग पर उनका विरोध कर रहे थे। देश में चारों ओर निराशा और उत्साहहीनता छायी हुई थी। देश के कोने कोने में हिन्दू-मुस्लिम दंगे फूट पड़े जिससे राजनैतिक समस्या और भी अधिक गम्भीर और पेचीदा हो गयी। अपनी गिरफ्तारी के समय, जिन दो "बच्चों" को लालाजी जनता के सुपुर्द कर गए थे, उनमें से राजनैतिक वातावरण के परिवर्तन के परिणामस्वरूप "वन्देमातरम्" को भारी हानि उठानी पड़ी। जब लोगों का उत्साह ठण्डा पड़ गया, तब पत्र के ग्राहकों की भारी संख्या घट गयी। अधिकांश हिन्दुओं को एकता का प्रचार बहुत बुरा और अरुचिकर मालूम होने लगा। जल्दी में बनी हुई कौमी विद्यापीठ में भी वही गम्भीर समस्याएं पैदा हो गयीं जिनका आरम्भ से ही भय था, क्योंकि यह कार्य आरम्भ से ही असम्भव दिखलायी पड़ता था। तात्कालिक भावुकता का वेग समाप्त होने पर, विद्यार्थीगण में असन्तोष बढ़ने लगा और वे शिक्षा प्रबन्ध से अति असन्तुष्ट हो गए। औद्योगिक विद्यालय की अपनी विशेष टेढ़ी समस्याएं पैदा हो गयीं। (एक सज्जन ने विशेष शर्तों पर उसके लिए कुछ धन दान दिया था और लालाजी, स्वयं दानी महाशय और दो अन्य सज्जन उसके ट्रस्टी थे।) दानी महाशय ने सब की नाक में दम कर रक्खा था। लालाजी की अनुपस्थिति में, राष्ट्रीय शिक्षा के संचालकों ने बिना सन्तोषजनक प्रबन्ध किए एक मेडिकल कालेज खोल

दिया। वह इस बात से प्रसन्न थे कि यद्यपि कौमी महाविद्यालय में छात्रों की संख्या घट रही है, परन्तु यहां डाक्टरी शिक्षा के लिए काफी नवयुवक खिंचे चले आयेंगे क्योंकि कुछ स्थानीय डाक्टरों ने बिना वेतन लिए पढ़ाने का काम अपने सिर पर लेना स्वीकार किया था। लालाजी ने यह सब कुछ सुना, परन्तु मौन रहे। उन्होंने इन पंक्तियों के लेखक को औद्योगिक विद्यालय तथा डाक्टरी कालेज में रसायन पढ़ाने की मनाही कर दी।

कुछ काल अनन्तर यह सुझाव पेश हुआ कि समुद्र तट पर निवास से उनके स्वास्थ्य को लाभ होगा। इस कार्य के लिए कराची का शुष्क तथा स्वास्थ्य वर्धक स्थान चुना गया। वहां आप जसवन्तराय के अतिथि बन कर रहे। जसवन्तराय "पंजाबी" पत्र के दिनों से यहां एक सफल व्यापारी के रूप में रहते थे। ८ दिसम्बर को कराची में लालाजी को मोतीलाल नेहरू का तार प्राप्त हुआ—

"अबुलकलाम ११ दिसम्बर को देहली में महत्वपूर्ण परामर्श करना चाहते हैं। यदि स्वास्थ्य अनुमति दे तो कृपया सम्मिलित हों।"

इसके पीछे एक अन्य तार आया "क्या आप १२ दिसम्बर को लाहौर पहुंच सकते हैं? मैं दास को तार दे दूं?"

विचार विनिमय के लिए उनकी भेंट लाहौर में हुई, क्योंकि लालाजी के कांग्रेस अधिवेशन पर जाने की कम सम्भावना थी।

कुछ दिन बाद, आप कराची के सुखद जलवायु का पूरा लाभ उठाने के लिए फिर सिन्ध लौट गए। आप दो दिन हैदराबाद (सिन्ध) ठहरे। पिछली बार आपने जयरामदास दौलतराम, चोयथराम गिडवानी तथा अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं के साथ दंगों से पैदा होने वाली समस्याओं और किसी समझौते की खोज के बारे में बातचीत की थी। हैदराबाद के मित्रों ने लालाजी के दृष्टिकोण को सहानुभूति-पूर्वक सुना। जयरामदास दौलतराम ने लाहौर में लालाजी से कई पत्रों तथा तारों द्वारा अनुरोध किया कि वह कोकनाडा कांग्रेस में अवश्य सम्मिलित हों, विशेष आयोजित हिन्दू-मुस्लिम सम्मेलन को सम्मुख रखते हुए वहां जरूर पधारें। "डा० चोयथराम तथा मैं प्रार्थना करते हैं कि २२ दिसम्बर से पूर्व आप हिन्दू कांग्रेसियों का एक सम्मेलन अवश्य बुलावें, नहीं तो भय है कि समस्या उलझ जायगी।"

क्योंकि कोकनाडा जाने का उनका विचार नहीं था, अतः आपने हैदराबाद में उनसे भेंट की। आपको सिन्ध के कार्यकर्ताओं की यह मण्डली अत्यन्त पसन्द आयी। विशेषतः जयरामदास की सत्यनिष्ठा, लगन तथा कार्यप्रणाली पर तो वह मुग्ध हो गए। लालाजी ने उनसे देश की तात्कालिक समस्याओं तथा पंजाब व सिन्ध के विशेष प्रश्नों पर खूब दिल खोलकर बातचीत की। आपने भारतीय इतिहास के

विषय पर कुछ बातें कीं, क्योंकि जेल में वह भारतीय इतिहास के कार्य में व्यस्त रहे और उनको भारत पर मुसलमानों के प्रथम आक्रमण के विषय में कुछ विस्तृत बातों की आवश्यकता थी और आपको "चचनामा" की प्रति कहीं से नहीं मिली थी।

आपको पूर्ण "चचनामा" पढ़ने की उत्सुकता थी। क्योंकि मूल पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण आजकल अप्राप्य था, अतः तत्काल तो उनको कोई प्रति न मिल सकी। हां, उन्होंने उसे ढूंढ़ कर भिजवा देने का वचन दिया, आखिर कुछ दिन बाद उन्होंने एक प्रति भेज ही दी।

कोकनाडा जाने के भारी प्रलोभनों के होते हुए भी, वह कराची ही डटे रहे। जब कांग्रेस अधिवेशन आरम्भ हो गया, तब आप समाचारों के लिए बड़े अधीर हो गए। दिन ढलते ही आप क्लिफटन के साथ साथ सैर को चल देते थे। मार्ग में किसी समाचारपत्र के कार्यालय में ताजा समाचार के लिए गाड़ी खड़ी कर देते थे। मुसकराते हुए सम्पादक महोदय बाहर निकल आते और जब उनसे समाचारों के बारे में पूछा जाता, तब वह फिर मुसकरा देते और कहते कि कोई महत्वपूर्ण खबर नहीं है। कई दिनों तक यही क्रम जारी रहा, फिर हमारे (मैं भी इस यात्रा में लालाजी के साथ ही था) मन में विचार आया कि कहीं ऐसा न हो कि इस पत्र को खबरें प्राप्त करने का प्रबन्ध ही न हो और उसे स्वयं भी अन्य पत्रों के प्रकाशन के अनन्तर खबरें मिलती हों।

फिर भी, कराची रहते हुए, लालाजी को कुछ महत्वपूर्ण समाचार मिल ही गए। तीन समाचार मुख्य थे—एक कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व का, दूसरा अधिवेशन का एक भाग था और तीसरा उसके पश्चात् का।

प्रथम समाचार "बंगाल पैक्ट" था जो बंगाल की राजनीति में मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए सी० आर० दास ने तैयार किया था। यह खबर लाला-जी के लिए एक भारी चोट थी। उनको सन्धि की कुछ शर्तें अत्यन्त बुरी लगीं और उनकी निश्चित सम्मति थी कि बंगाल के पृथक फैसले का विचार ही अदूरदर्शितापूर्ण है, विशेषतः उस दशा में जब कि एक राष्ट्रीय सन्धि विचाराधीन थी और नेशनल पैक्ट कमेटी का तैयार किया हुआ आलेख कोकनाडा में विचारार्थ पेश होना था। एक प्रकार से पृथक बंगाल सन्धि ने राष्ट्रीय संधि का सत्यानाश कर डाला। आलेख के गुण दोषों को छोड़ कर लालाजी को जिस बात का दुख था वह यह थी कि दास ने यह सब कुछ जान बूझ कर उनको इस कार्य से पृथक रक्खा। कई लोगों का विचार था कि अबुलकलाम आजाद का भी इसमें हाथ है। परन्तु इसका कोई प्रमाण न था। यदि यह सत्य था तो क्या यह बहुत बुरी बात न थी कि एक पैक्ट के विषय में तो अबुलकलाम की बातचीत चल रही हो और उससे सर्वथा भिन्न सन्धि वह श्री

दास के साथ मिल कर तैयार कर लें। अबुलकलाम कलकत्ता में थे। कलकत्ता के मुसलमानों के साथ सन्धि करते समय श्री दास ने उनकी पूर्ण अवहेलना कर दी थी। अभी कुछ ही दिन पूर्व श्री दास लालाजी से लाहौर में मिले थे और यद्यपि उनमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर काफी बातचीत होती रही थी, परन्तु श्री दास ने इस सन्धि के बारे में कोई संकेत तक नहीं किया। दास को यह तो ज्ञात ही था कि लालाजी एक राष्ट्रीय पैक्ट तैयार कर रहे हैं। कम से कम वह लालाजी को इतना ही बतला देते कि "स्थानीय परिस्थितियों ने उन्हें ऐसा करने को विवश कर दिया था।" दास ने तो इतनी शिष्टता भी दिखलाना आवश्यक नहीं समझा। इसमें अबुलकलाम का हाथ हो अथवा न हो, परन्तु यदि उनका हाथ हो तो वह अन्याय था। दास के कार्य से उनको व्यक्तिगत कष्ट हुआ, क्योंकि दास उनके प्रिय मित्र थे और यह कार्य मित्रता के विरुद्ध था। अपने राजनैतिक जीवन में उनका घनिष्ठ सम्पर्क महाराष्ट्र तथा बंगाल के राष्ट्रवादियों के साथ हुआ था। श्री दास तथा लालाजी कलकत्ता में गांधी जी से सहमत नहीं थे। श्री दास, पंडित मोतीलाल तथा लालाजी गांधीजी के असहयोग कार्यक्रम के विरोधी तथा विद्रोही समझे जाते थे। लालाजी अपने आपको पंडित नेहरू की अपेक्षा दास के अधिक समीप समझते थे।

लालाजी श्री दास से बुरी तरह निराश हुए। लालाजी ने जो गुप्त पत्र जेल से उनके नाम लिखे थे, उन्हें लोगों को दिखला कर दास ने उचित कार्य नहीं किया था। एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि लाहौर सेण्ट्रल जेल में मुसलमान मित्रों की बातचीत से उनके मन में भारी आशंकाएं उत्पन्न हो गयी हैं।

कुछ दिन पूर्व, बम्बई के ट्रेड यूनियन नेता जोजफ बेपटिस्टा ने अपने महाराष्ट्री ढंग से हंसी में कहा था कि—"Dasses were asses अर्थात् "दास गदहे होते हैं।" लालाजी भी कुछ हंसी में और कुछ निराशा में उन्हीं शब्दों को कई दिन तक दुहराते रहे। यद्यपि वह श्री दास के बंगाल पैक्ट के घोर विरोधी थे, परन्तु उन्हें श्री दास के बारे में अपने विचारों को दबाना पड़ा।

कांग्रेस के अधिवेशन से उन्हें जिस बात से आश्चर्य हुआ वह मौलाना मुहम्मद अली के अध्यक्ष के भाषण में इस प्रस्ताव पर था कि एकता के लिए अछूतों का हिन्दुओं और मुसलमानों में बंटवारा कर दिया जाय। इससे लालाजी दुखित तथा क्षुब्ध हुए और कुछ दिनों के विचार के बाद एक दिन प्रातः उठते ही घोषणा कर दी कि आज के पवित्र दिन (उस दिन गुरु गोविन्दसिंह का जन्म दिवस था) मैंने पवित्र प्रतिज्ञा की है कि छूतछात को हटाने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दूंगा। उसी दिन आपने एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया।

१२ अथवा १३ जनवरी को कराची में उनको चिन्ताजनक समाचार मिला कि महात्मा गांधी को अपेण्डेसाइटस (Appendicitis) का भयानक दौर हुआ है और पूना के ससून अस्पताल में कर्नल मैडाक द्वारा उसकी चीरफाड़ होगी। सफल ओपरेशन के अनन्तर भी चिन्ता दूर नहीं हुई। लालाजी शीघ्र ही जहाज द्वारा बम्बई के रास्ते पूना को चल पड़े।

कराची के जलवायु ने निस्सन्देह उनके स्वास्थ्य को काफी सुधार दिया, यद्यपि उपरोक्त घटनाओं का उनके मन पर बुरा प्रभाव ही पड़ा। जब उनकी तबीयत ठीक होती थी, तब आप नियमपूर्वक पढ़ना लिखना तथा पत्र-व्यवहार करना चालू किया करते थे। कराची का जलवायु भी स्वास्थ्यप्रद था और मौसम भी अच्छा रहा। यहां आपसे भेंट करने भी बहुत लोग नहीं आते थे। हां टी० एल० वास्वानी अवश्य आया करते थे जिनके साथ लालाजी कभी कभी गीता पर विचार-विनिमय किया करते थे। एक अन्य सज्जन शारीरिक उन्नति के बारे में उन्हें कुछ बतलाते रहते थे। कभी कभी लालाजी स्वयं मेहता, अब्दुल्ला हारूँ अथवा हातिम अलवी के यहां जाया करते थे और कभी कभी सायंकाल के भ्रमण से पूर्व आप लोक सेवक-मण्डल के लिए धन संग्रहार्थ सम्पन्न पंजाबी, सिन्धी अथवा मारवाड़ी व्यापारियों के पास जाया करते थे, परन्तु यहां आप दर्शनाभिलाषी श्रद्धालु भक्तों अथवा वक्त बेवक्त तंग करने वाले मुलाकातियों से पूर्णतया सुरक्षित थे। यहां सार्वजनिक कार्य-सभाएं, जुलूस, भोज आदि भी बहुत कम हुए, सिवाय एक शानदार भोज के जो कराची के नागरिकों ने उनके सम्मानार्थ दिया था।

बम्बई में आप एक दिन ठहर कर और मित्रों से मिल कर पूना को चल दिए। नरसिंह चिन्तामणि केलकर तथा केसरी मण्डल के अन्य मित्रों ने अपने पुराने सुहृद का यथेष्ट स्वागत किया। उन्हें तो महात्मा गान्धी के दर्शनों की उत्सुकता थी। उन्हें अस्पताल ले जाया गया। महात्मा जी ने अपने मधुर मुस्कान से उनका स्वागत किया जिससे उनकी आधी चिन्ता मिट गयी। यद्यपि वह निर्बल थे परन्तु उनका स्वास्थ्य बिलकुल सुचारु रूप से सुधर रहा था।

पूना पहुंच कर लालाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और यहां स्वर्गवासी लोकमान्य तिलक तथा गोखले की स्मृतियां ताजी हो गयीं। आप १९०५ में पहले पहल पूना आए थे और कुछ काल अनन्तर गोखले लाहौर पधार कर उनके अतिथि थे। शिवाजी तथा ऐतिहासिक दुर्ग सिंहगढ़ की स्मृतियां भी हृदयपटल पर अंकित हो गयीं। यहां का सबसे सुखद समाचार जो आपको प्राप्त हुआ, यह था कि केलकर लोकमान्य का बृहद् जीवन चरित्र लिखने में लगे हुए थे। जितने दिन आप यहां रहे आपने मित्रों के साथ नई समस्याओं—साम्प्रदायिक दंगे, हिन्दू-मुस्लिम एकता

तथा अछूतों के बारे में मुहम्मद अली के प्रस्ताव के बारे में विचार-विनिमय किया। पूना के मित्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य सज्जनों ने भी (कर्नाटक के गंगाधर राव देशपांडे भी थे) जो महात्मा जी की बीमारी के कारण वहां आए हुए थे, इस बातचीत में भाग लिया।

बम्बई लौट कर आप विट्ठलभाई पटेल तथा आर० बी० लोटवाला आदि मित्रों से मिले। आप वाल्केश्वर रोड पर सेठ हिन्दूमल दानी के यहां ठहरे और पटेल आपसे मिलने वहीं आए। फिर वह चौपाटी पर आर्य भवन में पटेल के कार्यालय में उनसे मिले। बातों ही बातों में पटेल ने लालाजी को कोकनाडा कांग्रेस के अनुभव सुनाए और उनसे पूछा कि आप बम्बई से कहां जायँगे ? लालाजी बोले कि "अभी तो मैं कलकत्ता जाकर सी० आर० दास से भेंट करने को उत्सुक हूं ताकि उसे बतला सकूं कि उसके बंगाल पैक्ट के बारे में मेरे क्या विचार हैं। मैं उसका मुख चुम्बन करते हुए उसे बतलाऊँगा कि वह गदहा है, परन्तु फिर भी मेरा स्नेहपात्र है।" स्वयं पटेल को भी वह पैक्ट पसन्द नहीं था, परन्तु लालाजी के प्रस्ताव को सुनकर वह बोले कि दास इस प्रकार की बातों को पसन्द नहीं करता।

कलकत्ता जाते हुए, लालाजी नागपुर में बैरिस्टर देशमुख के यहां ठहरे और यहां आपने अभ्यंकर, मुंजे और अणे से भेंट करने का अवसर प्राप्त किया और उनसे भी खुले तौर पर विचार विनिमय किया।

अन्त में आप कलकत्ता पहुंचे और अपने पुराने मित्र सेठ छाजुराम के पास ठहरे जो उन दिनों हरिसन रोड पर अपने विशाल भवन में निवास करते थे। यहां एक साधारण से व्यक्ति ने आकर लालाजी को प्रणाम करने के अनन्तर उनसे गुरु गोविन्द सिंह के जन्म दिवस पर की गयी प्रतिज्ञा की घोषणा के बारे में पूछा कि उसकी पूर्णता के लिए उन्होंने क्या योजना बनायी है। लालाजी ने उत्तर दिया कि मेरी योजना का प्रथम भाग तो कार्य के लिए धन संग्रह होगा जिसे मैं शीघ्र ही आरम्भ करूँगा। आगन्तुक ने प्रश्न किया कि कितना धन पर्याप्त होगा ? लालाजी बोले कि प्रथम वर्ष के लिए ५००० रु० मासिक दरकार होगा। प्रश्नकर्ता ने तत्काल ही प्रथम वर्ष के लिए धन देने का वचन दे दिया। शायद लालाजी उससे पूछना ही चाहते थे कि वह क्या दान देना चाहते हैं। यह आगन्तुक ज्येष्ठ बिड़ला बन्धु—सेठ जुगल किशोर बिड़ला थे।

एक भारी समस्या तो शीघ्र ही हल हो गयी जिसके बारे में उनका विचार था कि काफी समय लेगी और उसके लिए कई द्वारों की भिक्षा करनी पड़ेगी। अब देखना यह था कि शाम को चित्तरंजनदास के मकान पर क्या होता है।

रस्सा रोड पर दास के विशाल प्रासाद की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए आपने हिन्दू

देवी देवताओं की भव्य मूर्तियाँ दीवारों पर लगी देखीं। उस समय बेपटिस्ट के शब्द तथा श्री पटेल की चेतावनी आदि उनके मन में चक्कर लगा रहे थे।

बड़े हाल में बातचीत का क्रम शुरू से ही ठण्डा सा रहा। साधारण प्रणाम नमस्ते के पश्चात् लालाजी से दास ने उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा। फिर लालाजी ने प्रश्न किया कि आपका लड़का कहां है? आजकल क्या करता है और आपका कार्यक्रम क्या है? दास ने नपे तुले शब्दों में उत्तर देते हुए लापरवाही से कहा कि "वह बिहार में अपने गांव के मकान पर है और कलकत्ता के रस्सा रोड वाले मकान के अतिरिक्त मेरी सारी सम्पत्ति खतम हो चुकी है, और मैं कह नहीं सकता कि ऋण से मुक्त होने के लिए, यह मकान भी कब मेरे हाथ से निकल जाय।" यह दास की महानता है, क्योंकि धन विनाश के बारे में देशबन्धु के सिवाय और कौन इतनी उदासीनता दिखला सकता है।

अपने निजी मामलों के विषय में लालाजी को सब कुछ बतलाते हुए दास ने लालाजी के घरेलू मामलों के बारे में उसी ढंग के प्रश्न पूछे। फिर कुछ देर निस्तब्धता रही। तब दास ने मौन भंग करते हुए कहा "अच्छा, आपको मेरे विरुद्ध क्या शिकायत है?"

"जिस ढंग से आप काम करते हैं।"

"मेरा तो काम करने का यही ढंग है।" उपरोक्त दो वाक्य ऐसे ढंग से बोले गए थे कि उस विषय पर अधिक चर्चा अनावश्यक हो गयी।

इतने में अबुलकलाम आजाद आ गए और उन्होंने और विषय छेड़ दिया। अभी अभी समाचार आया था कि इंगलैण्ड में रेमजे मेकडानल्ड की अध्यक्षता में मजदूर सरकार स्थापित हो गयी है। क्या इसका भारत पर भी कुछ प्रभाव पड़ेगा? और यह नया भारत मंत्री ओलिवियर कौन है? क्या लालाजी उससे परिचित है? वह किन विचारों का व्यक्ति है?

लालाजी वेबस दम्पति के द्वारा ओलिवियर को कुछ कुछ जानते थे, क्योंकि वह भी फेवियन था और कहा जाता था कि उसने जमैका का शासन उदारतापूर्ण करने का प्रयत्न किया था। परन्तु लालाजी को उससे अथवा मजदूर दल से कोई बड़ी आशा नहीं थी। आपने यह भी देख लिया था कि उनके मित्र वेजवुड को लेन्कास्टर का ड्यूक बनाकर एक प्रकार का दण्ड दिया गया था। यह सुझाव पेश किया कि नयी परिस्थिति का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी को इंगलैण्ड भेजा जाय।

लालाजी को मजदूर दल के बारे में कोई भ्रम नहीं था, और न ही देशबन्धु को मेकडानल्ड से कोई आशाएं थीं। लायड जार्ज के बारे में लालाजी के विचार भिन्न

थे, वह कई बातों में स्वयं देशबन्धु से समानता रखते थे। दास के विचार में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों में केवल लायड जार्ज ही एक ऐसा व्यक्ति है जो कोई महान् कार्य करने तथा कोई महत्वपूर्ण पग उठाने की सामर्थ्य रखता है। वह अनुभव करते थे कि किसी दिन लायड जार्ज मजदूर दल का नायक बन कर शासन की बागडोर संभालेगा। युद्ध से पूर्व भी उसके सामाजिक कार्यक्रम का झुकाव ऐसा ही था और यदि एक बार उसने कुछ निश्चय कर लिया, तो मजदूर दल के किसी भी अन्य नेता की अपेक्षा मजदूर श्रेणी को अपने साथ ले जाने की शक्ति तथा योग्यता रखता है। यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य न निकली, परन्तु लायड जार्ज उदारदल की लगभग इतिश्री के अनन्तर कई बार मजदूर दल के साथ मैत्री स्थापित करने की कोशिश करता रहा। यदि आगामी वर्षों में मजदूर नेता को पदाधिकार के रसास्वादन का चस्का न पड़ जाता, और वह "मंत्रि मण्डल निर्माण" के हथकण्डे न सीख जाता, तो शायद लायड जार्ज को कहीं अधिक सफलता प्राप्त होती।

चित्तरंजनदास द्वैध शासन का अन्त करने के बारे में भी बहुत बोलते रहे और इस कार्य में शीघ्र ही सफलता प्राप्त करने के विषय में आशावादी थे। उनका यह विचार नहीं था कि बंगाल कौंसिल में अपने बहुमत द्वारा वह समस्त सरकारी तजवीजों को ठुकरा कर सफल होंगे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रान्तीय शासन में द्वैध शासन के स्थान में कुछ अन्य मूल परिवर्तनों की कुछ बातचीत चल रही थी।

रस्सा रोड से लौटते हुए लालाजी चकित हो रहे थे कि क्या मुसलमानों के साथ दास के बंगाल पैक्ट से प्रोत्साहित होकर, बंगाल के सिविलियन लोग भी दास के सामने बंगाल के लिए पृथक वैधानिक प्रगति का माया जाल खड़ा करने की कोशिश कर रहे हैं। लालाजी के मन पर, रस्सा रोड की बातचीत से यह प्रभाव पड़ा कि दास इतना बड़ा नेता तथा त्यागी होते हुए भी अज्ञात रूप से अपने से बढ़ कर चालाक लोगों के वाग्जाल में फंसता दिखलायी पड़ता है। जैसा वह कराची से सोचकर चले थे, वह दास से मिलकर अपने मन का बोझ हल्का न कर सके। परन्तु वह बोझ एक अन्य रूप से हल्का हो गया, क्योंकि अब उनको दास के काम करने का ढंग ज्ञात हो गया। उनके गुणों के प्रशंसक होते हुए तथा उनकी मित्रता की कद्र करते हुए, बंगाल पैक्ट के कारण वह उनसे काफी निराश हो गए। अब उनकी मैत्री नये आधार पर जारी रही। कुछ मास पश्चात् जब बंगाल में दमनचक्र चला, और शासकों ने बिना किसी अदालती कार्यवाही के सुभाष बोस को दमन का शिकार बना डाला तब लालाजी को बड़ा दुख हुआ। आपने संवाद पाते ही देशबन्धु को तार देते हुए उन्हें अपनी सेवाएँ पेश कर दीं।

लाहौर को लौटते हुए भी आप मार्ग में बनारस, इलाहाबाद तथा देहली ठहरे।

इलाहाबाद में उनका मुख्य उद्देश्य मदनमोहन मालवीय से भेंट करना तथा उनसे विचार विनिमय करना था। अपनी रिहाई के बाद वह देश में भ्रमण करते हुए, बहुत से नेताओं से भेंट कर चुके थे। जिस समय आप वहां पहुंचे, मालवीय जी ने त्रिवेणी संगम पर एक विद्वद् परिषद् बुलायी हुई थी। काशी तथा अन्य स्थानों से पंडितगण छूतछात तथा शुद्धि आदि समस्याओं पर शास्त्रों के आधार पर व्यवस्था देने के लिए वहां एकत्रित हुए थे। लालाजी न तो जन्म से ब्राह्मण थे और न ही संस्कृत के विद्वान् थे, अतः इस सम्मेलन में किसी प्रकार भी भाग लेने में योग्य न थे। हां, आप ध्यानपूर्वक सम्मेलन की कार्यवाही देखते तथा सुनते रहे। आप भी स्मृतियों के विषयों में एक दो बातें जानते थे, यद्यपि आपने स्मृतियों का अध्ययन अनुवादों द्वारा ही किया था और ऐसे प्रबल प्रमाणों द्वारा पंडितों को चुनौती दे सकते थे जिनका उत्तर देना अथवा जिनका खण्डन करना सहज न था। परन्तु आप संस्कृत भाषा में तो एकाध वाक्य बनाना भी नहीं जानते थे, और परिषद में किसी अन्य भाषा के प्रयोग की आज्ञा नहीं थी। पवित्र देववाणी का आपको इतना काफी ज्ञान भी न था जिससे आप सम्मेलन की कार्यवाही पूरी तरह समझ सकते। परन्तु इस बात को समझने के लिए किसी संस्कृत के ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी कि जिस पंडित मालवीय को, उनके समस्त राजनीतिक साथी परले सिरे का अनुदार तथा कट्टर पन्थी समझते थे, उन्हीं को इस सम्मेलन वाले एक भयानक क्रान्तिकारी के नाम से पुकार रहे थे। इस पंडित मण्डली में शान्ति स्थापित करना भी कठिन कार्य था। शास्त्रों के प्रमाण, श्लोक तथा मंत्र इस जोर से बोले जाते थे मानों फुटबाल ग्राउण्ड में फुटबाल मैच खेला जा रहा हो। एक दर्जन से भी अधिक विख्यात पंडित एक ही समय अपने अपने आसनों से उठ कर "वयमपि पंडिताः, वयमपि पंडिताः" (हम भी पंडित हैं) चिल्ला उठते थे।

हिन्दू जाति के सौभाग्य से "अछूत" कहलाने वाले लोगों ने इस पंडित सम्मेलन की कार्यवाही को नहीं सुना, नहीं तो ईसाई तथा मुसलमान प्रचारकों की कई शताब्दियों के प्रबल प्रचार से इतने अछूत हिन्दू धर्म को तिलांजलि न देते, जितने कि कट्टर पंथियों के एक ही अधिवेशन के भाषणों द्वारा हिन्दू धर्म से पतित हो जाते। पंडित मालवीय जी का धैर्य तथा आशावाद अत्यन्त सराहनीय है कि वह इन पंडितों को भी सुधार मार्ग पर चलाने का प्रयत्न कर रहे थे।

स्वामी श्रद्धानन्द के अधीन होने वाले देहली की शुद्धि सभा के कार्य से आप सम्भवतः पहले ही भली भांति परिचित थे, यद्यपि आपका उसमें भाग लेने का कोई विचार नहीं था। देहली का मुख्य आकर्षण वे खादी धारी केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य थे, जो प्रथम सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए आ रहे थे। आप वहां

दक्षिण के उन नेताओं से भेंट करने के उत्सुक थे जिन्हें आप दौरे में नहीं मिल सके थे। पंडित मोतीलाल के निमंत्रण पर, आपने स्वराज्यवादियों की उस मंत्रणा में भाग लिया जिसमें एन० सी० केलकर, वी० जे० पटेल तथा ए० रंगास्वामी आयंगर और स्वयं मोतीलाल नेहरू आदि प्रमुख नेता सम्मिलित थे।

असेम्बली भवन के वातावरण के लिए ये खादीधारी, गान्धी टोपियों वाले सदस्य एक बिलकुल नयी और विचित्र वस्तु थे, परन्तु ये लोग वहां जाकर बिलकुल नहीं घबराए और न ही अपने वेष के बारे में उनको खेद वा पश्चात्ताप प्रकट करने की आवश्यकता पड़ी।

वापस आने के अनन्तर सब से प्रथम काम जो वह करना चाहते थे, वह महात्मा गान्धी की रिहाई की माँग थी। कांग्रेस के प्रधान मुहम्मदअली ने कहा था कि "मैं यरवदा (जेल जहाँ महात्मा गान्धी बन्द थे) की कुंजी की खोज में हूँ। स्वराज्य-वादियों ने सोचा कि जहां मौलाना के सफल होने की कोई सम्भावना नहीं थी, वहाँ हम कोशिश कर के सफल हो सकते हैं। ५ फरवरी को इस प्रश्न पर असेम्बली में विवाद होना था। उसी दिन प्रातः लालाजी पंडित मोतीलाल के कमरे में कुछ सबेरे चले गए। उनके दर्शक-पास का प्रबन्ध कर दिया गया। अभी मोतीलाल के कमरे में मंत्रणा ही हो रही थी कि समाचार आया कि सरकार ने महात्मा जी की मुक्ति की आज्ञा जारी कर दी है। कहां तो नेता गण आज के विवाद के लिए उग्र भाषण तैयार कर रहे थे, और कहां अब अपने नेता की रिहाई पर उचित अभिवादन के भाषण तैयार होने लगे। उन सन्देशों में वह यह दावा करने से भी नहीं रह सके कि यरवदा जेल की कुंजी खोज निकालने का सहारा भी उनके दल अर्थात् स्वराज्य पार्टी के सिर पर है।

अध्याय नौ

अछूतोद्धार आन्दोलन

१९२५ के आरम्भ में अछूतोद्धार आन्दोलन चलाने की प्रेरणा लालाजी को मुहम्मदअली के कोकनाडा कांग्रेस के अध्यक्ष-भाषण से मिली जिसमें उन्होंने अछूत जाति को हिन्दुओं और मुसलमानों में बराबर बांट देने का प्रस्ताव रक्खा था। कांग्रेस प्रधान को यह सुझाव एक धनाढ्य मुसलमान से प्राप्त हुआ था जो इस कार्य के लिए एक भारी धनराशि देने को तैयार था। शीघ्र ही यह बात भी गुप्त न रह सकी कि उक्त मुसलमान सज्जन सर आगा खां हैं जिसके धन से कई मुसलमान प्रचारक अछूतों को मुसलमान बनाने के कार्य में वर्षों से लगे हुए थे।

पत्रों द्वारा लालाजी का दृढ़ निश्चय जान कर कलकत्ता के सेठ जुगलकिशोर बिड़ला ने प्रथम वर्ष के लिए उनको ५,००० रु० मासिक देने का वचन दिया। लालाजी ने पंजाब में कार्य करने के लिए एक अछूतोद्धार कमेटी स्थापित की जिसमें सनातन धर्मी भी शामिल किए गए, परन्तु कार्य क्षेत्र पंजाब तक सीमित न था। उन्होंने एक अखिल भारतीय कमेटी भी स्थापित की जिसके प्रधान वह स्वयं तथा जिसके मंत्री लाला रामप्रसाद थे जो जेल से हाल ही में मुक्त होकर आए थे और जिसका बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य अब कुछ कुछ ठीक हो चला था। कमेटी का मुख्य कार्यालिय सब्जी मण्डी, देहली में था। लोक सेवक मंडल में अधिकांश सदस्यों (उनकी संख्या अब लगभग एक दर्जन तक जा पहुंची थी) को पंजाब तथा यू० पी० के विभिन्न जिलों में अछूतोद्धार कार्य के लिए भेजा गया। जब कुछ समय बाद रामप्रसाद ने व्यक्तिगत कारणों से मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया तब मण्डल के एक सदस्य बलदेव चौबे को, जिसने मेरठ में कुमार आश्रम का केन्द्र स्थापित किया था, मंत्री बना दिया गया। कार्य मुख्यतः पंजाब, देहली तथा यू० पी० तक सीमित रहा, परन्तु लोक सेवक मण्डल के अन्य सदस्यों के अपने अपने केन्द्र भी थे। शाहदरा के पास रावी के पार, लालाजी ने कुछ भूमि खरीदी थी ताकि वहां अछूतों की एक बस्ती कायम की जाय, जहां छोटे छोटे घरेलू उद्योग धन्धों द्वारा उनकी सामाजिक तथा आर्थिक दशा में कुछ सुधार किया जा सके। इस आयोजना को कार्यरूप में परिणत करने के मार्ग में कई बाधाएं पड़ीं, विशेषतः लालाजी का दीर्घकालीन निर्वासन।

कई बार वह सोचते थे कि इस भूमि का ठीक ठीक उपयोग किया जाए। परन्तु इस बार तो विशेष बल सवर्ण लोगों में प्रचार कार्य–सार्वजनिक सभाओं, जादू की लालटेन आदि द्वारा व्याख्यानों तथा सम्मेलनों पर दिया गया ताकि उनके मन से छूतछात का भाव हट जाय। लालाजी के परलोकगमन के बाद, वह भूमि बेच दी गयी और वह धन लोकसेवक मण्डल के अछूतोद्धार फण्ड को दे दिया गया। उस भूमि का एक भाग अभी तक मण्डल के पास है और वहां ग्रामोद्योग संघ द्वारा एक आश्रम चलता है।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने भी अपने रचनात्मक कार्यक्रम की एक मद अछूतोद्धार रखा था। लालाजी को यही मद पसन्द आयी और आपने अपना समय तथा शक्ति इसी कार्य में लगा दिया। उनका कार्य न तो धार्मिक ढंग का था और ना ही धर्म परिवर्तन—अर्थात् अछूतों को हिन्दू बनाने का था। वास्तव में उनका दृष्टिकोण तथा कार्यप्रणाली महात्मा गांधी के प्रचार के अनुकूल ही थी। फिर भी आलोचक लालाजी के इस कार्य को साम्प्रदायिक समझते थे, क्योंकि यह कार्य कांग्रेस के अधीन नहीं होता था। जो बात जनता को ज्ञात न थी, वह यह थी कि लालाजी ने कांग्रेस वर्किंग कमेटी को रचनात्मक कार्यक्रम की इसी मद के लिए अपनी सेवाएं पेश की थीं और साथ ही धन संग्रह आदि की जिम्मेदारी भी अपने सिर पर ली थी। एक बार देशबन्धु दास ने उनको बतलाया कि कमेटी ने उनकी पेशकश तथा सुझाव पर विचार किया है, परन्तु जिस बोर्ड के अधीन यह कार्य होना था, उसकी रचना (विशेषतः पं० मालवीय जी) पर कांग्रेस अध्यक्ष (मुहम्मदअली) को आपत्ति है। देशबन्धु ने मुहम्मदअली से बातचीत करने का वचन दिया, परन्तु इसके बाद लालाजी को वर्किंग कमेटी, प्रधान अथवा देशबन्धु से इस बारे में कोई सूचना तक नहीं मिली। अफवाह थी कि मौलाना कहते थे कि कांग्रेस अपने अधीन "दूसरे श्रद्धानन्द" को काम करने की आज्ञा नहीं दे सकती। कुछ भी हो, मुहम्मदअली ने लालाजी को अछूतोद्धार-कार्य करने का अवसर नहीं दिया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि लालाजी का कार्य तथा प्रतिज्ञा आगाखां के कार्य की प्रतिक्रिया ही तो थी। यह बात नोट करने योग्य है कि महात्मा गान्धी ने काफी वर्ष बाद हरिजन सेवक संघ चलाया जिस समय कि वह अली बन्धुओं के प्रभाव से सर्वथा मुक्त हो चुके थे।

आरम्भ में तो बिड़ला बन्धुओं ने केवल एक ही वर्ष के लिए धन देने का वचन दिया था, परन्तु सच यह है कि उन्होंने लालाजी के स्वर्गवास होते तक आर्थिक सहायता (यद्यपि कुछ कम मात्रा में) जारी रक्खी। तब हरिजन संघ चल पड़ा और वह सहायता उधर परिवर्तित हो गयी। पंजाब में तो हरिजन सेवक संघ एक रूप

से लाला जी के अछूतोद्धार कार्य का उत्तराधिकारी ही था। धीरे धीरे लोक सेवक मण्डल के सदस्य अछूतोद्धार कमेटी से निकाल लिए गए क्योंकि उनकी अन्य कामों में जरूरत थी। यहां पंजाब हरिजन सेवक संघ का कार्य, एक सदस्य मोहन लाल के सुपुर्द किया गया। वही संघ की पंजाब शाखा के मंत्री के रूप में काम चला रहे हैं।

अध्याय दस

अछूतों की समस्या और उसका समाधान

लाहौर पहुंचते ही लालाजी अछूतोद्धार के कार्य में गम्भीरतापूर्वक संलग्न हो गए।

इस कार्य के लिए उपयुक्त मशीनरी स्थापित कर दी गयी जिसे लालाजी के विश्वस्त सहायकों के सुपुर्द कर दिया गया। तिलक स्कूल के अधिकांश नवयुवकों को उन्होंने अछूतोद्धार आन्दोलन के कार्य-क्षेत्र में भेज दिया। आप "वन्देमातरम्" की ओर भी समय निकाल कर ध्यान देने लगे। उन दिनों आप किसी भी धारा सभा के सदस्य नहीं थे। दौरे के दिनों में भी प्रत्येक विभाग के मुख्य मुख्य व्यक्तियों को आपसे परामर्श बराबर प्राप्त होता रहता था। पंजाब के चुनाव तो आपने सोलन में निज स्वास्थ्य सुधार के दिनों में करा लिए थे और अब उनकी स्वराजिष्ट मण्डली पंजाब कौंसिल में मुख्य विरोधी दल के रूप में काम कर रही थी। देश में भ्रमण करते करते आपने लोक सेवक मण्डल के लिए भी कुछ अधिक धन संग्रह कया।

यह सुझाव पेश किया जा रहा था कि पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ के लए उनको अधिक विश्राम की आवश्यकता है। मजदूर दल के शासन सम्भालते ही बहुतों के मन में आया कि इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों से परिचय रखने वाले किसी अनुभवी कांग्रेसी नेता को इंग्लैण्ड भेजा जाय जो निज स्वास्थ्य सुधार तथा देश का राजनैतिक कार्य साथ ही साथ कर सके। इंग्लैण्ड से भी इसी प्रकार का एक सुझाव आया; विशेषत: श्रीमती वेब ने एक पत्र लिखा (मि० सिडनी वेब—अब लार्ड पासफील्ड, मण्डल में सम्मिलित हो गया था।) उनका विचार था कि मंत्रिमण्डल के कुछ सदस्यों को आकर बतलाया जाय कि भारतवर्ष के लिए क्या कुछ किया जाय। अच्छा होगा कि लालाजी भी भारतीय डेलीगेशन के साथ हों। उन्होंने एक चेतावनी भी दी कि मजदूर दल से भारी आशाएं नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि मजदूरदल ने पद तो संभाले हैं, परन्तु उनके पास पूर्ण शक्ति (अधिकार) नहीं है।

सोलन तथा कराची के जलवायु ने उनके स्वास्थ्य को काफी लाभ पहुंचाया, परन्तु कुछ काल के लिए वह योरुप जा सकें तो उनका शरीर पूर्णतः स्वस्थ तथा हृष्ट पुष्ट हो जायगा और वह देश के सार्वजनिक कामों का उत्तरदायित्व वहन के कहीं

अधिक समर्थ तथा योग्य हो सकेंगे। सोलन में अथवा भारतवर्ष के किसी भी स्थान में उनको पूर्ण विश्राम मिलना कठिन था। सम्भव है योरुप में कुछ विशेषज्ञों के परामर्श से कहीं अधिक लाभ हो। मजदूर सरकार कुछ विशेष लाभकारी सिद्ध न हो परन्तु योरुप जाने के लिए यह एक अतिरिक्त कारण बन गया और आपने निश्चय कर लिया।

यह स्पष्ट था कि कोई न कोई व्यक्ति उनके साथ जायगा। पहले उन्होंने तिलक स्कूल के किसी सदस्य को साथ ले जाने का विचार किया, परन्तु रावलपिण्डी के विश्वस्त मित्र मण्डल में से एक कांग्रेसी ने उनके साथ जाने की पेशकश की। हिन्दुस्तान टाइम्स, देहली के भूतपूर्व मैनेजर तथा नेशनल काल, देहली के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री किशनदास कोहली को साथ लेकर आप बम्बई को चल दिए।

इस दौरे से उनके स्वास्थ्य को लाभ पहुंचा। यात्रा तथा विश्राम से भी फायदा हुआ। आपने कुछ विशेषज्ञों से भी परामर्श किया विशेषतः स्विस नर्सिंग होम में। अपने पुराने मित्रों से भेंट करने में उन्हें अत्यन्त हार्दिक हर्ष हुआ। वह मित्र बूढ़े श्याम जी कृष्ण वर्मा स्विटजरलैण्ड में, राणा तथा मेडाम कामा पेरिस में, तथा युवक मण्डली में चट्टोपाध्याय तथा अग्निस स्मेडले बर्लिन में। जिन दिनों आप अमेरिका में थे, आप स्मेडले को प्रेमपूर्वक "पंछी" कह कर पुकारते थे और इसी कारण से भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले अपने लेखों के नीचे वह अपना नाम "A Bird" (एक पंछी) अथवा Alice Bird लिखा करती थी। उन्होंने अपनी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक Daughter of earth (धरती की पुत्री) में लालाजी का (रणजीत सिंह के रूप में) चरित्र चित्रण किया है। यह पुस्तक उपन्यास की शैली में स्मेड का स्वलिखित जीवनचरित्र है। उन दिनों चट्टोपाध्याय और स्मेडले पति और पत्नी के रूप में बर्लिन में रहते थे और कम्यूनिस्ट संसार व्यापी क्रान्ति के लिए यत्न कर रहे थे। इंग्लैण्ड में लालाजी अपने भारतीय मित्रों तथा वेजवुड, वेबस और मजदूर दल तथा उग्र मण्डल के मित्रों से मिले। आपने वहां इस यात्रा में कोई भाषण तथा लेख आदि का कार्य नहीं किया। हां अपने साथी को वहां पत्रों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने की प्रेरणा अवश्य देते रहे।

मई का सारा मास वह इंग्लैण्ड ही रहे। उनका निवास स्थान हैम्पस्टेड, ४६ ग्लेनलाक रोड था। शीघ्र ही उन्होंने प्रधान मंत्री, वेजवुड और वेबस से भेंट करने का अवसर निकाल लिया। लार्ड ओलिवियर के साथ भी नया सम्पर्क हो गया। उसने उनको ७ मई को सवाए में लंच (भोज) का निमंत्रण दिया। कुछ दिन पश्चात् लार्ड ओलिवियर ने उनको फिर निमंत्रण देते हुए लिखा "मुझे आपसे पुनः बातचीत का अवसर प्राप्त करने में हर्ष होगा।" उनकी कई मुलाकातें हुई और

मजदूरदल के शासन समाप्त हो जाने के बाद भी उनकी मैत्री बनी रही। अपने सौजन्य, उदारता तथा विशाल संस्कृति के कारण लार्ड ओलिवियर बहुत ही अच्छे मित्र बन सकते थे। लालाजी के इस सम्पर्क का मुख्य राजनैतिक परिणाम यह हुआ कि लालाजी ने इंडिया आफिस (भारत मंत्री) को भारत के जेल सुधार में कुछ दिलचस्पी लेने को विवश किया। लाहौर सेण्ट्रल जेल में लालाजी ने कैदी के रूप में जो निश्चय (जेलों की दशा सुधारने के बारे में) किया था, लार्ड ओलिवियर की मित्रता से वह पूरा कर सकते थे। आगे चल कर लालाजी ने स्वयं लिखा था कि ओलिवियर बड़ा बातूनी था।

वह अभी इंग्लैण्ड में ही थे कि ५ मई को "टाइम्स" ने अपने कलकत्ता के संवाददाता की ओर से एक सन्देश प्रकाशित किया कि महात्मा गान्धी कौंसिलों में सहयोग का एक कार्यक्रम रखने का विचार रखते हैं और वह उसे आगामी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत करा लेंगे और असेम्बली तथा कौंसिलों में बहुमत प्राप्त करने का यत्न करेंगे। संवाद खासा सनसनी पूर्ण था और लालाजी उसे शीघ्र ही सत्य मानने को तैयार न थे। महात्मा गांधी जुहू में स्वास्थ्य सुधार में लगे हुए थे और पत्रकार उनके भावी राजनीतिक कार्यक्रम के बारे में अनुमान लगा रहे थे। टाइम्स के संवाददाता ने एक मूर्खता पूर्ण गप्प हांकी थी। लालाजी ने तार द्वारा महात्मा गाँधी से पूछताछ की। उत्तर मिला—

"मुझे तो स्वप्न में भी इस प्रकार का विचार नहीं आया। जब तक ब्रिटिश सरकार का हृदय परिवर्तन नहीं होता, किसी प्रकार का सहयोग सम्भव नहीं। गान्धी।" लालाजी ने गान्धीजी का उपरोक्त उत्तर टाइम्स, प्रधान मंत्री तथा लार्ड ओलिवियर को भेज दिया।

इंग्लैण्ड की परिस्थिति में अपने विचार उन्होंने पंडित मोतीलाल तथा मालवीय जी को लिखकर भेज दिए। आपका इन महोदयों से नियमपूर्वक पत्र व्यवहार चलता था। मालवीय जी ने उनको भारतीय स्थिति से इन शब्दों में परिचित कराया:—

"जहां तक मजदूर सरकार का सम्बन्ध है, मैं स्थिति को पूर्णतः समझ गया हूँ। वह हिन्दुस्तान के लिए कुछ न कुछ करने को तैयार है, परन्तु उनके पास पर्याप्त शक्ति का अभाव है। उदार दल तथा अनुदार दल का समर्थन प्राप्त किए बिना वह हमारे लिए कुछ भी करने को उद्यत नहीं। जब तक भारत सरकार न माने, यह समर्थन प्राप्त नहीं हो सकता। भारत सरकार को इस देश के जन मत की रत्ती भर भी परवाह नहीं। जब तक हम अपना अधिक प्रबल संगठन नहीं करते और खूब प्रचार नहीं करते, हमें स्थिति के सुधरने की आशा नहीं रखनी चाहिए। रिफार्म्स कमेटी, जिसमें सर तेजबहादुर सप्रू, सर शिवास्वामी आयर तथा श्री जिन्ना सम्मिलित हैं,

निस्संदेह प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार के बारे में जो सफारिशें करेगी, उससे हम प्रान्तीय स्वराज्य के मार्ग पर खूब पग बढ़ायँगे। मुझे निश्चय नहीं कि एकमत हो वह कमेटी ऐसे स्वराज्य की सिफारिश करे। मेरा विचार है कि वह नहीं करेंगे।

केन्द्रीय सरकार के बारे में तो स्थिति किसी प्रकार भी उत्साह पूर्ण नहीं, परन्तु फिर भी केन्द्रीय सरकार को उत्तरदायी बनाने के लिए निरन्तर काम जारी रखना चाहिए। आशा है कि उपरोक्त तीनों सज्जन कुछ हद तक तो हमारा समर्थन करेंगें। हमारी सफलता तो जनमत के संगठन पर निर्भर है और इसके लिए सभी श्रेणियों में एकता अनिवार्य है, परन्तु दुर्भाग्य से कांग्रेस वालों में भारी फूट पड़ रही है।

मेरी प्रार्थना है कि भारत लौटने से पूर्व आप एक बार फिर इंग्लैण्ड अवश्य आवें। हमारी राष्ट्रीय समस्या के कुछ पहलू प्रधानमंत्री, भारतमंत्री तथा मजदूर दल को समझाना आवश्यक है, विशेषत: सैनिक व्यय का घटाना अनिवार्य है। असेम्बली के मेरे सहयोगी के० रामा अय्यंगर द्वारा लिखित कुछ लेख आपको भेज रहा हूँ। आप वर्तमान सरकार के प्रमुख व्यक्तियों तथा मजदूर दल का ध्यान विशेषरूप से हमारे व्यय के घटाने के बारे में आकर्षित करें। इस समय २७,००० अंग्रेज सैनिक यहां हैं। उन्हें रखना किसी प्रकार भी समुचित नहीं। मैंने फिनान्स बिल का विरोध करते हुए इसी बात का अनुरोध किया था। इंडियन टेरिटोरियल फोर्स को संगठित करने का महत्व भी दर्शाना चाहिए। इससे सैनिक व्यय अवश्य घट जायगा। हमें वह अधिकार भले ही न दें, परन्तु मजदूर सरकार हमारे फौजी खर्च को समझने और कम करने का यत्न क्यों नहीं करती ? यदि हमारा सैनिक व्यय घट जाय तो हम जनता के करों का भार हलका कर सकेंगे और प्रान्तीय सरकारें राष्ट्रनिर्माण के कार्यों पर अधिक धन खर्च कर सकेंगी। कुछ इंगलिश सार्वजनिक व्यक्तियों से अन्य कुछ मामलों पर भी बातचीत करें।

मेरा विचार है कि आपको हमारे काफी समाचार पत्र पढ़ने को मिलते हैं। और अहमदाबाद की घटनाओं का विस्तृत विवरण आपके पास पहुंच गया होगा। यह कहना कठिन है कि बेलगांव वाले वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस क्या करेगी। अगले मास स्वराजिस्टों की सभा कलकत्ता में हो रही है और जनमत को अपनी ओर करने के लिए महात्मा गांधी अखिल भारतीय भ्रमण शुरू करने वाले हैं। यदि वह असहयोग आन्दोलन में काफी जीवन और उत्साह डाल सके तो वह स्वराजिस्टों के वर्तमान कौंसिल प्रोग्राम की अपेक्षा सरकार को कहीं अधिक प्रभावित करेगा, परन्तु श्री गांधी को सफलता प्राप्त भी होगी वा नहीं, यह सन्दिग्ध सी बात है। उसके लिए तो अब अन्य चारा ही क्या है ? एक वर्ष हुआ, मैंने स्वराजिस्टों को बतला दिया था

कि श्री गांधी अपने मन की कार्यवाही करेंगे। मेरा ऐसा विचार नहीं था कि वह कौंसिल प्रवेश के इतने घोर विरोधी हैं।

जो कुछ श्री गान्धी जी ने स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज के विषय में लिखा, उससे मुझे दुख हुआ, जैसा कि आपको भी दुख हुआ होगा। मैं आपको परामर्श दूंगा कि आप लौटने तक इसके बारे में अथवा किसी भी सार्वजनिक प्रश्न के बारे में कुछ भी न लिखें। उस समय तक वातावरण शान्त हो जायगा।

जब तक आप स्विटज़रलैण्ड में हैं, कृपया पूर्ण विश्राम कीजिए। अछूतोद्धार का कार्य चल रहा है। रामप्रसाद अच्छी तरह कार्य को संगठित तथा संचालित कर रहा है, परन्तु अभी बहुत कुछ करना बाकी है। मैं यथासम्भव इस समस्या को शीघ्रातिशीघ्र हल करने की आवश्यकता और महत्व को पूर्णतः अनुभव करता हूं।"

भारत की राजनैतिक स्थिति के बारे में मोतीलाल नहरू उनको निरन्तर सूचित करते रहते थे। स्वराज्य दल में लालाजी ही उनके विशेष विश्वासपात्र थे। पंडित मालवीय जी उनको उन बातों का ब्यौरा भेजते रहते थे जिनका ज्ञान उन्हें भारतीय पत्रों द्वारा होना सम्भव न था। अर्थात् महात्मा गांधी तथा उनकी बातचीत, वर्किंग कमेटी तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की कार्यवाही इत्यादि।

इस बार इंग्लैण्ड के दौरे में आप प्रथम बार सोशलिस्ट दल में प्रविष्ट हुए। चिरकाल से उन पर (सोशलिज्म) साम्यवाद तथा न्यूयार्क रेण्ड स्कूल के साम्यवादी सम्पर्क का प्रभाव था और अमेरिका रहते हुए भी उनके भारतीय सामाजिक प्रोग्राम का झुकाव साम्यवाद की ओर ही था, परन्तु वह समझते थे कि भारतवर्ष में साम्यवाद आन्दोलन चलाने का उपयुक्त समय अभी नहीं आया। १९२० में भारत लौटते ही उन्होंने ट्रेड यूनियन आन्दोलन को देशव्यापी आधार पर खड़ा किया और उसके प्रथम अधिवेशन के प्रधान बने। साम्यवादी दल में सम्मिलित होना अगला कदम था। भारतवर्ष में रूस द्वारा संचालित एक कम्यूनिस्ट दल तो था, परन्तु अभी तक किसी प्रकार का साम्यवादी आन्दोलन यहां नहीं था। आप स्वतंत्र मजदूर दल के सदस्य बन गए। आपने धारा सभा में भी एक साम्यवादी अथवा मजदूर दल पैदा करने की कोशिश की। परन्तु आप सफल न हो सके। इस कार्य में वह केवल एम० एन० जोशी तथा तारिणी सिंह में ही दिलचस्पी पैदा कर सके। जब आप इस्तम्बोल गए हुए थे, तो जार्ज लेन्सबरी ने ए० फेनर ब्राकवे को पत्र लिखा—

"आपने मि० लाजपतराय को सैण्ट्रल लण्डन ब्रांच का सदस्य मनोनीत करके उपयुक्त कार्य किया है, यद्यपि वह नेशनल ब्रांच का सदस्य बनना अधिक पसन्द करते, क्योंकि वह प्रायः लण्डन में नहीं रहते।

५ पौण्ड वार्षिक चन्दा देकर वह नेशनल ब्रांच के सदस्य बन सकते हैं। यदि आप उन्हें सैण्ट्रल लण्डन ब्रांच से सम्बद्ध करना चाहते हैं तो उसके मन्त्री जे० एलन स्किन्नर, ९२, ओकले स्ट्रीट हैं।"

अब इंगलैण्ड में करने को कुछ अन्य काम नहीं था। लालाजी पुराने मित्रों से भेंट कर चुके थे, शायद कुछ नये मित्र भी बना चुके, मजदूर दल के राजनीतिज्ञों की मनोवृत्ति का अध्ययन आपने कर लिया था, उनके मुख से उनकी कठिनाइयाँ सुन ली थीं और उनकी मौखिक सहानुभूति तथा सद्भावों का वास्तविक और व्यावहारिक मूल्य भी आँक चुके थे। अतः आपने छः सप्ताह के लिये स्विटजरलैण्ड में निवास करने तथा फिर योरुप में भ्रमण का निश्चय कर लिया था। आपने अपना पासपोर्ट जर्मनी, डेनमार्क, आस्ट्रिया, हंगरी तथा टर्की तक का बनवा लिया था। इंगलैण्ड से जाने के पूर्व वहाँ के भारतीय विद्यार्थियों तथा डाक्टरों ने आपको एक थैली भेंट की जो आपने गुलाबदेवी अस्पताल के फण्ड में जमा करा दी। आपको अपने स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता थी, अतः आप कुछ काल स्विटजरलैण्ड में ही रहना चाहते थे।

पण्डित मोतीलाल के अधिकांश पत्र उन्हें स्विटजरलैण्ड में ही मिलते रहे। महात्मा गांधी का निम्नलिखित पत्र भी आपको वहीं मिला :

४-७-१९२४

प्रिय लालाजी,

मुझे हर्ष है कि आप आखिरकार वहाँ पहुँच गए हैं, जहाँ आपको होना चाहिए। आशा है कि पूर्ण स्वास्थ्य-प्राप्ति तक आप वहाँ से नहीं हिलेंगे।

आशा है, यहाँ की घटनाओं से आप क्षुब्ध न होंगे। एक ही मञ्च पर स्वराजियों तथा मेरा सहयोग सम्भव नहीं है। हाँ, सहयोग सम्भव हो सकता है—यदि दोनों का पृथक् पृथक् संगठन हो। कांग्रेस के एक समय में केवल एक ही संस्था को अपनाना चाहिये एक ही समय में सरकार तथा जनता दोनों की ओर कैसे ध्यान दिया जा सकता है?

भवदीय शुभाकांक्षी
गांधी

आप कुस्तुनतुनिया जाने को विशेष उत्सुक थे। आप चिरकाल से ही तरुण तुर्क आन्दोलन का अध्ययन कर रहे थे और उसके नेताओं के प्रशंसक थे। इस समय तुर्की के शासन की बागडोर उनके हाथों में थी, यद्यपि अब वह टर्की, सुलतान हमीद द्वारा शासित एक विशाल साम्राज्य नहीं था, वरन् तुर्कों का छोटा-सा देश। योरुपीय

शक्तियों ने उनके सामने कठिनाइयों के पहाड़ खड़े कर दिये थे। १९२३ में लासेन की सन्धि द्वारा, अधिकांश कठिनाइयाँ हल हो गयी थीं। उन्होंने सोचा चलकर देखना चाहिए कि तरुण तुर्क किस प्रकार अपना घर सम्हाल रहे हैं, जबकि उन्होंने अपने प्रबल शस्त्रों द्वारा अधिकार छीने हैं। कुस्तुनतुनिया में आपका स्वागत किया गया और आपको गर्व था कि वहाँ आपके काफी प्रतिभाशाली मित्र हैं। कुछ तुर्क नेताओं ने चिरकाल से आपका नाम सुन रखा था। हिजरत के दिनों में भारत छोड़ने वाले एक भारतवासी ने अपने अनुभव बयान करते हुए लिखा था कि जब मैंने मध्यएशिया में अनवर पाशा से भेंट की तो प्रथम प्रश्न जो उस विख्यात सैनिक ने मुझसे पूछे थे। वह लाजपतराय तथा उसके कार्यक्रम के बारे में थे, और उसने भारतीय नेता के विषय में अत्यन्त प्रतिष्ठासूचक शब्द प्रयोग किए थे।

लौटते हुए, आप मिस्र में ठहरे। उस समय जर्मनी में डाक्टर की उपाधि की परीक्षा की तैयारी में लगा हुआ उनका पुत्र भी उनके साथ था। मिस्र में मुख्यतः आप सैर तथा दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए उतरे थे। सिकन्दरिया में रहने वाले सिन्धी व्यापारियों ने आपका बड़े तपाक से स्वागत किया। मिस्र के एक प्रमुख दैनिक पत्र "अल-अहराम" के सम्पादक ने एक दुभाषिए के द्वारा उनसे लम्बा इण्टर व्यू (भेंट) किया। सम्पादक ने आपसे पूछा कि स्वराजी सदस्यों ने असेम्बली का बजट क्यों अस्वीकार कर दिया है और इसका क्या लाभ होगा जब गवर्नर जनरल को सर्टिफिकेशन के अधिकार प्राप्त हैं। लालाजी ने उत्तर दिया कि यह जनता को सरकारी कर न देने को तैयार करने की एक रीति है। यदि यह उद्देश्य सामने न हो, तो रुकावट डालना सर्वथा व्यर्थ है। भारतीय नेताओं के उद्देश्य तथा उसकी प्राप्ति के साधनों पर महात्मा गांधी के साथ उनके कैसे सम्बन्ध हैं, आपकी यह यात्रा राजनीतिक लक्ष्य को लेकर हो रही है ? हिन्दू तथा मुसलमान आपस में लड़ते क्यों रहते हैं ? खिलाफत तथा मिस्रकी समस्या पर भारतीय जनमत क्या है ? इत्यादि इत्यादि कई प्रश्न पूछे गए। अन्तिम प्रश्न का उत्तर लालाजी ने दिया :

भारतवासियों को अन्य पूर्वीय जातियों के साथ पूर्ण सहानुभूति है, और वह उनके दुख से दुखी हैं। उनका विश्वास है कि एकता द्वारा ही उनकी मुक्ति हो सकती है भारतवर्ष के लिए मिस्र का प्रश्न विशेषतः महत्त्वपूर्ण है। भारत को मिश्र की जनता तथा उनके महान् नेता पर गर्व है। भारत की हार्दिक इच्छा है कि मिश्र अपनी महत्त्वा-कांक्षाओं में सफल हो और उसकी स्वाधीनता का झण्डा फहराता रहे और वह सभ्यता तथा अभ्युदय के पथ पर तीव्र गति से चलता रहे।"

लालाजी का पुत्र अमृतराय तथा श्री किशनदास कोहली ही उनकी सब प्रकार

से सेवा करते रहे और उनके पत्र व्यवहार तथा दर्शकों आदि की ओर उचित ध्यान देते रहे। लालाजी बम्बई पहुँच गये।

जब मिश्री पत्रकार ने हिन्दू-मुस्लिम झगड़े का कारण पूछा तो लालाजी ने उत्तर दिया :—

"युद्ध की समाप्ति पर पहले-पहल तो इस प्रकार की कोई घटना नहीं हुई, परन्तु दोनों पक्षों के अधिकांश नेताओं के कैद हो जाने से विदेशी शक्ति के षडयन्त्रों को फूट डालने तथा गलतफहमियाँ फैलाने का अवसर मिल गया। समझदार लोगों ने इस स्थिति के कारण खोजने तथा उसका गम्भीर अध्ययन शुरू कर दिया है और उसकी पुनरावृत्ति को रोकने में लगे हुए हैं। मेरा विश्वास है कि उन्हें सफलता प्राप्त होगी। झगड़ों का समय समाप्त हो चुका है और भविष्य में उन दुखदायी घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी।"

परिस्थिति इतनी आशाजनक नहीं थी और उनका आशावाद, उस अपमान जनक तथा भद्दे प्रश्न के उत्तर में उनका wishful thinking (निराधार मनोरथ) था। वह इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि उनके भारत लौटने के एक मास से भी कम अवधि में सितम्बर १९२४ में कोहाट में इतने भारी पैमाने पर ऐसी जघन्य और भयानक घटनाएँ हो जायँगी।

उस वर्ष देहली, गुलर्गबा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद, जबलपुर आदि में खूब जोरशोर से दंगे हुए और फिर कोहाट का कांड हो गया। कांग्रेस इतिहास लिखता है "वास्तव में कोहाट ने भारत की रीढ़ की हड्डी तोड़ डाली।"

९ और १० सितम्बर को एक स्पेशल ट्रेन द्वारा ४००० हिन्दुओं को कोहाट छोड़ना पड़ा। इनमें से २६०० को अगले दो मास के लिए रावलपिण्डी रहना पड़ा।

जब महात्मा गांधी को समाचार मिला, तब उन्होंने २१ दिन के उपवास की घोषणा कर दी। उपवास देहली में मौलाना मुहम्मदअली के निवास स्थान पर आरम्भ हुआ, परन्तु कुछ दिन बाद महात्माजी को एक अन्य मित्र के यहाँ ले गए। डाक्टरों को निर्बल बूढ़े व्यक्ति के निराहार रहने से भारी चिन्ता हुई। राजनीतिक नेता दौड़े-दौड़े देहली पहुँचे। एकता सम्मेलन की आयोजना की गयी और २६ सितम्बर से २ अक्तूबर तक दंगों को जन्म देने वाली विभिन्न समस्याओं पर विवाद होता रहा इसका कोई फल नहीं निकला। हाँ, महात्मा गांधी की अध्यक्षता में हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों, सिक्खों तथा ईसाइयों के प्रतिनिधियों की एक राष्ट्रीय पञ्चायत स्थापित की गयी, जिसमें लाजपतराय, अजमल खाँ, जी० के० नरीमान, सुन्दरसिंह लायलपुरी तथा एस० के० दत्त के नाम सम्मिलित थे।

अध्याय ग्यारह

लाहौर में कांग्रेसी नेताओं का जमघट

अपने निजी अंग्रेजी के एक पत्र की आवश्यकता अनुभव करते हुए (जिसे लालाजी शीघ्र ही जारी करना चाहते थे) लालाजी ने "बाम्बे क्रानिकल" के एस० ए० ब्रेलवी के साथ प्रबन्ध किया कि कुछ काल के लिए मुझे वहां ट्रेनिंग दी जाय। इसका व्यावहारिक ज्ञान केवल पत्र किसी के कार्यालय में ही प्राप्त हो सकता है। उन्होंने मुझे कुछ अन्य पत्रों के नाम भी परिचय पत्र दिए—विशेषत: इण्डियन सोशलरिफार्मर के नटराजन् के नाम तथा सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी के प्रधान जी० के० देवधर के नाम दिए ताकि मुझे सम्पादनकला का कुछ ज्ञान भी हो जाय और बम्बई में मैं ट्रेड यूनियन कार्य तथा सामाजिक सुधार का भी कुछ अनुभव प्राप्त कर सकू।

वर्ष की समाप्ति से पूर्व उन्होंने ट्रिब्यून, (लाहौर) बाम्बे क्रानिकल और स्वराज्य (मद्रास) में हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर एक लेखमाला प्रकाशित करायी जिसमें कुछ व्यावहारिक रचनात्मक सुझाव पेश किए गए थे और जिनका आधार केवल उच्च भावनाएँ, पवित्र सिद्धान्त अथवा वक्ताओं के थोथे प्रवचन ही न थे, प्रत्युत् वह भारतीय स्थिति पर एक राजनैतिक विद्यार्थी के गम्भीर व्यावहारिक ज्ञान का निचोड़ था।

राष्ट्रीय पंचायत को कोई विशेष सफलता नहीं मिल सकी। इन्हीं दिनों पंजाब में कांग्रेसी नेताओं का सम्मेलन हुआ और अधिक वाद-विवाद का अवसर निकल आया। वाद-विवाद तो द्रौपदी के चीर की तरह लम्बा होता गया, परन्तु परिणाम शून्य से बढ़ कर कुछ न निकला। जब कुछ व्यक्ति उच्च सिद्धान्तों की दुहाई देकर समस्या को हल करने के इच्छुक थे, लालाजी अधीर हो गए। शौकतअली बार बार लालाजी से कहते थे कि हिन्दू और मुसलमानों की परस्पर "होली" का प्रबन्ध किया जाय। लालाजी तो ठण्डे दिल से गम्भीरतापूर्वक कोई वास्तविक हल ढूंढ़ निकालना चाहते थे, अत: उनको ऐसे नीम हकीमों और अधकचरे चिकित्सकों के उपचारों में रत्ती भर भी विश्वास नहीं था। जब एक अली बन्धु ने व्यंगपूर्वक कहा कि फूट की गंगा की बाढ़ पंजाब के मैदानों में ही आती है, तब लालाजी बोले कि इस गंगा का उद्गमस्थान (गंगोत्तरी) तो रामपुर के समीप ही है। बातचीत का कोई फल न हुआ और शायद

कुछ नेताओं की यह सम्मति बन गयी कि लालाजी ने किसी प्रकार की सहायता करने की कोशिश तक नहीं की। लालाजी को तो सारे वातावरण में समुचित गम्भीरता का कोई चिन्ह वा झलक दिखलायी नहीं पड़ती थी। वह अपने लेखों द्वारा इस विषय में जनमत को शिक्षित करना चाहते थे। हजारों लोगों ने उन लेखों को पढ़कर उन पर विचार करना शुरू कर दिया। "स्वराज्य" ने उन लेखों को एक पुस्तिकाकार में छाप दिया जिसकी वर्षों तक माँग रही।

उस लेखमाला की समाप्ति पर बेलग्राम में कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ हो गया।

बेलग्राम जाते हुए, लालाजी, मार्ग में बम्बई उतरे। वहाँ कई मित्रों से भेंट हुई और आपने कुछ धन संग्रह भी किया। विनायक दामोदर सावरकर अण्डमान से छूट कर, रत्नागिरि में नजरबन्द कर दिए गए थे। वह सरकार से विशेष अनुमति लेकर एक दो दिन के लिए बम्बई आए हुए थे। लालाजी ने उनसे भेंट की और काफी देर तक उनसे बातचीत करते रहे। ठाकुर द्वार हाऊस से (जहाँ उनकी भेंट हुई थी) लौटते हुए, लालाजी सावरकर के साथ की गयी बातों पर गहन विचार कर रहे थे। वह सोच रहे थे, "कौन-सी ऐसी बात है जो हमने नहीं की। वैधानिक आन्दोलन, जनता में प्रचार, क्रान्तिकारी कार्य, नैपाल को राजदूत भेजने तथा असहयोग। कोई उपाय भी सफल नहीं हुआ।" आप उस समय अत्यन्त उदास और चिन्तातुर हो गए और वह किसी से बोलना तक नहीं चाहते थे।

बेलग्राम कांग्रेस के अध्यक्ष स्वयं महात्मा गांधी थे। कोहाट की घटनाओं के पश्चात् यद्यपि महात्मा जी तथा लालाजी के हृदय एक दूसरे के समीप हो रहे थे, परन्तु व्यावहारिक रूप से ऐसा प्रतीत होता था कि उनके मार्ग नितान्त पृथक् दिशाओं में जा रहे हैं। उनका अभी तक यही विचार था कि महात्माजी के ढंग से राष्ट्रीय एकता नहीं हो सकती और महात्माजी का विचार था कि एकता करने का रास्ता केवल वही है जो मैं बतला रहा हूँ। इसका पूरी तरह परीक्षण नहीं हुआ और कोहाट जैसी घटनाओं के होते हुए मैं यह परीक्षण जारी रखूंगा। यद्यपि कोहाट की दुर्घटना के बारे में उनका शौकतअली से भारी मतभेद था, परन्तु फिर भी चिरकाल तक अली बन्धुओं का उन पर खासा प्रभाव रहा। अली बन्धुओं को यह बात रत्ती भर भी पसन्द नहीं थी कि लालाजी अछूतों में कोई दिलचस्पी लें। वह नहीं बर्दाश्त कर सकते थे कि जो कुछ वह स्वयं मुसलमानों के लिए करते रहते थे, लाजपतराय उसका एक शतांश भी हिन्दुओं के लिए करें। अन्य राजनीतिक प्रश्नों पर भी लालाजी का दृष्टिकोण कट्टर असहयोगियों की अपेक्षा विद्रोही स्वराजियों से कहीं अधिक मिलता-जुलता था। कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व ही महात्मा गांधी की स्वराजियों से

सन्धि हो गयी थी। कांग्रेस इतिहास के अनुसार वर्ष की महत्त्वपूर्ण घटना पण्डित मोतीलाल नेहरू के सामने महात्मा गांधी का हथियार डाल देना थी। फिर भी दोनों दल पृथक्-पृथक् रहे। सबसे बुरी बात यह थी कि विद्रोही दल के अन्य नेताओं की अपेक्षा लालाजी कहीं अधिक साहस से बोल तथा लिख रहे थे। कांग्रेस का इतिहासकार लिखता है कि समझौते के मूल्य स्वरूप महात्मा गांधी कांग्रेस सदस्य होने की शर्त चरखा कातना रख रहे थे। लालाजी ने कांग्रेस में इसका खुला विरोध किया। मूल्य चुकाने वालों के साथ तो महात्माजी की सन्धि अथवा समझौता हो गया, परन्तु लालाजी के साथ नहीं। अपने स्वतन्त्र विचारों के कारण लालाजी बागी करार दिए गए। बेलग्राम कांग्रेस में मुहम्मदअली ने अपने आपको चर्खे का सौदाई कहते हुए लालाजी से प्रश्न किया कि "आपको किस प्रकार का सौदा पसन्द है।" परन्तु लालाजी का विश्वास था कि अधिकांश लोगों के लिए सूत कातने की शर्त मान लेना एक प्रकार का ढोंग है न कि चर्खे से हार्दिक प्रेम। वह ढोंगी और छद्मवेषी लोगों के सामने किसी प्रकार भी झुकने को तैयार न थे। चाहे उनके विरोधी फारसी कविता के उद्धरणों द्वारा कितने ही व्यंगबाण क्यों न बरसाते रहें।

कांग्रेस के पण्डाल में वह नितान्त अकेले ही थे। जब प्रतिनिधियों के कैम्प में उन्होंने मुख्य कांग्रेसियों से बातचीत की, तो ज्ञात हुआ कि अन्दर से तो सभी लालाजी के साथ थे, परन्तु उन्होंने मौन धारण करना ही उचित समझा। उन लोगों ने सूत कातने की शर्त इसलिए स्वीकार नहीं करली थी कि उनके विचार में वह उचित अथवा व्यावहारिक शर्त थी, और न उनपर चर्खे का पागलपन सवार था, बल्कि इसलिए कि इससे महात्मा गांधी प्रसन्न हो जायँगे। उनके हिन्दू आन्दोलन के साथ भी अधिकांश लोगों की सहानुभूति थी, परन्तु वह खुले रूप में उनका साथ देने को तैयार न थे। वह उनकी आर्थिक सहायता करने अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मदद करना चाहते थे जिससे कि उनके कांग्रेसी होने पर किसी प्रकार का लांछन न आए। "मैं आपके साथ सहमत हूँ। परन्तु एक वर्ष तक आप मुझे चुपचाप रहने दें, फिर मैं आपके साथ हो जाऊँगा।" यह एस० श्रीनिवास आयंगर जैसे कांग्रेसी के शब्द थे। अन्य पक्के कांग्रेसियों ने भी इसी प्रकार के उत्तर दिए।

हिन्दू संगठन, धारा सभाओं तथा कांग्रेस सदस्यता की नयी शर्त के बारे में इस प्रकार के विद्रोहात्मक विचार रखने के कारण लालाजी को कांग्रेस की कार्यकारिणी की अन्तरंग सभा में किस प्रकार स्थान मिल सकता था! कांग्रेस के गतवर्ष के प्रधान मुहम्मदअली के तो वह कोपभाजन बन ही चुके थे और यद्यपि वह नियमानुसार कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य थे, परन्तु उन्होंने अपने आप को सदस्य समझना

छोड़ दिया। आगामी वर्ष के प्रधान के साथ उनके निजी सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे, क्योंकि राजनीतिक जीवन में मतभेद होते हुए भी महात्मा गांधी तथा उनके मन में एक दूसरे के प्रति प्रेम तथा प्रतिष्ठा बराबर वैसे ही बने रहे। हाँ, यह स्पष्ट था कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी में अब वह दोनों मिलकर काम नहीं कर सकते थे। वह जानते थे कि यद्यपि उनका उद्देश्य एक ही है, परन्तु कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न है।

अपने कैम्प में उनको उदास तथा असन्तुष्ट देखकर उनके कुछ मित्र अनुभव कर रहे थे कि इस प्रकार लालाजी अपने प्रति तथा अपने अनुयाइयों के प्रति न्याय नहीं कर रहे हैं। एक नवयुवक मित्र ने तो उनको बेलग्राम से लौटते हुए, गाड़ी में कहा कि आपकी बीमारी का कारण भी आपका यही सड़ियलपन है, तो आपने उत्तर दिया "मेरे प्रिय मित्र, स्वतन्त्रता का वास्तविक और सच्चा मार्ग आजकल के राजनीतिक कार्यक्रम में नहीं है। यदि मैं अपने विश्वास के अनुसार कार्य करने लगूं तो मुझे अवध के किसी ताल्लुके में जाकर किसानों को संगठित करना चाहिए। वास्तविक कार्य तो नहीं होगा, परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरी आयु और मेरे स्वास्थ्य को सामने रखते हुए, इस प्रकार के साहस पूर्ण पग उठाना मेरे लिए कठिन है।"

बेलग्राम से लौटने से पूर्व, वह पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ कुछ दिनों के लिए दक्षिण को चले गये। कई वर्षों के पश्चात आपने उस महापुरुष के दर्शन किए, जो १९०७ के लगभग राजनीतिक आकाश में क्षणिक प्रकाश दिखलाकर पाण्डेचेरी जैसे दूरस्थ स्थान में संन्यासी बनकर बैठ गए थे। अभी तक उन्होंने अपने शिष्यों तथा भक्तों को वर्ष में केवल दो बार कुछ क्षणों के लिए दर्शन देने के कठोर नियम का पालन आरम्भ नहीं किया था, परन्तु यह बतलाया जाता था कि श्री अरविन्द जी के दर्शन उनके भक्तों तक के लिए अप्राप्य थे। लालाजी के स्वागत में श्री अरविन्द घोष को किसी प्रकार का संकोच न था। उनकी लम्बी बातचीत से प्रतीत होता था कि वह देश तथा विदेश की राजनीतिक घटनाओं से पूरी तरह परिचित हैं, यद्यपि इस बात का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होता था कि वह भारत के उस फ्रेंच बन्दरगाह के एकान्तवास को त्याग पुनः राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे।

अब लालाजी लाहौर की अपेक्षा देहली ही अधिक रहते थे। अब १९२१ की तरह पञ्जाब को किसी देशव्यापी आन्दोलन में देश के साथ साथ चलाने का किसी प्रकार का उत्तरदायित्व उनपर नहीं था। कांग्रेस के साथ उनके सम्बन्ध निर्बल और ढीले पड़ते जा रहे थे। आप राष्ट्र नेताओं द्वारा निर्मित नीति तथा कार्यक्रम से सहमत नहीं थे और उनके अपने प्रान्त में उनके मुख्य सहायकों और साथियों में फूट तथा ईर्षा द्वेष का बोलबाला था। उनके लिए वह झगड़े निपटाना कठिन था। देहली से हिन्दू संगठन तथा अछूतोद्धार कार्य का निर्देशन कहीं अधिक सुगमता से हो सकता था।

इसके अतिरिक्त, वहाँ आप स्वराज्य दल की मन्त्रणाओं में भी दिलचस्पी ले सकते थे यद्यपि आप न तो धारा सभा के और न ही दल के सदस्य थे। इन कारणों से आपने नयी देहली में घर बना लिया और शीतकाल वहाँ बिताया।

इन्हीं दिनों मालवीय जी अकाली मित्रों के साथ "हिन्दुस्तान टाइम्स" देहली के बारे में बातचीत कर रहे थे। यह पत्र अकालियों ने चलाया था और अब मालवीय जी उसे लेना चाहते थे। उन दिनों देहली से कोई अच्छा पत्र नहीं निकलता था। मालवीय जी तथा लालाजी दोनों ने देहली मे एक उत्तम समाचार पत्र के महत्त्व और गुंजाइश समझ ली। पत्र ले लिया गया। जहाँ मालवीय जी स्वयं पत्र की आर्थिक जिम्मेदारी अपने सिर पर लेने को उद्यत थे, वहाँ उनकी इच्छा थी कि लालाजी उसका सम्पादन कार्य संभालें। लालाजी न माने, क्योंकि वह पत्र के केवल नाम मात्र के सम्पादक नहीं बनना चाहते थे जैसा कि चितरंजनदास "फारवर्ड" के सम्पादक बने हुए थे। जिन दिनों आप "वन्देमातरम्" के सम्पादक थे, तो आप नियमपूर्वक पत्र के लिए लिखा करते और उसकी नीति का संचालन करते थे। "हिन्दुस्तान टाइम्स" के लिए भी वैसे ही क्यों नहीं करते ? मालवीयजी ने पूछा और लालाजी ने उत्तर दिया कि "मैं अपने आपको देहली अथवा किसी पत्र के कार्यालय के साथ बाँध नहीं सकता। मैं तो "वन्देमातरम्" के लिए भी अपने आपको नहीं बाँध सकता। सौभाग्य से रामप्रसाद जैसा विश्वासपात्र व्यक्ति मेरा सहायक सम्पादक है।" "तो यहाँ भी रामप्रसाद को अपना सहायक बना लो", पण्डितजी बोले। परन्तु रामप्रसाद शायद एक अंग्रेजी दैनिक पत्र का अच्छा सम्पादक सिद्ध न हो और उसे अछूतोद्धार कमेटी के मन्त्री का कार्य भी तो करना पड़ता है "तो आप किसी अन्य विश्वस्त सज्जन का नाम बतलावें।" मालवीयजी ने अनुरोध किया। लालाजी ने हैदराबाद (सिन्ध) के जयरामदास दौलतराम का नाम सुझाया और उसे प्रथम सम्पादक बना दिया गया। (परन्तु वह भी देहली के पत्र के सम्पादक पद की खातिर सिन्ध के सार्वजनिक जीवन से चिरकाल तक पृथक् रहने के इच्छुक न थे। लालाजी स्वयं पत्र में दिलचस्पी लेने लगे, यद्यपि उन्होंने सम्पादक बनना स्वीकार नहीं किया। जब कभी उनका जी चाहता, वह पत्र के लिए लेख लिखते और डायरेक्टर के रूप में मालवीयजी को सहयोग देते। श्री० किशनदास कोहली उसके मैनेजर बनाए गए।

बाम्बे क्रानिकल के कार्यालय में कुछ दिन ट्रेनिंग प्राप्त करने के बाद जब मैं लौट कर आया, तब नए डाइरेक्टरों ने अभी अभी हिन्दुस्तानटाइम्स का चार्ज सँभाला था। अभी तक जयरामदास दौलतराम भी देहली नहीं आये थे। सुझाव रखा गया कि मैं कुछ काल तक हिन्दुस्तान टाइम्स में भी कार्य सीखूं। मुझे इस कार्य में कोई

रुचि नहीं थी, अतः मैं लाहौर वापस आ गया। कुछ दिन बाद निश्चय हुआ कि लोकसेवक मण्डल एक अपना अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र चलावे ।

कुछ दिनों में सारी योजना पूर्ण हो गयी और जुलाई १९२५ में "पीपुल" का प्रथम अंक निकल आया। लालाजी स्वयं उसके सम्पादक थे। लालाजी सोलन चले गए थे। उनको प्रथमांक वहीं मिला।

सेण्ट स्टीफन कालिज देहली के प्रिन्सिपल श्री० एस० के० रुद्रा बीमार होकर सोलन आए हुए थे और सी० एफ० एण्ड्रयूज उनकी शुश्रूषा के लिए उनके साथ थे। लालाजी और श्री० एण्ड्रयूज की १९०७ से मित्रता चली आती थी। सोलन में इकट्ठे रहने से वह मित्रता अति दृढ़ हो गयी। लालाजी के परलोक गमन पर एण्ड्रयूज ने "पीपुल" तथा मानचेस्टर गार्डियन में उस मैत्री की प्रगति की कथा लिखी ।

"१९०६ के आरम्भ में मुझे बीमार होकर एक पहाड़ पर जाना पड़ा। उन्हीं दिनों "सिविल ऐण्ड मिलिटरी गजट" में भारत के शिक्षित वर्ग के विरुद्ध कुछ घृणोत्पादक और अपमानजनक पत्र प्रकाशित हुए । एक पत्र में तो यहाँ तक लिखा गया था कि उनके दमनार्थ "रूसी ढंगों" का प्रयोग करना चाहिए और शिक्षित भारतवासियों के होश ठिकाने लाने के लिए उनको कोड़े लगाए जायँ। मैं मार्च १९०४ में ही भारतवर्ष में आया था और शिक्षित वर्ग के विषय में अखबारों में इस प्रकार की बात पढ़ने का आदी नहीं था। अतः भारतीय लोगों का पक्ष लेकर लड़ना मेरे लिए स्वाभाविक था। मैंने एक-एक करके उन पत्रों का उत्तर देना शुरू कर दिया। उन पत्रों के अज्ञात लेखकों का मुझ पर भी कीचड़ उछालना स्वाभाविक था।

इन्हीं पत्रों के सम्बन्ध में मेरी लाहौर में लाला लाजपतराय से भेंट हुई। उन्हें भी इनमें भारी दिलचस्पी थी।

मई १९०७ में, सरकार तथा अंग्रेजों में बुरी तरह घाबराहट तथा क्षोभ फैला हुआ था। लालाजी पर मुकदमा चलाए बिना ही, उनको सहसा निर्वासित कर दिया गया। मेरे समस्त उदार भाव उनके पक्ष में जाग उठे। मैंने कई वक्तव्यों द्वारा जनता के प्रतिष्ठा पात्र नेता, लाला लाजपतराय के प्रति सरकार के इस अन्याय के विरुद्ध प्रतिवाद किया।

जब लालाजी निर्वासन से लौटे, तब मैंने उनसे भेंट की और उसी दिन से हममें मैत्री के सम्बन्ध स्थापित हो गए। उन्होंने "सिविल ऐण्ड मिलिटरी गजट" में मेरे पत्र देखे थे और मेरी बाबत भी सुना था, इसलिए उन्होंने मुझे हँसते-हँसते गले लगाया जहाँ तक मुझे याद है, लालाजी उन दिनों दाढ़ी रखते थे।"

"मुझे खेद है कि मैंने उस मैत्री का यथोचित रूप से पालन नहीं किया। जब कभी मैं लाहौर जाता था, लालाजी सदैव हार्दिक प्रेम तथा उदारता से मेरा स्वागत करते थे।

फिर कई वर्षों के लिए लाला लाजपतराय हिन्दुस्तान से बाहर चले गए। आपने योरुप का भ्रमण किया, जापान गए और फिर अमेरिका जाकर बस गए जहाँ आपको पूर्व तथा पश्चिम के सम्बन्धों का अध्ययन करने का अच्छा अवसर मिला। उन दिनों जो आप कुछ लिखते थे, मैं उसे शौक तथा दिलचस्पी से पढ़ता था, और जो कुछ मैं जानना चाहता था, वह मुझे बतलाते थे। उनके साथ पत्र व्यवहार करना सम्भव नहीं था, परन्तु मैं उनके बारे में मित्रों से बहुत कुछ सुन लेता था। अन्तिम वर्षों में हमारा परस्पर पत्र व्यवहार भी हुआ, परन्तु मेरे पास उनका कोई पत्र मौजूद नहीं है।... जिन दिनों आप भारत को लौटे, जहाँ तक मुझे याद है, मैं उन दिनों दक्षिण अफ्रीका गया हुआ था। मैंने वहाँ से लौट कर उनके दर्शन किए और हमारी वर्षों की मित्रता ताजी हो गयी। ज्यों-ज्यों हम एक दूसरे के निकट होते गए, हमारा प्रेम भी बढ़ता गया उन जैसे प्रसन्नचित्त तथा हँसमुख साथी बहुत ही कम मिलेंगे। हम घण्टों अमेरिका, जापान तथा इंगलैण्ड में उनके अनुभवों के बारे में बातें करते। सबसे हर्षोत्पादक बात जो मैं कदापि नहीं भुला सकता, वह लालाजी की निशंकता थी। वह मुझसे कुछ भी नहीं छिपाते थे। भारतवर्ष में यह गुण मैंने सर्वत्र पाया है, परन्तु पूर्ण निशंकता तथा निस्संकोच में तो लालाजी अद्वितीय थे।

इन्हीं दिनों हमारी घनिष्ठता बढ़ती ही गयी और हमारा पत्र व्यवहार भी बढ़ता गया। इन्हीं दिनों मुझे अपने मित्र प्रिन्सिपल एस० के० रुद्रा की भीषण बीमारी में उनकी सेवा शुश्रूषा के लिए सोलन जाना पड़ा और लालाजी के पड़ोस में रहते थे। लालाजी पटना के सच्चिदानन्द सिंह की कोठी में रहते थे। प्रिन्सिपल रुद्रा उनसे निचले मकान में बीमार पड़े थे और उनका बेटा सुधीर दिन रात उनके पास रहता था। लालाजी ने तत्काल ही अपनी कोठी में मुझे एक कमरा दे दिया और बड़े भाई की तरह मेरा ध्यान रखते थे। श्री रुद्रा को इतना अधिक कष्ट था कि किसी-न-किसी का दिन रात उनके पास रहना आवश्यक हो गया और हम बारी बारी से उनके पास बैठते थे। बहुधा आधी रात को अथवा सूर्योदय से कुछ पूर्व मुझे लालाजी की कोठी से श्री रुद्रा के पास नीचे जाना पड़ता। बीमारी इतनी अधिक बढ़ गयी थी, कि उनकी देखभाल करना हमरी शक्ति से बाहर हो गया। लालाजी यथासम्भव हमारी समहायता किया करते। उनके स्नेह तथा सहानुभूति का मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। श्री रुद्रा की लड़की इल्ला को लालाजी अपनी लड़की की तरह समझते थे। जब श्री रुद्रा का देहान्त होगया तो लालाजी उसको अत्यन्त स्नेहपूर्ण शब्दों में सान्त्वना देने लगे। लाला लाजपतराय जैसे मित्र की उपस्थिति प्रिन्सिपल रुद्रा के लिए भी अत्यन्त बहुमूल्य थी। मेरे लिए तब उनका अस्तित्व ऐसे नाजुक समय से स्वर्ग से भेजे गए देवदूत से कम न था। मेरे प्रति लालाजी का वह स्नेह मेरे जीवन का सबसे बहुमूल्य धन था। वह मुझे मेरे क्रिश्चियन

नाम से "चार्ली" कहकर पुकारते और मैं भी उन्हें लाजपत ही कहता। भविष्य की बातचीत तथा पत्र व्यवहार में हम इसी प्रकार एक दूसरे को सम्बोधित करते थे। मृत्यु छाया के अन्धकार तथा दुख के उन भयानक दिनों में पूर्णता प्राप्त किये हुए पवित्र प्रेम को मैं कदापि नहीं भुला सकता, यद्यपि इस समय उनका भौतिक शरीर आंखों से ओझल हो गया है।"

प्रिन्सिपल रुद्रा बच न सके। "पीपुल" के प्रथमांक में ही लालाजी के हस्त मे उनके लिए शोक प्रकाश किया गया।

अध्याय बारह

हकीम नाबीना का इलाज

जिन दिनों लालाजी सोलन में थे, उन्हें एक प्रकार के पेट दर्द (colic) का दौर हुआ। कुछ ही दिन पीछे दूसरी बार और फिर तीसरी बार दौर हुआ। अब प्रति सप्ताह नियमपूर्वक दर्द के दौर होने लगे और दिन प्रति दिन पीड़ा बढ़ती ही गयी। सोलन तथा शिमला के डाक्टरों ने एमेटीन के टीके लगाए और अन्य औषधियाँ भी दीं परन्तु दौरों का जोर बढ़ता ही गया और वह कमजोर होते गए।

यद्यपि अभी गर्मी समाप्त नहीं हुई थी, परन्तु अच्छे चिकित्सकों से परामर्श लेने आप लाहौर चले आए। डा० महाराज कृष्ण कपूर, डा० निहालचन्द सीकरी, डा० गोपीचन्द भार्गव, लेफ्टीनेण्ट कर्नल डी० एच० राय तथा लेफ्टीनेण्ट कर्नल अमीरचन्द प्रति दिन आते और परस्पर परामर्श करके उनको अपनी समझ के अनुसार अच्छी-से अच्छी औषधियाँ देते। आपको खाने के लिए केवल दूध तथा द्रव भोजन ही दिया जाता था। चौबीस घण्टे बिस्तर पर ही लेटे रहने की आपको आज्ञा थी और प्रतिदिन आपको जुलाब दिया जाता था। खानपान अथवा दवाइयों के उलट-फेर से भी कोई लाभ नजर नहीं आता था। डाक्टरों की सम्मति थी कि गाल ब्लैडर gall bladder में ही कहीं कोई दोष है—सम्भवतः गुर्दे में कोई पत्थर हों। बहुत-से डाक्टरी परीक्षणों से भी कुछ पता न चल सका।

एक अंग्रेज डाक्टर तथा बैक्टीरियालोजिस्ट का (जो सोलन में एक राजयक्ष्मा का चिकित्सालय खोलने की आयोजना के सिलसिले में लालाजी को मिला करता था) विचार था कि रोग की जड़ Streptococ नाम का कीटाणु है। उसने autovaccine बनाकर भेजी और लिखा कि इससे बीमार को अवश्य ही लाभ होगा।

'गुर्दे की पथरी' ठीक होने में नहीं आती थी। बार बार के जुलाब तथा द्रव भोजन रोग को अच्छा तो न कर सके, उल्टे लाला जी कमजोर बहुत हो गए। दर्द के दौर भी अब जल्दी जल्दी होने लगे। बीमार की कमजोरी के कारण डाक्टर चीरफाड़ और आपरेशन से भी डरते थे। उस समय गर्मियों के कारण

कोई भी योग्य सर्जन लाहौर में नहीं था। एक दिन डा० महाराजकृष्ण कपूर उनके पाखाने की परीक्षा करने के पश्चात् हंसते हंसते आए और कहने लगे कि जुलाब देने का यह फल हुआ है कि उनके मल के साथ ही गुर्दे के पत्थर के सख्त टुकड़े बाहर निकल आए हैं। जब उन टुकड़ों को परीक्षणार्थ प्रयोगशाला में भेजा गया तो वह (उनके खाए पान में से) सुपारी के टुकड़े सिद्ध हुए।

अन्त में लालाजी ने डाक्टरों को सूचना दे दी कि यदि अमुक दिन तक वह उन्हें अच्छा करने में असफल रहे तो वह किसी अन्य चिकित्सा प्रणाली की शरण लेंगे। डाक्टर बिचारे स्वयं परेशान थे। निश्चित अवधि की समाप्ति पर दो होमियोपैथ डाक्टरों को लाया गया। वे भी उसी प्रकार असफल रहे। फिर एक यूनानी हकीम स्वर्गीय शिफाउलमुल्क फक़ीर मुहम्मद को जो उन दिनों लाहौर के सर्वोच्च हकीम समझे जाते थे, बुलवाया गया। वह लालाजी के जन्म स्थान जगरांव के रहने वाले थे और स्कूल के दिनों में उनके पिता जी मुंशी राधाकिशन के शिष्य थे। उन दिनों हकीम अजमलखां दिल्ली से कहीं बाहर गए हुए थे और उनसे परामर्श करना सम्भव न था। देहली के एक दो अन्य विख्यात हकीमों के बारे में पूछताछ की गयी, परन्तु कोई भी न मिल सका। किशनदास कोहली ने एक नाबीना (अन्धे) हकीम के बारे में सुना जो देहली में अभी नया नया ही आया था, परन्तु जिसने अंग्रेजी डाक्टरों के एपेंडिसाइटिस अथवा कोलटिस (Appendicites colitis) के रोगियों को अच्छा करने का चमत्कार दिखलाया था। हमारे साथ टेलीफोन पर कुछ बातचीत करने के बाद वह उसी अन्धे चमत्कारी हकीम को लाहौर ले आए।

दूसरे दिन प्रातः हकीम महोदय लाहौर आ पहुँचे और भारी आत्म विश्वास के साथ रोगी का चार्ज ले लिया। उसने आधे घण्टे में ही भविष्य वाणी की कि अब दर्द के दौरे नहीं होंगे और दो दिन में वह निश्चिन्त होकर देहली लौट जायेंगे।

पता लगा कि हकीम महाशय डा० एम० ए० अन्सारी के बड़े भाई हैं और देहली में उनके विख्यात न होने का यह कारण था कि उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग हैदराबाद दरबार की सेवा में व्यतीत कर दिया था। दरबार के साथ कुछ झगड़ा होने पर वह अभी अभी देहली चले आये थे। अपनी बातचीत तथा रंगढंग में हकीम साहब उस प्राचीन सभ्यता के प्रतिनिधि थे, जो कि खेद है, इस गन्दे व्यापारी युग में, शीघ्र ही मरणासन्न हो रही है। वह केवल औषधि शास्त्र के ही विशेषज्ञ न थे, प्रत्युत वह उन सभी विद्याओं के ज्ञाता थे, जो उनकी युवावस्था में अरबी भाषा द्वारा सीखी जा सकती थीं। जवानी में ही उनकी आंखों की ज्योति जाती रही, परन्तु प्रकृति ने स्पर्श शक्ति तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उनके

विवेक तथा ज्ञान में अलौकिक वृद्धि कर दी थी और उन्हें आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति प्रदान कर दी थी। कहा जाता था कि आप नाड़ी विज्ञान के विशेषज्ञ हैं। वह पन्द्रह मिनटों तक लालाजी की नाड़ी परीक्षा करते रहे। इतने में ही उन्होंने रोग का पूर्ण निदान कर लिया था। वह बलपूर्वक कह रहे थे कि मैंने लाला जी का नाड़ी-परीक्षण कर लिया है और मुझे निश्चय है कि कहीं भी पत्थर इत्यादि नहीं हैं। लाला जी को वात विकार के कारण कष्ट हुआ है जिसे मैं अपनी दवाई द्वारा ठीक कर दूंगा। लाला जी के द्रव भोजन को तथा जुलाबों को भी उन्होंने नापसन्द किया। प्रथम दिन ही उन्होंने अनुरोध किया कि ठोस भोजन करें, परन्तु चूँकि लाला जी को ऐसा करने में संकोच था, अतः वह एक दिन के लिए मान गए, परन्तु वास्तव में उस दिन भी उसने शोरबे में रोटी के कुछ छोटे छोटे टुकड़े मिला दिए थे।

जिस समय हकीम पहुँचे थे, लाला जी पर प्रति दिन बार बार दर्द के दौर हो रहे थे। दौरों की पीड़ा इतनी तीव्र और असह्य होती थी कि उनकी सेवा शुश्रूषा करने वालों के लिए भी वह दृश्य असह्य हो जाता था। उस शाम को तो पीड़ा की कोई हद न रही थी, जब किशनदास कोहली को देहली में अन्धे हकीम के लिए टेलीफोन किया गया। जब डाक्टर महाराजकृष्ण ने शाम का चक्कर समाप्त करते हुए, उनके कमरे में झांका तो लाला जी तीव्र पीड़ा से तड़प रहे थे। इस समय लाला जी उनके चार्ज में न थे, क्योंकि लालाजी से सहमत होकर सभी डाक्टर हार मानकर हथियार डाल चुके थे। डाक्टर महाराजकृष्ण को अनुमति मिल गयी कि यदि वह दर्द कम कर सकते हैं तो कोशिश करें। उन्होंने अपनी पिचकारी निकाली, परन्तु जब थैले को देखा, तो उसमें मारफीन की ट्यूब न थी। झट मोटर दौड़ा कर अपने घर पहुँचे, परन्तु वहाँ भी वह औषधि न थी। उस समय दवाई बेचने वालों की दुकानें बन्द हो चुकी थीं। कई घण्टों के बाद एक रातवाली दुकान से दवाई मिली। लाला जी को टीका किया गया और पीड़ा कुछ कुछ मन्द पड़ी। क्योंकि बार २ के टीकों ने उनके शरीर को ऐसा बना दिया था कि उनका उसपर बहुत ही कम प्रभाव होता था। उस दिन बड़ी रात गए तक डाक्टर चिन्ताग्रस्त होकर बैठा रहा। उसे पूर्ण विश्वास हो चुका था कि औषधियों से रत्ती भर भी लाभ नहीं होता। अब तो सर्जन की शल्य क्रिया द्वारा ही बचाव सम्भव है। परन्तु रोगी में उतनी शक्ति भी तो होनी चाहिए और इस कार्य के लिए सर्जन में भी असाधारण योग्यता और दक्षता होनी चाहिए। बहुत सोच विचार के बाद उसने अगले दिन प्रातःकाल रोगी को सर्जन के सिपुर्द करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन प्रातः तो हकीम साहब ने रोगी का चार्ज ले लिया और उसके बाद दर्द का केवल एक ही दौर हुआ और वह भी बहुत हल्का सा और केवल चन्द ही

मिनट रहा। हकीम साहब बोले कि यह सर्वथा भिन्न प्रकार की पीड़ा है और मैं दावे के साथ कहता हूँ कि जिस दर्द ने, रोगी को इतना परेशान किया है, उसका सदा के लिए मूलोच्छेद कर दिया गया है।

हकीम साहब के व्यक्तित्व-उनका सुसंस्कृत व्यवहार, सभ्य दरबारी शिष्टाचार उनकी बातचीत का ढंग तथा उनके आत्म विश्वास ने उनकी औषधियों की अपेक्षा रोगी के स्वास्थ्य को ठीक करने मे कहीं अधिक काम किया। उनकी स्मरण शक्ति इतने गज़ब की तेज़ थी कि दवाइयों की बोतलों तथा डिब्बियों के चुनाव मे उनकी अंगुलियों ने लेशमात्र भी भूल न की।

हकीम साहब की आयु लगभग ७० वर्ष की थी, परन्तु उनका शरीर बलिष्ट और मस्तिष्क प्रतिभापूर्ण था। रात को वह बहुत ही कम सोते थे। शायद तीन अथवा चार घण्टे ही। उस समय भी उनके हाथ में माला रहती थी। वह दिन मे केवल एक ही बार खाना खाते थे यद्यपि वह भरपेट खाना होता था।

वह लाहौर में तीन दिन और दो रातें रहे। वह कहते थे कि इससे अधिक मेरे ठहरने की ज़रूरत नहीं होगी। वह यह कहते हुए देहली चले गये कि मुझे आठ दस दिन में लाला जी से देहली में मिल कर हर्ष होगा। उस समय उनके सारे शरीर को ठीक करने के लिए लम्बा कोर्स शुरू करूंगा।

डाक्टरों की मित्र मण्डली को तो विश्वास ही नहीं आता था। उनमें से एक डाक्टर ने हकीम साहेब से शरीर-रचना के बारे में कुछ प्रश्न पूछे और कहने लगे कि हकीम साहेब निरे घोंघाबसन्त हैं। उनकी सम्मति में कुछ दिनों तक दर्द के दौरे न होना केवल सौभाग्य अथवा चांस की बात है। अकस्मात् गुर्दे के पत्थर ने अपनी स्थिति बदल दी है। "परन्तु सच्ची बात यह है कि उसके बाद एक बार भी फिर उनको तीव्र दर्द का दौरा नहीं हुआ।

अपने मित्र डाक्टर एन० आर० धर्मवीर को (जो अभी तक न्नलें लंका शायर में डाक्टरी करते थे और जो हिन्दुस्तान वापस आकर बसने की योजनाएं बना रहे थे) लाला जी ने लिखा:—

"मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब है। ऐसा प्रतीत होता है कि मैं धीरे धीरे घुला जा रहा हूँ।"

कुछ काल पश्चात् जब अगले वसन्त में लाला जी योरुप गए, तो उन्होंने डाक्टर धर्मवीर को अपनी बीमारी का इतिहास सुनाया। डाक्टर धर्मवीर ने एक रेडियालोजिस्ट द्वारा उनका परीक्षण करवाया, जिसने रिपोर्ट की कि उनके (गाल ब्लैडर) गुर्दे में कुछ दोष है और उनके दांतों की खराबी भी कष्ट का कारण है।

जहां कहीं भी रोग था, हकीम ने उसे चंगा कर दिया। एक ही रात मे प्रज्ञाचक्षु हकीम साहब के चमत्कार की ख्याति पंजाब भर में फैल गयी और शीघ्र ही प्रान्त भर से रोगी चिकित्सा के लिए उन पर टूट पड़ने शुरू हो गए। वर्षों तक आपकी प्रसिद्धि फैलती गयी। जब कभी निज कृतज्ञता के चिह्न स्वरूप लाला जी उन्हें कुछ भेंट देना चाहते, तो हकीम साहेब प्रतिवाद करते हुए कहते, "क्या मुझे यह काफी पुरस्कार नहीं मिल चुका है कि मेरा नाम हजारों लोगों में विख्यात हो गया है, जिन्होंने पहले कभी सुना तक नहीं था।"

अध्याय तेरह

स्वराज्य दल में

"अब आप तीनों में से कौन लाला जी के लिए स्थान खाली करेगा?" पंजाब की ओर से स्वराज्य दल के सदस्यों - दुनीचन्द अम्बालवी, रायजादा हंसराज तथा दीवान चमनलाल को असेम्बली के पुस्तकालय में सम्बोधित करते हुए शामलाल नेहरू ने पूछा, क्योंकि उन्हें एक विश्वस्त रूप से अभी अभी ज्ञात हुआ था कि धारा सभा में चुनाव के नियम मे संशोधन होने वाला है और छः मास से अधिक कारावास का दण्ड भोगनेवाले भी अब असेम्बली के सदस्य चुने जा सकेंगे।

पंजाब के तीनों सदस्यों ने शामलाल के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि हम में से कोई भी इस कार्य के लिए सहर्ष तैयार हैं। हमें प्रसन्नता है कि लाला जी चुने जा सकते हैं।"

१९२५ के आरम्भ मे धारा सभा के देहली वाले अधिवेशन में यह बात ज्ञात हुई थी। उस समय अपने दण्ड की अवधि के कारण लाला जी चुनाव में खड़े नहीं हो सकते थे। १९१७ में, उनके निर्वासन काल में, सरकार ने उनकी कुछ पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था जिसके आधार पर चीफ कोर्ट ने, बिना उनका पक्ष सुने, उनका नाम वकीलों की सूची से काट दिया था। जब तक वह प्रतिबन्ध लगा हुआ था, वह धारा सभा के सदस्य नहीं चुने जा सकते थे। परन्तु इस बात का सम्भवतः उनके घनिष्ट मित्रों को भी ज्ञान न था। साधारणतया लोगों का यही विश्वास था कि केवल दण्डवाली रुकावट ही है। यदि यह भी हट जाय, तो प्रश्न उठता है कि क्या लाला जी के लिए कोई स्थान भी रिक्त किया जा सकता है, जहां से वह खड़े हो सकें। उसी दिन रायजादा हंसराज ने लाला जी को पत्र लिख दिया कि मैं आपके लिए स्थान खाली करने को तैयार हूँ और मेरा त्यागपत्र आपको शीघ्र ही पहुँच जायगा।

उसी अधिवेशन में नियम के संशोधन की सरकारी घोषणा भी हो गयी। छः मास की अवधि को बढ़ाकर एक वर्ष कर दिया गया, परन्तु लाला जी का दण्ड तो एक वर्ष से अधिक था, इसलिए यह कहना कठिन था कि उनकी कठिनाई हल हुई है अथवा नहीं। रायज़ादा हंसराज ने श्री एम० ए० जिन्ना जैसे प्रमुख वकीलों

से परामर्श लिया, परन्तु वहां से कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। कुछ दिन पीछे, शिमला अधिवेशन के दिनों में होम मेम्बर सर अलक्जेण्डर मुड्डीमैन से पूछा गया तो उसके उत्तर से लाला जी का मार्ग साफ हो गया, क्योंकि उसने बतलाया कि नियम में भिन्न भिन्न सजाओं के जोड़ का नहीं, प्रत्युत पृथक पृथक सजा का अर्थ लिया जाना चाहिए।

उसी समय लाला जी सोलन में बीमार हो गए और उनकी दशा चिन्ताजनक हो गयी। स्वस्थ होने पर उन्हों ने रायज़ादा हंसराज को बतलाया कि अब मैं असेम्बली में जा सकता हूँ। रायजादा साहेब ने अपना त्यागपत्र लिखकर लाला जी के हवाले कर दिया।

दूसरी रुकावट के बारे में उनके मित्रों ने पता लगा लिया कि पंजाब सरकार का उनके मार्ग में रोड़े अटकाने का कोई विचार तो नहीं है? यदि वह विरोध करें, तो हाई कोर्ट को लिखकर वह रुकावट भी हटायी जा सकती थी। अब लाला जी को निश्चय हो गया था कि उनके असेम्बली में जाने के मार्ग में कोई बाधा नहीं रही। रायज़ादा हंसराज का त्यागपत्र सरकार को भेज दिया गया। रायज़ादा ने अपने मतदाताओं को धन्यवाद देते हुए, आशा प्रकट की कि जिस प्रकार उन्होंने मुझे बिना विरोध सदस्य चुना था, उसी प्रकार वह लाला जी को चुनेगें। अपने असेम्बली के सहकारियों को भी धन्यवाद देते हुए रायजादा साहब ने आशा प्रकट की कि लाला जी पंडित मोतीलाल के श्रेष्ठ मित्र तथा सच्चे सहकारी सिद्ध होंगे।"

उपचुनाव की तिथियों की सरकारी घोषणा हो गयी। लालाजी को तार द्वारा जालन्धर बुलाया गया कि वहां आकर अपने कागजात दाखिल करें। लाला जी तथा रायजादा हंसराज दोनों ने अपने कागजात भर दिए। ६ दिसम्बर को बम्बई में होने वाले हिन्दू सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए लाला जी को जाना पड़ा। रायज़ादा हंसराज ने अपना नाम वापस ले लिया और लाला जी बिना विरोध सदस्य चुन लिए गए। १३ दिसम्बर के ,'पीपुल'' में उन्होंने रायज़ादा को धन्यवाद दिया।

हम ने इस कार्यवाही का विस्तार जानबूझ कर कर दिया है क्योंकि आगे चलकर यह विवाद छिड़ गया कि क्या चुनाव के समय लाला जी ने स्वराज्य दल में सम्मिलित होने का कोई वचन दिया था? सच्ची बात तो यह है कि लाला जी को साल भर बार बार पेशकश करते हुए, रायज़ादा हंसराज ने न तो कोई शर्त रक्खी थी और न कोई आश्वासन मांगा था। जो आशा उन्होंने प्रकट की थी, वह उनकी निजी इच्छा थी। उन्होंने लाला जी से विशेष रूप से कोई अनुरोध नहीं किया कि आप स्वराज्य दल में सम्मिलित हों। अपने पत्र व्यवहार अथवा बातचीत में

किसी शर्त का संकेत तक नहीं किया था। रायज़ादा हंसराज ने लाला जी के लिए स्थान रिक्त किया था, न कि किसी दल विशेष के लिए। रायज़ादा हंसराज ने त्याग पत्र देते हुए कहा था कि मेरे हृदय में पंडित मोतीलाल के प्रति अपार श्रद्धा है और मुझे दुख होगा, यदि मेरे किसी कार्य से पंडित जी को कष्ट अथवा असुविधा हो। लाला जी ने उत्तर में कहा था कि मैं मोतीलाल जी का श्रेष्ठ मित्र तथा सच्चा साथी सिद्ध हूंगा। बातचीत अत्यन्त संक्षिप्त और साधारण ढंग की हुई थी। आगे चलकर जब रायज़ादा हंसराज ने पत्रों के नाम वक्तव्य जारी किया, तब उन्होंने लाला जी के शब्दों की पुनरावृत्ति की। इस वक्तव्य में गलत फहमियों की सम्भावना देखकर लाला जी ने रायज़ादा को लिखा कि यदि इसमें किसी प्रकार की शर्त लगाने का आपका विचार हो तो मैं अपने व्यय पर आपको दोबारा सदस्य चुनवा सकता हूँ।" रायज़ादा हंसराज ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। जब दोनों अपने कागजात दाखिल करने के लिए जालन्धर आए, वहां भी उस वक्तव्य के बारे में उनमें कोई बातचीत नहीं हुई।

दिसम्बर में लालाजी असेम्बली के सदस्य बन गए। दिसम्बर के अन्त में आप कानपुर में कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। वहां भी उनके स्वराज्य दल में शामिल होने का प्रश्न नहीं उठा। कानपुर में तो वह मोतीलाल से सदा के लिए पृथक होने को ही थे। १७ जनवरी के पीपुल में आपने लिखा, "मैं स्वराज्य दल का सदस्य नहीं हूं। मुझे बनने की आवश्यकता भी नहीं। क्योंकि मैं कांग्रेसी हूं, अतः व्यवहार से मैं स्वराजिस्ट भी हूं।"

जब आपने शपथ ली, उस समय भी वह दल में शामिल नहीं हुए थे, आपने असेम्बली की कई बैठकों में भाग लिया और २५ जनवरी १९२६ को आप स्वराज्य दल में सम्मिलित हुए। उससे पांच दिन पूर्व पंडित मोतीलाल ने उनको दल में शामिल होने का निमंत्रण दिया था।

आपने मोतीलाल जी को लिखा था कि 'मेरे दल में शामिल हो जाने से मेरे पत्रों का नियंत्रण दल द्वारा नहीं होगा। वह पहले की तरह दल से स्वतंत्र रूप में चलते रहेंगे।'

जिस समय लाला जी असेम्बली के सदस्य बने, लाला जी के राजनैतिक विचार क्या थे? जुलाई १९२५ में आपका साप्ताहिक "पीपुल" निकल आया। उससे पूर्व भी आप काफी लेख लिखा करते और निज विचार प्रकट करते रहते थे। सभी को ज्ञात था कि वह कहां स्वराज्य दल तथा नेताओं से सहमत हैं और कहां कहां उनसे मतभेद रखते हैं। जब चौरीचोरा की घटना के पश्चात् असहयोग आन्दोलन को वापस लेना शुरू हो गया, तो उन्होंने भी राजनीति पर पुनः विचार



करना शुरू कर दिया और जेल के अन्दर से लेख लिखे। उनका झुकाव स्वराज्य दल की ओर था। वह चाहते थे कि कांग्रेस धारा सभाओं पर अधिकार कर ले। जेल से आपने स्वराज्य दल के स्थापन में चित्तरंजनदास की सहायता की थी। जब वह जेल से बाहर आए, तब उन्होंने स्वराज्य दल के उम्मीदवारों की चुनाव में सहायता की। पंजाब के सारे सदस्यों का चुनाव ही उन्हीं के द्वारा हुआ था। जब आप इंग्लैण्ड चले गए तब वहां भी मोतीलाल जी के साथ उनका पत्र व्यवहार होता रहा और वहां आप मजदूर सरकार के साथ स्वराज्य दल की ओर से बातचीत करते रहे। परन्तु इस समय न तो आप स्वराज्य दल के सदस्य ही थे और न उसके नियंत्रण के अधीन थे। जहां कहीं आपको उचित प्रतीत होता था, आप आलोचना करने में स्वतंत्र थे। एक प्रकार से वह गैर सरकारी स्वराजी थे क्योंकि

१—उनको धारा सभाओं के कार्यक्रम में विश्वास था और आप अपरिवर्तन-वादियों के साथ न थे।

२—आपको पद स्वीकार करने में विश्वास न था, अतः आप Responsivist ......दल से सहमत न थे।

साधारण लोगों की दृष्टि में तो वह पूरे स्वराजी थे, परन्तु ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि स्वराज्य दल से भी उनके मतभेद स्पष्ट थे, जो प्रति सप्ताह उनके लेखों में अभिव्यक्त होते रहते थे। आरम्भ में तो स्वराज्यवाद का जन्म भी अपरिवर्तनवाद के विरुद्ध विद्रोह स्वरूप में हुआ था, परन्तु धीरे धीरे स्वराज्यवाद स्वयं एक पन्थ सा बन गया जिसका मुख्य सिद्धान्त निरन्तर, लगातार अवरोध ही था, जिस प्रकार गान्धीवादियों का "एक वर्ष में स्वराज्य" था। लाला जी को इसमें कोई व्यावहारिकता दिखलायी नहीं पड़ती थी। लाला जी ने इस सिद्धान्त को कभी भी स्वीकार नहीं किया। व्यवहार में स्वराजिस्ट भी कई बार अपने सिद्धान्त से विचलित हो गए थे। उन्होंने वी० जे० पटेल को असेम्बली का स्पीकर बना दिया और सदा अपने व्यवहार में अवरोध का उपयोग नहीं करते थे। उनके शस्त्रागार में अवरोध भी एक प्रबल हथियार था। उन्होंने अपने सहयोग पर कड़ी पाबन्दियां लगा रक्खी थीं। वह पद ग्रहण के पक्ष में न थे और असेम्बली की कमेटियों में भी भाग लेना निषिद्ध था। जिस समय लाला जी सदस्य बन गए, उस समय निषेध कुछ कुछ ढीला हो रहा था, क्योंकि स्वराज्य दल के नेता ने स्वयं बुद्धिमत्ता से सेना के भारतीयकरण वाली स्कीम कमेटी की सदस्यता स्वीकार कर ली थी। यह एक भारी और महत्वपूर्ण पग था जिसमें निषेध का उल्लंघन किया गया था और जिसका परिणाम अधिकाधिक उल्लंघन के कदम हो सकते थे। कई

लोगों को भय और आशा थी कि इस प्रकार स्वराज्य दल भी रेस्पान्सिव बनता जायगा।

कभी कभी लाला जी अनुभव करते थे कि अनुशासन के नाम पर, स्वराजिस्ट नेता अत्यन्त कठोर बनते जा रहे हैं। कुछ दिनों से विद्रोहियों को दल से निकाल देने की बातचीत चल रही थी, हालांकि स्वराज्य दल का अस्तित्व ही अपरिवर्तन-वादियों के विरुद्ध विद्रोह का फल था। दल के नेताओं की आलोचना करते हुए, ऐसा प्रतीत होता था कि लाला जी रेस्पोंसिविस्ट दल का समर्थन कर रहे हैं, यद्यपि १९२५ में लालाजी को रेस्पोंसिविस्ट दल के द्वैध शासन में पद ग्रहण की नीति मे रत्ती भर भी सहानुभूति न थी।

वह स्वयं अनुभव करते थे कि धारा सभा के कार्य के लिए उन्होंने ठीक अवसर नहीं चुना। वह कहते थे कि परिस्थिति अनिश्चित तथा अन्धकारमय है। १९२५ में स्वराज्य दल का अनुशासन दलबन्दी तथा फूट के कारण टूट फूट रहा था और "अनुशासन" पर अधिक बल देने के लिए परिस्थिति और भी खराब होती जा रही थी। मध्यप्रान्त धारा सभा के स्पीकर श्री श्रीपद बलवन्त ताम्बे को एक्जीक्यूटिव कौंसल की मेम्बरी पेश की गयी और उन्होंने स्वीकार कर ली। उनका यह कार्य तीन प्रकार से आपत्तिजनक था। द्वैध शासन के अधीन एक कांग्रेसी का पद ग्रहण करना उचित नहीं था। यह एक बुरा उदाहरण था कि एक स्पीकर इस प्रकार सरकार के प्रलोभन का शिकार हो जाय। यह काम स्पष्ट रूप में अनुशासन की अवहेलना था, क्योंकि ताम्बे ने स्वराज्य दल की कार्यकारिणी समिति को यह सूचना देने की परवाह भी नहीं की कि उन्हें पेशकश की गयी है और वह स्वीकार करना चाहते हैं। पं० मोतीलाल का बिगड़ उठना स्वाभाविक ही था। और भी बुरी बात यह हुई कि जयकर, केलकर तथा अन्य प्रमुख स्वराजी नेताओं ने ताम्बे के इस कार्य का समर्थन कर दिया। उनकी सम्मति में तो यह कार्य भी वैसा ही था जैसा वी० जे० पटेल का असेम्बली-स्पीकर बन जाना तथा पं० मोतीलाल का स्कीन कमेटी पर मनोनीत होना। यह हो सकता है कि पं० मोतीलाल तथा वी०-जे० पटेल के आचरण को दल के अनुशासन तथा नियमावली की अवहेलना न समझा जाय, परन्तु सत्य यह था कि दल की नियमावली दल के सिद्धान्तों तथा नीति के वास्तविक विकास के साथ साथ न चल पायी। केलकर ने कहा "एक समय था कि हम असेम्बली में कोई रचनात्मक प्रस्ताव नहीं रख सकते थे—जैसे किसी बिल को सिलेक्ट कमेटी के सुपुर्द करना आदि। फिर एक समय आया कि हमें वैसा करने की अनुमति मिल गयी, परन्तु हम किसी कमेटी में कोई स्थान ग्रहण नहीं कर सकते थे। फिर एक समय आया कि कार्यकारिणी की विशेष अनु-

मति से कमेटी में स्थान ग्रहण कर सकते थे। मेरी राय है कि यह सारा विकास स्वाभाविक था और एक नवीन निश्चित नीति का प्रतीक था—अन्धाधुन्ध अवरोध की नीति के विरुद्ध स्पष्ट विद्रोह। इन्हीं नियमों के अधीन श्री पटेल का स्पीकर बनना उचित समझा गया। परन्तु इस अवरोध द्वारा हम सरकार की मशीनरी का चलना बन्द नहीं कर सकते थे। मैं उन लोगों में से हूँ जिनका विचार है कि दल की नियमावली में परिवर्तन के साथ साथ अवरोध का नाम भी बदल कर रेस्पोंसिव सहयोग रख दिया जाता। "अक्तूबर तक देश के राजनीतिक वातावरण में ताम्बे काण्ड का विवरण चलता रहा। १ नवम्बर को नागपुर में स्वराज्य दल की कार्यकारिणी सभा की बैठक हुई। पं० मोतीलाल कहने लगे कि ताम्बे के कार्य का समर्थन कई लोगों की ओर से किया जा रहा है और मध्यप्रान्त में दल के नेता ने स्वयं पद ग्रहण की नीति को प्रोत्साहित किया है। यह स्पष्ट है कि ताम्बे काण्ड के बारे में मध्य प्रान्त का स्वराज्य दल एकमत नहीं रखता। बम्बई में केलकर तथा जयकर ने स्थानीय स्वराज्य दल को रेस्पोंसिव सहयोग अपनाने का परामर्श दिया है। कुछ मास पूर्व चित्तरंजनदास की मृत्यु ने स्वराजी नेतृत्व को कमजोर कर दिया था। शीघ्र ही मोतीलाल को भारी तूफान का सामना करना पड़ा। नागपुर में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ और एक प्रकार की विराम सन्धि हो गयी। परन्तु इसके कुछ ही दिन बाद जयकर तथा केलकर ने कार्यकारिणी से त्याग पत्र दे दिये, क्योंकि वे कहते थे कि नेता ने रेस्पोंसिविस्ट लोगों पर आक्रमण करके विराम सन्धि का उल्लंघन किया है। उन्होंने त्यागपत्र दे दिए, ताकि वह अपने विचार प्रकट करने में स्वतंत्र हो सकें।

यह तूफान मचा हुआ था जब लाला जी जालन्धर से असेम्बली के सदस्य चुने गए।

यद्यपि लाला जी स्वयं पद ग्रहण के प्रयोग के विरुद्ध थे, परन्तु उनकी सहानुभूति मुख्यत: रेस्पोंसिविस्ट (Responsivist) दल के साथ थी। लोकमान्य तिलक के समय से इस महाराष्ट्र दल के साथ उनका व्यक्तिगत प्रेम सम्बन्ध था। श्री केलकर, जयकर तथा महाराष्ट्र दल वालों की मनोवृत्ति हिन्दू संगठन को दृढ़ करने की आवश्यकता की ओर भी थी, परन्तु लाला जी तो निरन्तर और शाश्वत अवरोध की नीति से पद ग्रहण की अपेक्षा भी कहीं अधिक घृणा करते थे। इसके अतिरिक्त वे अनुभव करते थे कि जब असहयोग आन्दोलन जैसा कोई महान आदोलन भी नहीं चल रहा है, नेतागण अन्धकार में भटक रहे हैं और उन्हें कोई भी ठीक नीतिं अथवा मार्ग नहीं सूझ रहा है, ऐसे समय में "अनुशासन" के नाम पर मतभेद का गला घोंटना उचित नहीं। ऐसे समय पर तो यह और भी

आवश्यक है कि सभी कार्यों की ठण्डे दिल से पड़ताल की जाय जिससे कि मामले का स्पष्टीकरण हो सके। श्री जयकर को शिकायत थी कि स्वराज्य दल के नेता का स्वभाव तथा रंग ढंग काफी तीव्र हो रहा है। श्री जयकर की नीति से मतभेद रखने वाले भी उनकी उक्त शिकायत को उचित समझते थे।

इस प्रकार रेस्पोंसिविस्ट (Responsivist) दल के साथ लाला जी की कुछ न कुछ सहानुभूति अवश्य थी, यद्यपि वह न तो उनके दल में सम्मिलित हुए और न उनका यह विश्वास था कि द्वैध शासन के अधीन पद ग्रहण बुद्धिमत्ता का कार्य है। वह तो श्री पटेल के केन्द्रीयधारा सभा के स्पीकर बनने पर भी सन्तुष्ट न थे, यद्यपि आगे चलकर इस बारे में उनके विचार बदल गए क्योंकि वी० जे० पटेल ने अपने पद की शान को निभाने में आशातीत सफलता प्राप्त की।

स्वराज्य दल का यह आन्तरिक कलह इस प्रकार का गम्भीर रूप धारण कर रहा था, जब लाला जी ने असेम्बली में पदार्पण किया। कुछ दिनों तक वह स्वराज्य दल के सदस्य नहीं बने। सदस्यता के कागजात दाखिल करते ही आप हिन्दू सम्मेलन के प्रधान बनने बम्बई चले गए। श्री जयकर उस सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। पंडित मोतीलाल नेहरू तथा कांग्रेस अधिवेशन की मनोनीत अध्यक्षा श्रीमती सरोजिनी नायडू भी उस समय बम्बई में उपस्थित थीं। काफी वाद विवाद के बाद कानपुर कांग्रेस तक एक विराम सन्धि कर ली गयी।

कानपुर में तो मामला और भी बढ़ गया। महात्मा गान्धी न केवल अध्यक्ष पद से ही मुक्त हो गए, वरन् उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र से भी हाथ खींच लिया और एक वर्ष के लिए अपने रचनात्मक कार्यक्रम तथा आश्रम पर शक्ति केन्द्रित करने का निश्चय कर लिया। अब कांग्रेस को उन्होंने पूर्णरूपेण स्वराजियों के हवाले कर दिया। इस हथियार डालने का श्रीगणेश उस समय हुआ था जब स्वराज्यवादियों को कौंसिल प्रवेश की अनुमति दे दी गयी थी। स्वराजियों ने खादी प्रोग्राम का समर्थन करना स्वीकार कर लिया। बेलगाम में, जब गान्धी जी कांग्रेस अधिवेशन के प्रधान थे, स्वराजवादियों ने उनके साथ यह समझौता किया था कि कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए खादी पहनने की शर्त अनिवार्य कर दी जाय। कुछ मास पश्चात् जब पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का अधिवेशन हुआ, तब स्पष्ट था कि स्वराजवादी खादी की शर्त को अव्यवहार्य समझते थे, कुछ अपरिवर्तनवादियों ने इसकी शिकायत भी की। गान्धी जी स्वयं अधिक झुकने को तैयार हो गए। खादी की शर्त को रद्द कर दिया गया। कानपुर में तो समस्त कांग्रेस मशीनरी ही स्वराजवादियों के हवाले कर दी गयी। अब तक तो स्वराज्य

दल केवल अपने चुनावों का प्रबन्ध करता था, अब तो चुनावों पर भी कांग्रेस की मुहर लग गयी। अब तक धारा सभाओं का कार्यक्रम केवल स्वराज्य दल का ही मामला था, अब वह कांग्रेस का कार्य बन गया। इस प्रकार स्वराजियों को कांग्रेस की मशीनरी, प्रतिष्ठा तथा धन सभी कुछ प्राप्त हो गए। गान्धी जी अब चर्खा कातने के लिए साबरमती आश्रम जा बैठे।

कानपुर अधिवेशन के मुख्य प्रस्ताव ने स्वराजियों को केवल कांग्रेस की गद्दी पर ही नहीं ला बिठलाया, प्रत्युत उनके सामने एक प्रोग्राम भी ला रक्खा। यहां फिर विवाद उठ खड़ा हुआ कि वह प्रोग्राम क्या होगा अवरोध अथवा रेस्पोंसिविस्ट कार्यक्रम ?

सफाई की अथवा मध्यम मार्ग के, सुलह सम्बन्धी, सभी यत्न असफल हो गए। पं० मोतीलाल न तो रेस्पोंसिविस्ट (Responsivist) नाम को ही पसन्द करते थे और न पद ग्रहण के किसी प्रकार के फार्मूला को, इसलिए केल्कर तथा जयकर से सहमत होना असम्भव था।

१९०७ में सूरत, तथा १९२० में नागपुर की तरह, यहां भी लाला जी पर कांग्रेस अधिवेशन की वक्रदृष्टि रही। आप स्वराज्य दल में सम्मिलित नहीं हुए थे। अपने चुनाव में भी उन्होंने दल के नाम तथा प्रोग्राम की, मतदाताओं से अपील नहीं की थी। अपने लेखों में वह स्वराज्य दल के कुछ कार्यों की खुले तौर पर समालोचना करते रहते थे। रेस्पोंसिविस्ट दल (Responsivist) को भी आपका कुछ न कुछ समर्थन प्राप्त था, परन्तु न तो आप उनके दल में शामिल थे और न पद ग्रहण में विश्वास रखते थे। पंजाब में तो स्वराज्य दल के लिए पद ग्रहण का प्रश्न ही नहीं उठता था। उनके मित्रों तथा सहायकों में से कोई भी रेस्पोंसिविस्ट (Responsivist) नहीं था। वह तो, वास्तव में पंडित मोतीलाल के साथ किसी न किसी प्रकार के समझौते के पक्ष में थे। (Responsivist) इसके प्रतिकूल रेस्पोंसिविस्ट दल वाले समझते थे कि मोतीलाल नेहरू के साथ समझौते का अर्थ हमारे साथ गद्दारी होगी।

जब पहले पहल स्वराजी लोग भारतीय धारा सभा में गए, तो इंडिपेंडेंट दल के समर्थन से उन्होंने सरकार से दो टूक फैसले की मांग की। यह १८ फरवरी १९२४ की बात है। सभी सीधे सादे कांग्रेसियों का विश्वास था कि स्वराज्यवादी सरकार के सामने अपनी मांग रखेंगे और एक प्रकार का अल्टीमेटम देते ही असेम्बली को सदा के लिए छोड़कर आ जायँगे। मांग पेश कर दी गयी, परन्तु दो वर्ष तक इस बात का कोई चिह्न तक दृष्टिगोचर न होता था कि वह स्वीकृत हो जायगी। उनका असेम्बली को छोड़ना तो दूर, उल्टे अवरोध का कार्यक्रम भी शनैः शनैः

ढीला पड़ता गया। स्कीन कमेटी की सदस्यता स्वीकार कर ली गयी। अब फिर आम चुनाव समीप आने लगे, तो स्वराज्यवादियों ने राष्ट्रीय मांग की अस्वीकृति के नाम पर फिर कुछ पग उठाने पर विचार करना शुरू कर दिया। कानपुर में प्रस्ताव रखा गया कि उन्हें असेम्बली से बाहर निकल आना चाहिए और देहात में जाकर रचनात्मक कार्यक्रम में अपनी शक्ति लगानी चाहिए—उनका विश्वास था कि मतदाताओं के मन पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा और वह पुनः स्वराज्य दल को वोट देकर असेम्बली में भेजेंगे और १९२३ के चुनाव की अपेक्षा कहीं अधिक बहुमत से सफलता प्राप्त करेंगे।

यह प्रोग्राम लाला जी को पसन्द न था। वह तो मालवीय जी, जयकर तथा केलकर का साथ देना चाहते थे—जिसका अर्थ—स्वराज्य दल अर्थात कांग्रेस के बहुमत वाले दल का विरोध करना था। पंजाब के मित्रों का निरन्तर यह अनुरोध था कि लाला जी को मोतीलाल जी के साथ कोई न कोई समझौता कर लेना चाहिए। नागपुर में भी यही मित्र मण्डली लाला जी से गान्धी जी के साथ समझौता करने का अनुरोध करती थी। परन्तु भेद यह था कि लाला जी स्वयं भी समझौते के लिए उत्सुक थे, क्योंकि वह असहयोग सिद्धान्त तथा एक भारी असहयोग आन्दोलन चलाने के पक्ष में थे। केवल कुछ बातों में उनका मतभेद था, परन्तु मोतीलाल के प्रोग्राम से वह पूर्णतया सहमत न थे। मित्रों ने कई बार सन्धि और समझौते का प्रयत्न किया। लाला जी के अनुरोध पर निश्चय किया गया कि असेम्बली तथा कौंसिल आफ स्टेट के सदस्य अर्थ बिल की स्वीकृति के विरोध में वोट देकर धारा सभा से बाहर चले आएंगे। उस समय तक दल के नियमानुसार वह काम करते रहेंगे। यह भी निश्चय किया गया था कि आवश्यकतानुसार एक स्पेशल कमेटी सदस्यों को धारा सभा में उपस्थित होने का आदेश दे सकेगी। इसका यह अर्थ था कि धारा सभा के मुख्य अधिवेशन को न छोड़ा जाय। लाला जी ने पंडित नेहरू के इसी प्रस्ताव का समर्थन किया था। मालवीय जी ने एक संक्षिप्त संशोधन पेश किया कि धारा सभा के कार्य को इस ढंग से चलाया जाय जिससे देश में शीघ्रातिशीघ्र उत्तरदायी शासन की स्थापना सम्भव हो सके। राष्ट्रीय हित के लिए सहयोग अथवा अवरोध जो भी आवश्यक हो, किया जाय। जयकर ने प्रस्ताव का अनुमोदन तो कर दिया, परन्तु साथ ही असेम्बली से उन्होंने अपने तथा केलकर के और मध्य प्रान्त कौंसिल से श्री मुंजे के त्यागपत्र की घोषणा कर दी।

श्री केलकर तथा जयकर से लालाजी के सम्बन्ध टूट गए और लालाजी को इसका दुख हुआ। यदि पंजाब की मित्रमण्डली अनुरोध न करती, तो लाला जी इससे भिन्न रूप में पग उठाते। श्रीमती लज्जावती, श्री सन्तानम्, तथा श्री अचिन्त-

राम के अनुरोध के सामने लाला जी झुक गए। इनमें से एक ने आगे चलकर कहा कि यदि हम यह जानते कि उनका श्री जयकर तथा महाराष्ट्र दल के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध है और उनके साथ सम्बन्ध बिगाड़कर लालाजी अत्यन्त बेचैन रहने लगेंगे तो हम कभी उनसे अनुरोध न करते। उनके विचार में कानपुर प्रस्ताव का अन्तिम रूप देश की राजनीतिक परिस्थिति के प्रतिकूल न था, परन्तु वह जयकर तथा महाराष्ट्र दल मे भी बिगाड़ के पक्ष में नहीं थे।

जिस बात की आशंका थी, वही हुई। महाराष्ट्र दल ने भी लालाजी के रवैये की तीव्र तथा कटु अलोचना शुरू कर दी जिसके बारे में लालाजी को शिकायत थी।

× × ×

लालाजी को ब्रह्मा में हिन्दू सम्मेलन के प्रधान बनने को निमंत्रित किया गया था। आपने निमंत्रण स्वीकार करते हुए, सम्मेलन के संयोजकों को लिखा कि धारा सभा के नयी दिल्ली वाले अधिवेशन तक सम्मेलन को स्थगित कर दिया जाय। उनकी ब्रह्मा देखने की अभिलाषा भी प्रबल थी। शायद वहां जाने से वह कानपुर की घटनाओं के बोझ को भी हल्का करना चाहते थे। लखनऊ से श्री अचिन्तराम को साथ लेकर आपने उस स्टीमर को जा पकड़ा जो नववर्ष के दिन कलकत्ता से ब्रह्मा को चलने वाला था।

आपने ब्रह्मा के मित्रों से भेंट की और वहां रहने वाले भारतीयों की समस्याओ पर समयोचित परामर्श दिया। आपने माण्डले के दुर्ग तथा दुर्ग के अन्दर उस बंगले के दर्शन भी किए जहां वह बन्दी रह चुके थे। आपने नवीन तथा प्राचीन मन्दिरों, मठों और मूर्तियों के दर्शन किए। पेशावर से अंग्रेजी सरकार ने ब्रह्मी पुजारियों को कुछ मूर्तियां भेंट की थीं, अब उनके लिए एक सुन्दर नवीन मन्दिर का निर्माण हो रहा था। "पीपुल" में उनकी लेखनी से ब्रह्मी लोगों के रीति-रिवाज वेशभूषा, ब्रह्मी महिलाओं के घुटनों मे भी नीचे तक लटकनेवाले लम्बे केशों आदि का सुन्दर वर्णन छपा। उन्होंने सुना था कि जब देशभक्त पुंगी उत्तम को जेल से मुक्त किया गया था तब तरुण ब्रह्मी महिलाओं ने उनके स्वागतार्थ सड़क को दोनों ओर से अपने केशों से ढक दिया था। अपने नेताओं के प्रति जनता की भावुकता का इससे बढ़कर उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता था! उन दिनों ब्रह्मा की धारा सभा में गैर-ब्रह्मियों को वहां से निकाल देने के बारे में एक बिल पेश था। लाला जी ने अपनी स्वाभाविक स्पष्टवादिता से परिस्थिति का इन शब्दों में वर्णन किया—

"भारतीयों का समय समाप्त हो चुका है। अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। अब भारतीयों के सहयोग तथा सहायता के बिना भी ब्रह्मा देश का

शासन तथा प्रबन्ध चलाया जा सकता है। वास्तव में ऐंग्लो-इंडियन शासकों, व्यापारियों तथा कारखानों के स्वामियों को हर्ष होगा, यदि ब्रह्मा से भारतीयों को सदा के लिए निकाल दिया जाय। मैं साफ-साफ कहता हूँ कि ब्रह्मा की समस्या को ब्रह्मा-वासियों के हितार्थ हल करना चाहिए, न कि किसी अन्य के लाभार्थ। मैं अपने देश-वासियों को परामर्श देता हूँ कि वे अपने आपको ब्रह्मी लोगों में मिला दें ताकि न तो उन्हें वहाँ विशेष प्रतिनिधित्व माँगने की आवश्यकता पड़े और ब्रह्मी लोग उन्हें विदेशी समझें।" इस हितकारी परामर्श को कार्यान्वित करने की किसी को भी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई, जिसका परिणाम भारतियों के संकटों में दृष्टिगोचर हुआ, जबकि १९४२ में उनको जापानी आक्रमणकारियों की बाढ़ के सामने भारत को भाग आने के लिये विवश होना पड़ा।

× × ×

ब्रह्मा से लालाजी असेम्बली के अधिवेशन में सम्मिलित होने मध्य जनवरी में नयी देहली पहुँचे। कुछ दिन बाद, आप स्वराज्य दल में नियमानुसार सम्मिलित हो गये। इस अधिवेशन में आपने कई बार प्रथम ट्रेड यूनियन बिल राजनीतिक कैदियों तथा निर्वासितों तथा रोजगार आदि विषयों के वाद-विवाद में भाग लिया।

यह अधिवेशन जारी ही था कि देहली में राजा नरेन्द्रनाथ की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें लालाजी ने प्रमुख भाग लिया। वास्तव में महासभा की नीति निर्माण की बागडोर मुख्यतः मालवीयजी तथा लालाजी के हाथों में थी। राजा साहब को भी उन्हीं की इच्छा से प्रधान चुना गया था। उस संस्था का एक प्रबल दल इस बात के पक्ष में था कि आगामी साधारण चुनावों में हिन्दू महासभा अपने उम्मीदवार खड़ा करे। लालाजी तथा मालवीयजी ने इसका विरोध किया और बहुमत से यह पास किया गया कि स्थानीय असाधारण स्थितियों को सामने रखते हुए जहाँ अत्यन्त आवश्यक हो, केवल वहीं महासभा के प्रतिनिधि खड़े किए जायँ।

मार्च में अभी धारा सभा का अधिवेशन चल ही रहा था कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन देहली में हुआ, जिसमें कानपुर वाले "वाक आउट" वाले प्रस्ताव में भारी परिवर्तन कर दिया गया। अब यह निश्चय किया गया कि अर्थ बिल की अस्वीकृति तक "वाक आउट" को स्थगित न किया जाय। इससे कानपुर प्रस्ताव को संशोधित किया गया था। लालाजी ने आपत्ति उठायी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को पूर्ण कांग्रेस के पास किए प्रस्ताव को संशोधित करने अथवा बदलने का कोई अधिकार नहीं है। आपत्ति स्वीकार कर ली गयी, परन्तु

अध्याय चौदह

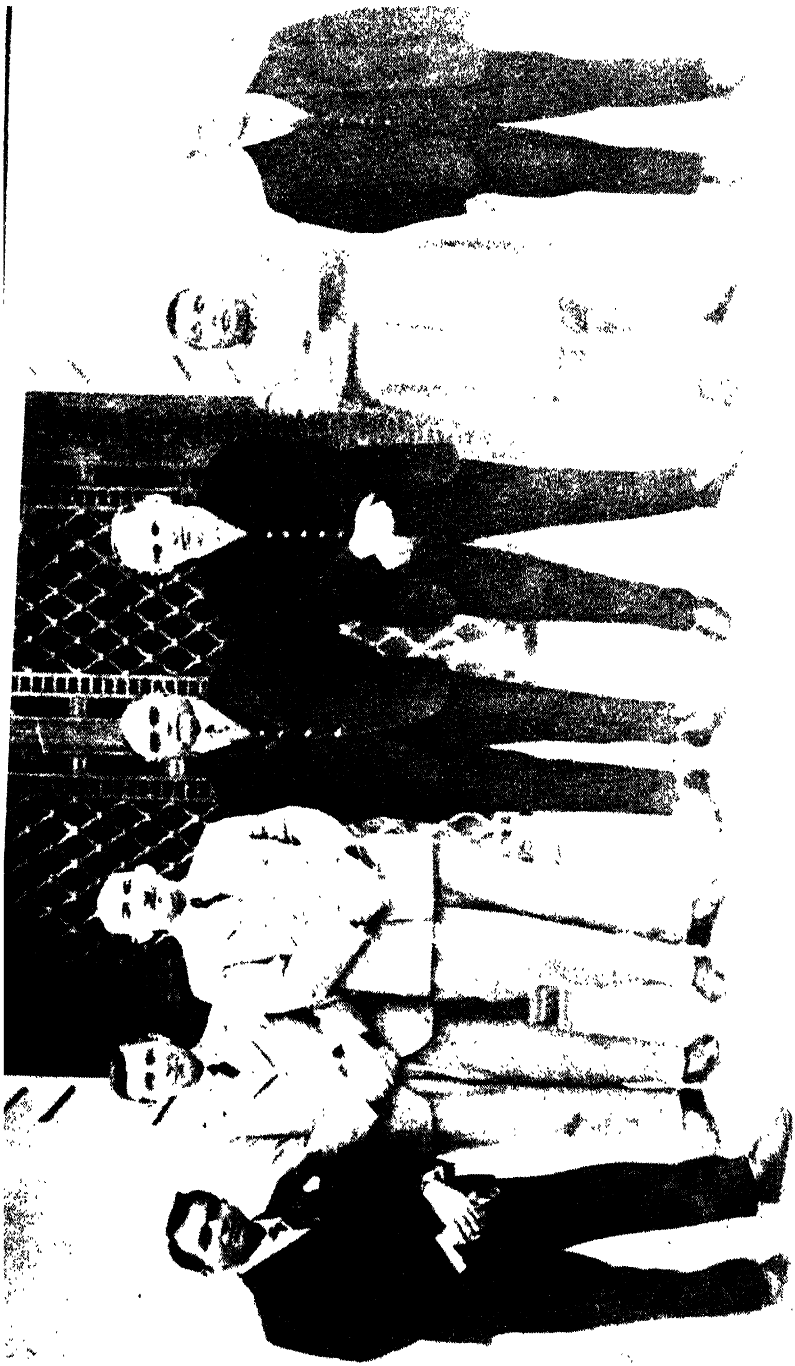
जेनेवा में मज़दूरों के प्रतिनिधि के रूप में

जेनेवा में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन के कार्यक्रम का मुख्य विषय जहाजों पर प्रवासियों के निरीक्षण को सरल करना था। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि लालाजी की दिलचस्पी इस प्रश्न में कहाँ तक थी। १९१४ में आप काँग्रेस के प्रतिनिधि बन कर इण्डिया बिल की धाराओं के बारे में लन्दन गए थे। इस बार के प्रश्न में उनकी दिलचस्पी १९१४ से भी कहीं कम थी।

इस सम्मेलन में संसार भर से प्रतिनिधिगण एकत्रित होते थे; कार्यक्रम कुछ ही क्यों न हो, उनके लिए कई प्रतिनिधियों के साथ मैत्री पूर्ण हाथ मिलाना ही महत्त्वपूर्ण था।

भारतीय ट्रेड यूनियन आन्दोलन में लालाजी की दिलचस्पी का श्रीगणेश जैसा कि हम देख चुके हैं, १९२० में हुआ था, जब आप कलकत्ता में होने वाले भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस के प्रथम अधिवेशन के प्रधान बने थे। उसके अनन्तर आप निरन्तर ट्रेड यूनियन काँग्रेस की कार्यकारिणी समिति में रहे और महत्त्वपूर्ण परामर्शों में यथाशक्ति भाग लेते रहे। उन्होंने पञ्जाब में भी ट्रेड यूनियनों के संगठन में कुछ दिलचस्पी ली और नार्थ वेस्टर्न रेलवे के हड़तालियों को भी आप सहायता और निर्देश देते रहे। उनकी यह प्रबल हार्दिक अभिलाषा रही कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन के निर्माण में वह किसी न किसी प्रकार सहायक सिद्ध हों, यद्यपि अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण उनको इस कार्य के लिए यथेष्ट समय नहीं मिलता था। जब अवसर आया तब उन्होंने लोक सेवक मण्डल के दो नवयुवकों को मजदूर सभा के कार्य के लिए कानपुर भेज दिया।

श्री हरिहरनाथ शास्त्री तथा श्री राजाराम शास्त्री – दोनों वहाँ के प्रभावशाली ट्रेड यूनियन नेता बन गये। उनके समाचार पत्रों – विशेषतः "पीपुल" से मजदूर तथा साम्यवादी आन्दोलन को उन प्रारम्भिक दिनों में महत्त्वपूर्ण समर्थन प्राप्त होता रहा। जब आप केन्द्रीय असेम्बली में पहुँचे तब वहाँ भी आपका विचार एक पार्लियामेन्टरी लेबर दल बनाने का था। यही कारण है कि आपने स्वराज्य दल में सम्मिलित होने के लिए पण्डित मोतीलाल नेहरू के निमन्त्रण को स्वीकार करते



हुए लिखा था कि मैं मजदूरों का दृष्टिकोण पेश करने के लिए स्वतन्त्र रहूँगा। उनका विचार था कि विशेष कार्यों के लिए, असेम्बली में एक मजदूर दल स्थापित किया जाय, यद्यपि उसमें उन्हीं विशेष कार्यों के लिए, कांग्रेस लिबरल, मुस्लिम लीग तथा स्वतन्त्र सदस्य भी शामिल हो सकते थे। दीवान चमनलाल, श्री एन० एम० जोशी तथा स्वयं लालाजी द्वारा इसका श्रीगणेश होना था। लालाजी ने इस विषय में तारिणी पी० सिंह से कई बार बातचीत की। कई कारणों से वह योजना स्थगित ही होती गयी और मजदूर दल नहीं बन पाया।

सिद्धान्तप्रिय काँग्रेसियों ने प्रश्न उठाया कि क्या अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन को जाने की नामजदगी किसी काँग्रेसी को स्वीकार करनी चाहिए? यदि हाँ, तो असेम्बली से वाक-आउट कर लेने के बाद भी यह उचित है अथवा नहीं? मार्च में देहली में अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी में ये प्रश्न उठे थे कि क्या वी० जी० पटेल को असेम्बली के प्रधान पद को छोड़ देना चाहिए? क्या पण्डित मोतीलाल को स्कीन कमेटी का सदस्य बने रहना चाहिए? और लालाजी के मजदूर सम्मेलन के प्रतिनिधित्व के बारे में यही प्रश्न दुहराया गया। प्रधान ने इस पर विवाद की अनुमति नहीं दी और निर्णय हुआ कि श्री पटेल असेम्बली के स्पीकर बने रहें और नेहरू भी स्कीन कमेटी के सदस्य बने रहें (यद्यपि आगे चलकर उन्होंनें स्वयं त्यागपत्र दे दिया।)। काँग्रेस के प्रधान तथा स्वराज्य दल के नेताओं का दृष्टिकोण इस बारे में बिलकुल स्पष्ट था कि अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन के लिए लालाजी के चुनाव का वाक-आउट के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है और लालाजी स्वयं भी अपने मन मे स्पष्ट थे कि वह मजदूरों के चुने हुए प्रतिनिधि के रूप में जा रहे हैं, न कि सरकार की ओर से मनोनीत होकर, और भारतीय मजदूरों की सेवा तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क उत्पन्न करने का ऐसा बहुमूल्य अवसर कभी हाथ से नहीं गँवाना चाहिए।

वह बम्बई से जा ही रहे थे कि भारत के नये वाइसराय लार्ड इर्विन (अब लार्ड हेलीफैक्स) के प्राइवेट सेक्रेटरी का तार उनको पहुँचा कि दक्षिण अफ्रीका की यूनियन सरकार भारतीय प्रवासियों की शाश्वत समस्या के बारे में एक गोल मेज कान्फ्रेन्स बुलाने पर सहमत हो गयी है।" लालाजी ने वायसराय के शुभ प्रयत्नों का धन्यवाद देते हुए, जवाबी तार द्वारा उनका स्वागत किया।

इस बार आप पी० एण्ड ओ० कम्पनी के एक बहुत बड़े और नये ढंग के जहाज पर यात्रा कर रहे थे, जिसमें बिजली के पंखों के अभाव के होते हुए भी कमरों और कोठरियों में ताजी हवा का सन्तोषजनक प्रबन्ध था, यद्यपि उसमें भोजन का प्रबन्ध इटालियन जहाजों की अपेक्षा कहीं घटिया था।

पी० एण्ड ओ० कम्पनी के जहाजों में जाति भेद की प्रबलता के कारण भारतीय उद्योगवाद के पिता, जमशेद टाटा को भारतीय जहाजी कम्पनी की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उस समय से स्थिति काफी बदल गयी है, परन्तु उक्त कम्पनी के वातावरण से जाति भेद पूर्णतया दूर नहीं हुआ। "इस जहाज में केवल दो ही जातियों के यात्री होते थे—ऐंग्लो इण्डियन तथा भारतीय। एक दिन खाना खाते समय हम छः हिन्दुस्तानियों को भी वहीं बिठलाया गया, जहाँ कुछ ऐंग्लो इण्डियन बैठे थे। एक ही मेज पर आमने-सामने दोनों जातियों के छः-छः यात्रियों के बैठने का प्रबन्ध किया गया था। भोजन के समय केवल दो ही ऐंग्लो इण्डियन आए और अपने सामने हिन्दुस्तानियों को बैठा देख कर व्याकुल से हो गए और खानसामे को बुला कर आज्ञा दी कि उन्हें किसी अन्य मेज पर बदल दिया जाय। उस रात तो बेचारा खानसामा कुछ न कर सका। अगले दिन वह भोजन करने ही न आए। ऐंग्लो इण्डियन महाशयों ने फिर कभी उधर मुख नहीं दिखलाया।" लालाजी ने खुद लिखा।

७ मई की प्रातः लालाजी मारसेल्ज उतरे और उसी समय पेरिस को चल दिये। जेनेवा का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मई के अन्त में होने वाला था। उन दिनों इंग्लैण्ड में महान् हड़ताल जोरों पर थी जिसमें क्रामवेल के बाद इंग्लैण्ड का दूसरा गृहयुद्ध कहा जाता था। अपना भारी सामान उन्होंने लन्दन भिजवा दिया, परन्तु स्वयं वहाँ जाना उन्हें उचित न लगा। श्री पोलक ने उन्हें तार द्वारा परामर्श दिया कि आप अभी कुछ दिन पेरिस ही ठहरें। हड़ताल की समाप्ति पर आप लन्दन पहुँचें।

पेरिस में आप मोतियों के व्यापारी एस० आर० राना के यहाँ ठहरे और वहाँ आप कई मित्रों से मिले।

आपका जिन व्यक्तियों से नवीन सम्पर्क हुआ वह फ्रेंच साम्यवादी दल के सर्वोच्च नेता जीन लाँगे थे जो कार्ल मार्क्स के नाती थे। उनके विचार कम्यूनिस्ट न थे और वह आशा कर रहे थे कि शीघ्र ही वे किसान शक्ति प्राप्त करके रूस में कम्यूनिज्म की इतिश्री कर देंगे।

लन्दन में आप केवल एक सप्ताह ही ठहरे जहाँ मित्रों से भेंट करने, हड़ताल के बारे में जनमत जानने, नाभा के केस के बारे में अपने सालिसिटर पोलक से बात-चीत करने और इंग्लैण्ड में तैयार हो रही प्रथम भारतीय फिल्म (लाइट आफ एशिया) "एशिया की विभूति" देखने में आपका समय व्यतीत हुआ।

२६ मई से अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन आरम्भ हुआ। लालाजी का भाषण "पूर्व में मजदूरों की स्थिति" पर हुआ। २ जून को जब डायरेक्टरों की

रिपोर्ट पेश हुई तब लालाजी ने आरम्भ में ही दो प्रस्ताव पेश कर दिये। पहला प्रस्ताव तो यह था कि अफ्रीका तथा अमेरिका में काले तथा देशी मजदूरों की स्थिति की जाँच करायी जाय। कुछ संशोधनों के पश्चात् प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। दूसरा प्रस्ताव यह था कि कई वर्ष हुए, सम्मेलन ने भारत में एक संवाददाता नियुक्त करने का निश्चय किया था, परन्तु गत चार वर्षों से उस प्रश्न पर धनाभाव के कारण कुछ भी नहीं किया गया।

लालाजी का मुख्य भाषण २ जून को हुआ। कानपुर से उनको तार मिला कि भारत में भी आठ घण्टे के दिन पर जोर दिया जाय। परन्तु आप अच्छी तरह जानते थे कि अभी तक तो योरुप के प्रमुख देशों ने भी आठ घण्टे को स्वीकार नहीं किया और उसी वर्ष लन्दन में इसी विषय पर एक सम्मेलन हुआ था। वह यह भी जानते थे कि भारतवर्ष अपने मुख्य प्रतिद्वन्द्वी जापान से आगे नहीं जा सकता। उन्होंने जापानियों से अनुरोध किया कि वे इस बारे में पहल करें। उन्होंने अपने भाषण में स्वीकार किया कि अंग्रेजी भारत तथा देशी रियासतों में बेगार की प्रथा अभी चल रही है। इस बात से भारत सरकार के मुख्य प्रतिनिधि सर ए० सी० चटर्जी नाराज हो गए। लालाजी ने सम्मेलन के प्रधान को पत्र लिखते हुए इस मामले की जाँच की माँग की और वचन दिया कि ज्यों ही मैं भारत लौटूंगा, अपने वक्तव्य के समर्थन में अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय को प्रमाण भेजूंगा। लालाजी की प्रार्थना पर वह पत्र सम्मेलन के रिकार्ड में शामिल कर लिया गया। भारत आकर लालाजी ने अपना वचन पूरा किया। सर ए० सी० चटर्जी ने सचमुच उसकी माँग की थी।

लालाजी सम्मेलन के उदार वातावरण से काफी प्रभावित हुए। निस्सन्देह लोग (राष्ट्र संघ) में अंग्रेजों की तूती बोलती थी, परन्तु मजदूर सम्मेलन अपने ढंग पर चल रहा था और वहाँ अंग्रेजों की किसी को परवाह न थी। इसका यह भी एक कारण था कि लालाजी चाहते थे कि भारतवर्ष को इधर अधिक ध्यान देना चाहिए और वास्तविक भारतीय प्रतिनिधियों का पूरा दल वहाँ भेजना चाहिए। उस सम्मेलन में तो भारत के केवल चार ही प्रतिनिधि गए थे। सर ए० सी० चटर्जी, तथा सर लूई कर्शा सरकारी प्रतिनिधि, सर आर्थर फ्रूम कारखानेदारों की ओर से तथा लालाजी मजदूरों के प्रतिनिधि थे। यह प्रतिनिधियों की न्यूनतम संख्या थी। केवल सरकारी प्रतिनिधियों का एक सेक्रेटरी था। कारखानेदारों तथा मजदूरों के प्रतिनिधि के साथ न तो कोई स्थानापन्न सदस्य था और न कोई परामर्शदाता। इस प्रतिनिधि मण्डल में केवल दो ही भारतीय थे। सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी के मैनेजर एस० एन० हाजी ने सम्मेलन के संचालकों को एक जोरदार पत्र लिखते हुए बतलाया कि सर आर्थर फ्रूम तो केवल योरुपियन

व्यापार मण्डल के प्रतिनिधि हैं। भारतीय व्यापार मण्डल की ओर से बोलने का उन्हें कोई अधिकार नहीं। विशेषज्ञ सहायकों के अभाव को लालाजी ने बुरी तरह अनुभव किया। समस्त सम्मेलन में ३० देशों के प्रतिनिधि भाग ले रहे थे। केवल लालाजी तथा सर ए० सी० चटर्जी ही ऐसे प्रतिनिधि थे जिनके साथ कोई सहायक अथवा परामर्शदाता न था। इसके मुकाबले में जापान के १५ प्रतिनिधि थे और स्थानापन्न प्रतिनिधियों, सहायकों तथा परामर्शदाताओं की अधिक-से-अधिक उपस्थिति थी। उन्होंने यह भी नोट किया कि जापानी इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय अवसरों से पूरा-पूरा लाभ उठा रहे हैं।

अमेरिका से लौटने के बाद लालाजी के लिए तो यह प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन था, अतः उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क पैदा करने में उसका यथासम्भव श्रेष्ठ उपयोग किया। ३ जून को लालाजी की ओर से भोज दिया गया जिसमें योरुपियन तथा पूर्वीय देशों के लगभग सभी प्रमुख प्रतिनिधि जिनमें फ्रेंच साम्यवादी नेता जूहा, आयरिश फ्री स्टेट के श्री डफ्फी, जापान के नारासक्की तथा सुज़ुकी, इंग्लैण्ड के पग, बेन टिलिट तथा मार्गरेट बेण्ड फील्ड (जो आगे चलकर लेडी चटर्जी बनीं) सम्मिलित हुए। इनके अतिरिक्त स्विटजरलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, हालैण्ड, जर्मनी, बलगेरिया, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधिगण भी उपस्थित थे।

अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय के प्रधान श्री आर्थर फर्तेन तथा उसके महा-मन्त्री एक अन्य फ्रेंचमैन अलबर्ट थामस थे। सभी कमेटियों के प्रधान नान-ब्रिटिश थे।(Non-British) सम्मेलन ने डच प्रतिनिधियों के नेता श्री नोलेन्स को प्रधान चुना। वहाँ अंग्रेजों को किसी प्रकार की प्रधानता प्राप्त न थी। सम्मेलन के आरम्भ में ही ब्रिटिश पूंजीपतियों के प्रतिनिधियों ने आपत्ति उठायी कि सम्मेलन को कार्यक्रम के अनुसार उक्त बातों पर विवाद करने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने अंग्रेजी जहाजी कम्पनियों की ओर से सम्मेलन के बहिष्कार की धमकी भी दी। सम्मेलन में इस धमकी पर काफी असन्तोष फैला और भारी बहुमत से ब्रिटिश प्रस्ताव गिर गया। इस प्रकार की आपत्तियाँ खड़ा करने से ही ब्रिटिश प्रतिनिधियों के सम्मेलन के प्रति उत्साह का अनुमान किया जा सकता है। उससे एक वर्ष पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन में (Anthrox) की बीमारी पर विवाद हुआ था। उस समय अंग्रेजों में भारी उत्साह पाया जाता था। इन मामलों के प्रति साधारणतः उदासीन और लापरवाह रहने वाली भारत सरकार भी जनता को ऐन्थ्राक्स के भय के बारे में चेतावनी दे रही थी—उदाहरण के तौर पर सस्ते जापानी दातों के ब्रुशों से सावधान रहने को कहा गया था। सम्मेलन में भी भेड़ों द्वारा मनष्यों में

एन्थ्राक्स के कीटाणु पहुँचने की बाबत बहुत कुछ कहा गया। ऊनी कपड़ा बुनने वाली सभी मिलों को कहा गया था कि अपने कारखानों में एन्थ्राक्स से ऊन को शुद्ध रखने के लिए विशेष प्रकार की मशीनें लगवावें। जापानी मिलों को विशेषतः अपराधी वतलाया गया था। मिलों में काम करने वाले मजदूरों के प्रति भारी सहानुभूति प्रकट की गयी थी। सम्मेलन की समाप्ति के अवसर पर किसी मनचले ने माँग कर दी कि ऐसी मिलों में एन्थ्राक्स के केसों के आँकड़े तो पेश किये जायँ। आँकड़ों से ज्ञात हुआ कि एक अथवा दो से अधिक केस नहीं हुए और वह भी सन्दिग्ध से केस थे। इस सम्मेलन में ब्रिटिश प्रतिनिधि तथा अंग्रेजी प्रेस बिलकुल उदासीन थे।

उन दिनों जवाहरलाल नेहरू अपनी धर्मपत्नी कमला की बीमारी के कारण स्विटजरलैण्ड थे, उन्होंने दर्शक के रूप में सम्मेलन को देखा। अन्य भारतीय दर्शकों में डा० तारकनाथ दास (अब संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिक बन गए हैं), चीनी के रसायनिक श्री गोहरदास तथा उनकी अमरीकन पत्नी फरीदा, एस० एन० साजी तथा श्रीमती हाजी थे। जेनेवा में लाला जी ने अपने पुराने मित्र श्यामजी कृष्ण वर्मा के दर्शन भी किए, जो उन दिनों अत्यन्त दुखी तथा उदास और संसार के अन्य क्रान्तिकारियों* (रूनी, मैजिनी, क्रोपा टकिन तथा लेमी आदि जो स्विटजर-लैण्ड में निवास करते थे) से सर्वथा भिन्न प्रकार के थे। अन्य क्रान्तिकारी तो निर्धनता के कारण कष्ट में थे, परन्तु श्यामजी धन के बाहुल्य के होते हुए कंगाली का जीवन व्यतीत कर रहे थे। आप किसी प्रकार का प्रोपेगण्डा नहीं कर रहे थे और केवल दिन काट रहे थे। समीप ही रोमाँ रोलाँ रहते थे। लालाजी उनसे भेंट करने जाया करते थे।

सम्मेलन की समाप्ति पर लालाजी कुछ दिन लन्दन आकर ठहरे। यहाँ भी एक महत्त्वपूर्ण सम्मेलन वर्ल्ड माइग्रेशन काँग्रेस (World migration congress) नाम का हुआ और लालाजी को भारत का प्रतिनिधि बनने के लिए आमन्त्रित किया गया। लालाजी ने बड़े प्रबल और जोरदार शब्दों में रंग भेद समस्या पर विवाद किया और शायद इस भारतीय नेता की खरी-खरी तथा बेलाग बातें कुछ अंग्रेज और साम्राज्यवादी "मजदूरवादियों" को पसन्द नहीं आयीं।

इन दो सम्मेलनों द्वारा, आपका सम्पर्क संसार के कतिपय मजदूर तथा साम्य-वादी आन्दोलनों से हो गया। बहुत सी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के केन्द्र जेनेवा में भी आपका परिचय कई संस्थाओं से हुआ, विशेषतः वर्ल्ड पार्लियामेण्ट्स यूनियन (World Parliaments union) के कार्य में आपको रुचि हो गयी। अभी कुछ दिन पूर्व ही सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास भारत के प्रतिनिधि बन कर उनके

सम्मेलन में गये थे । लन्दन से एक घोषणापत्र—अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का—निकला जिसमें अनिवार्य भर्ती को रद्द कराने की माँग की गयी थी जिस पर रोमाँ रोलाँ, हेनरी बार्बूसे, टैगोर, लाजपतराय तथा गान्धीजी के हस्ताक्षर थे।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का वर्णन करते हुए, एक अन्य संस्था—जिसमें न तो मजदूरों के प्रतिनिधि थे और न उसका किसी मजदूर अथवा उग्रवादी आन्दोलन से कोई सम्बन्ध था—जिसमें लालाजी की दिलचस्पी थी वह थी एम्पारय पार्लिया मेण्टरी यूनियन (Empire Parliamentary union)। लालाजी तथा कुछ प्रमुख स्वराजी एसेम्बली के सदस्यों ने दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। भारत में उसकी एक शाखा स्थापित की गयी और अगले वर्ष दो स्वराजी सदस्य उसकी ओर से कैनेडा तथा आस्ट्रेलिया गए। स्वराज्य दल की नीति इस कार्य में कोई बाधा नहीं डालती थी।

लालाजी अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय के निजी भवन के खुलने के संस्कार के समय भी उपस्थित थे। भवन के छत, फर्श तथा दीवालों पर जो लकड़ी लगायी गयी थी, वह बहुत बढ़िया प्रकार की थी और भारतवर्ष की ओर से राष्ट्र संघ को भेंट की गयी थी, परन्तु "टाइम्स" ने बड़े गर्व से उसे इंग्लैण्ड की भेंट का नाम दिया। राष्ट्र संघ के इस निजी भव्य भवन का नाम स्वर्गीय अमेरिकन राष्ट्रपति की स्मृति में विल्सन भवन रक्खा गया।

जिन दिनों लालाजी लन्दन में थे, भारतीय करेंसी पर शाही कमीशन के अध्यक्ष सर हिल्टन यंग अपनी रिपोर्ट तैयार कर रहे थे। सभी को ज्ञात है कि इसी कमीशन की सिफारिश के अनुसार ही सरकार ने १८ पेन्स प्रति रुपया विनिमय दर का निश्चय किया था। अधिकांश भारतीय अर्थशास्त्रज्ञ १६ पेन्स को ही भारत के हितार्थ ठीक और उचित समझते थे। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास भी इसी कमीशन के सदस्य थे और अपने साथियों के १८ पेन्स वाले सुझाव को भारत के लिए हानिकारक समझते थे और उनके अन्य सुझावों को भी सन्देह की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने लालाजी से परामर्श किया और उनको अपनी कठिनाइयाँ बतलायीं। लालाजी ने उन्हें मजबूत रहने और अपने साथियों की सम्मति के सामने न दबने का अनुरोध किया। यद्यपि लालाजी विशेषज्ञ के रूप में कुछ नये सुझाव देने में तो असमर्थ थे, परन्तु उन्होंने सर पुरुषोत्तमदास को अपने विचारों पर डटे रहने का अनुरोध करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से देश सेवा में भाग लिया।

नाभा के महाराजा के केस के कारण लालाजी को कुछ दिन अधिक लन्दन ठहरना पड़ा। महाराजा का एक आदमी लालाजी के साथ गया था, परन्तु उसके पास केस के पूर्ण कागजात न थे। लालाजी ने अपने सालिसीटर श्री पोलक से

सलाह ली, परन्तु जब तक पूरे कागजात वहाँ न पहुँचें, कुछ भी नहीं हो सकता था। जब बार-बार पत्रों और तारों द्वारा भी याद दिलाने पर भी भारत से कागजात न पहुँचे तो लालाजी ने अनिश्चित काल तक लन्दन ठहरना कठिन समझा और आप भारत लौट पड़े। नाभा के महाराजा बहुत बिगड़े, परन्तु परिस्थिति को समझ कर उन्होंने लालाजी से अपने बिगड़ने पर खेद प्रकट किया। अगले वर्ष जब फिर लालाजी योरुप जाने लगे, तब उन्होंने लालाजी से प्रार्थना की कि आप मेरे लिए कुछ मामलात पर विलायत में कानूनी परामर्श प्राप्त करें। लालाजी सहर्ष मान गये।

१९२६ में जब वह लन्दन में थे, तब लालाजी नेशनल लिबरल क्लब में शामिल हो गये और अभी वह उसके पूरी तरह सदस्य भी नहीं बन पाए थे कि उनसे एक नियम भंग हो गया। भारत की वापसी से एक सप्ताह पूर्व टाइम्स में "भारत में साम्प्रदायिक झगड़े" पर लालाजी का एक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें लेखक का क्लब का पता दिया हुआ था। मन्त्री ने उनका ध्यान क्लब के उस नियम की ओर दिलाया कि कोई सदस्य क्लब की कमेटी की अनुमति बिना क्लब का नाम अथवा पता इस्तेमाल नहीं कर सकता।

बीटरीस वेब ने हाल ही में अपनी आत्मलिखित जीवनी "My Apprben ticespip" के नाम से प्रकाशित की थी। लालाजी को वह पुस्तक इतनी पसन्द आयी कि जब वह भारत को लौटे, तो कई दिनों तक उसी की चर्चा करते रहे। उन्होंने न केवल उसकी पीपुल में उत्साहपूर्वक आलोचना ही लिखी, प्रत्युत उसकी कई प्रतियाँ जो अपने साथ लाये थे, अपने मित्रों को भेंट भी की। एक प्रति लज्जावती को और शायद एक प्रति पुत्रवधू श्रीमती अमृतराय को दी गयी और उसकी भारी प्रशंसा की गयी।

वापसी यात्रा में आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, वैज्ञानिक, उनके साथ जहाज में थे। आचार्य राय अपनी आत्मकथा लिख रहे थे और बड़े उत्साह से आत्मकथा के वे अध्याय लालाजी को पढ़कर सुनाने लगे जो उन्होंने समाप्त कर लिए थे। वह उस पर लालाजी की सम्मति अथवा आलोचना माँगते थे और, जैसा कि उनकी आदत थी, बार-बार लालाजी से प्रश्न करते "क्या आप समझ रहे हैं ?" जहाँ इससे कभी-कभी लालाजी का मनोरंजन होता था, वहाँ कभी-कभी वह बिगड़ भी उठते थे और कहते, "मैं पूरी तरह समझ रहा हूँ, परन्तु ईश्वर के लिए बार-बार मुझसे यह प्रश्न मत पूछिये।"

१३ अगस्त को आप बम्बई उतरे।

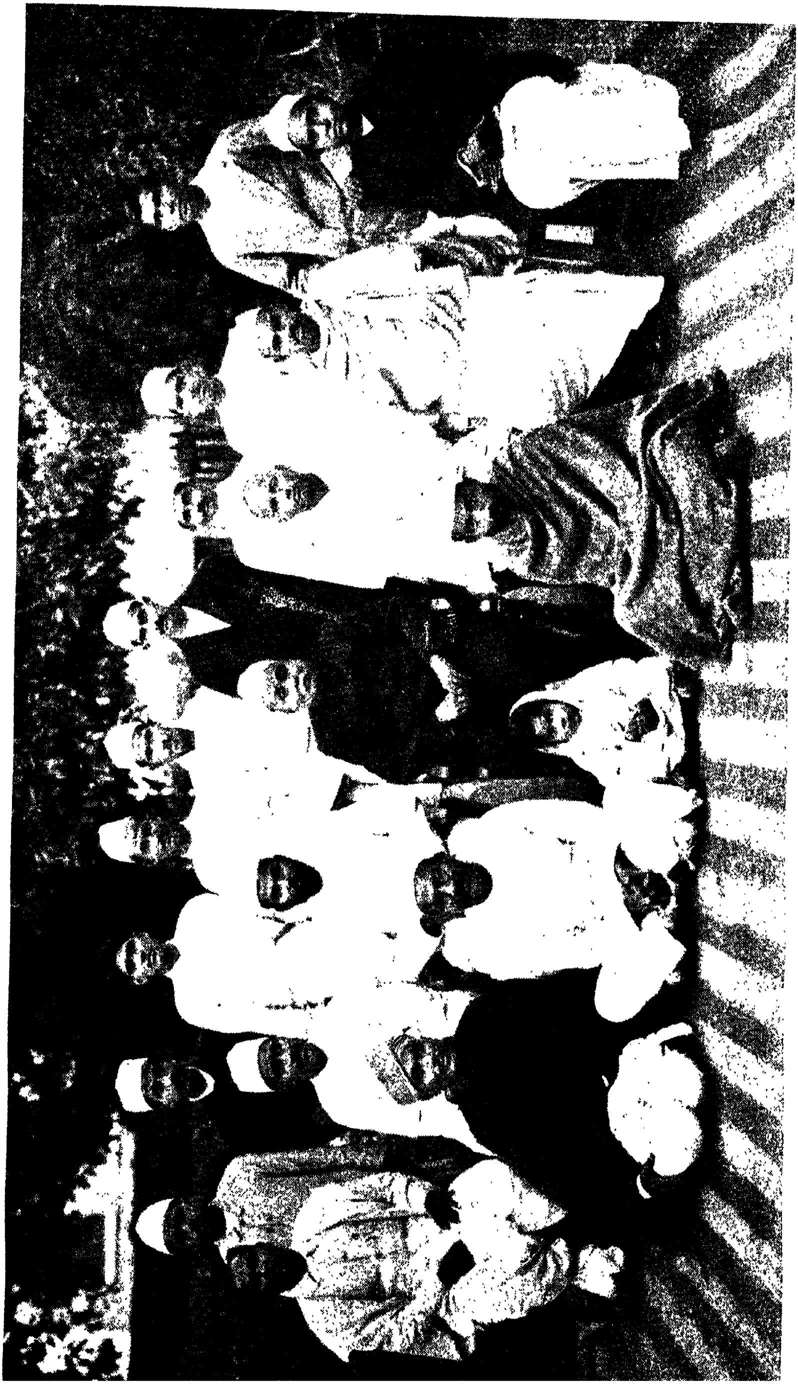
अध्याय पन्द्रह

लोक सेवक मण्डल

१९०५ में कांग्रेस तथा इण्डियन एसोसिएशन की ओर से प्रतिनिधि बनकर लालाजी इंग्लैण्ड जा रहे थे। पंजाब की इण्डियन एसोसिएशन ने उनके व्यय के लिए ३०००) रु० जमा किये। जब लालाजी लौट आये, तो उन्होंने घोषणा की कि "यात्रा का व्यय तो मैंने अपनी जेब से किया है और मुझे भेंट किए गए धन का उपयोग शिक्षा कार्य में किया जायगा।" उक्त धन का कुछ भाग तो डी० ए० वी० कालेज को दे दिया गया और कुछ भाग कुछ चुने हुए विद्यार्थियों की राजनीतिक शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियाँ देने के लिए पृथक् रख लिया गया। इंग्लैण्ड जाते हुए, आप कुछ दिन पूना में ठहरे थे। जो कुछ आपने वहाँ देखा, उससे आप अति प्रभावित हुए थे। अभी हाल ही में १९०५ में ही श्री गोपालकृष्ण गोखले ने भारत सेवक मण्डल (सर्वेण्टस आफ इण्डिया सोसायटी) की स्थापना की थी। वास्तव में लालाजी अपने प्रान्त में भी उसी ढंग की संस्था चाहते थे। राजनीतिक शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियाँ देने की योजना उसी उद्देश्य का श्रीगणेश था। उन छात्रवृत्तियों के प्रबन्ध आदि के लिए लालाजी ने एक छोटी सी कमेटी की घोषणा भी कर दी जिसमें लाला (आगे चलकर सर) शादीलाल का नाम था। पोस्ट-ग्रेजुएट अध्ययन के लिए सर्वप्रथम नाम (पण्डित) सुन्दरलाल का चुना गया जो उन दिनों लाहौर में विद्यार्थी थे और जिन्होंने कई वर्ष बाद इलाहाबाद को अपने राजनीतिक कार्य का केन्द्र बनाया।

लोक सेवक मण्डल के विचार का इतिहास लालाजी के शब्दों में इस प्रकार है :—

"केवल निर्वाह मात्र पर, शिक्षा के मिशनरियों का वर्ग पैदा करने का श्रेय मराठों को है। दक्षिण शिक्षा समिति ने सर्वप्रथम ऐसी योजना को जन्म दिया जिसमें अध्यापकगण केवल निर्वाहमात्र धन लेकर २० वर्ष तक सेवा करने का बीड़ा उठाते थे। स्वर्गीय श्री गोखले ने भी इसी प्रकार अपना नाम भर्ती कराया। फर्गूसन कालेज में अपनी २० वर्ष की अवधि समाप्त करने पर उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि मानव कार्यों के अन्य विभागों



की तरह राजनीति में भी अपना सारा समय (२४ घण्टे) देने वाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है और शौकिया तौर पर कभी-कभार काम करने वाले राजनीतिज्ञ अपने कार्य तथा देश के प्रति समुचित रूप से कर्तव्य पालन नहीं कर सकते। मातृ-भूमि की सबसे भारी जरूरत अपना समस्त समय देने वाले राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं जिन्होंने आत्म त्याग तथा दरिद्रता के जीवन का व्रत ले रखा हो। इस विचार को सन्मुख रखकर श्री गोखले ने भारत सेवा मण्डल की नींव रखी जिसमें राजनीतिक तथा सामाजिक सेवा के लिए कुछ चुने हुए नवयुवकों को ट्रेनिंग दी जाती थी। उक्त विचार को उच्च तथा सामयिक समझ कर श्री गोखले के कुछ मित्रों तथा सहकारियों ने उनकी आर्थिक सहायता करके उस विचार को क्रियात्मक रूप देना सम्भव बना दिया।"

१९०५ में मुझे पहले पहल श्री गोखले तथा लोकमान्य तिलक के सम्पर्क में आने और उनके चरणों में बैठ कर राजनीतिक पाठ पढ़ने के लिए पूना जाने का अवसर प्राप्त हुआ। पूना में मैंने उनसे जिन विभिन्न विषयों पर वार्तालाप किया, उनमें से एक यह भी था कि मातृभूमि की सामाजिक तथा राजनीतिक सेवा के लिए युवकों की ट्रेनिंग के लिए कुछ मण्डल अथवा समितियाँ स्थापित की जायँ। मैं उन दिनों इण्डियन नेशनल काँग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैण्ड जा रहा था। वहाँ से लौटते ही मैंने कुछ चुने हुए युवकों को छात्रवृत्तियाँ देकर राजनीति की ट्रेनिंग देने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। मेरे इण्डियन एसोसिएशन लाहौर के मित्रों ने मेरे विलायत जाने के खर्चे के लिए जो धन दिया था, वह इस कार्य के लिए प्रथम दान था। परन्तु १९०७ में मेरे निर्वासन ने सारी योजना को खटाई में डाल दिया। मेरे १९०७, १९१० तथा १९१४ के संकटों, सार्वजनिक कार्यों मे संलग्नता तथा निराशाओं ने इन दिनों मुझे काफी समय तथा काफी विश्राम न लेने दिया कि मैं उक्त विचार को विकसित करके उसे व्यावहारिक रूप दे सकता। १९१४ में मैं संयुक्त राज्य अमेरिका चला गया, जहाँ परिस्थितियों ने मुझे ५ वर्षों तक ठहरने को विवश किया।

अमेरिका में मैंने बहुत कुछ सीखा तथा बहुत कुछ भुलाया। अमेरिका की कतिपय संस्थाओं ने मुझे आकर्षित किया और मैं कभी-कभी विद्यार्थी तथा अध्यापक के रूप में उनसे लाभ उठाता रहा। उनमें एक संस्था न्यूयार्क का समाजशास्त्र का रैण्ड स्कूल (Rand School) था, जहाँ राजनीति, अर्थशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों की शिक्षा का प्रबन्ध उन लोगों के लिए था जिनकी परिस्थितियाँ विश्वविद्यालयों तथा विद्यालयों की शिक्षा से लाभ उठाने के अनुकूल नहीं थीं। यह संस्था थोड़ा बहुत आत्मावलम्बन के ढंग पर चलती है। विद्यार्थियों से जो फीस प्राप्त होती

हैं वही पुरस्कार के रूप में अध्यापकों को दी जाती है। संस्था के पास थोड़ासा स्थायी कोष भी है जिसकी आय से मकान का भाड़ा तथा अन्य फुटकर खर्च चलता है। साधारण स्कूल से बढ़ते बढ़ते अब यह संस्था एक महान् शिक्षणालय का रूप धारण कर चुकी है। अब संस्था के निजी विशाल भवन तथा भारी पुस्तकालय भी हैं। उसका निजी व्याख्यान भवन भी है जिसे नाटक शाला के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। संस्था की ओर से एक पुस्तकों की दूकान तथा रेस्तोराँ भी चलते हैं। मैंने न्यूयार्क रहकर राजनीति तथा समाज विज्ञान की खासी शिक्षा प्राप्त की और वहाँ से एक विचार जो मुझे प्राप्त हुआ वह यह था कि मेरे देश को भी इस प्रकार की संस्थाओं की भारी आवश्यकता है।

"दिसम्बर १९१९ में, पूरे एक वर्ष की प्रतीक्षा के बाद, मुझे हिन्दुस्तान लौटने का अनुमति-पत्र मिला। मैं २० फरवरी १९२० को बम्बई उतरा और एक वर्ष के भीतर ही न्यूयार्क के रैण्ड स्कूल के ढंग का एक राजनीति विद्यालय स्थापन करने की स्कीम बनाना आरम्भ कर दिया। अगस्त १९२० में, मृत्यु के निर्दयी हाथ ने भारत माता को एक अलौकिक सपूत की सेवाओं से वञ्चित कर दिया—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का स्वर्गवास हो गया। उस महापुरुष की स्मृति में भिन्न-भिन्न प्रान्तों की जनता ने भिन्न-भिन्न आयोजनाएँ पेश कीं। किसी भी भारतवासी के प्रति इतनी देशव्यापी श्रद्धा तथा भक्ति का प्रदर्शन नहीं किया गया जितना कि लोकमान्य के स्वर्गारोहण के अवसर पर जनता ने किया। तिलक प्रथम भारतवासी थे जिनके प्रति समस्त देश के सभी भागों की समस्त जातियों तथा श्रेणियों ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और अभी तक उनकी सेवाओं की पुण्य स्मृति उसी तरह ताजी है। उन का जीवन भी अलौकिक था और उनका निधन भी अलौकिक हुआ।"

"लोकमान्य की मृत्यु ने मेरे राजनीति विद्यालय की आयोजना को दृढ़ कर दिया और मैंने तत्काल ही (उनके नाम पर ही) "तिलक राजनीति विद्यालय" उसका नाम रखने का फैसला कर लिया। परन्तु शीघ्र ही हम सभी असहयोग आन्दोलन में व्यस्त हो गए। तिलक राजनीति विद्यालय का वास्तविक कार्य दिसम्बर १९२० से आरम्भ हुआ। शिक्षा कार्य के लिए दो तीन वैतनिक अध्यापक रख लिए गए और कुछ अन्य सज्जनों ने भी कुछ भी पुरस्कार लिए बिना व्याख्यान देना स्वीकार कर लिया। योग्य तथा सुपात्र विद्यार्थियों को १५) रु० से २५) रु० मासिक की छात्रवृत्तियाँ दी गयीं और नियमपूर्वक पढ़ाई चालू हो गयी। १९२१ में असहयोग आन्दोलन के अंग के रूप में एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खोला गया जिसका मुख्योद्देश्य राजनीति तथा अर्थशास्त्र की विशेष रूप से शिक्षा देना था। राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना से तिलक राजनीतिक विद्यालय की स्कीम

और रंगरूप में भारी परिवर्तन करना आवश्यक हो गया। तिलक राजनीति विद्यालय के अध्यापकों की सेवाएँ तथा राजनीति और अर्थशास्त्र की पढ़ाई राष्ट्रीय महाविद्यालय को दे दी गयीं। तिलक स्कूल नवयुवकों को छात्रवृत्तियाँ उसी प्रकार देता रहा—क्योंकि वे सभी विद्यार्थी राष्ट्रीय (कौमी) महाविद्यालय में प्रविष्ट हो गए थे।

"तिलक राजनीति विद्यालय की एक विशेषता यह थी कि उसका लक्ष्य मातृभूमि की सामाजिक तथा राजनीतिक सेवा के लिए जीवन अर्पण करने वाले युवकों की ट्रेनिंग का यथेष्ट प्रबन्ध करना था। यह ट्रेनिंग सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार की होनी थी, क्योंकि विचार था कि समाजशास्त्रों की ठोस शिक्षा के साथ ही साथ उनको समाज सेवा के लिए उचित अवसर भी प्रदान किए जायँ जिससे वह ग्रन्थों से प्राप्त सिद्धान्तों की परीक्षा कर सकें।"

यह कार्य भारत सेवक मण्डल के ढंग पर संचालित आजीवन सदस्यों के एक मण्डल द्वारा हो सकता था। अतः आजीवन सदस्यों की एक योजना बनायी गयी और सोसाइटी मण्डल तथा एक सर्वांगपूर्ण पुस्तकालय की स्थापना के लिए एक स्थायी कोष प्राप्त करने के लिए धन संग्रह का गम्भीर प्रयत्न आरम्भ कर दिया गया। अक्तूबर १९२१ में महात्मा गान्धी के पवित्र कर कमलों द्वारा लोक सेवक मण्डल का ((Servants of the People Society) जिसका मुख्य कार्य तिलक राजनीति विद्यालय का सञ्चालन, था उद्घाटन उसी मकान में किया गया जहाँ से लेखक को १९०७ में निर्वासित किया गया था। लेखक ने यह भवन मण्डल को दान में दे दिया था। लेखक का एक पुस्तकालय भी जिसमें लगभग चार हजार ग्रन्थ थे, मण्डल को दान में मिला था। मण्डल में प्रविष्ट होने वाले प्रथम तीन सदस्य १. लाला फिरोजचन्द, बी० ए०, २. लाला अचिन्तराम बी० ए० तथा ३. लाला पुरुषोत्तमलाल सोन्धी, बी० ए० थे। मण्डल को रजिस्टर्ड करा लिया गया। मण्डल ही समस्त सम्पत्ति का स्वामी है।

तिलक राजनीति विद्यालय २ वर्ष तक चलता रहा। राष्ट्रीय महाविद्यालय के खुल जाने पर उसका कार्य बन्द हो गया—उसके अध्यापक तथा कार्य राष्ट्रीय महाविद्यालय के सुपुर्द कर दिए गए। उस समय से मण्डल का मुख्य कार्य समाज सेवा तथा राजनीतिक प्रचार ही रहा है।

"आजकल, मण्डल का शिक्षण कार्य स्थगित है। मण्डल, राष्ट्रीय सेवा के लिए युवकों को ट्रेनिंग देने का कार्य कर रहा है। शुरू से ही एक प्रकार के राष्ट्रीय सेवक पैदा करने का विचार उसका रहा है जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थों तथा सांसारिक उन्नति के भाव को तिलाञ्जलि देकर, सेवा भाव से प्रेरित होकर अपना सारा

समय राष्ट्रसेवा में अर्पण कर सके। वह मण्डल द्वारा नियत किए पुरस्कार से ही सन्तुष्ट हैं और अपेक्षाकृत गरीबी का जीवन ही व्यतीत करते हैं जो कि एक उच्च आदर्श है। वह आत्मोत्सर्ग तथा सेवा भाव से कार्य करते हैं और अपने ढंग से उनका जीवन अन्य लोगों के लिए एक उज्ज्वल उदाहरण तथा प्रकाशस्तम्भ का काम दे रहा है। मातृभूमि की सेवा में जीवन अर्पण करने वाले, अन्य लोग भी हैं जिनका सम्बन्ध किसी संस्था से नहीं, परन्तु धार्मिक संस्थाओं को छोड़कर, पूना का भारत सेवा मण्डल तथा लाहौर का लोक सेवक मण्डल ही केवल दो संगठित मिशनरी संस्थाएँ हैं जो साधारण राष्ट्रीय सेवा का कार्य कर रही हैं।"

आगामी वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर भाषण करते हुए लालाजी ने श्रोताओं को बतलाया:—

"कुछ कारणों से सोसाइटी के फण्ड में वृद्धि नहीं हो सकी। उसका एक कारण यह है कि मैं इधर कुछ ध्यान अथवा समय नहीं दे सका। मुझे आशा है कि अब सोसाइटी के धनसंग्रह के लिए अधिक समय दे सकूंगा। धन के बारे में मैं विशेषतः अपने पंजाबी भाइयों से कुछ शब्द कहना चाहता हूं। कुल दो लाख रुपए में से २५ हजार से अधिक पंजाब से जमा नहीं किया जा सका। . . .कुछ दिनों से मुझे पंजाबियों से शिकायत है कि वह मुझ पर दयालु नहीं रहे। मैंने सोसाइटी का केस आपके सामने रक्खा है। सोसाइटी आपकी सहायता की अधिकारिणी है। लगभग १८ नवयुवक इसमें कार्य कर रहे हैं। आपको इसकी सहायता करनी चाहिए।"

लालाजी को जहां पंजाबियों से शिकायत थी कि वह उनकी आर्थिक सहायता नहीं करते, वहां उन्होंने स्वयं निजी भवन दान करने की उदारता दिखलायी थी। जिस दो लाख रुपये के बारे में आपने कहा था, उसमें यह मकान शामिल न था। दूसरों से दान देने की अपील करने से पूर्व, लालाजी सदैव स्वयं दान दिया करते थे। जब उन्होंने घोषणा की कि वह २, कोर्ट स्ट्रीट वाला अपना निजी भवन तिलक राजनीति विद्यालय को दान दे रहे हैं, और उसके लिए एक ट्रस्ट बना रहे हैं तो आपने यह कहा था कि भवन के हाते में आप अपने तथा अपने परिवार के लिए एक एक कुटिया बनायेंगे शायद अपने परिवार वालों को यह समाचार बतलाने का यह ढंग उन्होंने इसलिए बर्ता हो कि उनकी ओर से किसी प्रकार के विरोध की सम्भावना न रहे। आगे चल कर उन्होंने ट्रस्टियों के सामने इस शर्त का कभी भी जिक्र नहीं किया। ट्रस्ट में लाला दुनीचन्द बैरिस्टर, भाई परमानन्द, लाला रामप्रसाद और लाला जसवन्त राय थे और स्वयं लालाजी उसके आजीवन प्रधान थे। अपनी धर्मपत्नी तथा छोटे पुत्र के लिए लाला जी ने अपने धन से एक मकान बनवा दिया और उनके ज्येष्ठ पुत्र ने, जो एक व्यापारी

थे, अपने खर्च पर पृथक मकान बनवा लिया। जिस मकान में, किसी समय उनका मुंशी रहा करता था, उन्होंने अपने सुपुत्री को दे दिया। इस प्रकार अहाते का दक्षिणी भाग लाला जी के निजी परिवार के लिए पृथक कर लिया गया।

तिलक राजनीति विद्यालय को आजीवन सदस्यों की संस्था में परिणित करने के विचार को अन्तिम रूप १६२१ के वसन्त में रावलपिण्डी में होने वाले एक राजनैतिक सम्मेलन के अवसर पर मिला। प्रथम तीन युवक, जिन्होंने असहयोग आन्दोलन के दिनों में अपनी कालिज की पढ़ाई (Post graduate) छोड़ी थी, आपके पास थे। सोसायटी का उद्‌घाटन अक्टूबर में महात्मा गान्धी के पंजाब पधारने पर उन्हींके द्वारा हुआ। चार नवयुवकों ने अग्नि को साक्षी मानकर दीक्षा ली। तीन उपरोक्त नवयुवकों के अतिरिक्त लखीमपुर के एक असहयोगी वकील—हरनामसुन्दर लाल भी सदस्य बनाए गए (इन चार युवकों में से दो अपने व्यक्तिगत कारणों से २० साल की अवधि पूर्ण करने से पूर्व ही सोसायटी को छोड़ गए। एक छपे हुए पृष्ठ पर कुछ संक्षिप्त तथा साधारण नियम लिखे थे जिसमें २० वर्ष तक कार्य करने की प्रतिज्ञा थी। लाला जी लिखित प्रतिज्ञाओं के लिए बहुत उत्सुक नहीं थे। उनके लिए अग्नि के सम्मुख प्रतिज्ञा ही पर्याप्त थी।

शीघ्र ही, असहयोगी के रूप में लाला जी को जेल जाना पड़ा। गिरफ्तारी से पूर्व ही उन्होंने अपने एक ट्रस्टी, भाई परमानन्द को, अपनी अनुपस्थिति में स्थानापन्न डायरेक्टर नियत कर दिया। गिरफ्तारी से पूर्व कुछ अन्य सदस्य भी आपने भर्ती किए और उनकी अनुपस्थिति में स्थानापन्न डायरेक्टर ने भी कुछ सदस्य लिए। आपने अपने एक (अमरीका में) सहकारी, धारवाड़ (कर्नाटक) के श्री डी० एस० वी० राव को भी बुला लिया और उसे द्वारकादास पुस्तकालय का अध्यक्ष बना दिया। लाला जी की इच्छा थी कि द्वारकादास पुस्तकालय में इतिहास तथा समाजविज्ञान के सुन्दर ग्रन्थों का अनुपम संग्रहालय बने।

जेल से लालाजी ने तिलक राजनीति विद्यालय अथवा लोक सेवक मंडल के नवयुवक सदस्यों के नाम एक पत्र लिखा जिससे उनके मानसिक भावों तथा विचारों का पता चलता है कि वह उनसे किस प्रकार के जीवन व्यतीत करने की आशा और इच्छा रखते थे और वह किस प्रकार की ट्रेनिंग उन्हें देना चाहते थे। उस पत्र के कुछ भाग हम उद्धृत करते हैं।

तिलक राजनीति विद्यालय के समस्त सदस्यों तथा विद्यार्थियों के नाम

मेरे प्रिय युवको,

मुझे इस बात का दुख है कि तुम्हारे विद्यार्थी जीवन तथा सदस्यता के आरम्भ

में ही मुझे तुम्हारी संगति से वंचित होना पड़ा। मेरा जी चाहता है कि अपने समय का एक यथेष्ट भाग तुम्हारी सेवा में लगाता और तुम्हारी ट्रेनिंग के काल में तुम्हारे अध्ययन में तुम्हारी सहायता करता। अच्छा, मैं यहां भी तुम्हारी सेवा कर रहा हूं। मुझे आशा है कि मेरी अनुपस्थिति के कारण तुम अपने उत्तरदायित्व को पहले से कहीं अधिक अनुभव करोगे। इस मण्डल के सदस्य बनने तथा इस विद्यालय के विद्यार्थी बनने का तुम्हारा उद्देश्य यह है कि तुम अपने देश तथा जाति की सेवा करने के योग्य बन जाओ और तुममें वे त्रुटियां तथा अभाव न रहें जो उन देशसेवकों में थीं जिन्हें इस कार्य के लिए नियमपूर्वक ट्रेनिंग प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला। संसार के प्रत्येक कार्य के लिए ट्रेनिंग की आवश्यकता होती है। शिक्षा विभाग में काम करने वालों के लिए ट्रेनिंग कालिज हैं। डाक्टर बनने के लिए मेडिकल कालेज और वकील बनने के लिए कानून कालिज हैं। इसी प्रकार तिलक राजनीतिक विद्यालय इसलिए स्थापित किया गया है कि राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने वालों को ट्रेनिंग दी जावे। देश की स्वतंत्रता तथा उन्नति उसके राजनीतिक कार्यकर्ताओं की दूरदर्शिता, पवित्रता तथा त्याग की भावना पर अवलंबित है। परन्तु इन सभी गुणों के होते हुए भी यदि उनमें ज्ञान तथा योग्यता का अभाव हो तो तब भी उनके प्रयत्न सफल नहीं हो सकते। राजनीतिक कार्यकर्ताओं में योग्यता, प्रतिभा, विवेक तथा ज्ञान की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि उच्चाचरण, आत्मोत्सर्ग तथा देशभक्ति की। मेरी प्रबल इच्छा थी कि मैं स्वयं तुम्हारे चरित्र निर्माण तथा सद्-गुणों के विकास में तुम्हारी सहायता करता। अब तुम्हें स्वावलम्बी बनना पड़ेगा। तुम्हारे शिक्षण तथा ट्रेनिंग के लिए मैं कुछ सामान्य विचार प्रकट करना चाहता हूं। मुझे आशा है कि तुम ध्यान से मेरी बातें सुनकर उनके अनुसार आचरण करोगे।

(१) शिक्षा के दो भाग होने चाहिएं। एक साधारण शिक्षा और दूसरी विशेष शिक्षा के लिए विशाल सामान्य शिक्षा का होना नितान्त आवश्यक, बल्कि विशेषज्ञता अनिवार्य है। तुम्हारी सामान्य शिक्षा में निम्नलिखित अंश जरूरी हैं:—

(क) इतिहास का विशाल ज्ञान। सोसाइटी के प्रत्येक सदस्य को संसार के इतिहास का इतना गम्भीर ज्ञान होना चाहिए कि वह प्रत्येक देश, प्रत्येक युग और प्रत्येक स्थिति के बारे में ठीक ठीक सम्मति बना सके। अर्वाचीन इतिहास (जिसमें इंग्लैण्ड, जर्मनी, इटली, रूस, फ्रांस, आयर्लैंड तथा अमेरिका विशेषत: महत्वपूर्ण हैं) के अतिरिक्त यूनान तथा रोम के प्राचीन इतिहास तथा मध्यकालीन इतिहास से साधारण परिचय जरूरी है। चीन, जापान, ईरान तथा मिस्र का इतिहास भी जरूरी है। भारतीय इतिहास का पूर्ण ज्ञान तो तुम्हारे अध्ययन की दृढ़ नींव

होना चाहिए। इतिहास का अर्थ केवल राजनैतिक इतिहास ही नहीं, इसमें सांस्कृतिक इतिहास भी सम्मिलित है।

(ख) समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का साधारण ज्ञान भी आवश्यक है।

मेरी सम्मति में अच्छा होगा यदि तुम में से प्रत्येक वैलस की (Wells outline of History) इतिहास की रूपरेखा को एक बार पढ़ जाए। इस कार्य के लिए पुस्तकालय में उक्त पुस्तक की २ वा ३ प्रतियां मंगवा लेनी चाहिएं। उसी विषय पर एक अमेरिकन ग्रन्थ भी है वान लून की स्टोरी आफ मैंनकाइण्ड। (Vonloons story of Mankind) उसे भी पढ़ डालें।

समाजविज्ञान, राजनीतिशास्त्र तथा साधारण अर्थशास्त्र पर पुस्तकों की एक सूची तैयार कर लेनी चाहिए, जिसमें न्यून से न्यून चार पुस्तकें प्रति विषय की हों। इनमें से प्रत्येक सदस्य कम से कम दो पुस्तकें अवश्य पढ़ें। अधिक पुस्तकें पढ़ने की सब को पूर्ण स्वतंत्रता है।

छः मास तक, बल्कि एक वर्ष तक इन ग्रन्थों का अध्ययन जारी रहना चाहिए। उसके पश्चात् प्रत्येक विशेष पढ़ाई का एक विषय चुन ले, उदाहरणार्थ भारतीय इतिहास का अन्वेषण। शिक्षा के सिद्धान्तों अथवा व्यावहारिक ज्ञान का विशेष अध्ययन। सार्वजनिक आय-व्यय शास्त्र (पब्लिक फाइनेन्स)। स्थानीय स्वायत्त शासन (लोकलसेल्फ गवर्नमेण्ट) अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य इत्यादि।

प्रत्येक सदस्य को धार्मिक कर्तव्य के तौर पर कम से कम ५-६ घण्टे प्रति दिन पढ़ाई में लगाने चाहिए। पढ़ते समय अच्छा होगा यदि साथ ही साथ नोट भी लेते जावें।

(२) तुममें से प्रत्येक को कम से कम एक भारतीय भाषा में पूर्ण योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। बेहतर होगा कि यह भाषा हिन्दी ही हो, परन्तु मुझे कोई आपत्ति न होगी यदि तुममें से कोई उर्दू चुन ले। हिन्दी अथवा उर्दू के लिए कम से कम एक घण्टा प्रति दिन देना चाहिए।

अनुशासन में निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं:—

(क) तुममें से जो धर्म में विश्वास रखते हैं, उनका कर्तव्य है कि यथासमय नियमपूर्वक अपने धार्मिक कर्तव्य का पालन करें। अनिच्छा से अथवा बेपरवाही से कोई काम नहीं करना चाहिए। उदाहरणार्थ जो लोग सन्ध्या वा उपासना करते हों, उन्हें नियमपूर्वक समय पर सन्ध्या करनी चाहिए। यदि कभी भूल हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। अपनी इच्छानुकूल अथवा किसी अन्य कार्य के अभाव के समय सन्ध्योपासन नितान्त लच्चर तथा निरर्थक है।

(ख) व्यायाम। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शारीरिक दशा के अनुकूल विशेष प्रकार का व्यायाम चुन लेना चाहिए और उसे नियमपूर्वक करना चाहिए। बाग, बगीचे में काम करना भी व्यायाम है।

(ग) जिह्वा तथा स्वादेन्द्रिय का संयम—अपनी जिह्वा को पवित्र रखना एक कर्तव्य है। गाली गलौच तथा भद्दी असभ्य ग्रामीण भाषा से सदैव बचना चाहिए। तुम्हारी बातचीत तथा संभाषण का ढंग ऐसा मनोहर तथा मोहक हो कि उससे किसी के हृदय को दुख न पहुंचने पावे। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम ढोंगी अथवा धर्मध्वजी बन जायं। स्पष्टवाद तथा सत्यप्रियता का अर्थ वाणी की कठोरता तथा कर्कशता नहीं। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि प्रति दिन प्रातःकाल तथा सायंकाल आत्म परीक्षण करना सीखें अर्थात् अपने दिन भर के कार्यों तथा वचनों की परीक्षा करें और अपने अन्दर जो दोष दृष्टिगोचर हों, उनको निकालने की चेष्टा करें।

स्वादेन्द्रिय का संयम भी आवश्यक है। सारा दिन खाते रहना अथवा समय कुसमय जो कुछ सामने आवे उसे मुंह में डाल लेना भी हानिकारक आदत है। खाने पीने के समय नियत कर लेने चाहिए और यथासम्भव उन समयों को छोड़ कर कुछ न खाया जाय। सप्ताह में एक बार का उपवास भी अच्छा है। स्वादिष्ट पदार्थ खाना निन्दनीय नहीं है, परन्तु जिह्वा तथा आमाशय दोनों को संयम में रखना चाहिए।

(घ) जिस व्यक्ति को जो भी काम सुपुर्द किया जाय, वह उसे ईमानदारी, उत्साह तथा उत्तरदायित्व के साथ पूरा करे। उत्तरदायित्व की भावना अभी से अपने अन्दर पैदा करनी चाहिए। यदि हम अपने कार्य में असावधानी बर्तते हैं, अथवा उसे भद्दे, निकम्मे अथवा अनियमित ढंग से करते हैं तो हमारी अन्तरात्मा को उस पर दुख तथा खेद प्रकट करना चाहिए। जिस व्यक्ति की अन्तरात्मा उसकी पथ-प्रदर्शिका नहीं बनती, उसमें उत्तरदायित्व की भावना कभी नहीं आ सकती।

(च) यदि सोसाइटी ने किसी व्यक्ति को कोई पद दिया है अथवा उसे कोई विशेष कार्य करने को दिया गया है, तो जहां तक उस पद अथवा कार्य का सम्बन्ध है, उसका आज्ञा-पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है। तुम्हें आज्ञापालन का अभ्यास करना चाहिए। किसी व्यक्ति को सोसाइटी ने कोई पद दिया हो भले ही अन्य बातों में उक्त व्यक्ति से सोसाइटी घटिया अथवा समान स्तर को हो, उक्त व्यक्ति को उसकी आज्ञा अवश्य माननी चाहिए। यदि वह कोई ऐसी आज्ञा दे जो अनुचित है अथवा अन्यायपूर्ण है तो उसकी अपील डायरेक्टर अथवा कमेटी के पास करनी चाहिए, परन्तु अपनी इच्छा से उस आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए और न

उसका अपमान करना चाहिए। इसी प्रकार अपने कर्त्तव्य पालन के बारे में मंत्री जो निर्देश जारी करता है, उनको पूरी तरह मानना चाहिए। यदि वे दोषपूर्ण अथवा अरुचिकर हों, तो उनका नियमपूर्वक संशोधन कराना चाहिए।

पुस्तकालय की पुस्तकों के इस्तेमाल के बारे में काफी ध्यान तथा सावधानी रखनी चाहिए। पुस्तकें हमारी मित्र तथा साथी हैं। उनको प्रेम से रखना चाहिए। विद्यालय की प्रत्येक वस्तु को सावधानी से बरतना चाहिए, क्योंकि विद्यालय तुम्हारा अपना है। विद्यालय की किसी वस्तु की हानि तुम्हारी अपनी हानि है। विद्यालय की पुस्तकों, मेज कुर्सी आदि अथवा बर्तनों को असवाधानी से बरतने से विद्यालय को हानि होगी। अपनी वस्तुओं के उपयोग में सदा मितव्ययता की ओर ध्यान रखना चाहिए।

मैं चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन सुन्दर नियमित तथा शृंखलाबद्ध होना चाहिए। नौकरों पर आश्रित रहने की आदत छोड़ दो। यथासम्भव अपने काम अपने हाथ से किया करो। जो काम तुम स्वयं कर सकते हो, वह नौकरों से केवल इसलिए मत करवाओ कि वे खाली बैठे हैं। नौकरों के साथ प्रेम तथा समानता का व्यवहार करो। उनसे काम लेते समय उन पर सख्ती कदापि मत करो। छोटी सी हानि हो जाने पर नौकरों पर मत बिगड़ो और कभी गाली अथवा दुर्वचनों से उनकी भर्त्सना मत करो। अपने अधीन रहने वालों से प्रेम का व्यवहार न करने से हमारा जीवन नीच बन जाता है और कटु भाषण, मिथ्याभिमान, अहम्मन्यता तथा अन्याय और अत्याचार की आदतों की नींव पड़ जाती है।

तुम्हारे रहने के कमरे की प्रत्येक वस्तु सफाई तथा ढंग से रहनी चाहिए। भद्दापन तथा गड़बड़ी बुरी आदतें हैं। तुम्हें सदैव और सर्वत्र सौंदर्य तथा नियमित जीवन से प्यार करना सीखना चाहिए। मैल कुचैल अथवा भद्दापन को देख कर तुम्हारी आत्मा को दुखी हो उठना चाहिए। समस्त भारतवर्ष में पंजाबी स्वच्छता तथा सुशीलता के अभाव के कारण बदनाम हैं। हमें उस भाव को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वच्छतापूर्ण तथा शृंखलाबद्ध होना हमारे आचरण के आवश्यक अंग होने चाहिएं। कमरों की सफाई के लिए किसी नौकर की तथा वस्त्रों की स्वच्छता के लिए किसी धोबी की आवश्यकता नहीं। यदि सदा नहीं तो कभी कभी तो अवश्य अपने कपड़े स्वयं धो लेने चाहिएं और अपने बर्तन भी खुद शुद्ध कर लेने चाहिएं। मैं जेल में बैठा हुआ तुम्हारी अपेक्षा कहीं अधिक इन बातों के महत्व को अनुभव कर रहा हूं, क्योंकि यहां सब को अपना कार्य स्वयं करना पड़ता है। यद्यपि कुछ लोग मेरा काम कर देते हैं, परन्तु इससे मुझे दुख होता है।

सेवा भाव को अपने आचरण का आवश्यक अंग बनाना हमारे अनुशासन के

लिए अनिवार्य है। बिना किसी पुरस्कार की आशा के, तथा बिना किसी स्वार्थभाव के, निष्काम तथा निःस्वार्थ सेवा भाव अपने में पैदा करना चाहिए। बीमारों की शुश्रूषा करना भी सीखना चाहिए। कैदियों की सेवा करना, निर्धन बच्चों से प्रेम करना तथा उनको खिलाना पिलाना, चाहे वह कितने ही मैले कुचैले क्यों न हों, वर्ण, जाति तथा श्रेणी के भेद भाव को भुला कर स्त्री जाति की सहायता करना, अपना समय तथा शक्ति लगा कर दूसरों की भलाई करना यह हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। इस भावना का पोषण करने के लिए अपने मित्रों तथा कालिज के विद्यार्थियों के छोटे से क्षेत्र से श्रीगणेश करो और धीरे धीरे इस क्षेत्र को विशाल-तर बनाते जाओ।

मैं बलपूर्वक अनुरोध करूंगा कि तुममें से प्रत्येक हिन्दी अथवा उर्दू में दैनन्दिनी (डायरी) रक्खे जिसमें प्रति दिन अपने कार्यों तथा विचारों का विवरण लिखा करे। तुम्हारे पठन पाठन, स्वाध्याय तथा कार्य के फलस्वरूप जो विचार माला तुम्हारे मन में उठे उसे लेखबद्ध कर लिया करो।

अच्छा होगा यदि सोसाइटी के सभी सदस्यों की एक साप्ताहिक सभा हुआ करे जिसमें सोसायटी के प्रबन्ध तथा संचालन तथा पुस्तकालय और विद्यालय के विषय में विवाद हुआ करे। यदि इन सभाओं में किए गए निर्णय पदाधिकारियों को पसन्द न आएं तो अन्तिम निर्णय के लिए भाई परमानन्द से परामर्श ले लिया करें। (मेरी असावधानी से इस पत्र के प्रथम पृष्ठ पर स्याही के धब्बे पड़ गए हैं। उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं)।

नये सदस्य इस बात का ध्यान रखें कि दैनिक पत्रों और पत्रिकाओं की प्रतियां खराब न होने पावें।

यदि सम्भव हो तो विद्यालय के कार्य की एक मासिक रिपोर्ट मुझे पहुंचनी चाहिए। यह रिपोर्ट सोसाइटी के सदस्यों की ओर से होनी चाहिए और उनकी कमेटी द्वारा पास होनी चाहिए। यदि मंत्री कुछ और लिखना चाहें तो रिपोर्ट के अन्त में लिख दें अथवा पृथक रूप से भेज दें।

सब को प्रेम।

तुम्हारे कैदी मित्र की ओर से

उनके जेल से लौटने पर सोसाइटी पंजाब तथा यू० पी० के कई केन्द्रों में काम कर रही थी। विशेषतः अछूतोद्धार कार्य में कई सदस्य उनकी सहायता कर रहे थे। इसके अतिरिक्त वह कांग्रेस कार्य में तथा पत्र सम्पादन में भी लगे हुए थे। उन्होंने कानपुर में मजदूर संघ में काम का केन्द्र बना लिया।

मार्च १९२७ में सोसायटी ने सार्वजनिक रूप में श्री एस० श्रीनिवास आयंगर के सभापतित्व में अपना वार्षिकोत्सव मनाया। अगले वर्ष श्री एम० आर० जयकर के सभापतित्व में उत्सव हुआ। सोसायटी ने दो मंजिलों का एक भवन पीली कोठी के पूर्व में बनाने का निश्चय किया जिसमें व्याख्यानों के लिए एक हाल, द्वारकादास पुस्तकालय तथा वाचनालय के लिए हाल तथा कार्यालय के लिए कुछ कमरे सम्मिलित थे। नये भवन का नाम उसके संस्थापक के नाम पर लाजपतराय भवन रखा जाना निश्चित हुआ। पुरानी कोठी केवल निवास स्थान के रूप में ही काम आएगी। १९२८ में सोसाइटी के वार्षिकोत्सव के अवसर पर पं० मालवीय जी के कर-कमलों से लाजपतराय भवन की आधार-शिला रक्खी गयी। प्रस्तुत भवन पर चालीस हजार रुपये के व्यय का अनुमान किया गया जिसमें से पन्द्रह हजार रुपये जमा हो चुके थे।

सोसाइटी के डायरेक्टर ने काठियावाड़ के बलवन्तराय जी मेहता को सदस्य बना लिया और उड़ीसा में बाबू गोपबन्धुदास के अधीन सोसाइटी की एक शाखा खोल दी गयी। गोपबन्धु बाबू को सोसाइटी का उपप्रधान बनाया गया। १९२८ में लाहौर से लौटते हुए, गोपबन्धुदास बीमार पड़ गए और शीघ्र ही उनका देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु पर उड़ीसा प्रान्त, लालाजी तथा सोसायटी ने बहुत शोक मनाया। गोपबन्धु बाबू के स्थान में लाला जी ने इन पंक्तियों के लेखक को उपप्रधान चुन लिया। कुछ काल से लाला जी बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन को सोसाइटी में सम्मिलित करने पर विचार कर रहे थे। कुछ वर्ष पूर्व टण्डन जी पंजाब नेशनल बैंक के सेक्रेटरी के रूप में लाहौर आए हुए थे। लाहौर में पुरुषोत्तमदास टण्डन अधिकतर लाला जी के ज्येष्ठ पुत्र के २, कोर्ट स्ट्रीट वाले मकान में रहते थे अतः वह लालाजी तथा सोसायटी के घनिष्ठ सम्पर्क में थे। गोपबन्धु बाबू के स्वर्गवास के बाद लालाजी बा० पुरुषोत्तमदास को सोसाइटी में लेने को अति उत्सुक हो गए और यदि वह अनुरोध करते तो टण्डन जी को उनकी आज्ञा पालन में कोई संकोच न होता। परन्तु लालाजी ने सोचा कि जब तक टण्डन जी के बच्चे परिवार के पालन पोषण के योग्य नहीं हो जाते, उनसे त्याग की मांग करना अन्याय होगा।

लालाजी के स्वर्गवास पर सोसायटी के सदस्यों की इच्छा और अनुरोध से टण्डन जी सोसाइटी में सम्मिलित हो गए।

सोसाइटी के सदस्यों के साथ लालाजी के सम्बन्ध पिता और पुत्रों की तरह थे। जब कभी उनको सदस्यों की व्यक्तिगत कठिनाइयों और समस्याओं का पता चलता था, तो वह हर प्रकार से सहायता करते थे। राजनीतिक विचारों में वह अत्यन्त सहिष्णु और उदार थे और वह इस बात की आशा नहीं रखते थे कि सभी नवयुवक

सभी बातों में उनकी हां में हां मिलाएं। उदाहरणार्थ जब उन्होंने स्वतंत्र कांग्रेस दल की नींव रक्खी, तो वह जानते थे कि कुछ नवयुवक उनसे सहमत नहीं थे। उन्होंने इन पंक्तियों के लेखक को उक्त दल का मंत्री-पद देना चाहा, जिसे मैंने अस्वीकार कर दिया और लालाजी रत्ती भर भी रुष्ट नहीं हुए।

१९२६ के चुनाव में हम सभी ने बुरी तरह महसूस किया कि स्वराज्य दल तथा पंजाब कांग्रेस को लालाजी के विरुद्ध उमीदवार नहीं खड़ा करना चाहिए था, यद्यपि उनके कांग्रेस से भारी मतभेद थे। उनकी नीति से मतभेद होते हुए भी हम सब ने उनके लिए काम किया। उन्होंने हम में से किसी को विवश नहीं किया कि हम उनके दल के अन्य उम्मीदवारों के लिए काम करें। हममें से कुछ ने तो कांग्रेस उम्मीदवार को वोट दिए। हम में से एक सदस्य ने गलती से लालाजी के विरोधी उम्मीदवार के पक्ष में प्रकाशित एक वक्तव्य पर हस्ताक्षर कर दिये। विरोधियों ने इससे लाभ उठाना चाहा। लालाजी को यह बात पसन्द न आयी। हम सभी अनुभव कर रहे थे कि यह नहीं होना चाहिए था। परन्तु लालाजी ने उदारता से इस बातको जाने ही दिया और उस सदस्य के प्रति लालाजी के प्रेम में कोई किंचिन्मात्र भी फर्क न पड़ा।

× × ×

अन्त तक नयी तथा उपयोगी संस्थाओं के निर्माण में लालाजी के उत्साह में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। १९२८ में सोसाइटी के वार्षिकोत्सव के अवसर पर उन्होंने एक प्रस्तावित अस्पताल की घोषणा की।

आपने कहा "चार वर्ष हुए जब मैं मृत्यु शय्या पर पड़ा था, अपनी माताजी की स्मृति में एक महिला अस्पताल स्थापन करने का विचार मेरे मन में आया। यह कुछ अंशों में सार्वजनिक कार्य है और कुछ अंशों में व्यक्तिगत। अप्रैल १९२७ में मैंने अपनी सम्पत्ति का अनुमान लगाया तो वह एक लाख दस हजार रुपये की निकली। इसमें मेरी धर्मपत्नी के ४५ हजार रुपये भी सम्मिलित थे। इसमें वह धन भी शामिल था जो लण्डन के भारतीय विद्यार्थियों ने तथा लन्दन की मेडिकल प्रेक्टिशनर एसोसिएशन की ओर से मुझे भेंट किया गया था। यह लगभग २०० पौण्ड थे। जो धन मैंने पंजाब नेशनल बैंक तथा लक्ष्मी बीमा कम्पनी के डायरेक्टर के रूप में तथा महाराजा नाभा के परामर्शदाता के रूप में कमाया था वह भी इसी में शामिल था। इसमें से मैंने एक लाख रुपये स्त्रियों की डाक्टरी की सहायता तथा चिकित्सा के लिए दिए। १९२७ में मैंने एक ट्रस्ट तैयार कराया। मैंने इसकी घोषणा न की क्योंकि यह धन अपर्याप्त था। स्त्रियों तथा बच्चों की चिकित्सा के लिए फण्ड का

श्रीगणेश था। मेरा विश्वास है कि हमने अपनी स्त्रियों के कल्याण के लिए बहुत कम कार्य किया है। फिर मुझे योरुप जाना पड़ा और अगस्त में लौट कर अस्पताल के सिलसिले में कुछ करने का प्रयत्न किया। गत दिसम्बर में, मैंने धन संग्रह शुरू कर दिया। मेरे एक लाख रुपये के अतिरिक्त ७० हजार रुपये के वायदे हो चुके हैं जिनमें से लगभग ५७ हजार वसूल हो चुके हैं। मैंने उनको सरकारी सिक्योरिटी, जी० पी० नोटों तथा बैंकों के स्थिर कोष में जमा करा दिया है। यह समस्त धन एक ट्रस्ट के हवाले कर दिया गया है। आशा है कि मैं शीघ्र ही दो लाख रूपये संग्रह कर लूंगा। फिर हम फैसला करेंगे कि अस्पताल कहां खोलनी चाहिए। महिलाओं के अस्पताल के लिए दो प्रस्ताव हैं। एक तो यह है कि मेरी जन्म भूमि जगरांव में, अस्पताल खोला जाय, दूसरा क्षय रोग के बीमारों की चिकित्सा के लिए एक अस्पताल खुले। मेरा ट्रस्ट केवल डाक्टरी सहायता का कार्य ही कर सकता है। स्त्रियों के साथ बालकों को भी सम्मिलित किया जा सकता है, परन्तु पुरुषों को नहीं।"

तीन मास बाद डा० गोपीचन्द भार्गव को पत्र लिखते हुए लालाजी ने कहा—

"कुछ समय हुआ जब मैं अपनी माता जी की स्मृति में एक महिला अस्पताल के लिए धन संग्रह कर रहा था तो आपने, कर्नल डी० हकूमतराय, डा० निहालचन्द, राय बहादुर डा० महाराजकृष्ण तथा डा० एन० आर० धर्मवीर ने सुझाव किया था कि मेरी जन्म भूमि जगरांव में अस्पताल बनाने के बदले कहीं लाहौर के आसपास ही क्षयरोग वाली स्त्रियों के लिए एक अस्पताल स्थापित किया जावे। मुझे निम्नलिखित शर्तों पर वह बात स्वीकार है—

(१) कि आप तथा अन्य मित्र जिन्हें इस आयोजना में दिलचस्पी हो, लाहौर के आसपास उक्त अस्पताल के लिए उचित भूमि की खोज करें।

(२) आवश्यक मकानों के निर्माणार्थ आप काफी धन संग्रह करें। जो धन मैं ट्रस्टियों के हवाले करना चाहता हूं, वह यह है—

(क) एक लाख रुपये मेरा निजी धन,

(ख) ७५ हजार नकद जमा किया गया।

यह पौने दो लाख रुपये बैंकों में तथा सरकारी सिक्यूरिटियों में लगा दिया गया है।

२७ हजार रुपये के वायदे हैं जिनमें से पन्द्रह हजार नकद समझना चाहिए। वर्ष के अन्त तक मैं दो लाख पूरे कर दूंगा। १ जनवरी १९२९ को मैं ट्रस्टियों के हवाले दो लाख रुपए कर सकूंगा।

अब यह आपका काम है कि उचित भूमि का टुकड़ा प्राप्त करें तथा मकानों के लिए पर्याप्त धन एकत्र करें। इस पत्र का आप जो उपयोग करना चाहें, करें।

मेरी शर्त केवल इतनी ही होगी कि (१) संस्था का नाम मेरी माता जी श्रीमती गुलाब देवी के नाम पर होगा। (२) यह संस्था सब श्रेणियों, मतों तथा जातियों की स्त्रियों के लिए खुली रहेगी। हां, अछूत तथा दलित जाति की स्त्रियों को प्रवेश के विशेष अधिकार होंगे।"

लाला जी तथा उनके भाइयों ने अपने पिता जी की स्मृति में, पिता जी के जीवन काल ही में जगरांव में एक स्कूल खोल दिया था। एक अध्यापक का इससे बढ़कर और क्या स्मारक बनाया जा सकता है? स्त्रियों की चिकित्सा के लिए एक अस्पताल उनकी पूज्य माता जी की पुण्य स्मृति में सुपुत्र की ओर से सर्वश्रेष्ठ श्रद्धांजलि थी।

इस संस्था की योजना चिरकाल से उनके मन में थी। ट्रस्ट स्थापन करने से पूर्व उन्होंने महात्मा गान्धी से परामर्श मांगा। महात्मा गान्धी ने मैसूर से उनको दो पत्र लिखे जो नीचे दिए जाते हैं:—

प्रिय लाला जी,

आपका पत्र तथा ट्रस्ट के कागज मुझे मिल गए। इस निश्चय पर आपको बधाई हो। इस धन से तो मेरा विचार है, काम नहीं चल सकेगा। अभी अधिक धन की आवश्यकता होगी। उसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

नन्दी हिल — भवदीय

३०-४-२७ — एम० के० गान्धी

प्रियवर लाला जी,

उपरोक्त पत्र गत रात्रि को लिखा गया। मैंने आपको अपने पूरे विचारों से परिचित नहीं किया। मेरी बधाई में भी कुछ आलोचना का अंश था। वह अब लिखता हूं।

विचार अच्छा है, परन्तु कार्यप्रणाली दोषपूर्ण है। आपकी पत्नी तथा बच्चों को ट्रस्टी नहीं होना चाहिए। आपके ट्रस्टी वह होने चाहिएं जो आप के आदर्शों से पूर्णतः सहमत हों, और जो उनकी पूर्ति के लिए भारी से भारी कष्ट सहन करने को तैयार हों। यदि आपकी धर्मपत्नी, पुत्री तथा पुत्र में ये गुण है, तो आपके सम्बन्धी होते हुए भी ट्रस्टी रह सकते है।

अब मैंने पूर्ण सत्य कह दिया है और सर्वशक्तिमान् परमात्मा को धन्यवाद है कि उसने मुझे सत्य भाषण की शक्ति प्रदान की। इसके बिना मैं अपने उस कर्तव्य पालन में असमर्थ होता जो एक मित्र को करना चाहिए।

भवदीय

१-५-२७ — एम० के० गान्धी

महात्मा गान्धी की आलोचना के अनुसार, लाला जी ने प्रस्तावित ट्रस्ट में कुछ परिवर्तन कर दिए। वह अधिकतर अपने डाक्टर मित्रों पर और विशेषत: डा० एम० धर्मवीर पर, जो उनके भक्त थे और जिनके पास संस्था की देखभाल के लिए काफी समय तथा अवकाश था, निर्भर करते थे। डा० निहालचन्द सिकरी, डा० गोपीचन्द भार्गव, डा० डी० एच० राय, डा० महाराजकृष्ण कपूर तथा डा० बी० आर० खन्ना को ट्रस्ट में मनोनीत किया गया। लोक सेवक मण्डल की ओर से भी एक ट्रस्टी मनोनीत हो सकता था। महिलाओं की इस संस्था के महिला ट्रस्टी भी होने चाहिएं, इस लिए लालाजी ने अपनी पुत्री पार्वती देवी तथा कुमारी लज्जावती को चुना। लालाजी के पुत्र भी ट्रस्ट में लिए गए।

इस घोषणा के कुछ मास पीछे लालाजी चल बसे। उनके जीते जी अस्पताल का काम अधूरा ही रहा। ट्रस्ट ने योग्यतापूर्ण रीति से अपना कर्तव्य पालन किया और अस्पताल फिरोजपुर रोड पर लाहौर से ८ मील दूर, उनके विशाल भवन में आधुनिक सामग्री से सुसज्जित सफलता पूर्वक चल रहा है। महात्मा गान्धी के हाथों इसका उद्घाटन हुआ था। कई वर्षों तक डा० धर्मवीर ट्रस्ट के प्रधान रहे। फिर डा० महाराजकृष्ण प्रधान बने, परन्तु अपनी मृत्यु पर्यन्त अर्थात् १९३१ तक डा० धर्मवीर उसके मेडिकल सुपरिटेंडेंट रहे। आजकल डा० खन्ना तो मेडिकल सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं, डा० गोपीचन्द भार्गव ट्रस्ट के प्रधान और लोक सेवक मण्डल के मंत्री श्री मोहनलाल गुलाब देवी ट्रस्ट के भी मंत्री हैं। इस समय अस्पताल में ६० बिस्तरों का प्रबन्ध है और ट्रस्ट निकट भविष्य में इन्हें बढ़ाने की स्कीम सोच रहा है।

अपने अन्तिम दिनों में लाहौर की महिलाओं की सेवा के लिए लालाजी के मन में एक और संस्था का विचार भी था। इसके बारे में उन्होंने डा० गोपीचन्द भार्गव को लिखा:—

नवम्बर १९२६ में चुनाव के दिनों में मुझे एक दंगल देखने के लिए लाहौर हिन्दू व्यायाम शाला में जानेका अवसर मिला। वहां मैंने लाहौर के हिन्दुओं की शारीरिक उन्नति के प्रोत्साहन के लिए १० हजार रुपए जमा करने का वचन दिया था। उस समय से मैं अन्य सार्वजनिक कार्यों में व्यस्त रहा। मैं काफी दिनों तक तो बीमार रहा। मैं इस कारण भी धन संग्रह नहीं कर सका क्योंकि मैं महिलाओं के अस्पताल के लिए रुपया जमा करता रहा।

तुम यह भी जानते हो कि गत छ: मास से मैं कोशिश कर रहा हूँ कि लाहौर की स्त्रियों के मनोरंजन तथा शारीरिक उन्नति के लिए मैं लाहौर म्युनिसिपल कमेटी

का ध्यान आकर्षित करूँ मुझे बतलाया गया है कि व्यायामशाला के प्रबन्ध कर्ताओं को मुझ से शिकायत है कि चुनाव में सफल होने के लिए मैंने प्रतिज्ञा तो कर दी, परन्तु अभी तक उसे पूरा नहीं कर पाया, अतः वह आगामी चुनाव में मुझ से बदला निकालेंगे। इस प्रकार उन्होंने मेरे लिए धन संग्रह करना असम्भव बना दिया है।

तुम यह भी जानते हो कि लाहौर के हिन्दुओं की शारीरिक उन्नति के लिए मैं तुम को धन देता रहा हूं और तुम उसका सदुपयोग करते रहे हो। कुछ दिन से मैं लाहौर की हिन्दू स्त्रियों के मनोरंजन तथा शारीरिक उन्नति के बारे में अनुभव कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि पुरुषों की अपेक्षा उनकी आवश्यकता कहीं अधिक है। अतः लाहौर की हिन्दू स्त्रियों के कल्याणार्थ आपको ५ हजार रुपए देता हूं। यह धन मुझे अपनी पुस्तक "अन हेपी इंडिया" (Unhappy India) की रायल्टी के रूप में प्राप्त हुआ है। वास्तव में वह पुस्तक भी हिन्दू महिलाओं की मान रक्षा में लिखी गयी है, अतः यही उचित है कि उस पुस्तक की कमाई मैं हिन्दू बहनों के कल्याणार्थ ही खर्च करूं। मैं यह धन भी हस्पताल फण्ड में भेज सकता था, परन्तु इसे पृथक रखने और लोक सेवक मण्डल के सहायक सदस्य के रूप में आपके हवाले करने का निश्चय किया गया है। मेरी इच्छा है कि धन को खर्च किया जाय :—

(१) लाहौर नगर की स्त्रियों के लिए कमेटी के किसी बाग में एक व्यायाम शाला का निर्माण किया जाय।

(२) मध्यम वर्ग की युवक महिलाओं के लिए कहीं सिविल स्टेशन में कोई मनोरंजन का स्थान बनाया जाय। मेरा विचार है कि हिन्दू पुरुषों तथा स्त्रियों की शारीरिक उन्नति के लिए तुम को कम से कम १० हजार रुपए दूं और इस प्रकार अपना वचन पालन करूं। मुझे आशा है कि तुम इससे सहमत होगे।"

दुर्भाग्य से कई कारणों से लाला जी की इस इच्छा को व्यावहारिक रूप नहीं मिल सका, अर्थात् हिन्दू महिलाओं के लिए कोई व्यायामशाला अभी तक नहीं खुल सकी है।

अध्याय सोलह

"वन्देमातरम्" तथा "पीपुल"

अमेरिका मे लौटने के कुछ मास ही पीछे लाजपतराय ने उर्दू दैनिक "वन्दे मातरम्" का श्रीगणेश कर दिया। अपनी साहसपूर्ण नीति तथा शिक्षापूर्ण सामग्री के कारण यह तत्काल ही जनता में सर्वप्रिय हो गया। उसकी सफलता "पंजाबी" की अपेक्षा कहीं अधिक रही। असहयोग आन्दोलन के कारण उसकी ग्राहक संख्या इतनी बढ़ गयी जितनी कि पंजाब के किसी अन्य उर्दू दैनिक की आज तक नहीं हुई। इसके सम्पादन में अच्छे अच्छे व्यक्ति लगे हुए थे। उसकी समाचार प्राप्ति का प्रबन्ध उसके समकालीन पत्रों की अपेक्षा कहीं बढ़िया था। सन्त निहालसिंह जैसे प्रतिष्ठित संवाददाता लन्दन में इसका प्रतिनिधित्व करते थे। लालाजी स्वयं इसके सम्पादक थे और लाला रामप्रसाद जैसे योग्य लेखक। लाला जी स्वयं कभी कभी दफ्तर में आते थे, परन्तु लगभग प्रति दिन पत्र के लिए लिखते थे। (यात्रा के समय को छोड़कर) प्रातःकाल रामप्रसाद जी २, कोर्ट स्ट्रीट में दैनिक कान्फरेन्स के लिए आते थे। उन दिनों लाहौर से कोई भी पत्र प्रातःकाल प्रकाशित नहीं होता था, अतः "वन्देमातरम्" भी मध्याह्नोत्तर प्रकाशित होता था। अतः (सम्पादकों की) कान्फरेन्स प्रातःकाल ही होती थी। समाचार प्रकाशित करने में "वन्देमातरम्" सनसनी की अपेक्षा सत्य तथा गम्भीरता की ओर कहीं अधिक ध्यान देता था। दो अथवा अधिक कालमों के शीर्षक देने वाला यह प्रथम उर्दू पत्र था।

उच्च राजनीति तक ही इसका क्षेत्र सीमित नहीं था, देश भर में सार्वजनिक जुल्म-अन्याय तथा अत्याचार का भण्डाफोड़ना भी इसका कर्तव्य था। इससे अधिकारी वर्ग इससे रुष्ट हो गए। जेल शासन का भण्डाफोड़ करने के कारण इसे भारी कष्ट उठाने पड़े।

"वन्देमातरम्" ने क्रियात्मकरूप में दिखला दिया कि एक साहसपूर्ण तथा सर्वप्रिय संवाद पत्र इश्तहार देने वाले धनियों का भी किस प्रकार डटकर सामना कर सकता है। "वन्देमातरम्" ने प्रश्न उठाया कि क्या बृटिश इंडियन कार्पोरेशन के धारीवाल तथा लालइमली के कारखानों को स्वदेशी समझा जाय। उसने

उक्त मिलों के इश्तहार छापने से इनकार कर दिया। पत्र की नीति में हस्तक्षेप करना तो कहां, उन कारखानों के प्रबन्धकर्ता क्षमा मांगते फिरते थे और अपने इश्तहार छपवाने का भरसक प्रयत्न करते फिरते थे।

पंजाब कांग्रेस के प्रधान के रूप में लालाजी को जेल जाना पड़ा। शीघ्र ही "वन्देमातरम्" के सम्पादक के रूप में लाला रामप्रसाद भी जेल जा पहुंचे। असहयोग आन्दोलन के दिनों में "वन्देमातरम्" के ४-५ सम्पादक कारावास का दण्ड भुगत रहे थे।

यद्यपि अखबार की ग्राहक संख्या भारी थी, परन्तु इससे प्रबन्ध में शिथिलता आना स्वाभाविक था। (लालाजी की अनुपस्थिति में लाहौर वाले लाला दुनीचन्द ही मैनेजिंग डाइरेक्टर थे। अखबार के हिस्सेदारों में लाभ धन बांटा गया। (जेल मे लाला जी ने तिलक विद्यालय के एक सदस्य पी० एल० मोन्धी को मैनेजिंग डायरेक्टर नियत किया।

असहयोग आन्दोलन के ढीला पड़ते ही, अखबार की ग्राहक संख्या का घटना भी स्वाभाविक था। साम्प्रदायिक दंगों ने तो वातावरण को विषैला बना दिया और पत्र की ग्राहक संख्या बहुत गिर गयी।

उसके पश्चात् लालाजी ने फिर कभी उसका सम्पादक बनना पसन्द नहीं किया, हां कभी कभी वह अपने लेख अवश्य दे दिया करते थे। यद्यपि वह पत्र के बोर्ड के प्रधान रहे, परन्तु १९२१ की भांति उसे शक्तिशाली न बना पाए। उनकी मृत्यु के पश्चात् तो पत्र का प्रभाव और भी घट गया। १९३० के भद्र अवज्ञा-आन्दोलन में कांग्रेसी नेताओं ने पत्रों को अपना प्रकाशन बन्द कर देने की आज्ञा निकाली। यदि पत्रों ने वह आज्ञा न मानी, तो जनता से अनुरोध किया गया था कि वह उनका बहिष्कार कर दें। "वन्देमातरम्" ने अपना प्रकाशन बन्द करके भारी हानि उठायी, क्योंकि उसके ग्राहकों तथा विज्ञापन दाताओं को अन्य पत्र छीन ले गए। कांग्रेस नेताओं की यह आज्ञा नितान्त बुद्धिहीन थी अतः उन पत्रों ने उसका विरोध किया। यह इतनी भारी चोट थी कि फिर 'वन्देमातरम्' संभल न सका, यद्यपि १९३६ तक किसी न किसी प्रकार चलता रहा।

जेलों की दशा सुधारने की ओर जनता तथा सरकार का ध्यान दिलाने में 'वन्देमातरम्' ने अत्यन्त उपयोगी कार्य किया।

लालाजी के साप्ताहिक अंग्रेजी पत्र "पीपुल" ने १९२५ में जन्म लिया। "वन्देमातरम्" जैसे दैनिक पत्र के सम्पादन का बोझ उठाने के लिए न तो उनके पास समय था और न ही शक्ति थी। इसके अतिरिक्त एक उर्दू पत्र, चाहे पंजाब प्रान्त के लिए कितना ही उपयोगी क्यों न हो, अन्य प्रान्तों के लोकमत पर किसी

प्रकार प्रभाव नहीं डाल सकता था। जनता के राजनीतिक शिक्षण के लिए एक अंग्रेजी का साप्ताहिक पत्र महत्वपूर्ण साधन हैं। १९२१ से आपके मन में ऐसे पत्र का विचार था। आपने के० सन्तानम के साथ परामर्श भी किया था और पत्र का नाम "फार्वर्ड" रखना चाहते थे, परन्तु असहयोग आन्दोलन के तूफान के कारण वह विचार यों ही रह गए।

अव १९२५ की अपेक्षा एक ऐसे पत्र की कहीं अधिक आवश्यकता थी। अब इसका नाम "फार्वर्ड" नहीं रक्खा जा सकता था, क्योंकि सी० आर० दास ने कलकत्ता में इस नाम का पत्र चालू कर दिया था। पत्र के नामकरण के लिए काफी सोच विचार होता रहा, अन्त में लालाजी ने "पीपुल" नाम सुझाया। लालाजी इसे उच्च कोटि का पत्र बनाना चाहते थे। मेरे जैसे अनुभवहीन युवक को अपना सहायक चुन कर उनके मन में पत्र की सफलता की भारी चिन्ता थी। परन्तु आरम्भ से ही उनके जोरदार लेखों ने भारत भर की जनता को पत्र की ओर आकर्षित कर लिया। उनके नाम के कारण कतिपय विदेशीय तथा भारतीय लेखकों ने पत्र को अपना लिया। "अनुभवहीन युवक" के कार्य से भी लालाजी सन्तुष्ट थे। उन दिनों "यंग इंडिया" तथा "पीपुल" जैसे छोटे छोटे साप्ताहिक पत्र अधिकांश दैनिक पत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो रहे थे। "पीपुल" का अभाव, उसकी ग्राहक संख्या से कहीं अधिक था। "यंग इंडिया" में प्रकाशित महात्मा गान्धी के लेख तथा "पीपुल" में प्रकाशित लालाजी के विचार समस्त दैनिक पत्रों की सामान्य सम्पत्ति बन जाते थे। भारतवर्ष में प्रेस वाले कापीराइट जैसे अधिकारों की विशेष परवाह नहीं करते थे।

पत्र निकालने से पूर्व लालाजी ने सोलन में सेठ जी० डी० बिड़ला से बातचीत की, और उन्होंने तत्काल १० हजार रुपए इस कार्य के लिए दे दिए। पत्र लोक सेवक मण्डल के अधीन ही प्रकाशित होता था, अतः वह धन मण्डल के साधारण फण्ड में दे दिया गया।

जब पहले पहल "वन्देमातरम्" चला तो लाला हरकिशनलाल तथा दीवान चमनलाल उसके दो बड़े हिस्सेदार थे और दोनों पंजाब अखबारात एण्ड प्रेस कम्पनी लिमिटेड के डायरेक्टर बन गए। यह कम्पनी ही पत्र की स्वामिनी थी। (दीवान चमनलाल अभी अभी आक्सफोर्ड से आये थे और कुछ दिन 'बाम्बे क्रानिकल' में काम करने के लिए भारतीय सम्पादन कला का भी कुछ अनुभव रखते थे) शीघ्र ही पत्र असहयोग का अग्रदूत बन गया। हरकिशनलाल ने अपने लिए सहयोग मार्ग चुना, अतः जब वह पंजाब सरकार के मंत्री बन गए, तब उन्होंने अपने हिस्से अपने पुत्र के नाम कर दिए। आगे चलकर लालाजी

के मित्रों ने यह हिस्से खरीद लिए और लोक सेवक मण्डल के हवाले कर दिए।

× × ×

लालाजी तथा सम्पानकीय विभाग के स्टाफ के लेखों के अतिरिक्त पत्र ने एक नया प्रतिभाशाली लेखक ढूंढ़ निकाला। यह फिरोजपुर के वकील, बाबू मोहनलाल भटनागर थे जिनके लेखों को जनता ने बहुत पसन्द किया। उनके कुछ लेख पुस्तक के आकार में प्रकाशित हो गए, और कुछ दिनों के लिए श्री भटनागर "वन्देमातरम्" के काम के लिए लाहौर ही आ गए। शिक्षा विभाग से एक अन्य सज्जन—पं० कर्मचन्द शुक्ल आकृष्ट होकर आए। यह भी पत्र के सफल सम्पादक रहे और होनहार सम्पादक बनने के लक्षणों से युक्त थे, परन्तु सम्पादक रूप से उन्हें जेल जाना पड़ा और वहां से लौट कर सम्पादन कार्य को छोड़ गए। लाला रामप्रसाद के जेल चले जाने के बाद रायजादा शान्तिनारायण तथा पं० मेलाराम वफ़ा सम्पादक बने। ये महाशय भी इस कार्य में नये नहीं थे। "वन्देमातरम्" ने उर्दू सम्पादन में पत्रों का भाषा सम्बन्धी दर्जा बहुत ऊँचा कर दिया। वफा महाशय हँसी में कहा करते थे—"हमारे पत्र की ख्याति का यह कारण है कि डाक द्वारा आने वाली बुरी बुरी तथा अशुद्ध कविताओं को हम प्रकाशित नहीं करते।" "उर्दू मिडिल स्कूल में जो लड़का सुलेख लिखना जानता है, वह समझता है कि मैं अच्छी कविता भी लिख सकता हूँ। ऐसे कवि "वन्देमारतम्" की आंखों में कांटे की तरह खटकने हैं।" "मैं कितना ही निकम्मा क्यों न हूं, परन्तु मैं लालाजी की सम्पादन गद्दी का उत्तराधिकारी हूं।" वफा साहब बड़े गर्व से यह शब्द दुहराया करते थे स्टाफ में सबसे अनुभवी महाशय रामरछपाल शैदा थे। उस समय भी वह काफी वयोवृद्ध थे। वह जेल जाने के लिए बढ़े समझे जाते थे। आप कभी पत्र के इनचार्ज नहीं बने, परन्तु आपने सब से अधिक समय तक पत्र की सेवा की। अपने हंसमुख, व्यंगोक्तियों, गम्भीर हास्य तथा साधु स्वभाव के कारण "वन्देमातरम्" कार्यालय में आप एक संस्था थे। कहानियों, प्राचीन स्मृतियों तथा चुटकुलों के तो आप अटूट भण्डार थे। दर्जनों नौसिखुए युवक गपशप, परामर्श तथा सम्पादन कला में पथ प्रदर्शन के लिए उनको हर समय घेरे रहते थे।

"वन्देमातरम्" कार्यालय में दर्जनों नवयुवकों ने सम्पादनकला की ट्रेनिंग प्राप्त की, मानो यह एक प्रकार का सम्पादन विद्यालय बन गया था। १९२६ में चुनाव में जब लालाजी को स्वराज्य दल के विरुद्ध लड़ना पड़ा, उन्हें ज्ञात हुआ कि पत्रों में उन पर आक्रमण करनेवाले तथा उनकी कड़ी आलोचना करने वाले

लोगों में से अधिकांश "वन्देमातरम्" विद्यालय के भूतपूर्व शिष्य हैं। उस समय आप फारसी का एक छन्द दुहराया करते थे। जिसका अर्थ है "अभागे अध्यापक, तेरी दशा सचमुच शोचनीय है, क्योंकि जिन शिष्यों ने तेरे चरणों में बैठ कर धनुर्विद्या सीखी, आज तुझे उन्हीं के बाणों का निशाना बनना पड़ा है।"

जिन दिनों लालाजी जेल में थे, मेरा सम्बन्ध "वन्देमातरम्" के साथ उन दिनों स्थापित हुआ। मैं कभी कभी अपन नाम से लेख लिखा करता था और सम्पादकीय लेख लिखने में सहायता दिया करता था। आगे चलकर मैं पत्र के संवाददाता के रूप में काम करता रहा और एक दो कांग्रेस अधिवेशनों पर जाकर मैंने समाचार आदि भेजे। परन्तु जब "पीपुल" का प्रकाशन आरंभ हो गया, मुझे "वन्देमातरम्" के लिए समय नहीं मिलता था। १९२८ में अंग्रेजी साप्ताहिक के अतिरिक्त मुझे "वन्देमातरम्" के सम्पादन का भार भी अपने सिर लेना पड़ा।

× × ×

"वन्देमातरम्" के अपने प्रेमी थे। अभी तक आपको ऐसे लोग मिल जायँगे, जो जब तक कि "वन्देमातरम्" चलता रहा, कोई अन्य पत्र खरीदने और पढ़ने से इनकार करते रहे। एक प्रेमी ने तो कमाल ही कर दिया। उसे यह भी ज्ञात न हो सका कि कांग्रेस का अधिवेशन कहां हो रहा है, क्योंकि उन दिनों "वन्देमातरम्" का प्रकाशन बन्द हो गया था और उसके स्थान में वह अन्य कोई भी पत्र खरीदने अथवा मंगवाने को तैयार न था।

× × ×

जैसा हम पहले भी कह चुके हैं "वन्देमातरम्" ने जेल सुधार का भारी कार्य किया। दरोगा जेल जमनादास को पंजाब सरकार ने "वन्देमातरम्" के विरुद्ध मुकदमा चलाने की आज्ञा दी, क्योंकि "वन्देमातरम्" ने मुलतान जेल में राजनैतिक बन्दियों पर किए गए कठोर व्यवहार और अन्धेरखाने का भण्डाफोड़ किया था। यद्यपि न्यायालय ने "वन्देमातरम्" के विरुद्ध डिगरी दे दी, परन्तु पत्र की यह हार हजारों जीतों के बराबर थी। वन्देमातरम् के त्याग का फल था कि सरकार का ध्यान जेलों की शोचनीय अवस्था को सुधारने की ओर आकृष्ट हुआ।

जब लाला जी को ज्ञात हुआ कि वह शीघ्र ही गिरफ्तार किए जावेंगे उन्होंने बिदाई के सन्देश में लिखा:—"वन्देमातरम्" तथा लोक सेवक मण्डल मेरे बच्चे हैं। जब तक मैं अनुपस्थित रहूंगा, मैं उनको जाति की स्नेहमयी गोद में सौंपता हूं। दोनों बच्चों में से वन्देमातरम् बड़ा बच्चा है और वह अब युवावस्था को प्राप्त कर चुका है। × × ×

पादरी सी० एफ० एण्ड्रयूज शुरू से ही "पीपुल" में दिलचस्पी रखते थे। वह पत्र के लिए न केवल लिखते ही थे, वरन् पत्र के सुधार के लिए मुझे कई प्रकार के सुझाव भेजा करते थे। लालाजी स्वयं राजनीतिक लेखों के अतिरिक्त कई प्रकार के लेख दिया करते थे। कभी कभी किसी पुस्तक की समालोचना और कभी कभी किसी विदेशी महान् व्यक्ति (न्यूयार्क के नेशन पत्र के सम्पादक श्री विलर्ड अथवा फ्रेंच सोशलिस्ट नेता लांगे आदि) के बारे में और कभी २ अपनी विदेश यात्रा के अनुभव लिख डालते थे।. अपनी डायरी में राजपूताना की यात्रा में जो भाव उनके मन में उठते थे, उनके आधार पर राजपूत इतिहास के कुछ अनुपम पृष्ठ लिख डालते थे। कभी कभी लण्डन के पत्रों में से वहां की महिलाओं के फैशनों—केशविन्यास आदि—की बातें उद्धृत करके पाठकों का मनोरंजन किया करते थे। आपने एक बार लिखा था कि हमारी यूनिवर्सिटियों में गणित, विज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि के पठन पाठन का प्रबन्ध है। क्या कभी वह दिन भी आएगा जब मनोरंजन तथा मनोविनोद की पढ़ाई के अध्यापक भी हमारे यहां होंगे और उसमें संगीत, चित्रकला, नाट्य आदि को भी स्थान प्राप्त होगा. . . . ।

इस पर नोरा रिचर्डस ने "पीपुल" में लिखा था कि लाजपतराय उसकी नाट्य-कला के अध्यापन की स्कीम का समर्थन कर रहे हैं। यों तो लालाजी के लेख विभिन्न विषयों पर हुआ करते थे, परन्तु राजनीतिक परिस्थिति का विश्लेषण करते समय तो उनकी लेखनी अद्वितीय बन जाती थी। सम्पादन तथा लेखन तो उनके विभिन्न कार्यों में से एक कार्य था। परन्तु वह इतना प्रभावशाली था कि सी० एफ० एण्ड्रयूज उनकी तुलना मांचेस्टर गार्डियन के सी० पी० स्काट से किया करते थे। एण्ड्रयूज महोदय की हार्दिक अभिलाषा थी कि लालाजी शान्तिपूर्वक बैठ कर ऐसे दैनिक पत्र का सम्पादन करें जो भारतीय पत्रों में उसी शान तथा उच्च कोटि का पत्र हो जिस कोटि का इंगलैण्ड में मांचेस्टर गार्डियन है।

लालाजी तथा सी० एफ० एण्ड्रयूज के लेखों के अतिरिक्त "पीपुल" को भारत के सभी पत्रों से अधिक लेखकों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों आदि के लेख प्राप्त होते थे। लाला हरदयाल, सन्त निहालसिंह तथा डा० तारकनाथदास प्राय: पत्र के लिए लेख लिखा करते थे। ए० सी० एन० नम्बियार नवीनतम राजनीतिक साहित्य समालोचना किया करते थे और प्राय: महत्वपूर्ण योरुपियन घटनाओं पर टिप्पणियां लिखा करते थे। अग्निस स्मेडले भी बहुधा अपने गर्म गर्म लेख भेजा करती थीं। वह आश्चर्य चकित रह जाती थीं जब वह लेख "पीपुल" में प्रकाशित होते थे, क्योंकि इस देश के अन्य अग्रगामी पत्रों के बारे में उनका अनुभव सर्वथा भिन्न था। कभी कभी प्रसिद्ध जापानी लेखक (अमरीका में) के० के० कावाकामी

भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर लिखा करते थे। विख्यात् आयरिश–अमेरिकन पत्रकार–फ्रांसिस हैकिट बड़ी मनोरंजक सामग्री भेजा करते थे, विशेषतः मुसोलिनी के साथ एक भेंट का विवरण। कभी कभी एच० डब्ल्यू० नेविन्सन जैसे लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार भी "पीपुल" में अपने विचार प्रकट करते थे। प्रमुख ब्रिटिश राजनीतिज्ञों में से लार्ड ओलिवियर तथा कर्नल वेजवुड के लेख भी आते थे। इंग्लैण्ड में के० एम० पानिकर "पीपुल" के संवाददाता थे और दुर्गादास दिल्ली अथवा शिमला की डायरी भेजते थे।

यह पत्र शीघ्र ही देश के जनमत की अभिव्यक्ति का भारी साधन तथा प्रामाणिक शिक्षण शक्ति समझा गया। कभी कभी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा पार्लियामेण्ट के विवादों में उसके उद्धरण पेश किए जाते थे।

× × ×

लाला जी अपने सहायक सम्पादक (इन पंक्तियों के लेखक) के कार्य से अत्यन्त सन्तुष्ट थे। जब वह योरुप चले गए तो उनकी अनुपस्थिति में भी पत्र उसी प्रकार सफलता पूर्वक चलता रहा। वह बार बार अनुरोध करते थे कि मुझे ही पत्र के सम्पादक का कार्य भी संभाल लेना चाहिए, परन्तु मैं सदा ही टालता तथा इनकार करता रहा। वह इसका कारण जानना चाहते थे। मुझे जिस बात का भय था कि शायद मेरे एक सहकारी मेरी ओर से की गयी कांग्रेस नेताओं तथा उनके कार्यों की आलोचना को पसन्द न करें। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि मेरे कार्य मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा। उस समय से मैं पत्र का सम्पादक बन गया और लाला जी उसी प्रकार पत्र के लए लिखते रहे।

"वन्देमातरम्" तथा "पीपुल" के संचालक के अतिरिक्त लालाजी "हिन्दुस्तान टाइम्ज" में भी कुछ दिलचस्पी रखते थे। पं० मालवीय जी उनसे बारबार अनुरोध करते थे कि वह उसके सम्पादक बन जायँ, परन्तु उन्होंने इस बात को न माना। एक बार तो लालाजी मुझे कहने लगे कि तुम हिन्दुस्तान टाइम्ज, दिल्ली के सम्पादन कार्य को सभालो, क्योंकि दैनिक पत्र में तुम्हारे लिए उन्नति करने की कहीं अधिक गुंजाइश होगी। परन्तु मैं तो साप्ताहिक "पीपुल" में ही प्रसन्न था।

अध्याय सत्रह

लालाजी १६२० से १६२८ तक

१९२० में अमेरिका से लौटकर लालाजी अपने कोर्ट स्ट्रीट वाले मकान में निवास करने लगे। परन्तु १९२० से १९२८ तक अर्थात् ९ वर्षों में वह प्रायः दौरे पर, योरुप यात्रा में तथा अन्य कार्यों के लिए हैडक्वार्टर से अनुपस्थित रहते थे। कभी धारा सभा के अधिवेशन के लिए उन्हें दिल्ली वा शिमला जाना पड़ता था, तो कभी इंडियन नेशनल कांग्रेस, ट्रेड यूनियन कांग्रेस अथवा हिन्दू महासभा के कार्य पर बाहर जाना पड़ता था। कभी देश के विभिन्न भागों में व्याख्यान माला के लिए जाते थे, तो कभी डाक्टरों के परामर्श से पहाड़ों अथवा समुद्र तट की यात्रा करते थे।

अभी अन्धेरा ही होता था कि वह कपड़े पहन कर घूमने और वायु सेवन के लिए तैयार हो जाते। यदि काफी सबेरा होता तो लैम्प जला कर कोई न कोई पुस्तक अथवा पत्रिका पढ़ने लग जाते। जितने दिन वह लाहौर रहते थे, वह बहुत कम विश्राम लिया करते थे। आप लगभग एक घंटे भर के लिए लोअर माल पर अकेले घूमते और कुछ न कुछ विचार करते जाते थे। सैर से लौटते ही सीधे अपने कमरे में अपने डैस्क पर लिखने बैठ जाते। आपके लौटने से पूर्व ही कई पेन्सलें कागज आपकी डैस्क पर आपके लिए तैयार पड़े होते। जब आप एक बार लिखना शुरू कर देते तो, बिना रुके ही लिखते चले जाते थे। यदि आप कोई पुस्तक लिख रहे होते, तो पुस्तक लिखते, परन्तु अधिकतर समाचार पत्रों के लिए लेख अथवा कभी कभी कोई महत्वपूर्ण पत्र लिखते। जिस तीव्र गति से आप लिखाई करते थे, उससे स्पष्ट प्रतीत होता था कि सारी सामग्री उनके मस्तिष्क में तैयार रहती थी। केवल उसे लेखनी द्वारा कागज पर अभिव्यक्त करना ही शेष होता था। शायद प्रातः भ्रमण के समय में ही वह सब कुछ तैयार कर लेते थे।

प्रातःकाल की चाय अथवा जलपान के पूर्व ही वह खासा कार्य कर डालते थे। यदि कोई अतिथि उनके पास न ठहरा हुआ, तो वह अकेले ही चाय पी लेते, और चाय पीते पीते भी साथ ही साथ लिखते भी जाते। कभी कभी कोई परिवार

का सदस्य भी चाय में सम्मिलित हो जाता। प्रायः जलपान में एक हल्का सा खाना-एकाध अण्डा, टोस्ट और सेव, केला आदि कोई फल भी होता।

जलपान तथा लिखाई के समाप्त होते ही लोक सेवक मण्डल के एक दो सदस्य उनके पास पहुंच जाते। कभी कभी तो वह उनके साथ भ्रमण करने भी जाते। वह उनके साथ बातें भी करते जाते और सबेरे के अखबारों पर भी दृष्टि डालते जाते।

(भारत में रेडियो द्वारा समाचार तो कई वर्ष पश्चात् शुरू हुए। लाहौर में भी प्रातःकाल प्रकाशित होने वाले समाचारपत्रों का अभी अभी श्रीगणेश हो रहा था।)

समाचारों पर नजर फेरते समय उनकी दृष्टि बड़ी तेजी से काम करती थी। जिन बातों और समाचारों में उनकी दिलचस्पी होती, उन्हें तत्काल ही खोज लेते। अपनी डाक में आने वाले लगभग सभी पत्रों का आप अवलोकन किया करते थे। प्रत्येक प्रान्त के एक अथवा दो प्रमुख पत्र अवश्य आपको पहुंचते थे।

टाइपिस्ट के पहुंचते पहुंचते, पाण्डुलिपियों का एक भारी ढेर आपकी डेस्क पर जमा हो जाता। डाक प्रायः मध्यान को आती थी और वह अपने सहायक को लेकर पत्रों का उत्तर लिखवाने बैठ जाते थे। आप बड़ी तीव्र गति से पत्रों के उत्तर लिखवाते जाते। क्लर्क आपको चिट्ठियां पढ़ पढ़कर सुनाता जाता और आप उत्तर भी लिखवाते जाते और साथ ही साथ अखबारों का अवलोकन भी करते जाते।

इस कार्य की समाप्ति पर आप स्नान करते, और यदि मौसिम अच्छा होता, तो आप धूप में बैठते और नौकर कुछ मिनटों के लिए आपके शरीर पर तेल की मालिश करता। दोपहर का खाना खाते समय, परिवार के जो सदस्य उनके साथ बैठ सकते, बैठ जाते। खाने के बाद आप कुछ देर लेट जाते, यद्यपि उन्हें नींद कभी नहीं आती थी। इस विश्राम के पश्चात् आप परिवार के साथ ब्रिज खेलते। उस समय मांजी, पार्वती, सरस्वती तथा कौशल्या और प्यारेलाल, अमृत तथा भारती भी, यदि वह घर पर होते तो सम्मिलित हो जाते। यदि कुमारी लज्जावती, लाहौर में होतीं, तो वह अवश्यमेव इस पारिवारिक खेल में भाग लेतीं। कुछ लोग तो खेलते थे और कुछ खेल देखते रहते थे। कभी कभी डाक्टर तथा श्रीमती धर्मवीर भी आ जाते। यह खेल केवल मनोरंजन के लिए होता था और उसमें कभी भी कोई दांव नहीं लगाए जाते थे आनन्द और विनोद उठाने के लिए, यह विशेष ढंग से खेला जाता था। कभी कभी कोई गलती हो जाती, तो लाला जी अपने खेल के साथी—मां जी को मीठी झाड़ सुनाते। सच्ची बात यह है कि इस झाड़ के बिना खेल का कोई आनन्द भी नहीं आता था।

जिन दिनों वह लाहौर रहते थे, यही पारिवारिक ब्रिज का खेल ही उनके मनोरंजन का साधन हुआ करता था। उन दिनों लाहौर में कोई सिनेमा अथवा थिएटर नहीं थे। कभी कभी युवकों की नाटक मण्डलियां शौकिया तौर पर नाटक खेला करतीं। उनके निर्वासन के दिनों में चल चित्र तथा सिनेमा लाहौर में पदार्पण कर चुके थे, परन्तु वह वहां कम जाया करते थे। वह जनता की दृष्टि से बचने के लिए ऐसा करते थे। जब कभी वह बम्बई अथवा कलकत्ता जाते, तो वहां सिनेमा तथा थिएटर देखते थे। आपको बंगाली नाटचकला का अत्यन्त शौक था, अतः जब कभी आप कलकत्ता जाते, चुने हुए बढ़िया नाटक अवश्य देखते थे। लाहौर रहते हुए वह अनुभव करते थे कि यहां उनको नेता गिरी के महंगे दाम देने पड़ते हैं, क्योंकि मनोरंजन के सार्वजनिक स्थानों पर वह स्वतंत्रतापूर्वक नहीं जा सकते थे।

× × ×

पारिवारिक ताश का खेल घण्टा दो घण्टा जारी रहता और बारी२ लाला जी सभी को खेलने का अवसर देते। जब और खेलते थे तो लाला जी खेल को आनन्द से देखते रहते।

खेल के पीछे आप दर्शकों से भेंट करते अथवा दिन भर का शेष कार्य देखते— पत्रों, चिकों, बिलों आदि पर हस्ताक्षर करना, और हिसाब किताब देखना। शीत ऋतु में धूप में गाड़ी पर टहलने निकल जाते और शाम की चाय से पूर्व लौट आते। गर्मियों में गाड़ी से सायंकाल बाहर जाते। प्रायः किसी न किसी नवयुवक को भी साथ ले जाते। लोक सेवक मण्डल तथा अन्य संस्थाओं के बारे में महत्वपूर्ण परामर्श भी तभी हो जाते थे, जब आप नहर के किनारे भ्रमण करने जाते। अन्तिम वर्षों में एक मित्र ने आपको एक छोटी सी मोटर दे दी थी। उससे पूर्व उनके पास कोई गाड़ी अथवा मोटरकार नहीं थी। हां वकालत के दिनों में अन्य वकीलों की तरह उनकी भी निजी घोड़ागाड़ी थी।

सैर पर जाते अथवा सैर से लौटते हुए वह मित्रों के यहां भी चले जाते थे। या तो वह डा० धर्मवीर अथवा लज्जावती को मिलने जाते या किसी न किसी संस्था के लिए धन संग्रहार्थ किसी दानी के मकान पर जाते। ब्रिज की तरह इस सैर को शुद्ध मनोरंजन नहीं कहा जा सकता।

राजनीतिक कमेटियों अथवा लक्ष्मी बीमा कम्पनी या पंजाब नेशनल बैंक की मीटिंगें प्रायः मध्यानोत्तर होती थीं।

शाम का खाना खाते ही लोक सेवक मण्डल के सदस्यों से बातचीत होती। आप उनके साथ सोसाइटी के मामलों तथा अन्य सामयिक राजनीतिक विषयों पर

बातचीत करते। आप उनको अपने विशाल अनुभव की कई बातें सुनाते अथवा अपने पठित ग्रन्थों की बाबत कुछ न कुछ बतलाते। रात को कुछ ताजी पत्रिकाएं और २-३ पुस्तकें लेकर अपने सोने के कमरे में चले जाते।

यदि आपको किसी भी सभा अथवा कमेटी में न जाना होता, तो आप दर्शकों से भेंट करते अथवा उनसे बातें करते हुए बंगले में टहलते रहते। आप केवल "दर्शन" करने वालों से बहुत घबराते थे, परन्तु बच्चों को खेलते देखकर आप अति प्रसन्न होते। आप अपने पोतों तथा नातियों अथवा सोसाइटी में रहने वाले अन्य परिवारों के बच्चों की क्रीड़ा देख देख कर मुग्ध हो जाते थे। कभी कभी आप उन्हें अपने कमरे में ले जाते और उनके साथ मजे की बात करते। "अब सावित्री, मैं तुमको कुछ चित्र दिखलाऊंगा, मुझे बतलाना कि तुम इनमें से किसके साथ विवाह करोगी अथवा तुम मुझसे विवाह करोगी?" आप एक छोटी बच्ची को सम्बोधित करके कहा करते। आप अति प्रसन्न होते, जब वह बच्ची बिगड़ उठती और कहती कि लालाजी गन्दी बातें करते हैं। यह लड़की लाला जगन्नाथ की है जो मण्डल के आजीवन सदस्य थे।

एक बार आप ब्रेडलाहाल में एक सार्वजनिक सभा में यूनिवर्सिटी के उन महानुभावों के विरुद्ध भाषण करने गए जो नवयुवकों के कल्याण के स्थान में अपनी निजी जेब भरने के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार करते हैं। जब सभा समाप्त हुई तो आपने एक महाशय को महाकवि कीट्स के यह शब्द कहते सुना कि "यदि अपनी निन्दा ही सुननी हो तो कम से कम हैजलेट जैसे आलोचक के मुख से सुनना चाहिए।" लालाजी उपरोक्त वाक्य से अति हर्षित हुए।

× × ×

अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ में, लालाजी के मित्र, लाला हंसराज ने उनको उपदेश दिया कि जो पत्र आपके विरोधी हों, आप उन्हें कदापि न पढ़ा करें। कुछ समय तक तो आप इस उपदेश पर चलते रहे, परन्तु जब मौलाना मुहम्मद अली ने उनके विरुद्ध पृष्ठों के पृष्ठ रंगना आरम्भ कर दिया, तब आप भी शान्त न रह सके। वह अच्छी तरह जानते थे कि यदि वाद विवाद पूरे जोर से छिड़ गया, तो वातावरण में कड़वाहट ही भर जायगी। मौलाना का स्वभाव था कि सार्वजनिक वाद विवाद में व्यक्तिगत आक्रमण करने से भी नहीं चूकते थे! परन्तु लालाजी ऐसे ओछे हमलों का उत्तर देना उचित नहीं समझते थे। हां "कामरेड" पत्र की फाइलें बड़े यत्न से रखते दिखलायी देते थे जिससे सिद्ध होता है कि आप ने अपने मित्र के उपदेश को भुला-सा दिया है।

लाहौर के एक उर्दू पत्र ने अपने किसी विशेषांक में देश के विख्यात नेताओं के

सन्देश प्रकाशित करने का निश्चय किया। उक्त पत्र का एक प्रतिनिधि लालाजी के पास भी आया। लालाजी ने उससे स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मुझे कोई सन्देश नहीं देना है। शायद लालाजी को उक्त पत्र की नीति से मतभेद था, अथवा उस समय आप उदासी के मूड में थे। प्रतिनिधि बोला "लालाजी आप देश के नेता हैं और जनता आपका सन्देश सुनने को इच्छुक है।" लाला जी बिगड़ कर बोले कि "मैं अब नेता नहीं हूं।" दूसरे दिन पत्र में "लाला जी का सन्देश" शार्षक देकर खाली स्थान छोड़ दिया गया और साथ ही एक नोट दिया गया कि लालाजी ने हमारे पत्र के प्रतिनिधि को बतलाया है कि "मैं अब लीडर नहीं रहा।"

× × ×

लालाजी को सदा ही अच्छे और स्वादिष्ट भोजन का शौक रहा। चाहे वह हिन्दू ढंग से तैयार किया गया हो अथवा मुसलमानी वा पाश्चात्य ढंग से। कई दिन एक ही ढंग का खाना खाते खाते आप में परिवर्तन की इच्छा प्रबल हो उठती थी। हिन्दू ढंग का भोजन प्रायः अधिक चिकना तथा मसालेदार होता था, परन्तु आप योरुपियन खाना भी चिरकाल तक नहीं खा सकते थे। दिन को योरुपियन खाना तथा रात को हिन्दुस्तानी खाना ही उनके लिए आदर्श मेल था। परन्तु कोई भी खाना क्यों न हो, आप कच्ची सब्जी तरकारी जैसे पालक, टमाटर आदि अवश्य खाया करते और कलकत्ता अथवा बम्बई में किसी मारवाड़ी के यहां अतिथि होते तो इन्हीं तरकारियों के गुण गाते और इनका ही अनुरोध करते। रात के खाने के साथ तो ताजा फल और मलाई अवश्य होती। आपको केक तथा मिठाई भी खूब भाती थी। हां, उन्हें हिन्दुस्तानी मिठाइयों की अपेक्षा योरुपियन मिठाई शीघ्र पचती थी। जब आप दिल्ली से लौटते तो वहां के मीठे तथा नमकीन पदार्थ अपने साथ अवश्य लाते और उन्हें शीशे के मर्तबानों अथवा बोतलों में भरकर अपने कमरों में धर देते जिनसे हलवाई की दूकान जैसी सजावट दिखलायी पड़ती। प्रातः चाय पीते समय उन्हें निकाल कर खाते और मजे ले लेकर उनकी प्रशंसा करते।

वर्षों तक देश भर का भ्रमण करते रहने के कारण, आप गुजराती, मराठी, बंगाली, उड़िया, मारवाड़ी, मुसलमानी तथा दक्षिणी इत्यादि खाना पकाने, परोसने तथा खाने के ढंग से भली भाँति परिचित हो गये थे। एक बार बम्बई में आप एक हीरों के व्यापारी के अतिथि थे। मेज पर दो तीन दर्जन प्रकार के भोज्यपदार्थ मौजूद थे। अभी लोग खाना खा ही रहे थे कि लालाजी ने चावल मांगे। व्यापारी महाशय तथा उनके घर वाले बड़े घबड़ाए। स्थिति को समझते हुए लालाजी

बोले "आप चिन्ता न करें, मैंने भोजन की इतिश्री नहीं की। मैं अभी पेट भर कर खाऊंगा। मैं जानता हूँ कि गुजराती खाने में चावल का स्थान अन्तिम होता है। अन्य लोग तो भोजन का श्रीगणेश चावलों से करते हैं, जैसा कि आप उसकी इतिश्री चावलों से करते हैं। महाराष्ट्र में तो खाने का आदि तथा अन्त दोनों चावल से किया जाता है।" इसी प्रकार कभी कभी मारवाड़ी खाने के मध्य में पापड़ मांग बैठते, यद्यपि आप अच्छी तरह जानते थे कि मारवाड़ियों के यहां भोजन का अन्त पापड़ से होता है।

एक बार बनारस में आप अपने घनिष्ठ तथा श्रद्धालु मित्र बाबू शिवप्रसाद गुप्त के यहां ठहरे हुए थे। बाबू जी ने दो प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्यों द्वारा आपका शारीरिक परीक्षण कराया। उनमें से एक वैद्य ने आपको खान पान के बारे में लम्बी चौड़ी हिदायतें देते हुए कहा कि दोपहर अथवा रात का भोजन करते समय आप सबसे प्रथम फल ही खाया करें। खाने के अन्त में फल न खायँ। पाश्चात्य डाक्टरों का मत सर्वथा विपरीत है,परन्तु हमारे शास्त्रों ने फलों द्वारा खाने का श्रीगणेश करने की अनुमति दी है। लालाजी बोले "बहुत अच्छा, आपकी प्रसन्नता के लिए मैं खाने के आरम्भ में फल ले लिया करूंगा और पाश्चात्य डाक्टरों की सन्तुष्टि के लिए फल भोजन के अन्त में खाया करूंगा।" सत्य यह है कि आपको फलों का इतना शौक था कि आप न केवल दोपहर तथा रात्रि के भोजन के साथ ही फल खाते थे, प्रत्युत प्रातः तथा सायं की चाय के साथ भी फलाहार करते थे। कलकत्ता तथा अन्य बन्दरगाहों में निवास करने का एक यह आनन्द भी था कि वहां भांति भांति के फल प्राप्त हो सकते थे। कसेरू, आम अथवा पपीते का जो मजा कराची अथवा बम्बई में आता था, भला वह लाहौर में कहां! आपको सब से अधिक स्वादिष्ट तो आम ही लगता था।

प्रातः तथा मध्यानोत्तर आप चाय अथवा काफी अवश्य पीते थे, परन्तु आप अपने प्याले में चाय की अपेक्षा दूध अधिक डालते थे। मदिरा, धूम्रपान तथा गोमांस से आप कोसों दूर रहते थे। आर्यसमाज से सम्पर्क रखने के कारण तथा महात्मा गाँधी के शाकाहारी होने के कारण कभी कभी आपके सामने मांस परोसते हुए भी कई मित्र हिचकिचाते थे। आप कई कई दिनों तक मांस न खाते थे, परन्तु आर्यसमाज के दिनों से भी आप पूर्ण निरामिष भोजी न थे। पूर्ण स्वतंत्र विचारों के होते हुए भी आप गोमांस को स्पर्श नहीं करते थे। आप मदिरादि नशीली वस्तुओं से भी दूर रहते थे, यद्यपि अमेरिका रहते हुए कभी कभी मित्र मण्डली में सिगरेट पी लेते थे।

× × ×

यूरोप तथा अमेरिका में चिरकाल तक निवास करते हुए भी आपका पहरावा सीधा सादा रहता था। असहयोग के दिनों में खादी के आगमन ने मामला और भी सादा कर दिया, आप गाँधी जी की तरह मिल के कपड़े के बिलकुल विरुद्ध न थे, परन्तु आपके विचार में खादी का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे आपका जनता के साथ समानता का सम्पर्क होता है, इस कारण आप आन्ध्र देश के कारीगरों के महीन वस्त्रों की अपेक्षा हाथ के बुने हुए मोटे खद्दर को कहीं अधिक पसन्द करते थे। भारत में साधारणतया पहनने को कुर्ते, पायजामे, टोपियों तथा पगड़ियों के लिए मोटा सफेद खद्दर तथा शीतकाल के लिए कुल्लू अथवा काश्मीर का ऊनी कपड़ा आपको पसन्द था। असेम्बली में प्रवेश करते ही आप बढ़िया ढंग के सिले हुए रेशमी अथवा पश्मीने की अचकन तथा पाजामे बर्तने लगे। अपनी विदेश यात्राओं के लिए आप को कुछ भिन्न प्रकार के, परन्तु सस्ते, मजबूत स्वदेशी वस्त्रों की जरूरत पड़ती थी। इस कार्य के लिए आप कभी कभी अपने पुत्र के वस्त्र भी काम में लाते थे। एक बार एक संवाददाता ने आप पर कटाक्ष किया कि स्वय विलायती सूट से सुसज्जित होकर भी आप नवयुवकों में सादगी का प्रचार करते हैं। इस कटाक्ष से आप अत्यन्त दुखी हुए। विशेषतः इसलिए कि वह आलोचक "पीपुल" का सम्वाददाता था।

× × ×

कांग्रेस के बड़े बड़े नेता पंजाब में एकत्रित हुए थे। विचार का विषय वही शाश्वत समस्या हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न था। मेल-मिलाप की बातचीत चल रही थी और अली बन्धु सारा दोष पंजाब के सिर मढ़ रहे थे, मानो इस अभागे प्रान्त से बाहर झगड़ों तथा दंगों आदि के विषय में जनता अनभिज्ञ थी। "फूट की अपवित्र गंगा इसी भूमि (प्रान्त) में से बहती है", उन्होंने अपने भाषण में कहा। लालाजी इसे सह न सके और कड़क कर बोले "यदि आप इस अपवित्र गंगा की गंगोत्री (उद्गम स्थान) की खोज करें तो सम्भव है कि आप उसे कहीं रामपुर (अली बन्धुओं का जन्म स्थान) के आसपास ही पायेंगे।"

× × ×

"यदि आप लेखक बनना चाहते हैं, तो उसका केवल एक ही उपाय है कि आप लिखने का निरन्तर अभ्यास करते रहें।" आप सदैव इसी मंत्र को अपने सहकारियों के सामने दुहराया करते थे। "जब मैं तुम्हारी आयु का था, तब मैं शागिर्द बन कर लिखना सीखता था। मैं लिखते लिखते कागजों के ढेर लगा देता था और फिर उसे फाड़कर फेंक देता। इस प्रकार मैंने लिखना सीखा है।" जीवन भर आप इसी अभ्यास तथा परिश्रम के सिद्धान्त के अनुयायी बने रहे। अब उनके लेख दो भागों में लिखे

जाते थे। मानसिक भाग अर्थात् सोचने का कार्य तो वायु सेवन तथा भ्रमण के समय हो जाता अथवा पलंग पर अनिद्रा के समय परन्तु आप बड़ी तीव्र गति से लिखते थे। अपने लेखों की पुनरावृत्ति के लिए भला अब उनके पास वैसा खुला अवसर कहां था जैसा कि जेलखाने में अथवा अमेरिका में निर्वासन के दिनों में। यदि उन्हें यह ज्ञात होता कि उनकी ओर से शुद्धियां आदि का कार्य कोई और व्यक्ति कर देगा, तो वह और भी तीव्र गति से लिखते थे। परन्तु वह कदापि नहीं चाहते थे कि अशुद्ध पाण्डुलिपियां ही मुद्रकों के पास पहुंच जायँ। एक बार अमेरिका में आपको पाण्डुलिपि में शुद्धियों तथा परिवर्तनों के कारण ५० प्रतिशत अधिक बिल चुकाने के कारण परेशान होना पड़ा था। मुद्रक उन्हें कम्पोजिंग वाले कमरे में ले गया और उन्हें अपनी आंखों से दिखलाया कि किस प्रकार एक अधिक शब्द के डालने से समस्त पंक्ति को दोबारा जोड़ना पड़ता है और एक पंक्ति की गड़बड़ी से समस्त स्तम्भ (कालम) बिगड़ जाता है। उस समय तक उनको इस बात की कल्पना तक न हो सकती थी। अब उनकी समझ में आ गया कि मुद्रक को देने से पूर्व शुद्धियां तथा परिवर्तन करने का क्या महत्व होता है।

किसी पुस्तक की रचना करते समय भी आप तीव्र गति से लिखते थे, यद्यपि पुस्तकों तथा ग्रन्थों से सामग्री संग्रह करने में समय लग जाता था। आप उद्धरण तथा (Data) देने में बड़ी सावधानी से काम लेते थे, चाहे वह किसी ग्रन्थ का कोई अध्याय हो, चाहे असेम्बली के विवाद के लिए भाषण। इतिहास लिखते समय वह सदैव मूल ग्रन्थों से सामग्री ग्रहण करते थे, यद्यपि उन्होंने मौलिक अन्वेषण का कार्य कभी हाथ में नहीं लिया। भारतीय इतिहास के मुस्लिम काल का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपने मुसलमान इतिहासकारों के लगभग सभी लेख पढ़ डाले। उनका अधिकांश तो अंग्रेजी अनुवाद द्वारा ही था, परन्तु फारसी के मूल ग्रन्थ भी आपने संग्रह किए, ताकि जहां कहीं कोई शंका उठती तो आप अनुवाद की मूल भाषा से तुलना कर लेते। अबुलफज़ल, अब्दुलकादिर बदायूनी, ज़ियाउद्दीन बार्नी की कृतियां सेरुलमुताखरीन तथा छच्छनामा तथा मुगल राजकुमारों की संस्मृतियां आपने बड़े ध्यान से पढ़ी थीं और कुछ तो आपने अनेक बार पढ़ डालीं, क्योंकि भारतीय इतिहास के मुस्लिम काल पर पुस्तक लिखने के लिए यह आवश्यक था, दूसरे आपको ऐसे साहित्य के अध्ययन में अपार आनंद आता था। आपको इसके लिए सार्वजनिक पुस्तकालयों पर आश्रित रहना पड़ता था, परन्तु यथा समय आपको इन पुस्तकालयों से आवश्यक ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते थे। एक बार उन्होंने जेल से ईलियट का भारत के इस्लामी इतिहास का अनुवाद मंगवा भेजा। द्वारकादास पुस्तकालय में वह ग्रन्थ अपूर्ण रूप में था। आपने लिखा कि किसी अन्य पुस्तकालय

से उधार लेकर पुस्तक के सब भाग भेजे जायँ। आपने उस पुस्तकालय का नाम भी लिख भेजा। आपको निश्चय था कि वहां वह ग्रन्थ पूर्ण रूप से विद्यमान है, क्योंकि आपने उस पुस्तकालय को वह भेंट किया था। परन्तु वह तो संस्था के किसी बड़े अधिकारी के नाम पर बाहर गया हुआ था। पुस्तकाध्यक्ष ने कहा कि मैं तो विवश हूँ। उक्त सज्जन के पास आदमी भेजा गया कि कुछ दिनों के लिए लालाजी को पुस्तक दरकार है। उसने उत्तर दिया कि लाजपतराय की अपेक्षा मुझे उक्त ग्रन्थ की कहीं अधिक जरूरत है और मैं कह नहीं सकता कि मैं कब तक उसे अपने पास रखूंगा। जब एक अन्य पुस्तकालय से भी उसी ग्रन्थ के बारे में पूछताछ की गयी तब ज्ञात हुआ कि उन्हीं महाशय ने यहां से भी वह पुस्तक निकलवा ली है। क्योंकि वह एक बड़ा आदमी है, बेचारा पुस्तकाध्यक्ष यहां भी विवश था। आपने जेल से आज्ञा दी कि यदि सम्भव हो तो द्वारकादास पुस्तकालय में उक्त ग्रन्थ की पूर्ति कर ली जाय। एक बार आप लखनऊ गए तो नवलकिशोर प्रेस के स्वामी से प्रार्थना की कि तुम्हारे मुद्रणालय में फारसी में इतिहास की जो जो पुस्तकें छपी हैं, वे मुझे चाहिए। उसने कुछ पुस्तकें चुनकर लालाजी को भेंट कर दीं।

प्रति दिन कुछ घण्टे पुस्तकें पढ़ने की आदत लालाजी को अन्त तक रही। वह काम में से अथवा विश्राम में से स्वाध्याय के लिए अवश्य समय निकाल लेते थे। लम्बी लम्बी यात्राओं में तो आप खूब पढ़ते थे। शायद ही भारतवर्ष का कोई अन्य नेता उनकी भाँति सामयिक राजनीतिक तथा सामाजिक साहित्य का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करने का ऐसा प्रयत्न करता हो। आपको पुस्तकों की दूकानें देखने का भी विशेष शौक था, और जब कभी आप लन्दन जाते, अवश्य पुस्तकों की भारी संख्या खरीद लाते। उनके सुझाव पर लोक सेवक मण्डल ने एक छोटी सी पुस्तकों की दूकान भी खोल ली जिसका उद्देश्य मितव्ययता तथा अच्छे ग्रन्थों की बिक्री भी थी। अन्य पुस्तक विक्रेताओं द्वारा पुस्तकें खरीदने की अपेक्षा, पुस्तकालय को इस प्रकार पुस्तकें कहीं सस्ते दामों पर मिल जाती थीं। एक बार जब आपको ज्ञात हुआ कि पुस्तकों के लगभग सभी आर्डर लन्दन भेजे गए हैं, तब आप नाराज हुए और कहने लगे कि स्थानीय पुस्तक विक्रेताओं के प्रति भी हमारे कुछ कर्तव्य हैं। मेसर्स रामकृष्ण से भी कुछ न कुछ अवश्य खरीदिए। हमें उनको केवल व्यापारी ही नहीं समझना चाहिए। आपको अंग्रेजी तथा अमेरिकन प्रगतिशील साप्ताहिक पत्रिकाओं का अत्यन्त शौक था। "नेशन" तथा "न्यू रिपबलिक" के अतिरिक्त आप कई साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिकाएं देखा करते थे। उनमें से जिस किसी में भारत सम्बन्धी कोई लेख होता अथवा उनकी रुचि के अनुकूल किसी विशेष विषय पर कुछ होता, तो आप उसे काट लेते।

इतिहास तथा सामयिक राजनीतिक तथा सामाजिक साहित्य के अतिरिक्त, आप जीवन चरित्र, समकालीन संस्मृतियां, उपन्यास तथा नाटक भी पढ़ते थे; आपको कविता में रुचि न थी। जासूसी उपन्यास अथवा अपराधियों की लोमहर्षण कथाओं में आपको रत्ती भर भी दिलचस्पी न थी। नवयुग की ठोस समस्याओं से सम्बद्ध इब्सन, गैल्सवर्दी, शा तथा वेल्स जैसे आधुनिक साहित्यकारों की कृतियां अथवा मानव मनोविज्ञान का गम्भीर विश्लेषण करने वाले उपन्यासकारों—विशेषतः दोस्तवस्की के ग्रंथ आपको भाते थे। टाल्स्टाय, गोर्की, गोगल, चेखव, आर्जिवकाफ, एस्कर, लैम्नोटोफ तथा अन्य रूसी लेखकों की पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद आप बड़े चाव से पढ़ते थे। यद्यपि आपने गैल्सवर्दी, वेल्स तथा शा आदि की प्रायः सभी रचनाएं पढ़ डाली थीं, परन्तु आपने रूसी तथा अन्य योरुपीय उपन्यासकारों की रचनाओं का कहीं अधिक रसास्वादन किया।

उनके स्वाध्याय ग्रन्थों में उर्दू साहित्य को भी विशेष स्थान प्राप्त था। अधिकांश तो उनके पुराने प्रिय लेखक थे। मुहम्मद हुस्सैन आज़ाद (जो आपके कुछ काल तक अध्यापक रहे) हाली के गद्य ग्रन्थ तथा शिबली के ऐतिहासिक तथा जीवनचरित्र सम्बन्धी लेख आपको बहुत पसन्द थे। इन तीनों को तथा सर सैय्यद के लेखों को आप उर्दू गद्य की उत्कृष्ट रचनाएं समझते थे। उर्दू में आप कभी कभी कविता भी पढ़ते थे। फारसी में अथवा उर्दू में इक़बाल की कविताओं का जो भी संग्रह प्रकाशित होता, आप उसे अवश्य मंगवा कर पढ़ते। सैय्यद अहमद की सहज स्वाभाविक लेखन शैली पर तो आप मुग्ध ही थे, परन्तु आप अधिकतर शिबली बिलग्रामी, आज़ाद तथा जका उल्लाह की ऐतिहासिक तथा जीवन चरित्र सम्बन्धी रचनाएं पढ़ा करते थे।

× × ×

जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी मनोवृत्ति में निराशावाद की स्पष्ट झलक आने लग गयी थी। शायद वर्षों तक निर्वासन, कारावास तथा पग पग पर घटिया दर्जे के अधिकारियों का व्यवहार ही इसका कारण रहा हो। असहयोग आन्दोलन का तूफान खतम होते ही चारों ओर झगड़ों और गृह कलह की लहर चल पड़ी जिससे वातावरण खासा अन्धकारमय हो गया। जीवन में कई बार की असफलताओं का सामना करते हुए भी आप कर्तव्य पथ पर डटे रहते थे। लोक सेवा के कण्टकाकीर्ण पथ से आपने अन्त तक मुख नहीं मोड़ा, यद्यपि आप प्रति दिन अनुभव करते थे कि उनके प्रयत्नों का फल, उनके कार्य के अनुपात से कहीं न्यून है। निराशा की घड़ियों में "स्वराज्य" शताब्दियों-युगों दूर खिसकता दिखलायी पड़ता। उस समय आप ठण्डी श्वास भर

कर कहते, "यथाशक्ति जनता के कष्टों को कम करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।"

जीवन के अन्तिम आठ वर्षों में वह "धर्म" के प्रचलित अर्थ से कोसों दूर चले गए थे। उनके जीवन में किसी प्रकार के सिद्धान्त में विश्वास रखने अथवा किसी प्रकार रीति रिवाज (संस्कार) को कोई स्थान न था। छः वर्षों के निर्वासन ने उनके धार्मिक दृष्टिकोण में महान् परिवर्तन कर दिया था। उनके मित्र लाला रामप्रसाद बार बार अनुरोध करते थे कि आपको आर्यसमाज के साथ सम्बन्ध कायम रखने चाहिए और आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में सम्मिलित होकर आप अपने पुराने मित्रों से मिलते जुलते रहा करें। आपने उत्तर दिया कि मैं तो आर्यसमाज के इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों को वेद ज्ञान प्रदान किया। रामप्रसाद बोले—"प्राचीन काल के कई ऋषि भी इससे मतभेद रखते थे। आर्यसमाज से अपने आपको पृथक रखने का यह कोई प्रबल कारण नहीं है।" यह कह कर अगले रविवार को वह लालाजी को साप्ताहिक सत्संग में ले गये। उनको वहाँ देखकर एक कट्टर सिद्धान्तवादी ने लालाजी पर चोट की कि आपकी पुस्तकों में तो वेद मंत्रों को अज्ञानियों के गीत के नाम से पुकारा गया है। उसने इन शब्दों में लालाजी का उचित स्वागत किया। आर्यसमाज के अन्य नेताओं ने लालाजी को पास बुला कर पूछा कि वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने के बारे में आपका क्या विश्वास है? इसी अवसर पर कुछ आर्यसमाजी पत्रों ने उन पर आक्रमण करते हुए लिखा कि ऐसे नास्तिकों के लिए आर्यसमाज में कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार लाला रामप्रसाद के उन प्रयत्नों का अन्त हुआ जिनके द्वारा वह लालाजी को पुनः आर्यसमाज में लाना चाहते थे।

इन वर्षों में उनका "धर्म" से न्यूनतम सम्पर्क रहा। उनके परिवार में दो विवाह हुए—एक तो उनके छोटे पुत्र का और दूसरा उनके नवासे का। दोनों विवाह आर्यसमाजी पंडितों ने कराये। लोक सेवक मण्डल का श्रीगणेश भी अग्निहोत्र द्वारा हुआ—अग्नि को साक्षी रख कर सदस्यों ने शपथ ली थी।

इन एक दो अवसरों को छोड़कर आपने कभी भी किसी धार्मिक संस्कार, प्रार्थना, सन्ध्योपासना, स्वाध्याय अथवा धर्म चिन्तन में भाग नहीं लिया। आपने कभी किसी धर्म ग्रन्थ का पठन पाठन अथवा धर्म सम्बन्धी साहित्य का भी अध्ययन नहीं किया। हां, किसी समाज सुधार के समर्थन के लिए कभी कभी धर्म ग्रन्थों-स्मृतियों आदि से प्रमाण खोजने अथवा किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ की सामग्री के लिए वह ग्रन्थ अवश्य देख लिया करते थे।

अध्याय अठारह

लालाजी की कुछ फुटकर स्मृतियां

लाजपतराय की बाल्यावस्था के बारे में उस विवरण के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता, जो मुख्य कथा में यथास्थान दिया जा चुका है। जब वह कुछ दिनों के लिए देहली पढ़ने गए थे, उन दिनों बचपन की एक घटना वह स्वयं सुनाया करते थे। चूंकि उनके पिताजी स्वतंत्र विचारों के थे, इसलिए खानपान के विषय में बच्चे पर भी धर्म के दृढ़ बन्धन नहीं थे। देहली में उनके छात्रावास के अन्य लड़के खानपान में कट्टर थे। एक दिन होस्टल की रसोई में उन्होंने कोई मिष्ठान्न तैयार कराया जिसके आप बड़े शौकीन थे। आपके किसी अज्ञात कार्य से वह मिष्ठान्न भ्रष्ट समझा गया और किसी भी लड़के ने उसे स्पर्श तक करना पाप समझा। अपराधी लाजपतराय ने जी भर कर मिष्ठान्न पर हाथ साफ किए।

× × ×

एक मनोरंजक कथा, जो कई अवसरों पर उपयोगी सिद्ध हो सकती है, और जिसे आप पाठशाला के दिनों से याद रखते थे, यह थी कि एक मनुष्य का गदहा खो गया। वह उसकी खोज में निकला। सड़क पर बहुत से लोगों को बातचीत करते देखकर, उसने उनसे पूछा कि "क्या तुमने इधर से कोई गदहा जाता देखा है ?" "अभी थोड़ी देर हुए, गदहा तो नहीं, हां एक बैल हमने यहां अवश्य देखा है।" "वह किधर चला गया ?" "परन्तु यदि तुम्हारा पशु गदहा ही था, तो तुम्हें यह पूछने की क्या जरूरत है कि वह उत्तर को गया अथवा दक्षिण को ?" "अच्छा महाशयो, मेरा पशु भी तो पूरा पूरा गदहा न था।"

× × ×

उनके "शाहनामा" के दिनों की एक गूंज—१९२० से आपका सहायक (पर्सनल असिस्टेण्ट) एक गम्भीर आकृति तथा गम्भीर स्वभाव का सज्जन था और वह कभी कभी लालाजी को गहन विषयों पर परामर्श भी दे दिया करता था। लालाजी उसकी भक्ति की कद्र करते थे और अपने निजी गुप्त पत्र व्यवहार में उस पर पूर्ण विश्वास रखते थे, परन्तु जब कभी वह कोई परामर्श वा उपदेश दे बैठता अथवा

किसी प्रकार की आलोचना कर बैठता तो लालाजी सदा कहा करते "वाह महाशय तो "बुर्जुजिमिहिर" (फिरदौसी के ग्रन्थ शाहनामा के एक बुद्धिमान् अनुभवी राजमंत्री) हैं।

× × ×

"राजपूत" काल की गूंजें तो इससे कहीं अधिक थीं। राजपूतों की वीर गाथाएं, विशेषतः टाड के राजस्थान के वीरों की बातें पढ़ पढ़कर तो उनके हृदय पर स्थायी छाप पड़ चुकी थी। राजपूतों की शूर वीरता की अद्भुत बातों ने तो आपको मुग्ध कर रखा था। जब आपके एक भाई का विवाह हुआ तो आपने राजपूताने से भाटों के एक दल को बुलवा कर कई दिनों तक लाहौर के नागरिकों का मनोरंजन करवाया, जो कि लाहौर के लिए एक नितान्त नवीन तथा अद्भुत बात थी। भाट दल कई दिन लाहौर रहा और आल्हा ऊदल तथा राजपूत वीरों के पुण्य चरित्रों के बारे में जनता को सैनिक गीतों तथा काव्यों से आनन्दित करता रहा।

इतिहास के परिपक्व अध्ययन तथा राजनीतिक अनुभव से आप राजपूती रोमांच की अपेक्षा व्यवहार कुशल तथा वास्तविकता प्रिय "शिवाजी" की ओर कहीं अधिक आकृष्ट होते गए। व्यावहारिक राजनीति में आप शिवाजी तथा मराठा नीति को आदर्श मानने लगे। हां, अभी तक राजपूत जीवन के संस्कार भी आप में दृढ़ थे। १९२०-२२ में आपके यहां एक नौकर था जिसे बहुत काम नहीं करना पड़ता था। वह काफी साफ सुथरा रहता था और अपने ढंग से पूरा स्वामिभक्त था। आत्मसम्मान आदि के उसके अपने विचित्र विचार थे और प्रत्येक काम को प्रसन्नता से करने के स्थान में वह आत्म-सम्मान का कहीं अधिक ध्यान रखता था। लालाजी का छोटा नवासा जो उन दिनों कालेज में पढ़ता था, एक दिन उसी नौकर से कुछ काम करवाना चाहता था। नौकर ने काम करने से इनकार कर दिया, अतः नवयुवक ने उसको कुछ बुरा भला कहा। जब लालाजी को ज्ञात हुआ, तो उन्होंने अपने नवासे को झाड़ डाली और कहा कि तुम्हें नौकरों को पीटने अथवा उन्हें गाली देने का कोई अधिकार नहीं है। यदि उसने काम करने से इनकार किया है, तो क्या तुम नहीं जानते कि वह राजपूत है और तुम्हारा काम उसकी राजपूती शान के खिलाफ है?

× × ×

एक बार जब लालाजी कहीं यात्रा पर जाने लगे तो लाला दुनीचन्द बैरिस्टर से बोले कि "मैं तुम्हारे लिए क्या उपहार वा भेंट लाऊं?" "आप कोई उपहार लाने का कष्ट न करें, हां, अपनी यात्रा में आप किसी ऐसे धनाढ्य व्यक्ति की खोज कर लाएं जो सन्तानहीन हो और जो मुझे अपनी विशाल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नियत

करने को तैयार हो।" जब लालाजी लौट कर आए, तो उन्होंने दुनीचन्द जी को बुला कर कहा "दक्षिण भारत में मैंने एक सम्पत्तिशाली महाशय का पता लगाया है जो पुत्रहीन है। कुछ दिन हुए, उसने एक नवयुवक को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, परन्तु उस युवक ने आपके लिए स्थान खाली कर दिया है। वह नवयुवक ३००) रु० मासिक वेतन की नौकरी छोड़कर उस धनी के पास उसकी सेवा शुश्रूषा करने को आया था। उसने स्वयं ३०० रु० मासिक की नौकरी उस युवक को दे दी जिसमें से २५० रु० मासिक तो वह नियमपूर्वक बैंक में जमा करवा देता था। क्योंकि वह कहता था कि हम दोनों के निर्वाह के लिए ५० रु० मासिक काफी हैं। वह नवयुवक छः मास से अधिक न टिक सका और वहां से भाग गया। आपके लिए वह स्थान मैंने खोज निकाला है। आपको वह कैसा पसन्द आया?"

× × ×

१८९७ में लाहौर के टाऊन हाल में नागरिकों की एक सार्वजनिक सभा इस बात का निश्चय करने के लिए बुलायी गयी कि महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती की स्मृति में उनकी क्या यादगार स्थापित की जाय। सभा का आयोजन करने वाले सरकारी अधिकारियों तथा उनके पिट्ठुओं ने पहले से ही महारानी का बुत स्थापित करने का फैसला कर रक्खा था और वे लोग आशा लगाए बैठे थे कि सभा उनके इस आयोजन का समर्थन करेगी। सभा से एक घंटा पूर्व लाजपतराय ने अपने कुछ मित्रों के सामने वह सुझाव पेश किया कि धन का सदुपयोग तो एक अनाथगृह का निर्माण करने में होगा, क्योंकि हाल ही में आपको एक भयानक अकाल से अनुभव प्राप्त हो चुका था। उनके मित्रों को यह विचार पसन्द आया और होने वाली सभा में पेश करने के लिए उन्होंने एक प्रस्ताव तैयार किया। अधिकारियों के कान में भी इसकी भनक पड़ गयी और उन्होंने लालाजी के समर्थकों को समझाने की कोशिश शुरू कर दी कि यह विचार छोड़ दें, परन्तु वे असफल हुए। सभा में भी उन्होंने उनके संशोधन का गला घोंटने के लिए पूरा बल लगाया परन्तु यहां भी वे सफल न हो सके। सभा का बहुमत उनके विरुद्ध था, अतः सभा के सभापति जस्टिस सर जोजफ तथा अन्य अधिकारी बिगड़ कर तथा हताश होकर हाल से उठ कर चले गए। अधिकांश जनता वहां डटी रही और उन्होंने लाला दुनीचन्द को सभापति चुना। उन्होंने यह कह कर सभी अधिकारियों को आश्चर्य चकित और स्तंभित कर दिया कि मैं भी उसी न्यायालय का वकील हूं जिसके श्री फज़ली जज हैं। सचमुच यह एक साहसपूर्ण वक्तव्य था। समस्त घटना तथा लाला दुनीचन्द के इन शब्दों ने कई दिनों तक लाहौर के अधिकारी वर्ग को परेशान रक्खा।

लाजपतराय अभी अभी लाहौर आए थे और उन दिनों आप डी० ए० वी० कालेज तथा स्कूल में अत्यन्त दिलचस्पी लेते थे। आप नियमपूर्वक छात्रावास में जाया करते और विद्यार्थियों तथा अध्यापकों से घनिष्ठ सम्पर्क रखते थे। स्कूल के लड़के प्रति दिन पंक्ति बांध कर छात्रावास से पाठशाला जाया करते। लड़कों को यह पसन्द नहीं था कि कोई टांगा अथवा पैदल व्यक्ति उनकी पंक्ति के बीचों बीच से लांघ कर उनकी पंक्ति में गड़बड़ी पैदा करे। कालेज तथा छात्रावास के ठीक मध्य में एक अंग्रेज बैरिस्टर श्री एच० की कोठी थी। यह कोठी कोर्ट स्ट्रीट पर थी। एक दिन उसका १९ वर्ष का नवजवान लड़का घोड़े पर सवार होकर उन लड़कों की पंक्ति में से लांघ गया। घोड़े की लपेट में आने के भय से लड़के इधर उधर बिखर गए। श्री एच० अपने सपूत की करतूत देख रहे थे और बड़े हर्षित दिखलायी पड़ते थे। कुछ लड़कों ने अपने वार्डन के पास अपने मानीटर की शिकायत की कि उसकी असावधानी से हमें इस प्रकार लज्जित होना पड़ा है। मानीटर ने अपना दोष स्वीकार किया और प्रार्थना की कि मुझे एक अन्य अवसर मिलना चाहिए। दूसरे दिन श्री एच० के सपूत को भी दोबारा अपनी वीरता दिखलाने का शौक चर्राया। परन्तु अब मानीटर ने ऊंचे स्वर से उसको रोकना चाहा। बैरिस्टर कुमार घोड़े को दौड़ाता, अपने कोड़े को हवा में तड़ातड़ फटकारता और हिन्दुस्तानियों के प्रति घृणा सूचक अपशब्द बोलता जाता था। लड़के ने अपना गामाशाही जूता उतारा जिसकी एड़ी तथा तलवे पर काफी लोहा जड़ा हुआ था और अपराधी अंग्रेज कुमार के मुँह पर दे मारा जिससे उसके गाल पर लोहे की एड़ी का अर्द्ध वृत्त गहरा चिह्न पड़ गया। बाँका सवार रोने चिल्लाने लगा और अपने पिता की शरण ली। बैरिस्टर साहब अपने पड़ोसी तथा चीफ कोर्ट के वकील लाला लाजपतराय के पास आए और उन्हें अपने बेटे की गाल पर अर्द्धचन्द्र दिखलाते हुए डी० ए० वी० कालेज के लड़कों के व्यवहार की शिकायत करने लगे कि उन्होंने मेरे बेटे के मुंह पर हिन्दुस्तानी जूता दे मारा है। लाजपतराय ने उसे विश्वास दिलाया कि मैं जरूरी जांच करूंगा और देखूँगा कि आक्रमणकारी को उचित दण्ड दिया जाय। शाम को कचहरी से लौटते हुए आप छात्रावास गए और जांच आरम्भ कर दी। जब आपको सारी घटना ज्ञात हुई तो आपने मानीटर की वीरता पर उसकी पीठ ठोंकी। फिर आपने बैरिस्टर के पास जाकर सारी बात सुनायी। फैसला यह हुआ कि बात को जाने दिया जाय और दोनों ऐक्टर परस्पर हाथ मिला लें। चूंकि श्री एच० के बेटे को गहरी चोट लगी थी, डी० ए० वी० कालेज के विद्यार्थी को खेद प्रकट करना चाहिए और श्री एच० उसे स्वीकार कर लें। लाजपतराय ने स्वयं लड़के के खेद प्रकाशन का फार्मूला तैयार किया "मुझे खेद है कि मैंने तुम पर देसी जूते से प्रहार किया।" यह मालूम नहीं

हुआ कि श्री एच० ने अपने सुपुत्र के प्रतिशोध के गूढ़ व्यंग को भी समझा अथवा नहीं।

× × ×

उदार विचार रखने वाले लोगों के भी पुराने युगों के संस्कार कभी कभी जाग उठते हैं। लालाजी अपने परम प्रिय मित्र द्वारकादास के विषय में एक कहानी सुनाया करते थे। उनके सभी आर्यसमाजी मित्रों में से द्वारकादास ही राजनीति में उनके विचारों से समीपतम थे। एक बार लाजपतराय तथा द्वारकादास इकट्ठे इंग्लैण्ड में थे और एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि परिवर्तन के लिए हिन्दुस्तानी भोजन खाना चाहिए।

लालाजी अपने मित्र को एक हिन्दुस्तानी भोजनालय में ले गए जिसे एक भारतीय (सम्भवतः अब्दुल्ला) चलाया करता था। उन्होंने वहां आनन्दपूर्वक खाना खाया। जिस खाने को हम लड़कपन से खाते रहे हैं, उसी के साथ प्रेम का नाम ही तो देशभक्ति है। एकदम ही द्वारकादास ने किसी भाव के वशीभूत होकर खाने से हाथ खींच लिया। "परन्तु वह तो मुसलमान है" उन्होंने होटल के बैरे के मुसलमानों के जैसे वस्त्र देख कर घबरा कर कहा। लालाजी हंसने लगे और बोले "हां, आपके विचार में यहां आप सदा ब्राह्मणों के हाथ का खाना खाते रहे हैं।"

× × ×

तिलक तथा गोखले दोनों के प्रति लालाजी की श्रद्धा और भक्ति कई लोगों के लिए एक पहेली सी थी। लालाजी के श्रद्धालु शिष्यों के दिमाग में भी उनकी यह असंगति पूरी तरह नहीं समाती थी। एक दिन भाई परमानंद जो उन दिनों अग्रगामी दल के साथ थे, लालाजी के मकान पर आकर कहने लगे "यदि तिलक देशभक्त है, तो गोखले देशद्रोही होंगे, परन्तु यदि गोखले देशभक्त हैं, तो तिलक कुछ और होने चाहिए।" लाजपतराय को इससे दुख हुआ और जैसी उनकी आदत थी, बिगड़ कर बोले कि मैं ऐसी बातचीत नहीं सुनना चाहता। भाई परमानन्द तत्काल ही उठ कर चले गए और उसके पीछे उन्होंने लालाजी की कोठी पर कोर्ट स्ट्रीट में आना जाना बन्द कर दिया। कई सप्ताह तक वह उधर न आए। अन्त में लालाजी ने जो मित्र से बिगाड़ सहन नहीं कर सकते थे, उनको बुलवा लिया।

× × ×

अपने निर्वासन काल के दिनों से, वह अपने प्रान्त तथा उससे बाहर भी "पंजाब केसरी" के नाम से पुकारे जाने लगे थे। अखबारों में तो विशेषतः यह एक प्रकार का स्थायी विशेषण बन गया था। इस पर कुछ सिक्ख बिगड़ उठे, क्योंकि वे

नहीं चाहते थे कि महाराजा रणजीत सिंह के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को पंजाबकेसरी की उपाधि से विभूषित किया जाय। एक बार एक सिक्ख संस्था ने इसके बारे में आपको एक बाकायदा प्रतिवाद भेजा। आपने अखबारों में लिखा कि उपाधि के बारे में मेरा उत्तरदायित्व किंचिन्मात्र भी नहीं है, क्योंकि न तो मुझे इसकी इच्छा थी और न मैंने इसे स्वीकार किया है।

× × ×

फ्रान्सेस हैकिट लिखते हैं—"जब मेरी पत्नी और मैंने लालाजी से "किम" (एक जासूस की सुन्दर कहानी) के बारे में पूछा, तो उन्होंने स्पष्ट और निर्भीक शब्दों में उत्तर दिया। उन्होंने हमें बतलाया कि मैंने रेलगाड़ी में उस पुस्तक को पढ़ना शुरू किया, और प्रथम ४०-५० पृष्ठ पढ़ने के पश्चात्, इतना हताश हुआ कि मैंने उसे खिड़की से बाहर फेंक दिया। सब से बुरी बात यह थी, "उसने हंसते हुए बतलाया कि वह पुस्तक उधार ली हुई थी।"

एक बार अमेरिका में लालाजी का भाषण हो रहा था और श्रोताओं में एक अमेरिकन मिश्नरी भी था जो लाहौर में कहीं प्रोफेसर था। व्याख्यान की समाप्ति पर प्रोफेसर महाशय उनकी कुछ बातों का खण्डन करने लगे—विशेषतः लाहौर में दूध के भाव को लेकर। "श्री राय, क्या आप समझते हैं कि हम आपकी भाँति भारत से प्रेम नहीं करते?" यह प्रश्न मिशनरी महाशय ने दूध के भाव पर वाद-विवाद के पीछे पूछा था। "मेरे लिए तो सम्मान का केवल एक ही मार्ग बच गया है कि मैं पास की नदी में छलांग कर डूब मरूं।" पंजाबी के ठेठ शब्द थे, जब कि पादरी महोदय उनसे किसी प्रकार लल्लो चप्पो तथा खुशामद के वाक्यों की आशा कर रहे थे।

लालाजी को सदा इस बात का खेद रहा कि आपको संगीत से कुछ भी परिचय नहीं था। वह बहुधा स्वीकार किया करते थे कि मुझमें सुसंस्कृत जीवन का अभाव है। उनकी प्रबल इच्छा थी कि कम से कम उनके साथ रहने वाले युवकों के जीवन में इस प्रकार का अभाव न हो। उन्हें अच्छी तरह याद था कि एक बार श्रीहरदयाल की प्रार्थना पर एक प्रवीण संगीतज्ञ ने अपनी कला से उपस्थित मण्डली को मुग्ध करने का प्रयत्न किया था। हरदयाल ने पूछा, "लालाजी आपको श्रीमती जी का संगीत कैसा पसन्द आया?" किसी की भावनाओं का विचार न करते हुए, लालाजी का कोरा तथा स्पष्ट उत्तर था, "मुझे उसके चीखों से कुछ आनन्द नहीं आया।" हरदयाल की सहेली को इससे अपार दुख हुआ और इसके पश्चात् उसने कभी भी लालाजी की उपस्थिति में गाने की कोशिश नहीं की। उसने इस प्रकार लालाजी को सुझाया कि उनकी शिक्षा कितनी अपूर्ण और अधूरी है।

वर्षों तक पाश्चात्य देशों में निवास करने पर भी आपको पाश्चात्य संगीत पसन्द नहीं आ सका। यों तो आपको भारतीय संगीत का भी कुछ ज्ञान न था, परन्तु उससे प्रभावित अवश्य होते थे। जब कभी पंडित विष्णु दिगम्बर लाहौर आते, आप लालाजी के दर्शन अवश्य करते और कभी संगीत द्वारा उनका मनोरंजन भी करते। उन्होंने गन्धर्व महाविद्यालय के अपने साथियों को स्थायी निर्देश दे रखा था कि जब कभी लालाजी की इच्छा हो, उनके पास आकर उन्हें राग रागिनियों का रसास्वादन कराया करें। रोग, मानसिक उदासी अथवा कार्याधिक्य से थक कर आप अवश्य ही उनका गान सुनते। तब आपको संगीत की शक्ति का ज्ञान होता। आप विष्णु दिगम्बर तथा ओंकारनाथ के संगीत का आनन्द उठाते थे।

श्री हरदयाल सर्वथा भिन्न रुचि के व्यक्ति थे। वह पूर्व तथा पश्चिम की सम्पूर्ण ललित कलाओं—संगीत आदि का पूर्णतः आनन्द उठा सकते थे—उनका मानसिक तथा सांस्कृतिक विकास इतना उच्च कोटि का था। लालाजी हंसते हुए बतलाया करते थे कि "एक बार चिरकाल के पश्चात् मुझे हरदयाल से पेरिस में भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने उससे ठेठ पंजाबी ढंग से पूछा "क्या तुमने सचमुच पेरिस की सैर की है?" उसने उत्तर दिया "हां"। "क्या तुमने इन्हीं फटे पुराने चीथड़ों में पैरिस की सैर कर डाली है?" मैंने पूछा।"

× × ×

संगीत का यह अभाव, उनके मानव जीवन के प्रति उदासीनता अथवा वैराग्य के कारण नहीं था। भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के रूप में आप समझते थे कि "परलोकवाद" पर बल देकर हिन्दू घाटे में रहे हैं और उन्होंने बड़े कष्ट उठाये हैं। आर्यसमाज के प्रचार में भी आपको वही मनोवृत्ति दिखलायी पड़ती थी। आपने अमेरिका से अपने आर्यसमाजी मित्रों को चेतावनी दी कि नवयुवकों के मन में वैराग्य का विष प्रवेश न करें। अमेरिका में आप अपने देशवासी स्वामी लोगों—साधु-संतों को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। आपको यह दृढ़ विश्वास होता गया कि "त्याग तथा वैराग्य" तरुण भारत के लिए हलाहल "विष" से कम नहीं।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने जिन्हें लालाजी अच्छी तरह जानते थे, हिंदी की एक मासिक पत्रिका "त्यागभूमि" निकालने की इच्छा प्रकट करते हुए, लालाजी से प्रथमांक के लिए सन्देश मांगा। लालाजी ने पत्रिका के नाम पर आपत्ति उठाते हुए लिखा कि "त्याग" एक जाति के लिए खतरे का चिन्ह है। और आपकी पत्रिका के नाम से विषैले प्रचार की गन्ध आती है। "त्याग" शब्द इस बात का प्रतीक है कि भारतवर्ष सदा त्यागियों और संसार के प्रति उदासीन व्यक्तियों की भूमि बनी रहे।

× × ×

तरुण भारत के शिक्षक के रूप में लालाजी की शिक्षा गाँधी तथा टैगोर की शिक्षा से सर्वथा भिन्न थी। आपको गाँधी जी के संन्यास में अविश्वास था। यद्यपि रवीन्द्रनाथ संन्यास का उपदेश तो नहीं देते थे, परन्तु उनके प्रचार में रहस्यवाद तथा परलोकवाद का पुट स्पष्ट दिखलायी पड़ता था। लाजपतराय की अभिलाषा थी कि भारतीय तरुण कठोर तथा सादा जीवन व्यतीत करें और अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखें, परन्तु जिस स्वतंत्र भारत की वह कल्पना किया करते थे, वह एक प्रगतिशील भूमि, उद्योगधन्धों से धनाढ्य तथा सर्वांगपूर्ण जीवन युक्त देश था। आप गांधी जी के गतिशील राजनीतिक ढंगों तथा कार्यप्रणाली के प्रति आकृष्ट तो हुए, परन्तु दृष्टिकोण में मतभेद होने के कारण, यद्यपि लाजपतराय ने असहयोग कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया था और आप अंग्रेजों की भारतीय शिक्षा प्रणाली के कट्टर समालोचक थे, परन्तु फिर भी गांधीजी के कार्यक्रम—शिक्षा के बहिष्कार—की आपने हंसी उड़ायी। अन्त तक आप सहमत न हुए जब तक कि औद्योगिक शिक्षा को बहिष्कार क्षेत्र से बाहर न करा लिया। गांधीजी देश के औद्योगीकरण के विरुद्ध थे। आप उनसे इस बारे में भी मतभेद रखते थे। गांधीजी का व जैनियों का अहिंसावाद भी उनको अपील नहीं करता था। टैगोर के साथ उन्हें भेंट करने का कभी अवसर प्राप्त नहीं हुआ। १९१८ में दोनों न्यूयार्क में थे, परन्तु वहां भी उनकी भेंट न हो सकी। पादरी सी०एफ० एण्ड्रयूज जैसे व्यक्ति के दोनों के साझे मित्र होते हुए भी टैगोर से उनका मिलन न हो पाया।

कुछ अमेरिकन पत्रों ने टैगोर के विचारों की कड़ी आलोचना की। लाजपतराय ने अपने देशवासी भाई की ओर से विवाद क्षेत्र में प्रवेश किया। परन्तु भला वह टैगोर की ओर से क्या सफाई पेश कर सकते थे,जब कि वह स्वयं उनके विचारों से सहमत न थे। आपने अमेरिकन आलोचकों से प्रार्थना की कि यदि वे टैगोर को गुरु-पथप्रदर्शक के रूप में नहीं, प्रत्युत कलाकार के रूप में समझने की कोशिश करेंगे तो कलाकार तथा कवि के रूप में उनकी पदवी बहुत ऊंची पायेंगे। भला यह भी कोई सफाई है!

"क्रिसमस १९२७ अथवा जनवरी १९२८ के दिनों में हम कलकत्ता में बिड़ला पार्क में ठहरे हुए थे और मिस मियो की पुस्तक "मदर इंडिया" का उत्तर तैयार करने में व्यस्त थे। एक दिन सायंकाल को गांधी, टैगोर, संन्यास, त्याग, रहस्यवाद आदि की बातों का सिलसिला छिड़ गया। हमारा विचार था कि इन बातों का तरुण भारत पर तमोगुणी और विषैला प्रभाव पड़ रहा है। हम दोनों को खेद था कि साबरमती की शिक्षा का परिणाम पूर्ण जीवन नहीं है, और शान्तिनिकेतन के

सन्देश को भी नवजीवन प्रदायक मंत्र के स्थान में सुलाने वाली मधुर लोरी समझा जायगा। फिर मुझसे पूछने लगे कि आप भी गांधी अथवा टैगोर की फिलासफी से सहमत नहीं हैं ? . . . . . .परन्तु मैंने तो टैगोर के पक्ष का समर्थन किया है।" बड़ी सादगी से आप सुनाने लगे कि मैंने अमेरिका के पत्रों में क्या क्या लिखा था। आपके मन में यह विचार तक नहीं आता था कि आपने टैगोर का पक्ष ग्रहण करते हुए उसकी लुटिया डुबो दी है।

लालाजी के लिए उच्च दार्शनिक तथा रहस्यवादी अध्यात्मवाद एक निरर्थक वस्तु था, परन्तु हां, यदि अध्यात्मवाद का अर्थ अत्याचार पीड़ित तथा दलित मानवता के दुखों के,साथ सहानुभूति की भावना हो, अथवा अन्याय वा अत्याचार के विरुद्ध तीव्र संघर्ष की भावना हो, तो निस्संदेह वह इस शब्द का व्यापक अर्थ अपने तन-मन से समझते थे। एक बार शिमला में एण्ड्रयूज उनके साथ "गुरुदेव" के गहन अध्यात्मवाद की बात कर रहे थे, कि लालाजी अचानक बोल उठे, "चार्ली, मैं तो गुरुदेव की अपेक्षा तुममें कहीं अधिक आध्यात्मिकता पाता हूं।" एण्ड्रयूज को ये शब्द तो पसन्द नहीं आए, परन्तु वह उनका आशय समझ गए थे। साथ ही उन्होंने अपने मित्र को चेतावनी भी दी कि यदि फिर कभी इस प्रकार के कुफ्र के शब्द आपके मुख से निकले तो मैं आपके कान ऐंठूंगा।

माण्डले से लौटते ही एण्ड्रयूज के साथ आपका सम्पर्क स्थापित हो गया था, परन्तु घनिष्ठ मित्रता तो १९२० में उनके निर्वासन से लौटने के बाद ही शुरू हुई। अपने जीवन के अन्तिम ४-५ वर्षों में तो पत्र व्यवहार द्वारा वह एक दूसरे के सम्पर्क में रहते थे। लाजपतराय एण्ड्रयूज की सत्यनिष्ठा के भारी प्रशंसक थे।संसार के जिस कोने से भी आपके कानों में अत्याचार पीड़ित लोगों का करुण कलाप पहुंचता आप निजी सुखों की परवाह न करते हुए वहां सहायतार्थ पहुंचते। वह प्रायः दौरे पर रहते और आपको व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए सदा धन की जरूरत रहती। जब कभी लालाजी उनकी कुछ आर्थिक सहायता करते, चार्ली सदा ही वह धन दूसरों को दे डालते। एक बार एण्ड्रयूज ने आसाम के संकट-निवारणार्थ धन की सहायता की अपील की। लालाजी ने चाँदी के समस्त प्याले आदि जो उनके देशवासियों ने समय समय पर उनके सम्मानार्थ उनको भेंट किए थे, एण्ड्रयूज को भेज दिए।

श्रीमती जानकी धर्मवीर के अतिरिक्त केवल एण्ड्रयूज ही ऐसे पुरुष थे जो उनको "लाजपत" कह कर पुकारा करते थे। लालाजी भी उन्हें 'चार्ली' कह कर पुकारा करते थे। एक बार श्रीमती सरोजिनी नायडू अपने जीवन की घटनाएं सुनाते सुनाते उनको 'लाजपत' पुकार बैठीं, इस पर श्रीमती धर्मवीर ने उन्हें बलपूर्वक टोक दिया।

आर्यसमाज के दिनों से उनके साथ काम करने वाली मित्रमंडली हंसराज, रामरत्न, साईदास, रामप्रसाद तथा भाई परमानन्द आदि उन्हें "बाबू जी" कह कर सम्बोधित करते थे। अन्य लोगों के लिए वह "लालाजी" थे।

लालाजी सच्चे अर्थों में जनवादी नेता थे। आपको वंश, जाति, श्रेणी, गोत्र आदि किसी वस्तु का मिथ्याभिमान न था। अग्रवाल लोग अपने आपको राजा उग्रसेन के वंशज बतलाया करते हैं, परन्तु लालाजी इस 'शाही वंश' की भी प्रायः हंसी उड़ाया करते थे। आप प्रायः कहा करते थे कि पंजाब में रावी से पश्चिम क प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको 'दीवान' और रावी से पूर्व प्रत्येक पुरुष अपने आपको "रायजादा" लिखता है। जब आपके मित्र जोसिया वेजवुड ने अपनी आत्मकथा लालाजी के पास भेजी जिसमें आरम्भ के कई परिच्छेद वंशाभिमान तथा वेजवुड परिवार की वीरता के गुण-गान में काले किए गए थे, लालाजी ने उनको स्पष्ट शब्दों में लिखा कि यह अनुचित मिथ्या घमंड जनवाद के युग में आप जैसे शिक्षित तथा प्रगतिशील लोगों को शोभा नहीं देता। आपके उपरोक्त शब्दों से भले ही किसी हृदय को चोट लगे, परन्तु ऐसे अवसरों पर वह कभी मन के वास्तविक भावों को छिपाने में असमर्थ थे।

× × ×

१९२७ के साधारण चुनाव के समय जब लालाजी के दल और पंडित मोतीलाल की स्वराज्य पार्टी में संघर्ष हो रहा था, तब कोई व्यक्ति यह गप हांक गया कि कहीं मोतीलाल जी ने कहा है कि बनिया कभी लड़ाकू नहीं हो सकता। शब्द यह भी अन्य गप्पों की तरह निराधार हो, परन्तु लाला जी उसे सुनकर हंसे और तत्काल ही बोल उठे, "कौन कह सकता है कि यदि एक बनिए और एक काश्मीरी ब्राह्मण में टक्कर हो जाय, तो कौन जीतेगा?"

कुछ काल पूर्व जब लालाजी हिन्दू आन्दोलन में दिलचस्पी ले रहे थे, डा० सैफ़द्दीन किचलू ने भी कांग्रेस नेताओं से पृथक् मार्ग ग्रहण करते हुए मुसलमानों के संगठन का कार्य आरम्भ कर दिया था। अमृतसर से एक दैनिक पत्र प्रकाशित होता था जिसमें प्रति दिन लालाजी पर कड़ी चोटें की जातीं। लालाजी ने इधर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। कुछ दिन बाद दोनों (लाला जी तथा किचलू) एक ही गाड़ी में यात्रा कर रहे थे। रात के समय तो वह एक दूसरे को न देख सके, परन्तु सबेरा होते ही, जब गाड़ी ठहरी, तो लाला जी ने खिड़की से देखा कि किचलू स्टेशन पर टहल रहे हैं। झगड़ों और तूफान के बाद दोनों की चिरकाल

से भेंट नहीं हुई थी और क्षण भर तो उनके मन में विचार आया कि हम दोनों के बीच भारी खाड़ी विद्यमान है, परन्तु किचलू ने अभी उनको देखा ही न था कि उन्होंने मन में निश्चय कर लिया और किचलू को आवाज दे दी। जब किचलू इनके कमरे में आये तब लालाजी बोले "प्रातःकाल ब्राह्मण का दर्शन अशुभ समझा जाता है, परन्तु डाक्टर किचलू!" तुम तो बिगड़े हुए ब्राह्मण हो (क्योंकि उनके पूर्वज हिन्दू से मुसलमान बन गए थे)।"क्षण भर में कड़वाहट के मेघ छिन्न भिन्न हो गए और दोनों में प्रेम से वार्तालाप होने लग पड़ा।

× × ×

विदेश से लौट कर आप अपने मित्रों तथा परिवार के सम्बन्धियों में उपहार बांट रहे थे। उनमें से एक ने पूछा कि आपने इस प्रकार के उपहारों का कहां और कैसे चुनाव किया। कई वस्तुएं तो बिलकुल साधारण सी थीं। परन्तु कई यद्यपि बहुमूल्य तो न थीं, किन्तु उनके चुनाव में सुसंस्कृति दृष्टिगोचर होती थी। आप तत्काल ही बात को ताड़ गए और खुले दिल से कहने लगे कि "इन वस्तुओं का चुनाव मेरे लिए जवाहरलाल ने किया था। यदि आप चुनाव की प्रशंसा करते हैं तो चुनने वाले की बड़ाई कीजिए, न कि मेरी।"

एक बार आप विदेश से गान्धी जी के लिए एक उपहार लाए। यह एक अत्यन्त छोटे आकार की भगवद्गीता थी जिसके साथ एक सूक्ष्मदर्शक यंत्र भी लगा हुआ था। हंसी ठट्ठे के मूड में ही आपने ऐसे विचित्र उपहार की कल्पना की होगी। वह गीता साबरमती भेजी गयी। साबरमती के सन्त को उपहार के चुनाव पर हंसी तो आयी होगी, परन्तु उसने उपहार भेजने वाले की इच्छा तथा हार्दिक भावना की अवश्य कद्र की होगी।

"यह तुम क्या पढ़ रहे हो ? जरा मैं भी देखूं।" लालाजी सदा यह प्रश्न पूछा करते थे। एक बार कला पर एक पुस्तक थी—मेरा विचार है सर विलियम आर्पिन की "आउट लाइन ऑफ आर्ट" (Outline of Art) थी, जो हाल ही में प्रकाशित हुई थी। उनको कला की रचनाओं में कोई दिलचस्पी न थी, परन्तु मुझसे पुस्तक लेकर, नयी देहली की कोठी के बराण्डे में बैठकर आपने चित्र देखने शुरू कर दिए। मैंने कला के चित्रों में उनकी अभिरुचि कभी नहीं देखी थी। अब भी मैं देख रहा था कि वह बेपरवाही से उसके पन्ने उलट पुलट रहे हैं। परन्तु अन्त में एक रंगीन चित्र की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ और मैंने देखा कि वह चित्र के साफ साफ मर्दाना आकार तथा शान से प्रभावित हुए हैं। चित्र पर से आंखें उठाते हुए वह मुझ से पूछने लगे—"क्या तुम जानते हो

कि Doge (डोज) क्या है ?" मेरा कुछ धुन्धला सा विचार था कि वह कोई अधिकारी होगा। आपने शीघ्र ही मध्यकालीन इटली, वैनिस तथा रोमन अधिकारियों की बाबत बोलना शुरू कर दिया। इतिहास के विद्यार्थी के रूप में चित्र को देखकर उनकी दिलचस्पी जागृत हो उठी।



अध्याय उन्नीस

एकता का संदेश एवं साइमन कमीशन

जब लालाजी प्रथम बार इंग्लैण्ड गए थे, तब आपने अपने देशवासियों को "आत्मावलम्बन" का सन्देश दिया था और यही सन्देश आपने कांग्रेस के बनारस वाले अधिवेशन से ब्राडकास्ट किया। योरप की अन्तिम यात्रा में भी एक सन्देश आपके मस्तिष्क में चक्कर लगा रहा था यह था "एकता" का। लालाजी का स्थिर मत था कि "जब तक देश में फूट रहेगी, देश की दुर्दशा का अन्त होने की कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। भारतवासियों के पारस्परिक झगड़ों ने ही अंग्रेजों को इतना घमण्डी बना रखा है।" जितने थोड़े से दिन आप लन्दन रहे, आप इसी परिणाम पर पहुँचे।

पिछले अनुभव से आप जानते थे कि एकता के मार्ग में अत्यन्त भारी कठिनाइयां हैं परन्तु एक बात उनको स्पष्ट दिखलायी पड़ती थी कि एकता का अर्थ जबानी जमा खर्च अथवा उच्च सिद्धान्तों की दुहाई देना नहीं है। इससे कहीं अधिक अच्छा यह होता कि स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किए ईमानदाराना और सच्चे मतभेद कायम रहें। एकता सम्मेलनों की निष्फल लड़ी में खिलाफत वालों ने एक अन्य सम्मेलन की योजना कर दी। इसके बारे में लालाजी ने लिखा:—

"इस वर्ष के अगस्त में केन्द्रीय खिलाफत कमेटी की ओर से एक एकता सम्मेलन की पेशकश आयी। सम्मेलन की प्रारंभिक मीटिंग अभी हो रही थी कि रायबहादुर बहादुर सिंह की हत्या का समाचार प्राप्त हुआ और उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। फिर बड़े सुन्दर सुन्दर भाषण हुए परन्तु साथ ही अत्यन्त आपत्तिजनक बातें भी हुई। मौलाना की एक ही सांस में युद्ध तथा सन्धि की बातें करने की आदत है। अपने लाहौर वाले भाषण में "इस्लामिक कानून" की व्याख्या करते हुए मौलाना ने बतलाया कि प्रत्येक मुसलमान में कई कई हिन्दुओं के साथ लड़ने की शक्ति है। आपने शान्ति का उपदेश भी दिया, परन्तु साथ ही मुसलमानों को युद्ध के लिए तैयार रहने की प्रेरणा भी की। उनकी वक्तृता की रिपोर्ट में (जिसका खण्डन कभी नहीं हुआ) कहा गया था कि अगली

बार यदि किसी राजपाल ने पैगम्बर की शान के विरुद्ध कोई पुस्तक प्रकाशित करने का अपराध किया, तो मैं अपने हाथ से अपराधी की हत्या करूंगा।"

"सम्मेलन में मुसलमानों की ओर से कई उत्तेजनाजनक भाषण हुए। मौलाना की ऐसी कोई वक्तृता नहीं थी जिसमें उन्होंने हिन्दुओं पर समस्त दोष न डाला हो। केवल ईश्वर ही जानता है कि सम्मेलन के हिन्दू सदस्यों को मुसलमानों की पसन्द के निर्णय करने के लिए समझाने में मेरे क्या प्रयत्न थे, परन्तु मतभेद इतने अधिक थे कि सम्मेलन छोड़ दिया गया। फिर मुसलमान पत्रों की ओर से सम्मेलन की कार्यवाही प्रकाशित होने लगी। सम्मेलन में समझा यह गया था कि जो कुछ वहां कहा तथा किया जाय उसे गुप्त रखा जाय और पत्रों में प्रकाशित न किया जाय। अतः सम्मेलन के अन्तिम दिन प्रधान की ओर से एक संक्षिप्त विवरण प्रेस को दिया गया जिसका समस्त सम्मेलन ने समर्थन किया। फिर भी मुसलमानों ने सम्मेलन का विवरण अपने ढंग से छापते हुए लिखा कि सम्मेलन में जो कुछ कहा गया है, वह अपूर्ण रूप से तथा साम्प्रदायिक ढंग से प्रकाशित किया गया है। मौलाना दाऊदी ने इस का प्रत्युत्तर देते हुए लिखा कि मुसलमानों ने तो जयरामदास दौलतराम की अशुद्ध रिपोर्ट के जबाव में अपना विवरण छपवाया है। यदि जयरामदास ने सचमुच ही कुछ अपनी ओर से प्रेस में दिया है तो उन्होंने विश्वासघात किया है और उसकी निन्दा होनी चाहिए। उस दशा में श्री दाऊदी का कार्य क्षन्तव्य है। परन्तु जहां तक मुझे ज्ञात है, कुछ भी प्रकाशित नहीं हुआ, और श्री दाऊदी का कृतज्ञ हूंगा यदि वह कृपया इस बात पर प्रकाश डालें कि वह कहां और कब प्रकाशित हुआ। श्री जिन्ना कहते हैं कि मैंने सम्मेलन की कार्यवाही प्रकाशित करने की आज्ञा किसी को भी नहीं दी।"

"यह तो एक फालतू सी बात थी। मैंने इसे यहां केवल इसलिए दिया है कि समस्त घटनाचक्र से सन्देह पैदा होता है कि एकता सम्मेलन खिलाफत कमेटी की एक गहरी राजनीतिक चाल थी और उसका उद्देश्य हिन्दुओं को दोषी सिद्ध करना था। मुझे इस पर विश्वास नहीं आता, परन्तु सारा घटनाचक्र हमें इसी परिणाम की ओर ले जाता है। हिन्दुओं को आरम्भ से ही इसमें शंकाएं थीं और यही कारण था कि वह इस बात पर जोर देते थे कि दोनों दलों के मतभेद दूर करने के स्थान में उनमें अस्थायी रूप से विराम सन्धि तथा सद्भावना तो स्थापित की जाय। मुसलमानों ने इस पर विचार करने से ही इनकार कर दिया। यह सभी कुछ उस सभा में हुआ जिस में जनता तथा अखबार वालों का खुला प्रवेश था। अतः मैं कोई रहस्य भेद नहीं कर रहा हूँ। इस सुझाव का उत्तर पीलीभीत की हत्या थी।"

"सम्मेलन की असफलता मेरे मन पर बड़े दुखमय प्रभाव छोड़ गयी।"

इससे तो यही झलकता है कि हताश होकर लालाजी ने सारे प्रयत्न बन्द कर दिए। कुछ दिन पीछे जब मदरास कांग्रेस अधिवेशन ने "एकता" के बारे में प्रस्ताव पास किए, तब उन्होंने लगभग वे ही विचार प्रकट किए :—

"ऐसा प्रतीत होता है कि पंडित मालवीय जी ने आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के बम्बई वाले प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया है, जिसका अर्थ है कि उनको इस बात में कोई आपत्ति नहीं कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में सुधार जारी किए जायँ तथा सिन्ध को बम्बई से पृथक कर दिया जाय। मैं भी बम्बई वाले इस प्रस्ताव के साथ पूर्णतया सहमत हूँ, इसलिए नहीं कि यह प्रस्ताव पूर्ण अथवा अन्तिम है, प्रत्युत इसलिए कि यह साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की समाप्ति की ओर कदम बढ़ाता है। सिद्धान्तरूपेण तो मैं सभी प्रकार के साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विरुद्ध हूँ। परन्तु मुसलमानों की मनोवृत्ति के कारण, यदि अभी इसका अन्त करना असम्भव हो तो मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बम्बई वाले प्रस्ताव का विरोध नहीं करूंगा। जब गत मई में मैं इंग्लैण्ड जाने लगा था तब मैंने अपने मित्र श्री जयकर से भी प्रार्थना की थी कि इसमें कुछ संशोधन कर दिए जायँ तो आप भी उसका समर्थन करें।"

"मुझे खेद है कि मैं गोहत्या तथा मस्जिदों के सामने बाजे के प्रश्न का समर्थन नहीं कर सकता। कलकत्ता के एकता-सम्मेलन के सिद्धान्त के साथ तो मेरा कोई मतभेद नहीं। हमारा ध्येय तो पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता है और वह तभी प्राप्त हो सकती है यदि विभिन्न धार्मिक श्रेणियां अथवा सम्प्रदाय दृढ़ निश्चय कर लें कि हम एक दूसरे के धार्मिक कृत्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। यह अत्यन्त प्रशंसनीय सिद्धान्त है और यही हमारा ध्येय होना चाहिए। परन्तु एक सम्प्रदाय की धार्मिक स्वतंत्रता दूसरे सम्प्रदाय की धार्मिक स्वतंत्रता से सम्बद्ध होनी चाहिए। यदि हिन्दुओं को कुछ विशेष स्थानों तथा कुछ विशेष स्थितियों में गोहत्या के विरुद्ध आपत्ति है, तो उनका यह अधिकार माना जाना चाहिए। इसी प्रकार मस्जिदों के सामने बाजे न बजने का मुसलमानों का अधिकार भी मान लेना चाहिए। मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि गोहत्या तथा मस्जिदों के सामने बाजा बजाना समान ढंग के प्रश्न हैं। मेरी सम्मति में तो मदरास में कांग्रेस द्वारा पास किया हुआ प्रस्ताव बिल्कुल व्यर्थ है। यह तो शुभ आकांक्षा के अतिरिक्त कुछ नहीं। यह प्रस्ताव हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सम्मान के भाव की अपील करता है। विनीत शब्दों में मेरी प्रार्थना है कि भारत के विदेशी शासकों तथा देश के लुटेरों का सदैव साथ देने वाली श्रेणी में तो सम्मान का सर्वथा अभाव है। इसी प्रकार

विवाह के प्रश्न पर अपनी लड़कियों से इतना घृणित तथा जघन्य व्यवहार करने वाली हिन्दू जाति में कुछ सम्मान का अंश शेष है?"

लालाजी का प्रतिवाद एकता के विरुद्ध नहीं, प्रत्युत्त उस उदासीनता के प्रति था जिसके वशीभूत होकर यह कल्पना कर ली गयी कि कुछ प्रस्तावों से सफलता प्राप्त हो जायगी अथवा कुछ उच्च सिद्धान्तों की मुहारनी रट लेने से बेड़ा पार हो जायगा। मदरास में तो मालवीय जी भी उन शुभकामनापूर्ण प्रस्तावों से सहमत हो गए थे।

पाठक इस परिणाम पर पहुँचे बिना न रह सकेंगे कि लालाजी एकता के समीप आने की अपेक्षा उससे कहीं दूर हटते जा रहे थे। आपने मदरास के प्रस्तावों का विरोध किया था, परन्तु महात्मा गाँधी के विचार भी इस बारे में लगभग उन जैसे ही थे :—

"मुझे तो इस प्रस्ताव पर कुछ भी प्रसन्नता अथवा उत्साह नहीं हुआ। कांग्रेस ने जो जो भी गैर-जिम्मेदाराना प्रस्ताव पास किए हैं, मैं तो उनमें से केवल दो को लेता हूँ। कांग्रेस तथा देश के दुर्भाग्य से उसमें कुछ ऐसे लोग घुस गए हैं जिनका व्यावहारिक राजनीतिक अनुभव तो लगभग "नहीं" के समान है, परन्तु जिन्हें बड़ी बड़ी गैरजिम्मेदाराना बातें बनाना खूब आता है। टुक प्रतिनिधियों की ईमानदारी तो देखिए कि पंजाब का प्रतिनिधित्व करने वाले कुल १८८ सदस्यों में से १८० मद्रासी भाई थे। यू० पी० के प्रतिनिधियों की बाबत भी मैंने ऐसी ही कहानी सुनी है। यह एक ऐतिहासिक कांग्रेस अधिवेशन था। इन चालों से तो एक ठोस तथा शक्तिशाली जाति कदापि नहीं बन सकती। हमें तो शुद्ध पवित्र राजनीति की आवश्यकता है।"

इस समय आप गत वर्षों की अपेक्षा महात्मा गांधी के कहीं अधिक समीप थे। अब पंडित मोतीलाल के साथ मिल कर कार्य करना भी सहज था क्योंकि दोनों नेता अपने पृथक् पृथक दलों के द्वारा एक ही ध्येय की प्राप्ति में संलग्न थे। दोनों नेताओं ने उदारतापूर्वक चुनाव के मतभेद और झगड़े भुला दिए थे, इकट्ठे असेम्बली में काम कर रहे थे।

व्हाइट हाल की कृपा से नेताओं की एकता और भी ठोस हो गयी। योरुप से लौटने से पूर्व ही उन्हें ज्ञात हो चुका था कि लार्ड बर्कनहैड की ओर से भेजा जाने वाला वैधानिक कमीशन केवल गोरा कमीशन ही होगा अर्थात् उसके सभी सदस्य अंग्रेज ही होंगे। नवम्बर के आरम्भ में वायसराय ने नेताओं को दिल्ली आमंत्रित किया। महात्मा गाँधी को निमंत्रण मंगलौर में मिला, आप दक्षिण का दौरा छोड़कर दिल्ली दौड़े आए। लालाजी ने ४ नवम्बर को वायसराय से

भेंट की। वायसराय ने नेताओं को साइमन कमीशन के सदस्यों के नाम ही बतलाए। महात्मा गाँधी की वायसराय से मुलाकात का वर्णन करते हुए कांग्रेस का इतिहासकार लिखता है कि "एक आने के लिफाफे द्वारा भी यही कार्य हो सकता था"—अर्थात् साइमन कमीशन के सदस्यों के नाम की सूचना डाक द्वारा भी नेताओं को भेजी जा सकती थी। नेताओं की मुलाकातें समाप्त होते ही कमीशन की सूचना जनता को ९ नवम्बर को दी गयी। लालाजी ने भेंट के बाद लिखा था :—

"सच्ची बात यह है कि मैं तो वायसराय महोदय से इस प्रकार के उपदेश सुनने को तैयार न था। हममें कई तो राजनीति तथा राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन करते करते बूढ़े हो गए हैं और साम्राज्यवादियों—चाहे टोरी, लिबरल अथवा मजदूर लोगों—की चालों को समझने में समर्थ हैं।

वायसराय का उपदेश कितना ही सद्भावनाओं से पूर्ण क्यों न हो, परन्तु आत्मसम्मान रखने वाला कोई भी हिन्दुस्तानी इसे अपना अपमान ही समझेगा। १९२७ में हमें गम्भीरतापूर्वक यह उपदेश देना कि भारत की राजनीतिक प्रगति तथा उन्नति के लिए पार्लियामेन्ट को समझाना अनिवार्य है और धारा सभा के दोनों हाऊसों के सदस्यों के द्वारा ही यह कार्य हो सकेगा, क्या यह हमारे राजनीतिक ज्ञान तथा हमारी बुद्धि का सरासर अपमान नहीं है? क्या हम सफलतापूर्वक पार्लियामेण्ट के सदस्यों को समझा सकते हैं कि हमारी मांग न्याय पर अवलम्बित है?

हमें यह बतलाना कि हिन्दुस्तानी लोगों के तो अपने हितों का प्रश्न है, और अंग्रेज ही निष्पक्ष जांच कर सकते हैं, यह एक और उस्तादी वायसराय ने दिखलायी, ताकि हम लोगों पर अपनी सत्यप्रियता तथा ईमानदारी का रोब डाल सके। मुझे दुःख है कि इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करके वायसराय का मान हमारी दृष्टि में बहुत ही गिर गया है। व्याख्या तथा भूमिका के बिना ही यह घोषणा की जा सकती थी। हम समझ सकते हैं कि स्वामी अपने दासों के साथ इसी प्रकार का व्यवहार किया करते हैं, परन्तु हमें उनकी व्याख्या तथा उपदेश पर क्रोध आता है, क्योंकि इससे हमें राजनीति तथा मानव प्रकृति के ज्ञान से निपट कोरा तथा बुद्धू मानने की कोशिश की जाती है। हम उन सभी कारणों को अच्छी तरह जानते हैं जिन्होंने सम्राट् की सरकार को यह निर्णय करने को विवश किया है। हम जानते हैं कि इंग्लैण्ड के सभी दल क्यों सहमत हो गए हैं। हम जानते हैं सर जान साइमन को क्यों कमीशन का अध्यक्ष बनाया गया है। इस निर्णय को समझने के लिए भारत में अंग्रेजी शासन का समस्त इतिहास हमारे गुरु तथा पथप्रदर्शक का काम कर रहा है। हम यह भी जानते हैं कि घोषणा में वर्णित

तथा भेंट के समय हमें बतलाए गए कारणों से वास्तविक कारण सर्वथा भिन्न हैं। हम निस्सहाय तथा विवश भले ही हों, परन्तु हम इतने मूर्ख और बुद्धू नहीं कि इस निर्णय के वास्तविक कारणों को न समझ सकें।"

इस घमण्डपूर्ण अपमान का परिणाम देश का संगठित कार्य हो सकता है और यदि इतना हो जाय तो एकता सम्मेलन के लम्बे चौड़े प्रस्तावों की अपेक्षा देशहित के लिए कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। यह एक लाभदायक पग होगा यद्यपि कुछ समय तक हम साम्प्रदायिक समस्या को हल न कर सकें।

आरम्भ से ही लालाजी ने स्पष्ट तथा दृढ़ निश्चय कर लिया था कि कमीशन का बहिष्कार किया जाय और उसका उसी प्रकार स्वागत किया जाय जिस प्रकार ज़गलोल पाशा के नेतृत्व में मिश्र ने एक ऐसे ही कमीशन का स्वागत किया था। इस विषय में आपने कुछ अन्य सुझाव भी पेश किए। १७ नवम्बर के "पीपुल" में आपने लिखा :—

"(क) कमीशन का पूर्ण बहिष्कार करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि बहिष्कार पर हमारा एकमत नहीं होगा। भारतवर्ष जैसे महाद्वीप में जहां जनता की भिन्न श्रेणियों की मनोप्रेरणा भिन्न स्वार्थों द्वारा होती है, ऐसे मामले पर एकमत होना असम्भव है। सर मुहम्मद शफी वही व्यक्ति हैं जिन्होंने पहले तो मुड्डीमैन कमेटी के बहुमत वाली रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए, परन्तु ज्यों ही उन्होंने पद त्याग किया, उन्होंने घोषणा कर दी कि मेरे विचार तो अल्पमत वालों जैसे हैं।

(ख) देश का विधान तैयार करने के लिए हमें भारतवर्ष के सभी दलों तथा सभी जातियों के १०० प्रमुख नेताओं का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाना चाहिए। २१ सदस्यों की एक उपसमिति की नियुक्ति तो तत्काल ही कर लेनी चाहिए जो विधान का ढांचा तैयार करें और उक्त सम्मेलन के सामने पेश करें। विधान निर्माण करने वाली कमेटी देहली अथवा बम्बई में एकत्रित हो। गोलमेज कान्फ्रेंस १५ जनवरी के लगभग बुलायी जाय। परन्तु विधान निर्माण का कार्य तत्काल ही शुरू कर दिया जाय। इस सम्मेलन द्वारा निर्मित विधान भारतमंत्री को भेजा जाय। २१ व्यक्तियों की उपसमिति शायद बड़ी दिखलायी पड़ती हो, परन्तु सभी श्रेणियों को प्रतिनिधित्व देने के अतिरिक्त अनुपस्थित रहने वाले सदस्यों का ध्यान भी रक्खा जाय।

इसी सिलसिले में यह भी कह दूं कि कौंसिलों तथा असेम्बली का बहिष्कार त्यागपत्र देकर नहीं, प्रत्युत वहां से अनुपस्थित रहना बिलकुल फिजूल और मूर्खतापूर्ण है। मुझे आशा है कि कोई दल भी इसे नहीं अपनाएगा।"

यह रचनात्मक सुझाव एक प्रकार से विधान-सभा (Constituent-

Assembly) का एक व्यावहारिक रूप था। भारतीय अखबारों में इसके थोड़े दिनों पश्चात् ही कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली शब्द का सर्व प्रथम उपयोग हुआ। योरुप से "पीपुल" के एक भारतीय संवाददाता ने ही किया था।

लालाजी के १०० व्यक्तियों की कमेटी के विचार को, स्काटलैण्ड के मजदूर नेता ग्लासगो हेरल्ड के श्री टाम जान्स्टन ने (श्री एच० एन० ब्रेलसफोर्ड के साथ कमीशन पर विवाद करते हुए) विकृत रूप देकर लिखा था कि यदि कमीशन में भारतियों को भी प्रतिनिधित्व दिया जाय तो १०० भारतियों की नियुक्ति करनी होगी।

भारत के सभी राजनीतिक दलों ने पास्परिक आन्तरिक झगड़ों को समाप्त करते हुए ब्रिटिश कमीशन के इस घमण्ड भरी ललकार का उत्तर दिया। क्योंकि अब स्वराजवादी, नेशनलिस्ट, कांग्रेस तथा लिबरल, लीगी तथा महासभायी सभी एक हो गए। श्रीमती एनीबसन्त शीघ्र ही बहिष्कार कमेटी में आ गयीं। श्रीजिन्ना एक सर्वदल सम्मेलन बुलाने के कार्य में व्यग्र हो गए ताकि कोई साझे पग उठाने की योजना बनायी जा सके। ३० नवम्बर को उन्होंने लालाजी को लिखा—

मलाबार हिल, बम्बई
३० नवम्बर, १९२७

प्रिय लाला लाजपतराय,

अब हमें विधान कमीशन के बारे में पार्लियामेंट के अन्तिम निश्चय का पता लग गया है। मेरी सम्मति में भारतियों को कमीशन में भाग न देने की नीति तथा सिद्धान्त पहले से भी अधिक आपत्तिजनक हैं।

आप मुझसे सहमत होंगे कि भारत को एक अत्यन्त गम्भीर स्थिति का सामना करना पड़ा है। इस समय इंडियन नेशनल कांग्रेस,मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा तथा लिबरल फेडरेशन जैसी प्रमुख संस्थाओं के पृथक पृथक कोई कदम उठाने के स्थान में, यह अत्यावश्यक है कि सफल होने के लिए हमें कोई साझी तथा मजबूत कार्यवाही करनी चाहिए।

इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रधान ने मुझे पहले से ही विश्वास दिला दिया है कि कांग्रेसी नेता १२ तथा १५ दिसम्बर के बीच में बम्बई आने को तैयार हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि लिबरल फेडरेशन के नेता भी पधारेंगे। आशा है कि आप भी मुझे तार द्वारा सूचित करेंगे कि आप भी निश्चित रूप से आ रहे हैं ताकि मैं कांग्रेस, मुस्लिम लीग, लिबरल फेडरेशन, हिन्दू महासभा तथा भारतीय व्यापार मण्डल को बिश्वास दिला सकूं।

मेरे विचार में यह ऐसा अवसर है कि चाहे आपको कितना ही कष्ट अथवा असुविधा क्यों न हो, आप अवश्य ही बम्बई पधारेंगे। किसी साझी नीति तथा कार्यक्रम को अपना कर ही हम सफल हो सकते हैं। यह सम्मेलन विभिन्न संस्थाओं के नेताओं के हाथ मजबूत करेगा जो क्रिसमस के दिनों में अपनी अपनी संस्थाओं की नीति निर्धारित करने के लिए जमा होंगे।

सम्मेलन की पूर्णता के लिए आपकी उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है।

भवदीय

एम० ए० जिन्ना

कृपया अवश्य पधारें। मैं अधिक कुछ नहीं लिखना चाहता।

एम० ए० जिन्ना

जहां मुस्लिम लीग में श्री जिन्ना ने दृढ़ कदम उठाया, वहां सर मुहम्मद शफी ने अपने पंजाबी मित्रों की एक निजी आल इंडिया मुस्लिम लीग खड़ी कर दी। उनके देखा देखी राजा नरेन्द्रनाथ तथा डाक्टर सर गोकुलचन्द ने भी पंजाब हिन्दू सभा को सरकार से सहयोग के मार्ग पर खड़ा कर दिया। लालाजी, मालवीय जी तथा डा० मुंजे की कोशिश थी कि हिन्दू महासभा ठीक मार्ग पर चले। जो लोग कहते थे कि साइमन कमीशन का बहिष्कार करने से हिन्दुओं को हानि पहुंचेगी, उन्हें लालाजी ने उत्तर दिया :—

"१८९९ में, मैं पंजाब चीफ कोर्ट के एक बेंच के सामने एक मुकदमे में पेश हो रहा था। एक जज ने, जो एक योग्य गोरे बैरिस्टर थे, मेरे विरोधी वकील को बतलाया कि तुम अपनी युक्तियों से अपने मुवक्किल का गला काट रहे हो। मुझे भय है कि साइमन कमीशन के समक्ष पेश होने वाले साक्षी भी वैसा ही कार्य कर रहे हैं। जिस प्रकार मेरा विरोधी मुकदमा हार गया, उसी प्रकार उन महाशयों की भी दुर्गति होगी। बहुत से वकील तो अपने मुवक्किलों को यही परामर्श देते हैं कि तुम कोई गवाह पेश मत करो। कभी कभी मुवक्किल की भलाई के लिए वही परामर्श सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होता है। हम अपने चार महाद्वीपों के गत ४० वर्ष के राजनीतिक अनुभव के आधार पर कमीशन के बारे में निज देशवासियों को यही परामर्श देते हैं। ये भावुकता की बातें नहीं हैं, वरन् ठोस राजनीतिक तथा शुद्ध साधारण ज्ञान की बातें हैं।"

प्रश्न केवल यह नहीं था कि कौन लोग साक्षी के रूप में पेश होंगे और कौन लोग उनकी जांच परीक्षा करेंगे। बहिष्कार के वास्तविक कारणों की अभिव्यक्ति तो कर्नल वेजवुड के उस पत्र से होती है जो उसने लालाजी के नाम लिखा था।

हाउस आफ कामन्स में मजदूर दल की ओर से केवल कर्नल वेजवुड ने ही भारत के पक्ष का समर्थन किया, जिस समय मेकडानल्ड ने भारत पर यह अवांछित कमीशन ठूंसने में अपना सहयोग दिया था। कर्नल वेजवुड ने लिखा था :—

"मेरा विचार है कि कमीशन का बहिष्कार किया जायगा। असेम्बली उसके लिए धन की स्वीकृति न देगी और यथासम्भव प्रान्तीय कौंसिलें परामर्शदात्री समितियां खड़ी करने से इनकार कर देंगी। सम्भवतः यही सर्वोत्तम कदम है जो आप लोग उठा सकते हैं। आप लोगों के सम्मान के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। स्वतंत्रता के छोटे छोटे टुकड़ों के लिए प्रार्थनापत्र भेजना अत्यन्त घृणित कार्य है और चिरकाल से यह काम होता रहा है। इससे आपका अपमान होता है। आप जानते ही हैं कि मैं सदा ही असहयोग की नीति के विरुद्ध रहा हूं और अब भी विरुद्ध हूं। भारत के शासन में आप को जो भाग प्राप्त होता है, उसे ले लें। गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट आपको जो अधिकार तथा अवसर प्रदान करता है, उसका उपयोग करें। यह झुकना और पेट के बल रेंगना नहीं है, वरन् यह भी लड़ाई का एक ढंग है। इससे भी भारतमाता के कुछ कष्ट कम करने में सहायता मिल सकती है। परन्तु इस कमीशन को आपकी सहायता की जरूरत नहीं है। जिन लोगों ने आपके विचारों अथवा भावनाओं में कभी कोई दिलचस्पी नहीं दिखलायी, ऐसे लोगों के समक्ष कठघरे में साक्षी रूप से खड़े होने का आपका कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए। मुड्डीमैन कमेटी के समक्ष पेश की गयी रिपोर्टों तथा शहादतों से वह अपना सामग्री ले सकते हैं। अधिकारीगण भी उनको सभी सामग्री जुटा सकते हैं। यदि वह चाहें तो वह संवादपत्रों का अध्ययन कर सकते हैं।"

२ फरवरी की प्रातः को कमीशन बम्बई उतरा। दूसरे दिन सारे हिन्दुस्तान में हड़ताल मनायी गयी। जहां जहां कमीशन गया, हड़तालों, काले झण्डों और "साइमन लौट जाओ" के नारों से उनका स्वागत किया गया और पुलिस की ओर से डण्डे बरसाए गए और मुकदमे खड़े किए गए। लखनऊ में एक ताल्लुकदारों के भोज में पुलिस ने कैसरबाग का घेरा डाल रखा था और किसी भी बहिष्कार करने वाले को उस ओर की सड़क पर पग धरने की अनुमति नहीं थी। इतना ध्यान रखते हुए भी आकाश से कतिपय काली पतंगों और बेलूनों की वर्षा से (जिन पर "साइमन लौट जाओ" "भारत भारतियों के लिए" आदि लिखा हुआ था) भोज की शान्ति भंग हो ही गयी।

कमीशन १० मार्च को लाहौर पहुंचा। लालाजी उस समय देहली गए हुए थे।

बहुत से स्थानों पर साइमन कमीशन के आगमन के अवसर पर सार्वजनिक सभाओं तथा प्रदर्शनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। लाहौर एक कदम और भी

बढ़ गया। वहां ढोल पीट कर मुनादी करा दी गयी कि समस्त सार्वजनिक सभाएं तथा जलूस धारा १४४के अधीन वर्जित कर दिए गये हैं। घटना के पश्चात् अधिकारी गण साफ ही मुकर गए कि हमारी ओर से किसी प्रकार की कोई घोषणा नहीं की गयी, परन्तु वह भी इस पर प्रकाश न डाल सके कि यह ढोंग किसने रचा था। लहौरी दरवाजे के बाहर बहिष्कार दल का एक शान्तिपूर्ण जलूस जा रहा था,जिस पर श्री ओगलिवी, जिला मजिस्ट्रेट ने लाठी प्रहार की आज्ञा दी। उसने स्वयं भी जी भर कर बेंत चलाए। यद्यपि जलूस को भंग होने की कोई आज्ञा नहीं दी गयी। जिन व्यक्तियों को विशेष रूप से लाठी प्रहार का निशाना बनाया गया, वह जफरअली खां, डा० सत्यपाल, केदारनाथ सहगल तथा लोक सेवक मण्डल के मंत्री अचिन्तराम थे जिन्हें नाली में धकेला गया और फिर पीटा गया। कमीशन अपने पीछे मधुर स्मृति छोड़ गया और जफरअली खां, डा० सत्यपाल आदि पर एक प्राइवेट मकान में बलात् घुसने का मुकदमा चलाया गया। कमीशन का प्रारंभिक दौरा ३१ मार्च को समाप्त हुआ और सर जान साइमन के शब्दों में "भारतवर्ष के विभिन्न भागों की सभी जातियों, तथा श्रेणियों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापन करते हुए" बम्बई से विलायत रवाना हो गया।

अध्याय बीस

साइमन कमीशन आया

लाला लाजपतराय की प्रशंसा में भाषण करते हुए श्रीमती एनीबसन्त ने चालीस ब्रेडला के शब्द उद्धृत करते हुए कहा था "जब तुम आक्रमण का परामर्श दे रहे हो, तब यह मत कहो—"जाओ, प्रत्युत् कहो कि "आओ।"

दूसरी बार साइमन कमीशन ११ अक्टूबर की प्रातः उतरा और प्रोग्राम के अनुसार उसको ३० अक्टूबर को लाहौर पहुंचना था। २७ तथा २८ अक्टूबर को लालाजी की अध्यक्षता में आगरा प्रान्तीय हिन्दू सम्मेलन का अधिवेशन इटावा में हुआ। आप वहां नेहरू रिपोर्ट के पक्ष में हिन्दुओं की सहानुभूति प्राप्त करने गए थे। नेहरू स्कीम तथा साइमन बहिष्कार ही दो कार्य थे जिनमें आप उन दिनों व्यस्त थे। इटावा से वह लाहौर ही चल पड़े ताकि अपने नगर में साइमन कमीशन के बहिष्कार के प्रदर्शन में यथासमय भाग ले सकें।

३० अक्टूबर की प्रातः आप "साइमन लौट जाओ" वाले जलूस का नेतृत्व कर रहे थे। यह जलूस नितान्त शान्त और अनुशासन का नमूना था। जलूस में लालाजी की उपस्थिति से विशेष उत्साह पाया जाता था।

अधिकारियों ने साइमन कमीशन के रेलवे स्टेशन से निकलने के मार्ग से कुछ दूरी पर कांटेदार तार लगवा दिए थे। जलूस उन तारों के पास रुक गया। जनता जानती थी कि उनके गगनभेदी नारे तथा शब्द सर जान साइमन तथा उनके साथियों के कानों तक अवश्य जा पहुंचेंगे, यद्यपि वह स्वयं रेलवे स्टेशन तक नहीं पहुंच सकती थी।

जलूस साइमन दल के आगमन की प्रतीक्षा में वहां ठहर गया। समय बिताने के लिए कभी कभी जनता नारे भी लगाती थी और कुछ गीत भी गाती थी। जनता को अपने लम्बे लम्बे तथा प्रभावशाली भाषणों से मंत्रमुग्ध करने वाले मौलाना अताउल्लाहशाह बुखारी भी वहां उपस्थित थे। लाजाजी ने उनकी उपस्थिति से लाभ उठाया। धूप तेज हो रही थी और लालाजी छाता लगाए खड़े थे। उन्हें सन्तोष था कि जनता शांति पूर्ण ढंग से खड़ी है।

परन्तु अधिकारीगण कुछ और सोच रहे थे। उन्होंने डण्डा पुलिस को तैयार

खड़ा कर रखा था। उनका व्यवहार प्रदर्शनकारियों के प्रति ही नहीं, वरन् अखबार वालों के प्रति भी पागलों जैसा रहा। पुलिस के सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट ने ट्रिब्यून के प्रतिनिधि के आज्ञापत्र की शुद्धता पर सन्देह प्रकट किया। उसका अपमान किया गया। अखबार वाले ने उसके विरुद्ध मानहानि का मुकदमा चलाया और न्यायालय की ओर से उसे मानपूर्ति का हर्जाना दिलाया गया।

इस समय यह बतलाना व्यर्थ है कि वह किस प्रकार बिगड़ उठे और उन्होंने प्रदर्शनकारियों पर लाठी प्रहार की आज्ञा दे दी। ऐसा प्रतीत होता है कि वह पहले से ही ऐसा करने पर तुले हुए थे और शरारत पर तुले होने वालों के लिए कोई बहाना ढूंढ़ निकालना कठिन नहीं है।

शान्त जलूस पर लाठी प्रहार किया गया। विशेषतः उनके नेता पर जो उन्हें शान्त तथा अनुशासित रक्खे हुए थे। लाठियों की वर्षा की गयी। स्वयं सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस श्री स्काट ने प्रहार किए। उसका एक सहायक श्री साण्डर्स भी साथ ही था। छाते के नीचे खड़ा जनता का नेता ही उस दिन अंग्रेजी पशुबल के क्रोध का विशेष रूप से निशाना बनाया गया।

यद्यपि शारीरिक आकार में आप छोटे प्रतीत होते थे, परन्तु उनकी आत्मा निर्भीक थी। एक वीर की नाईं आपने प्रहारों को सहन किया और उनका कदम इंच भर भी नहीं डगमगाया। आपने जनता को लाठियों का प्रत्युत्तर देने की अनुमति न दी। आपके साथियों ने आपको घेरने का प्रयत्न किया जिससे कि आपके प्रहारों को स्वयं सहन कर सकें। फिर भी अधिकांश लाठियाँ आप पर ही पड़ीं। आपके एक साथी डा० गोपीचन्द भार्गव जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, आश्चर्यचकित थे कि आप चोटों के कारण वहीं क्यों नहीं गिर पड़े।

आपने लाठी प्रहारों को वीर की भाँति सहन किया और सिंह की नाईं गरजते हुए आपने उक्त पुलिस अफसर से उसका नाम पूछा, जिसका उत्तर आपको अधिक चोटों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। आपने एक बार फिर गरज कर प्रहार करने वालों को ललकारा और कहा कि यदि पुरुष हो तो अपना नाम बतलाओ, परन्तु इसका भी वही उत्तर मिला। आपकी सिंह गरजना से भीड़ पर्वत की तरह जहाँ की तहाँ डट कर खड़ी रही। जनता का क्रोध तो अपार था, परन्तु पूर्ण अनुशासन के कारण वह शान्त तथा निस्तब्ध खड़ी रही।

जब प्रहार समाप्त हो गया और प्रदर्शन का अवसर भी जाता रहा, अपमानित तथा घायल, आप तब भी जलूस को लौटते हुए देख रहे थे।

सायंकाल भारी दरवाजे के बाहर एक भारी भीड़ जमा हो गयी। घायल सिंह की पुनः गरजना हुई। लाजपतराय ने दिन भर की घटनाओं का वर्णन किया।

आपने जनता को बधाई दी कि पुलिस के दुर्व्यवहार के होते हुए भी उन्होंने असाधारण शान्ति का प्रमाण दिया। एक वाक्य जो उस समय उनके मुख से निकला था, वह दूसरे दिन नगर भर के लोगों की जिह्वा पर था और फिर समस्त भारत के कोने कोने में गूंजने लगा "हम पर की गयी एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन में एक-एक कील सिद्ध होगी।" आपने यह भी कहा कि यदि मैं मर गया और जिन नवयुवकों को मैंने काबू में रखा हुआ था, उन्होंने (शान्ति से) अन्य मार्ग ग्रहण करने का निश्चय किया, तो मेरी आत्मा उनके कार्य को आशीर्वाद देगी।" उनके उस समय के भाषण की तुलना भला किसी धारा सभा में दिए गए वाक् प्रवाह से कहाँ हो सकती है!

जनता बड़ी उत्सुकता से अपने प्रिय नेता की आज्ञा का पालन करने को तैयार थी, जिस प्रकार एक लाख आयरिश जनता ओकानल की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करती थी। परन्तु हमारे नेता ने उन्हें कोई ऐसी आज्ञा नहीं दी। उनकी आज्ञा तो यही थी कि चुपचाप दृढ़ निश्चय से अपना संघर्ष जारी रक्खो।

× × ×

अगले दिन घटनाओं का एक सरकारी विवरण प्रकाशित हुआ, जिसके पीछे एक सरकारी जाँच-सी हुई जिसने पुलिस को पूर्णतः निरपराध सिद्ध किया। कोई दो सप्ताह के अनन्तर एक अन्य जाँच की घोषणा की गयी। यह काम रावलपिण्डी डिवीजन के कमिश्नर श्री डी० जे० बायड आई० सी० एस० के सुपुर्द किया गया। लालाजी तथा अन्य प्रमुख नेताओं ने श्री बायड के समक्ष पेश होने से इन्कार कर दिया। लालाजी अन्य सुझाव रखना चाहते थे।

धारा सभा में—बहुत दिनों के पश्चात् जब लालाजी की उसमें किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं रही थी—एक जाँच कमेटी की माँग की गयी जिसे सरकार ने अस्वीकार कर दिया।

लालाजी ने उसी शाम को एक सार्वजनिक सभा में अपनी रामकहानी सुना दी। उनके डाक्टरों ने उसी दिन आपके शरीर की परीक्षा की और छाती की बाईं ओर लाठी प्रहार के दो लम्बे-लम्बे निशान पाए। प्रहार के २९ घण्टे पश्चात् उनका फोटो भी ले लिया गया जो कि पत्रों में प्रकाशित हुआ। आपने ललकार कर अपराधी अधिकारियों के नाम भी बतला दिये।

देश भर में चारों ओर से उनको सहानुभूति के सन्देश भेजे गए। आपने लिखा :—

आप अपना दैनिक काम काज साधारण ढंग से करते रहे। ३ तथा ४ नवम्बर

को अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी का अधिवेशन देहली में था। आपने उसमें भाग लिया, वहाँ भाषण किया। परन्तु आप अनुभव करते थे कि उनका शरीर यह सब कुछ बर्दाश्त करने में असमर्थ है। आपको सभा की कार्यवाही बीच में छोड़नी पड़ी और लाहौर चले आए। लाहौर लौट कर आपने ८ नवम्बर के "पीपुल" में लिखा:—"आल इण्डिया कॉंग्रेस कमेटी में मेरे भाषण की ठीक रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई। मैं उस समय कुछ उत्तेजित सा था। पुलिस की लाठी द्वारा घाव बहुत गम्भीर नहीं हैं, परन्तु मेरा विचार है कि मेरे स्वास्थ्य पर उनका अनिष्टकर प्रभाव पड़ा है। जितने समय मैं देहली रहा, मैं बहुत ही उदास सा रहा और सोमवार को मुझे एक सार्वजनिक सभा में भाषण देना था, परन्तु ज्वर के कारण मैं वहाँ उपस्थित न हो सका। नेहरू कमेटी को भी इन्फ्लूएंजा के प्रकोप के कारण मुझे छोड़ना पड़ा। अभी तक मुझे वह कष्ट बराबर बना हुआ है।"

अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी में आपने जवाहरलाल के कुछ शब्दों की आलोचना की। जवाहरलाल ने अपनी आत्मकथा में उसका वर्णन किया है।

आपने जवाहरलाल तथा सुभाष बोस की भारी प्रशंसा करते हुए कहा था कि नयी पीढ़ी के युवकों में से केवल दो ही व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी सत्यनिष्ठा, विद्वत्ता तथा उच्च आचरण की मैं कद्र करता हूँ। परन्तु मैं उनकी "पूर्ण स्वतंत्रता" की बातों से सहमत नहीं, क्योंकि जहाँ वह अभी एकैडेमिक (Academick) प्रश्न हैं, वहाँ कई लोग पण्डित मोतीलाल नेहरू के तैयार किए विधान को असफल बनाने में उसका दुरुपयोग कर रहे हैं।

१ नवम्बर १९२८ के "पीपुल" में लिखा था कि "जो लोग हमारे साथ नहीं हैं, वे हमारे विरोधी हैं।" आज से २० वर्ष पूर्व आपके विरोधियों ने यही बात कही थी।

× × ×

"हम पर की गयी प्रत्येक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन में एक-एक कील सिद्ध होगी।" इससे आक्रमणकारियों को ही हानि पहुँची, उन्हें नहीं। अमर शहीद महात्मा सुकरात ने अपने अन्तिम तथा अमर भाषण में कहा था "मुझे कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकते—न तो मेलेटस और नाही एनीटस। कोई भी दुष्ट किसी सज्जन का अनिष्ट नहीं कर सकता। मैं इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि शायद एनीटस उसे मार डाले, अथवा उसे निर्वासन दण्ड दे अथवा उसे उसके नागरिक अधिकारों से वञ्चित कर दे। वह अपने मन में कल्पना करता रहे, तथा अन्य लोग भी कल्पना करते रहें कि वह उसका भारी अनिष्ट कर रहे हैं, परन्तु

मैं उससे सहमत नहीं हूँ। क्योंकि केवल बुराई करना—अन्यायपूर्वक किसी का प्राण-हरण कहीं भारी पाप हैं। अतः एथन्सवासियो (अब महान्, शक्तिशाली तथा बुद्धिमान् अंग्रेजों) आप यह न समझें कि मैं अपने लिए आपके सामने युक्ति तथा तर्क पेश कर रहा हूँ, प्रत्युत यह तुम्हारे बचाव के लिए कह रहा हुँ, क्योंकि यदि तुमने मेरी हत्या कर डाली, तो मेरा उत्तराधिकारी खोजना तुम्हारे लिए सहज न होगा . . . ।"

× × ×

फिर भी वह अपने कार्य में लगे रहे, विशेषतः नेहरू रिपोर्ट के विधान को सर्वप्रिय बनाने के कार्य में ही वह व्यस्त थे। इस कार्य के लिए आप हिन्दू नेताओं से भेंट करते, उन्हें अपने विचारों का अनुयायी बनाते, उनकी आपत्तियों का उत्तर देते और उन्हें सन्तुष्ट करते हुए उन्हें अपने अपने नगरों को लौटाते जिससे वह वहाँ जाकर भाषणों तथा पत्रों द्वारा नेहरू रिपोर्ट के पक्ष में जनता का समर्थन प्राप्त करें। आप कार्य में संलग्न रहे और डाक्टरों के परामर्श के प्रतिकूल आपने अपने शरीर को पूरा विश्राम नहीं लेने दिया। कभी-कभी उन प्रहारों के कारण पीड़ा जाग उठती थी और कभी उनका टैम्परेचर बढ़ जाता था। परन्तु वह चुपचाप उसे सहन करते जाते और मुख पर उसके बारे में कोई शब्द न लाते। हर समय उस घटना का बोझ उनके मन तथा मस्तिष्क पर बना रहता। उनके डाक्टर ने अनुभव किया कि वह असाधारण रूप से पीले तथा चूर-चूर दिखलायी पड़ते हैं, परन्तु जब कभी वह विश्राम का परामर्श देते तो उनकी आवाज बहरे कानों पर पड़ती।

इस प्रकार का क्रम कोर्ट स्ट्रीट में कई दिन चलता रहा।

(१६ नवम्बर की सायंकाल) दोपहर के पश्चात् आप मित्रों तथा भेंट करने वालों से साधारणतः बातचीत करते रहे। आपने विशेषतः काम काज की बातें कीं और बीच-बीच में बराबर प्रतिभाशाली पत्रकार जी० एस० राघवन् के साथ खिलखिला कर हँसते रहे और उनसे कहने लगे कि मैं शीघ्र ही तुम को नेहरू रिपोर्ट के प्रचारार्थ पत्रों में प्रकाशक नियुक्त कर दूंगा। उससे पूर्व, उनके डाक्टर एन० आर० धर्मवीर उनके पास एक घण्टा भर बैठे रहे। लालाजी ने उन्हें बतलाया कि मैंने एक महत्त्वपूर्ण सभा का अध्यक्ष बनने के निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया है, क्योंकि मेरा शरीर इतना भारी कार्य करने में असमर्थ प्रतीत होता है। आप सायंकाल मुझे अपनी मोटर में भ्रमणार्थ ले जायें। परन्तु डाक्टर के आने से पूर्व ही आप पैदल ही घूमने निकल पड़े और कह गए कि यदि डाक्टर आवें तो उन्हें मेरे

पीछे भेज देना। डाक्टर धर्मवीर उनको कहीं भी न मिल पाए, अत: वह खाने के पश्चात् फिर वहाँ आए। पारिवारिक ब्रिज का खेल शुरू किया गया क्योंकि लालाजी की तबीयत किसी गम्भीर कार्य को नहीं चाहती थी। लालाजी भी खेलते रहे और फिर डाक्टर ने उनकी परीक्षा की। डाक्टर ने देखा कि उनकी थकान तो स्थायी पीड़ा का रूप धारण कर गयी है और छाती के दायीं ओर तथा रीढ़ के समीप न्यूरोटिक पीड़ा निरन्तर बनी रहती है। हृदय अथवा नाड़ी संचालन में कोई गड़बड़ी नहीं। हृदय की धड़कन तथा टैम्परेचर साधारण हैं, यद्यपि श्वास क्रिया साधारण से कुछ अधिक। जिह्वा भी कुछ मैली है, परन्तु शिर पीड़न अथवा तृषा के कोई लक्षण नहीं। पीड़ा भी हल्की-हल्की है, यद्यपि लालाजी कहते थे कि मुझे भय है कि कहीं यह डैंगू ज्वर न बन जाय, यद्यपि उनको यह ज्वर कभी नहीं हुआ। डाक्टर ने यह भी देखा कि जो थकान विश्राम, मालिश, भ्रमण अथवा शुद्ध वायुसेवन से हट जाया करती थी, वह ३० अक्टूबर से बराबर बनी हुई है। डाक्टर ने इसे गम्भीर समझते हुए, लालाजी को एस्परीन की टिकिया दी और नमस्ते कह कर चल दिए।

१७ नवम्बर—प्रातःकाल लालाजी का नौकर पुरानी कोठी में दौड़ता हुआ आया जहाँ कि लोक सेवक मण्डल के सदस्य रहते थे। अभी तक सभी लोगों की तो आँख ही नहीं खुली थी। तत्काल ही सभी दौड़े-दौड़े लालाजी के कमरे में पहुँचे। उनकी धर्मपत्नी, पुत्र, पुत्री तथा परिवार के अन्य सदस्य निस्तब्ध खड़े थे। डाक्टरों को टेलीफोन किया गया था और उनके आगमन की प्रतीक्षा हो रही थी, यद्यपि सारा खेल समाप्त हो चुका था। वह आए और उन्होंने इस बात की घोषणा की। लालाजी शान्तिपूर्वक महानिद्रा में लेटे हुए थे।

मृत्यु के रहस्य तथा उसके ठीक-ठीक कारण की भला कौन व्याख्या करे? डाक्टर धर्मवीर, गोपीचन्द तथा अन्य डाक्टर मित्रों की जो उनके सम्पर्क में रहे यह दृढ़ तथा निश्शंक सम्मति थी कि उनकी मृत्यु में ३० अक्टूबर के पाशविक प्रहार के शारीरिक तथा मानसिक प्रभाव का भारी हाथ था।

तत्काल ही नगर भर में समाचार फैल गया। अपने विख्यात नेता तथा सबसे प्रतिष्ठित नागरिक के अन्तिम दर्शन करने तथा उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए समस्त नगर ही टूट पड़ा। मध्यान्होत्तर तक मानव समुद्र नंगे सिर रावी नदी को चल पड़ा जहाँ उस महान् शक्ति का अंत्येष्टि संस्कार किया गया।

कोई भी ऐसा व्यक्ति न था जो १७ नवम्बर की इस दुर्घटना को ३० अक्टूबर से सम्बद्ध न करता हो। सभी के नेत्रों के सम्मुख ३० अक्टूबर की घटनाएँ

चक्कर लगा रही थीं और उनके कानों में पंजाब केसरी की उसी सायंकाल वाली अन्तिम गरज गूंज रही थी—"हम पर किया हुआ प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक-एक कील सिद्ध होगा।"

× × ×

१७ दिसम्बर : प्रत्येक व्यक्ति की स्मृति में ३० अक्टूबर की चिरस्मरणीय सभा तथा "हम पर किया हुआ प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक-एक कील सिद्ध होगा" ये शब्द बिलकुल ताजे थे। क्या वह एक मरणासन्न व्यक्ति की भविष्यवाणी थी? "और अब, आप लोगों ने मुझे मृत्यु दण्ड दिया है, मैं एक भविष्यवाणी करता हूँ,क्योंकि मेरी मृत्यु निकट है और निधन काल में मनुष्यों में भविष्यवाणी की शक्ति आ जाती है – कि मेरी मृत्यु के शीघ्र ही पश्चात् मेरे दण्ड से भी कहीं अधिक भारी और उग्र दण्ड आपकी प्रतीक्षा में है। आप पर दोषारोपण करने वालों की संख्या कहीं अधिक होगी। आपको वह लोग अपराधी ठहरायेंगे जिन्हें अभी तक मैंने रोक रखा है और नवयुवक होने के कारण वह आपके प्रति कहीं अधिक निर्दयी तथा अनाचारी सिद्ध होंगे। उस समय आपको उन पर क्रोध आएगा। जाने से पूर्व मैं यह भविष्यवाणी किए जाता हूँ।"

इतिहासकार साक्षी है कि महात्मा सुकरात की आँखें बन्द होते ही, वह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। सुकरात को अपराधी बतलाने वालों को शीघ्र ही जन कोप का शिकार होना पड़ा। जनता ने कइयों को तो टुकड़े-टुकड़े कर डाला और कई प्राण बचाकर भाग निकले। एथन्स में एक भयानक महामारी फैल गयी। लालाजी के आक्रान्ताओं में से मुख्य-स्काट को लाहौर से बदल कर किसी सुरक्षित स्थान पर सुरक्षित नौकरी पर भेज दिया गया। उसके एक नवयुवक सहायक को लड़कों ने गोली से उड़ा दिया। (उनकी अभिलाषा तो साण्डर्स के स्थान में स्काट के प्राण लेने की थी) और वह वहीं तड़प-तड़प कर ठण्डा हो गया। परन्तु इन घटनाओं तथा एथन्स की महामारी के लिए इस पुस्तक में स्थान नहीं है। जवाहरलाल ने ठीक ही लिखा है "भगतसिंह की ख्याति का कारण उनका वह आतंक कार्य न था, वरन् उन्होंने लाला लाजपतराय तथा उनके द्वारा समस्त राष्ट्र के अपमान का बदला चुका दिया। भगतसिंह राष्ट्र का प्रतीक अमर रहेगा और घटना के कुछ मास पश्चात् पंजाब के गाँव-गाँव तथा नगर-नगर में और किसी हद तक शेष उत्तरी भारत में भगतसिंह का नाम गुंजायमान हो गया। उनके विषय में असंख्य गीत रचे गये और उन्हें आशातीत तथा आश्चर्यजनक ख्याति प्राप्त हुई।"

इन घटनाओं का विस्तृत विवरण देना भविष्य के इतिहासकारों का काम

है। १९०७ में उनके निर्वासन के कारण आतंकवाद और हिंसात्मक आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला। १९२८ में उन पर आक्रमण तथा उनकी मृत्यु ने वही परिणाम उत्पन्न किए। नवयुवक दल में बैचेनी पायी जाती थी। १९०७ की घटनाओं की विस्तृत कथा तो स्वयं लालाजी की अमर लेखनी द्वारा लिखी गयी है, "इतिहास तथा उसकी व्याख्या" के रूप में लालाजी ने अपने व्यक्तित्व के चारों ओर उस काल की घटना का जाल बुना है। शायद १९२८ की घटनाएँ उस लेखनी द्वारा न लिखी जा सकें, परन्तु उन घटनाओं का लेखक कोई भी इतिहासकार क्यों न हो, और उसकी लेखन शैली कैसी ही क्यों न हो, कम से कम वह उस भविष्यवाणी तथा उसकी पूर्ति की बात तो कदापि नहीं भूलेगा जो महर्षि सुकरात ने आज से २४०० वर्ष पूर्व की थी :

"मैं कहता हूँ कि आप पर दोषारोपण करने वालों की संख्या इससे कहीं अधिक होगी, जो मुझे अपराधी सिद्ध कर रहे हैं। मैंने उन लोगों को अभी अपने काबू में रखा हुआ है, और वे नवयुवक होने के कारण आपके प्रति कहीं अधिक अनाचारी होंगे। आपको उन पर क्रोध आएगा. . .। यह भविष्यवाणी है जो मैं मरने से पूर्व कर रहा हूँ।"

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library

मसूरी
MUSSOORIE

यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है ।
This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 320.54092
LAJ

121915
LBSNAA

H
320.54092 अवाप्ति सं० ~~1134~~ जी०डी०
लाजप
ACC. No..................

वर्ग सं. पुस्तक सं.
Class No................ Book No...............

लेखक
Author..

शीर्षक लाला लाजपतराय।
Title...

H
320.54092 LIBRARY ~~JD 1134~~ 34

LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration

लाजप MUSSOORIE

Accession No. 121915

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving